ओ३म्

पाणिनीय अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

(अष्टाध्यायी का सरल संस्कृत भाष्य एवं 'आर्यभाषा' नामक हिन्दी टीका)

षष्ठो भागः

सप्तमाष्टमाध्यायात्मकः

सुदर्शनदेव आचार्यः

ओ३म्

तस्मै पाणिनये नमः

पाणिनीय
अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

(अष्टाध्यायी का सरल संस्कृत भाष्य एवं 'आर्यभाषा' नामक हिन्दी टीका)

षष्ठो भागः

सप्तमाष्टमाध्यायात्मकः

प्रवचनकारः

डॉ० सुदर्शनदेव आचार्यः

एम.ए., पी-एच.डी. (एच.ई.एस.)

प्रकाशक :-
ब्रह्मर्षि स्वामी विरजानन्द आर्ष धर्मार्थ न्यास
गुरुकुल झज्जर,
जिला झज्जर (हरयाणा)
दूरभाष : ०१२५१ -५२०४४

मूल्य : १५० रुपये

प्रथम वार : २००० प्रतियां

दीपावली २०५६ वि०
(७ नवम्बर १९९९ ई०)

मुद्रक :-
वेदव्रत शास्त्री
आचार्य प्रिंटिंग प्रेस,
दयानन्दमठ, गोहाना मार्ग, रोहतक-१२४००१
दूरभाष : ०१२६२-४६८७४, ५७७७४, ५६८३३

ओ३म्

पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

अनुभूमिका

व्याकरणशास्त्र के प्राचीन आचार्य

व्याकरणशास्त्र के इतिहास के अनुसार अष्टाध्यायी के प्रवक्ता पाणिनि मुनि से पूर्ववर्ती निम्नलिखित व्याकरणशास्त्र के २५ प्रमुख आचार्य माने गये हैं–

१-महेश्वर (शिव), २-इन्द्र, ३-वायु, ४-भारद्वाज, ५-भागुरि, ६-पौष्करसादि, ७-चारायण, ८-काशकृत्स्न, ९-शन्तनु, १०-वैयाघ्रपद्य, ११-माध्यन्दिनि, १२-रौढि, १३-शौनकि, १४-गौतम, १५-व्याडि, १६-आपिशालि, १७-काश्यप, १८-गार्ग्य, १९-गालव, २०-चाक्रवर्मण, २१-भरद्वाज, २२-शाकटायन, २३-शाकल्य, २४-सेनक, २५-स्फोटायन।

पणिनि मुनि ने इन २५ आचार्यों में से आपिशलि से लेकर स्फोटायन पर्यन्त १० आचार्यों का अष्टध्यायी में उल्लेख किया है। अत: उनका पाठकवृन्द के लाभार्थ वर्णानुक्रम से संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जाता है।

(१) आपिशलि (३००० वि० पूर्व)

आचार्य आपिशलि एक सुप्रसिद्ध वैयाकरण थे। पाणिनि मुनि ने अष्टाध्यायी में इनका एक बार '**वा सुप्यापिशले:**' (६।१।९२) सूत्र में स्मरण किया है। आपिशलि शब्द अपत्य-प्रत्ययान्त है-**अपिशलस्यापत्यमिति आपिशलि:**। इससे प्रकट होता है इनके पिता का नाम 'अपिशल' था। पाणिनि मुनि ने आपिशलि शब्द का क्रौड्यादिगण (४।१।८०) में पाठ किया है। अत: कई विद्वानों का मत है कि बहिन का नाम 'आपिशल्या' था। पाणिनि मुनि ने '**छात्र्यादय: शालायाम्**' (६।२।८६) सूत्र में 'आपिशलिशाला' का भी उल्लेख किया है-'**पदेषु पदैकदेशा: प्रयुज्यन्ते**' के अनुसार यहां 'शाला' शब्द पाठशाला का वाचक है। यह लेख आचार्य आपिशलि की एक विशिष्ट पाठशाला की ओर संकेत करता है।

समय–पाणिनीय अष्टाध्यायी में आचार्य आपिशलि का उल्लेख होने से यह स्पष्ट है कि आपिशलि पाणिनि मुनि से प्राचीन हैं। पाणिनि मुनि का स्थितिकाल २९०० वि०पू० माना जाता है। इससे सिद्ध है कि आपिशलि विक्रम से लगभग ३००० वर्ष प्राचीन हैं।

बौधायन श्रौतसूत्र के प्रवर अध्याय के भृगुवंश में आपिशलि का वर्णन मिलता है। अत: आपिशलि भृगुवंशीय आचार्य हैं।

रचना–जैन सम्प्रदाय के आचार्य पाल्यकीर्ति ने शाकटायन व्याकरण की वृत्ति (३।२।१६१) में एक उदाहरण दिया है-'**अष्टका आपिशला पाणिनीया:**'। इससे

विदित होता है कि आपिशलि के व्याकरणशास्त्र का परिमाण अष्टाध्यायी के तुल्य आठ अध्याय आत्मक था।

आचार्य वररुचि (कात्यायन) और पतञ्जलि के समय इनके व्याकरणशास्त्र का अच्छा प्रचार था। जैसा कि पतञ्जलि ने लिखा है-**आपिशलमधीते इति आपिशला ब्राह्मणी।** इससे ज्ञात होता है कि आपिशलि का व्याकरणशास्त्र बहुत सरल था जो कि बालक और स्त्री आदि सुकुमार बुद्धि जनों को अतिप्रिय था।

(१) आठ अध्याय आत्मक व्याकरणशास्त्र, धातुपाठ, गणपाठ, उणादि सूत्र, शिक्षा, कोष, अक्षरतन्त्र ये आचार्य आपिशलि की रचनायें मानी जाती हैं। उणादि सूत्र और शिक्षा नामक रचनायें आज भी उपलब्ध हैं।

(२) काश्यप (३००० वि० पूर्व)

पाणिनि मुनि ने आचार्य काश्यप का अष्टाध्यायी में दो बार नाम-उल्लेख किया है- **'तृषिमृषिकृशेः काश्यपस्य'** (१।२।२५) और **'नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यप-गालवानाम्'**। आचार्य काश्यप महान् वैयाकरण और कल्पशास्त्र के प्रवक्ता थे।

रचना-काश्यप कल्प, काश्यपीय सूत्र, काश्यप संहिता (आयुर्वेद) छन्दःशास्त्र, शिल्पशास्त्र, अलंकारशास्त्र, पुराण ये आचार्य काश्यप की रचनायें मानी जाती हैं।

(३) गार्ग्य (३१०० वि० पूर्व)

पाणिनि मुनि ने अष्टाध्यायी में आचार्य गार्ग्य के मत का तीन स्थानों पर प्रयोग किया है-**'अड् गार्ग्यगालवयोः'** (७।३।९९), **'ओतो गार्ग्यस्य'** (८।३।२०), **'नोदात्त-स्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम्'** (८।४।६७)। गार्ग्य शब्द में **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) से गोत्रापत्य अर्थ में 'यञ्' प्रत्यय है-**गर्गस्य गोत्रापत्यमिति गार्ग्यः।** इससे स्पष्ट है कि इनके पितामह का नाम 'गर्ग' था, जो कि प्रसिद्ध वैयाकरण आचार्य भारद्वाज के पुत्र थे।

समय-आचार्य यास्क ने निरुक्तशास्त्र में एक नैरुक्त आचार्य के मत का उल्लेख किया है। इससे सिद्ध होता है कि आचार्य गार्ग्य, यास्क से प्राचीन हैं। यास्क का समय महाभारत युद्ध के समीप का माना जाता है। सुश्रुत के टीकाकार डल्हण ने गार्ग्य को धन्वन्तरि का शिष्य बतलाया है और आचार्य गालव को उनका समकालीन कहा है। यदि आचार्य गार्ग्य और गालव समकालीन हों तो इनका समय पूर्वोक्त महाभारत काल से भी प्राचीन है जो कि लगभग ५५०० वि० पूर्व होना चाहिये।

रचना-व्याकरणशास्त्र, निरुक्त, सामवेद पदपाठ, सामतन्त्र, भूवर्णन, तक्षशास्त्र, तन्त्रशास्त्र ये आचार्य गार्ग्य की रचनायें मानी जाती हैं।

(४) गालव (३१०० वि० पूर्व)

पाणिनि मुनि ने अष्टाध्यायी में आचार्य गालव का चार स्थानों पर उल्लेख किया है- **'इको ह्रस्वोऽङ्यो गालवस्य'** (६।३।६१) **'तृतीयादिषु भाषितपुंस्कं पुंवद् गालवस्य'** (७।१।७४), **'अड् गार्ग्यगालवयोः'** (७।३।९९), **'नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यप-गालवानाम्'** (८।४।६७)। पुरुषोत्तमदेव ने भी भाषावृत्ति में गालव का मत प्रस्तुत किया है।

समय—यदि धन्वन्तरि का शिष्य गालव ही व्याकरणशास्त्र का प्रवक्ता हो तो इनका समय ४५०० वि० पूर्व का हो सकता है।

रचना—व्याकरणशास्त्र, गालवसंहिता, ब्राह्मणग्रन्थ, क्रमपाठ, शिक्षा, निरुक्त, दैवतग्रन्थ, शालाक्यतन्त्र, कामसूत्र, भूवर्णन ये आचार्य गालव की रचनायें मानी जाती हैं।

(५) चाक्रवर्मण (३००० वि० पूर्व)

पाणिनि मुनि ने अष्टाध्यायी और उणादि सूत्रों में भी आचार्य चाक्रवर्मण को स्मरण किया है- **'ई चाक्रवर्मणस्य'** (अष्टा० ६।१।१३०) **'कपश्चाक्रवर्मणस्य'** (पञ्चपाद्युणादि० ३।१४४) पं० भट्टोजिदीक्षित ने भी शब्दकौस्तुभ में इनका मत उद्धृत किया है।

चाक्रवर्मण शब्द अपत्य-प्रत्ययान्त है-**चक्रवर्मणोऽपत्यमिति चाक्रवर्मणः।** इससे विदित होता है कि इनके पिता का नाम चक्रवर्मा था। व्याकरणदर्शन के कर्ता पं० गुरुपद हलदार ने वायुपुराण के आधार पर लिखा है कि चक्रवर्मा कश्यप मुनि के पौत्र थे (पृ० ५१९)।

समय—पञ्चपादी उणादि सूत्र के कर्ता आपिशलि हैं। उणादि सूत्र में चाक्रवर्मण के उल्लेख से स्पष्ट है कि इनका काल आपिशलि से प्राचीन है और वह विक्रमादित्य से ३००० वर्ष पूर्व का है, ऐसा विद्वानों का मत है।

(६) भारद्वाज (३००० वि० पूर्व)

पाणिनीय अष्टाध्यायी में वैयाकरण भारद्वाज का एक स्थान पर उल्लेख मिलता है- **'ऋतो भारद्वाजस्य'** (७।२।६६)। इससे अन्यत्र अष्टाध्यायी में जो भारद्वाज का उल्लेख है वह देशवाची है, आचार्यवाची नहीं। संस्कृत साहित्य में अनेक भारद्वाजों का वर्णन मिलता है किन्तु वे सब वैयाकरण भारद्वाज नहीं हैं। वैयाकरण भारद्वाज तो बार्हस्पत्य भरद्वाज के पुत्र द्रोण भारद्वाज हैं-**भरद्वाजस्यापत्यमिति भारद्वाजः।**

समय—इनका समय विक्रम से ३००० वर्ष पूर्व का माना जाता है।

रचना—व्याकरणशास्त्र, भारद्वाज वार्तिक, आयुर्वेद संहिता (कायचिकित्सा) अर्थशास्त्र।

(७) शाकटायन (३१०० वि० पूर्व)

पाणिनि मुनि ने आचार्य शाकटायन को तीन बार स्मरण किया है-'**लङः शाकटायनस्यैव**' (३।४।१११) '**व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य**' (८।३।१८) '**त्रिप्रभृतिषु शाकटायनस्य**' (८।४।५०)। निरुक्तकार आचार्य यास्क ने वैयाकरण शाकटायन का मत उद्धृत किया है। पतञ्जलि मुनि ने भी शाकटायन को व्याकरणशास्त्र का प्रवक्ता माना है और शाकटायन के पिता का नाम शकट लिखा है। पाणिनि मुनि ने भी शकट शब्द का नडादिगण में पाठ किया है। अतः शकट शब्द से '**नडादिभ्यः फक्**' (४।१।९९) से फक् (आयन) प्रत्यय करने पर शाकटायन शब्द सिद्ध होता है।

अनन्त देव ने शुक्लयजुःप्रातिशाख्य में शाकटायन को काण्व का शिष्य लिखा है और शैशिरि शिक्षा में इन्हें शैशिरि का शिष्य बतलाया गया है। एक व्यक्ति समकालीन दो आचार्यों का भी शिष्य हो सकता है।

पतञ्जलि मुनि ने आचार्य शाकटायन के जीवनकाल की एक घटना का चित्रण किया है-'**अथवा भवति वै कश्चिद् जागृदपि वर्तमानकालं नोपलभते तद्यथा वैयाकरणानां शाकाटायनो रथमार्गे आसीनः शकटसार्थं यान्तं नोपलेभे**' (महा० ३।२।११५) अर्थात्-कोई जागरित अवस्था में भी वर्तमानकाल में होनेवाली क्रिया को उपलब्ध नहीं करता है कि जैसे रथमार्ग में बैठे हुये वैयाकरण शाकटायन ने जाते हुये शकट समूह (गाड़ियां) को नहीं देखा क्योंकि उनका ध्यान कहीं अन्यत्र था।

समय-आचार्य यास्क ने शाकटायन का नामग्राहम् उल्लेख किया है अतः इनका स्थितिकाल ३१०० वि० पूर्व का है।

रचना-व्याकरणशास्त्र, दैवतग्रन्थ, निरुक्त, कोष, ऋक्तन्त्र, सामतन्त्र, पञ्चपादी उणादिसूत्र, श्राद्धकल्प ये इनकी रचनायें मानी जाती हैं।

(८) शाकल्य (३१०० वि० पूर्व)

पाणिनि मुनि ने अष्टाध्यायी में आचार्य शाकल्य का चार स्थानों पर मत उद्धृत किया है-'**सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे**' (१।१।१६), '**इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च**' (६।१।१२७), '**लोपः शाकल्यस्य**' (८।३।१९), '**सर्वत्र शाकल्यस्य**' (८।४।५१)। शौकन ने ऋक् प्रातिशाख्य में और कात्यायन ने वाजसनेय प्रातिशाख्य में शाकल्य के मत का उल्लेख किया है।

शाकल्य शब्द में शकल शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में '**गर्गादिभ्यो यञ्**' (४।१।१०५) से 'यञ्' प्रत्यय है-**शकलस्य गोत्रापत्यमिति शाकल्यः**। इससे सिद्ध है कि शाकल्य के पितामह का नाम शकल है। कहीं-कहीं शाकल नाम से भी इन्हें स्मरण किया गया है।

समय–अष्टाध्यायी के **'शौनकादिभ्यश्छन्दसि'** (४।३।१०६) सूत्र में शौनक का उल्लेख किया गया है और शौनक ने ऋक् प्रातिशाख्य में शाकल्य के मत की चर्चा की है। शौनक का समय २९०० वि० पूर्व का है अतः शाकल्य का समय इससे भी पूर्व ३१०० वि०पू० का होना चाहिये।

(९) सेनक (२६५० वि० पूर्व)

पाणिनि मुनि ने अष्टाध्यायी में आचार्य सेनक का एक ही स्थल पर उल्लेख किया है- **'गिरेश्च सेनकस्य'** (५।४।११)। इसके अतिरिक्त इनका परिचय उपलब्ध नहीं है।

(१०) स्फोटायन (२६५० वि० पूर्व)

पाणिनि मुनि ने अष्टाध्यायी में आचार्य स्फोटायन का एक स्थल पर मत उद्धृत किया है– **'अवङ् स्फोटायनस्य'** (६।१।१२३)। पं० हरदत्तमिश्र काशिकावृत्ति की व्याख्या पदमञ्जरी में लिखते हैं– **'स्फोटोऽयनं पारायणं यस्य स स्फोटायनः'** (६।१।१२३) अर्थात् ये स्फोट सिद्धान्त के प्रतिपादक आचार्य थे अतः इनका स्फोटायन नाम प्रसिद्ध हो गया।

पं० युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार इनका नाम औदुम्बरायण था। आचार्य हेमचन्द्र और केशव का मत है कि इनका नाम कक्षीवान् था।

समय–आचार्य स्फोटायन पाणिनि मुनि से प्राचीन हैं। पाणिनि मुनि का समय २९०० वि० पूर्व माना जाता है अतः इनका समय २९५० वि० पूर्व होना चाहिये।

अष्टाध्यायी के वार्तिककार

पाणिनि मुनि के समय में इन उपरिलिखित आचार्यों के व्याकरणशास्त्र विद्यमान थे। उन सब व्याकरणशास्त्रों का परिष्कार करके पाणिनि मुनि ने यह अष्टाध्यायी नामक अद्भुत व्याकरणशास्त्र की रचना की है।

वररुचि (कात्यायन), भारद्वाज, सुनाग, क्रोष्टा, वाडव, व्याघ्रभूति, वैयाघ्रपद्य इन आचार्यों ने पाणिनीय अष्टाध्यायी सम्बन्धी वार्तिक सूत्रों की रचना करके पाणिनीय व्याकरणशास्त्र को पूर्ण व्याकरण बनाने में सहयोग प्रदान किया और पतञ्जलि मुनि ने पाणिनीय अष्टाध्यायी और वार्तिक सूत्रों को लेकर व्याकरण महाभाष्य नामक आकर ग्रन्थ की रचना की।

इच्छा पूर्ण हुई

मैंने गुरुकुल झज्जर (हरयाणा) में सन् १९४७ से १९५१ पर्यन्त गुरुवर पं० विश्वप्रिय शास्त्री के चरणों में बैठकर पाणिनीय व्याकरणशास्त्र का अध्ययन किया था। विद्यार्थीकाल से ही पाणिनीय व्याकरणशास्त्र की सरल व्याख्या लिखने की इच्छा थी। इसी

इच्छा के फलस्वरूप सर्वप्रथम गुरुवर की प्रेरणा से 'व्याकरणकारिका-प्रकाश' नामक रचना लिखकर २०१८ वि० (१९६१ ई०) श्रावणी उपाकर्म के शुभ अवसर पर आचार्यप्रवर भगवान्देव आचार्य (वर्तमान स्वामी ओमानन्द सरस्वती) को भेंट की गई और आर्यकुमार सभा गुरुकुल झज्जर ने उसका प्रकाशन किया।

अष्टाध्यायी पर भी वृत्ति लिखने का कार्य अनेक बार प्रारम्भ किया किन्तु वह मध्य में ही छुट जाता था क्योंकि किसी महापुरुष के सहयोग के बिना कोई भी महान् कार्य पूरा नहीं हो सकता। दिनांक ११ अक्तूबर १९९६ को आर्यसमाज जनकपुरी नई दिल्ली में विद्वद् गोष्ठी के अवसर पर स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती ने अष्टाध्यायी पर एक अच्छी व्याख्या लिखने की प्रेरणा दी और उसके प्रकाशित करवाने का भी आश्वासन दिया। अक्तूबर १९९२ से अष्टाध्यायी प्रवचन का कार्य चल रहा था। स्वामी जी महाराज के आशीर्वाद से इस कार्य को बड़ी प्रगति मिली। जुलाई १९९३ में रोग के झञ्झावत ने कायातरु को मूल से उखाड़ने का प्रयत्न किया किन्तु प्रभु की इच्छा के सामने रोग को परास्त होना पड़ा और मैं स्वास्थ्यलाभ करके दिसम्बर १९९५ में राजकीय सेवा से निवृत्त होकर इस महान् कार्य की पूर्ति में संलग्न हो गया। परमपिता परमात्मा की असीम दया और गुरुवर स्वामी ओमानन्द सरस्वती आचार्य गुरुकुल झज्जर (हरयाणा) के शुभ आशीर्वाद से यह महान् कार्य लगभग ७ वर्ष की कठोर साधना के पश्चात् दिनांक २६-८-९९ (श्रावणी उपाकर्म) को पूरा हो गया और मेरे जीवन की एक प्रबल इच्छा पूर्ण हो गई।

धन्यवाद

इस ग्रन्थ के शुद्ध मुद्रण तथा अपनी हस्तलिखित अष्टाध्यायी वृत्ति के प्रदान से भी इस कार्य में पं० वेदव्रत शास्त्री मालिक आचार्य प्रिंटिंग प्रेस रोहतक ने महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। आचार्य प्रिंटिंग प्रेस के कर्मचारी श्री सुरेन्द्रकुमार चतुर्वेदी ग्राम-शिवपुर (नारायण-गुफा) पो०-विन्ध्याचल, जिला-मिर्जापुर (उ०प्र०) ने उत्तम टङ्कण कार्य किया है। श्रीमती सुशीला देवी ने मुझे गृहकार्यों से निश्चिन्त करके इस साहित्य-यज्ञ में अपनी अनुपम आहुति डाली है। इस महान् कार्य में जिन सज्जनों ने किसी भी रूप में मुझे सहयोग प्रदान किया है, उनका हार्दिक धन्यवाद है।

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये वेदकामानां छात्राणामार्तिनाशनम्।।

—सुदर्शनदेव आचार्य
संस्कृत सेवा संस्थान
दूरभाष : ०१२६२-७००७०   ७७६/३४, हरिसिंह कालोनी, रोहतक (हरयाणा)

षष्ठभागस्य प्रतिपादितविषयाणां सूचीपत्रम्

।। इति षष्ठभागस्य प्रतिपादितविषयाणां सूचीपत्रम् ।।

सप्तमाध्यायस्य प्रथमः पादः

प्रत्ययाऽऽदेशप्रकरणम्

अनाकावादेशौ–

(१) युवोरनाकौ।१।

प०वि०–युवो: ६।१ अनाकौ १।२।

स०–युश्च वुश्च एतयो: समाहारो युवु, तस्य–युवो: (समाहारद्वन्द्व:)। अनश्च अकश्च तौ अनाकौ (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०–अङ्गस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वय:–अङ्गाद् युवोरनाकौ।

अर्थ:–अङ्गात् परयोर्युवो: स्थाने यथासंख्यम् अनाकावादेशौ भवत:।

उदा०–(यु:) नन्दन:। रमण:। सायन्तन:। चिरन्तन:। (वु:) कारक:। हारक:। वासुदेवक:। अर्जुनक:।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अङ्गात्) अङ्ग से उत्तर (युवो:) यु और वु के स्थान में यथासंख्य (अनाकौ) अन और अक आदेश होते हैं।*

*उदा०–(यु) **नन्दन:**। आनन्दित करनेवाला (पुत्र)। **रमण:**। रमण करनेवाला। **सायन्तन:**। सायंकाल होनेवाला। **चिरन्तन:**। चिरकाल में होनेवाला। (वु) **कारक:**। करनेवाला। **हारक:**। हरण करनेवाला। **वासुदेवक:**। वासुदेव=कृष्ण का भक्त। **अर्जुनक:**। अर्जुन का भक्त।*

*सिद्धि–(१) **नन्दन:**। नन्द्+णिच्+ल्यु। नन्द्+०+अन। नन्दन+सु। नन्दन:।*

*यहां णिजन्त **'टुनदि समृद्धौ'** (भ्वा०आ०) से **'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो०'** (३।१।१३४) से 'ल्यु' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'यु' के स्थान में 'अन' आदेश होता है। **'णेरनिटि'** (६।४।५१) से 'णिच्' का लोप होता है। ऐसे ही **'रमु क्रीडायाम्'** (भ्वा०आ०) धातु से–**रमण:**।*

*(२) **सायन्तन:**। सायम्+ट्यु। सायम्+तुट्+यु। सायम्+त्+अन। सायन्तन+सु। सायन्तन:।*

*यहां 'सायम्' शब्द से **'सायंचिरंप्राह्णे०'** (४।३।२३) से 'जात' आदि शेष-अर्थों में **'ट्यु'** प्रत्यय है और इसे 'तुट्' आगम होता है। इस सूत्र से 'यु' के स्थान में 'अन' आदेश होता है। ऐसे ही 'चिरम्' शब्द से–**चिरन्तन:**।*

(३) कारकः। कृ+ण्वुल्। कृ+वु। कार्+अक। कारक+सु। कारकः।

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'ण्वुल्तृचौ' (३।१।१३३) से कर्ता-अर्थ में 'ण्वुल्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से अङ्ग को वृद्धि होती है। ऐसे ही 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से-हारकः।

(४) वासुदेवकः। वासुदेव+वुन्। वासुदेव+वु। वासुदेव्+अक। वासुदेवक+सु। वासुदेवकः।

यहां 'वासुदेव' शब्द से 'वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन्' (६।३।९८) से भक्ति-अर्थ में 'वुन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। ऐसे ही 'अर्जुन' शब्द से-अर्जुनकः।

आयनादय आदेशाः-

(२) आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्।२।

प०वि०-आयन्-एय्+ईन्-ईय्-इयः १।३ फ-ढ-ख-छ-घाम् ६।३ प्रत्ययादीनाम् ६।३।

स०-आयन् च एय् च ईन् च ईय् च इय् च ते-आनेयीनीयियः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। फश्च ढश्च खश्च छश्च घ् च ते फढखछघः, तेषाम्-फढखछघाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। प्रत्ययस्य आदिरिति प्रत्ययादिः, ते प्रत्ययादयः, तेषाम्-प्रत्ययादीनाम् (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अङ्गात् प्रत्ययादीनां फढखछघाम् आयनेयीनीयियः।

अर्थः-अङ्गात् परेषां प्रत्ययादीनां फ-ढ-ख-छ-घां स्थाने यथासंख्यम् आयन्-एय्-ईन्-ईय्-इय आदेशा भवन्ति।

उदा०-(**फः**) नडस्य गोत्रापत्यम्-नाडायनः। चारायणः। (**ढः**) सुपर्ण्या अपत्यम्-सौपर्णेयः। वैनतेयः। (**खः**) आढ्यकुले जातः-आढ्यकुलीनः। श्रोत्रियकुलीनः। (**छः**) गार्ग्यस्यायं छात्रः-गार्गीयः। वात्सीयः। (**घः**) क्षत्रस्य अपत्यम्-क्षत्रियः। फादिष्वकार उच्चारणार्थः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अङ्गात्) अङ्ग से उत्तर (प्रत्ययादीनाम्) प्रत्यय के आदि में विद्यमान (फढखछघाम्) फ, ढ, ख, छ, घ् के स्थान में यथासंख्य (आयनेयीनीयियः) आयन्, एय्, ईन्, ईय्, इय् आदेश होते हैं।*

*उदा०-(फ) **नाडायनः** । नड का पौत्र । **चारायणः** । चर का पौत्र । (ढ) **सौपर्णेयः** । सुपर्णी का पुत्र । **वैनतेयः** । विनता का पुत्र (गरुड़) । (ख) **आढ्यकुलीनः** । आढ्यकुल में उत्पन्न । **श्रोत्रियकुलीनः** । वेदपाठी कुल में उत्पन्न । (छ) **गार्गीयः** । गार्ग्य का शिष्य । **वात्सीयः** । वात्स्य का शिष्य । (घ) **क्षत्रियः** । राजा का पुत्र । फ-आदि में अकार उच्चारणार्थ है ।*

*सिद्धि-(१) **नाडायनः** । नड+फक् । नाड्+आयन । नाडायन+सु । नाडायनः ।*

*यहां 'नड' शब्द से **'नडादिभ्यः फक्'** (४ ।१ ।९९) से गोत्रापत्य-अर्थ में 'फक्' प्रत्यय है । इस सूत्र से 'फ्' के स्थान में 'आयन्' आदेश होता है । ऐसे ही 'चर' शब्द से-**चारायणः** ।*

*(२) **सौपर्णेयः** । सुपर्णी+ढक् । सौपर्ण्+एय । सौपर्णेय+सु । सौपर्णेयः ।*

*यहां 'सुपर्णी' शब्द से **'स्त्रीभ्यो ढक्'** (४ ।१ ।१२०) से अपत्य-अर्थ में 'ढक्' प्रत्यय है । इस सूत्र से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश होता है । ऐसे ही 'विनता' शब्द से-**वैनतेयः** ।*

*(३) **आढ्यकुलीनः** । आढ्यकुलीन+ख । आढ्यकुलीन+ईन । आढ्यकुलीन+सु । आढ्यकुलीनः ।*

*यहां 'आढ्यकुल' शब्द से **'कुलात् खः'** (४ ।१ ।१४०) से 'ख' प्रत्यय है । इस सूत्र से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश होता है । ऐसे ही 'श्रोत्रियकुल' शब्द से-**श्रोत्रियकुलीनः** ।*

*(४) **गार्गीयः** । गार्ग्य+छ । गार्ग्य्+ईय । गार्ग्+ईय । गार्गीय+सु । गार्गीयः ।*

*यहां 'गार्ग्य' शब्द से **'तस्येदम्'** (४ ।१ ।१२०) से इदम्-अर्थ में **'वृद्धाच्छः'** (४ ।२ ।११४) से यथाविहित 'छ' प्रत्यय है । इस सूत्र से 'छ्' के स्थान में 'ईन्' आदेश होता है । **'यस्येति च'** (६ ।४ ।१४८) से अङ्ग के अकार का लोप और **'आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति'** (६ ।४ ।१५१) से यकार का लोप होता है । ऐसे ही 'वात्स्य' शब्द से-**वात्सीयः** ।*

*(५) **क्षत्रियः** । क्षत्र+घ । क्षत्र्+इय । क्षत्रिय+सु । क्षत्रियः ।*

*यहां 'क्षत्र' शब्द से **'क्षत्राद् घः'** (४ ।१ ।१३८) से अपत्य-अर्थ में 'घ' प्रत्यय है । इस सूत्र से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश होता है ।*

अन्त-आदेशः–

(३) झोऽन्तः ।३ ।

प०वि०-झः ६ ।१ अन्तः १ ।१ ।

अनु०-अङ्गस्य इत्यनुवर्तते । 'प्रत्ययादीनाम्' इत्यस्माच्च प्रत्ययग्रहणमनुवर्तते, आदिग्रहणं निवृत्तम् ।

अन्वयः-अङ्गात् प्रत्ययस्य झोऽन्तः ।

अर्थः-अङ्गात् परस्य प्रत्ययावयवस्य झस्य स्थानेऽन्तादेशो भवति ।

उदा०-ते कुर्वन्ति। ते सुन्वन्ति। ते चिन्वन्ति। अद्य श्वो विजनिष्यमाणाः पतिभिः सह शयान्तै (वासिष्ठगृह्यसूत्रम् १०।२४)। जरन्तः। वेशन्तः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अङ्गात्) अङ्ग से उत्तर (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के अवयवभूत (झः) झकार के स्थान में (अन्तः) अन्त आदेश होता है।*

*उदा०-**ते कुर्वन्ति।** वे सब करते हैं। **ते सुन्वन्ति।** वे सब अभिषव करते हैं। अभिषव=रस निचोड़ना। **ते चिन्वन्ति।** वे चयन करते हैं। **अद्य श्वो विजनिष्यमाणाः पतिभिः सह शयान्तै** (वासिष्ठ गृह्यसूत्र १०।२४)। शयान्तै=सोती हैं। **जरन्तः।** वृद्ध पुरुष अथवा भैंसा। **वेशन्तः।** छोटा तालाब।*

***सिद्धि-(१) कुर्वन्ति।** कृ+लट्। कृ+ल्। कृ+झि। कृ+उ+अन्ति। कर्+उ+अन्ति। कुर्+व्+अन्ति। कुर्वन्ति।*

*यहां **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'झि' प्रत्यय के 'झकार' को 'अन्त' आदेश होता है। **'तनादिकृञ्भ्यः उः'** (३।१।७९) से 'उ' विकरण-प्रत्यय और **'अत उत् सार्वधातुके'** (६।४।११०) से 'कर्' के अकार को उकार आदेश होता है।*

*(२) **सुन्वन्ति।** **'षुञ् अभिषवे'** (स्वा०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और **'स्वादिभ्यः श्नुः'** (३।१।७३) से 'श्नु' विकरण-प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही **'चिञ् चयने'** (स्वा०उ०) धातु से-**चिन्वन्ति।***

*(३) **शयान्तै।** शी+लेट्। शी+आट्+ल्। शी+आ+झ। शी+शप्+आ+अन्त। शे+०+आ+अन्ते। शय्+आ+अन्तै। शयान्तै।*

*यहां **'शीङ् स्वप्ने'** (अदा०आ०) धातु से **लिङर्थे लेट्'** (३।४।७) से 'लेट्' प्रत्यय है। **'लेटोऽडाटौ'** (३।४।९४) से लेट्' को 'आट्' आगम, **'टित आत्मनेपदानां टेरे'** (३।४।७९) से 'अन्त' के टि-भाग (अ) को एत्व और **'वैतोऽन्यत्र'** (३।४।९६) से एकार को ऐकार आदेश होता है। **'शीङः सार्वधातुके गुणः'** (७।४।२१) से 'शीङ्' धातु को गुण होता है। **'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।७२) से 'शप्' का लुक् होता है।*

*यहां **'लेटोऽडाटौ'** (३।४।९४) से लकार-अवस्था में 'आट्' आगम होता है अतः 'झ' प्रत्यय झकारादि नहीं रहता है। इसलिये यहां **'प्रत्ययादीनाम्'** (७।१।२) से 'आदि' की अनुवृत्ति नहीं की जाती है, केवल 'प्रत्यय' की अनुवृत्ति होती है। इससे प्रत्यय के अवयव झकार को अन्त आदेश होता है, ऐसा सूत्रार्थ किया जाता है।*

*(४) **जरन्तः।** जॄ+झच्। जॄ+झ। जॄ+अन्त। जर्+अन्त। जरन्त+सु। जरन्तः।*

*यहां **'जॄ वयोहानौ'** (क्र्या०प०) धातु से **'जॄविशिभ्यां झच्'** (उणा० ३।१२६) से 'झच्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*(५) **वेशन्तः।** **'विश प्रवेशने'** (तु०प०) धातु से पूर्ववत्।*

अत्-आदेशः–

(४) अदभ्यस्तात्।४।

प०वि०–अत् १।१ अभ्यस्तात् ५।१।

अनु०–अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, झः इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अभ्यस्ताद् अङ्गात् प्रत्ययस्य झोऽत्।

अर्थः–अभ्यस्ताद् अङ्गाद् उत्तरस्य प्रत्ययावयवस्य झस्य स्थानेऽत्-आदेशो भवति।

उदा०–ते ददति। ते दधति। ते जक्षति। ते जाग्रति। ते ददतु। ते दधतु। ते जक्षतु। ते जाग्रतु।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अभ्यस्तात्) अभ्यस्त-संज्ञक (अङ्गात्) अङ्ग से परे (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के अव्ययभूत (झः) झकार के स्थान में (अत्) अत्-आदेश होता है।*

*उदा०-**ते ददति।** वे सब दान करते हैं। **ते दधति।** वे सब धारण-पोषण करते हैं। **ते जक्षति।** वे सब खाते हैं/हंसते हैं। **ते जाग्रति।** वे सब जागते हैं। **ते ददतु।** वे सब दान करें। **ते दधतु।** वे सब धारण-पोषण करें। **ते जक्षतु।** वे सब खायें/हंसे। **ते जाग्रतु।** वे सब जागें।*

***सिद्धि-(१) ददति।** दा+लट्। दा+ल्। दा+झि। दा+शप्+झि। दा+०+अति। दा-दा+अति। द-द्+अति। ददति।*

*यहां 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। **'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः'** (२।४।७५) से 'शप्' को 'श्लु' आदेश और **'श्लौ'** (६।१।१०) से 'दा' धातु को द्वित्व होता है। **'उभे अभ्यस्तम्'** (६।१।५) से 'दा-दा' की अभ्यस्त संज्ञा होती है। इस अभ्यस्त-संज्ञक अङ्ग से उत्तर 'झि' के झकार को 'अत्' आदेश होता है। **'श्नाभ्यस्तयोरातः'** (६।४।११२) से 'दा' के आकार का लोप होता है। लोट् लकार में-**ददतु।** 'एरुः' (३।४।८६) से उत्व होता है।*

*(२) **दधति।** **'डुधाञ् धारणपोषणयोः'** (जु०उ०) धातु से पूर्ववत्। लोट्लकार में-**दधतु।***

*(३) **जक्षति।** **'जक्ष भक्षहसनयोः'** (अदा०प०) धातु से पूर्ववत्। इसकी **'जक्षित्यादयः षट्'** (६।१।६) से अभ्यस्त संज्ञा है। लोट्लकार में-**जक्षतु।***

*(४) **जाग्रति।** **'जागृ निद्राक्षये'** (अदा०प०) धातु से पूर्ववत्। इसकी पूर्ववत् अभ्यस्त-संज्ञा है।*

अत्-आदेशः–

(५) आत्मनेपदेष्वनतः ।५।

प०वि०–आत्मनेपदेषु ७।३ अनतः ५।१।

स०–न अत् इति अनत्, तस्मात्–अनतः (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, झः, अद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अनतोऽङ्गाद् आत्मनेपदेषु प्रत्ययस्य झोऽत्।

अर्थः–अनतः=अनकारान्ताद् अङ्गाद् उत्तरस्य आत्मनेपदेषु वर्तमानस्य प्रत्ययावयवस्य झस्य स्थानेऽदादेशो भवति।

उदा०–ते चिन्वते। ते लुनते। ते पुनते। ते चिन्वताम्। ते लुनताम्। ते पुनताम्। ते अचिन्वत। ते अलुनत। ते अपुनत।

आर्यभाषाः अर्थ–*(अनतः) अकारान्त से भिन्न (अङ्गात्) अङ्ग से परे (आत्मनेपदेषु) आत्मनेपद-संज्ञक प्रत्ययों में विद्यमान (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के अवयवभूत (झः) झकार के स्थान में (अत्) अत् आदेश होता है।*

*उदा०–ते **चिन्वते**। वे सब चयन करते हैं। ते **लुनते**। वे सब काटते हैं। ते **पुनते**। वे सब पवित्र करते हैं। ते **चिन्वताम्**। वे सब चयन करें। ते **लुनताम्**। वे सब लावणी करें। ते **पुनताम्**। वे सब पवित्र करें। ते **अचिन्वत**। उन सब ने चयन किया। ते **अलुनत**। उन सब ने लावणी की। ते **अपुनत**। उन सब ने पवित्र किया।*

सिद्धि–*(१) **चिन्वते**। चि+लट्। चि+ल्। चि+झ। चि+श्नु+झ। चि+नु+अत। चि+न्व्+अते। चिन्वते।*

*यहां **'चिञ् चयने'** (स्वा०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। **'स्वादिभ्यः श्नुः'** (३।१।७३) से 'श्नु' विकरण-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से आत्मनेपद-संज्ञक प्रत्ययों में विद्यमान, प्रत्यय के अवयवभूत झकार के स्थान में 'अत्' आदेश होता है। **'हुश्नुवोः सार्वधातुके'** (६।४।८७) से यणादेश (व्) होता है। **'टित आत्मनेपदानां टेरे'** (३।४।७९) से 'अत' के टि-भाग (अ) को एकार आदेश होता है। यहां 'झ' प्रत्यय अनकारान्त अङ्ग से उत्तर स्पष्ट है।*

*लोट्लकार में–**चिन्वताम्**। **'आमेतः'** (३।४।९०) से एकार को 'आम्' आदेश होता है। लङ्लकार में–**अचिन्वत**।*

*(२) **लुनते**। **'लूञ् छेदने'** (क्र्या०उ०) धातु से लट् प्रत्यय है। **'श्नाभ्यस्तयोरातः'** (६।४।११२) से 'श्ना' प्रत्यय के आकार का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। लोट्लकार में–**लुनताम्**। लङ्लकार में–**अलुनत**।*

*(३) पुनते। 'पूञ् पवने' (क्र्या०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। लोट्लकार में-**पुनताम्**। लङ्लकार में-**अपुनत**।*

अतो रुडागमः–

(६) शीङो रुट्।६।

प०वि०–शीङः ५।१ रुट् १।१।

अनु०–अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, झः, अद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–शीङोऽङ्गाद् झः प्रत्ययस्य अतो रुट्।

अर्थः–शीङोऽङ्गाद् उत्तरस्य झः प्रत्ययस्य अत आदेशस्य रुडागमो भवति।

उदा०–ते शेरते। ते शेरताम्। ते अशेरत।

आर्यभाषाः अर्थ-*(शीङः) शीङ् इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (झः) झ (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के (अतः) अत्-आदेश को (रुट्) रुट् आगम होता है।*

*उदा०-**ते शेरते**। वे सब सोते हैं। **ते शेरताम्**। वे सब सोवें। **ते अशेरत**। उन सबने शयन किया।*

सिद्धि-शेरते। *शीङ्+लट्। शी+ल्। शी+झ। शी+शप्+झ। शी+०+अत। शी+रुट्+अते। शे+र्+अते। शेरते।*

*यहां 'शीङ् स्वप्ने' (अदा०आ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। '**आत्मनेपदेष्वनतः**' (७।१।५) से 'झ्' को 'अत्' आदेश होता है। इस सूत्र से 'शीङ्' धातु से उत्तर 'झ' के अत्-आदेश को 'रुट्' आगम होता है। '**अदिप्रभृतिभ्यः शपः**' (२।४।७२) से 'शप्' का लुक् होता है।*

*लोट्लकार में-**शेरताम्**। '**आमेतः**' (३।४।९०) से एकार के आम्-आदेश होता है। लङ्लकार में-**अशेरत**।*

अतो रुडागम-विकल्पः–

(७) वेत्तेर्विभाषा।७।

प०वि०–वेत्तेः ६।१ विभाषा १।१।

अनु०–अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, झः, अत्, रुडिति चानुवर्तते।

अन्वयः–वेत्तेरङ्गाद् झः प्रत्ययस्य अतो विभाषा रुट्।

अर्थः–वेत्तेरङ्गाद् उत्तरस्य झः प्रत्ययस्य अत आदेशस्य विकल्पेन रुडागमो भवति।

उदा०-ते संविद्रते, संविदते। ते संविद्रताम्, संविदताम्। ते समविद्रत, समविदत।

आर्यभाषाः *अर्थ-(वेत्तेः) वेत्ति=विद् इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (झः) झ (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के (अतः) अत्-आदेश को (विभाषा) विकल्प से (रुट्) रुट् आगम होता है।*

*उदा०-**ते संविद्रते, संविदते।** वे सब सम्यक् जानते हैं। **ते संविद्रताम्, संविदताम्।** वे सब सम्यक् जानें। **ते समविद्रत, समविदत।** उन सबने सम्यक् जाना।*

सिद्धि-(१) संविद्रते। *सम्+विद्+लट्। सम्+विद्+ल्। सम्+विद्+झ। सम्+विद्+शप्+झ। सम्+विद्+०+अत। सम्+विद्+रुट्+अते। सम्+विद्+र्+अते। संविद्रते।*

*यहां सम्-उपसर्गपूर्वक **'विद ज्ञाने'** (अदा०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। **वा०- 'समो गमादिषु विदिप्रच्छिस्वरतीनामुपसंख्यानम्'** (१।३।२९) से आत्मनेपद होता है। **'आत्मनेपदेष्वनतः'** (७।१।५) से 'झ्' के स्थान में अत्-आदेश होता है। इस सूत्र से इस 'अत्' आदेश को 'रुट्' आगम होता है। विकल्प पक्ष में 'रुट्' आगम नहीं है-**संविदते।***

*लोट्लकार में-**संविद्रताम्, संविदताम्। 'आमेतः'** (३।४।९१) से एकार को 'आम्' आदेश होता है। लङ्लकार में-**समविद्रत, समविदत।***

बहुलं रुडागमः-

(८) बहुलं छन्दसि।८।

प०वि०-बहुलम् १।१ छन्दसि ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, झः, अत्, रुडिति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि अङ्गात् झः प्रत्ययस्य अतो बहुलं रुट्।

अर्थः-छन्दसि विषयेऽङ्गादुत्तरस्य झः प्रत्ययस्य अत आदेशस्य बहुलं रुडागमो भवति।

उदा०-देवा अदुह्र (मै०सं० ४।२।१३)। गन्धर्वाप्सरसो अदुह्र (मै०सं० ४।२।१३)। न च भवति-अदुहत। बहुलवचनादत्रापि भवति-अदृश्रमस्य केतवः (ऋ० १।५०।३)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अङ्गात्) अङ्ग से उत्तर (झः) झ (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के (अतः) अत्-आदेश को (बहुलम्) प्रायशः (रुट्) रुट् आगम होता है।*

उदा०-देवा अदुह्र (मै०सं० ४।२।१३)। देवताओं ने दोहन (प्रपूरण) किया। गन्धर्वाप्सरसो अदुह्र (मै०सं० ४।२।१३)। गन्धर्व और अप्सराओं ने दोहन किया। विकल्प पक्ष में रुट् आगम नहीं है-अदुहत। उन्होंने दोहन किया। बहुलवचन से अत्-आदेश से अन्यत्र भी 'रुट्' आगम होता है-अदृश्रमस्य केतवः (ऋ० १।५०।३)। मैंने (प्रष्कण्व) इस सूर्य की किरणों को देखा है।

सिद्धि-(१) अदुह्र। दुह्+लङ्। अट्+दुह्+ल्। अ+दुह्+झ। अ+दुह्+शप्+झ। अ+दुह्+० अत। अ+दुह्+रुट्+अत। अ+दुह्+र्+अ०। अदुह्र।

यहां 'दुह प्रपूरणे' (अदा०उ०) धातु से 'लङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से झ-प्रत्यय के अत-आदेश को 'रुट्' आगम होता है। 'लोपस्त आत्मनेपदेषु' (७।१।४१) से तकार का लोप होता है। विकल्प पक्ष में रुट्-आगम नहीं है-अदुहत।

(२) अदृश्रम्। दृश्+लुङ्। अट्+दृश्+ल्। अ+दृश्+च्लि+मिप्। अ+दृश्+अङ्+अम्। अ+दृश्+अ+रुट्+अम्। अ+दृश्+अ+र्+अम्। अदृश्रम्।

यहां 'दृशिर् प्रेक्षणे' (भ्वा०प०) धातु से 'लुङ्' प्रत्यय है। 'इरितो वा' (३।१।५७) से 'च्लि' के स्थान में 'अङ्' आदेश होता है। 'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः' (३।४।१०१) से 'मिप्' के स्थान में 'अम्' आदेश है। इस सूत्र से बहुलवचन से इस 'अम्' को भी 'रुट्' आगम होता है। बहुलवचन से ही दृश् धातु को 'ऋदृशोऽङि गुणः' (७।४।१६) से प्राप्त गुण नहीं होता है।

ऐस्-आदेशः-

(६) अतो भिस ऐस्।६।

प०वि०-अतः ५।१ भिसः ६।१ ऐस् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अतोऽङ्गाद् भिसः प्रत्ययस्य ऐस्।

अर्थः-अदन्ताद् अङ्गाद् उत्तरस्य भिसः प्रत्ययस्य स्थाने ऐसादेशो भवति।

उदा०-वृक्षैः। प्लक्षैः। अतिजरसैः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अतः) अकारान्त (अङ्गात्) अङ्ग से परे (भिसः) भिस् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (ऐस्) ऐस् आदेश होता है।*

उदा०-वृक्षैः। वृक्षों के द्वारा। प्लक्षैः। प्लक्षों (पिलखण) के द्वारा। अतिजरसैः। जरा के विजेताओं के द्वारा।

सिद्धि-(१) वृक्षैः । वृक्ष+भिस् । वृक्ष+ऐस् । वृक्षैस् । वृक्षैः ।

*यहां 'वृक्ष' शब्द से **'स्वौजस०'** (४ ।१ ।२) से 'भिस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से अकारान्त 'वृक्ष' शब्द से उत्तर 'भिस्' के स्थान में 'ऐस्' आदेश होता है। **'वृद्धिरेचि'** (६ ।१ ।८७) से वृद्धिरूप (अ+ऐ=ऐ) एकादेश होता है। ऐसे ही 'प्लक्ष' शब्द से-* **प्लक्षैः ।**

*(२) **अतिजरसैः ।** अति+जरा । अति+जर । अतिजर+भिस् । अतिजर+ऐस् । अतिजरस्+ऐस् । अतिजरसैस् । अतिजरसैः ।*

*यहां प्रथम 'अति' और 'जरा' शब्दों का वा०-**'अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया'** (२ ।२ ।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है। **'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य'** (१ ।२ ।४८) से 'जरा' शब्द को ह्रस्वादेश (जर) होता है। इस अकारान्त 'अतिजर' शब्द से उत्तर इस सूत्र से 'भिस्' को 'ऐस्' आदेश होता है। **'एकदेशविकृतमनन्यवद् भवति'** इस परिभाषा के बल से **'जराया जरसन्यतरस्याम्'** (७ ।२ ।१०१) से 'जरा' को विहित 'जरस्' आदेश 'जर' के स्थान में भी किया जाता है।*

बहुलम् ऐसादेशः--

(१०) बहुलं छन्दसि ।१०।

प०वि०-बहुलम् १ ।१ छन्दसि ७ ।१ ।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, अतः, भिसः, ऐस् इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-छन्दसि अतोऽङ्गाद् भिसः प्रत्ययस्य बहुलम् ऐस् ।

अर्थः-छन्दसि विषयेऽदन्ताद् अङ्गाद् उत्तरस्य भिसः प्रत्ययस्य स्थाने बहुलम् ऐसादेशो भवति ।

उदा०-अत इत्युक्तम्, अनतोऽपि भवति-नद्यैः । अतश्च न भवति-देवेभिः सर्वेभिः प्रोक्तम् । भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम (यजु० २५ ।२१) ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अतः) अकारान्त (अङ्गात्) अङ्ग से परे (भिसः) भिस् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (बहुलम्) प्रायशः (ऐस्) ऐस् आदेश होता है।*

*उदा०-**'अतो भिस ऐस्'** (५ ।१ ।९) से अकारान्त अङ्ग से उत्तर 'भिस्' को 'ऐस्' आदेश कहा है। छन्द में बहुल वचन से अनकारान्त से भी उत्तर 'भिस्' को 'ऐस्' आदेश होता है, जैसे-**नद्यैः ।** नदियों के द्वारा। बहुलवचन से अकारान्त से उत्तर भी नहीं होता है, जैसे-**देवेभिः सर्वेभिः प्रोक्तम् ।** सब देवताओं ने कहा। **भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम** (यजु० २५ ।२१)। हम कानों से कल्याणकारी उपदेश सुनें।*

*सिद्धि-(१) **नद्यैः ।** नदी+भिस् । नदी+ऐस् । नद्यैस् । नद्यैः ।*

*यहां 'नदी' शब्द से **'स्वौजस०'** (४ ।१ ।२) से 'भिस्' प्रत्यय है। इस सूत्र में बहुलवचन से ईकारान्त 'नदी' शब्द से उत्तर भी 'भिस्' को 'ऐस्' आदेश होता है।*

*(२) **देवेभिः ।** देव+भिस् । देव् ए+भिस् । देवेभिस् । देवेभिः ।*

*यहां 'देव' शब्द से पूर्ववत् 'भिस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से बहुलवचन से **'अतो भिस ऐस्'** (७ ।१ ।९) से अकारान्त अङ्ग से उत्तर 'भिस्' को विहित 'ऐस्' आदेश नहीं होता है। **'बहुलवचने झल्येत्'** (७ ।३ ।१०३) से एकार आदेश होता है। व्याकरणशास्त्र में बहुलवचन से लक्षण व्यभिचरित हो जाते हैं।*

ऐसादेश-प्रतिषेधः-

(११) नेदमदसोरकोः ।११।

प०वि०-न अव्ययपदम्, इदमदसोः ६ ।२ अकोः ६ ।२ ।

स०-इदम् च अदस् च तौ इदमदसौ, तयोः-इदमदसोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)। अविद्यमानः ककारो ययोस्तौ-अकौ, तयोः-अकोः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, भिसः, ऐस् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकोरिदमदसोर्भिसः प्रत्ययस्य ऐस् न।

अर्थः-अकोः=ककारवर्जितयोरिदमदसोः सम्बन्धिनो भिसः प्रत्ययस्य स्थाने ऐसादेशो न भवति।

उदा०-**(इदम्)** एभिः। **(अदस्)** अमीभिः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अकोः) ककार से रहित (इदमदसोः) इदम् और अदस् सम्बन्धी (भिसः) भिस् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (ऐस्) ऐस् आदेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**(इदम्) एभिः ।** इनके द्वारा। **(अदस्) अमीभिः ।** उनके द्वारा।*

*सिद्धि-(१) **एभिः ।** इदम्+भिस् । इद अ+भिस् । इद+भिस् । अ+भिस् । ए+भिस् । एभिस् । एभिः ।*

*यहां 'इदम्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४ ।१ ।२) से 'भिस्' प्रत्यय है। **'त्यदादीनामः'** (७ ।२ ।१०२) से मकार को अकार आदेश, **'अतो गुणे'** (६ ।१ ।९६) से पररूप अकार आदेश (अ+अ=अ) और **'हलि लोपः'** (७ ।२ ।११३) से 'इद्' भाग का लोप होता है। 'अ+भिस्' इस स्थिति में **'अतो भिस ऐस्'** (७ ।१ ।९) से 'भिस्' को 'ऐस्' आदेश प्राप्त है। इस सूत्र से ककार-रहित 'इदम्' सम्बन्धी 'भिस्' को 'ऐस्' आदेश नहीं होता है। **'बहुवचने झल्येत्'** (७ ।३ ।१०३) से 'अकार' को एकार आदेश होता है।*

(२) अमीभिः । अदस्+भिस् । अद अ+भिस् । अद+भिस् । अद+भि । अदे+भिस् । अमी+भिस् । अमीभिः ।

यहां 'अदस्' शब्द से पूर्ववत् 'भिस्' प्रत्यय है। 'त्यदादीनामः' (७।२।१०२) से 'अदस्' के सकार को अकार आदेश, 'अतो गुणे' (६।१।९६) से पररूप अकार आदेश (अ+अ=अ) है। 'अद+भिस्' इस स्थिति में 'अतो भिस ऐस्' (७।१।९) से 'भिस्' को 'ऐस्' आदेश प्राप्त है। इस सूत्र से ककार-रहित 'अदस्' सम्बन्धी 'भिस्' को ऐस् आदेश नहीं होता है। 'बहुवचने झल्येत्' (७।३।१०३) से अकार को एकार आदेश, 'एत ईद् बहुवचने' (८।२।८१) से 'एकार' को 'ईकार' आदेश और 'दकार' को 'मकार' आदेश होता है।

सूत्रपाठ में 'अकोः' के कथन से यहां ऐसादेश का प्रतिषेध नहीं होता है-(इदम्) इमकैः। (अदस्) अमुकैः। यहां 'अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः' (५।३।७१) से 'अकच्' प्रत्यय है, अतः 'इदम्' और 'अदस्' शब्द ककारसहित हैं।

इनादय आदेशाः-

(१२) टाङसिङसामिनात्स्याः ।१२।

प०वि०-टा-ङसि-ङसाम् ६।३ इन-आत्-स्याः १।३।

स०-टाश्च ङसिश्च ङस् च ते टाङसिङसः, तेषाम्-टाङसिङसाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। इनश्च आच्च स्यश्च ते इनात्स्याः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, अत इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अतोऽङ्गात् टाङसिङसां प्रत्ययानाम् इनात्स्याः।

अर्थः-अकारान्ताद् अङ्गाद् उत्तरेषां टा-ङसि-ङसां प्रत्ययानां स्थाने यथासंख्यम् इन-आत्-स्या आदेशा भवन्ति।

उदा०-(टा) वृक्षेण, प्लक्षेण। (ङसि) वृक्षात्, प्लक्षात्। (ङस्) वृक्षस्य, प्लक्षस्य।

***आर्यभाषाः* अर्थ-**(अतः) अकारान्त (अङ्गात्) अङ्ग से परे (टाङसिङसाम्) टा, ङसि, ङस् इन (प्रत्ययानाम्) प्रत्ययों के स्थान में यथासंख्य (इनात्स्याः) इन, आत्, स्य आदेश होते हैं।

*उदा०-(टा) **वृक्षेण**। वृक्ष के द्वारा। **प्लक्षेण**। प्लक्ष (पिलखण) के द्वारा। (ङसि) **वृक्षात्**। वृक्ष से। **प्लक्षात्**। प्लक्ष से। (ङस्) **वृक्षस्य**। वृक्ष का। **प्लक्षस्य**। प्लक्ष का।*

*सिद्धि-(१) **वृक्षेण।** वृक्ष+टा। वृक्ष+इन। वृक्षेण।*

*यहां 'वृक्ष' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'टा' प्रत्यय है। इस सूत्र से अकारान्त 'वृक्ष' शब्द से परे 'टा' को 'इन' आदेश होता है। **'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि'** (८।४।२) से णत्व होता है। ऐसे ही 'प्लक्ष' शब्द से-**प्लक्षेण।***

*(२) **वृक्षात्।** वृक्ष+ङसि। वृक्ष+आत्। वृक्षात्।*

*यहां 'वृक्ष' शब्द से पूर्ववत् 'ङसि' प्रत्यय है। इस सूत्र से अकारान्त 'वृक्ष' शब्द से परे 'ङसि' को 'आत्' आदेश होता है। **'अकः सवर्णे दीर्घः'** (६।१।९९) से दीर्घरूप एकादेश (अ+अ=आ) होता है। ऐसे ही 'प्लक्ष' शब्द से-**प्लक्षात्।***

*(३) **वृक्षस्य।** वृक्ष+ङस्। वृक्ष+स्य। वृक्षस्य।*

*यहां 'वृक्ष' शब्द से पूर्ववत् 'ङस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से अकारान्त 'वृक्ष' शब्द से परे 'ङस्' को 'स्य' आदेश होता है। ऐसे ही 'प्लक्ष' शब्द से-**प्लक्षस्य।***

य-आदेशः-

(१३) ङेर्यः।१३।

प०वि०-ङेः ६।१ यः १।१।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, अत इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अतोऽङ्गाद् ङेः प्रत्ययस्य यः।

अर्थः-अकारान्ताद् अङ्गाद् परस्य ङेः प्रत्ययस्य स्थाने य आदेशो भवति।

उदा०-वृक्षाय। प्लक्षाय।

आर्यभाषाः अर्थ-(*अतः*) *अकारान्त* (*अङ्गात्*) *अङ्ग से परे* (*ङेः*) *ङे* (*प्रत्ययस्य*) *प्रत्यय के स्थान में* (*यः*) *य-आदेश होता है।*

*उदा०-**वृक्षाय।** वृक्ष के लिये। **प्लक्षाय।** प्लक्ष (पिलखण) के लिये।*

***सिद्धि-वृक्षाय।** वृक्ष+ङे। वृक्ष+य। वृक्षा+य। वृक्षाय।*

*यहां 'वृक्ष' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'ङे' प्रत्यय है। इस सूत्र से अकारान्त 'वृक्ष' शब्द से परे 'ङे' के स्थान में 'य' आदेश होता है। **'सुपि च'** (७।३।१०२) से अङ्ग को दीर्घ होता है।*

स्मै-आदेशः-

(१४) सर्वनाम्नः स्मै।१४।

प०वि०-सर्वनाम्नः ५।१ स्मै १।१ (सु-लुक्)।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, अतः, ङेरिति चानुवर्तते।

अन्वय:-अतः सर्वनाम्नोऽङ्गाद् ङेः प्रत्ययस्य स्मैः।

अर्थः-अकारान्तात् सर्वनाम्नोऽङ्गाद् उत्तरस्य ङेः प्रत्ययस्य स्थाने स्मैरादेशो भवति।

उदा०-सर्वस्मै। विश्वस्मै। कस्मै। तस्मै।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अतः) अकारान्त (सर्वनाम्नः) सर्वनामसंज्ञक (ङेः) ङे (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (स्मैः) स्मै आदेश होता है।*

*उदा०-**सर्वस्मै**। सबके लिये। **विश्वस्मै**। सबके लिये। **कस्मै**। किसके लिये। **तस्मै**। उसके लिये।*

*सिद्धि-(१) **सर्वस्मै**। सर्व+ङे। सर्व+स्मै। सर्वस्मै।*

*यहां 'सर्व' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'ङे' प्रत्यय है। इस सूत्र से सर्वनामसंज्ञक, अकारान्त 'सर्व' शब्द से परे 'ङे' के स्थान में 'स्मै' आदेश होता है। 'सर्व' शब्द की 'सर्वादीनि सर्वनामानि' (१।१।२७) से 'सर्वनाम' संज्ञा है। ऐसे ही 'विश्व' शब्द से-**विश्वस्मै**।*

*(२) **कस्मै**। किम्+ङे। क+स्मै। कस्मै।*

यहां 'किम्' शब्द से पूर्ववत् 'ङे' प्रत्यय है। 'किमः कः' (७।२।१०३) से 'किम्' को 'क' आदेश होता है। सूत्रकार्य पूर्ववत् है।

*(३) **तस्मै**। तत्+ङे। त अ+ङे। त+स्मै। तस्मै।*

यहां 'तत्' शब्द से पूर्ववत् 'ङे' प्रत्यय है। 'त्यदादीनामः' (७।२।१०२) से 'तत्' के तकार को अकारादेश और 'अतो गुणे' (६।१।९६) से पररूप एकादेश होता है। सूत्रकार्य पूर्ववत् है।

स्मात्स्मिनावादेशौ-

(१५) ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ।१५।

प०वि०-ङसि-ङ्योः ६।२ स्मात्-स्मिनौ १।२।

स०-ङसिश्च ङिश्च तौ ङसिङी, तयोः-ङसिङ्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। स्माच्च स्मिँश्च तौ स्मात्स्मिनौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, अतः, सर्वनाम्नः इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अतः सर्वनाम्नोऽङ्गाद् ङसिङ्योः प्रत्यययोः स्मात्स्मिनौ।

अर्थः-अकारान्तात् सर्वनाम्नोऽङ्गाद् उत्तरयोर्ङसिङ्योः प्रत्यययोः स्थाने यथासंख्यं स्मात्स्मिनावादेशौ भवतः।

उदा०-(ङसि) सर्वस्मात्। विश्वस्मात्। यस्मात्। तस्मात्। कस्मात्। **(ङि)** सर्वस्मिन्। विश्वस्मिन्। यस्मिन्। तस्मिन्। कस्मिन्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अतः) अकारान्त (सर्वनाम्नः) सर्वनाम-संज्ञक (अङ्गात्) अङ्ग से परे (ङसिङ्योः) ङसि और ङि (प्रत्यययोः) प्रत्ययों के स्थान में यथासंख्य (स्मात्स्मिनौ) स्मात् और स्मिन् आदेश होते हैं।*

*उदा०-(ङसि) **सर्वस्मात्।** सबसे। **विश्वस्मात्।** सबसे। **यस्मात्।** जिससे। **तस्मात्।** उससे। **कस्मात्।** किससे। (ङि) **सर्वस्मिन्।** सबमें। **विश्वस्मिन्।** सबमें। **यस्मिन्।** जिसमें। **तस्मिन्।** उसमें। **कस्मिन्।** किसमें।*

*सिद्धि-(१) **सर्वस्मात्।** सर्व+ङसि। सर्व+स्मात्। सर्वस्मात्।*

*यहां सर्वनाम-संज्ञक 'सर्व' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'ङसि' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'ङसि' के स्थान में 'स्मात्' आदेश होता है। ऐसे ही-**विश्वस्मात्।***

*'यस्मात्' और 'तस्मात्' यहां 'यत्' और 'तत्' शब्द से 'ङसि' प्रत्यय है। '**त्यादादीनामः**' (७।२।१०२) से 'यत्' और 'तत्' को अकार आदेश होता है। 'कस्मात्' यहां 'किम्' शब्द से 'ङसि' प्रत्यय है। '**किमः कः**' (७।२।१०३) से 'किम्' को 'क' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(२) **सर्वस्मिन्।** सर्व+ङि। सर्व+स्मिन्। सर्वस्मिन्।*

*यहां 'सर्व' शब्द से पूर्ववत् 'ङि' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'ङि' के स्थान में 'स्मिन्' आदेश होता है। ऐसे ही- '**विश्वस्मिन्**' आदि।*

स्मात्स्मिनादेश-विकल्पः-

(१६) पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा।१६।

प०वि०-पूर्वादिभ्यः ५।३ नवभ्यः ५।१ वा अव्ययपदम्।

स०-पूर्व आदिर्येषां ते पूर्वादयः, तेभ्यः-पूर्वादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, अतः, सर्वनाम्नः, ङसिङ्योः, स्मात्स्मिनाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-सर्वनामभ्योऽद्भ्यो नवभ्यः पूर्वादिभ्योऽङ्गेभ्यो ङसिङ्योः प्रत्यययो वा स्मात्स्मिनौ।

अर्थः-सर्वनामसंज्ञकेभ्योऽकारान्तेभ्यो नवभ्यः पूर्वादिभ्योऽङ्गेभ्य उत्तरयोर्ङसिङ्योः प्रत्यययोः स्थाने विकल्पेन यथासंख्यं स्मात्स्मिनावादेशौ भवतः। **उदाहरणम्-**

	शब्दः		शब्दरूपम्	भाषार्थः
१.	पूर्वम्	(ङसि)	पूर्वस्मात्, पूर्वात्।	पूर्व से।
		(ङि)	पूर्वस्मिन्, पूर्वे।	पूर्व में।
२.	परम्	(ङसि)	परस्मात्, परात्।	पर (अन्य) से।
		(ङि)	परस्मिन्, परे।	पर (अन्य) में।
३.	अवरम्	(ङसि)	अवरस्मात्, अवरात्।	अवर (इधर) से।
		(ङि)	अवरस्मिन्, अवरे।	अवर (इधर) में।
४.	दक्षिणम्	(ङसि)	दक्षिणस्मात्, दक्षिणात्।	दक्षिण से।
		(ङि)	दक्षिणस्मिन्, दक्षिणे।	दक्षिण में।
५.	उत्तरम्	(ङसि)	उत्तरस्मात्, उत्तरात्।	उत्तर से।
		(ङि)	उत्तरस्मिन्, उत्तरे।	उत्तर में।
६.	अपरम्	(ङसि)	अपरस्मात्, अपरात्।	अपर (पश्चिम) से।
		(ङि)	अपरस्मिन्, अपरे।	अपर (पश्चिम) में।
७.	अधरम्	(ङसि)	अधरस्मात्, अधरात्।	अधर (नीचे) से।
		(ङि)	अधरस्मिन्, अधरे।	अधर (नीचे) में।
८.	स्वम्	(ङसि)	स्वस्मात्, स्वात्।	स्व (अपने) में।
		(ङि)	स्वस्मिन्, स्वे।	स्व (अपने) में।
९.	अन्तरम्	(ङसि)	अन्तरस्मात्, अन्तरात्।	अन्तर (व्यवधान) में।
		(ङि)	अन्तरस्मिन्, अन्तरे।	अन्तर (व्यवधान) में।

पूर्वादयो नवशब्दाः सर्वादिषु पठ्यन्ते।

आर्यभाषाः अर्थ- *(सर्वनाम्नः) सर्वनाम-संज्ञक (अतः) अकारान्त (नवभ्यः) नौ (पूर्वादिभ्यः) पूर्व-आदि (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (ङसिङ्योः) ङसि और ङि (प्रत्यययोः) प्रत्ययों के स्थान में (वा) विकल्प से यथासंख्य (स्मात्स्मिनौ) स्मात् और स्मिन् आदेश होते हैं।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत भाग में लिखा है।

सिद्धि-(१) पूर्वस्मात्। *यहां सर्वनाम-संज्ञक, अकारान्त 'पूर्व' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'ङसि' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'ङसि' के स्थान में 'स्मात्' आदेश है। विकल्प-पक्ष में 'स्मात्' आदेश नहीं है-**पूर्वात्।** ऐसे ही-**परस्मात्, परात्** आदि।*

*(२) **पूर्वस्मिन्**। यहां सर्वनाम-संज्ञक 'पूर्व' शब्द से पूर्ववत् 'ङि' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'ङि' के स्थान में 'स्मिन्' आदेश है। विकल्प-पक्ष में 'स्मिन्' आदेश नहीं है-**पूर्वे**। ऐसे ही-**परस्मिन्** आदि।*

शी-आदेशः–

(१७) जसः शी।१७।

प०वि०–जसः ६।१ शी १।१ (सु-लुक्)।

अनु०–अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, अतः, सर्वनाम्न इति चानुवर्तते।

अन्वयः–सर्वनाम्नोऽतोऽङ्गाज्जसः प्रत्ययस्य शीः।

अर्थः–सर्वनामसंज्ञकाद् अकारान्ताद् अङ्गाद् उत्तरस्य जसः प्रत्ययस्य स्थान शी-आदेशो भवति।

उदा०–सर्वे। विश्वे। ये। के। ते।

***आर्यभाषाः अर्थ**-(सर्वनाम्नः) सर्वनाम-संज्ञक (अतः) अकारान्त (अङ्गात्) अङ्ग से परे (जसः) जस् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (शीः) शी-आदेश होता है।*

*उदा०-**सर्वे**। सब। **विश्वे**। सब। **ये**। जो सब। **के**। कौन सब। **ते**। वे सब।*

*सिद्धि-**सर्वे**। सर्व+जस्। सर्व+शी। सर्व+ई। सर्वे।*

यहां सर्वनाम-संज्ञक, अकारान्त 'सर्व' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'जस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'जस्' के स्थान में 'शी' आदेश होता है। 'आद्गुणः' (६।१।८६) से गुणरूप एकादेश (अ+इ=ए) है।

*ऐसे ही 'विश्व' शब्द से-**विश्वे**, 'यत्' शब्द से-**ये**, 'किम्' शब्द से-**के** और 'तत्' शब्द से-**ते**।*

शी-आदेशः–

(१८) औङ आपः।१८।

प०वि०–औङः ६।१ आपः ५।१।

अनु०–अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, शीरिति इति चानुवर्तते।

अन्वयः–आपोऽङ्गाद् औङः प्रत्ययस्य, शीः।

अर्थः–आबन्ताद् अङ्गाद् उत्तरस्य औङः प्रत्ययस्य स्थाने शी-आदेशो भवति।

उदा०-खट्वे तिष्ठतः। त्वं खट्वे पश्य। बहुराजे। कारीषगन्ध्ये।

औङ इत्यत्र ङकारः सामान्यग्रहणार्थः, येन औटोऽपि ग्रहणं यथा स्यात्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(आपः) आप् जिसके अन्त में है, उस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (औङः) औ और औट् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (शी) शी-आदेश होता है।*

*उदा०-**खट्वे तिष्ठतः।** दो खाट हैं। **त्वं खट्वे पश्य।** तू दो खाटों को देख। **बहुराजे।** बहुत राजाओंवाली दो स्त्रियों ने/को। **कारीषगन्ध्ये।** दो कारीषगन्ध्याओं ने/को।*

***सिद्धि**-(१) **खट्वे।** खट्वा+औ। खट्वा+शी। खट्वा+ई। खट्वे।*

*यहां आबन्त 'खट्वा' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'औ' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'औ' के स्थान में 'शी' आदेश होता है। '**आद्गुणः**' (६।१।८६) से गुणरूप एकादेश (अ+ई=ए) है। ऐसे ही '**औट्**' (२।२) प्रत्यय करने पर भी-**खट्वे।***

*यहां 'औङ्' में ङकार अनुबन्ध सामान्य ग्रहण करने के लिये है। इससे '**औ**' (१।२) तथा '**औट्**' (२।२) इन दोनों प्रत्ययों का ग्रहण किया जाता है। क्योंकि पूर्वाचार्यों ने इन दोनों प्रत्ययों को 'औङ्' ही पढ़ा है।*

*(२) **बहुराजे।** यहां प्रथम 'बहुराजन्' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में '**डाबुभाभ्याम-न्यतरस्याम्**' (४।१।१३) से 'डाप्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् 'बहुराजा' शब्द से पूर्ववत् 'औ' और 'औट्' प्रत्यय है।*

*(३) **कारीषगन्ध्ये।** 'करीषस्येव **गन्धोऽस्येति**-करीषगन्धिः' (बहुव्रीहिः)। यहां प्रथम '**उपमानाच्च**' (५।४।१७३) से समासान्त 'इच्' प्रत्यय है। **करीषगन्धेरपत्यं स्त्री-कारीषगन्ध्या।** यहां 'करीषगन्धि' शब्द से 'तस्यापत्यम्' से अपत्य-अर्थ (स्त्री) में 'अण्' प्रत्यय और उसके स्थान में '**अणिञोरनार्षयोर्गुरूपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे**' (४।१।७८) से 'ष्यङ्' आदेश होता है और पुनः स्त्रीत्व-विवक्षा में '**यङश्चाप्**' (४।१।७४) से 'चाप्' प्रत्यय है। 'आप्' इस सामान्य वचन से 'टाप्', 'डाप्' और 'चाप्' प्रत्ययों का ग्रहण किया जाता है। आबन्त कारीषगन्ध्या शब्द से पूर्ववत् 'औ' और 'औट्' प्रत्यय है।*

शी-आदेशः—

(१६) नपुंसकाच्च।१६।

प०वि०-नपुंसकात् ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, शीः, औङ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-नपुंसकाद् अङ्गाच्च औङः प्रत्ययस्य शीः।

अर्थः-नपुंसकाद् अङ्गाद् उत्तरस्य च औङः प्रत्ययस्य स्थाने शी-आदेशो भवति।

उदा०-कुण्डे तिष्ठतः। त्वं कुण्डे पश्य। दधिनी। मधुनी। त्रपुणी। जतुनी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(नपुंसकात्) नपुंसक (अङ्गात्) अङ्ग से परे (च) भी (औङः) औ और औट् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (शी) शी-आदेश होता है।*

*उदा०-**कुण्डे तिष्ठतः।** दो कुण्ड हैं। **त्वं कुण्डे पश्य।** तू कुण्डों को देख। **दधिनी।** दो दही। **मधुनी।** दो मधु। **त्रपुणी।** दो त्रपु (सीसा, रांगा)। **जतुनी।** दो जतु (गोंद, लाख, शिलाजीत)।*

*सिद्धि-**(१) कुण्डे।** कुण्ड+औ। कुण्ड+शी। कुण्ड+ई। कुण्डे।*

*यहां नपुंसकलिङ्ग 'कुण्ड' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'औ' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'औ' के स्थान में शी-आदेश होता है। ऐसे ही 'औट्' प्रत्यय करने पर भी-**कुण्डे।** यहां **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अङ्ग के अकार का लोप प्राप्त होता है किन्तु **'वा०-श्यां प्रतिषेधो वक्तव्यः'** अकार-लोप का प्रतिषेध हो जाता है।*

*(२) **दधिनी।** दधि+औ। दधि+शी। दधि+ई। दधि+नुम्+ई। दधि+न्+ई। दधिनी।*

*यहां नपुंसकलिङ्ग 'दधि' शब्द से पूर्ववत् 'औ' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'औ' के स्थान में 'शी' आदेश होता है। **'नपुंसकस्य झलचः'** (७।१।७२) से 'नुम्' आगम है। ऐसे ही 'औट्' प्रत्यय करने पर भी-**दधिनी।** ऐसे ही 'मधु' शब्द से-**मधुनी।** 'त्रपु' शब्द से-**त्रपुणी।** 'जतु' शब्द से-**जतुनी।***

शि-आदेशः-

(२०) जश्शसोः शिः।२०।

प०वि०-जश्-शसोः ६।२ शिः १।१।

स०-जस् च शस् च तौ जश्शसौ, तयोः-जश्शसोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, नपुंसकाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-नपुंसकाद् अङ्गाज्जश्शसोः प्रत्यययोः शिः।

अर्थः-नपुंसकाद् अङ्गाद् उत्तरयोर्जश्शसोः प्रत्यययोः स्थाने शिरादेशो भवति।

उदा०-(जस्) कुण्डानि तिष्ठन्ति। **(शस्)** त्वं कुण्डानि पश्य। दधीनि। मधूनि। त्रपूणि। जतूनि।

आर्यभाषाः *अर्थ-(नपुंसकात्) नपुंसक (अङ्गात्) अङ्ग से परे (जश्शसोः) जस् और शस् (प्रत्यययोः) प्रत्यय के स्थान में (शिः) शि-आदेश होता है।*

*उदा०-(जस्) **कुण्डानि तिष्ठन्ति।** बहुत कुण्ड हैं। (शस्) **त्वं कुण्डानि पश्य।** तू कुण्डों को देख। **दधीनि।** बहुत दही। **मधूनि।** बहुत मधु। **त्रपूणि।** बहुत त्रपु (सीसा, रांगा)। **जतूनि।** बहुत जतु (गोंद, लाख, शिलाजीत)।*

*सिद्धि-**कुण्डानि।** कुण्ड+जस्। कुण्ड+शि। कुण्ड+इ। कुण्ड+नुम्+इ। कुण्ड+न्+इ। कुण्डान्+इ। कुण्डानि।*

*यहां नपुंसक 'कुण्ड' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'जस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'जस्' के स्थान में 'शि' आदेश होता है। **'नपुंसकस्य झलचः'** (७।१।७२) से 'नुम्' आगम और **'सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ'** (६।४।८) से दीर्घ होता है। **'शि सर्वनामस्थानम्'** (१।१।४२) से 'शि' की 'सर्वनामस्थान' संज्ञा है। ऐसे ही-दधि शब्द से-**दधीनि,** मधु शब्द से-**मधूनि,** जतु शब्द से-**जतूनि,** त्रपु शब्द से-**त्रपूणि।***

औश्-आदेशः-

(२१) अष्टाभ्य औश्।२१।

प०वि०-अष्टाभ्यः ५।१ औश् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य जश्शसोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अष्टाभ्योऽङ्गेभ्यो जश्शसोः प्रत्यययोरौश्।

अर्थः-अष्टाभ्योऽङ्गेभ्य उत्तरयोर्जश्शसोः प्रत्यययोः स्थाने औश्-आदेशो भवति।

उदा०-(जस्) अष्टौ तिष्ठन्ति। **(शस्)** त्वम् अष्टौ पश्य।

अष्टाभ्य इत्यत्र कृताकारग्रहणात् कृताकारोऽष्टन्-शब्दो गृह्यते। एतदेव कृतात्वग्रहणम् **'अष्टन आ विभक्तौ'** (७।२।८४) इत्यनेनात्व-विकल्पस्य ज्ञापकं भवति। तेन-अष्ट तिष्ठन्ति, त्वम् अष्ट पश्य इत्यत्रात्वं न भवति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अष्टाभ्यः) अष्टा इस (अङ्गेभ्यः) अङ्ग से परे (जश्शसोः) जस् और शस् (प्रत्यययोः) प्रत्ययों के स्थान में (औश्) औश् आदेश होता है।*

*उदा०-(जस्) **अष्टौ तिष्ठन्ति।** आठ हैं। (शस्) **त्वम् अष्टौ पश्य।** तू आठों को देख।*

*'अष्टाभ्यः' यहां अष्टन् शब्द का कृताकार (अष्टा) रूप में ग्रहा किया गया है। यही कृताकार रूप में 'अष्टा' शब्द का ग्रहण **'अष्टन आ विभक्तौ'** (७।२।८४) से विहित आकारादेश के विकल्प भाव का ज्ञापक है। इससे **'अष्ट तिष्ठन्ति, त्वम् अष्ट पश्य'** यहां आत्व नहीं होता है।*

***सिद्धि-अष्टौ।** अष्टन्+जस्। अष्ट आ+अस्। अष्टा+औश्। अष्टा+औ। अष्टौ।*

*यहां 'अष्टन्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'जस्' प्रत्यय है। **'अष्टन आ विभक्तौ'** (७।२।८४) से 'अष्टन्' शब्द को आकार-आदेश होता है। इससे सूत्र से कृताकार 'अष्टा' शब्द से परे 'जस्' के स्थान में 'औश्' आदेश होता है। इस आदेश के शित् होने से यह **'अनेकाल्शित्सर्वस्य'** (१।१।५५) से सर्वादेश होता है। यह **'षड्भ्यो लुक्'** (७।१।२२) का अपवाद है। अतः 'औश्' का लुक् नहीं होता है।*

लुक्-आदेशः–

(२२) षड्भ्यो लुक्।२२।

प०वि०-षड्भ्यः ५।३ लुक् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, जश्शसोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-षड्भ्योऽङ्गेभ्यो जश्शसोः प्रत्यययोर्लुक्।

अर्थः-षट्संज्ञकेभ्योऽङ्गेभ्य उत्तरयोर्जश्शसोः प्रत्यययोर्लुग् भवति।

उदा०-(जस्) षट् तिष्ठन्ति। पञ्च तिष्ठन्ति। सप्त तिष्ठन्ति। नव तिष्ठन्ति। दश तिष्ठन्ति। **(शस्)** त्वं षट् पश्य। पञ्च पश्य। सप्त पश्य। नव पश्य। दश पश्य।

***आर्यभाषाः अर्थ-**(षड्भ्यः) षट्-संज्ञक (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (जश्शसोः) जश् और शस् (प्रत्यययोः) प्रत्ययों का लुक् होता है।*

*उदा०-(जस्) **षट् तिष्ठन्ति।** छः खड़े हैं। **पञ्च तिष्ठन्ति।** पांच खड़े हैं। **सप्त तिष्ठन्ति।** सात खड़े हैं। **नव तिष्ठन्ति।** नौ खड़े हैं। **दश तिष्ठन्ति।** दश खड़े हैं। (शस्) **त्वं षट् पश्य।** तू छः को देख। **पञ्च पश्य।** तू पांच को देख। **सप्त पश्य।** तू सात को देख। **नव पश्य।** तू नौ को देख। **दश पश्य।** तू दश को देख।*

***सिद्धि-षट्।** षष्+जस्। षष्+०। षड्+० षट्+०। षट्।*

*यहां षट्-संज्ञक 'षष्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'जस्' प्रत्यय है। **'ष्णान्ता षट्'** (१।१।२४) से 'षष्' की षट् संज्ञा है। इस सूत्र से 'जस्' प्रत्यय लुक्*

*(लोप) होता है। 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से 'षष्' के षकार को जश् डकार और 'वाऽवसाने' (८।४।२६) से डकार को चर् टकार होता है। ऐसे ही 'षष्' शब्द से 'शस्' प्रत्यय करने पर-**षट्**। ऐसे ही-**पञ्च, सप्त, नव, दश**।*

लुक्-आदेशः–

(२३) स्वमोर्नपुंसकात्।२३।

प०वि०–सु-अमोः ६।२ नपुंसकात् ५।१।

स०–सुश्च अम् च तौ स्वमौ, तयोः-स्वमोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, लुगिति चानुवर्तते।

अन्वयः–नपुंसकाद् अङ्गात् स्वमोर्लुक्।

अर्थः–नपुंसकाद् अङ्गाद् उत्तरयोः स्वमोः प्रत्यययोर्लुग् भवति।

उदा०–**(सुः)** दधि तिष्ठति। मधु तिष्ठति। त्रपु तिष्ठति। जतु तिष्ठति। **(अम्)** त्वं दधि पश्य। मधु पश्य। त्रपु पश्य। जतु पश्य।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(नपुंसकात्) नपुंसकलिङ्ग (अङ्गात्) अङ्ग से परे (स्वमोः) सु और अम् (प्रत्यययोः) प्रत्यय का (लुक्) लोप होता है।*

*उदा०-**(सु) दधि तिष्ठति।** दही है। **मधु तिष्ठति।** मधु है। **त्रपु तिष्ठति।** त्रपु (सीसा, रांगा) है। **जतु तिष्ठति।** जतु (गोंद, लाख, शिलाजीत) है। **(अम्) त्वं दधि पश्य।** तू दही को देख। **मधु पश्य।** तू मधु को देख। **त्रपु पश्य।** तू त्रपु को देख। **जतु पश्य।** तू जतु को देख।*

*सिद्धि-**दधि।** दधि+सु। दधि+०। दधि।*

*यहां नपुंसकलिङ्ग 'दधि' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'सु' प्रत्यय का लुक् होता है। ऐसे ही 'अम्' प्रत्यय करने पर-**दधि।** ऐसे ही-**मधु, त्रपु, जतु।***

अम्-आदेशः–

(२४) अतोऽम्।२४।

प०वि०–अतः ५।१ अम् १।१।

अनु०–अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, स्वमोः, नपुंसकादिति चानुवर्तते।

अन्वयः–अतो नपुंसकाद् अङ्गात् स्वमोः प्रत्यययोरम्।

अर्थः–अकारान्तान्नपुंसकाद् अङ्गाद् उत्तरयोः स्वमोः प्रत्यययोः स्थानेऽम्-आदेशो भवति।

उदा०-(सुः) कुण्डं तिष्ठति। वनं तिष्ठति। पीठं तिष्ठति। (अम्) त्वं कुण्डं पश्य। वनं पश्य। पीठं पश्य।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अतः) अकारान्त (नपुंसकात्) नपुंसकलिङ्ग (अङ्गात्) अङ्ग से परे (स्वमोः) सु और अम् (प्रत्यययोः) प्रत्ययों के स्थान में (अम्) अम् आदेश होता है।*

*उदा०-(सु) **कुण्डं तिष्ठति।** कुण्ड है। **वनं तिष्ठति।** वन है। **पीठं तिष्ठति।** आसन है। (अम्) **त्वं कुण्डं पश्य।** तू कुण्ड को देख। **वनं पश्य।** तू वन को देख। **पीठं पश्य।** तू आसन को देख।*

*सिद्धि-**कुण्डम्।** कुण्ड+सु। कुण्ड+अम्। कुण्डम्।*

*यहां अकारान्त, नपुंसकलिङ्ग 'कुण्ड' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'सु' के स्थान में 'अम्' आदेश होता है। **'अमि पूर्वः'** (६।१।१०५) से पूर्वरूप एकादेश (अ+अ=अ) है। ऐसे ही **'अम्'** (२।१) प्रत्यय करने पर भी-**कुण्डम्।** ऐसे ही-**वनम्, पीठम्।***

अद्ड्-आदेशः-

(२५) अद्ड् डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः।२५।

प०वि०-अद्ड् १।१ डतरादिभ्यः ५।३ पञ्चभ्यः ५।३।

स०-डतर आदिर्येषां ते डतरादयः, तेभ्यः-डतरादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, स्वमोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-पञ्चभ्यो डतरादिभ्योऽङ्गेभ्यः स्वमोः प्रत्यययोरद्ड्।

अर्थः-पञ्चभ्यो डतरादिभ्योऽङ्गेभ्य उत्तरयोः स्वमोः प्रत्यययोः स्थानेऽदडादेशो भवति।

उदा०-(सुः) कतरत् तिष्ठति। कतमत् तिष्ठति। इतरत्। अन्यतरत्। अन्यत्। (अम्) कतरत् पश्य। कतमत् पश्य। इतरत्। अन्यतरत्। अन्यत्।

डतरादयः पञ्च शब्दाः सर्वादिषु पठ्यन्ते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पञ्चभ्यः) पांच (डतरादिभ्यः) डतर-आदि (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (स्वमोः) सु और अम् (प्रत्यययोः) प्रत्ययों के स्थान में (अद्ड्) अद्ड् आदेश होता है।*

*उदा०-(सु) **कतरत् तिष्ठति।** दो में से कौन-सा खड़ा है। **कतमत् तिष्ठति।** बहुत में से कौन-सा खड़ा है। **इतरत्।** दो में से कोई। **अन्यतरत्।** दो में से कोई। **अन्यत्।** कोई। (अम्) **त्वं कतरत् पश्य।** तू दो में से किसी के देख। **कतमत् पश्य।** तू बहुत में से किसी को देख। **इतरत्।** दो में से किसी को। **अन्यतरत्।** दो में से किसी को। **अन्यत्।** किसी को।*

ये 'डतर' आदि पांच शब्द सर्वादिगण (१।१।२७) में पठित हैं।

***सिद्धि-(१) कतरत्।** किम्+डतरच्। किम्+अतर। क्+अतर। कतर।। कतर+सु। कतर+अद्ड्। कतर+अद्। कतर्+अत्। कतरत्।*

*यहां प्रथम 'किम्' शब्द से '**किंयत्तदोर्निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच्**' (५।३।९२) से 'डतरच्' प्रत्यय है। इस प्रत्यय के डित् होने से वा०-'**डित्यभस्यापि टेर्लोपः**' (६।४।१४३) से 'किम्' के टि-भाग (इम्) का लोप होता है। तत्पश्चात् डतर-प्रत्ययान्त 'कतर' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'सु' के स्थान में 'अद्ड्' आदेश होता है। इस आदेश के भी 'डित्' होने से पूर्ववत् 'कतर' के टि-भाग (अ) का लोप होता है। इसका फल यह है कि '**प्रथमयोः पूर्वसवर्णः**' (६।१।१००) से प्राप्त दीर्घ रूप एकादेश (अ+अ=आ) नहीं होता है। ऐसे ही 'अम्' प्रत्यय करने पर भी-**कतरत्।** ऐसे ही-**इतरत्** आदि।*

*(२) **कतमत्।** यहां प्रथम 'किम्' शब्द से '**वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच्**' (५।३।९३) से 'डतमच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

अद्डादेश-प्रतिषेधः-

(२६) नेतराच्छन्दसि।२६।

प०वि०-न अव्ययपदम्, इतरात् ५।१ छन्दसि ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, स्वमोः, अद्ड् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि इतराद् अङ्गात् स्वमोः प्रत्यययोरद्ड् न।

अर्थः-छन्दसि विषये इतराद् अङ्गाद् उत्तरयोः स्वमोः प्रत्यययोः स्थानेऽद्डादेशो न भवति।

उदा०-मृतमितरमाण्डमवापद्यत (मै०सं० १।६।१२) वार्त्रघ्नमितरम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (इतरात्) इतर इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (स्वमोः) सु और अम् (प्रत्यययोः) प्रत्ययों के स्थान में (अद्ड्) अद्ड् आदेश (न) नहीं होता है।*

उदा०-मृतमितरमाण्डमवापद्यत (मै०सं० १।६।१२) वार्त्रघ्नमितरम्।

सिद्धि-इतरम्। इतर+सु। इतर+अम्। इतरम्।

यहां छन्द विषय में 'इतर' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'सु' के स्थान में 'अम्' आगम का प्रतिषेध है। अतः अतोऽम्' (७।१।२४) से 'सु' के स्थान में 'अम्' आदेश और 'अमि पूर्वः' (६।१।१०५) से पूर्वसवर्ण एकादेश (अ+अ=अ) होता है। ऐसे ही 'अम्' प्रत्यय करने पर भी-इतरम्।

अश्-आदेशः-

(२७) युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश्।२७।

प०वि०-युष्मद्-अस्मद्भ्याम् ५।२ ङसः ६।१ अश् १।१।

स०-युष्मच्च अस्मच्च तौ युष्मदस्मदौ, तभ्याम्-युष्मदस्मद्भ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-युष्मदस्मद्भ्याम् अङ्गाभ्यां ङसः प्रत्ययस्याऽश्।

अर्थः-युस्मदस्मद्भ्याम् अङ्गाभ्याम् उत्तरस्य ङसः प्रत्ययस्य स्थानेऽशादेशो भवति।

उदा०-(युष्मद्) तव स्वम्। **(अस्मद्)** मम स्वम्।

***आर्यभाषाः अर्थ**-(युष्मदस्मद्भ्याम्) युष्मद्, अस्मद् इन (अङ्गाभ्याम्) अङ्गों से परे (ङसः) ङस् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (अश्) अश् आदेश होता है।*

*उदा०-**(युष्मद्)** तव स्वम्। तेरा धन। **(अस्मद्)** मम स्वम्। मेरा धन।*

सिद्धि-(१) तव। युष्मद्+ङस्। युष्मद्+अश्। युष्मद्+अ। तवद्+अ। तव+अ। तव।

यहां 'युष्मद्' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'ङस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'ङस्' के स्थान में 'अश्' आदेश है। यह आदेश शित् होने से 'अनेकाल्शित्सर्वस्य' (१।१।५५) से सर्वादेश होता है। 'तवममौ ङसि' (१।१।५५) से 'युस्मद्' के म-पर्यन्त के स्थान में 'तव' आदेश, 'शेषे लोपः' (७।२।९०) से दकार का लोप और 'अतो गुणे' (६।१।९६) से पररूप एकादेश (अ+अ=अ) होता है।

(२) मम। यहां 'अस्मद्' शब्द के स्थान में 'तवममौ ङसि' (७।२।९६) से 'मम' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

अम्-आदेश–

(२८) ङे प्रथमयोरम्।२८।

प०वि०–ङे ६।१ (लुप्तषष्ठीकं पदम्) प्रथमयो: ६।२ अम्।

स०–प्रथमा च प्रथमा च ते प्रथमे, तयो:-प्रथमयो: (एकशेषद्वन्द्व:)। प्रथमाद्वितीयाविभक्त्योरित्यर्थ:।

अनु०–अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, युष्मदस्मद्भ्यामिति चानुवर्तते।

अन्वय:–युस्मदस्मद्भ्याम् अङ्गाभ्यां ङे: प्रथमयो: प्रत्यययोरम्।

अर्थ:–युष्मदस्मद्भ्याम् अङ्गाभ्याम् उत्तरस्य ङे: स्थाने प्रथमयो:=प्रथमाद्वितीययोर्विभक्त्योश्च प्रत्यययो: स्थानेऽमादेशो भवति।

उदा०–**(युष्मद्)** ङे–तुभ्यं दीयते। **(अस्मद्)** ङे–मह्यं दीयते। **(युष्मद्) प्रथमा**–त्वम्। युवाम्। यूयम्। **द्वितीया**–त्वाम्। युवाम्। **(अस्मद्) प्रथमा**–अहम्। आवाम्। वयम्। **द्वितीया**–माम्। आवाम्।

आर्यभाषा: *अर्थ-(युष्मदस्मद्भ्याम्) युष्मद् और अस्मद् इन (अङ्गाभ्याम्) अङ्गों से परे (ङे:) ङे इस प्रत्यय के और (प्रथमयो:) प्रथमा और द्वितीया विभक्ति के (प्रत्यययों) प्रत्ययों के स्थान में (अम्) अम् आदेश होता है।*

*उदा०-(युष्मद्) ङे-**तुभ्यं दीयते**। तेरे लिये दान किया जाता है। **(अस्मद्)** ङे-**मह्यं दीयते**। मेरे लिये दान किया जाता है। **(युष्मद्) प्रथमा-त्वम्**। तू। **युवाम्**। तुम दोनों। **यूयम्**। तुम सब। **द्वितीया-त्वाम्**। तुझको। **युवाम्**। तुम दोनों को। **(अस्मद्) प्रथमा-अहम्**। मैं। **आवाम्**। हम दोनों। **वयम्**। हम सब। **द्वितीया-माम्**। मुझको। **आवाम्**। हम दोनों को।*

*सिद्धि-(१) **तुभ्यम्**। युष्मद्+ङे। युष्मद्+अम्। तुभ्यद्+अम्। तुभ्य०+अम्। तुभ्यम्।*

*यहां 'युष्मद्' शब्दों से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'ङे' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'ङे' के स्थान में 'अम्' आदेश होता है। '**तुभ्यमह्यौ ङयि**' (७।२।९५) से 'युष्मद्' के म-पर्यन्त के स्थान में 'तुभ्य' आदेश, '**शेषे लोप:**' (७।२।९०) से दकार का लोप और '**अमि पूर्व:**' (६।१।१०५) से पूर्वरूप एकादेश (अ+अ=अ) होता है।*

*(२) **मह्यम्**। यहां 'अस्मद्' के स्थान में '**तुभ्यमह्यौ ङयि**' (७।२।९५) से 'मह्य' आदेश है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **त्वम्**। यहां 'युष्मद्' से 'सु' प्रत्यय परे होने पर '**त्वाहौ सौ**' (७।२।९४) से 'युष्मद्' के म-पर्यन्त के स्थान में 'त्व' आदेश है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**अहम्**।*

*(४) **युवाम्।** यहां 'युष्मद्' शब्द से 'औ' प्रत्यय परे होने पर **'युवावौ द्विवचने'** (७।२।९२) से 'युष्मद्' के म-पर्यन्त के स्थान में 'युव' आदेश है। **'प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम्'** (७।२।८८) से आत्व होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**आवाम्।***

*(५) **यूयम्।** यहां 'युष्मद्' शब्द से 'जस्' प्रत्यय परे होने पर **'यूयवयौ जसि'** (७।२।९३) से 'युष्मद्' के म-पर्यन्त के स्थान में 'यूय' आदेश है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**वयम्।***

*(६) **त्वाम्।** यहां 'युष्मद्' शब्द 'अम्' प्रत्यय परे होने पर **'त्वमावेकवचने'** (७।२।९७) से 'युष्मद्' के म-पर्यन्त के स्थान में 'त्व' आदेश है। **'द्वितीयायां च'** (७।२।८७) से आत्व होता है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**माम्।***

*(७) **युवाम्, आवाम्।** पूर्ववत् (सं० ४)।*

नकारादेशः-

(२६) शसो न।२६।

प०वि०-शसः ६।१ न १।१ (सु-लुक्)।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, युष्मदस्मद्भ्यामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-युष्मदस्मद्भ्याम् अङ्गाभ्यां शसः प्रत्ययस्य नः।

अर्थः-युष्मदस्मद्भ्याम् अङ्गाभ्याम् उत्तरस्य शसः प्रत्ययस्य स्थाने नकारादेशो भवति।

उदा०-(युष्मद्) युष्मान् ब्राह्मणान्। युष्मान् ब्राह्मणीः। युष्मान् कुलानि। **(अस्मद्)** अस्मान् ब्राह्मणान्। अस्मान् ब्राह्मणीः। अस्मान् कुलानि।

***आर्यभाषाः** **अर्थ**-(युष्मदस्मद्भ्याम्) युष्मद् और अस्मद् इन (अङ्गाभ्याम्) अङ्गों से परे (शसः) शस् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (नः) नकार आदेश होता है।*

*उदा०-(युष्मद्) **युष्मान् ब्राह्मणान्।** तुम ब्राह्मणों को। **युष्मान् ब्राह्मणीः।** तुम ब्राह्मणियों को। **युष्मान् कुलानि।** तुम कुलों को। (अस्मद्) **अस्मान् ब्राह्मणान्।** हम ब्राह्मणों को। **अस्मान् ब्राह्मणीः।** हम ब्राह्मणियों को। **अस्मान् कुलानि।** हम कुलों को।*

*सिद्धि-**युष्मान्।** युष्मद्+शस्। युष्मद्+अस् युष्मद्+न्स्। युष्मा+न्स्। युष्मान्०। युष्मान्।*

*यहां 'युष्मद्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'शस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'शस्' को नकारादेश होता है और यह **'आदेः परस्य'** (१।१।५४) के नियम से 'शस्' के*

*आदिभूत अकार के स्थान में किया जाता है। **'संयोगान्तस्य लोपः'** (८।२।२४) से सकार का लोप और **'द्वितीयायां च'** (७।२।८७) से आत्व होता है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**अस्मान्।***

*युस्मद् और अस्मद् शब्द अव्यय है। अतः स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग में समान रूप होते हैं-**युष्मान् ब्राह्मणीः। युष्मान् कुलानि।***

अभ्यम्-आदेशः–

(३०) भ्यसोऽभ्यम्।३०।।

प०वि०-भ्यसः ६।१ अभ्यम् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, युष्मदस्मद्भ्यामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-युष्मदस्मद्भ्याम् अङ्गाभ्याम् उत्तरस्य भ्यसः प्रत्ययस्याऽभ्यम्।

अर्थः-युष्मदस्मद्भ्याम् अङ्गाभ्याम् उत्तरस्य भ्यसः प्रत्ययस्य स्थानेऽभ्यमादेशो भवति।

उदा०-**(युष्मद्)** युष्मभ्यं दीयते। **(अस्मद्)** अस्मभ्यं दीयते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(युष्मदस्मद्भ्याम्) युष्मद् और अस्मद् इन (अङ्गाभ्याम्) अङ्गों से परे (भ्यसः) भ्यस् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (अभ्यम्) अभ्यम् आदेश होता है।*

*उदा०-(युष्मद्) **युष्मभ्यं दीयते।** तुम्हारे लिये दान किया जाता है। **(अस्मद्) अस्मभ्यं दीयते।** हमारे लिये दान किया जाता है।*

***सिद्धि-युष्मभ्यम्।** युष्मद्+भ्यस्। युष्मद्+अभ्यम्। युष्म०+अभ्यम्। युष्मभ्यम्।*

*यहां 'युष्मद्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'भ्यस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'भ्यस्' के स्थान में 'अभ्यम्' आदेश होता है। **'शेषे लोपः'** (७।२।९०) से दकार का लोप और **'अतो गुणे'** (६।१।९६) से गुणरूप एकादेश है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**अस्मभ्यम्।***

***विशेषः** यहां काशिकावृत्ति में **'भ्यसो भ्यम्'** ऐसा सूत्रपाठ मानकर 'भ्यस्' के स्थान में 'भ्यम्' आदेश स्वीकार किया है। 'भ्यम्' आदेश करने पर तथा **'शेषे लोपः'** (७।२।९०) से दकार का लोप हो जाने पर **'बहुवचने झल्येत्'** (७।३।१०३) से अकार के स्थान में एकार आदेश प्राप्त होता है इस दोष का **'अङ्गवृत्ते पुनर्वृत्तावविधिर्निष्ठितस्य'** इस परिभाषा के बल से परिहार किया है कि अङ्गाधिकार में एक कार्य होने पर उत्तरकालवर्ती अङ्ग-कार्य की विधि नहीं होती है। गुरुवर पं० विश्वप्रिय शास्त्री ने **'भ्यसोऽभ्यम्'** ऐसा सूत्रपाठ मानकर 'अभ्यम्' आदेश पढ़ाया है। इसमें परिभाषा के आश्रय की आवश्यकता नहीं है।*

अत्-आदेशः–

(३१) पञ्चम्या अत्।३१।

प०वि०–पञ्चम्याः ६।१ अत् १।१।

अनु०–अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, युष्मदस्मद्भ्याम्, भ्यस इति चानुवर्तते।

अन्वयः–युष्मदस्मद्भ्याम् अङ्गाभ्यां पञ्चम्या भ्यसः प्रत्ययस्याऽत्।

अर्थः–युष्मदस्मद्भ्याम् अङ्गाभ्याम् उत्तरस्य पञ्चम्या भ्यसः प्रत्ययस्य स्थानेऽदादेशो भवति।

उदा०–(**युष्मद्**) ते युष्मद् अपगच्छन्ति। (**अस्मद्**) ते अस्मद् अपगच्छन्ति।

आर्यभाषाः अर्थ-*(युष्मदस्मद्भ्याम्) युष्मद् और अस्मद् इन (अङ्गाभ्याम्) अङ्गों से परे (पञ्चम्याः) पञ्चमी विभक्ति के (भ्यसः) भ्यस् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (अत्) अत्-आदेश होता है।*

*उदा०-(युष्मद्) **ते युष्मद् अपगच्छन्ति।** वे सब तुमसे दूर होते हैं। (**अस्मद्**) **ते अस्मद् अपगच्छन्ति।** वे सब हमसे दूर होते हैं।*

सिद्धि-युष्मत्। *युष्मद्+भ्यस्। युष्मद्+अत्। युष्म०+अत्। युष्मत्।*

*यहां 'युष्मद्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से पञ्चमी विभक्ति का बहुवचन 'भ्यस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'भ्यस्' के स्थान में 'अत्' आदेश होता है। **'भ्यसोऽभ्यम्'** (७।१।३०) से 'अभ्यम्' आदेश प्राप्त था, यह उसका अपवाद है। **'शेषे लोपः'** (७।२।९०) से दकार का लोप और **'अतो गुणे'** (६।१।९६) से पररूप एकादेश (अ+अ=अ) है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**अस्मत्।***

अत्-आदेशः–

(३२) एकवचनस्य च।३२।

प०वि०–एकवचनस्य ६।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, युष्मदस्मद्भ्याम्, पञ्चम्याः, अद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–युष्मदस्मद्भ्याम् अङ्गाभ्याम् पञ्चम्या एकवचनस्य प्रत्ययस्य च अत्।

अर्थः–युष्मदस्मद्भ्याम् अङ्गाभ्याम् उत्तरस्य पञ्चम्या एकवचनस्य प्रत्ययस्य स्थाने चाऽदादेशो भवति।

उदा०-(**युष्मद्**) ते त्वद् अपगच्छन्ति। (**अस्मद्**) ते मद् अपगच्छन्ति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(युष्मदस्मद्भ्याम्) युष्मद् और अस्मद् इन (अङ्गाभ्याम्) अङ्गों से परे (पञ्चम्याः) पञ्चमी विभक्ति के (एकवचनस्य) एकवचन के (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (च) भी (अत्) अत्-आदेश होता है।*

*उदा०-(युष्मद्) **ते त्वद् अपगच्छन्ति।** वे सब तुझ से दूर होते हैं। (अस्मद्) **ते मद् अपगच्छन्ति।** वे सब हम से दूर होते हैं।*

*सिद्धि-**त्वत्।** युष्मद्+ङसि। युष्मद्+अत्। त्वद्+अत्। त्व०+अत्। त्व+अत्। त्वत्।*

*यहां 'युष्मद्' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से पञ्चमी विभक्ति के एकवचन का 'ङसि' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'ङसि' के स्थान में 'अत्' आदेश है। '**त्वमावेकवचने**' (७।२।९७) से 'युष्मद्' के म-पर्यन्त के स्थान में 'त्व' आदेश, '**शेषे लोपः**' (७।२।९०) से दकार का लोप ओर '**अतो गुणे**' (६।१।९६) से पररूप एकादेश (अ+अ=अ) होता है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**मत्।***

आकम्-आदेशः-

(३३) साम आकम्।३३।

प०वि०-सामः ६।१ आकम् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, युष्मदस्मद्भ्याम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-युष्मदस्मद्भ्याम् अङ्गाभ्यां सामः प्रत्ययस्याऽऽकम्।

अर्थः-युष्मदस्मद्भ्याम् अङ्गाभ्याम् उत्तरस्य सामः प्रत्ययस्य स्थाने आकमादेशो भवति।

उदा०-(**युष्मद्**) युष्माकं स्वम्। (**अस्मद्**) अस्माकं स्वम्।

'सामः' इति षष्ठीबहुवचनमागतसुट्कं गृह्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(युष्मदस्मद्भ्याम्) युष्मद् और (अस्मद्) इन (अङ्गाभ्याम्) अङ्गों से परे (सामः) साम् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (आकम्) आकम् आदेश होता है।*

*उदा०-(युष्मद्) **युष्माकं स्वम्।** तुम्हारा धन। (अस्मद्) **अस्माकं स्वम्।** हमारा धन।*

*सिद्धि-**युष्माकम्।** युष्मद्+आम्। युष्मद्+सुट्+आम्। युष्मद्+स्+आम्। युष्मद्+साम्। युष्मद्+आकम्। युष्म०+आकम्। युष्माकम्।*

*यहां 'युष्मद्' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से षष्ठीविभक्ति का बहुवचन 'आम्' प्रत्यय है। इसे **'आमि सर्वनाम्नः सुट्'** (७।१।५२) से 'सुट्' आगम होता है। तत्पश्चात् सुट्-आगम सहित 'आम्' प्रत्यय (साम्) के स्थान में इस सूत्र से 'आकम्' आदेश होता है। **'शेषे लोपः'** (७।२।९०) से दकार का लोप और **'अकः सवर्णे दीर्घः'** (६।१।९९) से दीर्घरूप एकादेश है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**अस्माकम्।***

औ-आदेशः-

(३४) आत औ णलः।३४।

प०वि०-आतः ५।१ औ १।१ (सु-लुक्) णलः ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-आतोऽङ्गाद् णलः प्रत्ययस्य औः।

अर्थः-आकारान्ताद् अङ्गाद् उत्तरस्य णलः प्रत्ययस्य स्थाने औकारादेशो भवति।

उदा०-स पपौ। स तस्थौ। स जग्लौ। स मम्लौ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(आतः) आकारान्त (अङ्गात्) अङ्ग से परे (णलः) णल् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (औः) औकार आदेश होता है।*

*उदा०-**स पपौ।** उसने पान किया। **स तस्थौ।** वह ठहरा। **स जग्लौ।** उसने ग्लानि की। **स मम्लौ।** उसने ग्लानि की।*

*सिद्धि-(१) **पपौ।** पा+लिट्। पा+तिप्। पा+णल्। पा+औ। पौ। पा-पौ। प-पौ। पपौ।*

*यहां **'पा पाने'** (भ्वा०प०) धातु से 'लिट्' प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लादेश 'तिप्' और **'णल तुसुस्०'** (३।४।८२) से 'तिप्' के स्थान में 'णल्' आदेश होता है। इस सूत्र से 'णल्' के स्थान में 'औ' आदेश होता है। **'वृद्धिरेचि'** (६।१।८५) से वृद्धिरूप एकादेश 'पौ' होकर पश्चात् **'द्विर्वचनेऽचि'** (१।१।५८) से रूपातिदेश रूप स्थानिवद्भाव से 'पा-पौ' इस प्रकार **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से द्वित्व होता है। **'ह्रस्वः'** (७।४।५९) से अभ्यास को ह्रस्व है।*

*(२) **तस्थौ।** यहां **'ष्ठा गतिनिवृत्तौ'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लिट्' प्रत्यय है। **'शर्पूर्वाः खयः'** (७।४।६१) से अभ्यास का 'खय्' वर्ण 'थ्' शेष रहता है। **'अभ्यासे चर्च'** (८।४।५४) से थकार को 'चर्' तकार होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(३) जग्लौ। यहां 'ग्लै हर्षक्षये' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लिट्' प्रत्यय है। 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से अभ्यास के गकार को चवर्ग जकार होता है। ऐसे ही 'म्लै हर्षक्षये' (भ्वा०प०) धातु से-मम्लौ।

तातङादेश-विकल्पः-

(३५) तुह्योस्तातङाशिष्यन्यतरस्याम्।३५।

प०वि०-तु-ह्योः ६।२ तातङ् १।१ आशिषि ७।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-तुश्च हिश्च तौ तुही, तयोः-तुह्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-आशिषि अङ्गात् तुह्योः प्रत्यययोरन्यतरस्यां तातङ्।

अर्थः-आशिषि विषयेऽङ्गाद् उत्तरयोस्तुह्योः प्रत्यययोः स्थाने विकल्पेन तातङ् आदेशो भवति।

उदा०-**(तुः)** जीवताद् भवान्। जीवतु भवान्। **(हिः)** जीवतात् त्वम्। जीव त्वम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(आशिषि) आशीर्वाद विषय में (अङ्गात्) अङ्ग से परे (तुह्योः) तु और हि इन (प्रत्यययोः) प्रत्ययों के स्थान में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (तातङ्) तातङ् आदेश होता है।*

*उदा०-**(तु) जीवताद् भवान्। जीवतु भवान्।** आप जीवित रहें। **(हि) जीवतात् त्वम्। जीव त्वम्।** तू जीवित रह।*

सिद्धि-(१) जीवतात्। *जीव्+लोट्। जीव+ल्। जीव+तिप्। जीव्+शप्+ति। जीव्+अ+तु। जीव्+अ+तातङ्। जीव्+अ+तात्। जीवतात्।*

*यहां **'जीव प्राणधारणे'** (भ्वा०प०) धातु से **'आशिषि लिङ्लोटौ'** (३।३।१७३) से आशीर्वाद अर्थ में लोट् प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लादेश 'तिप्' और 'एरुः' (३।४।८६) से 'तिप्' के इकार को उकार आदेश है-**तु**। इस सूत्र से 'तु' के स्थान में 'तातङ्' आदेश है। विकल्प-पक्ष में 'तातङ्' आदेश नहीं है-**जीव**।*

*(२) **जीवतात्।** यहां पूर्वोक्त 'जीव' धातु से पूर्ववत् 'लोट्' और इसके स्थान में 'सिप्' आदेश है। **'सेर्ह्यपिच्च'** (३।४।८७) से 'सिप्' के स्थान में 'हि' आदेश होता है। इस सूत्र से 'हि' के स्थान में 'तातङ्' आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में 'तातङ्' आदेश नहीं है-जीव। **'अतो हेः'** (६।४।१०५) से 'हि' का लुक् हो जाता है।*

विशेषः *'तातङ्' आदेश में ङकार अनुबन्ध* ***'क्ङिति च'*** *(१।१।५) से गुण-वृद्धि प्रतिषेध के लिये है। अतः यहां* ***'ङिच्च'*** *(१।१।५३) से अन्त्य-आदेश न होकर* ***'अनेकाल्शित्सर्वस्य'*** *(१।१।५५) से सर्वादेश होता है।*

वसु-आदेशः—

(३६) विदेः शतुर्वसुः।३६।

प०वि०–विदेः ६।१ शतुः ६।१ वसुः १।१।

अनु०–अङ्गस्य, प्रत्ययस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–विदेरङ्गाच्छतुः प्रत्ययस्य वसुः।

अर्थः–विदेरङ्गाद् उत्तरस्य शतृ-प्रत्ययस्य स्थाने वसुरादेशो भवति।

उदा०–विद्वांन्। विद्वांसौ। विद्वांसः।

आर्यभाषाः अर्थ–*(विदेः) विद इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (शतुः) शतृ (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (वसु) वसु आदेश होता है।*

उदा०–***विद्वांन्।*** *ज्ञानी।* ***विद्वांसौ।*** *दो ज्ञानी।* ***विद्वांसः।*** *सब ज्ञानी।*

सिद्धि-(१) विद्वान्। *विद्+लट्। विद्+शतृ। विद्+शप्+वसु। विद्+०+वस्। विद्वस्+सु। विद्वनुम् स्+स्। विद्वन्स्+स्। विद्वान्स्+स्। विद्वान्स्+०। विद्वान्०। विद्वान्।*

यहां ***'विद ज्ञाने'*** *(अदा०प०) धातु से* ***'वर्तमाने लट्'*** *(३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय और* ***'लटः शतृशानचा०'*** *(३।२।१२४) से 'लट्' के स्थान में 'शतृ' आदेश है। इस सूत्र से 'शतृ' के स्थान में 'वसु' आदेश होता है।* ***'कर्तरि शप्'*** *(३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय,* ***'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'*** *(२।४।७२) से शप् का लुक्,* ***'सार्वधातुकमपित्'*** *(१।२।४) से 'शतृ' के ङित् होने से* ***'पुगन्तलघूपधस्य च'*** *(७।३।८६) से प्राप्त लघूपध गुण नहीं होता है। 'विद्वस्+सु' इस स्थिति में 'वसु' के उगित् होने से* ***'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः'*** *(७।१।७०) से 'नुम्' आगम,* ***'सान्तमहतः संयोगस्य'*** *(६।४।१०) से नकार की उपधा को दीर्घ,* ***'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्'*** *(६।१।६७) से 'सु' का लोप और* ***'संयोगान्तस्य लोपः'*** *(८।२।२३) से सकार का लोप होता है। इस सकार-लोप के असिद्ध होने से* ***'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'*** *(८।२।७) से नकार का लोप नहीं होता है।*

(२) विद्वांसौ। *यहां 'विद्वस्' शब्द से* ***'स्वौजस०'*** *(४।१।२) से 'औ' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'नुम्' आगम और इसके नकार को* ***'नश्चापदान्तस्य झलि'*** *(८।३।२४) से अनुस्वार (ं) आदेश होता है। ऐसे ही 'जस्' प्रत्यय परे होने पर–**विद्वांसः।***

ल्यप्-आदेशः–

(३७) समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्।३७।

प०वि०–समासे ७।१ अनञ्पूर्वे ७।१ क्त्वः ६।१ ल्यप् १।१।

स०–न नञ् इति अनञ्। अनञ् पूर्वो यस्मिन् सः–अनञ्पूर्वः, तस्मिन् अनञ्पूर्वे (नञ्गर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०–अङ्गस्य, प्रत्ययस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः–अनञ्पूर्वे समासे क्त्वः प्रत्ययस्याङ्गस्य ल्यप्।

अर्थः–अनञ्पूर्वे समासे वर्तमानस्य क्त्वा-प्रत्ययस्याऽङ्गस्य ल्यप्-आदेशो भवति।

उदा०–प्रकृत्य। प्रहृत्य। पार्श्वतः कृत्य। नानाकृत्य। द्विधाकृत्य। अनञ्पूर्वे इति किम्? अकृत्वा, अहृत्वा।

आर्यभाषाः *अर्थ–(अनञ्पूर्वे) नञ्-पूर्व से भिन्न (समासे) समास में विद्यमान (क्त्वः) क्त्वा (प्रत्ययस्य) प्रत्ययरूप इस (अङ्गस्य) अङ्ग के स्थान में (ल्यप्) ल्यप् आदेश होता है।*

*उदा०–**प्रकृत्य।** आरम्भ करके। **प्रहृत्य।** प्रहार करके। **पार्श्वतः कृत्य।** पार्श्व से करके। **नानाकृत्य।** जो नाना नहीं था उसे नाना (अनेक) करके। **द्विधाकृत्य।** जो दो नहीं था, उसे दो करके।*

*'अनञ्पूर्व' का कथन इसलिये किया गया है कि यहां 'ल्यप्' आदेश न हो–**अकृत्वा।** न करके। **अहृत्वा।** हरण न करके।*

*सिद्धि–(१) **प्रकृत्य।** प्र+कृ+क्त्वा। प्र+कृ+त्वा। प्र+कृ+ल्यप्। प्र+कृ+तुक्+य। प्र+कृ+त्+य। प्रकृत्य+सु। प्रकृत्य+०। प्रकृत्य।*

*यहां प्र-उपसर्गपूर्वक '**डुकृञ् करणे**' (तना०उ०) धातु से '**समानकर्तृकयोः पूर्वकाले**' (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। '**कुगतिप्रादयः**' (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है। इस सूत्र से इस नञ्-पूर्व से भिन्न तत्पुरुष समास में 'क्त्वा' के स्थान में 'ल्यप्' आदेश होता है। '**ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्**' (६।१।७०) से 'तुक्' आगम होता है। '**क्त्वातोसुन्कसुनः**' (१।१।४०) से अव्ययसंज्ञा होकर '**अव्ययादाप्सुपः**' (२।४।८२) से 'सु' का लुक् होता है।*

*(२) **पार्श्वतःकृत्य।** यहां 'कृ' धातु से स्वाङ्गवाची, तस्-प्रत्ययान्त 'पार्श्वतः' शब्द उपपद होने पर '**स्वाङ्गे तस्प्रत्यये कृभ्वोः**' (३।४।६१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। '**तृतीयाप्रभृतीन्यतरस्याम्**' (२।२।२१) से उपपदतत्पुरुष समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **नानाकृत्य।** यहां 'कृ' धातु से **'नाधार्थप्रत्यये च्व्यर्थे'** (३।४।६२) से 'क्त्वा' प्रत्यय है और पूर्ववत् उपपद-तत्पुरुष समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**द्विधाकृत्य।***

क्त्वा-आदेशः-

(३८) क्त्वाऽपि च्छन्दसि।३८।

प०वि०-क्त्वा १।१ अपि अव्ययपदम्, छन्दसि ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, समासे, अनञ्पूर्वे, क्त्व इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि अनञ्पूर्वे समासे क्त्वः प्रत्ययस्याऽङ्गस्य क्त्वाऽपि।

अर्थः-छन्दसि विषयेऽनञ्पूर्वे समासे वर्तमानस्य क्त्वः प्रत्ययस्याऽङ्गस्य स्थाने क्त्वाऽप्यादेशो भवति। अपिवचनाल्ल्यबपि भवति।

उदा०-कृष्णं वासो यजमानं परिधापयित्वा (काठ०सं० ११।१०)। प्रत्यञ्चमर्कं प्रत्यर्पयित्वा (शौ०सं० १२।२।५५)। अपिवचनाल्ल्यबपि भवति-उद्धृत्य जुहुयात् (काठ०सं० ६।६)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अनञ्पूर्वे) नञ्पूर्व से भिन्न (समासे) समास में विद्यमान (क्त्वः) क्त्वा (प्रत्ययस्य) प्रत्यय रूप (अङ्गस्य) अङ्ग के स्थान में (क्त्वा) क्त्वा यह आदेश (अपि) भी होता है। यहां अपि-वचन से ल्यप्-आदेश भी हो जाता है।*

*उदा०-**कृष्णं वासो यजमानं परिधापयित्वा** (काठ०सं० ११।१०)। **प्रत्यञ्चमर्कं प्रत्यर्पयित्वा** (शौ०सं० १२।२।५५)। अपि-वचन से ल्यप्-आदेश भी होता है-**उद्धृत्य जुहुयात्** (काठ०सं० ६।६)।*

***सिद्धि-(१) परिधापयित्वा।** परि+धापि+क्त्वा। परि+धापि+क्त्वा। परि+धापि+ इट्+त्वा। परि+धापे+इ+त्वा। परिधापयित्वा+सु। परिधापयित्वा+०। परिधापयित्वा।*

*यहां परि-उपसर्गपूर्वक णिजन्त 'धापि' धातु से **'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले'** (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। **'कुगतिप्रादयः'** (२।२।१८) से प्रादि-तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से इस नञ्-पूर्व से भिन्न समास में 'क्त्वा' के स्थान में 'क्त्वा' आदेश है। **'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'** (७।२।३५) से 'इट्' आगम है। **'न क्त्वा सेट्'** (१।२।१८) से 'क्त्वा' प्रत्यय के कित्त्व-प्रतिषेध से **'क्ङिति च'** (१।१।५) से गुण का प्रतिषेध नहीं होता. अपितु **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से इगन्त अङ्ग को गुण होता है।*

*(२) **प्रत्यर्पयित्वा।** यहां प्रति-उपसर्गपूर्वक णिजन्त 'अर्पि' धातु से पूर्ववत् 'क्त्वा' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(३) उद्धृत्य। उत्+हृ+क्त्वा। उत्+हृ+त्वा। उद्+हृ+ल्यप्। उत्+हृ+य। उत्+हृ+तुक्+य। उत्+हृ+त्+य। उद्+धृ+त्+य। उद्धृत्य+सु। उद्धृत्य+०। उद्धृत्य।

*यहां उत्-उपसर्गपूर्वक 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त्वा' प्रत्यय है। इस सूत्र में अपि-वचन से 'क्त्वा' के स्थान में 'ल्यप्' आदेश होता है। **'झयोहोऽन्यतरस्याम्'** (८।४।६१) से हकार को पूर्वसवर्ण धकार आदेश है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

सु-आदय आदेशाः–

(३६) सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः।३६।

प०वि०–सुपाम् ६।३ सु-लुक्-पूर्वसवर्ण-आत्-शे-या-डा-ड्या-याच्-आलः १।३।

स०–सुश्च लुक् च पूर्वसवर्णश्च आच्च शेश्च याश्च डाश्च ड्याश्च याच् च आल् च ते सु०आलः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि अङ्गात् सुपां प्रत्ययानां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेया-डाड्यायाजालः।

अर्थः–छन्दसि विषयेऽङ्गाद् उत्तरेषां सुपां प्रत्ययानां स्थाने सुलुक्पूर्व-सवर्णाच्छेयाडाड्यायाजाल आदेशा भवन्ति। उदाहरणम्–

(१) **सु-आदेशः**–अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्थाः (ऋ० १०।८५।२३) पन्थान इति प्राप्ते।

(२) **लुक्-आदेशः**–आर्द्रे चर्मन् (तै०सं० ७।५।९।३) लोहिते चर्मन् (ऋ १।१६४।८) 'चर्मणि' इति प्राप्ते। हविधनि यत् सुन्वन्ति तत् सामिधेनीरन्वाह। यस्मिन् सुन्वन्ति तस्मिन् सामिधेनीरिति प्राप्ते।

(३) **पूर्वसवर्णादेशः**–धीती (ऋ० १।६४।८)। मती (ऋ० १।८२।२)। सुष्टुती (ऋ० २।३२।४)। धीत्या, मत्या, सुष्टुत्या इति प्राप्ते।

(४) **आत्-आदेशः**–न ताद् ब्राह्मणान् निन्दामि। न तान् ब्राह्मणानिति प्राप्ते।

(५) **शे-आदेशः**-न युष्मे वाजबन्धवः (ऋ० ८।६८।१९)। अस्मे इन्द्राबृहस्पती (ऋ० ४।४९।४)। यूयम्, वयमिति प्राप्ते। यूयादेशो वयादेशश्च च्छान्दसत्वान्न भवति।

(६) **या-आदेशः**-उरुया (मै०सं० २।७।८)। धृष्णुया (ऋ० १।२३।२)। उरुणा, धृष्णुना इति प्राप्ते।

(७) **डा-आदेशः**-नाभा पृथिव्याम् (शौ०सं० ७।६२।१)। नाभौ पृथिव्यामिति प्राप्ते।

(८) **ड्या-आदेशः**-अनुष्ट्या व्यावयतात्। अनुष्टुभा इति प्राप्ते।

(९) **याच्-आदेशः**-साधुया (ऋ० १०।६६।१२) साधु इति सोर्लुकि प्राप्ते।

(१०) **आल्-आदेशः**-वसन्ता यजेत (मै०सं० २१।४)। वसन्ते इति प्राप्ते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अङ्गात्) अङ्ग से परे (सुपाम्) सुप् (प्रत्ययानाम्) प्रत्ययों के स्थान में (सु०आलः) सु, लुक्, पूर्वसवर्ण, आत्, शे, या, डा, ड्या, याच्, आल् आदेश होते हैं।*

उदा०-इनके उदाहरण संस्कृत-भाग में लिखे हैं।

सिद्धि-(१) पन्थाः। *पथिन्+जस्। पथिन्+सु। पथि आ+सु। पथ्आ+स्। पन्थ आ+स्। पन्थाः।*

*यहां 'पथिन्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'जस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से छन्द में 'जस्' के स्थान में 'सु' आदेश होता है। **'पथिमथ्यृभुक्षामात्'** (७।१।८५) नकार को आकार-आदेश, **'इतोऽत् सर्वनामस्थाने'** (७।१।८६) से इकार को अकार-आदेश और **'थोन्थः'** (७।१।८७) से थकार को 'न्थ' आदेश होता है।*

*(२) **चर्मन्।** चर्मन्+ङि। चर्मन्+०। चर्मन्।*

यहां 'चर्मन्' शब्द से पूर्ववत् 'ङि' प्रत्यय है। इस सूत्र से छन्दविषय में 'ङि' का लुक् होता है।

*(३) **धीती।** धीती+टा। धीती+आ। धीती।*

*यहां 'धीती' शब्द से पूर्ववत् 'टा' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'टा' (आ) को पूर्वसवर्ण (ई) होता है। ऐसे ही-**मती, सुष्टुती।***

(४) **तात्।** तत्+शस्। तत्+आत्। त अ+आत्। तात्।

यहां 'तत्' शब्द से पूर्ववत् 'शस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से छन्दविषय में 'शस्' को 'आत्' आदेश होता है। **'त्यादादीनामः'** (७।२।१०२) से 'तत्' को अकार अन्तादेश होता है।

(५) **युष्मे।** युष्मद्+जस्। युष्मद्+शे। युष्मद्+ए। युष्म+ए। युष्मे।

यहां 'युष्मद्' शब्द से पूर्ववत् 'जस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'जस्' को 'शे' आदेश होता है। **'शेषे लोपः'** (७।२।७२) से 'युष्मद्' के टि-भाग (अद्) का लोप होता है। छन्दोविषय होने से **'यूयवयौ जसि'** (७।२।९३) से यूय-आदेश नहीं होता है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**अस्मे।**

(६) **उरुया।** उरु+टा। उरु+या। उरुया।

यहां 'उरु' शब्द से पूर्ववत् 'टा' प्रत्यय है। इस सूत्र से छन्दविषय में 'टा' को 'या' आदेश होता है। ऐसे ही 'धृष्णु' शब्द से-**धृष्णुया।**

(७) **नाभा।** नाभि+ङि। नाभि+डा। नाभ्+आ। नाभा।

यहां 'नाभि' शब्द से पूर्ववत् 'ङि' प्रत्यय है। इस सूत्र से छन्दविषय में 'ङि' को 'डा' आदेश होता है। आदेश के डित् होने से **वा०- 'डित्यभस्यापि टेर्लोपः'** (६।४।१४३) से अङ्ग के टि-भाग (इ) का लोप होता है।

(८) **अनुष्ट्या।** अनुष्टुप्+टा। अनुष्टुप्+ड्या। अनुष्टुप्+या। अनुष्ट्+या। अनुष्ट्या।

यहां 'अनुष्टुप्' शब्द से पूर्ववत् 'टा' प्रत्यय है। इस सूत्र से छन्दविषय में 'टा' को 'ड्या' आदेश होता है। आदेश के डित् होने से **वा०- 'डित्यभस्यापि टेर्लोपः'** (६।४।१४३) से अङ्ग के टि-भाग (उप्) का लोप होता है।

(९) **साधुया।** साधु+सु। साधु+याच्। साधु+या। साधुया।

यहां 'साधु' शब्द से पूर्ववत् 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से छन्दविषय में 'सु' को 'याच्' होता है।

(१०) **वसन्ता।** वसन्त+ङि। वसन्त+आल्। वसन्त+अ। वसन्ता।

यहां 'वसन्त' शब्द से पूर्ववत् 'ङि' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'ङि' को 'आल्' आदेश होता है।

मश्-आदेशः-

(४०) अमो मश्।४०।

प०वि०-अमः ६।१ मश् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि अङ्गाद् अमः प्रत्ययस्य मश्।

अर्थः-छन्दसि विषयेऽङ्गाद् उत्तरस्य अमः प्रत्ययस्य स्थाने मशादेशो भवति।

उदा०-वधीं वृत्रम् (ऋ० १।१६५।८)। क्रमीं वृक्षस्य शाखाम्।

अत्र 'अम्' इति **'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः'** (३।४।१०१) इत्यनेन विहितो मिबादेशो गृह्यते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अङ्गात्) अङ्ग से परे (अमः) अम् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (मश्) मश् आदेश होता है।*

उदा०-वधीं वृत्रम् (ऋ० १।१६५।८)। क्रमीं वृक्षस्य शाखाम्। क्रमीम्=मैंने चलाया।

***सिद्धि-वधीम्।** हन्+लुङ्। हन्+च्लि+ल्। हन्+सिच्+ल्। वध्+सिच्+मिप्। वध्+इट्+स्+ईट्+अम्। वध्+इ+स्+ई+मश्। वध्+इ+०+ई+म्। वधीम्।*

*यहां 'हन हिंसागत्योः' (अदा०प०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। 'च्लि लुङि' (३।१।४३) से च्लि, 'च्लेः सिच्' (३।१।४४) से सिच् आदेश, 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (७।२।३५) से इट् आगम, **'अस्तिसिचोऽपृक्ते'** (७।३।९६) से ईट् आगम और 'इट ईटि' (८।२।२८) से सिच् का लोप होता है। 'लुङि च' (२।४।४३) से 'हन्' के स्थान में 'वध्' आदेश है। **'बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि'** (६।४।७५) से 'अट्' आगम नहीं होता है। **'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः'** (६।४।१०१) से 'मिप्' के स्थान में 'अम्' आदेश है। इस सूत्र से छन्दविषय में 'अम्' के स्थान में 'मश्' आदेश होता है। ऐसे ही **'क्रमु पादविक्षेपे'** (भ्वा०प०) धातु से-**क्रमीम्।***

त-लोपः-

(४१) लोपस्त आत्मनेपदेषु।४१।

प०वि०-लोपः १।१ तः ६।१ आत्मनेपदेषु ७।३।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि अङ्गाद् आत्मनेपदेषु तः प्रत्ययस्य लोपः।

अर्थः-छन्दसि विषयेऽङ्गाद् उत्तरस्य आत्मनेपदेषु वर्तमानस्य तः प्रत्ययस्य लोपो भवति।

उदा०-देवा अदुह्र (मै०सं० ४।२।१३)। गन्धर्वाप्सरसोऽदुह्र (मै०सं० ४।२।१३)। 'अदुहत' इति प्राप्ते। दुह्रामश्विभ्यां पयोऽघ्न्येयम् (ऋ० १।१६४।२७) 'दुग्धाम्' इति प्राप्ते। दक्षिणतः पुमान् स्त्रियमुपशये (कां०सं० २०।६) 'शेते' इति प्राप्ते।

आर्यभाषाः अर्थ-*(छन्दसि) वेदविषय में (अङ्गात्) अङ्ग से परे (आत्मनेषु) आत्मनेपदों में विद्यमान (तः) त (प्रत्ययस्य) प्रत्यय का (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-**देवा अदुह्र** (मै०सं० ४।२।१३)। **गन्धर्वाप्सरसोऽदुह्र** (मै०सं० ४।२।१३)। 'अदुहत' यह रूप प्राप्त था। **दुह्रामश्विभ्यां पयोऽघ्न्येयम्** (ऋ० १।१६४।२७) 'दुग्धाम्' यह रूप प्राप्त था। **दक्षिणतः पुमान् स्त्रियमुपशये** (कां०सं० २०।६) 'शेते' यह रूप प्राप्त था।*

सिद्धि-(१) अदुह्र। *दुह्+लङ्। अट्+दुह्+ल्। अ+दुह्+झ। अ+दुह्+शप्+झ। अ+दुह्+०अत। अ+दुह्+रुट्+अत। अ+दुह्रुअ+०अ। अ+दुह्+र्+अ। अदुह्र।*

*यहां 'दुह प्रपूरणे' (अदा०उ०) धातु से **'अनद्यतने लङ्'** (३।२।१११) से 'लङ्' प्रत्यय है। **'आत्मनेपदेष्वनतः'** (७।१।५) से 'झ' के स्थान में 'अत' आदेश और **'बहुलं छन्दसि'** (७।१।८) से इसे रुट् आगम होता है। इस सूत्र से 'अत' के 'त्' का लोप होता है। **'अतो गुणे'** से पररूप एकादेश (अ+अ=अ) होता है।*

*(२) **दुह्राम्।** दुह्+लोट्। दुह्+ल्। दुह्+झ। दुह्+शप्+झ। दुह्+०+अत। दुह्+रुट्+अते। दुह्+र्+अताम्। दुह्+र्+अ०आम्। दुह्+र्+आम्। दुह्राम्।*

*यहां 'दुह प्रपूरणे' (अदा०प०) धातु से **'लोट् च'** (३।३।१६२) से 'लोट्' प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से बहुवचन में लादेश 'झ', **'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।७२) से 'शप्' का लुक्, **'आत्मनेपदेष्वनतः'** (७।१।५) से 'झ' के स्थान में 'अत्' आदेश, और **'टित आत्मनेपदानां टेरे'** (३।४।७९) से एत्व, **'आमेतः'** (३।४।९०) से एकार को 'आम्' आदेश होता है। **'बहुलं छन्दसि'** (७।१।८) से 'रुट्' आगम है। इस सूत्र से 'अताम्' के 'त्' का लोप होता है। पुनः **'अकः सवर्णे दीर्घः'** (६।१।९९) से दीर्घरूप एकादेश है (अ+आम्=आम्)।*

*(३) **उपशये।** उप+शीङ्+लट्। उप+शी+ल्। उप+शी+शप्+त। उप+शी+०+त। उप+शी+ते। उप+शे+०ए। उप+श् अय्+ए। उपशये।*

*यहां उप-उपसर्गपूर्वक **'शीङ् स्वप्ने'** (अदा०आ०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लादेश 'त' पूर्ववत् 'शप्' का लुक्, **'टित आत्मनेपदानां टेरे'** (३।४।७९) से एत्व और **'शीङः सार्वधातुके गुणः'** (७।४।२१) से 'शीङ्' को गुण होता है। इस सूत्र से 'त' प्रत्यय के 'त्' का लोप होता है। **'एचोऽयवायावः'** (६।१।७७) से 'अय्' आदेश है।*

ध्वात्-आदेशः--

(४२) ध्वमो ध्वात्।४२।

प०वि०-ध्वमः ६।१ ध्वात् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि अङ्गाद् ध्वमः प्रत्ययस्य ध्वात्।

अर्थः-छन्दसि विषयेऽङ्गाद् उत्तरस्य ध्वमः प्रत्ययस्य स्थाने ध्वादादेशो भवति।

उदा०-अन्तरेवोष्माणं वारयध्वात् (का०सं० १६।२१)। 'वारयध्वम्' इति प्राप्ते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अङ्गात्) अङ्ग से परे (ध्वमः) ध्वम् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (ध्वात्) ध्वात् आदेश होता है।*

*उदा०-**अन्तरेवोष्माणं वारयध्वात्** (का०सं० १६।२१)। वारयध्वात्=तुम निवारण करो। 'वारयध्वम्' यह रूप प्राप्त था।*

सिद्धि-वारयध्वात्। *वारि+लोट्। वारि+ल्। वारि+ध्वम्। वारि+शप्+ध्वम्। वारे+अ+ध्वात्। वार् अय्+अ+ध्वात्। वारयध्वात्।*

*यहां **'वृञ् वरणे'** (चु०उ०) इस णिजन्त='वारि' धातु से **'लोट् च'** (३।३।१६२) से 'लोट्' प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'ध्वम्' आदेश है। इस सूत्र से 'ध्वम्' के स्थान में 'ध्वात्' आदेश होता है।*

निपातनम्--

(४३) यजध्वैनमिति च।४३।

प०वि०-यजध्व क्रियापदम्, एनम् २।१ इति अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, छन्दसि, ध्वम इति चानुवर्तते। **'लोपस्त आत्मनेपदेषु'** (७।१।४१) इत्यस्माच्च लोप इत्यनुवर्तनीयम्।

अन्वयः-छन्दसि यजध्वम् इत्यङ्गस्य एनमिति च (म-लोपः)।

अर्थः-छन्दसि विषये यजध्वम् इत्यस्य अङ्गस्य एनम् इति शब्दे च परतो मकारलोपो निपात्यते।

उदा०-यजध्वैनं प्रियमेधाः (ऋ० ८।२।३७)। यजध्वमेनमिति प्राप्ते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (यजध्व) यजध्वम् इस (अङ्गस्य) अङ्ग का (एनम्) एनम् (इति) यह शब्द से परे होने पर (च) भी {म-लोपः} मकार-लोप निपातित है।*

*उदा०-**यजध्वैनं प्रियमेधाः** (ऋ० ८।२।३७)। 'यजध्वम्' यह रूप प्राप्त था। यजध्व=तुम सब यज्ञ=पूजा करो।*

*सिद्धि-**यजध्व+एनम्।** यज्+लोट्। यज्+ल्। यज्+शप्+ध्वम्। यज्+अ+ध्वम्। यज्+अ+ध्व०। यजध्व।*

*यहां '**यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु**' (भ्वा०उ०) धातु से 'लोट् च' (३।३।१६२) से 'लोट्' प्रत्यय है। '**तिप्तस्झि०**' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'ध्वम्' 'ध्वम्' आदेश है। इस सूत्र से 'एनम्' शब्द परे होने पर 'ध्वम्' के मकार का लोप निपातित है।*

***विशेषः** काशिकावृत्ति में '**यजध्यैनम्**' यह पाठ माना है। पदमञ्जरी के अनुसार '**यजध्वैनम्**' पाठ ठीक है-**बह्वृचास्तु वकारमेवाधीयते** (पदमञ्जरी)। पं० भट्टोजिदीक्षित के अनुसार '**यजध्यैनम्**' पाठ प्रामादिक है। 'ध्वम्' के प्रकरण तथा गुरुवर पं० विश्वप्रिय शास्त्री के अनुसार '**यजध्वैनम्**' पाठ संगत है।*

तात्-आदेशः-

(४४) तस्य तात्।४४।

प०वि०-तस्य ६।१ तात् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि अङ्गात् तस्य प्रत्ययस्य तात्।

अर्थः-छन्दसि विषयेऽङ्गाद् उत्तरस्य तस्य प्रत्ययस्य स्थाने तादादेशो भवति।

उदा०-गात्रं गात्रमस्यानूनं कृणुतात् (मै०सं० ४।१३।४)। 'कृणुत' इति प्राप्ते। ऊवध्य गोहं पार्थिवं खनतात् (मै०सं० ४।१३।४)। 'खनत' इति प्राप्ते। अस्ना रक्षः संसृजतात् (मै०सं० ४।१३।४) 'संसृजत' इति प्राप्ते। सूर्यं चक्षुर्गमयतात् (मै०सं० ४।१३।४)। 'गमयत' इति प्राप्ते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अङ्गात्) अङ्ग से परे (तस्य) त (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (तात्) तात् आदेश होता है।*

उदा०-गात्रं गात्रमस्यानूनं कृणुतात् (मै०सं० ४।१३।४)। 'कृणुत' यह रूप प्राप्त था। ऊवध्य गोहं पार्थिवं खनतात् (मै०सं० ४।१३।४)। 'खनत' यह रूप प्राप्त था। अस्ना रक्षः संसृजतात् (मै०सं० ४।१३।४) 'संसृजत' इति प्राप्ते। सूर्यं चक्षुर्गमयतात् (मै०सं० ४।१३।४)। 'गमयत' यह रूप प्राप्त था।

कृणुतात्। तुम सब करो। खनतात्। तुम सब खोदो। संसृजतात्। तुम सब बनाओ। गमयतात्। तुम सब भेजो।

सिद्धि-(१) कृणुतात्। कृवि+लोट्। कृव्+ल्। कृनुम्व्+ल्। कृन्व्+ल्। कृण्व्+ल्। कृण्व्+त। कृण्व्+उ+त। कृण् अ+उ+त। कृण्०+उ+तात्। कृणुतात्।

यहां 'कृवि हिंसाकरणयोश्च' (भ्वा०प०) धातु से 'लोट् च' (३।३।१६२) से 'लोट्' प्रत्यय है। 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'त' आदेश है। 'इदितो नुम् धातोः' (७।१।५८) से 'नुम्' आगम और 'ऋवर्णाच्चेति वक्तव्यम्' (८।४।१) से णत्व होता है। 'धिन्विकृण्व्योर च' (३।१।८०) से 'उ' विकरण-प्रत्यय और अकार अन्तादेश तथा 'अतो लोपः' (६।४।४८) से इस अकार का लोप होता है। इस सूत्र से 'त' प्रत्यय के स्थान में 'तात्' आदेश होता है।

(२) खनतात्। 'खनु अवदारणे' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।

(३) संसृजतात्। सम्-उपसर्गपूर्वक 'सृज विसर्गे' (तु०प०) धातु से पूर्ववत्।

(४) गमयतात्। 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) इस णिजन्त 'गमि' धातु से पूर्ववत्।

तबादय आदेशाः-

(४५) तप्तनप्तनथनाश्च।४५।

प०वि०-तप्-तनप्-तन-थनाः १।३ च अव्ययपदम्।

स०-तप् च तनप् च तनश्च थनश्च ते-तप्तनप्तनथनाः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, छन्दसि, तस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि अङ्गात् तस्य प्रत्ययस्य तप्तनप्तनथनाश्च।

अर्थः-छन्दसि विषयेऽङ्गाद् उत्तरस्य तस्य प्रत्ययस्य स्थाने तप्तनप्तनथनाश्चाऽऽदेशा भवन्ति।

उदा०-(तप्) शृणोत ग्रावाणः (तै०सं० १।३।१३।१)। 'शृणुत' इति प्राप्ते। सुनोत (ऋ० ७।३२।८)। 'सुनुत' इति प्राप्ते। **(तनप्)**

सं वरत्रा दधातन (ऋ० १०।१०१।५)। 'धत्त' इति प्राप्ते। **(तनः)** जुजुष्टन (ऋ० ४।३६।७)। 'जुषत' इति प्राप्ते। **(थनः)** यदिष्ठन। 'यद् इच्छत' इति प्राप्ते।

आर्यभाषाः अर्थ- *(छन्दसि) वेदविषय में (अङ्गात्) अङ्ग से परे (तस्य) त (प्रत्ययस्य) प्रत्यय के स्थान में (तप्तनप्तनथनाः) तप्, तनप्, तन, थन ये आदेश (च) भी होते हैं।*

*उदा०-(तप्) शृणोत ग्रावाणः (तै०सं० १।३।१३।१)। 'शृणुत' यह रूप प्राप्त था। **सुनोत** (ऋ० ७।३२।८)। 'सुनुत' यह रूप प्राप्त था। **(तनप्) सं वरत्रा दधातन** (ऋ० १०।१०१।५)। 'धत्त' यह रूप प्राप्त था। **(तन) जुजुष्टन** (ऋ० ४।३६।७)। 'जुषत' यह रूप प्राप्त था। **(थन) यदिष्ठन।** 'यद् इच्छत' यह रूप प्राप्त था।*

सिद्धि-(१) शृणोत। *श्रु+लोट्। श्रु+ल्। श्रु+श्नु+त। शृ+नु+तप्। शृ+णु+त। शृणुत।*

*यहां **'श्रु श्रवणे'** (स्वा०प०) धातु से **'लोट् च'** (३।१।१६२) से 'लोट्' प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'त' आदेश है। **'श्रुवः शृ च'** (३।१।७४) से 'श्नु' विकरण-प्रत्यय और 'श्रु' के स्थान में 'शृ' आदेश है। इस सूत्र से 'त' प्रत्यय के स्थान में 'तप्' आदेश होता है। इस आदेश के 'पित्' होने से यह **'सार्वधातुकमपित्'** (२।२।४) से ङित् नहीं होता है। अतः **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से अङ्ग को गुण होता है।*

*(२) **सुनोत।** **'षुञ् अभिषवे'** (स्वा०उ०) धातु से पूर्ववत्।*

*(३) **दधातन।** **'डुधाञ् धारणपोषणयोः'** (जु०उ०) धातु से 'त' प्रत्यय के स्थान में 'तनप्' आदेश है। यहां 'तनप्' प्रत्यय के 'पित्' होने से यह पूर्ववत् ङित् नहीं है अतः **'श्नाभ्यस्तयोरातः'** (६।४।११२) से प्राप्त अङ्ग के आकार का लोप नहीं होता है।*

*(४) **जुजुष्टन।** यहां **'जुषी प्रीतिसेवनयोः'** (तु०आ०) धातु से 'त' प्रत्यय के स्थान में 'तन' आदेश है। **'तुदादिभ्यः शः'** (३।१।७७) से 'श' विकरण-प्रत्यय और 'श' को छान्दस 'श्लु' आदेश और **'श्लौ'** (६।१।१०) से धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से 'त' प्रत्यय के स्थान में 'तन' आदेश है। **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकार होता है।*

*(५) **इष्ठन।** यहां **'इषु इच्छायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से 'त' प्रत्यय के स्थान में 'थन' आदेश है। 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४१) से थकार को टवर्ग ठकार होता है।*

।। इति प्रत्ययाऽऽदेशप्रकरणम् ।।

आगमप्रकरणम्

इदन्तत्वम्–

(१) इदन्तो मसि।४६।

प०वि०–इदन्तः ५।१ मसि १।१ (सु-लुक्)।

स०–इद् अन्तो यस्य स इदन्तः (बहुव्रीहिः)। अन्तशब्दोऽत्रावयववचनः।

अनु०–अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि अङ्गाद् मसिः प्रत्यय इदन्तः।

अर्थः–छन्दसि विषयेऽङ्गाद् उत्तरो मसिरिति प्रत्यय इकारान्तो भवति। मसिरित्यत्र इकार उच्चारणार्थः।

उदा०–पुनस्त्वोद्दीपयामसि (शौ०सं० १२।२।५)। उद्दीपयाम इति प्राप्ते। शलभान् भञ्जयामसि (पै०सं० ५।२०।४)। भञ्जयाम इति प्राप्ते। त्वयि रात्रिं वसामसि (शौ०सं० १९।४७।९) वसाम इति प्राप्ते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अङ्गात्) अङ्ग से परे (मसिः) मस् यह (प्रत्ययः) प्रत्यय (इदन्तः) इकारान्त होता है, अर्थात् इस प्रत्यय के अन्त में इकार आगम होता है।*

*उदा०–**पुनस्त्वोद्दीपयामसि** (शौ०सं० १२।२।५)। 'उद्दीपयामः' यह रूप प्राप्त था। **शलभान् भञ्जयामसि** (पै०सं० ५।२०।४)। 'भञ्जयामः' यह रूप प्राप्त था। **त्वयि रात्रिं वसामसि** (शौ०सं० १९।४७।९) 'वसामः' यह रूप प्राप्त था।*

*सिद्धि-(१) **उद्दीपयामसि।** उत्+दीपि+लट्। उत्+दीपि+ल्। उत्+दीपि+शप्+मस्। उत्+दीपे+अ+मसि। उत्+दीपे+अ+मसि। उद्दीपयामसि।*

*यहां उत्-उपसर्गपूर्वक **'दीपी दीप्तौ'** (दि०आ०) इस णिजन्त धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'मस्' आदेश है। इस सूत्र से छन्दविषय में यह 'मस्' प्रत्यय इकारान्त होता है अर्थात् इसके अन्त में इकार आगम होता है।*

*(२) **भञ्जयामसि।** **'भञ्जो आमर्दने'** (रुधा०प०) इस णिजन्त 'भञ्जि' धातु से पूर्ववत्।*

*(३) **वसामसि।** **'वस निवासे'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

यक्-आगमः–

(२) क्त्वो यक्।४७।

प०वि०–क्त्वः ६।१। यक् १।१।

अनु०–अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि अङ्गात् क्त्वः प्रत्ययस्य यक्।

अर्थः–छन्दसि विषयेऽङ्गाद् उत्तरस्य क्त्वः प्रत्ययस्य यगागमो भवति।

उदा०–दत्त्वाय सविता धियः (द्र०ऋ० १०।८५।३३)। 'दत्त्वा' इति प्राप्ते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अङ्गात्) अङ्ग से परे (क्त्वा) क्त्वा प्रत्यय को (यक्) यक् आगम होता है।*

*उदा०-**दत्त्वाय सविता धियः** (द्र०ऋ० १०।८५।३३)। 'दत्त्वा' यह रूप प्राप्त था। दत्त्वाय=देकर।*

सिद्धि-दत्त्वाय। *दा+क्त्वा। दद्+त्वा+यक्। दद्+त्वा+य। दत्त्वाय+सु। दत्त्वाय+०। दत्त्वाय।*

*यहां 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से **'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले'** (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'क्त्वा' प्रत्यय को 'यक्' आगम होता है। **'दो दद् घोः'** (७।४।४६) से 'दा' के स्थान में 'दद्' आदेश होता है।*

निपातनम्–

(३) इष्ट्वीनमिति च।४८।

प०वि०–इष्ट्वीनम् अव्ययपदम्, इति अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्।

अनु०–अङ्गस्य, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि इष्ट्वीनमिति च।

अर्थः–छन्दसि विषये इष्ट्वीनमिति शब्दश्च निपात्यते। यजेरङ्गाद् उत्तरस्य क्त्वाप्रत्ययस्यान्ते ईनमादेशो भवतीत्यर्थः।

उदा०–इष्ट्वीनं देवान्। इष्ट्वा देवान् इति प्राप्ते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (इष्ट्वीनम्) इष्ट्वीनम् यह शब्द (च) भी निपातित है, अर्थात्-यज् अङ्ग से परे क्त्वा-प्रत्यय के अन्त में ईनम् आदेश होता है।*

उदा०-इष्ट्वीनं देवान्। 'इष्ट्वा देवान्' यह प्रयोग प्राप्त था। इष्ट्वीनम्=पूजा करके।

***सिद्धि-इष्ट्वीनम्।** यज्+क्त्वा। यज्+त्वा। इ अज्+त्वा। इज्+त्वा। इष्+त्वा। इष्+ट्व् ईनम्। इष्ट्वीनम्+सु। इष्ट्वीनम्+० । इष्ट्वीनम्।*

*यहां **'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु'** (भ्वा०उ०) धातु से **'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले'** (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। इस सूत्र से छन्दविषय में 'क्त्वा' प्रत्यय को ईनम्-आदेश निपातित है। **'वचिस्वपियजादीनां किति'** (६।१।१५) से 'यज्' को सम्प्रसारण (इ) और **'सम्प्रसारणाच्च'** (६।१।१०६) से अकार को पूर्वरूप एकादेश (इ) होता है। **'व्रश्चभ्रस्ज०'** (८।२।३६) से जकार को षत्व और **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकार होता है।*

निपातनम्-

(४) स्नात्व्यादयश्च।४६।

प०वि०-स्नात्वी-आदयः १।३ च अव्ययपदम्।

स०-स्नात्वी आदिर्येषां ते स्नात्व्यादयः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि स्नात्व्यादयश्च निपातनम्।

अर्थः-छन्दसि विषये स्नात्व्यादयश्च शब्दा निपात्यन्ते। स्ना-अङ्गाद् उत्तरस्य क्त्वा-प्रत्ययस्य ईकारादेशो भवतीत्यर्थः।

उदा०-स्नात्वी मलादिव (मै०सं० ३।११।१०)। स्नात्वा इति प्राप्ते। पीत्वी सोमस्य वावृधे (ऋ० ३।४०।७)। पीत्वा इति प्राप्ते।

'स्नात्व्यादयः' इत्यत्रादिशब्दः प्रकारवचनः। न हि स्नात्व्यादयः शब्दा गणे पठ्यन्ते। एवम्प्रकारा ये शब्दास्ते स्नात्व्यादयो वेदितव्याः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (स्नात्व्यादयः) स्नात्वी-आदि शब्द (च) भी निपातित हैं। अर्थात्-स्ना-अङ्ग से परे क्त्वा प्रत्यय को ईकार आदेश होता है।*

*उदा०-**स्नात्वी मलादिव** (मै०सं० ३।११।१०)। 'स्नात्वा' यह रूप प्राप्त था। **पीत्वी सोमस्य वावृधे** (ऋ० ३।४०।७)। 'पीत्वा' यह रूप प्राप्त था। स्नात्वी=स्नान करके। पीत्वी=पान करके।*

'स्नात्व्यादयः' यहां आदि शब्द प्रकारवाची है, क्योंकि 'स्नात्व्यादि' शब्द गणरूप में पठित नहीं हैं। इस प्रकार के सब शब्द स्नात्वी आदि समझने चाहियें।

सिद्धि-स्नात्वी। स्ना+क्त्वा। स्ना+त्वा। स्ना+त्वी। स्नात्वी+सु। स्नात्वी+०। स्नात्वी।

*यहां **'ष्णा शौचे'** (अदा०अ०) धातु से **'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले'** (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। इस सूत्र से छन्दविषय में क्त्वा-प्रत्यय के अन्त में ईकार आदेश होता है। ऐसे ही **'पा पाने'** (भ्वा०प०) धातु से-**पीत्वी।***

असुक्-आगमः-

(५) आज्जसेरसुक्।५०।

प०वि०-आत् ५।१ जसेः ६।१ असुक् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि आद् अङ्गाज्जसेः प्रत्ययस्याऽसुक्।

अर्थः-छन्दसि विषयेऽकारान्ताद् अङ्गाद् उत्तरस्य जसेः प्रत्ययस्याऽसुगागमो भवति।

उदा०-ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः (ऋ० ६।७५।१०)। ब्राह्मणाः, सोम्या इति प्राप्ते। ये पूर्वासो ये उपरासः (ऋ० १०।१५।२)। पूर्वे, परे इति प्राप्ते। स जनास इन्द्रः (ऋ० २।१२।१) जना इति प्राप्ते।

आर्यभाषाः अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (आत्) अकारान्त (अङ्गात्) अङ्ग से परवर्ती (जसेः) जस् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय को (असुक्) असुक् आगम होता है।

*उदा०-**ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः** (ऋ० ६।७५।१०)। 'ब्राह्मणाः, सोम्याः' यह रूप प्राप्त था। **ये पूर्वासो ये उपरासः** (ऋ० १०।१५।२)। पूर्वे, परे यह रूप प्राप्त था। **स जनास इन्द्रः** (ऋ० २।१२।१) 'जनाः' यह रूप प्राप्त था।*

*सिद्धि-(१) **ब्राह्मणासः।** ब्राह्मण+जस्। ब्राह्मण+अस्। ब्राह्मण+असुक्+अस्। ब्राह्मण+अस्+अस्। ब्राह्मणासस्। ब्राह्मणासः।*

*यहां 'ब्राह्मण' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'जस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से छन्दविषय में 'जस्' को 'असुक्' आगम होता है। ऐसे ही-**जनासः।***

*(२) **पूर्वासः।** यहां 'पूर्व' शब्द से पूर्ववत् 'जस्' प्रत्यय और इसे 'असुक्' आगम होता है। यहां परत्व से 'जस्' को असुक् आगम होता है, **'जसः शी'** (७।१।१७) से 'जस्' के स्थान में 'शी' आदेश नहीं होता है। **'पुनः प्रसङ्गविज्ञानात् सिद्धम्'** इस परिभाषा से 'जस्' को पुनः शी-आदेश प्राप्त होता है किन्तु **'सकृद्गतौ विप्रतिषेधे यद् बाधितं तद् बाधितमेव'** इस परिभाषा के आश्रय से पुनः शी-आदेश नहीं होता है।*

असुक्-आगमः–

(६) अश्वक्षीरवृषलवणानामात्मप्रीतौ क्यचि।५१।

प०वि०–अश्व-क्षीर-वृष-लवणानाम् ६।३ आत्मप्रीतौ ७।१ क्यचि ७।१।

स०–अश्वश्च क्षीरं च वृषश्च लवणं च तानि–अश्वक्षीरवृषलवणानि, तेषाम्–आश्वक्षीरवृषलवणानाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। आत्मनः प्रीतिरिति आत्मप्रीतिः, तस्याम्–आत्मप्रीतौ (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, आत् असुगिति चानुवर्तते। छन्दसि इति च निवृत्तम्।

अन्वयः–आत्मप्रीतौ आनाम् अश्वक्षीरवृषलवणानाम् अङ्गानां क्यचि प्रत्ययेऽसुक्।

अर्थः–आत्मप्रीतिविषयेऽकारान्तानाम् अश्वक्षीरवृषलवणानाम् अङ्गानां क्यचि प्रत्यये परतोऽसुगागमो भवति।

उदा०- **(अश्वः)** अश्वस्यति वडवा। **(क्षीरम्)** क्षीरस्यति माणवकः। **(वृषः)** वृषस्यति गौः। **(लवणम्)** लवणस्यति उष्ट्रः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(आत्मप्रीतौ) आत्मिक प्रीति विषय में (आनाम्) अकारान्त (अश्वक्षीरवृषलवणानाम्) अश्व, क्षीर, वृष, लवण इन (अङ्गानाम्) अङ्गों को (क्यचि) क्यच् (प्रत्यये) प्रत्यय परे होने पर (असुक्) आगम होता है।*

उदा०-(अश्व) ***अश्वस्यति वडवा।*** *घोड़ी अश्व से मैथुन करना चाहती है।* ***(क्षीर) क्षीरस्यति माणवकः।*** *बालक दूध पीना चाहता है।* ***(वृष) वृषस्यति गौः।*** *गाय सांड से मैथुन करना चाहती है।* ***(लवण) लवणस्यति उष्ट्रः।*** *ऊंट नमक की लालसा करता है।*

सिद्धि-(१) अश्वस्यति। *अश्व+क्यच्। अश्व+य। अश्व+असुक्+य। अश्व+अस्+य। अश्वस्य।। अश्वस्य+लट्। अश्वस्य+शप्+तिप्। अश्वस्य+अ+ति। अश्वस्यति।*

यहां प्रथम 'अश्व' शब्द से ***'सुप आत्मनः क्यच्'*** *(३।१।८) से 'क्यच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से आत्म-प्रीति विषय में 'क्यच्' प्रत्यय परे होने पर 'अश्व' को 'असुक्' आगम होता है।* ***'अतो गुणे'*** *(६।१।९६) से पररूप एकादेश (अ+अ=अ) है। तत्पश्चात् 'अश्वस्य' शब्द की* ***'सनाद्यन्ता धातवः'*** *(३।१।३२) से धातु संज्ञा होकर* ***'वर्तमाने लट्'*** *(३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। यहां मैथुनेच्छा अर्थ में असुक्-आगम होता है।*

*(२) **क्षीरस्यति।** यहां 'क्षीर' शब्द को लालसा-अर्थ में असुक्-आगम होता है।*

*(३) **वृषस्यति।** यहां 'वृष' शब्द को मैथुन-इच्छा अर्थ में असुक्-आगम होता है।*

*(४) **लवणस्यति।** यहां 'लवण' शब्द को लालसा-अर्थ में असुक्-आगम होता है।*

सुट्-आगमः–

(७) आमि सर्वनाम्नः सुट्।५२।

प०वि०-आमि ७।१ सर्वनाम्नः ५।१ सुट् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, आद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-आत् सर्वनाम्नोऽङ्गाद् प्रत्ययस्य सुट्।

अर्थः-अकारान्तात् सर्वनाम्नोऽङ्गाद् उत्तरस्य आमः प्रत्ययस्य सुडागमो भवति।

उदा०-सर्वेषाम्। विश्वेषाम्। येषाम्। तेषाम्। सर्वासाम्। यासाम्। तासाम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(आत्) अकारान्त (सर्वनाम्नः) सर्वनामसंज्ञक (अङ्गात्) अङ्ग से परे (आमः) आम् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय को (सुट्) सुट् आगम होता है।*

*उदा०-**सर्वेषाम्।** सब पुरुषों का। **विश्वेषाम्।** सब पुरुषों का। **येषाम्।** जिन पुरुषों का। **तेषाम्।** उन पुरुषों का। **सर्वासाम्।** सब स्त्रियों का। **यासाम्।** जिन स्त्रियों का। **तासाम्।** उन स्त्रियों का।*

*सिद्धि-(१) **सर्वेषाम्।** सर्व+आम्। सर्व+सुट्+आम्। सर्व+सु+आम्। सर्वे+ष्+आम्। सर्वेषाम्।*

*यहां अकारान्त सर्वनाम-संज्ञक 'सर्व' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'आम्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'आम्' प्रत्यय को 'सुट्' आगम होता है। **'बहुवचने झल्येत्'** (७।३।१०३) से एकार-आदेश और **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) से षत्व होता है। ऐसे ही 'विश्व' शब्द से-**विश्वेषाम्।***

*(२) **येषाम्।** यहां सर्वनाम-संज्ञक 'यत्' शब्द से पूर्ववत् 'आम्' प्रत्यय है। **'त्यदादीनामः'** (७।२।१०२) से 'यत्' को अकार अन्तादेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'तत्' शब्द से-**तेषाम्।***

*(३) **सर्वासाम्।** यहां प्रथम सर्वनाम-संज्ञक 'सर्व' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् 'सर्वा' शब्द से पूर्ववत्।*

*(४) **यासाम्।** यहां प्रथम सर्वनाम-संज्ञक 'यत्' प्रत्यय से स्त्रीलिङ्ग शब्द में पूर्ववत् 'टाप्' प्रत्यय है। यत्+टाप्। यत्+आ। य अ+आ=या। **'त्यदादीनामः'** (७।२।१०२) से 'यत्' को अकार अन्तादेश होता है। तत्पश्चात् 'या' शब्द से पूर्ववत्। ऐसे ही 'तत्' शब्द से-**तासाम्।***

*यहां **'ह्रस्वनद्यापो नुट्'** (७।१।५४) से 'नुट्' आगम प्राप्त था। यह सूत्र उसका पुरस्ताद् अपवाद है।*

त्रय-आदेशः–

(८) त्रेस्त्रयः।५३।

प०वि०-त्रेः ६।१ त्रयः १।१।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, आमि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-त्रेरङ्गस्य आमि प्रत्यये त्रयः।

अर्थः-त्रेरङ्गस्य आमि प्रत्यये परतस्त्रय आदेशो भवति।

उदा०-त्रयाणां लोकानाम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(त्रेः) त्रि इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (आमि) आम् (प्रत्यये) प्रत्यय परे होने पर (त्रयः) त्रय-आदेश होता है।*

*उदा०-**त्रयाणां लोकानाम्।** तीन लोकों का।*

*सिद्धि-**त्रयाणाम्।** त्रि+आम्। त्रय+आम्। त्रय+नुट्+आम्। त्रय+न्+आम्। त्रया+ण्+आम्। त्रयाणाम्।*

*यहां 'त्रि' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'आम्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'आम्' प्रत्यय परे होने पर 'त्रि' के स्थान में 'त्रय' आदेश होता है। **'ह्रस्वनद्यापो नुट्'** (७।१।५४) से 'नुट्' आगम, **'सुपि च'** (७।३।१०२) से दीर्घ और **'अट्कुप्वाङ्०'** (८।४।२) से णत्व होता है।*

नुट्-आगमः–

(९) ह्रस्वनद्यापो नुट्।५४।

प०वि०-ह्रस्व-नदी-आपः ५।१ नुट् १।१।

स०-ह्रस्वश्च नदी च आप् च एतेषां समाहारो ह्रस्वनद्याप्, तस्मात्-ह्रस्वनद्यापः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, आमि इति चानुवर्तते।

अन्वय:-ह्रस्वनद्यापोऽङ्गाद् आम: प्रत्ययस्य नुट्।

अर्थ:-ह्रस्वान्ताद् नद्यन्ताद् आबन्ताच्च अङ्गाद् उत्तरस्य आम: प्रत्ययस्य नुडागमो भवति।

उदा०-ह्रस्वान्तात्-वृक्षाणाम्। प्लक्षाणाम्। अग्नीनाम्। वायूनाम्। कर्तॄणाम्। **नद्यन्तात्**-कुमारीणाम्। किशोरीणाम्। गौरीणाम्। शार्ङ्गवीराणाम्। लक्ष्मीणाम्। ब्रह्मबन्धूनाम्। वीरबन्धूनाम्। **आबन्तात्**-खट्वानाम्। मालानाम्। बहुराजानाम्। कारीषगन्ध्यानाम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(ह्रस्वनद्याप:) ह्रस्वान्त, नदी-अन्त और आबन्त (अङ्गात्) अङ्ग से परे (आम:) आम् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय को (नुट्) नुट् आगम होता है।*

*उदा०-**ह्रस्वान्त-वृक्षाणाम्।** वृक्षों का। **प्लक्षाणाम्।** पिलखणों का। **अग्नीनाम्।** अग्नि देवताओं का। **वायूनाम्।** वायु देवताओं का। **कर्तॄणाम्।** कर्ता पुरुषों का। **नद्यन्त-कुमारीणाम्।** कुमारियों का। **किशोरीणाम्।** किशोरियों का। **गौरीणाम्।** गौरियों का। **शार्ङ्गवीराणाम्।** शार्ङ्गरवियों का। **लक्ष्मीणाम्।** लक्ष्मियों का। **ब्रह्मबन्धूनाम्।** पतिता ब्राह्मणियों का। **वीरबन्धूनाम्।** पतित क्षत्रियाओं का। **आबन्त-खट्वानाम्।** सब खाटों का। **मालानाम्।** सब मालाओं का। **बहुराजानाम्।** बहुत राजाओंवाली स्त्रियों का। **कारीषगन्ध्यानाम्।** कारीषगन्ध्याओं का।*

*सिद्धि-(१) **वृक्षाणाम्।** वृक्ष+आम्। वृक्ष+नुट्+आम्। वृक्ष+न्+आम्। वृक्षा+ण्+आम्। वृक्षाणाम्।*

*यहां ह्रस्वान्त 'वृक्ष' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'आम्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस ह्रस्वान्त 'वृक्ष' शब्द से परे 'आम्' प्रत्यय को 'नुट्' आगम होता है। '**सुपि च**' (७।३।१०२) से दीर्घ और '**अट्कुप्वाङ्०**' (८।४।२) से णत्व होता है। ऐसे ही-**प्लक्षाणाम्** आदि।*

*(२) **कुमारीणाम्।** यहां प्रथम 'कुमार' शब्द से '**वयसि प्रथमे**' (४।१।२०) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय होता है। '**यू स्त्र्याख्यौ नदी**' (१।४।३) से 'कुमारी' शब्द की नदी-संज्ञा है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**किशोरीणाम्।***

*(३) **गौरीणाम्।** यहां प्रथम 'गौर' शब्द से '**षिद्गौरादिभ्यश्च**' (४।१।४१) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीष्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **शार्ङ्गरवीणाम्।** यहां प्रथम 'शार्ङ्गरव' शब्द से '**शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्**' (४।१।७३) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(५) **लक्ष्मीणाम्।** यहां प्रथम '**लक्ष दर्शनाङ्कनयो:**' (चु०उ०) धातु से '**लक्षेर्मुट् च**' (उणा० ३।१६०) से 'ई' प्रत्यय और इसे 'मुट्' आगम होता है। 'लक्ष्मी' शब्द की पूर्ववत् नदी-संज्ञा है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(६) **ब्रह्मबन्धूनाम्।** यहां प्रथम 'ब्रह्मबन्धु' शब्द से 'ऊङुतः' (४।१।६६) से स्त्रीलिङ्ग में 'ऊङ्' प्रत्यय है। 'ब्रह्मबन्धू' शब्द की पूर्ववत् नदी-संज्ञा है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**वीरबन्धूनाम्।***

*(७) **खट्वानाम्।** यहां प्रथम 'खट्व' शब्द से '**अजाद्यतष्टाप्**' (४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**मालानाम्।***

*(८) **बहुराजानाम्।** यहां प्रथम 'बहुराजन्' शब्द से '**डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्**' (४।१।१३) से स्त्रीलिङ्ग में 'डाप्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(९) **कारीषगन्ध्यानाम्।** यहां 'कारीषगन्ध्य' शब्द से '**यङश्चाप्**' (४।१।७४) से स्त्रीलिङ्ग में 'चाप्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

नुट्-आगमः-

(१०) षट्चतुर्भ्यश्च।५५।

प०वि०-षट्चतुर्भ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-षट् च चत्वारश्च ते षट्चत्वारः, तेभ्यः-षट्चतुर्भ्यः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, आमि, नुट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-षट्चतुर्भ्योऽङ्गेभ्यश्च आमः प्रत्ययस्य नुट्।

अर्थः-षट्संज्ञकेभ्योऽङ्गेभ्यश्चतुःशब्दाच्च उत्तरस्याऽऽमः प्रत्ययस्य नुडागमो भवति।

उदा०-(षट्) षण्णाम्। पञ्चानाम्। सप्तानाम्। नवानाम्। दशानाम्। **(चतुर्)** चतुर्णाम्।

*__आर्यभाषाः__ **अर्थ-**(षट्चतुर्भ्यः) षट्-संज्ञक और चतुर् इन (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (आमः) आम् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय को (नुट्) नुट् आगम होता है।*

*उदा०-**(षट्) षण्णाम्।** छहों का। **पञ्चानाम्।** पांचों का। **सप्तानाम्।** सातों का। **नवानाम्।** नौओं का। **दशानाम्।** दशों का। **(चतुर्) चतुर्णाम्।** चारों का।*

*__सिद्धि-(१) षण्णाम्।__ षष्+आम्। षष्+नुट्+आम्। षष्+न्+आम्। षड्+न्+आम्। षण्+ण्+आम्। **षण्णाम्।***

*यहां षट्-संज्ञक 'षष्' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'आम्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'आम्' प्रत्यय को 'नुट्' आगम होता है। '**झलां जशोऽन्ते**' (८।२।३९) से 'षष्' के षकार को 'जश्' डकार आदेश और '**यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा**' (८।४।४४) से*

*ङकार को अनुनासिक णकार तथा **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से नकार को टवर्ग णकार होता है। **'ष्णान्ता षट्'** (१।१।२४) से 'षष्' शब्द की षट्-संज्ञा है।*

*(२) **पञ्चानाम्।** पञ्चन्+आम्। पञ्चन्+नुट्+आम्। पञ्चन्+न्+आम्। पञ्चान्+न्+आम्। पञ्चा०+नाम्। पञ्चानाम्।*

*यहां षट्-संज्ञक 'पञ्चन्' शब्द से पूर्ववत् 'आम्' प्रत्यय है। स सूत्र से 'आम्' प्रत्यय को 'नुट्' आगम होता है। **'नोपधायाः'** (६।४।८) से नकारान्त 'पञ्चन्' अङ्ग को दीर्घ और **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से नकार का लोप होता है। ऐसे ही-**सप्तानाम्** आदि।*

*(३) **चतुर्णाम्।** यहां 'चतुर्' शब्द से पूर्ववत् 'आम्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'आम्' प्रत्यय को 'नुट्' आगम होता है। **'रषाभ्यां नो णः समानपदे'** (८।४।१) से णत्व होता है।*

नुट्-आगमः–

(११) श्रीग्रामण्योश्छन्दसि।५६।

प०वि०-श्री-ग्रामण्योः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) छन्दसि ७।१।

स०-श्रीश्च ग्रामणीश्च तौ श्रीग्रामण्यौ, तयोः-श्रीग्रामण्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य आमि, नुड् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि श्रीग्रामणीभ्याम् अङ्गाभ्याम् आमः प्रत्ययस्य नुट्।

अर्थः-छन्दसि विषये श्रीग्रामणीभ्याम् अङ्गाभ्याम् उत्तरस्याऽऽमः प्रत्ययस्य नुडागमो भवति।

उदा०-**(श्री)** श्रीणामुदारो धरुणो रयीणाम् (ऋ० १०।४५।५)। **(ग्रामणीः)** अपि तत्र सूतग्रामणीनाम् (काठ०सं० २८।३)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (श्रीग्रामण्योः) श्री, ग्रामणी इन (अङ्गाभ्याम्) अङ्गों से परे (आमः) आम् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय को (नुट्) नुट्-आगम होता है।*

*उदा०-(श्री) **श्रीणामुदारो धरुणो रयीणाम्** (ऋ० १०।४५।५)। श्रीणाम्=लक्ष्मियों का। (ग्रामणी) **अपि तत्र सूतग्रामणीनाम्** (काठ०सं० २८।३)। ग्रामणीनाम्=ग्राम के नेताओं का।*

*सिद्धि-(१) **श्रीणाम्।** श्री+आम्। श्री+नुट्+आम्। श्री+न्+आम्। श्री+ण्+आम्। श्रीणाम्।*

*यहां 'श्री' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'आम्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'आम्' प्रत्यय को 'नुट्' आगम होता है। '**अट्कुप्वाङ्०**' (८।४।२) से णत्व होता है। 'श्री' शब्द की '**वाऽमि**' (१।४।५) से विकल्प से नदी संज्ञा है। नदी-संज्ञा के पक्ष में '**ह्रस्वनद्यापो नुट्**' (७।१।५४) से 'नुट्' आगम सिद्ध है किन्तु विकल्प-पक्ष में 'नुट्' आगम प्राप्त नहीं था, अतः छन्दविषय में नित्य 'नुट्' आगम का विधान किया गया है।*

*(२) **ग्रामणीनाम्।** यहां सूत और ग्रामणी शब्दों का इतरेतरयोगद्वन्द्व समास है- **सूताश्च ग्रामण्यश्च ते-सूतग्रामण्यः।** यहां इस इतरेतरयोगद्वन्द्व समास में शब्द ह्रस्वान्त न होने से '**ह्रस्वनद्यापो नुट्**' (७।१।५४) से 'नुट्' आगम प्राप्त नहीं था, अतः छन्दविषय में 'नुट्' आगम का विधान किया गया है।*

नुट्-आगमः-

(१२) गोः पादान्ते।५७।

प०वि०-गोः पादान्ते ७।१।

स०-पादस्य अन्त इति पादान्तः, तस्मिन्-पादान्ते (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्य, आमि, नुट्, छन्दसीति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि पादान्ते गोरङ्गाद् आमः प्रत्ययस्य नुट्।

अर्थः-छन्दसि विषये पादान्ते=ऋक्पादस्यान्ते वर्तमानाद् गोरङ्गाद् उत्तरस्य आमः प्रत्ययस्य नुडागमो भवति।

उदा०-विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनाम् (ऋ० १०।४७।१)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (पादान्ते) ऋचा के पाद {चरण} के अन्त में विद्यमान (गोः) गो इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (आमः) आम् (प्रत्ययस्य) प्रत्यय को (नुट्) नुट्-आगम होता है।*

*उदा०-**विद्मा हि त्वा गोपतिं** शूर **गोनाम्** (ऋ० १०।४७।१)। गोनाम्= गौओं का।*

*सिद्धि-**गोनाम्।** गो+आम्। गो+नुट्+आम्। गो+न्+आम्। गोनाम्।*

*यहां 'गो' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'आम्' प्रत्यय है। इस सूत्र से छन्द-विषय में तथा ऋचा के पाद {चरण} के अन्त में विद्यमान इस 'गो' शब्द से परे 'आम्' प्रत्यय को 'नुट्' आगम होता है। यहां छन्दोऽधिकार में ऋचा (मन्त्र) का पादान्त ग्रहण किया जाता है, श्लोक का नहीं। पादान्त से अन्यत्र-**गवाम्।***

नुम्-आगमः–

(१३) इदितो नुम् धातोः ।५८।

प०वि०–इदितः ६ ।१ नुम् १ ।१ धातोः ६ ।१ ।

स०–इद् इद् यस्य सः-इदित्, तस्य-इदितः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–अङ्गस्य इत्यनुवर्तते। प्रत्ययस्य इति च निवृत्तम्।

अन्वयः–इदितो धातोरङ्गस्य नुम्।

अर्थः–इदितो धातोरङ्गस्य नुमागमो भवति।

उदा०–**(कुण्डि)** कुण्डिता। कुण्डितम्। कुण्डितव्यम्। कुण्डा। **(हुडि)** हुण्डिता। हुण्डितुम्। हुण्डितव्यम्। हुण्डा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इदितः) इकार जिसका इत् है, उस (धातोः) धातु-रूप (अङ्गस्य) अङ्ग को (नुम्) नुम्-आगम होता है।*

उदा०-(कुडि) ***कुण्डिता।*** *दाह करनेवाला।* ***कुण्डितम्।*** *दाह करने के लिये।* ***कुण्डितव्यम्।*** *दाह करना चाहिये।* ***कुण्डा।*** *दाह करना। (हुडि)* ***हुण्डिता।*** *संघात (एकत्र)/वरण करनेवाला।* ***हुण्डितुम्।*** *संघात/वरण करने के लिये।* ***हुण्डितव्यम्।*** *संघात/वरण करना चाहिये।* ***हुण्डा।*** *संघात/वरण (स्वीकार) करना।*

सिद्धि- *(१)* ***कुण्डिता।*** *कुडि+तृच्। कुड्+तृच्। कु नुम् ड्+इट्+तृ। कु न् ड्+इ+तृ। कु ड्+इ+तृ। कुण् ड्+इ+तृ। कुण्डितृ+सु। कुण्डिता।*

यहां 'कुण्डि दाहे' (भ्वा०प०) धातु से ***'ण्वुल्तृचौ'*** *(३।१।१३३) से कर्ता अर्थ में 'तृच्' प्रत्यय है। 'कुडि' धातु के इकार की* ***'उपदेशेऽजनुनासिक इत्'*** *(१।३।२) से इत्-संज्ञा होकर* ***'तस्य लोपः'*** *(३।१।९) से इकार का लोप हो जाता है। अतः इस इदित् धातु को इस सूत्र से 'नुम्' आगम होता है। यह आगम 'मित्' होने से* ***'मिदचोऽन्त्यात् परः'*** *(१।१।४७) से धातु के अन्तिम 'अच्' से उत्तर किया जाता है।* ***'नश्चापदान्तस्य झलि'*** *(८।३।२४) से नकार को अनुस्वार और* ***'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः'*** *(८।४।५८) से अनुस्वार को परसवर्ण णकार होता है। ऐसे ही 'हुडि संघाते वरणे च' (भ्वा०प०) धातु से-**हुण्डिता।***

(२) ***कुण्डितुम्।*** *यहां 'कुडि' धातु से* ***'तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्'*** *(३।३।१०) से 'तुमुन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'हुडि' धातु से-**हुण्डितुम्।***

(३) ***कुण्डितव्यम्।*** *यहां 'कुडि' धातु से* ***'तव्यत्तव्यानीयरः'*** *(३।१।९६) से 'तव्यत्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'हुडि' धातु से-**हुण्डितव्यम्।***

(४) ***कुण्डा।*** *यहां 'कुडि' धातु से* ***'गुरोश्च हलः'*** *(३।३।१०३) से स्त्रीलिङ्ग में 'अङ्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् 'कुण्ड' शब्द से* ***'अजाद्यतष्टाप्'*** *(४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही 'हुडि' धातु से-**हुण्डा।***

नुम्-आगमः--

(१४) शे मुचादीनाम्।५६।

प०वि०-शे ७।१ मुचादीनाम् ६।३।

स०-मुच् आदिर्येषां ते मुचादयः, तेषाम्-मुचादीनाम्।

अनु०-अङ्गस्य, नुम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-मुचादीनाम् अङ्गानां शे नुम्।

अर्थः-मुचादीनाम् अङ्गानां शे परतो नुमागमो भवति।

उदा०-मुच्लृ मोचने-स मुञ्चति। **लुप्लृ छेदने**-स लुम्पति। **विद्लृ लाभे**-स विन्दति। **लिप उपदेहे**-स लिम्पति। **षिच क्षरणे**-स सिञ्चति। **कृती छेदने**-स कृन्तति। **खिद परिघातने**-स खिन्दति। **पिश अवयवे**-स पिंशति। एते मुचादयो धातवस्तुदादिगणे पठ्यन्ते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(मुचादीनाम्) मुच्-आदि (अङ्गानाम्) अङ्गों को (शे) श-प्रत्यय परे होने पर (नुम्) नुम् आगम होता है।*

*उदा०-**स मुञ्चति।** वह छोड़ता है। **स लुम्पति।** वह काटता है। **स विन्दति।** वह प्राप्त करता है। **स लिम्पति।** वह लीपता है। **स सिञ्चति।** वह सींचता है। **स कृन्तति।** वह काटता है। **स खिन्दति।** वह दुःख देता है (सताता है)। **स पिंशति।** वह टुकड़े-टुकड़े करता है।*

ये मुचादि धातु पाणिनीय धातुपाठ के तुदादिगण में पठित हैं।

***सिद्धि-मुञ्चति।** मुच्+लट्। मुच्+ल्। मुच्+तिप्। मुच्+श+ति। मु नुम् च्+अ+ति। मुन् च्+अ+ति। मु ं च्+अ+ति। मुञ्च्+अ+ति। मुञ्चति।*

*यहां **'मुच्लृ मोचने'** (तु०प०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। **'तुदादिभ्यः शः'** (३।१।७७) से 'श' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'श' प्रत्यय के परे होने पर 'मुच्' को 'नुम्' आगम होता है। यह आगम मित् होने से **'मिदचोऽन्त्यात् परः'** (१।१।४७) से 'मुच्' धातु के अन्तिम अच् से परे किया जाता है। **'नश्चापदान्तस्य झलि'** (८।३।२४) से नकार को अनुस्वार और **'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः'** (८।४।५८) से अनुस्वार को परसवर्ण ञकार होता है। ऐसे ही-लुम्पति आदि।*

नुम्-आगमः--

(१५) मस्जिनशोर्झलि।६०।

प०वि०-मस्जि-नशोः ६।२ झलि ७।१।

स०–मस्जिश्च नश् च तौ मस्जिनशौ, तयो:-मस्जिनशो: (इतरेतर-योगद्वन्द्व:)।

अनु०–अङ्गस्य, नुम् इति चानुवर्तते।

अन्वय:–मस्जिनशोरङ्गयोर्झलि नुम्।

अर्थ:–मस्जिनशोरङ्गयोर्झलादौ प्रत्यये परतो नुमागमो भवति।

उदा०–(**मस्जि:**) मङ्क्ता। मङ्क्तुम्। मङ्क्तव्यम्। (नश्) नंष्टा। नंष्टुम्। नंष्टव्यम्।

आर्यभाषा: *अर्थ-(मस्जिनशो:) मस्जि, नश् इन (अङ्गयो) अङ्गों को (झलि) झलादि प्रत्यय परे होने पर (नुम्) नुम् आगम होता है।*

उदा०–(मस्जि) ***मङ्क्ता।*** *शुद्ध करनेवाला।* ***मङ्क्तुम्।*** *शुद्ध करने के लिये।* ***मङ्क्तव्यम्।*** *शुद्ध करना चाहिये। (नश्)* ***नंष्टा।*** *नष्ट करनेवाला।* ***नंष्टुम्।*** *नष्ट करने के लिये।* ***नंष्टव्यम्।*** *नष्ट करना चाहिये।*

सिद्धि-(१) ***मङ्क्ता।*** *मस्ज्+तृच्। मस्ज्+तृ। मस् नुम् ज्+तृ। मसन्ज्+तृ। म०न्ज्+तृ। मन्ज्+तृ। मन्क्+तृ। म ं क्+तृ। मङ्क्+तृ। मङ्क्तृ+सु। मङ्क्ता।*

यहां ***'टुमस्जो शुद्धौ'*** *(तु०प०) धातु से* ***'ण्वुल्तृचौ'*** *(३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से झलादि 'तृच्' प्रत्यय परे होने पर 'मस्ज्' धातु को 'नुम्' आगम होता है। इस आगम के मित् होने से यह* ***'मिदचोऽन्त्यात् पर:'*** *(१।१।४७) के नियम से 'मस्ज्' धातु के अन्तिम अच् से उत्तर होना चाहिये किन्तु वा०–* ***'मस्जेरन्त्यात् पूर्वं नुममिच्छ-न्त्यनुषङ्गसंयोगादिलोपार्थम्'*** *(१।१।४६) से यह 'नुम्' आगम 'मस्ज्' धातु के अन्तिम वर्ण जकार से पूर्व किया जाता है।* ***'स्को: संयोगाद्योरन्ते च'*** *(८।२।२९) से 'मसन्ज्' के सकार का लोप,* ***'चो: कु:'*** *(८।२।३७) से जकार को कवर्ग गकार और* ***'खरि च'*** *(८।४।५४) से गकार को चर् ककार होता है।* ***'नश्चापदान्तस्य झलि'*** *(८।३।२४) से नकार को अनुस्वार और* ***'अनुस्वारस्य ययि परसवर्ण:'*** *(८।४।५७) से अनुस्वार को परसवर्ण ङकार होता है।*

(२) ***मङ्क्तुम्।*** *यहां 'मस्ज्' धातु से* ***'तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्'*** *(३।३।१०) से 'तुमुन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(३) ***मङ्क्तव्यम्।*** *यहां 'मस्ज्' धातु से* ***'तव्यत्तव्यानीयर:'*** *(३।१।९६) से 'तव्यत्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(४) ***नंष्टा।*** *नश्+तृच्। नश्+तृ। न नुम् श्+तृ। न न् श्+तृ। न न् ष्+तृ। न ं ष्+टृ। नंष्टृ+सु। नंष्टा।*

यहां 'णश अदर्शने' (दि०प०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से झलादि 'तृच्' प्रत्यय परे होने पर 'नश्' को 'नुम्' आगम होता है। यह आगम मित् होने से ***'मिदचोऽन्त्यात् परः'*** *(१।१।४६) के नियम से 'नश्' के अन्तिम 'अच्' से उत्तर किया जाता है।* ***'व्रश्चभ्रस्ज०'*** *(८।२।३६) शकार को षकार और* ***'ष्टुना ष्टुः'*** *(८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकार होता है।* ***'नश्चापदान्तस्य झलि'*** *(८।३।२४) से नकार को अनुस्वार होता है।*

(५) ***नंष्टुम्।*** *यहां 'नश्' धातु से पूर्ववत् 'तुमुन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(६) ***नंष्टव्यम्।*** *यहां 'नश्' धातु से पूर्ववत् 'तव्यत्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

नुम्-आगमः--

(१६) रधिजभोरचि।६१।

प०वि०-रधि-जभोः ६।२ अचि ७।१।

स०-रधिश्च जभ् च तौ रधिजभौ, तयोः-रधिजभोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, नुमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-रधिजभोरङ्गयोरचि नुम्।

अर्थः-रधिजभोरङ्गयोरजादौ प्रत्यये परतो नुमागमो भवति।

उदा०-**(रधिः)** स रन्धयति। रन्धकः। साधुरन्धी। रन्धंरन्धम्। रन्धो वर्तते। **(जभ्)** स जम्भयति। जम्भकः। साधुजम्भी। जम्भंजम्भम्। जम्भो वर्तते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(रधिजभोः) रधि, जभ इन (अङ्गयोः) इन अङ्गों को (अचि) अजादि प्रत्यय परे होने पर (नुम्) नुम् आगम होता है।*

*उदा०-***(रधि) स रन्धयति।** *वह हिंसा/संसिद्धि कराता है।* **रन्धकः।** *हिंसा/संसिद्धि करनेवाला।* **साधुरन्धी।** *यथावत् हिंसाशील/संसिद्धिशील।* **रन्धंरन्धम्।** *पुनः-पुनः हिंसा/संसिद्धि करके।* **रन्धो वर्तते।** *हिंसा/संसिद्धि है।* **(जभ्) स जम्भयति।** *वह जम्भाई लेता है।* **जम्भकः।** *जम्भाई लेनेवाला।* **साधुजम्भी।** *यथावत् जम्भाईशील।* **जम्भंजम्भम्।** *पुनः-पुनः जम्भाई लेकर।* **जम्भो वर्तते।** *जम्भाई है।*

सिद्धि-(१) **रन्धयति।** *रध्+णिच्। रध्+इ। रनुम् ध्+इ। रन्ध्+इ। र ँ ध्+इ। रन्ध्+इ। रन्धि। रन्धि+लट्। रन्धयति।*

यहां 'रध हिंसासंराद्ध्योः' (दि०प०) धातु से 'हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से अजादि 'णिच्' (इ) प्रत्यय परे होने पर 'रध्' धातु को 'नुम्' आगम होता है। 'नश्चापदान्तस्य झलि' (८।३।२४) से नकार को अनुस्वार और 'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः' (८।४।५८) से अनुस्वार को परसवर्ण नकार होता है। तत्पश्चात् णिजन्त 'रन्धि' धातु से 'लट्' प्रत्यय है। ऐसे ही 'जभी गात्रविनामे' (भ्वा०आ०) धातु से-**जम्भयति।**

(२) **रन्धकः।** यहां 'रध्' धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से अजादि ण्वुल् (अक) प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'जभ्' धातु से-**जम्भकः।**

(३) **साधुरन्धी।** यहां 'साधु' उपपद 'रध्' धातु से **'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये'** (३।२।७८) से अजादि णिनि (इन्) प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'जभ्' धातु से-**साधुजम्भी।**

(४) **रन्धंरन्धम्।** यहां 'रध्' धातु से **'आभीक्ष्ण्ये णमुल् च'** (३।४।२२) से अजादि णमुल् (अम्) प्रत्यय है। वा०-**'आभीक्ष्ण्ये द्वे भवतः'** (८।१।१२) से आभीक्ष्ण्य-अर्थ में द्वित्व होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'जभ्' धातु से-**जम्भंजम्भम्।**

(५) **रन्धः।** यहां 'रध्' धातु से **'भावे'** (३।३।१८) से भाव-अर्थ में अजादि घञ् (अ) प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'जभ्' धातु से-**जम्भः।**

नुमागम-प्रतिषेधः–

(१७) नेट्यलिटि रधेः।६२।

प०वि०-न अव्ययपदम्, इटि ७।१ अलिटि ७।१ रधेः ६।१।

स०-न लिड् इति अलिट्, तस्मिन्-अलिटि (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, नुमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-रधेरङ्गस्य अलिटि इटि नुम् न।

अर्थः-रधेरङ्गस्य लिड्वर्जिते इडादौ प्रत्यये परतो नुमागमो न भवति।

उदा०-रधिता। रधितुम्। रधितव्यम्।

आर्यभाषाः अर्थ-(रधेः) रधि इस (अङ्गस्य) अंग को (अलिटि) लिट् से भिन्न (इटि) इडादि प्रत्यय परे होने पर (नुम्) नुम् आगम (न) नहीं होता है।

उदा०-**रधिता।** हिंसा/संसिद्धि करनेवाला। **रधितुम्।** हिंसा/संसिद्धि करने के लिये। **रधितव्यम्।** हिंसा/संसिद्धि करनी चाहिए।

सिद्धि-(१) रधिता। *रध्+तृच्। रध्+इट्+तृ। रध्+इ+तृ। रधितृ+सु। रधिता।*

*यहां **'रध हिंसासंराद्ध्योः'** (दि०प०) धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। इसे **'रधादिभ्यश्च'** (७।२।४५) से 'इट्' आगम होता है। इस सूत्र से इडादि 'तृच्' प्रत्यय परे होने पर 'रध्' धातु को 'नुम्' आगम का प्रतिषेध होता है।*

*(२) **रधितुम्।** यहां 'रध्' धातु से **'तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्'** (३।३।१०) से 'तुमुन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **रधितव्यम्।** यहां 'रध्' धातु से **'तव्यत्तव्यानीयरः'** (३।१।९६) से 'तव्यत्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

नुम्-आगमः-

(१८) रभेरशब्लिटोः।६३।

प०वि०-रभेः ६।१ अशप्-लिटोः ७।२।

स०-शप् च लिट् च तौ शब्लिटौ, न शब्लिटाविति अशब्लिटौ, तयोः-अशब्लिटोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, नुम्, अचि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-रभेरङ्गस्य अशब्लिटोरजादौ नुम्।

अर्थः-रभेरङ्गस्य शप्-लिड्वर्जितेऽजादौ प्रत्यये परतो नुमागमो भवति।

उदा०-स आरम्भयति। आरम्भकः। साध्वारम्भी। आरम्भमारम्भम्। आरम्भो वर्तते।

आर्यभाषाः अर्थ-(रभेः) रभि इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (अशब्लिटोः) शप् और लिट् से भिन्न (अचि) अजादि प्रत्यय परे होने पर (नुम्) नुम् आगम होता है।

*उदा०-**स आरम्भयति।** वह आरम्भ कराता है। **आरम्भकः।** आरम्भ करनेवाला। **साध्वारम्भी।** यथावत् आरम्भशील। **आरम्भमारम्भम्।** पुनः पुनः आरम्भ करके। **आरम्भो वर्तते।** आरम्भ है।*

सिद्धि-(१) आरम्भयति। *आङ्+रभ्+णिच्। आ+रभ्+इ। आ+र नुम् भ्+इ। आ+रन् भ्+इ। आ+र ं भ्+इ। आ+र म् भ्+इ। आरम्भि।। आरम्भि+लट्। आरम्भयति।*

*यहां आङ् उपसर्गपूर्वक **'रभ राभस्ये'** (भ्वा०आ०) धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से अजादि णिच् (इ) प्रत्यय परे होने पर 'रभ्' धातु को 'नुम्' आगम होता है। **'नश्चापदान्तस्य झलि'** (८।३।२४) से नकार को अनुस्वार और*

'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः' (८।४।५८) से अनुस्वार को परसवर्ण मकार होता है। तत्पश्चात् 'आरम्भि' इस णिजन्त धातु से 'लट्' प्रत्यय है।

*(२) **आरम्भकः।** यहां आङ् उपसर्गपूर्वक 'रभ्' धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से अजादि ण्वुल् (अक) प्रत्यय है।*

*(३) **साध्वारम्भी।** यहां साधु-उपपद और आङ्-उपसर्गपूर्वक 'रभ्' धातु से **'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये'** (३।२।७८) से अजादि णिनि (इन्) प्रत्यय है।*

*(४) **आरम्भमारम्भम्।** यहां आङ्-उपसर्गपूर्वक 'रभ्' धातु से **'आभीक्ष्ण्ये णमुल् च'** (३।४।२२) से अजादि णमुल् (अम्) प्रत्यय है। वा०-**'आभीक्ष्ण्ये द्वे भवतः'** (८।१।१२) से द्वित्व होता है।*

*(५) **आरम्भः।** यहां आङ्-उपसर्गपूर्वक 'रभ्' धातु से **'भावे'** (३।३।१८) से भाव-अर्थ में अजादि घञ् (अ) प्रत्यय है।*

*'अशप्-लिटोः' के वचन से यहां नुम्-आगम नहीं होता है-**(शप्) आरभते। (लिट्) आरेभे।***

नुम्-आगमः—

(१६) लभेश्च।६४।

प०वि०-लभेः ६।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, नुम्, अचि, अशब्लिटोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-लभेरङ्गस्य चाऽशब्लिटोरजादौ नुम्।

अर्थः-लभेरङ्गस्य च शप्-लिड्वर्जितेऽजादौ प्रत्यये परतो नुमागमो भवति।

उदा०-स लम्भयति। लम्भकः। साधुलम्भी। लम्भंलम्भम्। लम्भो वर्तते।

*__आर्यभाषाः__ **अर्थ-**(लभेः) लभि इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (च) भी (अशब्लिटोः) शप् और लिट् से भिन्न (अचि) अजादि प्रत्यय परे होने पर (नुम्) नुम् आगम होता है।*

*उदा०-**स लम्भयति।** वह प्राप्त कराता है। **लम्भकः।** प्राप्त करनेवाला। **साधुलम्भी।** यथावत् प्राप्तिशील। **लम्भंलम्भम्।** पुनः पुनः प्राप्त करके। **लम्भो वर्तते।** प्राप्ति है।*

*सिद्धि-(१) **लम्भयति।** लभ्+णिच्। लभ्+इ। लनुम्भ्+इ। लन्भ्+इ। ल ं भ्+इ। लम्भ्+इ। लम्भि। लम्भि+लट्। लम्भयति।*

यहां 'डुलभष् प्राप्तौ' (भ्वा०आ०) धातु से 'हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से अजादि णिच् (इ) प्रत्यय परे होने पर 'लभ्' धातु को 'नुम्' आगम होता है। 'नश्चापदान्तस्य झलि' (८।३।२४) से नकार को अनुस्वार और 'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः' (८।४।२८) से अनुस्वार को परसवर्ण मकार होता है। तत्पश्चात् 'लम्भि' इस णिजन्त धातु से 'लट्' प्रत्यय है।

(२) लम्भकः। यहां 'लभ्' धातु से 'ण्वुल्तृचौ' (३।१।१३३) से अजादि ण्वुल् (अक) प्रत्यय है।

(३) साधुलम्भी। यहां साधु-उपपद 'लभ्' धातु से 'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये' (३।२।७८) से अजादि णिनि (इन्) प्रत्यय है।

(४) लम्भंलम्भम्। यहां 'लभ्' धातु से 'आभीक्ष्ण्ये णमुल् च' (३।४।२२) से अजादि णमुल् (अम्) प्रत्यय है। वा०-'आभीक्ष्ण्ये द्वे भवतः' (८।१।१२) से द्वित्व होता है।

(५) लम्भः। यहां 'लभ्' धातु से 'भावे' (३।३।१८) से भाव-अर्थ में अजादि घञ् (अ) प्रत्यय है।

नुम्-आगमः–

(२०) आङो यि।६५।

प०वि०-आङः ५।१ यि ७।१ (विषयसप्तमी)।

अनु०-अङ्गस्य, नुम्, लभेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-आङो लभेरङ्गस्य यि नुम्।

अर्थः-आङ उत्तरस्य लभेरङ्गस्य यकारादौ प्रत्ययविषये नुमागमो भवति।

उदा०-आलम्भ्या गौः। आलम्भ्या वडवा।

आर्यभाषाः अर्थ-(आङः) आङ्-उपसर्ग से परे (लभेः) लभि इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (यि) यकारादि प्रत्यय विषय (नुम्) नुम् आगम होता है।

उदा०-आलम्भ्या गौः। यज्ञ हेतु (घृतादि) प्राप्त करने योग्य गौ। आलम्भ्या वडवा। आरोहण हेतु प्राप्त करने योग्य घोड़ी।

सिद्धि-आलम्भ्या। आङ्+लभ्+०। आ+ल नुम् भ्+ण्यत्। आ+लन् भ्+य। आ+लं भ्+य। आ+लम्भ्+य। आलम्भ्य+टाप्। आलम्भ्या+सु। आलम्भ्या।

यहां आङ्-उपसर्गपूर्वक 'डुलभष् प्राप्तौ' (भ्वा०आ०) धातु से प्रथम यकारादि प्रत्यय का विषय उपस्थित होने पर इस सूत्र से 'नुम्' आगम होता है। तत्पश्चात् इस धातु

*की उपधा में अकार न रहने से 'पोरदुपधात्' (३।१।९८) से प्राप्त 'यत्' प्रत्यय नहीं होता, अपितु '**ऋहलोर्ण्यत्**' (३।१।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय होता है। '**नश्चापदान्तस्य झलि**' (८।३।२४) से नकार को अनुस्वार और '**अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः**' (८।४।५८) से अनुस्वार को परसवर्ण मकार होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में '**अजाद्यतष्टाप्**' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय है। 'ण्यत्' प्रत्यय करने पर '**गतिकारकोपपदात् कृत्**' (६।२।१३९) से कृत्-उत्तरपद को 'अन्त-स्वरित' प्रकृतिस्वर होता है-**आलम्भ्या**। 'यत्' प्रत्यय हो जाने पर 'यतोऽनावः' (६।१।२१३) आद्युदात्त स्वर होता।*

नुम्-आगमः-

(२१) उपात् प्रशंसायाम्।६६।

प०वि०-उपात् ५।१ प्रशंसायाम् ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, नुम्, लभेः, यि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-उपाल्लभेरङ्गस्य यि नुम्, प्रशंसायाम्।

अर्थः-उपाद् उत्तरस्य लभेरङ्गस्य यकारादौ प्रत्ययविषये नुमागमो भवति, प्रशंसायां गम्यमानायाम्।

उदा०-उपलम्भ्या भवता विद्या। उपलम्भ्यानि भवता धनानि।

आर्यभाषाः अर्थ-*(उपात्) उप-उपसर्ग से परे (लभेः) लभि इस (अङ्गस्य) अंग को (यि) यकारादि प्रत्यय विषय में (नुम्) नुम् आगम होता है (प्रशंसायाम्) यदि वहां प्रशंसा अर्थ की प्रतीति हो।*

*उदा०-**उपलम्भ्या भवता विद्या**। आप विद्या प्राप्त कर सकते हैं। **उपलम्भ्यानि भवता धनानि**। आप नाना धन प्राप्त कर सकते हैं। ये किसी के प्रशंसावचन हैं।*

*सिद्धि-**उपलम्भ्या**। यहां उप-उपसर्गपूर्वक '**डुलभष् प्राप्तौ**' (भ्वा०आ०) धातु से यकारादि प्रत्ययविषय में पूर्ववत् 'ण्यत्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। नपुंसकलिङ्ग बहुवचन में-**उपलम्भ्यानि**।*

नुम्-आगमः-

(२२) उपसर्गात् खल्घञोः।६७।

प०वि०-उपसर्गात् ५।१ खल्-घञोः ७।२।

स०-खल् च घञ् च तौ खल्घञौ, तयोः-खल्घञोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, नुम्, लभेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-उपसर्गाल्लभेरङ्गस्य खल्घञोर्नुम्।

अर्थः-उपसर्गाद् उत्तरस्य लभेरङ्गस्य खलि घञि च परतो नुमागमो भवति।

उदा०-(खल्) ईषत्प्रलम्भः। दुष्प्रलम्भः। सुप्रलम्भः। **(घञ्)** प्रलम्भः। विप्रलम्भः।

आर्यभाषाः अर्थ-(उपसर्गात्) उपसर्ग से परे (लभेः) लभि इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (खल्घञोः) खल् और घञ् प्रत्यय परे होने पर (नुम्) नुम् आगम होता है।

*उदा०-(खल्) **ईषत्प्रलम्भः।** उपलब्ध करना सफल है। **दुष्प्रलम्भः।** दुःख से उपलब्ध करना। **सुप्रलम्भः।** सुख से उपलब्ध करना। **(घञ्) प्रलम्भः।** उपलब्धि। **विप्रलम्भः।** छल-कपट।*

*सिद्धि-(१) **ईषत्प्रलम्भः।** ईषत्+प्र+लभ्+खल्। ईषत्+प्र+ल नुम् भ्+अ। ईषत्+प्र+ल न् भ्+अ। ईषत्+प्र ल ं भ्+अ। ईषत्+प्र ल म् भ्+अ। ईषत्प्रलम्भ+सु। ईषत्प्रलम्भः।*

*यहां ईषद्-उपपद तथा प्र-उपसर्गपूर्वक **'डुलभष् प्राप्तौ'** (भ्वा०आ०) धातु से **'ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्'** (३।३।१२६) से 'खल्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'खल्' प्रत्यय परे होने पर 'लभ्' धातु को 'नुम्' आगम होता है। नकार को अनुस्वार और परसवर्ण कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही दुस्-उपपद होने पर-**दुष्प्रलम्भः।** सु-उपपद होने पर-**सुप्रलम्भः।***

*(२) **प्रलम्भः।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'लभ्' धातु से 'भावे' (३।३।१८) से भाव-अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**विप्रलम्भः।***

नुमागम-प्रतिषेधः-

(२३) न सुदुर्भ्यां केवलाभ्याम्।६८।

प०वि०-न अव्ययपदम्, सु-दुर्भ्याम् ५।२ केवलाभ्याम् ५।२।

स०-सुश्च दुर् च तौ सुदुरौ, ताभ्याम्-सुदुर्भ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। केवलश्च केवलश्च तौ केवलौ, ताभ्याम्-केवलाभ्याम् (एकशेषद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, नुम्, लभेः, उपसर्गात् खलघञोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-केवलाभ्यां सुदुर्भ्यामुपसर्गाभ्यां लभेरङ्गस्य खल्घञोर्नुम् न।

अर्थः-केवलाभ्यां सुदुर्भ्याम् उपसर्गाभ्याम् उत्तरस्य लभेरङ्गस्य खलि घञि च परतो नुमागमो न भवति।

उदा०-(खल्) दुर्लभम्। सुलभम्। सुदुर्लभम्। (घञ्) सुलाभः। दुर्लभः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(केवलाभ्याम्) केवल (सुदुर्भ्याम्) सु और दुर् इन (उपसर्गाभ्याम्) उपसर्गों से परे (लभेः) लभि इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (नुम्) नुम् आगम (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(खल्) **दुर्लभम्।** दुःख से प्राप्त करने योग्य। सुल... । सुख से प्राप्त करने योग्य। **सुदुर्लभम्।** अति दुःख से प्राप्त करने योग्य। (घञ्) **सुलाभः।** सुखपूर्वक प्राप्त करना। **दुर्लभः।** दुःखपूर्वक प्राप्त करना।*

*सिद्धि-(१) **दुर्लभम्।** यहां केवल दुर्-उपसर्ग से परे **'डुलभष् प्राप्तौ'** (भ्वा०आ०) धातु से **'ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृ...र्थेषु खल्'** (३।३।१२६) से 'खल्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'लभ्' को 'नुम्' आगम का ... है। ऐसे ही-**सुलभम्, सुदुर्लभम्।***

*(२) **सुलाभः।** यहां केवल सु-उपसर्ग से परे 'लभ्' धातु से **'भावे'** (३।३।१८) से 'घञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'लभ्' को 'नुम्' आगम का प्रतिषेध है।*

नुमागम-विकल्पः-

(२४) विभाषा चिण्णमुलोः।६६।

प०वि०-विभाषा १।१ चिण्-णमुलोः ७।२।

स०-चिण् च णमुल् च तौ चिण्णमुलौ, तयोः-चिण्णमुलोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, नुम्, लभेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-लभेरङ्गस्य चिण्णमुलोर्विभाषा नुम्।

अर्थः-लभेरङ्गस्य चिणि णमुलि च परतो विकल्पेन नुमागमो भवति।

उदा०-(चिण्) अलम्भि भवता। अलाभि भवता। **(णमुल्)** लम्भंलम्भम्। लाभंलाभम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(लभेः) लभि इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (चिण्णमुलोः) चिण् और णमुल् प्रत्यय परे होने पर (विभाषा) विकल्प से (नुम्) नुम् आगम होता है।*

*उदा०-(चिण्) **अलम्भि भवता। अलाभि भवता।** आपके द्वारा प्राप्त किया गया। (णमुल्) **लम्भंलम्भम्। लाभंलाभम्।** पुनः-पुनः प्राप्त करके।*

सिद्धि-(१) अलम्भि। लभ्+लुङ्। अट्+लभ्+च्लि+ल्। अ+लभ्+चिण्+त। अ+ल नुम् भ्+इ+त। अ+लम्भ्+इ+०। अ+ल ं भ्+इ+०। अ+लम्भ्+इ। अलम्भि।

यहां 'डुलभष् प्राप्तौ' (भ्वा०आ०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से कर्मवाच्य अर्थ में 'लुङ्' प्रत्यय है। 'चिण् भावकर्मणोः' (३।१।६६) से 'च्लि' के स्थान में 'चिण्' आदेश होता है। इस सूत्र से 'चिण्' प्रत्यय परे होने पर 'लभ्' धातु से 'नुम्' आगम होता है। नकार को अनुस्वार और अनुस्वार को परसवर्ण मकार पूर्ववत् है। 'चिणो लुक्' (६।४।१०४) से 'त' प्रत्यय का लुक् हो जाता है। विकल्प-पक्ष में नुम्-आगम नहीं है-अलाभि। यहां 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से अङ्ग को उपधावृद्धि होती है।

(२) लम्भंलम्भम्। यहां 'लभ्' धातु से 'आभीक्ष्ण्ये णमुल् च' (३।४।२२) से 'णमुल्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय परे होने पर 'लभ्' धातु को 'नुम्' आगम होता है। नकार को अनुस्वार और अनुस्वार को परसवर्ण मकार पूर्ववत् है। वा०-'आभीक्ष्ण्ये द्वे भवतः' (८।१।१२) से द्वित्व होता है। विकल्प-पक्ष में नुम्-आगम नहीं है-लाभंलाभम्। यहां पूर्ववत् उपधावृद्धि होती है।

नुम्-आगमः-

(२५) उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः।७०।

प०वि०-उगिद्-अचाम् ६।३ सर्वनामस्थाने ७।१ अधातोः ६।१।

स०-उग् इद् येषां ते उगितः, उगितश्च अच्च ते उगिदचः, तेषाम्-उगिदचाम् (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न धातुरिति अधातुः, तस्य-अधातोः (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, नुम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अधातोरुगिदचाम् अङ्गानां सर्वनामस्थाने नुम्।

अर्थः-धातुवर्जितानामुगिताम् अञ्चतेश्चाङ्गस्य सर्वनामस्थाने परतो नुमागमो भवति।

उदा०-(उगित्) भवतु-भवान्, भवन्तौ, भवन्तः। **ईयसुन्-**श्रेयान्, श्रेयांसौ, श्रेयांसः। **शतृ-**पचन्, पचन्तौ, पचन्तः। **(अञ्चतिः)** प्राङ्, प्राञ्चौ, प्राञ्चः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अधातोः) धातु से भिन्न (उगिदचाम्) उक् जिनका इत् है उनको तथा अञ्चति इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (सर्वनामस्थाने) सर्वनामस्थान-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (नुम्) नुम् आगम होता है।*

उदा०-(उगित्) **भवतु-भवान्।** आप। **भवन्तौ।** आप दोनों। **भवन्तः।** आप सब। ईयसुन्-**श्रेयान्।** प्रशस्य। **श्रेयांसौ।** दो प्रशस्य। **श्रेयांसः।** सब प्रशस्य। शतृ-**पचन्।** पकाता हुआ। **पचन्तौ।** दो पकाते हुये। **पचन्तः।** सब पकाते हुये। **(अञ्चति) प्राङ्।** पूर्व दिशा। **प्राञ्चौ।** दो पूर्व दिशायें। **प्राञ्चः।** सब पूर्व दिशायें।

सिद्धि-(१) **भवान्।** भवतु+सु। भवत्+सु। भव नुम् त्+सु। भवन्त्+सु। भवान्त्+सु। भवान्त्+०। भवान्०। भवान्।

यहां 'भवतु' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से सर्वनामस्थान-संज्ञक 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'सु' प्रत्यय के परे होने पर उगित् 'भवतु' शब्द को नुम् आगम होता है। **'सान्तमहतः संयोगस्य'** (६।४।१०) से नकारान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ, **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्'** (६।१।६७) से 'सु' का लोप और **'संयोगान्तस्य लोपः'** (८।२।२३) से तकार का लोप होता है। ऐसे ही-**भवन्तौ, भवन्तः।**

(२) **श्रेयान्।** प्रशस्य+ईयसुन्। श्र+ईयस्। श्रेयस्+सु। श्रेयनुम्स्+सु। श्रेयन्स्+सु। श्रेयान्स्+सु। श्रेयान्स्+०। श्रेयान्०। श्रेयान्।

यहां प्रथम प्रशस्य शब्द से **'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ'** (५।३।५७) से 'ईयसुन्' प्रत्यय है। **'प्रशस्यस्य श्रः'** (५।३।६०) से प्रशस्य के स्थान में 'श्र' आदेश और **'प्रकृत्यैकाच्'** (६।४।१६३) से प्रकृति भाव होने से 'टेः' (६।४।१५५) से प्राप्त अङ्ग का टि-लोप (अ) नहीं होता है। 'ईयसुन्' प्रत्यय के उगित् होने से इसे इस सूत्र से 'नुम्' आगम होता है। पूर्ववत् 'सु' का और संयोगान्त सकार का लोप होता है। ऐसे ही-**श्रेयांसौ, श्रेयांसः।**

(३) **पचन्।** पच्+लट्। पच्+शतृ। पच्+शप्+अत्। पच्+अ+अत्। पचत्+सु। पचनुम्त्+सु। पचन्त्+सु। पचन्त्+०। पचन्०। पचन्।

यहां **'डुपचष् पाके'** (भ्वा०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और इसके स्थान में 'लटः शतृशानचा०' (३।२।१२४) से 'शतृ' आदेश है। इस 'शतृ' आदेश के उगित् होने से इस सूत्र से इसे 'नुम्' आगम होता है। 'सु' का और संयोगन्त तकार का लोप पूर्ववत् है।

(४) **प्राङ्।** प्र+अञ्चु+क्विन्। प्र+अच्+वि०। प्र+अच्+०। प्र+अच्+सु। प्र+अनुम्च्+सु। प्र+अन्च्+स्। प्र+अन्च्+०। प्र+अन्०। प्र+अङ्। प्राङ्।

यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'अञ्चु गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से 'क्विन्' प्रत्यय है। 'वेरपृक्तस्य' (६।१।६५) से 'वि' का सर्वहारी लोप होता है। इस सूत्र से 'अच्' को 'नुम्' आगम होता है। 'सु' और संयोगान्त चकार का पूर्ववत् लोप होता है। **'क्विन् प्रत्ययस्य कुः'** (८।२।६२) से नकार को कुत्व ङकार होता है। ऐसे ही-**प्राञ्चौ, प्राञ्चः।**

नुम्-आगमः–

(२६) युजेरसमासे ।७१।

प०वि०–युजेः ६ ।१ असमासे ७ ।१।

स०–न समास इति असमासः, तस्मिन्–असमासे (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–अङ्गस्य, नुम्, सर्वनामस्थाने इति चानुवर्तते।

अन्वयः–असमासे युजेरङ्गस्य सर्वनामस्थाने नुम्।

अर्थः–असमासे वर्तमानस्य युजेरङ्गस्य सर्वनामस्थाने परतो नुमागमो भवति।

उदा०–युङ्, युञ्जौ, युञ्जः।

आर्यभाषाः अर्थ–*(असमासे) समास से रहित (युजेः) युजि इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (सर्वनामस्थाने) सर्वनामस्थान-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (नुम्) नुम् आगम होता है।*

*उदा०–**युङ्**। जोड़नेवाले। **युञ्जौ**। दो जोड़नेवाले। **युञ्जः**। सब जोड़नेवाले।*

सिद्धि–युङ्। *युज्+क्विन्। युज्+वि। युज्+०। युज्+सु। यु नुम् ज्+स्। युनुज्+०। युन्०। युन्। युङ्।*

*यहां **'युजिर् योगे'** (रुधा०उ०) धातु से **'ऋत्विग्दधृक्०'** (३।२।५९) से 'क्विन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से असमास में विद्यमान 'युज्' को 'नुम्' आगम होता है। शेष कार्य 'प्राङ्' के समान है। ऐसे ही–**युञ्जौ, युञ्जः**।*

नुम्-आगमः–

(२७) नपुंसकस्य झलचः ।७२।

प०वि०–नपुंसकस्य ६ ।१ झलचः ६ ।१।

स०–झल् च अच् च एतयोः समाहारो झलच्, तस्य–झलचः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, नुम्, सर्वनामस्थाने इति चानुवर्तते।

अन्वयः–नपुंसकस्य झलचोऽङ्गस्य सर्वनामस्थाने नुम्।

अर्थः–नपुंसकलिङ्गस्य झलन्तस्याऽजन्तस्य चाऽङ्गस्य सर्वनामस्थाने परतो नुमागमो भवति।

उदा०-(झलन्तः) उदश्विन्ति। शकृन्ति। यशांसि। पयांसि। **(अजन्तः)** कुण्डानि। वनानि। त्रपूणि। जतूनि।

आर्यभाषाः *अर्थः-(नपुंसकस्य) नपुंसकलिङ्गवाले (झलचः) झलन्त और अजन्त (अङ्गस्य) अङ्ग को (सर्वनामस्थाने) सर्वनामस्थान-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (नुम्) नुम् आगम होता है।*

*उदा०-(झलन्त) **उदश्विन्ति।** सब उदश्वित् (लस्सी)। **शकृन्ति।** सब मल। **यशांसि।** सब यश। **पयांसि।** सब दूध/जल। (अजन्त) **कुण्डानि।** सब कुण्ड। **वनानि।** सब वन। **त्रपूणि।** सब शीशा, रांगा। **जतूनि।** सब गोंद, लाख।*

*सिद्धि-(१) **उदश्विन्ति।** उदश्वित्+जस्। उदश्वित्+शि। उदश्वित्+इ। उदश्वि नुम् त्+इ। उदश्विन्त्+इ। उदश्वि ं त्+इ। उदश्विन्त्+इ। उदश्विन्ति।*

*यहां 'उदश्वित्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'जस्' प्रत्यय है। **'जश्शसोः शिः'** (७।२।२०) से 'जस्' के स्थान में 'शि' आदेश होता है। **'शि सर्वनामस्थानम्'** (१।१।४२) से 'शि' की सर्वनामस्थान संज्ञा है। इस सूत्र से नपुंसकलिङ्ग, झलन्त 'उदश्वित्' शब्द को 'नुम्' आगम होता है। पूर्ववत् नकार को अनुस्वार और अनुस्वार को परसवर्ण नकार होता है। ऐसे ही-**शकृन्ति, यशांसि। पयांसि।** यहां **'सान्तमहतः संयोगस्य'** (६।४।१०) से दीर्घ होता है।*

*(२) **कुण्डानि।** कुण्ड+जस्। कुण्ड+शि। कुण्ड+इ। कुण्ड नुम्+इ। कुण्डन्+इ। कुण्डान्+इ। कुण्डानि।*

*यहां 'कुण्ड' शब्द से पूर्ववत् 'जस्' प्रत्यय और 'जस्' के स्थान में 'शि' आदेश है। इस सूत्र से नपुंसकलिङ्ग, अजन्त 'कुण्ड' शब्द को 'नुम्' आगम होता है। **'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ'** (६।४।८) से दीर्घ होता है। ऐसे ही-**वनानि, त्रपूणि, जतूनि।***

नुम्-आगमः-

(२८) इकोऽचि विभक्तौ।७३।

प०वि०-इकः ६।१ अचि ७।१ विभक्तौ ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, नुम्, नपुंसकस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-नपुंसकस्य इकोऽङ्गस्य अचि विभक्तौ नुम्।

अर्थः-नपुंसकलिङ्गस्य इगन्तस्याऽङ्गस्याऽजादौ विभक्तौ परतो नुमागमो भवति।

उदा०-त्रपुणी। जतुनी। तुम्बुरुणी। त्रपुणे। जतुने। तुम्बुरुणे।

आर्यभाषाः *अर्थ-(नपुंसकस्य) नपुंसकलिङ्ग (इकः) इक् जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग को (अचि) अजादि (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर (नुम्) नुम् आगम होता है।*

*उदा०-**त्रपुणी।** दो सीसा, रांगा। **जतुनी।** दो गोंद, लाख। **तुम्बुरुणी।** दो धनियां। **त्रपुणे।** सीसा, रांगा के लिये। **जतुने।** गोंद, लाख के लिये। **तुम्बुरुणे।** धनियां के लिये।*

*उदा०-(१) **त्रपुणी।** त्रपु+औ। त्रपु+शी। त्रपु+ई। त्रपु नुम्+ई। त्रपुन्+ई। त्रपुन्+ई। त्रपुण्+ई। त्रपुणी।*

*यहां 'त्रपु' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'औ' प्रत्यय है। **'नपुंसकाच्च'** (७।१।१९) से 'औ' के स्थान में 'शी' आदेश होता है। इस सूत्र से इगन्त 'त्रपु' शब्द को अजादि औ (शी) प्रत्यय परे होने पर 'नुम्' आगम होता है। **'अट्कुप्वाङ्०'** (८।४।२) से णत्व होता है। ऐसे ही-**जतुनी, तुम्बुरुणी।***

*(२) **त्रपुणे।** यहां 'त्रपु' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'ङे' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**जतुने, तुम्बुरुणे।***

नपुंसकस्य पुंवद्भावः–

(२६) तृतीयादिषु भाषितपुंस्कं पुंवद् गालवस्य।७४।

प०वि०-तृतीयादिषु ७।३ भाषितपुंस्कम् १।१ पुंवत् अव्ययपदम्, गालवस्य ६।१।

स०-तृतीया आदिर्यासां ताः-तृतीयादयः, तासु-तृतीयादिषु (बहुव्रीहिः)। भाषितः पुमान् येन {समानायामाकृतौ, एकस्मिन् प्रवृत्तिनिमित्ते} तत्-भाषितपुंस्कम् (बहुव्रीहिः)।

तद्धितवृत्तिः-पुंसा तुल्यमिति पुंवत् **'तेन तुल्यं क्रिया चेद् वतिः'** (५।१।११५) इति तृतीयार्थे वतिः प्रत्ययः।

अनु०-अङ्गस्य, नपुंसकस्य, इकः अचि, विभक्ताविति चानुवर्तते।

अन्वयः-भाषितपुंस्कम् इग् नपुंसकं तृतीयादिषु अजादिषु विभक्तिषु गालवस्य पुंवत्।

अर्थः-भाषितपुंस्कम् इगन्तं नपुंसकं शब्दरूपं तृतीयादिष्वजादिषु विभक्तिषु परतो गालवस्याचार्यस्य मतेन पुंवद् भवति। यथा पुंसि ह्रस्वनुमौ न भवतस्तथाऽत्रापि न भवत इत्यर्थः। **उदाहरणम्**–

विभक्तिः	गालवमतम् (पुंवद्भावः)	पाणिनिमतम् (पुंवद्भावो न)	भाषार्थः
प्रतीकम्	{ग्रामणीर्ब्राह्मणः}	{ग्रामणि ब्राह्मणकुलम्}	{ग्रामणी ब्राह्मणकुल}
टा	ग्रामण्या ब्राह्मणकुलेन	ग्रामणिना ब्राह्मणकुलेन	ग्रामणी (ब्रा०कु०) के द्वारा।
ङे	ग्रामण्ये ब्राह्मणकुलाय	ग्रामणिने ब्राह्मणकुलाय	,, ,, के लिये।
ङसि	ग्रामण्यो ब्राह्मणकुलात्	ग्रामणिनो ब्राह्मणकुलात्	,, ,, से।
ङस्	ग्रामण्यो ब्राह्मणकुलस्य	ग्रामणिनो ब्राह्मणकुलस्य	,, ,, का।
ओस्	ग्रामण्योर्ब्राह्मणकुलयोः	ग्रामणिनोर्ब्राह्मणकुलयोः	दो ,, ,, का।
आम्	ग्रामण्यां ब्राह्मणकुलानाम्	ग्रामणीनां ब्राह्मणकुलानाम्	सब ,, ,, का।
ङि	ग्रामण्यां ब्राह्मणकुले	ग्रामणिनि ब्राह्मणकुले	,, ,, में/पर।
प्रतीकम्	{शुचिर्ब्राह्मणः}	{शुचि ब्राह्मणकुलम्}	{शुद्ध ब्राह्मण/कुल}
टा	शुचिना ब्राह्मणकुलेन	शुचिना ब्राह्मणकुलेन	शुद्ध (ब्रा०कु०) के द्वारा।
ङे	शुचये ब्राह्मणकुलाय	शुचिने ब्राह्मणकुलाय	,, ,, के लिये।
ङसि	शुचेर्ब्राह्मणकुलात्	शुचिनो ब्राह्मणकुलात्	,, ,, से।
ङस्	शुचेर्ब्राह्मणकुलस्य	शुचिनो ब्राह्मणकुलस्य	,, ,, का।
ओस्	शुच्योर्ब्राह्मणकुलयोः	शुचिनोर्ब्राह्मणकुलयोः	दो ,, ,, का।
ङि	शुचौ ब्राह्मणकुले	शुचिनि ब्राह्मणकुले	,, ,, में।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(भाषितपुंस्कम्) समान आकृति में तथा समान प्रवृत्ति-निमित्त में पुलिङ्ग को कहनेवाले (इकः) इगन्त (नपुंसकम्) नपुंसकलिङ्ग शब्द को (तृतीयादिषु) तृतीया-आदि (अजादिषु) अजादि (विभक्तिषु) विभक्ति परे होने पर (गालवस्य) गालव आचार्य के मत में (पुंवत्) पुंवद्भाव होता है, वह शब्द पुंलिङ्ग के समान हो जाता है, अर्थात् वहां नपुंसकलिङ्ग में विहित ह्रस्वादेश और नुम्-आगम नहीं होते हैं।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

***सिद्धि-(१) ग्रामण्या।** ग्रामणी+टा। ग्रामणी+आ। ग्राम य्+आ। ग्रामण्या।*

*यहां 'ग्रामणी' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'टा' प्रत्यय है। ब्राह्मणकुल के विशेषण भाव से 'ग्रामणी' नपुंसकलिङ्ग है। गालव आचार्य के मत में पुंवद्भाव होने पर '**ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य**' (१।२।४७) से नपुंसकलिङ्ग में विहित ह्रस्वादेश और '**इकोऽचि विभक्तौ**' (७।२।७३) से नुम्-आगम नहीं होता है। '**एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य**'*

*(६।४।८२) से यणादेश होता है। पाणिनि मुनि के मत में पूर्वोक्त ह्रस्वादेश और नुम्-आगम होता है-**ग्रामणिना ब्राह्मणकुलेन**। ऐसे ही शेष ङे आदि आदि विभक्तियों में भी समझें।*

*(२) **शुचिना**। यहां 'शुचि' शब्द से पूर्ववत् 'टा' प्रत्यय है। गालव आचार्य के मत में पुंवद्भाव होने से **'आङो नाऽस्त्रियाम्'** (७।३।१२०) से 'टा' के स्थान में 'ना' आदेश होता है। पाणिनि मुनि के मत में **'इकोऽचि विभक्तौ'** (७।१।७३) से नपुंसकलिङ्ग में 'नुम्' आगम होता है-**शुचिना**। ऐसे ही शेष 'ङे' आदि अजादि विभक्तियों में भी समझें।*

अनङ्-आदेशः-

(३०) अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः।७५।

प०वि०-अस्थि-दधि-सक्थि-अक्ष्णाम् ६।३ अनङ् १।१ उदात्तः १।१।

स०-अस्थि च दधि च सक्थि च अक्षि च तानि-अस्थिदधि-सक्थ्यक्षीणि, तेषाम्-अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, नपुंसकस्य, इकः, अचि, विभक्तौ, तृतीयादिषु इति चानुवर्तते।

अन्वयः-नपुंसकानाम् अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णाम् इकाम् अङ्गानाम् अजादिषु तृतीयादिषु विभक्तिषु अनङ्, उदात्तः।

अर्थः-नपुंसकानाम् अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामिगन्तानाम् अङ्गानाम् अजादिषु तृतीयादिषु विभक्तिषु परतोऽनङादेशो भवति, स चोदात्तो भवति।

उदा०-(अस्थि) अस्थ्ना, अस्थ्ने। **(दधि)** दध्ना, दध्ने। **(सक्थि)** सक्थ्ना, सक्थ्ने। **(अक्षि)** अक्ष्णा, अक्ष्णे।

आर्यभाषाः *अर्थ-(नपुंसकानाम्) नपुंसकलिङ्ग (अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णाम्) अस्थि, दधि, सक्थि, अक्षि इन (इकाम्) इगन्त (अङ्गानाम्) अङ्गों को (अजादिषु) अजादि (तृतीयादिषु) तृतीया-आदि (विभक्तिषु) विभक्तियां परे होने पर (अनङ्) अनङ् आदेश होता है, और वह (उदात्तः) उदात्त होता है।*

*उदा०-**(अस्थि) अस्थ्ना**। हड्डी के द्वारा। **अस्थ्ने**। हड्डी के लिये। **(दधि) दध्ना**। दही के द्वारा। **दध्ने**। दही के लिये। **(सक्थि) सक्थ्ना**। जंघा के द्वारा। **सक्थ्ने**। जंघा के लिये। **(अक्षि) अक्ष्णा**। आंख के द्वारा। **अक्ष्णे**। आंख के लिये।*

सिद्धि-अस्थ्ना। अस्थि+टा। अस्थि+आ। अस्थ् अनङ्+आ। अस्थ् अन्+आ। अस्थ्०न्+आ। अस्थ्ना।

यहां नपुंसकलिङ्ग, इगन्त 'अस्थि' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'टा' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे अजादि 'टा' प्रत्यय परे होने पर अनङ् आदेश होता है। यह आदेश ङित् होने से 'ङिच्च' (१।१।५३) के नियम से 'अस्थि' के अन्तिम अच् (इ) के स्थान में किया जाता है। 'अल्लोपोऽनः' (६।४।१३४) से 'अनङ्' के आदिम अकार का लोप होता है। 'अनङ्' में नकारस्थ अकार उच्चारणार्थ है।

'अस्थि' शब्द 'नब्विषयस्यानिसन्तस्य' (फिट्० २।३) से आद्युदात्त है। शेष को 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' (६।१।१५५) से अनुदात्त स्वर होता है-अस्थि। इस अनुदात्त इकार के स्थान में विधीयमान 'अनङ्' आदेश भी स्थानिवद्भाव से 'अनुदात्त' प्राप्त था। अतः इस सूत्र में 'उदात्त' विधान किया गया है। 'अल्लोपोऽनः' (६।४।१३४) से 'अनङ्' के अकार का लोप हो जाने पर 'अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः' (६।१।१६१) से 'टा' विभक्ति उदात्त होती है-अस्थ्ना। 'ङे' प्रत्यय करने पर-अस्थ्ने। ऐसे ही-दध्ना आदि।

अनङ्-आदेशदर्शनम्-

(३१) छन्दस्यपि दृश्यते।७६।

प०वि०-छन्दसि ७।१ अपि अव्ययपदम्, दृश्यते क्रियापदम्।

अनु०-अङ्गस्य, नपुंसकस्य, इकः, अनङ्, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि अपि नपुंसकानाम् अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णाम् इकाम् अङ्गानाम् उदात्तोऽनङ् दृश्यते।

अर्थः-छन्दसि विषयेऽपि नपुंसकानाम् अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णानिगन्तानाम् अङ्गानाम् उदात्तोऽनङादेशो दृश्यते। **उदाहरणम्-**

(१) अचि=अजादावित्युक्तम्, अनजादावपि दृश्यते-इन्द्रो दधीचोऽस्थभिः (ऋ० १।८४।१३)। भद्रं पश्येमाक्षभिः (यजु० २५।२१)।

(२) 'तृतीयादिषु विभक्तिषु' इत्युक्तम्। अतृतीयादिष्वपि दृश्यते-अस्थान्युत्कृत्य जुहोति।

(३) 'विभक्तौ' इत्युक्तम् अविभक्तावपि दृश्यते-अक्षण्वता लाङ्गलेन (पै०सं० ९।८।१)। अस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति (ऋ० १।१६४।४)।

आर्यभाषाः अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अपि) भी (नपुंसकानाम्) नपुंसकलिङ्ग (अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णाम्) अस्थि, दधि, सक्थि, अक्षि इन (इकाम्) इगन्त (अङ्गानाम्) अङ्गों को (उदात्तः) उदात्त (अनङ्) अनङ् आदेश (दृश्यते) देखा जाता है। उदाहरण—

(१) 'अचि' अर्थात् अजादि विभक्ति परे होने पर अनङ् आदेश कहा है, यह छन्द में अनजादि=हलादि विभक्ति परे होने पर भी होता है-**इन्द्रो दधीचोऽस्थभिः** (ऋ० १।८४।१३) **भद्रं पश्येमाक्षभिः** (यजु० २५।२१)।

(२) तृतीया-आदि विभक्तियों के परे होने पर अनङ् आदेश कहा है, यह छन्द में अतृतीयादि (प्रथमा-द्वितीया) विभक्ति परे होने पर भी होता है-**अस्थान्युत्कृत्य जुहोति।**

(३) विभक्ति परे होने पर अनङ् आदेश कहा गया है, यह अविभक्ति=विभक्ति से भिन्न विषय में भी होता है-**अक्षण्वता लाङ्गलेन। अस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति** (ऋ० १।१६४।४)।

सिद्धि-(१) **अस्थभिः।** अस्थिन्+भिस्। अस्थ् अनङ्+भिस्। अस्थ् अन्+भिस्। अस्थ् अ०+भिस्। अस्थभिः।

यहां 'अस्थि' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'भिस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से छन्दविषय में अनजादि=हलादि 'भिस्' विभक्ति परे होने पर अनङ् आदेश होता है। **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से नकार का लोप होता है।

(२) **अस्थानि।** अस्थि+शस्। अस्थि+शि। अस्थि+इ। अस्थ्+अनङ्+इ। अस्थन्+इ। अस्थान्+इ। अस्थानि।

यहां 'अस्थि' शब्द से पूर्ववत् 'शस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से छन्द-विषय में तृतीया-आदि विभक्तियों से भिन्न द्वितीया-विभक्ति (शस्) परे होने पर भी अनङ् आदेश होता है। **'जश्शसोः शिः'** (७।१।२०) से 'शस्' के स्थान में 'शि' आदेश है। **'इन्हन्पूषार्यम्णां शौ'** (६।४।१२) से दीर्घ होता है।

(३) **अक्षण्वता।** अक्षि+मतुप्। अक्षि+मत्। अक्ष् अनङ्+मत्। अक्ष् अन्+मत्। अक्ष् अन्+नुट्+मत्। अक्ष् अन्+न्+मत्। अक्ष०न्वत्। अक्षण्वत्+टा। अक्षण्वता।

यहां 'अक्षि' शब्द से **'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्'** (५।२।९४) से 'मतुप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से विभक्ति से भिन्न इस 'मतुप्' प्रत्यय के परे होने पर छन्द में 'अक्षि' शब्द को अनङ् आदेश होता है। **'अनो नुट्'** (८।२।१६) से 'मतुप्' को 'नुट्' आगम, **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से 'अक्षन्' के नकार का लोप और **'मादुपधायाश्च'** (८।२।९) से 'मतुप्' के मकार को वकारादेश है। तत्पश्चात् 'टा' प्रत्यय करने पर-**अक्षण्वता।** ऐसे ही 'अस्थि' शब्द से-**अस्थन्वतम्** (२।१)। द्रष्टव्य-**अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायः** (ऋ० १०।७१।७)।

ईकार-आदेशः–

(३२) ई च द्विवचने।७७।

प०वि०–ई १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्, द्विवचने ७।१।

अनु०–अङ्गस्य, नपुंसकस्य, इकः, अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णाम्, उदात्तः छन्दसि, इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि नपुंसकानाम् अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णाम् इकाम् अङ्गानां द्विवचने ईश्च उदात्तः।

अर्थः–छन्दसि विषये नपुंसकानाम् अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णाम् इगन्तानाम् अङ्गानां द्विवचने प्रत्यये ईकारादेशश्च भवति, स चोदात्तो भवति।

उदा०–अक्षी ते इन्द्र पिङ्गले कपेरिव (तु०-मीमांसा २।१।३२ शाबरभाष्यम्)। अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्याम् (ऋ० १०।१६३।१)।

आर्यभाषा अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (नपुंसकानाम्) नपुंसकलिङ्ग (अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णाम्) अस्थि, दधि, सक्थि, अक्षि इन (इकाम्) इगन्त (अङ्गानाम्) अङ्गों को (ईः) ईकार आदेश (च) भी होता है, और वह (उदात्तः) उदात्त होता है।

*उदा०-**अक्षी ते इन्द्र पिङ्गले कपेरिव** (तु०-मीमांसा २।१।३२ शाबरभाष्य)। **अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्याम्** (ऋ० १०।१६३।१)।*

__सिद्धि-अक्षी।__ अक्षि+औ। अक्षि+शी। अक्षि+ई। अक्ष् ई+ई। अक्षी।

*यहां 'अक्षि' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'औ' प्रत्यय है। **'नपुंसकाच्च'** (७।१।१९) से 'औ' के स्थान में 'शी' आदेश होता है। इस सूत्र से द्विवचन औ (शी) प्रत्यय परे होने पर ईकार आदेश होता है। ऐसे ही द्विवचन 'भ्याम्' प्रत्यय परे होने पर-**अक्षीभ्याम्।***

नुमागम-प्रतिषेधः–

(३३) नाभ्यस्ताच्छतुः।७८।

प०वि०–न अव्ययपदम्, अभ्यस्तात् ५।१ शतुः ६।१।

अनु०–अङ्गस्य, नुम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अभ्यस्ताद् अङ्गात् शतुर्नुम् न।

अर्थः–अभ्यस्ताद् अङ्गाद् उत्तरस्य शतृ-प्रत्ययस्य नुमागमो न भवति।

उदा०-(दा) ददत्, ददतौ, ददतः। (धा) दधत्, दधतौ, दधतः। (जक्ष) जक्षत्, जक्षतौ, जक्षतः। (जागृ) जाग्रत्, जाग्रतौ, जाग्रतः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अभ्यस्तात्) अभ्यस्त-संज्ञक (अङ्गात्) अङ्ग से परे (शतुः) शतृ (प्रत्ययस्य) प्रत्यय को (नुम्) नुम् आगम (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(दा) **ददत्।** देता हुआ। **ददतौ।** दो देते हुये। **ददतः।** सब देते हुये। (धा) **दधत्।** धारण-पोषण करता हुआ। **दधतौ।** दो धारण-पोषण करते हुये। **दधतः।** सब धारण-पोषण करते हुये। (जक्ष) **जक्षत्।** खाता/हंसता हुआ। **जक्षतौ।** दो खाते/हंसते हुये। **जक्षतः।** सब खाते/हंसते हुये। (जागृ) **जाग्रत्।** जागता हुआ। **जाग्रतौ।** दो जागते हुये। **जाग्रतः।** सब जागते हुये।*

*सिद्धि-(१) **ददत्।** दा+लट्। दा+शतृ। दा+शप्+अत्। दा+०+अत्। दा-दा+अत्। द+द्+अत्। ददत्+सु। ददत्+०। ददत्।*

*यहां '**डुदाञ् दाने**' (जु०उ०) इस उभयपद से 'लट्' प्रत्यय और इसके स्थान में '**लटः शतृशानचा०**' (३।२।१२४) से 'लट्' के स्थान में शतृ-आदेश है। '**जुहोत्यादिभ्यः श्लुः**' (२।४।७५) से 'शप्' को श्लु (लोप) और '**श्लौ**' (६।१।१०) से 'दा' को द्वित्व होता है। दिरुक्त 'दा-दा' की '**उभे अभ्यस्तम्**' (६।१।५) से अभ्यस्त-संज्ञा है। इस सूत्र से अभ्यस्त-संज्ञक 'द-दा' धातु से परे 'शतृ' प्रत्यय को नुम् आगम का प्रतिषेध है। '**श्नाभ्यस्तयोरातः**' (६।४।११२) से आकार का लोप होता है। **उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः**' (७।१।७०) से प्राप्त नुम् आगम का इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है। ऐसे ही '**डुधाञ् धारणपोषणयोः**' (जु०उ०) धातु से-**दधत्।***

*(२) **जक्षत्।** यहां '**जक्ष भक्षहसनयोः**' (अ०प०) धातु से पूर्ववत् 'शतृ' प्रत्यय है। '**जक्षित्यादयः षट्**' (६।१।६) से 'जक्ष्' धातु की अभ्यस्त-संज्ञा है। ऐसे ही '**जागृ निद्राक्षये**' (अ०प०) धातु से-**जाग्रत्।***

***विशेषः** यहां '**ई च द्विवचने**' (७।१।७७) से ईकार की अनुवृत्ति नहीं होती है, क्योंकि 'शतृ' प्रत्यय को किसी सूत्र से ईकारादेश विहित नहीं है, अतः उसके प्रतिषेध का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है। 'शतृ' प्रत्यय को '**उगिदचां सर्वामस्थानेऽधातोः**' (७।१।७०) से नुम्-आगम प्राप्त है, उसका प्रतिषेध किया है, अतः यहां अनङ् आदेश आदि से व्यवहित 'नुम्' पद की सम्भव-प्रमाण से अनुवृत्ति की जाती है।*

नुमागम-विकल्पः-

(३४) वा नपुंसकस्य।७६।

प०वि०-वा अव्ययपदम्, नपुंसकस्य ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, नुम्, अभ्यास्तात्, शतुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अभ्यस्ताद् अङ्गात् शतुर्नपुंसकस्य वा नुम्।

अर्थः-अभ्यस्ताद् अङ्गाद् उत्तरो यः शतृ-प्रत्ययः, तदन्तस्य नपुंसकस्य विकल्पेन नुमागमो भवति।

उदा०-(**दा**) ददन्ति कुलानि। ददति कुलानि। (**धा**) दधन्ति कुलानि। दधति कुलानि। (जक्ष) जक्षन्ति कुलानि। जक्षति कुलानि। (**जागृ**) जाग्रन्ति कुलानि। जाग्रति कुलानि।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अभ्यस्तात्) अभ्यस्त-संज्ञक (अङ्गात्) अङ्ग से परे (शतुः) शतृ-प्रत्ययान्त (नपुंसकस्य) नपुंसकलिङ्ग को (वा) विकल्प से (नुम्) नुम् आगम होता है।*

*उदा०-(दा) **ददन्ति कुलानि। ददति कुलानि।** दानी कुल। (धा) **दधन्ति कुलानि। दधति कुलानि।** धारक-पोषक कुल। (जक्ष) **जक्षन्ति कुलानि। जक्षति कुलानि।** भक्षक कुल। (जागृ) **जाग्रन्ति कुलानि। जाग्रति कुलानि।** जागरूक कुल।*

*सिद्धि-**ददन्ति**। दा+लट्। दा+शतृ। दा+शप्+अत्। दा+०+अत्। दा-दा+अत्। द-द्+अत्। ददत्+जस्। ददत्+शि। ददत्+इ। ददनुम्त्+इ। ददन्त्+इ। ददन्ति।*

*यहां अभ्यस्त-संज्ञक 'दा' धातु से पूर्ववत् 'शतृ' प्रत्यय है। इस सूत्र से शतृ-प्रत्ययान्त नपुंसकलिङ्ग 'ददत्' शब्द को 'नुम्' आगम होता है। विकल्प-पक्ष में 'नुम्' आगम नहीं है-**ददति कुलानि**। ऐसे ही-**दधन्ति, दधति कुलानि** आदि।*

नुमागम-विकल्पः-

(३५) आच्छीनद्योर्नुम्।८०।

प०वि०-आत् ५।१ शीनद्योः ७।२ नुम् १।१।

स०-शीश्च नदीश्च ते शीनद्यौ, तयोः-शीनद्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, शतुः, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-आद् अङ्गाद् शतुः शीनद्योर्वा नुम्।

अर्थः-अकाराद् उत्तरस्य शतुरङ्गस्य शी-नद्योः परतो विकल्पेन नुमागमो भवति।

उदा०-(शी) तुदन्ती कुले, तुदती कुले। यान्ती कुले। याती कुले। करिष्यन्ती कुले, करिष्यती कुले। (**नदी**) तुदन्ती ब्राह्मणी, तुदती ब्राह्मणी। यान्ती ब्राह्मणी, याती ब्राह्मणी। करिष्यन्ती ब्राह्मणी, करिष्यती ब्राह्मणी।

आर्यभाषाः अर्थ-(आत्) अकार से परे (शतुः) शतृ इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (शीनद्योः) शी और नदी-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (वा) विकल्प से (नुम्) नुम् आगम होता है।

उदा०-(शी) **तुदन्ती कुले, तुदती कुले।** दो दुःखदायी कुल। **यान्ती कुले। याती कुले।** दो जानेवाले कुल। **करिष्यन्ती कुले, करिष्यती कुले।** भविष्यत् में करनेवाले दो कुल। (नदी) **तुदन्ती ब्राह्मणी, तुदती ब्राह्मणी।** दुःखी ब्राह्मणी। **यान्ती ब्राह्मणी, याती ब्राह्मणी।** जानेवाली ब्राह्मणी। **करिष्यन्ती ब्राह्मणी, करिष्यती ब्राह्मणी।** भविष्यत् काल में करनेवाली ब्राह्मणी।

सिद्धि-(१) **तुदन्ती।** तुद्+शतृ। तुद्+श+अत्। तुद्+अ+त्। तुदत्।। तुदत्+औ। तुदत्+शी। तुदनुम्त्+ई। तुदन्त्+ई। तुदन्ती।

यहां **'तुद व्यथने'** (तु०प०) धातु से 'लटः शतृशानचा०' (३।२।१२४) से 'शतृ' प्रत्यय है। 'तुदादिभ्यः शः' (३।१।७७) से 'श' विकरण-प्रत्यय होता है। इस शतृ-प्रत्ययान्त 'तुदत्' शब्द से पूर्ववत् 'औ' प्रत्यय है। **'नपुंसकाच्च'** (७।१।१९) से 'औ' के स्थान में 'शी' आदेश होता है। इस सूत्र से 'शी' प्रत्यय परे होने पर 'श' के अकार से परे 'शतृ' प्रत्यय को नुम् आगम होता है। विकल्प-पक्ष में 'नुम्' आगम नहीं है-**तुदती।** ऐसे ही **'या प्रापणे'** (अदा०प०) धातु से-**यान्ती, याती।**

(२) **करिष्यन्ती।** यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से **'लृट् शेषे च'** (३।३।१३) से भविष्यत्-काल में 'लृट्' प्रत्यय है। 'लृटः सद् वा' (३।३।१४) से 'लृट्' के स्थान में शतृ-आदेश होता है। **'स्यतासी लृलुटोः'** (३।१।३३) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) **तुदन्ती,** तुदती ब्राह्मणी आदि प्रयोगों में 'तुदत्' शब्द से स्त्रीत्व-विवक्षा में **'उगितश्च'** (४।१।६) से 'ङीप्' प्रत्यय है। इसकी **'यू स्त्र्याख्यौ नदी'** (१।४।३) से नदी-संज्ञा है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

नित्यं नुमागमः-

(३६) शप्श्यनोर्नित्यम्।८१।

प०वि०-शप्-श्यनोः ६।२ नित्यम् १।१।

स०-शप् च श्यन् च तौ शप्श्यनौ, तयोः-शप्श्यनोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, शतुः, आत्, नुम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-शप्श्यनोरात् शतुरङ्गस्य शीनद्योर्नित्यं नुम्।

अर्थः-शप्श्यनोरकाराद् उत्तरस्य शतुरङ्गस्य शीनद्योः परतो नित्यं नुमागमो भवति।

उदा०-**(शी)** शप्-पचन्ती कुले। श्यन्-दीव्यन्ती कुले। सीव्यन्ती कुले। **(नदी)** शप्-पचन्ती ब्राह्मणी। श्यन्-दीव्यन्ती ब्राह्मणी। सीव्यन्ती ब्राह्मणी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(शप्श्यनोः) शप् और श्यन् प्रत्यय सम्बन्धी (आत्) अकार से परे (शतुः) शतृ इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (शीनद्योः) शी और नदी-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (नित्यम्) सदा (नुम्) नुम् आगम होता है।*

*उदा०-(शी) शप्-**पचन्ती कुले**। दो पकानेवाले कुल। श्यन्-**दीव्यन्ती कुले**। दो खेलनेवाले कुल। **सीव्यन्ती कुले**। दो सिलाई करनेवाले कुल। (नदी) शप्-**पचन्ती ब्राह्मणी**। पकानेवाली ब्राह्मणी। श्यन्-**दीव्यन्ती ब्राह्मणी**। जूआ खेलनेवाली ब्राह्मणी। **सीव्यन्ती ब्राह्मणी**। सिलाई करनेवाली ब्राह्मणी।*

सिद्धि-(१) पचन्ती। *पच्+शतृ। पच्+शप्+अत्। पच्+अ+अत्। पचत्।। पचत्+औ। पचत्+शी। पचत्+ई। पचनुम्त्+ई। पचन्त्+ई। पचन्ती+सु। पचन्ती।*

*यहां '**डुपचष् पाके**' (भ्वा०उ०) धातु से '**लटः शतृशानचा०**' (३।२।१२४) से 'शतृ' प्रत्यय है। '**कर्तरि शप्**' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से शप्-सम्बन्धी अकार से परे 'शतृ' को नित्य 'नुम्' आगम होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(२) **दीव्यन्ती।** यहां '**दिवु क्रीडादिषु**' (दि०प०) धातु से पूर्ववत् प्रत्यय है। '**दिवादिभ्यः श्यन्**' (३।१।६९) से 'श्यन्' विकरण-प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही- '**षिवु तन्तुसन्ताने**' (दि०प०) से-**सीव्यन्ती।***

*(३) '**पचन्ती ब्राह्मणी**' आदि में 'शतृ' प्रत्यय के उगित् होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में '**उगितश्च**' (४।१।६) 'ङीप्' प्रत्यय होता है। इसकी '**युस्त्र्याख्यौ नदी**' (२।४।३) से नदी संज्ञा है।*

नुम्-आगमः-

(३७) सावनडुहः।८२।

प०वि०-सौ ७।१ अनडुहः ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, नुम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अनडुहोऽङ्गस्य सौ नुम्।

अर्थः-अनडुहोऽङ्गस्य सौ परतो नुमागमो भवति।

उदा०-अनड्वान्। हे अनड्वन् !

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अनडुहः) अनडुह् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (सौ) सु प्रत्यय परे होने पर (नुम्) नुम् आगम होता है।*

उदा०-अनड्वान्। बैल। अनः=शकटं वहतीति अनड्वान्। हे अनड्वन्! हे बैल।

सिद्धि-(१) अनड्वान्। अनडुह्+सु। अनडु नुम् ह्+स्। अनडुन्ह्+स्। अनडु आम् न् ह्+स्। अनड्व् आ न्ह्+स्। अनड्वान्ह्+०। अनड्वान्०। अनड्वान्।

*यहां 'अनडुह्' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। 'सु' प्रत्यय के परे होने पर इस सूत्र से 'अनडुह्' को 'नुम्' आगम होता है। तत्पश्चात् '**चतुरनडुहोरामुदात्तः**' (७।१।९८) से 'आम्' आगम भी होता है। '**हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०**' (६।१।६७) से 'सु' का लोप, '**संयोगान्तस्य लोपः**' (८।२।२३) से हकार का लोप और '**इको यणचि**' (६।१।७६) से यण् आदेश होता है। हे अनड्वन्! यहां सम्बोधन में '**अम् सम्बुद्धौ**' (७।१।९९) से 'अम्' आगम होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

नुम्-आगमः–

(३८) दृक्स्ववस्स्वतवसां छन्दसि।८३।

प०वि०-दृक्-स्ववस्-स्वतवसाम् ६।३ छन्दसि ७।१।

स०-दृक् च स्ववस् च स्वतवस् च ते दृक्स्ववस्स्वतवसः, तेषाम्-दृक्स्ववस्स्वतवसाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, नुम्, साविति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि दृकस्ववस्स्वतवसाम् अङ्गानां सौ नुम्।

अर्थः-छन्दसि विषये दृक्स्ववस्स्वतवसाम् अङ्गानां सौ परतो नुमागमो भवति।

उदा०-(दृक्) ईदृङ्। तादृङ्। यादृङ्। सदृङ् (ऋ० १।९४।७)। **(स्ववस्)** स्ववान् (ऋ० १०।९२।९)। **(स्वतवस्)** स्वतवाँः पायुरग्ने (ऋ० ४।२।६)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (दृक्स्ववस्स्वतवसाम्) दृक्, स्ववस्, स्वतवस् इन (अङ्गानाम्) अङ्गों को (सौ) सु प्रत्यय परे होने पर (नुम्) नुम् आगम होता है।*

*उदा०-(दृक्) ईदृङ्। ऐसा। तादृङ्। वैसा। **यादृङ्।** जैसा। सदृङ् (ऋ० १।९४।७)। सदृश=समान। (स्ववस्) स्ववान् (ऋ० १०।९२।९)। स्वगृहपति। (स्वतवस्) स्वतवाँः पायुरग्ने (ऋ० ४।२।६)। स्वतवस्वान्। विद्वान्/राजा।*

सिद्धि-(१) ईदृङ्। इदम्+दृश्+क्विन्। इदम्+दृश्+वि। इदम्+दृश्+०। ईश्+दृश्। ई+दृश्। ईदृश्+सु। ईदृ नुम् श्+सु। ईदृन्श्+स्। ईदृन्श्+०। ईदृन्०। ईदृन्। ईदृङ्।

*यहां इदम्-उपपद **'दृशिर् प्रेक्षणे'** (भ्वा०प०) धातु से **'त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ् च'** (३।२।६०) से 'क्विन्' प्रत्यय है। **'इदङ्किमोरीश्की'** (६।३।९०) से 'इदम्' के स्थान में 'ईश्' आदेश होता है। **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६७) से 'सु' का लोप और **'संयोगान्तस्य लोपः'** (८।२।२३) से संयोगान्त शकार का लोप होता है। **'क्विन्प्रत्ययस्य कुः'** (८।२।६२) से नकार को कुत्व ङकार होता है।*

*(२) **तादृङ्।** यहां तत्-उपपद 'दृश्' धातु से पूर्ववत् 'क्विन्' प्रत्यय है। **'आ सर्वनाम्नः'** (६।३।९१) से आत्व होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **सदृङ्।** यहां समान-उपपद 'दृश्' धातु से वा०- **'समानान्ययोश्चेति वक्तव्यम्'** (३।२।६०) से 'क्विन्' प्रत्यय है। **'दृक्दृशवतुषु'** (६।३।८९) से 'समान' के स्थान में 'स' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **स्ववान्।** स्ववस्+सु। स्ववनुम्स्+स्। स्ववन्स्+स्। स्ववान्स्+स्। स्ववान्स्+०। स्ववान्०। स्ववान्।*

*यहां 'स्ववस्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'सु' प्रत्यय परे होने पर 'स्ववस्' शब्द को 'नुम्' आगम होता है। **'सान्तमहतः संयोगस्य'** (६।४।१०) से नकारान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ होता है। पूर्ववत् सुलोप और संयोगान्त सकार का भी लोप होता है। शोभनम् अवसम्=रक्षणादिकं यस्य स स्ववान् (गृहपतिः)। महर्षिदयानन्द ऋग्वेदभाष्य (५।८।२)।*

ऐसे ही 'स्वतवस्' शब्द से स्वतवस्वान् स्वम्=स्वकीयं तवः=बलं यस्य स स्वतवान् (विद्वान्)। महर्षि दयानन्द ऋग्वेदभाष्य (१।६६।२)। स्वैर्गुणैर्वृद्धः (इन्द्रः=राजा) महर्षिदयानन्द ऋग्वेदभाष्य (४।२।६)।

।। इति आगमप्रकरणम्।।

आदेशागमप्रकरणम्

औत्-आदेशः-

(१) दिव औत्।८४।

प०वि०-दिवः ६।१ औत् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, साविति चानुवर्तते।

अन्वयः-दिवोऽङ्गस्य सावौत्।

अर्थः-दिवोऽङ्गस्य सौ परत औकारादेशो भवति।

उदा०-द्यौः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दिवः) दिव् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (सौ) सु-प्रत्यय परे होने पर (औत्) औकार आदेश होता है।*

*उदा०-**द्यौः**। स्वर्ग, आकाश, दिन।*

***सिद्धि-द्यौः**। दिव्+सु। दि औ+स्। द्यौस्। द्यौः।*

*यहां 'दिव्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। इस प्रत्यय के परे होने पर 'दिव्' को औकार अन्त्य-आदेश होता है। **'इको यणचि'** (६।१।७६) से यणादेश है।*

आत्-आदेशः-

(२) पथिमथ्यृभुक्षामात्।८५।

प०वि०-पथि-मथि-ऋभुक्षाम् ६।३ आत् १।१।

स०-पन्थाश्च मन्थाश्च ऋभुक्षाश्च ते पथिमथ्यृभुक्षाणः, तेषाम्-पथिमथ्यृभुक्षाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, साविति चानुवर्तते।

अन्वयः-पथिमथ्यृभुक्षाम् अङ्गानां सावाऽऽत्।

अर्थः-पथिमथ्यृभुक्षाम् अङ्गानां सौ परत आकारादेशो भवति।

उदा०-**(पथिन्)** पन्थाः। **(मथिन्)** मन्थाः। **(ऋभुक्षिन्)** ऋभुक्षाः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पथिमथ्यृभुक्षाम्) पथिन्, मथिन्, ऋभुक्षिन् इन (अङ्गानाम्) अङ्गों को (सौ) सु प्रत्यय परे होने पर (आत्) आकार आदेश होता है।*

*उदा०-**(पथिन्) पन्थाः**। मार्ग। **(मथिन्) मन्थाः**। रई, दही बिलौने की एक लकड़ी विशेष। **(ऋभुक्षिन्) ऋभुक्षाः**। इन्द्र। ऋभवः=देवा क्षियन्ति=वसन्त्यत्र इति ऋभुक्षः=स्वर्गः।*

***सिद्धि-पन्थाः**। पथिन्+सु। पथिन्+स्। पथि आ+स्। पथ आ+स्। पन्थ आ+स्। पन्थाः।*

*यहां 'पथिन्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'पथिन्' के नकार को आकार आदेश होता है। **'इतोऽत् सर्वनामस्थाने'** (७।१।८६) से इकार को अकार आदेश और **'थो न्थः'** (७।१।८७) से 'थ' को 'न्थ' आदेश होता है।*

*ऐसे ही 'मथिन्' शब्द से-**मन्थाः**। 'ऋभुक्षिन्' शब्द से-**ऋभुक्षाः**।*

अत्-आदेशः–

(३) इतोऽत् सर्वनामस्थाने।८६।

प०वि०–इतः ६।१ अत् १।१ सर्वनामस्थाने ७।१।

अनु०–अङ्गस्य, पथिमथ्यृभुक्षाम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–पथिमथ्यृभुक्षाम् अङ्गानाम् इतः सर्वनामस्थानेऽत्।

अर्थः–पशिमथ्यृभुक्षाम् अङ्गानाम् इकारस्य स्थाने सर्वनामस्थाने परतोऽकारादेशो भवति।

उदा०–(पथिन्) पन्थाः, पन्थानौ, पन्थानः, पन्थानम्, पन्थानौ। **(मथिन्)** मन्थाः, मन्थानौ, मन्थानः मन्थानम्, मन्थानौ। **(ऋभुक्षिन्)** ऋभुक्षाः, ऋभुक्षाणौ, ऋभुक्षाणः, ऋभुक्षाणम्, ऋभुक्षाणौ।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(पथिमथ्यृभुक्षाम्) पथिन्, मथिन्, ऋभुक्षिन् इन (अङ्गानाम्) अङ्गों के (इतः) इकार के स्थान में (सर्वनामस्थाने) सर्वनामस्थान-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (अत्) अकार आदेश होता है।*

*उदा०–(पथिन्) **पन्थाः।** मार्ग। **पन्थानौ।** दो मार्ग। **पन्थानः।** सब मार्ग। **पन्थानम्।** मार्ग को। **पन्थानौ।** दो मार्गों को। (मथिन्) **मन्थाः।** रई। **मन्थानौ।** दो रई। **मन्थान।** सब रई। **मन्थानम्।** रई को। **मन्थानौ।** दो रइयों को। (ऋभुक्षिन्) **ऋभुक्षाः।** इन्द्र। **ऋभुक्षाणौ।** दो इन्द्र। **ऋभुक्षाणः।** सब इन्द्र। **ऋभुक्षाणम्।** इन्द्र। को। **ऋभुक्षाणौ।** दो इन्द्रों को।*

*सिद्धि–**पन्थाः।** यहां 'पथिन्' शब्द के सर्वनामस्थान-संज्ञक 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'पथिन्' के इकार के स्थान में अकार आदेश होता है। **'भथिमथ्यृभुक्षामात्'** (७।१।८५) से आकार आदेश (थ) और **'थो न्थः'** (७।१।८७) से थकार को 'न्थ' आदेश होता है। ऐसे ही–**मन्थाः, ऋभुक्षाः।***

*'**पन्थानौ**' आदि पदों में '**सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ**' (६।४।८) से नकारान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ होता है। शेष कार्य पूर्ववत् हैं।*

न्थ-आदेशः–

(४) थो न्थः।८७।

प०वि०–थः ६।१ न्थः १।१।

अनु०–अङ्गस्य, पथिमथ्यृभुक्षाम्, सर्वनामस्थाने इति चानुवर्तते।

अन्वयः-पथिमथ्यृभुक्षाम् अङ्गानां थः सर्वनामस्थाने न्थः।

अर्थः-पथिमथ्यृभुक्षाम् अङ्गानां थकारस्य स्थाने सर्वनामस्थाने परतो न्थ आदेशो भवति।

उदा०-(पथिन्) पन्थाः, पन्थानौ, पन्थानः, पन्थानम्, पन्थानौ। **(मथिन्)** मन्थाः, मन्थानौ, मन्थानः, मन्थानम्, मन्थानौ। **(ऋभुक्षिन्)** अत्र थकारो नास्ति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(पथिमथ्यृभुक्षाम्) पथिन्, मथिन्, ऋभुक्षिन् इन (अङ्गानाम्) अङ्गों के (थः) थकार के स्थान में (सर्वनामस्थाने) सर्वनामस्थान-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (न्थः) न्थ आदेश होता है।*

*उदा०-(पथिन्) **पन्थाः। पन्थानौ, पन्थानः, पन्थानम्, पन्थानौ। (मथिन्)** मन्थाः, **मन्थानौ, मन्थानः, मन्थानम्, मन्थानौ। (ऋभुक्षिन्)** इस शब्द में थकार नहीं है। एक पद होने से बलात् अनुवृत्तिमात्र है।*

सिद्धि-पन्थाः।** यहां 'पथिन्' शब्द से सर्वनामस्थान-संज्ञक 'सु' प्रत्यय है। '**इतोऽत् सर्वनामस्थाने**' (७।१।८६) से इकार को अकार आदेश (थ) और इस सूत्र से थकार को न्थ आदेश होता है। '**पथिमथ्यृभुक्षामात्**' (७।१।८५) से आकार आदेश है। ऐसे ही-**मन्थाः।

*'**पन्थानौ**' आदि पदों में '**सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ**' (६।४।८) से नकारान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

टि-लोपः-

(५) भस्य टेर्लोपः।८८।

प०वि०-भस्य ६।१ टेः ६।१ लोपः १।१।

अनु०-अङ्गस्य, पथिमथ्यृभुक्षाम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-पथिमथ्यृभुक्षां भानाम् अङ्गानां टेर्लोपः।

अर्थः-पथिमथ्यृभुक्षां भ-संज्ञकानाम् अङ्गानां टेर्लोपो भवति।

उदा०-(पथिन्) पथः, पथा, पथे। **(मथिन्)** मथः, मथा, मथे। **(ऋभुक्षिन्)** ऋभुक्षः, ऋभुक्षा, ऋभुक्षे।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(पथिमथ्युभुक्षाम्) पथिन्, मथिन्, ऋभुक्षिन् इन (भानाम्) भ-संज्ञक (अङ्गानाम्) अङ्गों के (टेः) टि-भाग का (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-(पथिन्) **पथः।** मार्गों को। **पथा।** मार्ग से। **पथे।** मार्ग के लिये। (मथिन्) **मथः।** रइयों को। **मथा।** रई से। **मथे।** रई के लिये। (ऋभुक्षिन्) **ऋभुक्षः।** इन्द्रों को। **ऋभुक्षा।** इन्द्र से। **ऋभुक्षे।** इन्द्र के लिये।*

सिद्धि-पथः। *पथिन्+शस्। पथिन्+अस्। पथ्०+अस्। पथस्। पथः।*

*यहां 'पथिन्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'शस्' प्रत्यय है। **'यचि भम्'** (१।४।१८) से 'पथिन्' की भ-संज्ञा है। इस सूत्र से भ-संज्ञक 'पथिन्' शब्द के टि-भाग (इन्) का लोप होता है। ऐसे ही-**पथा** (टा)। **पथे** (ङे)। ऐसे ही-**मथः, मथा, मथे। ऋभुक्षः, ऋभुक्षा, ऋभुक्षे।***

असुङ्-आदेशः-

(६) पुंसोऽसुङ्।८६।

प०वि०-पुंसः ६।१ असुङ् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, सर्वनामस्थाने इति चानुवर्तते।

अन्वयः-पुंसोऽङ्गस्य, सर्वनामस्थानेऽसुङ्।

अर्थः-पुंसोऽङ्गस्य सर्वनामस्थाने परतोऽसुङ् आदेशो भवति।

उदा०-पुमान्, पुमांसौ, पुमांसः। पुमांसम्, पुमांसौ।

आर्यभाषाः अर्थ-*(पुंसः) पुंस् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (सर्वनामस्थाने) सर्वनामस्थान-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (असुङ्) असुङ् आदेश होता है।*

*उदा०-**पुमान्।** पुरुष। **पुमांसौ।** दो पुरुष। **पुमांसः।** सब पुरुष। **पुमांसम्।** पुरुष को। **पुमांसौ।** दो पुरुष को।*

सिद्धि-पुमान्। *पुंस्+सु। पुम् असुङ्+स्। पुम् अस्+स्। पुमस्+स्। पुम नुम् स्+स्। पुमन्स्+स्। पुमान्स्+स्। पुमान्स्+०। पुमान्०। पुमान्।*

*यहां 'पुंस्' शब्द से सर्वनामस्थान-संज्ञा 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'पुंस्' को असुङ् आदेश होता है। असुङ् आदेश के उगित् (उ) होने से **'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः'** (७।१।७०) से नुम् आगम होता है। **'सान्तमहतः संयोगस्य'** (६।४।१०) से दीर्घ, **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६७) से 'सु' का लोप और **'संयोगान्तस्य लोपः'** (८।२।२३) से संयोगान्त सकार का लोप होता है।*

'पुमांसौ' *आदि पदों में **'नश्चापदान्तस्य झलि'** (८।३।२४) से नकार को अनुस्वार आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

णित्-आदेशः–

(७) गोतो णित्।६०।

प०वि०–गोतः ५।१ णित् १।१।

स०–ण इद् यस्य स णित् (बहुव्रीहिः)।

अनु०–अङ्गस्य, सर्वनामस्थाने इति चानुवर्तते।

अन्वयः–गोतोऽङ्गात् सर्वनामस्थानं णित्।

अर्थः–गोतोऽङ्गाद् उत्तरं सर्वनामस्थानं णिद्वद् भवति।

उदा०–गौः, गावौ, गावः, गाम्, गावौ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(गोतः) गो इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (सर्वनामस्थानम्) सर्वनामस्थान-संज्ञक प्रत्यय (णित्) णिद्वत् होता है।*

*उदा०-**गौः**। गाय। **गावौ**। दो गाय। **गावः**। सब गाय। **गाम्**। गाय को। **गावौ**। दो गायों को।*

सिद्धि-(१) गौः। *गो+सु। गो+स्। गौ+स्। गौस्। गौः।*

*यहां 'गो' शब्द से सर्वनामस्थान-संज्ञक 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से यह 'सु' प्रत्यय णिद्वत् होता है। अतः **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से अजन्त अङ्ग को वृद्धि (औ) होती है। गावौ, गावः इन पदों में **'एचोऽयवायावः'** (६।१।७७) से आव्-आदेश होता है।*

*(२) **गाम्**। गो+अम्। गौ+अम्। ग् आ+अम्। गाम्।*

*यहां वृद्धिभूत औकार को **'औतोऽम्शसोः'** (६।१।९०) से आकार आदेश होता है।*

णित्-आदेशविकल्पः–

(८) णलुत्तमो वा।६१।

प०वि०–णल् १।१ उत्तमः १।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०–अङ्गस्य, णिद् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अङ्गाद् उत्तमो णल् वा णित्।

अर्थः–अङ्गाद् उत्तरम् उत्तमपुरुषस्य णल् विकल्पेन णिद्वद् भवति।

उदा०–अहं चकार, अहं चकर। अहं पपाच, अहं पपच।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अङ्गात्) अङ्ग से परे (उत्तमः) उत्तम पुरुष का (णल्) णल् प्रत्यय (वा) विकल्प से (णित्) णिद्वत् होता है।*

उदा०-अहं चकार, अहं चकर। मैंने किया। अहं पपाच। अहं पपच। मैंने पकाया।

सिद्धि-(१) चकार। कृ+लिट्। कृ+ल्। कृ+मिप्। कृ+णल्। कृ+अ। कृ-कृ+अ। क-कृ+अ। च-कार्+अ। चकार।

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'लिट्' प्रत्यय है। 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश, 'परस्मैपदानां णलतुसुस्०' (३।४।८२) से 'तिप्' के स्थान में उत्तमपुरुषीय 'णल्' आदेश होता है। 'णल्' के णित् होने से 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से अजन्त अङ्ग को वृद्धि (आर्) होती है। 'उरत्' (७।४।६६) से अभ्यास के ऋकार को अकार आदेश होता है। विकल्प पक्ष में 'णल्' णित् नहीं है, अतः यहां 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से अङ्ग को गुण होता है-चकर।

(२) पपाच। यहां 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् उत्तमपुरुषीय 'णल्' प्रत्यय है। इसके णित् पक्ष में 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से वृद्धि होती है। विकल्प-पक्ष में 'णल्' णित् नहीं है, अतः यहां उपधावृद्धि नहीं होती है-पपच।

णित्-आदेशः-

(६) सख्युरसम्बुद्धौ।६२।

प०वि०-सख्युः ५।१ असम्बुद्धौ ७।१।

स०-न सम्बुद्धिरिति असम्बुद्धिः, तस्याम्-असम्बुद्धौ (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, सर्वनामस्थाने, णिद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सख्युरङ्गाद् असम्बुद्धि सर्वनामस्थानं णित्।

अर्थः-सख्युरङ्गाद् उत्तरं सम्बुद्धिवर्जितं सर्वनामस्थानं णिदवद् भवति।

उदा०-सखायौ, सखायः। सखायम्, सखायौ।

आर्यभाषाः अर्थ-(सख्युः) सखि इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (असम्बुद्धि) सम्बुद्धि से भिन्न (सर्वनामस्थानम्) सर्वनामस्थान-संज्ञक (प्रत्ययस्य) प्रत्यय (णित्) णिद्वत् होता है।

उदा०-सखायौ। दो मित्र। सखायः। सब मित्र। सखायम्। मित्र को। सखायौ। दो मित्रों को।

सिद्धि-सखायौ। सखि+औ। सखै+औ। सखाय्+औ। सखायौ।

यहां 'सखि' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से सम्बुद्धि से भिन्न 'औ' प्रत्यय है। इस सूत्र से सर्वनामस्थान-संज्ञक 'औ' प्रत्यय णिद्वत् होता है। अतः 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से अजन्त अङ्ग को वृद्धि (ऐ) होती है। 'एचोऽयवायावः' (६।१।७७) से 'आय्' आदेश होता है। ऐसे ही-सखायौ, सखायम्।

अनङ्-आदेशः–

(१०) अनङ् सौ।६३।

प०वि०-अनङ् १।१ सौ ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, सख्युः, असम्बुद्धाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-सख्युरङ्गस्य असम्बुद्धौ सावनङ्।

अर्थः-सख्युरङ्गस्य सम्बुद्धिवर्जिते सौ परतोऽनङादेशो भवति।

उदा०-सखा।

आर्यभाषाः अर्थ-*(सख्युः) सखि इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (असम्बुद्धौ) सम्बुद्धि से भिन्न (सौ) सु प्रत्यय परे होने पर (अनङ्) अनङ् आदेश होता है।*

*उदा०-**सखा**। मित्र।*

सिद्धि-सखा। *सखि+सु। सख् अनङ्+स्। सख् अन्+स्। सखन्+स्। सखान्+स्। सखान्+०। सखा०। सखा।*

*यहां 'सखि' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से सम्बुद्धि से भिन्न 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'सखि' शब्द को अनङ् आदेश होता है। '**सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ**' (६।४।८) से नकारान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ होता है। '**हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०**' (६।१।६७) से 'सु' का लोप और '**नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य**' (८।२।७) से नकार का लोप होता है।*

अनङ्-आदेशः–

(११) ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च।६४।

प०वि०-ऋत्-उशनस्-पुरुदंसस्-अनेहसाम् ६।३ च अव्ययपदम्।

स०-ऋच्च उशना च पुरुदंसा च अनेहा च ते ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसः, तेषाम्-ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, असम्बुद्धौ, अनङ् साविति चानुवर्तते।

अन्वयः-ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसाम् अङ्गानां चासम्बुद्धौ सावनङ्।

अर्थः-ऋकारान्ताद् उशनसः पुरुदंसोऽनेहसोऽङ्गस्य च सम्बुद्धिवर्जिते सौ परतोऽनङादेशो भवति।

उदा०-**(ऋकारान्तः)** कर्ता। हर्ता। माता। पिता। भ्राता। **(उशनस्)** उशना। **(पुरुदंस्)** पुरुदंसा। **(अनेहसस्)** अनेहा।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसाम्) ऋकारान्त उशनस्, पुरुदंसस्, अनेहस् इन (अङ्गस्य) अङ्गों को (च) भी (असम्बुद्धौ) सम्बुद्धि से भिन्न (सौ) सु-प्रत्यय परे होने पर (अनङ्) अनङ् आदेश होता है।*

*उदा०-(ऋकारान्त) **कर्ता।** करनेवाला। **हर्ता।** हरण करनेवाला। **माता।** जननी। **पिता।** जनक। **भ्राता।** भाई। (उशनस्) **उशना।** शुक्र ग्रह, सामद्रष्टा ऋषि का नाम। (पुरुदंसस्) **पुरुदंसा।** हंस (अनेहस्) **अनेहा।** काल/समय।*

*सिद्धि-**कर्ता।** कर्तृ+सु। कर्तृ अनङ्+स्। कर्त् अन्+स्। कर्तन्+स्। कर्तान्+स्। कर्तान्+०। कर्ता०। कर्ता।*

*यहां ऋकारान्त 'कर्तृ' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से सम्बुद्धि से भिन्न 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से अनङ् आदेश होता है। **'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ'** (६।४।८) से दीर्घ, **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६७) से 'सु' का लोप और **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से नकार का लोप होता है। ऐसे ही-हर्ता आदि तथा उशना, पुरुदंसा, अनेहा।*

तृजवद्भावः-

(१२) तृज्वत् क्रोष्टुः।९५।

प०वि०-तृज्वत् अव्ययपदम्, क्रोष्टुः १।१।

अनु०-अङ्गस्य, सर्वनामस्थाने, असम्बुद्धाविति चानुवर्तते।

तद्धितवृत्तिः-तृचा तुल्यं वर्तते इति तृज्वत्। **'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः'** (५।१।११४) इत्यनेन तुल्यार्थे वतिः प्रत्ययः।

अन्वयः-क्रोष्टुरङ्गस्य असम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने तृज्वत्।

अर्थः-क्रोष्टुरित्येतस्याङ्गस्य सम्बुद्धिवर्जिते सर्वनामस्थाने परतस्तृज्वत् कार्यं भवति। तृजन्तस्य यद्रूपं तदस्यापि भवतीत्यर्थः।

उदा०-क्रोष्टा, क्रोष्टारौ, क्रोष्टारः। क्रोष्टारम्, क्रोष्टारौ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(क्रोष्टुः) क्रोष्टु इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (असम्बुद्धौ) सम्बुद्धि से भिन्न (सर्वनामस्थाने) सर्वनामस्थान-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (तृज्वत्) तृच् प्रत्यय के समान कार्य होता है। तृच्-प्रत्ययान्त शब्द का जो रूप होता है, वह इसका भी होता है।*

*उदा०-**क्रोष्टा।** शृगाल (गीदड़)। **क्रोष्टारौ।** दो शृगाल। **क्रोष्टारः।** सब शृगाल। **क्रोष्टारम्।** शृगाल को। **क्रोष्टारौ।** दो शृगालों को।*

*सिद्धि-**क्रोष्टा।** क्रोष्टु+सु। क्रोष्टृ+स्। क्रोष्ट् अन्+स्। क्रोष्टन्+स्। क्रोष्टान्+स्। क्रोष्टान्+०। क्रोष्टा०। क्रोष्टा।*

*यहां 'क्रोष्टु' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से सम्बुद्धि से भिन्न सर्वनामस्थान-संज्ञक 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से यह तृज्-प्रत्ययान्त 'कर्तृ' आदि शब्दों के समान ऋकारान्त हो जाता है। अतः इसे **'ऋदुशनसपुरुदंसोऽनेहसां च'** (७।१।९४) से अनङ् आदेश होता है। शेष कार्य 'कर्ता' शब्द के समान है।*

***'क्रौष्टारौ'** आदि पदों में **'ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः'** (७।३।११०) से गुण, (अ) 'उरण् रपरः' (१।१।५१) से इसे रपरत्व (अर्) और **'अप्तृन्तृच्०'** (६।४।११) से दीर्घ (आर्) होता है।*

तृजवद्भावः–

(१३) स्त्रियां च।९६।

प०वि०–स्त्रियाम् ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–अङ्गस्य, तृज्वत् क्रोष्टुरिति चानुवतते।

अन्वयः–क्रोष्टुरङ्गस्य स्त्रियां च तृज्वत्।

अर्थः–क्रोष्टुरित्येतस्याङ्गस्य स्त्रियां च तृजवत् कार्यं भवति।

उदा०–क्रोष्ट्री। क्रोष्ट्रीभ्याम्। क्रोष्ट्रीभिः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(क्रोष्टुः) क्रोष्टु इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (च) भी (तृज्वत्) तृच्-प्रत्यय के समान कार्य होता है।*

*उदा०-**क्रोष्ट्री।** शृगाली (गीदड़ी)। **क्रोष्ट्रीभ्याम्।** दो शृगालियों से। **क्रोष्ट्रीभिः।** सब शृगालियों से।*

*सिद्धि-**क्रोष्ट्री।** क्रोष्टु+ङीप्। क्रोष्टृ+ई। क्रोष्ट्री+सु। क्रोष्ट्री+०। क्रोष्ट्री।*

*यहां 'क्रोष्टु' शब्द को तृज्वद्भाव होने से स्त्रीलिङ्ग में **'उगितश्च'** (४।१।६) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है। **'इको यणचि'** (६।१।७६) से ऋकार को 'यण्' (र्) आदेश होता है। **'उदात्तयणो** हल्पूर्वात्' (६।१।१७१) से 'क्रोष्ट्री' शब्द अन्तोदात्त ही होता है-**क्रोष्ट्री।** ऐसे ही-**क्रोष्ट्रीभ्याम्, क्रोष्टृभिः।***

तृज्वद्भाव-विकल्पः–

(१४) विभाषा तृतीयादिष्वचि।९७।

प०वि०–विभाषा १।१ तृतीयादिषु ७।३ अचि ७।१।

स०–तृतीया आदिर्यासां ताः-तृतीयादयः, तासु-तृतीयादिषु (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, तृज्वत्, क्रोष्टुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-क्रोष्टुरङ्गस्य अजादिषु तृतीयादिषु विभाषा तृज्वत्।

अर्थः-क्रोष्टुरित्येतस्याऽङ्गस्याऽजादिषु तृतीयादिषु विभक्तिषु परतो विकल्पेन तृज्वत् कार्यं भवति।

उदा०-(**टा**) क्रोष्ट्रा, क्रोष्टुना। (**ङे**) क्रोष्ट्रे, क्रोष्टवे। (**ङसि**) क्रोष्टुः, क्रोष्टोः। (**ङस्**) क्रोष्टुः, क्रोष्ट्रोः। (**ओस्**) क्रोष्ट्रोः, क्रोष्ट्वोः। (**ङि**) क्रोष्टरि, क्रोष्टौ। (**ओस्**) क्रोष्ट्रोः, क्रोष्ट्वोः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(क्रोष्टुः) क्रोष्टु इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (अजादिषु) अजादि (तृतीयादि) तृतीया-आदि विभक्ति परे होने पर (विभाषा) विकल्प से (तृज्वत्) तृच् के समान कार्य होता है।*

*उदा०-(टा) **क्रोष्ट्रा, क्रोष्टुना।** शृगाल (गीदड़) से। (ङे) **क्रोष्ट्रे, क्रोष्टवे।** शृगाल के लिये। (ङसि) **क्रोष्टुः, क्रोष्टोः।** शृगाल से। (ङस्) **क्रोष्टुः, क्रोष्ट्रोः।** शृगाल का। (ओस्) **क्रोष्ट्रोः, क्रोष्ट्वोः।** दो शृगालों का। (ङि) **क्रोष्टरि, क्रोष्टौ।** शृगाल में/पर। (ओस्) **क्रोष्ट्रोः, क्रोष्ट्वोः।** दो शृगालों में/पर।*

*सिद्धि-(१) **क्रोष्ट्रा।** क्रोष्टु+टा। क्रोष्टृ+आ। क्रोष्ट्र्+आ। क्रोष्ट्रा।*

*यहां 'क्रोष्टु' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से तृतीया-आदि और अजादि 'टा' (आ) प्रत्यय है। इस सूत्र 'कोष्टु' शब्द को तृज्वद्भाव होता है। अतः क्रोष्टु शब्द क्रोष्टृ रूप हो जाता है। '**इको यणचि**' (७।३।११०) से 'यण्' आदेश (र्) है। ऐसे ही-**क्रोष्ट्रे, क्रोष्ट्रोः।***

*(२) **क्रोष्टुः।** क्रोष्टु+ङसि। क्रोष्टृ+अस्। क्रोष्ट्+उ+स्। क्रोष्टुस्। क्रोष्टुः।*

*यहां 'क्रोष्टु' शब्द से पूर्ववत् 'ङसि' प्रत्यय है। तृज्वद्भाव होकर '**ऋत उत्**' (६।१।१११) से उकार रूप एकादेश होता है। ऐसे ही 'ङस्' में-**क्रोष्टुः।***

*(३) **क्रोष्टरि।** क्रोष्टु+ङि। क्रोष्टृ+इ। क्रोष्ट् अर्+इ। क्रोष्टरि।*

*यहां 'कोष्टु' शब्द से पूर्ववत् 'ङि' प्रत्यय है। तृज्वद्भाव होकर '**ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः**' (७।३।११०) से गुण (अर्) होता है।*

*(४) **क्रोष्टुना।** क्रोष्टु+टा। क्रोष्टु+आ। क्रोष्टु+ना। क्रोष्टुना।*

*यहां 'क्रोष्टु' शब्द से पूर्ववत् 'टा' प्रत्यय है। विकल्प-पक्ष में तृज्वद्भाव नहीं है। अतः '**आङो नाऽस्त्रियाम्**' (७।३।१२०) से 'टा' के स्थान में 'ना' आदेश होता है।*

*(५) **क्रोष्टवे।** क्रोष्टु+ङे। कोष्टु+ए। क्रोष्टो+ए। क्रोष्टव्+ए। क्रोष्टवे।*

*यहां 'क्रोष्टु' शब्द से पूर्ववत् 'ङे' प्रत्यय है। विकल्प-पक्ष में तृज्वद्भाव नहीं है। अतः '**घेर्ङिति**' (७।३।१११) से गुण और '**एचोऽयवायावः**' (६।१।७७) से अव्--आदेश होता है।*

*(६) **क्रोष्टोः।** क्रोष्टु+ङसि। क्रोष्टु+अस्। क्रोष्टो+अस्। क्रोष्टोस्। क्रोष्टोः।*

*यहां 'क्रोष्टु' शब्द से पूर्ववत् 'ङसि' प्रत्यय है। विकल्प-पक्ष में तृज्वद्भाव नहीं है। अतः **'घेर्ङिति'** (७।३।१११) से गुण (ओ) होता है। 'ङसिङसोश्च' (६।१।११०) से पूर्वरूप एकादेश (ओ+अ=ओ) होता है। ऐसे ही 'ङस्' में भी-**क्रोष्टुः।***

*(७) **क्रोष्टौ।** क्रोष्टु+ङि। क्रोष्टु+इ। क्रोष्ट् अ+औ। क्रोष्टौ।*

*यहां 'क्रोष्टु' शब्द से पूर्ववत् 'ङि' प्रत्यय है। विकल्प-पक्ष में तृज्वद्भाव नहीं है। अतः **'अच्च घेः'** (७।३।११८) से 'ङि' के स्थान में 'औ' आदेश और अङ्ग के अन्त में अकार आदेश होता है।*

क्रोष्टु शब्द के समस्त रूप

विभक्ति	*एकवचन*	*द्विवचन*	*बहुवचन*
प्रथमा	*क्रोष्टा*	*क्रोष्टारौ*	*क्रोष्टारः*
द्वितीया	*क्रोष्टारम्*	*क्रोष्टारौ*	*क्रोष्टून्*
तृतीया	*क्रोष्ट्रा (क्रोष्टुना)*	*क्रोष्टुभ्याम्*	*क्रोष्टुभिः*
चतुर्थी	*क्रोष्ट्रे (क्रोष्टवे)*	,,	*क्रोष्टुभ्यः*
पञ्चमी	*क्रोष्टुः (क्रोष्टोः)*	,,	,,
षष्ठी	,,	*क्रोष्ट्रोः (क्रोष्ट्वोः)*	*क्रोष्टूनाम्*
सप्तमी	*क्रोष्टरि (क्रोष्टौ)*	,, ,,	*क्रोष्टुषु*
सम्बोधन	*हे क्रोष्टः !*	*हे क्रोष्टारौ !*	*हे क्रोष्टारः !*

क्रोष्टा=शृगाल (गीदड़)।

आम्-आगमः–

(१५) चतुरनडुहोरामुदात्तः।९८।

प०वि०-चतुर्-अनडुहोः ६।२ आम् १।१ उदात्तः १।१।

स०-चत्वारश्च अनड्वाँश्च तौ चतुरनडुहौ, तयोः-चतुरनडुहोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, सर्वनामस्थाने इति चानुवर्तते।

अन्वयः-चतुरनडुहोरङ्गयोः सर्वनामस्थाने आम् उदात्तः।

अर्थः-चतुरनडुहोरङ्गयोः सर्वनामस्थाने परत आमागमो भवति। स चोदात्तो भवति।

उदा०-(चतुर्) चत्वारः। **(अनडुह्)** अनड्वान्, अनड्वाहौ, अनड्वाहः। अनड्वाहम्, अनड्वाहौ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(चतुरनडुहोः) चतुर्, अनडुह् इन (अङ्गयोः) अङ्गों को (सर्वनामस्थाने) सर्वनामस्थान-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (आम्) आम् आगम होता है (उदात्तः) और वह उदात्त होता है।*

*उदा०-(चतुर्) **चत्वारः।** चार। (अनडुह्) **अनड्वान्।** बैल। **अनड्वाहौ।** दो बैल। **अनड्वाहः।** सब बैल। **अनड्वाहम्।** बैल को। **अनड्वाहौ।** दो बैलों को।*

*सिद्धि-(१) **चत्वारः।** चतुर्+जस्। चतुर्+अस्। चतु आम्+र्+अस्। चत्व् आर्+अस्। चत्वारस्। चत्वारः।*

*यहां 'चतुर्' शब्द से पूर्ववत् सर्वनामस्थान-संज्ञक 'जस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से उदात्त आम्-आगम होता है। '**इको यणचि**' (६।१।७६) से यण्-आदेश (व्) है। आम्-आगम के उदात्त होने से '**अनुदात्तं पदमेकवर्जम्**' (६।१।१५५) से शेष पद अनुदात्त होता है और '**उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः**' (८।४।६६) से उदात्त से परवर्ती अच् स्वरित होता है-**चत्वारः।***

*(२) **अनड्वान्।** अनडुह्+सु। अनडु अनड्+स्। अनडु अन्+स्। अनडु आम् अन्+स्। अनड्व् आ अन्। अनड्वान्+सु। अनड्वान्+०। अनड्वान्।*

*यहां 'अनडुह्' शब्द से पूर्ववत् सर्वनामस्थान-संज्ञक 'सु' प्रत्यय है। '**सावनडुहः**' (७।१।८२) से अनङ् आदेश और इस सूत्र से आम् आगम होता है। '**इको यणचि**' (६।१।७६) से यण् आदेश (व्) है। '**हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०**' (६।१।६७) से 'सु' का लोप होता है। ऐसे ही-**अनड्वाहौ** आदि।*

अम्-आगमः—

(१६) अम् सम्बुद्धौ।९९।

प०वि०-अम् १।१ सम्बुद्धौ ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, चतुरनडुहोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-चतुरनडुहोरङ्गयोः सम्बुद्धावम्।

अर्थः-चतुरनडुहोरङ्गयोः सम्बुद्धौ परतोऽमागमो भवति।

उदा०-**(चतुर्)** हे प्रियचत्वः ! **(अनडुह्)** हे अनड्वन् ! हे प्रियानडवन् !

आर्यभाषाः *अर्थ-(चतुरनडुहोः) चतुर् और अनडुह् इन (अङ्गयोः) अङ्गों को (सम्बुद्धौ) सम्बुद्धि {सु} परे होने पर (अम्) अम् आगम होता है।*

*उदा०-(चतुर्) **हे प्रियचत्वः** ! हे चार वर्णों से प्रेम करनेवाले विद्वन् ! (अनडुह्) **हे अनड्वन्** ! हे बैल ! अथवा तत्सदृश पुरुष। हे **प्रियानडवन्** ! हे बैल से प्रेम करनेवाले किसान !*

*सिद्धि-(१) **प्रियचत्वः** ! प्रियचतुर्+सु। प्रियचतुर्+स्। प्रियचतु अम् र्+स्। प्रियचतु अर्+स्। प्रियचत्वर्+स्। प्रियचत्वर्+०। प्रियचत्वर्। प्रियचत्वः।*

*यहां प्रथम प्रिय और चतुर् शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। तत्पश्चात् 'प्रियचतुर्' शब्द से सम्बुद्धि-संज्ञक 'सु' प्रत्यय है। **'एकवचनं सम्बुद्धिः'** (२।३।४९) से आमन्त्रित के एकवचन (सु) की सम्बुद्धि संज्ञा है। इस सूत्र से 'प्रियचतुर्' को 'अम्' आगम होता है। **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६७) से 'सु' का लोप और **'खरवसानयोर्विसर्जनीयः'** (८।३।१५) से रेफ को विसर्जनीय होता है।*

*(२) **अनड्वन्।** अनडुह्+सु। अनडु अनड्+स्। अनडु अम्+स्। अनड्व् अ अन्+स्। अनड्वन्+स्। अनड्वन्+०। अनड्वन्।*

*यहां 'अनडुह्' शब्द से सम्बुद्धि-संज्ञक 'सु' प्रत्यय है। **'सावनडुहः'** (७।१।८२) से अनड् आदेश और इस सूत्र से 'अम्' आगम होता है। **'इको यणचि'** (६।१।७६) से यण् आदेश (व्) है। ऐसे ही-**प्रियानड्वन्।***

इत्-आदेशः-

(१७) ऋत इद् धातोः।१००।

प०वि०-ऋतः ६।१ इत् १।१ धातोः ६।१।

अनु०-अङ्गस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ऋतो धातोरङ्गस्य इत्।

अर्थः-ऋकारान्तस्य धातोरङ्गस्य इकारादेशो भवति।

उदा०-(कॄ) स किरति। **(गॄ)** स गिरति। **(तॄ)** आस्तीर्णम्। **(शॄ)** विशीर्णम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(ऋतः) ऋकारान्त (धातोः) धातुरूप (अङ्गस्य) अङ्ग को (इत्) इकार आदेश होता है।*

*उदा०-**(कॄ) स किरति।** वह फैंकता है। **(गॄ) स गिरति।** वह निगलता है। **(तॄ) आस्तीर्णम्।** आच्छादन। **(शॄ) विशीर्णम्।** टूटा-फूटा।*

*सिद्धि-(१) **किरति।** कॄ+लट्। कॄ+ल्। किर्+तिप्। किर्+श+ति। किर्+अ+ति। किरति।*

*यहां **'कॄ विक्षेपे'** (तु०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। इस सूत्र से ऋकार के स्थान में इकार आदेश और इसे **'उरण् रपरः'** (१।१।५१) से रपरत्व होता है। 'तुदादिभ्यः शः' (३।१।७७) से 'श' विकरण-प्रत्यय है। ऐसे ही **'गॄ निगरणे'** (तु०प०) धातु से-**गिरति।***

*(२) **आस्तीर्णम्।** आङ्+स्तॄ+क्त। आ+स्तिर्+त। आ+स्तिर्+न। आ+स्तीर्+ण। आस्तीर्ण+सु। आस्तीर्णम्।*

*यहां आङ्-उपसर्गपूर्वक **'स्तॄञ् आच्छादने'** (स्वा०उ०) धातु से **'नपुंसके भावे क्तः'** (३।३।११४) से 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से ॠकार के स्थान में इकार आदेश और इसे पूर्ववत् रपरत्व होता है। **'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः'** (८।२।४२) से 'त' को 'न' आदेश, **'हलि च'** (८।२।७७) से दीर्घ और **'रषाभ्यां नो णः समानपदे'** (८।४।१) से णत्व होता है। ऐसे ही वि-उपसर्गपूर्वक **'शॄ हिंसायाम्'** (क्र्या०प०) धातु से-**विशीर्णम्।***

इत्-आदेशः–

(१८) उपधायाश्च।१०१।

प०वि०-उपधायाः ६।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, ॠतः, इद्, धातोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-धातोरङ्गस्य उपधाया ॠतश्च इत्।

अर्थः-धातोरङ्गस्य उपधाया ॠकारस्य स्थाने च इकारादेशो भवति।

उदा०-स कीर्तयति। तौ कीर्तयतः। ते कीर्तयन्ति।

***आर्यभाषाः** **अर्थ**-(धातोः) धातु-रूप (अङ्गस्य) अङ्ग **के** (उपधायाः) उपधाभूत (ॠतः) ॠकार के स्थान में (च) भी (इत्) इकार आदेश होता है।*

*उदा०-**स कीर्तयति।** वह प्रसिद्ध करता है। **तौ कीर्तयतः।** वे दोनों प्रसिद्ध करते हैं। **ते कीर्तयन्ति।** वे सब प्रसिद्ध करते हैं।*

*सिद्धि-**कीर्तयति।** कॄत्+णिच्। कॄत्+इ। किर्त्+इ। कीर्त्+इ। कीर्ति+लट्। कीर्तयति।*

*यहां **'कॄत संशब्दने'** (चु०उ०) धातु से प्रथम **'सत्यापपाश०'** (३।१।२५) से चौरादिक 'णिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से धातु के उपधाभूत ॠकार को इकार आदेश, पूर्ववत् रपरत्व और **'उपधायां च'** (८।२।७८) से दीर्घ होता है। तत्पश्चात् णिजन्त 'कीर्ति' धातु से लट् प्रत्यय है। ऐसे ही-**कीर्तयतः, कीर्तयन्ति।***

उत्-आदेशः–

(१९) उदोष्ठ्यपूर्वस्य।१०२।

प०वि०-उत् १।१ ओष्ठ्यपूर्वस्य ६।१।

स०-ओष्ठयोर्भव ओष्ठ्यः। ओष्ठ्यः पूर्वो यस्मात् स ओष्ठ्यपूर्वः, तस्य-ओष्ठ्यपूर्वस्य (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, ॠतः, धातोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-ओष्ठ्यपूर्वस्य ॠतो धातोरङ्गस्य उत्।

अर्थः-ओष्ठ्यपूर्वस्य ॠकारान्तस्य धातोरङ्गस्य उकारादेशो भवति।

उदा०-पूर्ताः पिण्डाः। स पुपूर्षति। स मुमूर्षति। स सुस्वूर्षति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(ओष्ठ्यपूर्वस्य) ओष्ठ्य वर्ण जिसके पूर्व है उस (ॠतः) ॠकारान्त (धातोः) धातु-रूप (अङ्गस्य) अङ्ग को (उत्) उकार आदेश होता है।*

*उदा०-**पूर्ताः पिण्डाः।** पूरण किये गये पिण्ड। स **पुपूर्षति।** वह पालन/पूरण करना चाहता है। स **मुमूर्षति।** वह मरना चाहता है। स **सुस्वूर्षति।** वह शब्द/उपताप करना चाहता है।*

***सिद्धि**-(१) **पूर्ताः।** पॄ+क्त। पॄ+त। पुर्+त। पूर्+त। पूर्त+जस्। पूर्ताः।*

*यहां '**पॄ पालनपूरणयोः**' (क्र्या०प०) धातु से '**निष्ठा**' (३।२।१०२) से भूतकाल में 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से ओष्ठ्यपूर्वी 'पॄ' धातु के ॠकार को उकार आदेश होता है। '**उरण् रपरः**' (१।१।५१) से रपरत्व और '**हलि च**' (८।२।७७) से दीर्घ होता है। '**न ध्याख्यापॄमूर्च्छिमदाम्**' (८।२।५७) से प्राप्त नत्व का प्रतिषेध है।*

*(२) **पुपूर्षति।** पॄ+सन्। पॄ+स। पुर्+सन्। पुर्-पुर्+स। पुपूर्ष।। पुपूर्ष+लट्। पुपूर्षति।*

*यहां '**पॄ पालनपूरणयो**' (क्र्या०प०) धातु से '**धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा**' (३।१।७) से 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से ओष्ठ्यपूर्वी 'पॄ' धातु के ॠकार को उकार आदेश होता है। पूर्ववत् रपरत्व और दीर्घ होता है। तत्पश्चात् सन्नन्त 'पुपूर्ष' धातु से 'लट्' प्रत्यय है। ऐसे ही '**मॄ हिंसायाम्**' (क्र्या०प०) धातु से-**मुमूर्षति।** '**स्वॄ शब्दोपतापयोः**' (भ्वा०प०) धातु से-**सुस्वर्षति।***

बहुलम् उत्-आदेशः-

(२०) बहुलं छन्दसि।१०३।

प०वि०-बहुलम् १।१ छन्दसि ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, ॠत, धातोः, ओष्ठ्यपूर्वस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि ओष्ठ्यपूर्वस्य ॠतो धातोरङ्गस्य बहुलम् उत्।

अर्थः-छन्दसि विषये ओष्ठ्यपूर्वस्य ॠकारान्तस्य धातोरङ्गस्य बहुलम् उकारादेशो भवति। **उदाहरणम्**-

(१) ओष्ठ्यपूर्वस्य इत्युक्तम्, अनोष्ठ्यपूर्वस्यापि भवति-मित्रावरुणा ततुरिम् (ऋ० ४।३९।२)। दूरे ह्यध्वा जगुरिः (ऋ० [illegible]।१०८।१)।

(२) ओष्ठ्यपूर्वस्यापि न भवति-पप्रितमम्। वव्रितमम्।

(३) क्वचिद् ओष्ठ्यपूर्वस्य भवति-पपुरिः (ऋ० १।४६।४)।

आर्यभाषाः अर्थ- *(छन्दसि) वेदविषय में (ओष्ठ्यपूर्वस्य) ओष्ठ्य वर्ण जिसके पूर्व है **उस** (ऋतः) ऋकारान्त (धातोः) धातु-रूप (अङ्गस्य) अङ्ग को (बहुलम्) प्रायशः (उत्) उकार आदेश होता है। उदाहरणम्-*

*(१) ओष्ठ्यपूर्वी धातु को उकार आदेश कहा है किन्तु छन्द में बहुल-वचन से अनोष्ठ्यपूर्वी धातु को भी उकार आदेश होता है-**मित्रावरुणा ततुरिम्** (ऋ० ४।३९।२)। ततुरिः=तरनेवाला। **दूरे ह्यध्वा जगुरिः** (ऋ० १०।१०८।१)। जगुरिः=निगलनेवाला।*

*(२) ओष्ठ्यपूर्वी धातु को भी छन्द में बहुल-वचन से उकार आदेश नहीं होता है-**पप्रितमम्।** अतिशय पालन-पोषण करनेवाला। **वव्रितमम्।** अतिशय वरण करनेवाला।*

*(३) कहीं छन्द में बहुलवचन से ओष्ठ्यपूर्वी धातु को उकार आदेश हो भी जाता है-**पपुरिः** (ऋ० १।४६।४)। पपुरिः=पालन-पोषण करनेवाला।*

सिद्धि-(१) ततुरिः। *तॄ+लिट्। तॄ+किन्। तॄ+इ। त् उर+इ। तुर्+इ। तॄ+तॄ+इ। तर्+तुर्+इ। त-तुर्+इ। ततुरि+सु। ततुरिः।*

*यहां '**तॄ प्लवनसन्तरणयोः**' (भ्वा०प०) धातु से '**आदृगमहनजनः किकिनौ लिट् च**' (३।२।१७१) से 'किन्' प्रत्यय और लिट्वत् कार्य है। इस सूत्र से अनोष्ठ्यपूर्वी 'तॄ' धातु को उकार आदेश होता है। तत्पश्चात् '**द्विर्वचनेऽचि**' (१।१।५९) से इसे स्थानिवत् मानकर 'तॄ' को लिड्वद्भाव से द्वित्व, '**उरत्**' (७।४।६६) से अभ्यासस्थ ऋकार को अकार आदेश होता है। ऐसे ही '**गॄ निगरणे**' (तु०प०) धातु से-**जगुरिः।** '**कुहोश्चुः**' (७।४।६२) से अभ्यासस्थ गकार को चवर्ग जकार होता है।*

(२) पप्रितमम्। *यहां '**पॄ पालनपूरणयोः**' (क्र्या०प०) धातु से पूर्ववत् 'किन्' प्रत्यय है। यहां ओष्ठ्यपूर्वी 'पॄ' धातु को उकार आदेश नहीं है। '**इको यणचि**' (६।१।७६) से यण् आदेश होता है। तत्पश्चात् 'पप्रि' शब्द से '**अतिशायने तमबिष्ठनौ**' (५।३।६८) से अतिशायन अर्थ में 'तमप्' प्रत्यय है। ऐसी ही '**वॄ वरणे**' (क्र्या०प०) धातु से-**वव्रितमम्।***

(३) पपुरिः। *यहां '**पॄ पालनपूरणयोः**' (क्र्या०प०) धातु से पूर्ववत् 'किन्' प्रत्यय है। यहां छन्दविषय में ओष्ठ्यपूर्वी 'पॄ' धातु को उकार आदेश है।*

बहुलवचन से छन्द में सब विधियां व्यभिचरित हो जाती हैं।

।। इति आदेशागमप्रकरणम्।।

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने
सप्तमाध्यायस्य प्रथमः पादः समाप्तः।

सप्तमाध्यायस्य द्वितीयः पादः

वृद्धिप्रकरणम्

वृद्धिः–

(१) सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु।१।

प०वि०–सिचि ७।१ वृद्धिः परस्मैपदेषु ७।३।

अनु०–अङ्गस्य इत्यनुवर्तते। **'इको गुणवृद्धी'** (१।१।३) इति परिभाषया 'इकः' इति षष्ठ्यन्तं पदमुपतिष्ठते।

अन्वयः–इकोऽङ्गस्य परस्मैपदेषु सिचि वृद्धिः।

अर्थः–इगन्तस्याङ्गस्य परस्मैपदपरके सिचि परतो वृद्धिर्भवति।

उदा०–(इ) अचैषीत्। अनैषीत्। (उ) अलावीत्। अपावीत्। (ऋ) अकार्षीत्। अहार्षीत्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इकः) इक् जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग को (परस्मैपदेषु) परस्मैपद परक (सिचि) सिच् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) होती है।*

*उदा०-(इ) **अचैषीत्।** उसने चयन किया। **अनैषीत्।** उसने पहुंचाया। (उ) **अलावीत्।** उसने छेदन किया। **अपावीत्।** उसने पवित्र किया। (ऋ) **अकार्षीत्।** उसने किया। **अहार्षीत्।** उसने हरण किया।*

*सिद्धि-(१) **अचैषीत्।** चि+लुङ्। अट्+चि+च्लि+ल्। अ+चि+सिच्+तिप्। अ+चि+स्+त्। अ+चि+स्+ईट्+त्। अ+चै+ष्+ई+त्। अचैषीत्।*

*यहां **'चिञ् चयने'** (स्वा०उ०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से भूतकाल अर्थ में 'लुङ्' प्रत्यय है। 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' (६।४।७१) से 'अट्' आगम, **'च्लि लुङि'** (३।१।४३) से 'च्लि' प्रत्यय **'च्लेः सिच्'** (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश होता है। इस सूत्र से परस्मैपद-परक 'सिच्' प्रत्यय परे होने पर इगन्त 'चि' अङ्ग को वृद्धि होती है। **'अस्तिसिचोऽपृक्ते'** (७।३।९६) से ईट् आगम और **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) से षत्व होता है।*

*(२) **अनैषीत्।** **'णीञ् प्रापणे'** (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत्।*

*(३) **अलावीत्।** **'लूञ् छेदने'** (क्र्या०उ०)।*

*(४) **अपावीत्।** **'पूञ् पवने'** (क्र्या०उ०)।*

*(५) **अकार्षीत्।** **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०)।*

*(६) **अहार्षीत्।** **'हृञ् हरणे'** (भ्वा०प०)।*

वृद्धिः–

(२) अतो रलान्तस्य।२।

प०वि०-अतः ६ ।१ रल ६ ।१ (लुप्तषष्ठीकं पदम्) अन्तस्य ६ ।१ ।

स०-रश्च लश्च एतयोः समाहारः रलम् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, सिचि, वृद्धिः, परस्मैपदेषु इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अतोऽन्तस्य रलस्याङ्गस्यात् परस्मैपदेषु सिचि वृद्धिः।

अर्थः-अतः समीपौ यौ रेफलकारौ तदन्तस्याङ्स्यात एव स्थाने परस्मैपदपरके सिचि परतो वृद्धिर्भवति।

उदा०-(रः) अक्षारीत्। अत्सारीत्। (लः) अज्वालीत्। अह्नालीत्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अतः) अकार के (अन्तः) समीपवर्ती जो (रलस्य) रेफ और लकार हैं उस रेफान्त और लकारान्त (अङ्गस्य) अङ्ग के (अतः) अकार के ही स्थान में (परस्मैपदेषु) परस्मैपद-परक (सिचि) सिच् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है।*

*उदा०-(र) **अक्षारीत्।** वह झरा/बहा। **अत्सारीत्।** वह टेढा चला। (ल) **अज्वालीत्।** वह जला/दीप्त हुआ। **अह्नालीत्।** वह कांपा/थरथराया।*

सिद्धि-(१) अक्षारीत्। *यहां **'क्षर संचलने'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' और परस्मैपदपरक 'सिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से रेफान्त 'क्षर्' धातु के अकार को वृद्धि होती है। ऐसे ही **'त्सर छद्मगतौ'** (भ्वा०प०) धातु से-**अत्सारीत्।***

*(२) **अज्वालीत्।** यहां **'ज्वल दीप्तौ'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् लुङ् और परस्मैपदपरक 'सिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से लकारान्त 'ज्वल्' धातु के अकार को वृद्धि होती है। ऐसे ही **'ह्मल संचलने'** (भ्वा०प०) धातु से-**अह्मालीत्।***

*यह **'अतो हलादेर्लघोः'** (७।२।७) से प्राप्त विकल्प का अपवाद है।*

वृद्धिः–

(३) वदव्रजहलन्तस्याचः।३।

प०वि०-वद-व्रज-हलन्तस्य ६ ।१ अचः ६ ।१ ।

स०-हल् अन्ते यस्य स हलन्तः। वदश्च व्रजश्च हलन्तश्च एतेषां समाहारो वदव्रजहलन्तम्, तस्य-वदव्रजहलन्तस्य (बहुव्रीहिगर्भित-समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, सिचि, वृद्धिः, परस्मैपदेषु इति चानुवर्तते।

अन्वयः-वदव्रजहलन्तस्याङ्गस्याचः परस्मैपदेषु सिचि वृद्धिः।

अर्थः-वदेर्व्रजेर्हलन्तस्य चाङ्गस्याचः स्थाने परस्मैपदपरके सिचि परतो वृद्धिर्भवति।

उदा०-(वद) अवादीत्। **(व्रज)** अव्राजीत्। **(हलन्तः)** अपाक्षीत्। अभैत्सीत्। अच्छैत्सीत्। अरौत्सीत्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(वदव्रजहलन्तस्य) वद, व्रज और हल् जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग के (अचः) अच् के स्थान में (परस्मैपदेषु) परस्मैपदपरक (सिचि) सिच् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है।*

उदा०-(वद) ***अवादीत्।*** *वह बोला। (व्रज)* ***अव्राजीत्।*** *वह गया। (हलन्त)* ***अपाक्षीत्।*** *उसने पकाया।* ***अभैत्सीत्।*** *उसने विदारण किया (फाड़ा)।* ***अच्छैत्सीत्।*** *उसने छेदन किया (दो टुकड़े किये)।* ***अरौत्सीत्।*** *उसने रोका (घेरा)।*

सिद्धि-(१) अवादीत्। यहां 'वद व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' और परस्मैपदपरक 'सिच्' प्रत्यय परे है। इस सूत्र से 'वद्' धातु के अच् (अ) को वृद्धि होती है।

(२) अव्राजीत्। 'व्रज गतौ' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।

(३) अपाक्षीत्। 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०)।

(४) अभैत्सीत्। 'भिदिर् विदारणे' (रुधा०प०)।

(५) अच्छैत्सीत्। 'छिदिर् द्वैधीकरणे' (रुधा०प०)।

(६) अअरौत्सीत्। 'रुधिर् आवरणे' (रुधा०प०)।

यह 'अतो हलादेर्लघोः' (७।२।७) से प्राप्त विकल्प का अपवाद है।

वृद्धि-प्रतिषेधः-

(४) नेटि।४।

प०वि०-न अव्ययपदम्, इटि ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, सिचि, वृद्धिः, परस्मैपदेषु, हलन्तस्य, अच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-हलन्तस्याङ्गस्याचः परस्मैपदेषु इटि सिचि वृद्धिर्न।

अर्थः-हलन्तस्याङ्गस्याचः स्थाने परस्मैपदपरके इडादौ सिचि परतो वृद्धिर्न भवति।

उदा०-अदेवीत्। असेवीत्। अकोषीत्। अमोषीत्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(हलन्तस्य) हल् जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग के (अचः) अच् के स्थान में (परस्मैपदेषु) परस्मैपदपरक (इटि) इडादि (सिचि) सिच् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि (न) नहीं होती है।*

*उदा०-**अदेवीत्।** उसने क्रीडा आदि की। **असेवीत्।** उसने सिलाई की। **अकोषीत्।** उसने बाहर निकाला। कसौटी पर कसकर स्वर्ण आदि की परीक्षा की। **अमोषीत्।** उसने चोरी की।*

***सिद्धि-(१) अदेवीत्।** यहां '**दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमद-स्वप्नकान्तिषु**' (दि०प०) धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' प्रत्यय और परस्मैपद-परक इडादि 'सिच्' प्रत्यय है। अतः इस सूत्र से हलन्त 'दिव्' धातु के अच् के स्थान में वृद्धि नहीं होती है। '**पुगन्तलघूपधस्य च**' (७।३।८६) से लघूपध गुण होता है।*

*(२) **असेवीत्।** '**षिवु तन्तुसन्ताने**' (दि०प०) पूर्ववत्।*

*(३) **अकोषीत्।** '**कुष निष्कर्षे**' (क्र्या०प०)।*

*(४) **अमोषीत्।** '**मुष स्तेये**' (क्र्या०प०)।*

यहां 'वदव्रजहलन्तस्याचः' (७।२।३) अतिव्याप्ति से सूत्र की वृद्धि प्राप्त थी, उसका प्रतिषेध किया गया है।

वृद्धि-प्रतिषेधः--

(५) ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम्।५।

प०वि०-ह्-म्-यन्त-क्षण-श्वस-जागृ-णि-श्वि-एदिताम् ६।३।

स०-हश्च मश्च यश्च ते ह्म्यः, ह्म्योऽन्ते यस्य सः-ह्म्यन्तः। एद् इद् यस्य सः-एदित्। ह्म्यन्तश्च क्षणश्च श्वसश्च जागृश्च णिश्च श्विश्च एदिच्च ते-ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदितः, तेषाम्-ह्म्यन्तक्षण-श्वसजागृणिश्व्येदिताम् (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, सिचि, वृद्धिः, परस्मैपदेषु, अचः, न, इटि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम् अङ्गानाम् अचः परस्मैपदेषु इटि सिचि वृद्धिर्न।

अर्थः-हकारान्तानां मकारान्तानां यकारान्तानां क्षण-श्वस-जागृ-णिजन्त-श्वस-एदितां चाङ्गानामचः स्थाने परस्मैपदपरके इडादौ सिचि परतो वृद्धिर्न भवति।

उदा०-(हकारान्तः) अग्रहीत्। **(मकारान्तः)** अस्यमीत्। अवमीत्। **(यकारान्तः)** अव्ययीत्। **(क्षण)** अक्षणीत्। **(श्वस)** अश्वसीत्। **(जागृ)** अजागरीत्। **(णिजन्तः)** ऊनि-औनयीत्। एलि-ऐलयीत्। **(श्वि)** अश्वयीत्। **(एदित्)** कखे-अकखीत्। रगे-अरगीत्। हसे-अहसीत्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम्) हकारान्त, मकारान्त, यकारान्त, क्षण, श्वस, जागृ, णि=णिजन्त, श्वि, एदित्=जिसका एकार इत् है, इन (अङ्गानाम्) अङ्गों के (अचः) अच् के स्थान में (परस्मैपदेषु) परस्मैपद-परक (इटि) इडादि (सिचि) सिच् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि (न) नहीं होती है।*

*उदा०-(हकारान्त) **अग्रहीत्।** उसने ग्रहण किया। (मकारान्त) **अस्यमीत्।** उसने शब्द (आवाज) किया। **अवमीत्।** उसने वमन (उल्टी) किया। (यकारान्त) **अव्ययीत्।** उसने व्यय किया। (क्षण) **अक्षणीत्।** उसने हिंसा की, जान से मारा। (श्वस) **अश्वसीत्।** उसने श्वास लिया। (जागृ) **अजागरीत्।** वह जागा। (णिजन्त) **ऊनि-औनयीत्।** उसने परित्याग किया। **एलि-ऐलयीत्।** उसने प्रेरित किया। (श्वि) **अश्वयीत्।** उसने गति/वृद्धि की। (एदित्) **कखे-अकखीत्।** वह जोर से हंसा। **रगे-अरगीत्।** उसने शंका की। **हसे-अहसीत्।** वह हंसा, ठठ्ठा किया।*

*सिद्धि-(१) **अग्रहीत्।** ग्रह्+लुङ्। अट्+ग्रह्+ल्। अ+ग्रह्+च्लि+ल्। अ+ग्रह्+सिच्+तिप्। अ+ग्रह+स्+त्। अ+ग्रह्+इट्+स्+ईट्+त्। अ+ग्रह्+इ+०+ई+त्। अग्रहीत्।*

*यहां **'ग्रह उपादाने'** (क्र्या०प०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से भूतकाल अर्थ में 'लुङ्' प्रत्यय है। 'च्लि लुङि' (३।१।४३) से 'च्लि' प्रत्यय और **'च्लेः सिच्'** (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश है। **'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'** (७।२।३५) से 'सिच्' को इट् आगम होता है। इस परस्मैपदपरक इडादि 'सिच्' प्रत्यय परे होने पर हकारान्त 'ग्रह्' धातु के अच् (अ) को वृद्धि नहीं होती है। **'अस्तिसिचोऽपृक्ते'** (७।३।९६) से ईट् आगम और **'इट ईटि'** (८।२।२८) से 'सिच्' का लोप होता है। **'अतो हलादेर्लघोः'** (७।२।७) से विकल्प से वृद्धि प्राप्त थी, यह उसका पुरस्तात् अपवाद है।*

*(२) **अस्यमीत्।** मकारान्त 'स्यमु शब्दे' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।*

*(३) **अवमीत्।** मकारान्त 'टुवम् उद्गिरणे' (भ्वा०प०)।*

*(४) **अव्ययीत्।** यकारान्त 'व्यय गतौ' (भ्वा०प०)। **'व्यय वित्तसमुत्सर्गे'** (न्यास)।*

*(५) **अक्षणीत्। 'क्षणु हिंसायाम्'** (त०उ०)।*

*(६) **अश्वसीत्। 'श्वस प्राणने'** (अदा०प०)।*

*(७) **अजागरीत्।** 'जागृ निद्राक्षये' (अदा०प०)।*

(८) औनयीत्। 'ऊन परिहाणे' (चु०उ०) णिजन्त।

(९) ऐलयीत्। 'इल प्रेरणे' (चु०प०)।

(१०) अश्वयीत्। 'टुओश्वि गतिवृद्ध्योः' (भ्वा०प०)।

(११) अकखीत्। 'कखे हसने' (भ्वा०प०) एदित्।

(१२) अरगीत्। 'रगे शङ्कायाम्' (भ्वा०प०) एदित्।

वृद्धि-विकल्पः–

(६) ऊर्णोतेर्विभाषा।६।

प०वि०–ऊर्णोतेः ६।१ विभाषा १।१।

अनु०–अङ्गस्य, सिचि, वृद्धिः, परस्मैपदेषु, अचः, न, इटि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–ऊर्णोतेरङ्गस्याचः परस्मैपदेषु इटि सिचि विभाषा वृद्धिर्न।

अर्थः–ऊर्णोतेरङ्गस्याचः स्थाने परस्मैपदपरके इडादौ सिचि परतो विकल्पेन वृद्धिर्न भवति।

उदा०–प्रौर्णवीत्। प्रौर्णावीत् (वृद्धिः)। प्रौर्णुवीत् (सिच् ङित्)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(ऊर्णोतेः) ऊर्णुञ् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (अचः) अच् के स्थान में (परस्मैपदेषु) परस्मैपद-परक (इटि) इडादि (सिचि) सिच् प्रत्यय परे होने पर (विभाषा) विकल्प से (वृद्धिः) वृद्धि (न) नहीं होती है।*

*उदा०–**प्रौर्णवीत्। प्रौर्णावीत्** (वृद्धि)। **प्रौर्णुवीत्** (सिच् ङित्)। उसने आच्छादित किया (ढका)।*

सिद्धि-(१) प्रौर्णवीत्। *यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'ऊर्णुञ् आच्छादने'** (अ०उ०) धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' प्रत्यय और 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश है। यहां इस सूत्र से वृद्धि का प्रतिषेध होता है। अतः **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से गुण होकर **'एचोऽयवायावः'** (६।१।७६) से अव्-आदेश होता है।*

(२) प्रौर्णावीत्। *यहां विकल्प-पक्ष में इस सूत्र से वृद्धि होती है और पूर्ववत् आव्-आदेश है।*

(३) प्रौर्णुवीत्। *यहां परस्मैपदपरक, इडादि 'सिच्' प्रत्यय, **'विभाषोर्णोः'** (१।२।३) से ङिद्वत् है। अतः **'क्ङिति च'** (१।१।५) से गुण और वृद्धि दोनों का प्रतिषेध होने से **'अचि श्नुधातुभ्रुवां०'** (६।४।७७) से उवङ्-आदेश होता है।*

विशेषः *यहां 'सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु' (७।२।१) से नित्य वृद्धि प्राप्त थी। अतः विभाषा-वचन से नकार से उसका प्रतिषेध होकर 'वा' से विकल्प होता है, क्योंकि 'नवेति विभाषा' (१।१।४४) से निषेध और विकल्प की विभाषा संज्ञा की गई है। विभाषा न भवति=विकल्प से वृद्धि होती है।*

वृद्धि-विकल्पः--

(७) अतो हलादेर्लघोः।७।

प०वि०-अतः ६।१ हलादेः ६।१ लघोः ६।१।

स०-हल् आदिर्यस्य स हलादिः, तस्य-हलादेः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, सिचि, वृद्धिः, परस्मैपदेषु, न, इटि, विभाषा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-हलादेरङ्गस्य लघोरतः परस्मैपदेषु इटि सिचि विभाषा वृद्धिर्न।

अर्थः-हलादेरङ्गस्य लघोरकारस्य स्थाने परस्मैपदपरके इडादौ सिचि परतो विकल्पेन वृद्धिर्न भवति।

उदा०-**(कण)** अकणीत्, अकाणीत्। **(रण)** अरणीत्, अराणीत्।

आर्यभाषाः ***अर्थ***-*(हलादेः) हल् जिसके आदि में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग के (लघोः) ह्रस्व (अतः) अकार के स्थान में (परस्मैपदेषु) परस्मैपदपरक (इटि) इडादि (सिचि) सिच् प्रत्यय परे होने पर (विभाषा) विकल्प से (वृद्धिः) वृद्धि (न) नहीं होती है।*

*उदा०-**(कण) अकणीत्, अकाणीत्।** वह रोया, समीप गया, छोटा हुआ। **(रण) अरणीत्, अराणीत्।** उसने आवाज की/वह गया।*

सिद्धि-अकणीत्। *यहां **'कण शब्दार्थः'** (भ्वा०प०) **'कण गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' और 'सिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से हलादि 'कण्' धातु के लघु अकार को परस्मैपदपरक, इडादि सिच् प्रत्यय परे होने पर वृद्धि नहीं होती है। विकल्प पक्ष में 'अतो ल्रान्तस्य' (७।२।२) ... 'वदव्रजहलन्तस्याचः' (७।२।३) से वृद्धि होती है-**अकाणीत्।***

*ऐसे ही 'रण शब्दार्थः' (भ्वा०प०) 'रण गतौ' (भ्वा०प०) धातु से-**अरणीत्, अराणीत्।***

*यहां लघु-अकार का कथन इसलिये किया है कि यहां वृद्धि न हो-**अतक्षीत्, अरक्षीत्।** यहां **'तक्ष तनूकरणे'** और **'रक्ष पालने'** (भ्वा०प०) इन धातुओं में **'संयोगे गुरु'** (१।४।११) से अकार गुरु है, लघु नहीं है।*

।। इति वृद्धि-प्रकरणम् ।।

इट्प्रतिषेधप्रकरणम्

इट्-प्रतिषेधः–

(१) नेड्वशि कृति।८।

प०वि०–न अव्ययपदम्, इट् १।१ वशि ७।१ कृति ७।१।

अनु०–अङ्गस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अङ्गाद् वशादेः कृत इड् न।

अर्थः–अङ्गाद् उत्तरस्य वशादेः कृतः प्रत्ययस्येडागमो न भवति। **'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'** (७।२।३५) इति इटं वक्ष्यति, तस्यायं पुरस्तादपवादः। व-र-म-नादौ प्रयोजनम्। **(वादौ)** ईश्-ईश्वरः। **(रादौ)** दीप्-दीप्रः। **(मादौ)** भस्-भस्म। **(नादौ)** याच्-याच्ञा।

आर्यभाषाः अर्थ–*(अङ्गात्) अङ्ग से परे (वशादेः) वश् वर्ण जिसके आदि में है उस (कृतः) कृत्-प्रत्यय को (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (७।२।३७) इस सूत्र से जो इडागम का विधान किया जायेगा यह उसका पुरस्तात् अपवाद है। इस सूत्र का यह प्रयोजन है कि वकारादि, रेफादि, मकारादि और नकारादि कृत प्रत्ययों को इडागम न हो। उदाहरण–

*(१) वकारादि-(ईश्) **ईश्वरः।** जगत् का कर्ता।*

*(२) रेफादि-(दीप्) **दीप्रः।** चमकनेवाला।*

*(३) मकारादि-(भस्) **भस्म।** राख।*

*(४) नकारादि-(याच्) **याच्ञा।** मांगना।*

सिद्धि–*(१) ईश्वरः। ईश्+वरच्। ईश्+वर। ईश्वर+सु। ईश्वरः।*

*यहां 'ईश ऐश्वर्ये' (अदा०आ०) धातु से **'स्थेशभासपिसकसो वरच्'** (३।२।१७५) से कृत्-संज्ञक, वशादि 'वरच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम का प्रतिषेध होता है।*

(२) दीप्रः। दीप्+र+दीप् र+सु। दीप्रः।

*यहां 'दीपी दीप्तौ' (दि०आ०) धातु से **'नमिकम्पिस्म्यजसकमहिंसदीपो रः'** (३।२।१६७) से 'र' प्रत्यय है।*

*(३) **भस्म।** भस्+मनिन्। भस्+मन्। भस्मन्+सु। भस्मन्+०। भस्म०। भस्म।*

*यहां **'भस भर्त्सनदीप्त्योः'** (जु०प०) धातु से **'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते'** (३।२।७५) से 'मनिन्' प्रत्यय है। **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६७) से 'सु' का लोप और **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से नकार का लोप होता है।*

(४) याच्ञा। याच्+नङ्। याच्+न। याच्+ञ। याच्ञ+टाप्। याच्ञ्+आ। याच्ञा+सु। याच्ञा+०। याच्ञा।

*यहां 'टुयाचृ याच्ञायाम्' (भ्वा०आ०) धातु से **'यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्'** (३।२।९०) से 'नङ्' प्रत्यय है। **'स्तोः श्चुना श्चुः'** (८।४।४१) से नकार को चवर्ग ञकार होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय है।*

इट्-प्रतिषेधः–

(२) तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च।६।

प०वि०–ति-तु-त्र-त-थ-सि-सु-सर-क-सेषु ७।३ च अव्ययपदम्।

स०–तिश्च तुश्च त्रश्च तश्च थश्च सिश्च सुश्च सरश्च कश्च सश्च ते-ति०साः, तेषु-ति०सेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, न, इट्, कृति इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अङ्गात् कृतां तितुत्रतथसिसुसरकसानां च इड् न।

अर्थः–अङ्गाद् उत्तरेषां कृत्संज्ञकानां तितुत्रतथसिसुरकसानां प्रत्ययानां च इडागमो न भवति। **उदाहरणम्**–

कृत्प्रत्ययाः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
(१) तिः (क्तिन्)	तन्तिः	रेखा। गौः।
(क्तिन्)	दीप्तिः	चमक।
(२) तुः (तुन्)	सक्तुः	सत्तू।
(३) त्रः (ष्ट्रन्)	पत्रम् (वाहनम्)	गाड़ी आदि।
	तन्त्रम्	करघा।
(४) तः (तन्)	हस्तः	हाथ।
	लोतः	चोरी का धन।
	पोतः	जानवर का बच्चा।
	धूर्तः	ठग।
(५) थः (क्थन्)	कुष्ठम्	कोढ (रोगविशेष)।
	काष्ठम्	लकड़ी।

कृत्प्रत्ययाः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
(६) सिः (क्सिः)	कुक्षिः	कोख।
	इक्षुः	ईख।
(७) सरः (क्सरन्)	अक्षरम्	वर्ण।
(८) कः (कन्)	शल्कः	छिलका।
(९) सः	वत्सः	बछड़ा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अङ्गात्) अङ्ग से परे (कृताम्) कृत्-संज्ञक (ति०सानाम्) ति, तु, त्र, त, थ, सि, सु, सर, क, स इन प्रत्ययों को (च) भी (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-(१) तन्तिः । *तन्+क्तिच्। तन्+ति। तन्ति+सु। तन्तिः।*

यहां 'तनु विस्तारे' (तना०उ०) धातु से ***'क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम्'*** *(३।३।१७४) से कृत्संज्ञक 'क्तिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम का प्रतिषेध होता है।* ***'अनुदात्तोपदेशवनतितनोति०'*** *(६।४।३७) से अनुनासिक (न्) का लोप और* ***'अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति'*** *(६।४।१५) से दीर्घ प्राप्त है, किन्तु* ***'न क्तिचि दीर्घश्च'*** *(६।४।३९) उनका प्रतिषेध हो जाता है।*

(२) दीप्तिः । *दीप्+क्तिन्। दीप्+ति। दीप्ति+सु। दीप्तिः।*

यहां ***'दीपी दीप्तौ'*** *(दि०आ०) धातु से* ***'स्त्रियां क्तिन्'*** *(३।३।९४) से 'क्तिन्' प्रत्यय है।*

(३) सक्तुः । *सच्+तुन्। सच्+तु। सक्+तु। सक्तु+सु। सक्तुः।*

यहां ***'षच समवाये'*** *(भ्वा०आ०) धातु से* ***'सितनिगमिमसिसच्यविधाञ्क्रुशिभ्यस्तुन्'*** *(उणा० १।६९) से 'तुन्' प्रत्यय है। 'चोः कुः' (८।२।३०) से चकार को कवर्ग ककार होता है।*

(४) पत्रम् । *पत्+ष्ट्रन्। पत्+त्र। पत्र+सु। पत्रम्।*

यहां 'पत्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से ***'दाम्नीशस०'*** *(३।२।८२) से 'ष्ट्रन्' प्रत्यय है।*

(५) हस्तः । *हस्+तन्। हस्+त। हस्त+सु। हस्तः।*

यहां 'हस हसने' (भ्वा०प०) धातु से ***हसिमृग्रिण्वमिदमितमिलूपूधुर्विभ्यस्तन्'*** *(उणा० ३।८६) से 'तन्' प्रत्यय है। ऐसे ही 'लूञ् लवने' (क्र्या०उ०) धातु से-**लोतः**, **पूञ् पवने**' धातु से-**पोतः।** **धुर्वी** गत्यर्थः (भ्वा०प०) धातु से-**धूर्तः।***

यहां इस औणादिक 'त' प्रत्यय का ही ग्रहण किया जाता है; 'क्त' प्रत्यय का नहीं। 'क्त' प्रत्यय करने पर- 'हसितम्' यह शब्दरूप बनता है।

*(६) **कुष्ठम्।** कुष्+क्थन्। कुष्+थ। कुष्ठ+सु। कुष्ठम्।*

*यहां **'कुष निष्कर्षे'** (क्र्या०उ०) धातु से **'हनिकुषिनीरमिकाशिभ्यः क्थन्'** (उणा० २।२) से 'क्थन्' प्रत्यय है। **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से थकार को टवर्ग ठकार होता है। ऐसे ही **'काशृ दीप्तौ'** (दि०आ०) धातु से-**काष्ठम्।***

*(७) **कुक्षिः।** कुष्+क्सि। कुष्+सि। कुक्+षि। कुक्षि+सु। कुक्षिः।*

*यहां **'कुष निष्कर्षे'** (क्र्या०प०) धातु से **'प्लुषिशुचिकुषिभ्यः क्सिः'** (उणा० ३।१५५) से 'क्सि' प्रत्यय है। **'षढोः कः सि'** (८।२।४१) से षकार को ककार और **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।६०) से षत्व होता है।*

*(८) **इक्षुः।** इष्+क्सु। इष्+सु। इक्+षु। इक्षु+सु। इक्षुः।*

*यहां **'इषु इच्छायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से **'इषेः क्सुः'** (उणा० ३।१५७) से 'क्सु' प्रत्यय है। पूर्ववत् षकार को ककार और षत्व होता है।*

*(९) **अक्षरम्।** अश्+सरन्। अश्+सर। अष्+सर। अक्+षर। अक्षर+सु। अक्षरम्।*

*यहां **'अशूङ् व्याप्तौ'** (रुधा०आ०) धातु से **'अशेः सरन्'** (उणा० ३।७०) से 'सरन्' प्रत्यय है। **'व्रश्चभ्रस्ज०'** (८।२।३६) से शकार को षकार, **'षढोः कः सि'** (८।२।४१) से षकार को ककार और पूर्ववत् षत्व होता है।*

*(१०) **शल्कः।** शल्+कन्। शल्+क। शल्क+सु। शल्कः।*

*यहां **'शल गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से **'इण्भीकापाशल्यतिमर्चिभ्यः कन्'** (उणा० ३।४३) से 'कन्' प्रत्यय है।*

*(११) **वत्सः।** वद्+स। वत्+स। वत्स+सु। वत्सः।*

*यहां **'वद व्यक्तायां वाचि'** (भ्वा०प०) धातु से **'वृतृवदिहनिकमिकषियुमुचिभ्यः सः'** (उणा० ३।६२) से 'स' प्रत्यय है। **'खरि च'** (८।४।५५) से दकार को चर् तकार होता है।*

इट्-प्रतिषेधः-

(३) एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्।१०।

प०वि०-एकाचः ५।१ उपदेशे ७।१ अनुदात्तात् ५।१।

स०-एकोऽज् यस्मिन् स एकाच्, तस्मात्-एकाचः (बहुव्रीहिः)। न विद्यते उदात्तो यस्मिन् सः-अनुदात्तः, तस्मात् अनुदात्तात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, न, इट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-उपदेशे एकाचोऽनुदात्ताद् अङ्गात् प्रत्ययस्य इड् न।

अर्थः-उपदेशे (पाणिनीयधातुपाठे) एकाचोऽनुदात्ताद् अङ्गाद् उत्तरस्य प्रत्ययस्य इडागमो न भवति।

उदा०-दाता। नेता। चेता। स्तोता। कर्ता। हर्ता।

***आर्यभाषाः* अर्थ**-*(उपदेशे) पाणिनीय धातुपाठ के उपदेश में (एकाचः) एक अच्वाले (अनुदात्तात्) धातु-रूप अङ्ग से परे (प्रत्ययस्य) प्रत्यय को (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

उदा०-***दाता।*** *दान करनेवाला।* ***नेता।*** *नायक।* ***चेता।*** *चयन करनेवाला।* ***स्तोता।*** *स्तुति करनेवाला।* ***कर्ता।*** *करनेवाला।* ***हर्ता।*** *हरण करनेवाला।*

सिद्धि-*(१)* ***दाता।*** *दा+तृच्। दा+तृ। दातृ+सु। दात् अनङ्+सु। दातन्+सु। दातान्+सु। दातान्+०। दाता०। दाता।*

यहां 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से ***'ण्वुल्तृचौ'*** *(३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से पाणिनीय धातुपाठ के उपदेश में एक अच्वाली तथा अनुदात्त 'दा' धातु से परे 'तृच्' प्रत्यय को इडागम नहीं होता है।* ***'ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च'*** *(७।१।९४) से अनङ् आदेश,* ***'अप्तृन्तृच०'*** *(६।४।११) से दीर्घ,* ***'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'*** *(६।१।६७) से 'सु' का लोप और* ***'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'*** *(८।२।७) से नकार का लोप होता है।*

(२) ***नेता।*** *'णीञ् प्रापणे' (भ्वा०उ०) पूर्ववत्।*

(३) ***चेता।*** *'चिञ् चयने' (स्वा०उ०)।*

(४) ***स्तोता।*** *'ष्टुञ् स्तुतौ' (अदा०उ०)।*

(५) ***कर्ता।*** *'डुकृञ् करणे' (तना०उ०)।*

(६) ***हर्ता।*** *'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०)।*

इट्-प्रतिषेधः--

(४) श्र्युकः किति।११।

प०वि०-श्रि-उकः ५।१ किति ७।१।

स०-श्रिश्च उक् च एतयोः समाहारः श्र्युक्, तस्मात्-श्र्युकः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, न, इड् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-श्र्युकोऽङ्गात् कित इट् न।

अर्थः-श्रिरित्येतस्माद् उगन्ताच्चाङ्गाद् उत्तरस्य कितः प्रत्ययस्य इडागमो न भवति।

उदा०-**(श्रिः)** श्रित्वा, श्रितः, श्रितवान्। **(उगन्तम्)** युत्वा, युतः, युतवान्। लूत्वा, लूनः, लूनवान्। वृ-वृत्वा, वृतः, वृतवान्। तॄ-तीर्त्वा, तीर्णः, तीर्णवान्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(श्र्युकः) श्रि और उक् वर्ण जिसके अन्त में है उस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (कितः) कित् प्रत्यय को (इट्) इट् आगम (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(श्रि) **श्रित्वा**। सेवा करके। **श्रितः**। सेवा की। **श्रितवान्**। सेवा की। (उगन्त) **युत्वा**। मिश्रित-अमिश्रित करके। **युतः**। मिश्रित-अमिश्रित किया। **युतवान्**। अर्थ पूर्ववत्। लू-**लूत्वा**। काटकर। **लूनः**। काटा। **लूनवान्**। अर्थ पूर्ववत्। वृ-**वृत्वा**। वरण करके। **वृतः**। वरण किया। **वृतवान्**। अर्थ पूर्ववत्। तॄ-**तीर्त्वा**। तरकर। **तीर्णः**। तरा। **तीर्णवान्**। अर्थ पूर्ववत्।*

*सिद्धि-(१) **श्रित्वा**। श्रि+क्त्वा। श्रि+त्वा। श्रित्वा+सु। श्रित्वा+०। श्रित्वा।*

*यहां **'श्रिञ् सेवायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से **'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले'** (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। इस सूत्र से कित् 'क्त्वा' प्रत्यय को इट् आगम नहीं होता है।*

*(२) **श्रितः**। यहां पूर्वोक्त 'श्रि' धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से भूतकाल अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है।*

*(३) **श्रितवान्**। यहां पूर्वोक्त 'श्रि' धातु से पूर्ववत् 'क्तवतु' प्रत्यय है।*

*(४) युत्वा, युतः, **युतवान्**। **'यु मिश्रणेऽमिश्रणे च'** (अदा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(५) लूत्वा, लूनः, **लूनवान्**। **'लूञ् छेदने'** (क्र्या०उ०) धातु से पूर्ववत्। **'ल्वादिभ्यः'** (८।२।४४) से निष्ठा के तकार को नकार आदेश होता है।*

*(६) वृत्वा, वृतः, **वृतवान्**। **'वृञ् वरणे'** (स्वा०उ०) धातु से पूर्ववत्।*

*(७) **तीर्त्वा**। तॄ+क्त्वा। तॄ+त्वा। तिर्+त्वा। तीर्+त्वा। तीर्त्वा+सु। तीर्त्वा+०। तीर्त्वा।*

*यहां **'तॄ प्लवनसन्तरणयोः'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त्वा' प्रत्यय है। **'ॠत इद् धातोः'** (७।१।१०) से ॠकार के स्थान में इकार आदेश, **'उरण् रपरः'** (१।१।५१) से रपरत्व और **'हलि च'** (८।२।७७) से दीर्घ होता है।*

*(८) **तीर्णः**। यहां पूर्वोक्त 'तॄ' धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। **'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः'** (८।२।४२) से निष्ठा के तकार को नकार आदेश और **'रषाभ्यां नो णः समानपदे'** (८।४।१) से णत्व होता है। ऐसे ही 'क्तवतु' प्रत्यय में-**तीर्णवान्**।*

इट्-प्रतिषेधः—

(५) सनि ग्रहगुहोश्च।१२।

प०वि०–सनि ७।१ ग्रह-गुहो: ६।२ (पञ्चम्यर्थे) च अव्ययपदम्।

स०–ग्रहश्च गुह् च तौ ग्रहगुहौ, तयो:-ग्रहगुहो: (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, न, इट्, उक इति चानुवर्तते।

अन्वयः–ग्रहगुहिभ्याम् उकश्चाङ्गात् सन इड् न।

अर्थः–ग्रहगुहिभ्याम् उगन्ताच्चाङ्गाद् उत्तरस्य सन इडागमो न भवति।

उदा०–**(ग्रहः)** जिघृक्षति। **(गुहः)** जुघुक्षति। **(उगन्तः)** रु-रुरूषति। लू-लुलूषति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ग्रहगुहिभ्याम्) ग्रह् और गुह् (च) और (उकः) उक् वर्ण जिसके अन्त में है उस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (सनः) सन् प्रत्यय को (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(ग्रह) **जिघृक्षति।** वह ग्रहण करना चाहता है। (गुह) **जुघुक्षति।** वह छुपाना चाहता है। (उगन्त) **रु-रुरूषति।** वह शब्द करना चाहता है। **लू-लुलूषति।** वह काटना चाहता है।*

*सिद्धि-(१) **जिघृक्षति।** ग्रह्+सन्। गृह्+स। गृढ्+स। गृक्+स। गृक्+ष। घृक्+ष्। घृक्ष्-घृक्ष। घृ-घृक्ष। जृ-घृक्ष। जर्-घृक्ष। जि-घृक्ष। जिघृक्ष। जिघृक्ष+लट्। जिघृक्षति।*

*यहां **'ग्रह उपादाने'** (क्र्या०प०) धातु से **'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'** (३।१।७) से 'सन्' प्रत्यय है। **'रुदविदमुषग्रहिस्वपिप्रच्छः सँश्च'** (१।२।८) से 'सन्' प्रत्यय किद्वत् होता है। **'ग्रहिज्यावयि०'** (६।१।१६) से 'ग्रह्' को सम्प्रसारण (गृह्), **'हो ढः'** (८।२।३१) से हकार को ढकार आदेश (गृढ्), **'षढोः कः सि'** (८।२।४१) से ढकार को ककार आदेश (गृक्) और **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) से षत्व होता है (गृक्+ष)। **'एकाचो बशो भष्०'** (८।२।३७) से भष्भाव से गकार को घकार होता है। **'सन्यङोः'** (६।१।९) से द्वित्व होकर **'कुहोश्चुः'** (७।४।६२) से अभ्यासस्थ घकार को चवर्ग जकार, **'उरत्'** (७।४।६६) से अभ्यासस्थ ऋकार को अकार और इसे (सन्यतः) से इकार आदेश होता है। इस सूत्र से 'सन्' प्रत्यय को 'इट्' आगम का प्रतिषेध है।*

*(२) **जुघुक्षति।** **'गुह संवरणे'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(३) **रुरूषति।** **'रु शब्दे'** (अदा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(४) **जुघुक्षति।** **'गुह संवरणे'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

इट्-प्रतिषेधः—

(६) कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि।१३।

प०वि०-कृ-सृ-भृ-वृ-स्तु-द्रु-स्रु-श्रुवः ५।१ लिटि ७।१।

स०-कृश्च सृश्च भृश्च वृश्च स्तुश्च द्रुश्च स्रुश्च श्रुश्च एतेषां समाहारः-कृ०श्रु, तस्मात्-कृ०श्रुवः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, न, इड् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवोऽङ्गाल्लिट इड् न।

अर्थः-कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुभ्योऽङ्गेभ्य उत्तरस्य लिट इडागमो न भवति।

उदाहरणम्—

	धातुः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
(१)	कृ	आवां चकृव।	हम दोनों ने किया।
		वयं चकृम।	हम सबने किया।
(२)	सृ	आवां ससृव।	हम दोनों सरके।
		वयं ससृम।	हम सब सरके।
(३)	भृ	आवां बभृव।	हम दोनों ने धारण-पोषण किया।
		वयं बभृम।	हम सब ने धारण-पोषण किया।
(४)	वृ	आवां ववृव।	हम दोनों ने वरण किया (चुना)।
		वयं ववृम।	हम सब ने वरण किया (चुना)।
(५)	वृङ्	आवां ववृवहे।	हम दोनों ने सेवा की।
		वयं ववृमहे।	हम सब ने सेवा की।
(६)	स्तु	आवां तुष्टुव।	हम दोनों ने स्तुति की।
		वयं तुष्टुम।	हम सब ने स्तुति की।
(७)	द्रु	आवां दुद्रुव।	हम दोनों दौड़े।
		वयं दुद्रुम।	हम सब दौड़े।
(८)	स्रु	आवां सुस्रुव।	हम दोनों बहे।
		वयं सुस्रुम।	हम सब बहे।
(९)	श्रु	आवां शुश्रुव।	हम सब ने सुना।
		वयं शुश्रुम।	हम सब ने सुना।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कृ०श्रुवः) कृ, सृ, भृ, वृ, स्तु, द्रु, स्रु, श्रु इन (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (लिटः) लिट् प्रत्यय को (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-(१) चकृव। *कृ+लिट्। कृ+ल्। कृ+वस्। कृ+व। कृ+व। कृ-कृ+व। कर्-कृ+व। क-कृ+व। च-कृ+व। चकृव।*

*यहां **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से **'परोक्षे लिट्'** (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय, **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से 'ल्' के स्थान में वस् आदेश, **'परस्मैपदानां णलतुसुस०'** (३।४।८२) से वस् के स्थान में 'व' आदेश होता है। इस सूत्र से इस लिट् (व) प्रत्यय को इट् आगम का प्रतिषेध होता है। ऐसे ही मस् (म) प्रत्यय में-**चकृम।** 'उरत्' (७।४।६६) से अभ्यास-ऋकार को अकार और **'कुहोश्चुः'** (७।४।६२) से अभ्यास-ककार को चकार आदेश होता है।*

*(२) **ससृव, ससृम।** 'सृ गतौ' (भ्वा०प०) पूर्ववत्।*

*(३) **बभृव, बभृम।** 'डुभृञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०)।*

*(४) **ववृव, ववृम।** 'वृञ् वरणे' (स्वा०प०)।*

*(५) **ववृवहे, ववृमहे।** 'वृङ् सम्भक्तौ' (क्र्या०आ०)।*

*(६) **तुष्टुव, तुष्टुम।** 'ष्टुञ् स्तुतौ' (अदा०उ०)।*

*(७) **दुद्रुव, दुद्रुम।** 'द्रु गतौ' (भ्वा०प०)।*

*(८) **सुस्रुव, सुस्रुम।** 'स्रु गतौ' (भ्वा०प०)।*

*(९) **शुश्रुव, शुश्रुम।** 'श्रु श्रवणे' (भ्वा०प०)।*

इट्-प्रतिषेधः-

(७) श्वीदितो निष्ठायाम्।१४।

प०वि०-श्वि-ईदितः ५।१ निष्ठायाम् ७।१।

स०-ईद् इद् यस्य स ईदित्, श्विश्च ईदिच्च एतयोः समाहारः श्वीदित्, तस्मात्-श्वीदितः (बहुव्रीहिगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, न, इड् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-श्वीदितोऽङ्गान्निष्ठाया इड् न।

अर्थः-श्विरित्येतस्माद् ईदितश्चाङ्गाद् उत्तरस्या निष्ठाया इडागमो न भवति।

उदा०-(**श्वि**) शूनः, शूनवान्। (**ईदितः**) **ओलजी**-लग्नः, लग्नवान्। **ओविजी**-उद्विग्नः, उद्विग्नवान्। **दीपी**-दीप्तः, दीप्तवान्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(श्वीदितः) श्वि और जिसका **ईकार** इत् है उस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (निष्ठायाः) निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय को (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(**श्वि**) **शूनः**। गया/बढ़ा। **शूनवान्**। पूर्ववत्। (**ईदित**) **ओलजी-लग्नः**। लज्जा की। **लग्नवान्**। पूर्ववत्। **ओविजी-उद्विग्नः**। व्याकुल हुआ। **उद्विग्नवान्**। पूर्ववत्। **दीपी-दीप्तः**। प्रदीप्त हुआ। **दीप्तवान्**। पूर्ववत्।*

***सिद्धि-शूनः**। श्वि+क्त। श्वि+त। श् उ इ+न। श् उ+न। शू+न। शून+सु। शूनः।*

*यहां '**टुओश्वि गतिवृद्ध्योः**' धातु से '**निष्ठा**' (३।२।१०२) से भूतकाल अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से निष्ठा-संज्ञक 'क्त' प्रत्यय को इट् आगम नहीं होता है। '**ओदितश्च**' (८।२।४५) से निष्ठा के तकार को नकार आदेश होता है। '**वचिस्वपि०**' (६।१।१५) से 'श्वि' को सम्प्रसारण, '**सम्प्रसारणाच्च**' (६।१।१०६) से पूर्वरूप (उ+इ=उ) और 'हलः' (६।४।२) से दीर्घ होता है। ऐसे ही 'क्तवतु' प्रत्यय में-**शूनवान्**।*

*(२) **लग्नः**। लज्+क्त। लज्+त। लज्+न। लग्+न। लग्न+सु। लग्नः।*

*यहां '**ओलजी व्रीडायाम्**' (तु०आ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। '**ओदितश्च**' (८।२।४५) से निष्ठा के तकार को नकार आदेश होता है। इसे असिद्ध मानकर '**चोः कुः**' (८।२।३०) से जकार को कुत्व गकार होता है। ऐसे ही 'क्तवतु' प्रत्यय में-**लग्नवान्**।*

*(३) **उद्विग्नः**। उत्-उपसर्गपूर्वक '**ओविजी भयचलनयोः**' (तु०आ०) धातु से पूर्ववत्।*

*(४) **दीप्तः**। '**दीपी दीप्तौ**' (दि०आ०) धातु से पूर्ववत्।*

इट्-प्रतिषेधः-

(८) यस्य विभाषा।१५।

प०वि०-यस्य ६।१ विभाषा १।१।

अनु०-अङ्गस्य, न, इड्, निष्ठायाम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यस्याङ्गस्य विभाषा इट् तस्माद् निष्ठाया न।

अर्थः-यस्याङ्गस्य क्वचिद् विभाषा इड् विहितस्तस्माद् निष्ठाया इडागमो न भवति।

उदा०-वक्ष्यति **'स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा'** (७।२।४४) इति। धूञ्-विधूतः, विधूतवान्। **गुहू**-गुढः, गूढवान्। **'उदितो वा'** (७।२।५६) इति-**वृधु**-वृद्धः, वृद्धवान्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(यस्य) जिस धातुरूप (अङ्गस्य) अङ्ग के सम्बन्ध में कहीं (विभाषा) विकल्प से (इट्) इडागम का विधान किया गया है उससे परे (निष्ठायाः) निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय को इडागम (न) नहीं होता है।*

उदा०-जैसे पाणिनि मुनि कहेंगे- ***'स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा'*** *(७।२।४४) अर्थात् इन स्वरति आदि धातुओं से परे निष्ठा प्रत्यय को विकल्प से इडागम होता है।* ***धूञ्-विधूतः।*** *विकम्पित हुआ।* ***विधूतवान्।*** *पूर्ववत्।* ***गुहू-गुढः।*** *छुपा हुआ।* ***गूढवान्।*** *पूर्ववत्। 'उदितो वा' (७।२।५६) अर्थात् उदित् धातु से परे क्त्वा प्रत्यय को विकल्प से इडागम होता है।* ***वृधु-वृद्धः।*** *बढ़ा हुआ।* ***वृद्धवान्।*** *पूर्ववत्।*

सिद्धि-(१) विधूतः। *वि+धू+क्त। वि+धू+त। विधूत+सु। विधूतः।*

यहां वि-उपसर्गपूर्वक ***'धूञ् कम्पने'*** *(क्र्या०उ०) धातु से* ***'निष्ठा'*** *(३।२।१०२) से भूतकाल अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। इस से परे* ***'स्वरतिसूति०'*** *(७।२।४४) से वलादि आर्धधातुक को विकल्प से इडागम का विधान किया गया है। अतः इस सूत्र से निष्ठा प्रत्यय को इडागम नहीं होता है। ऐसे ही 'क्तवतु' प्रत्यय में-***विधूतवान्।***

(२) गूढः। गुह्+क्त। गुह्+त। गुढ्+ढ। गू०+ढ। गूढ+सु। गूढः।

यहां ***'गुहू संवरणे'*** *(भ्वा०प०) इस ऊदित धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से निष्ठा-संज्ञक 'क्त' प्रत्यय को इडागम नहीं होता है।* ***'हो ढः'*** *(८।२।३१) से हकार को ढकार,* ***'झषस्तथोर्धोऽधः'*** *(८।२।४०) से तकार को धकार,* ***'ष्टुना ष्टुः'*** *(८।४।४०) से धकार को टवर्ग ढकार होता है।* ***'ढो ढे लोपः'*** *(८।३।१३) से पूर्ववर्ती ढकार का लोप और* ***'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः'*** *(६।३।१११) से दीर्घ होता है। ऐसे ही 'क्तवतु' प्रत्यय में-गूढवान्।*

(३) वृद्धः। वृध्+क्त। वृध्+त। वृध्+ध। वृद्+ध। वृद्ध+सु। वृद्धः।

यहां ***'वृधु वृद्धौ'*** *(भ्वा०आ०) इस उदित् धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। 'उदितो वा' (७।२।५६) से उदित् धातु से परे 'क्त्वा' प्रत्यय को विकलप से इडागम का विधान किया गया है। अतः इस सूत्र से निष्ठा-संज्ञक 'क्त' प्रत्यय को इडागम नहीं होता है।* ***'झषस्तथोर्धोऽधः'*** *(८।२।४०) से तकार को धकार और* ***'झलां जश् झशि'*** *(८।४।५३) से 'वृध्' के धकार को जश् दकार होता है। ऐसे ही 'क्तवतु' प्रत्यय में-***वृद्धवान्।***

इट्-प्रतिषेधः–

(९) आदितश्च।१६।

प०वि०-आदितः ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-आद् इद् यस्य स आदित्, तस्मात्-आदितः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, न, इट्, निष्ठायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-आदितोऽङ्गाच्च निष्ठाया इड् न।

अर्थः-आदितोऽङ्गाच्चोत्तरस्या निष्ठाया इडागमो न भवति।

उदा०-**ञिमिदा**-मिन्नः, मिन्नवान्। **ञिक्ष्विदा**-क्ष्विन्नः। क्ष्विन्नवान्। **ञिष्विदा**-स्विन्नः, स्विन्नवान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(आदितः) आकार जिसका इत् है उस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (च) भी (निष्ठायाः) निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय को (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**ञिमिदा-मिन्नः।** पिंघल गया। **मिन्नवान्।** पूर्ववत्। **ञिक्ष्विदा-क्ष्विन्नः।** तैल मालिश किया हुआ/मुक्त किया हुआ। **क्ष्विन्नवान्।** पूर्ववत्। **ञिष्विदा-स्विन्नः।** गीला किया हुआ/मुक्त किया हुआ। **स्विन्नवान्।** पूर्ववत्।*

*सिद्धि-(१) **मिन्नः।** मिदा+क्त। मिद्+त। मिद्+न। मिन्+न। मिन्न+सु। मिन्नः।*

*यहां **'ञिमिदा स्नेहने'** (दि०प०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से भूतकाल अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। **'ञिमिदा'** धातुस्थ आकार की **'उपदेशेऽजनुनासिक इत्'** (१।३।२) से इत्-संज्ञा है अतः यह आदित् धातु है। अतः इस सूत्र से निष्ठा-संज्ञक 'क्त' प्रत्यय को इडागम नहीं होता है। **'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः'** (८।२।४२) से निष्ठा-तकार को नकार और उससे पूर्ववर्ती धातुस्थ दकार को भी नकार आदेश होता है। ऐसे ही 'क्तवतु' प्रत्यय में-**मिन्नवान्।***

*(२) **क्ष्विन्नः।** **'ञिक्ष्विदा स्नेहनमोचनयोः'** (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत्।*

*(३) **स्विन्नः।** **'ञिष्विदा स्नेहनमोचनयोः'** (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत्।*

इडागम-विकल्पः–

(१०) विभाषा भावादिकर्मणोः।१७।

प०वि०-विभाषा १।१ भाव-आदिकर्मणोः ७।२।

स०-भावश्च आदिकर्म च ते भावादिकर्मणी, तयोः-भावादिकर्मणोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, न, इट्, निष्ठायाम्, आदित इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भावादिकर्मणोरादितोऽङ्गाद् निष्ठाया विभाषा इड् न।

अर्थः- भावे आदिकर्मणि चार्थे वर्तमानाद् आदितोऽङ्गाद् उत्तरस्या निष्ठाया विकल्पेन इडागमो न भवति।

उदा०-**(भावे)** मिन्नमनेन, मेदितमनेन **(आदिकर्मणि)** प्रमिन्नः, प्रमेदितः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(भावादिकर्मणोः) भाव और आदिकर्म अर्थ में विद्यमान (आदितः) जिसका आकार इत् है उस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (निष्ठायाः) निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय को (विभाषा) विकल्प से (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

उदा०-(भावे) ***मिन्नमनेन।*** *इसने स्नेह किया।* ***मेदितमनेन*** *पूर्ववत्।* ***(आदिकर्मणि) प्रमिन्नः।*** *उसने स्नेह करना प्रारम्भ किया।* ***प्रमेदितः।*** *पूर्ववत्।*

सिद्धि-(१) मिन्नम्। *यहां 'ञिमिदा स्नेहने' (दि०प०) अर्थ में निष्ठा-संज्ञक 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'क्त' प्रत्यय को इडागम नहीं होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**मेदितम्।***

(२) ***प्रमिन्नः।*** *यहां प्र-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'ञिमिदा' धातु से आदि कर्म के अर्थ में पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'क्त' प्रत्यय को इडागम नहीं होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**प्रमेदितः।***

विशेषः *'नवेति विभाषा' (१।१।४४) से निषेध और विकल्प की संज्ञा की गई है। अतः प्राप्त इडागम का 'न' से प्रतिषेध होकर 'वा' से विकल्प होता है।*

निपातनम्-

(११) क्षुब्धस्वान्तध्वान्तलग्नम्लिष्टविरिब्धफाण्टबाढानि मन्थमनस्तमःसक्ताविस्पष्टस्वरानायासभृशेषु।१८।

प०वि०- क्षुब्ध-स्वान्त-ध्वान्त-लग्न-म्लिष्ट-विरिब्ध-फाण्ट-बाढानि १।३ मन्थ-मनः-तमः-सक्त-अविस्पष्ट-स्वर-अनायास-भृशेषु ७।३।

स०-क्षुब्धश्च स्वान्तं च ध्वान्तं च लग्नं च म्लिष्टं च विरिब्धं च फाण्टं च बाढं च तानि-क्षुब्ध०बाढानि (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। मन्थश्च मनश्च तमश्च सक्तं च अविस्पष्टं च स्वरश्च अनायासश्च भृशं च तानि-मन्थ०भृशानि, तेषु-मन्थ०भृशेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अर्थः-क्षुब्धस्वान्तध्वान्तलग्नम्लिष्टविरिब्धफाण्टबाढानि शब्दरूपाणि यथासंख्यं मन्थमनस्तमःसक्तविस्पष्टस्वरानायासभृशेष्वर्थेषु निपात्यन्ते।

उदाहरणम्-क्षुब्धो मन्थः। स्वान्तं मनः। ध्वान्तं तमः। लग्नं सक्तम्। म्लिष्टम् अविस्पष्टम्। विरिब्धं स्वरः। फाण्टोऽनायासः। बाढं भृशम्।

***आर्यभाषाः* अर्थ-**(*क्षुब्ध०बाढानि*) *क्षुब्ध, स्वान्त, ध्वान्त, लग्न, म्लिष्ट, विरिब्ध, फाण्ट, बाढ ये शब्दरूप यथासंख्य (मन्थ०भृशेषु) मन्थ, मनः, तमः, सक्त, अविस्पष्ट, स्वर, अनायास, भृश इन अर्थों में निपातित हैं।*

*उदा०-**क्षुब्धो मन्थः।** क्षुब्ध का अर्थ मन्थ है, यहां मन्थ का अभिप्राय जलादि द्रव-पदार्थ से युक्त सत्तू है। **स्वान्तं मनः।** स्वान्त का अर्थ मन है। बाह्यविषयों में अविक्षिप्त एवं अनाकुल मन स्वान्त कहलाता है। **ध्वान्तं तमः।** ध्वान्त का अर्थ तम (अन्धकार) है। **लग्नं सक्तम्।** लग्न का अर्थ सक्त (फंसा हुआ) है। **म्लिष्टम् अविस्पष्टम्।** म्लिष्ट का अर्थ अविस्पष्ट (अव्यक्त) है। **विरिब्धं स्वरः।** विरिब्ध का अर्थ स्वर (ध्वनि) है। **फाण्टम् अनायासः।** फाण्ट का अर्थ अनायास है। जो न पकाया गया हो और न पीसा गया हो वह कषाय पदार्थ जो कि केवल जलसम्पर्क मात्र से पृथग्भूत रसवाला कुछ उष्णपदार्थ फाण्ट कहाता है। यह अल्प प्रयत्न से साध्य होने से अनायास कहलाता है। **'यदशृतमपिष्टं च कषायमुदकसम्पर्कमात्राद्विभक्तरसमीषदुष्णं तत् फाण्टम्"** (काशिका)। **बाढं भृशम्।** बाढ का अर्थ भृश (अतिशय) है।*

सिद्धि-(१) क्षुब्धः। *क्षुभ्+क्त। क्षुभ्+त। क्षुभ्+ध। क्षुब्+ध। क्षुब्ध+सु। क्षुब्धः।*

*यहां **'क्षुभ सञ्चलने'** (दि०प०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से मन्थ-अर्थ में इडागम का अभाव निपातित है। **'झषस्तथोर्धोऽधः'** (८।२।४०) से तकार को धकार और 'झलां जश् झशि' (८।४।५३) से भकार को जश् बकार होता है।*

(२) स्वान्तम्। *स्वन्+क्त। स्वन्+त। स्वान्+त। स्वान्त+सु। स्वान्तम्।*

*यहां **'स्वन शब्दे'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से मन-अर्थ में इडागम का अभाव निपातित है। **'अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति'** (६।४।१५) से दीर्घ होता है।*

(३) ध्वान्तम्। *ध्वन्+क्त। ध्वन्+त। ध्वाद्+त। ध्वान्त+सु। ध्वान्तम्।*

*यहां **'ध्वन शब्दे'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से तम-अर्थ में इडागम का अभाव निपातित है। पूर्ववत् दीर्घ होता है।*

(४) लग्नः। *लग्+क्त। लग्+त। लग्+न। लग्न+सु। लग्नः।*

*यहां **'लगे सङ्गे'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से सक्त-अर्थ में निष्ठा के तकार को नकार आदेश निपातित है।*

*(५) **म्लिष्टम्।** म्लेच्छ्+क्त। म्लेच्छ्+त। म्लेष्+ट। म्लिष्+ट। म्लिष्ट+सु। म्लिष्टम्।*

*यहां **'म्लेच्छ अव्यक्ते शब्दे'** (भ्वा०प०) धातु पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से अविस्पष्ट अर्थ में इडागम का अभाव तथा ह्रस्वभाव निपातित है। अविस्पष्ट अर्थात् शब्दों का अस्पष्ट उच्चारण करना।*

*(६) **विरिब्धम्।** वि+रेभ्+क्त। वि+रेभ्+त। वि+रेभ्+ध। वि+रेब्+ध। वि+रिब्+ध। विरिब्ध+सु। विरिब्धम्।*

*यहां **'रेभृ शब्दे'** (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से स्वर-अर्थ में इडागम का अभाव और ह्रस्वभाव निपातित है। **'झषस्तथोर्धोऽधः'** (८।२।४०) से तकार को धकार और **'झलां जश् झशि'** (८।४।५३) से भकार को जश् बकार होता है।*

*(७) **फाण्टम्।** फण्+क्त। फण्+त। फाण्+त। फाण्+ट। फाण्ट+सु। फाण्टम्।*

*यहां **'फण गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से अनायास-अर्थ में इडागम का अभाव निपातित है। **'अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति'** (६।४।१५) से दीर्घ होता है।*

*(८) **बाढम्।** बाह्+क्त। बाह्+त। बाढ्+त। बाढ्+ध। बाढ्+ढ। बा०+ढ। बाढ+सु। बाढम्।*

*यहां **'बाहृ प्रयत्ने'** (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से भृश-अर्थ में इडागम का अभाव निपातित है। 'हो ढः' (८।२।३१) से हकार को ढकार, पूर्ववत् तकार को धकार, **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से धकार को टवर्ग ढकार, **'ढो ढे लोपः'** (८।३।१३) से पूर्ववर्ती ढकार का लोप और **'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः'** (६।३।१११) से पूर्ववर्ती अण् को पर्जन्यवत् दीर्घ होता है।*

इट्-प्रतिषेधः–

(१२) धृषिशसी वैयात्ये।१६।

प०वि०–धृषिशसी १।२ (पञ्चम्यर्थे) वैयात्ये ७।१।

स०–धृषिश्च शसिश्च तौ धृषिशसी (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। विरूपं यातम्=गमनं, चेष्टितम् यस्य स वियातः=अविनीत इत्यर्थः। वियातस्य भावः=वैयात्यम्, तस्मिन्-वैयात्ये (बहुव्रीहिः)। **'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च'** (५।१।१२४) इत्यनेन भावेऽर्थे ष्यञ् प्रत्ययः।

अनु०–अङ्गस्य, न, इट्, निष्ठायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-वैयात्ये धृषिशसिभ्यामङ्गाभ्यां निष्ठाया इड् न।

अर्थः-वैयात्येऽर्थे वर्तमानाभ्यां धृषिशसियाम् उत्तरस्या निष्ठाया इडागमो न भवति।

उदा०-**(धृषिः)** धृष्टः। प्रगल्भः, अविनीतः। **(शसिः)** विशस्तः। प्रगल्भः, अविनीतः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(वैयात्ये) प्रगल्भ=अविनीत अर्थ में विद्यमान (धृषिशसिभ्याम्) धृषि, शसि इन (अङ्गानाम्) अङ्गों से परे (निष्ठायाः) निष्ठा को (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**(धृषि) धृष्टः।** प्रगल्भ, अविनीत पुरुष। **(शसि) विशस्तः।** प्रगल्भ, अविनीत पुरुष।*

सिद्धि-(१) धृष्टः। *धृष्+क्त। धृष्+त। धृष्+ट। धृष्ट+सु। धृष्टः।*

*यहां **'ञिधृषा प्रागल्भ्ये'** (स्वा०प०) धातु से **'क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम्'** (३।३।१७४) से 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से वैयात्य-अर्थ में इडागम का प्रतिषेध होता है। **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकार होता है।*

*(२) **विशस्तः।** वि+शस्+क्त। वि+शस्+त। विशस्त+सु। विशस्तः।*

*यहां वि-उपसर्गपूर्वक **'शसु हिंसायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से वैयात्य-अर्थ में इडागम का प्रतिषेध होता है।*

निपातनम्--

(१३) दृढः स्थूलबलयोः।२०।

प०वि०-दृढः १।१ स्थूल-बलयोः ७।२।

स०-स्थूलं च बलश्च तौ स्थूलबलौ, तयोः-स्थूलबलयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। बलशब्दे **'अर्श आदिभ्योऽच्'** (५।२।१२७) इति मतुबर्थेऽच्प्रत्ययः। बलः=बलवान्।

अन्वयः-स्थूलबलयोर्दृढो निपातनम्।

अर्थः-स्थूले बलवति चार्थे दृढ इति शब्दो निपात्यते।

उदा०-दृढः स्थूलः। दृढो बलवान्।

आर्यभाषाः ***अर्थ**-(स्थूलबलयोः) स्थूल और बलवान् अर्थ में (दृढः) दृढ यह शब्द निपातित है।*

उदा०-दृढ: स्थूल: । मोटा। दृढो बलवान्। बली।

सिद्धि-दृढ: । दृंह्+क्त। दृंह्+त। दृ०+ढ। दृ+ढ। दृढ+सु। दृढ: ।

यहां 'दृहि वृद्धौ' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से स्थूल और बलवान् अर्थ में इडागम का अभाव तकार को ढकार, हकार और नकार का लोप निपातित है।

निपातनम्–

(१४) प्रभौ परिवृढः।२१।

प०वि०–प्रभौ ७।१ परिवृढ: १।१।

अर्थ:–प्रभावर्थे परिवृढ इति शब्दो निपात्यते।

उदा०–परिवृढ: प्रभु:, कुटुम्बीत्यर्थ:।

आर्यभाषाः *अर्थ-(प्रभौ) प्रभु अर्थात् कुटुम्बी अर्थ में (परिवृढ:) परिवृढ यह शब्द निपातित है।*

*उदा०-**परिवृढ: प्रभु:** । कुटुम्बी, परिवार का स्वामी।*

*सिद्धि-**परिवृढ:** । परि+वृंह्+क्त। परि+वृंह्+त। परि+वृ०+ढ। परिवृढ+सु। परिवृढ: ।*

यहां परि-उपसर्गपूर्वक 'वृहि वृद्धौ' (भ्वा०आ०) इस धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से प्रभु-अर्थ में इडागम का अभाव, तकार को ढकार, हकार और नकार का लोप निपातित है।

इट्-प्रतिषेधः–

(१५) कृच्छ्रगहनयोः कषः।२२।

प०वि०–कृच्छ्र-गहनयो: ७।२ कष: ५।१।

स०–कृच्छ्रं च गहनं च ते कृच्छ्रगहने, तयो:-कृच्छ्रगहनयो: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०–अङ्गस्य, न, इट्, निष्ठायामिति चानुवर्तते।

अन्वय:–कृच्छ्रगहनयो: कषोऽङ्गाद् निष्ठाया इड् न।

अर्थ:–कृच्छ्रे गहने चार्थे वर्तमानात् कषोऽङ्गाद् उत्तरस्या निष्ठाया इडागमो न भवति।

उदा०-(कृच्छ्रे) कष्टोऽग्निः । कष्टं व्याकरणम् । ततोऽपि कष्टतराणि सामानि । "कृच्छ्रम्=दुःखम्, तत्कारणमप्यग्न्यादिकं कृच्छ्रमित्युच्यते" (काशिका) । **(गहने)** कष्टानि वनानि । कष्टाः पर्वताः ।

आर्यभाषाः अर्थ- *(कृच्छ्रगहनयोः) कृच्छ्र और गहन अर्थ में विद्यमान (कषः) कष् इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (निष्ठायाः) निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय को (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

उदा०-(कृच्छ्र) ***कष्टोऽग्निः।*** *अग्नि दुःख का हेतु है।* ***कष्टं व्याकरणम्।*** *व्याकरणशास्त्र दुःख का हेतु है अर्थात् कठिन है।* ***ततोऽपि कष्टतराणि सामानि।*** *सामगान उस व्याकरणशास्त्र भी अधिक दुःख का हेतु है अर्थात् कठिन हैं।* ***(गहन) कष्टानि वनानि।*** *वन गहन हैं।* ***कष्टाः पर्वताः।*** *पर्वत गहन हैं।*

सिद्धि-कष्टम्। *कष्+क्त। कष्+त। कष्+ट। कष्ट+सु। कष्टम्।*

यहां ***'कष हिंसार्थः'*** *(भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से कृच्छ्र और गहन अर्थ में इडागम का प्रतिषेध होता है।* ***'ष्टुना ष्टुः'*** *(८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकार होता है।*

इट्-प्रतिषेधः-

(१६) घुषिरविशब्दने ।२३।

प०वि०-घुषिः १।१ (पञ्चम्यर्थे) अविशब्दने ७।१।

स०-विशब्दनम्=प्रतिज्ञानम्। न विशब्दनम् इति अविशब्दनम्, तस्मिन्-अविशब्दने (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, न, इट्, निष्ठायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अविशब्दने घुषेरङ्गाद् निष्ठाया इड् न।

अर्थः-अविशब्दने=अप्रतिज्ञानेऽर्थे वर्तमानाद् घुषेरङ्गाद् उत्तरस्या निष्ठाया इडागमो न भवति।

उदा०-घुष्टा रज्जुः । घुष्टौ पादौ । अविशब्दने इति किम्-अवघुषितं वाक्यमाह, प्रतिज्ञातमित्यर्थः ।

आर्यभाषाः अर्थ- *(अविशब्दने) प्रतिज्ञात से भिन्न अर्थ में विद्यमान (घुषेः) घुषि इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (निष्ठायाः) निष्ठा-संज्ञक को (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

*उदा०-घुष्टा रज्जुः। वह रज्जु=रस्सी (नेजू) जिसकी लड़े घुटकर एकाकार हो गई हैं, घिसी हुई रस्सी। **घुष्टौ पादौ।** रगड़कर धोये हुये पैर। घिसे हुये पांव।*

***सिद्धि-घुष्टा।** घुष्+क्त। घुष्+त। घुष्+ट। घुष्ट+टाप्। घुष्टा+सु। घुष्टा+०। घुष्टा।*

*यहां 'घुषिरविशब्दने' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से अविशब्दने-अर्थ में इडागम का प्रतिषेध होता है। **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकार होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**घुष्टौ पादौ।***

इट्-प्रतिषेधः-

(१७) अर्देः सन्निविभ्यः।२४।

प०वि०-अर्देः ५।१ सम्-नि-विभ्यः ५।३।

स०-सम् च निश्च विश्च ते सन्निवयः, तेभ्यः-सन्निविभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, न, इट्, निष्ठायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-सन्निविभ्योऽर्देरङ्गाद् निष्ठाया इड् न।

अर्थः-सन्निविभ्य उपसर्गेभ्यः परस्माद् अर्देरङ्गाद् उत्तरस्या निष्ठाया इडागमो न भवति।

उदा०-(सम्) समर्णः। **(निः)** न्यर्णः। **(विः)** व्यर्णः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(सन्निविभ्यः) सम्, नि, वि इन उपसर्गों से परे (अर्देः) अर्दि इस (अङ्गात्) अङ्ग से उत्तरवर्ती (निष्ठायाः) निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय को (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(सम्) **समर्णः।** सङ्गत/संयाचित। (नि) **न्यर्णः।** निगत/नियाचित। (वि) **व्यर्णः।** विगत/वियाचित।*

***सिद्धि-समर्णः।** सम्+अर्द्+क्त। सम्+अर्द्+त। सम्+अर्न्+न। सम्+अर्ण्+ण। सम्+अर्०+ण। समर्ण+सु। समर्णः।*

*यहां सम्-उपसर्गपूर्वक **'अर्द गतौ याचने च'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से इडागम का प्रतिषेध होता है। **'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः'** (८।२।८२) से निष्ठा-तकार को नकार और पूर्ववर्ती धातुस्थ दकार को भी नकार आदेश होता है। **'रषाभ्यां नो णः समानपदे'** (८।४।१) से णत्व, **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से नकार को टवर्ग णकार और **'हलो यमां यमि लोपः'** (८।४।६३) से पूर्ववर्ती णकार का लोप होता है। ऐसे ही-**न्यर्णः, व्यर्णः।***

इट्-प्रतिषेधः--

(१८) अभेश्चाविदूर्ये।२५।

प०वि०-अभे: ५।१ च अव्ययपदम्, आविदूर्ये ७।१।

स०-विदूरम्=विप्रकृष्टम्। न विदूरमिति अविदूरम्। अविदूरस्य भाव आविदूर्यम्, तस्मिन्-आविदूर्ये (नञ्तत्पुरुषः)। **'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च'** (५।१।१२३) इति भावेऽर्थे ष्यञ् प्रत्ययः।

अनु०-अङ्गस्य, न, इट्, निष्ठायाम्, अर्देरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अविदूर्येऽभेश्चार्देर्निष्ठाया इड् न।

अर्थः-अविदूर्येऽर्थे वर्तमानाद् अभेः परस्माद् अर्देरङ्गाद् उत्तरस्या निष्ठाया इडागमो न भवति।

उदा०-अभ्यर्णा सेना। अभ्यर्णा शरत्। समीपस्थेत्यर्थः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(आविदूर्ये) समीपता-अर्थ में विद्यमान, (अभेः) अभि-उपसर्ग से परे (अर्दे:) अर्दि इस (अङ्गात्) अङ्ग से उत्तरवर्ती (निष्ठाया:) निष्ठासंज्ञक प्रत्यय को (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

उदा०-***अभ्यर्णा सेना।*** *सेना समीपस्थ है।* ***अभ्यर्णा शरत्।*** *शरद् ऋतु समीपस्थ है।*

सिद्धि-अभ्यर्णा। *यहां अभि-उपसर्ग पूर्वक, आविदूर्य=समीपता अर्थ में विद्यमान* ***'अर्द गतौ याचने च'*** *(भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से इडागम का प्रतिषेध होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में* ***'अजाद्यतष्टाप्'*** *(४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय है। शेष नत्व आदि कार्य पूर्ववत् हैं।*

निपातनम्--

(१९) णेरध्ययने वृत्तम्।२६।

प०वि०-णे: ५।१ अध्ययने ७।१ वृत्तम् १।१।

कृद्वृत्तिः-अधीयते यद् इत्यध्ययनम्। अत्र **'कृत्यल्युटो बहुलम्'** (३।३।११३) इति कर्मणि कारके ल्युट् प्रत्ययः।

अनु०-अङ्गस्य, न, इट्, निष्ठायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-वृत्तम्=णेर्वृत्तेरङ्गाद् अध्ययने निष्ठाया इड् न।

अर्थः-वृत्तमित्यत्र ण्यन्ताद् वृत्तेरङ्गादुत्तरस्या अध्ययनवाचिन्या निष्ठाया इडागमो न भवतीति निपात्यते।

उदा०-वृत्तो गुणो देवदत्तेन। वृत्तः सम्पादितः। गुणः=पाठः पदक्रम-संहितारूपोऽध्ययनविशेषः (पदमञ्जरी)। वृत्तं पारायणं यज्ञदत्तेन।

आर्यभाषाः अर्थ-*(वृत्तम्) वृत्त इस पद में (णेः) णिजन्त (वृत्तेः) वृत्ति इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (अध्ययने) अध्ययनवाची (निष्ठाया) निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय को (इट्) इडागम (न) नहीं होता है, यह निपातन है।*

*उदा०-**वृत्तो गुणो देवदत्तेन।** देवदत्त ने गुण अर्थात् पदपाठ, क्रमपाठ और संहितापाठ रूप अध्ययन सम्पादित किया। **वृत्तं पारायणं यज्ञदत्तेन।** यज्ञदत्त ने वेदपारायण आत्मक अध्ययन सम्पादित किया।*

सिद्धि-वृत्तम्। *वृत्+णिच्+क्त। वृत्+०+त। वृत्त+सु। वृत्तम्।*

*यहां णिजन्त '**वृतु वर्तने**' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से अध्ययनवाची निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय को इडागम का प्रतिषेध होता है। 'णिच्' प्रत्यय का लुक् निपातित है, लोप नहीं। लोप-निपातन करने से '**प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्**' (१।१।६२) से प्रत्ययलक्षण गुण प्राप्त होता है। लुक्-निपातन से '**न लुमताऽङ्गस्य**' (१।१।६३) से प्रत्ययलक्षण गुण नहीं होता है।*

इडागम-विकल्पः—

(२०) वा दान्तशान्तपूर्णदस्तस्पष्टच्छन्नज्ञप्ताः।२७।

प०वि०-वा अव्ययपदम्, दान्त-शान्त-पूर्ण-दस्त-स्पष्ट-च्छन्न-ज्ञप्ताः १।३।

स०-दान्तश्च शान्तश्च पूर्णश्च दस्तश्च स्पष्टश्च छन्नश्च ज्ञप्तश्च ते-दान्त०ज्ञप्ताः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, न, इट्, निष्ठायाम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-दान्तशान्तपूर्णदस्तस्पष्टच्छन्नज्ञप्ता णेरङ्गाद् निष्ठाया वा इड् न।

अर्थः-दान्तशान्तपूर्णदस्तस्पष्टच्छन्नज्ञप्ता इत्यत्र ण्यन्ताद् अङ्गाद् उत्तरस्या निष्ठाया विकल्पेन इडागमो न भवतीति निपात्यते। **उदाहरणम्**—

	अनिट्	इडागमः	भाषार्थः
(१)	दान्तः	दमितः	उपशान्त किया।
(२)	शान्तः	शमितः	उपशान्त किया।

	अनिट्	इडागमः	भाषार्थः
(३)	पूर्णः	पूरितः	भरा हुआ।
(४)	दस्तः	दासितः	उपक्षीण हुआ।
(५)	स्पष्टः	स्पाशितः	बाधित/स्पर्श किया।
(६)	छन्नः	छादितः	आच्छादित किया।
(७)	ज्ञप्तः	ज्ञपितः	मारण आदि किया।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दान्त०) दान्त, शान्त, पूर्ण, दस्त, स्पष्ट, छन्न, ज्ञप्त इन शब्दों में (णेः) णिजन्त (अङ्गात्) अङ्ग से परे (निष्ठायाः) निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय को (वा) विकल्प से (इट्) इडागम (न) नहीं होता है, यह निपातित है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-(१) ***दान्तः।*** *दम्+णिच्+क्त। दाम्+इ+त। दम्+०+त। दम्+त। दाम्+त। दान्+त। दान्त+सु। दान्तः।*

यहां ***'दमु उपशमे'*** *(दि०प०) धातु से* ***'हेतुमति च'*** *(३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय और पूर्ववत् निष्ठा प्रत्यय है। इस सूत्र से णिच् का लुक् और इडागम का प्रतिषेध निपातित है। 'णिच्' परे होने पर* ***'अत उपधायाः'*** *(७।२।११६) से की गई उपधा वृद्धि को* ***'मितां ह्रस्वः'*** *(६।४।९२) से ह्रस्व हो जाता है। पुनः* ***'अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति'*** *(६।४।१५) से दीर्घ होता है। विकल्प पक्ष में इडागम होता है-* ***दमितः।*** *यहां पूर्ववत् ह्रस्व होता है। ऐसे ही* ***'शमु उपशमे'*** *(दि०प०) धातु से-* ***शान्तः, शमितः।***

(२) ***पूर्णः।*** *पूर्+णिच्+क्त। पूर्+इ+त। पूर्+०+न। पूर्+ण। पूर्ण+सु। पूर्णः।*

यहां णिजन्त ***'पूरी आप्यायने'*** *(दि०आ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है।* ***'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः'*** *(८।२।४२) से तकार को नकार और* ***'रषाभ्यां नो णः समानपदे'*** *(८।४।१) से णत्व होता है। विकल्प-पक्ष में-* ***पूरितः।***

(३) ***दस्तः।*** *यहां णिजन्त* ***'दसु उपक्षये'*** *(दि०प०) से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। विकल्प-पक्ष में-* ***दासितः।***

(४) ***स्पष्टः।*** *स्पश्+णिच्+क्त। स्पश्+इ+त। स्पश्+इ+त। स्पश्+०+त। स्पष्+ट। स्पष्ट+सु। स्पष्टः।*

यहां णिजन्त ***'स्पश बाधनस्पर्शयोः'*** *(भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है।* ***'व्रश्चभ्रस्ज०'*** *(८।२।३५) से शकार को षकार और* ***'ष्टुना ष्टुः'*** *(८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकार होता है। विकल्प-पक्ष में-* ***स्पाशितः।***

(५) ***छन्नः।*** *यहां णिजन्त* ***'छद अपवारणे'*** *(चु०उ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है।* ***'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः'*** *(८।२।४२) से तकार को नकार और*

*धातुस्थ दकार को भी नकार आदेश होता है। यहां णिलोप, इडागम के अभाव के अतिरिक्त उपधा ह्रस्वत्व भी निपातित है। विकल्प-पक्ष में-**छादितः।***

*(६) **ज्ञप्तः।** ज्ञप्+णिच्+त। ज्ञाप्+इ+त। ज्ञा+प्+इ+त। ज्ञाप्+०+त। ज्ञाप्+त। ज्ञप्त+सु। ज्ञप्तः।*

*यहां णिजन्त **'मारणतोषणनिशामनेषु ज्ञा'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। **'मारणतोषणनिशामनेषु ज्ञा'** (भ्वा०गणसूत्र) से इसकी मित्-संज्ञा और **'मितां ह्रस्वः'** (६।४।९२) से ह्रस्व होता है। इस सूत्र से णिच् का लुक् और इडागम का अभाव निपातित है। विकल्प-पक्ष में-**ज्ञपितः।***

***'सनीवन्तर्धभ्रस्जदम्भुश्रिस्वृयूर्णुभरज्ञपिसनाम्'** (७।२।४९) से 'ज्ञप्' धातु को विकल्प से इडागम का विधान किया गया है, अतः **'यस्य विभाषा'** (७।२।१५) से निष्ठा में नित्य इडागम प्रतिषेध प्राप्त था, इसलिये यहां पुनः विकल्प का विधान किया गया है।*

इडागम-विकल्पः—

(२१) रुष्यमत्वरसंघुषास्वानाम्।२८।

प०वि०-रुषि-अम-त्वर-संघुष-आस्वनाम् ६।३।

स०-रुषिश्च अमश्च त्वरश्च संघुषश्च आस्वन् च ते रुषि०आस्वनः, तेषाम्-रुषि०आस्वनाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, न, इट्, निष्ठायाम्, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-रुष्यमत्वरसंघुषास्वनिभ्योऽङ्गेभ्यो निष्ठाया वा इड् न।

अर्थः-रुष्यमत्वरसंघुषास्वनिभ्योऽङ्गेभ्य उत्तरस्या निष्ठाया विकल्पेन इडागमो न भवति।

उदा०-**(रुषि)** रुष्टः, रुषितः। **(अम)** अभ्यान्तः, अभ्यमितः। **(त्वर)** तूर्णः, त्वरितः। **(संघुष)** संघुष्टौ, पादौ, संघुषितौ पादौ। संघुष्टं वाक्यमाह, संघुषितं वाक्यमाह। **(आस्वन्)** आस्वान्तो देवदत्तः, आस्वनितो देवदत्तः। आस्वान्तं मनः, आस्वनितं मनः।

***आर्यभाषाः अर्थ**-(रुष्यमत्वरसंघुषास्वनिभ्यः) रुषि, अम, त्वर, संघुष, आस्वन् इन (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (निष्ठायाः) निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय को (वा) विकल्प से (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**(रुषि) रुष्टः, रुषितः।** रोष किया। **(अम) अभ्यान्तः, अभ्यमितः।** रोगी हुआ। **(त्वर) तूर्णः, त्वरितः।** सम्भ्रान्त हुआ। **(संघुष) संघुष्टौ, पादौ, संघुषितौ***

पादौ। रगड़कर धोये हुये चरण। संघुष्टं वाक्यमाह, संघुषितं वाक्यमाह। उसने प्रतिज्ञापूर्ण वचन कहा। (आस्वन्) आस्वान्तो देवदत्तः, आस्वनितो देवदत्तः। आमन्त्रित देवदत्त। आस्वान्तं मनः, आस्वनितं मनः। मन=चित्त।

सिद्धि-(१) रुष्टः। रुष्+क्त। रुष्+त। रुष्+ट। रुष्ट+सु। रुष्टः।

यहां 'रुष रोषे' (चु०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४१) से तकार के टवर्ग टकार होता है। इस सूत्र से इडागम का प्रतिषेध होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-रुषितः।

(२) अभ्यान्तः। अभि+अम्+क्त। अभि+अम्+त। अभि+आम्+त। अभ्यान्तः।

यहां अभि-उपसर्गपूर्वक 'अम रोगे' (चु०उ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से इडागम का प्रतिषेध होता है। 'अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति' (८।४।१५) से दीर्घ और 'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः' (८।४।५८) से अनुस्वार को परसवर्ण नकार होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-अभ्यमितः।

(३) तूर्णः। त्वर्+क्त। त्वर्+त। त् ऊठ् र्+त। तूऊ र्+त। तूर्+न। तूर्+ण। तूर्ण+सु। तूर्णः।

यहां 'ञित्वरा सम्भ्रमे' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। 'ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च' (६।४।२०) से ऊठ्-रूप सम्प्रसारण, 'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः' (८।२।४२) से निष्ठा-तकार को नकार और 'रषाभ्यां नो णः समानपदे' (८।४।१) से णत्व होता है। 'आदितश्च' (७।२।१६) से इडागम का प्रतिषेध प्राप्त था, अतः इस सूत्र से विकल्प-विधान किया गया है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-त्वरितः।

(४) संघुष्टः। सम्+घुष्+क्त। सम्+घुष्+त। सम्+घुष्+ट। संघुष्ट+सु। संघुष्टः।

यहां सम्-उपसर्गपूर्वक 'घुषिर् अविशब्दने' (भ्वा०प०) से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से इडागम का प्रतिषेध होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-संघुषितः। 'घुषिर् विशब्दने' (भ्वा०प०) से अविशब्दन अर्थ में इडागम का प्रतिषेध प्राप्त था। इस सूत्र से अविशब्दन अर्थ में भी विकल्प से इडागम होता है-संघुष्टं वाक्यमाह, सुघुषितं वाक्यमाह।

(५) आस्वान्तः। आङ्+स्वन्+क्त। आ+स्वन्+त। आ+स्वान्+त। आस्वान्त+सु। आस्वान्तः।

यहां आङ्-उपसर्गपूर्वक 'स्वन शब्दे' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से इडागम का प्रतिषेध होता है। 'अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति' (६।४।१५) से दीर्घ होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-आस्वनितः।

*आङ्पूर्वक 'स्वन' धातु को मन-अर्थ में भी इसी सूत्र से विकल्प से इडागम होता है-**अस्वान्तं मनः, आस्वानितं मनः।** 'क्षुब्धस्वान्तध्वान्त०' (७।२।१८) से मन-अर्थ में जो इडागम का प्रतिषेध निपातित है उसका यह बाधक है अर्थात् आङ्पूर्वक 'स्वन' धातु से मन-अर्थ में भी निष्ठा को विकल्प से इडागम होता है-**आस्वान्तं मनः। आस्वनितं मनः।***

इडागम-विकल्पः–

(२२) हृषेर्लोमसु।२६।

प०वि०–हृषेः ५।१। लोमसु ७।१।

अनु०–अङ्गस्य, न, इट्, निष्ठायाम्, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः–लोमसु हृषेरङ्गाद् निष्ठाया वा इड् न।

अर्थः–लोमसु वर्तमानाद् हृषेरङ्गाद् उत्तरस्या निष्ठाया विकल्पेन इडागमो न भवति।

उदा०–हृष्टानि लोमानि, हृषितानि लोमानि। हृष्टं लोमभिः, हृषितं लोमभिः। हृष्टाः केशाः, हृषिताः केशाः। हृष्टं कैशैः। हृषितं केशैः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(लोमसु) लोम=केश विषय में विद्यमान (हृषेः) हृषि इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (निष्ठायाः) निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय को (वा) विकल्प से (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**हृष्टानि लोमानि, हृषितानि लोमानि।** उत्स्फुटित (खड़े हुये) लोम (कर्तृवाच्य)। **हृष्टं लोमभिः, हृषितं लोमभिः।** लोमों के द्वारा उत्स्फुटित होना (भाववाच्य)। **हृष्टाः केशाः**, हृषिताः केशाः। अर्थ पूर्ववत् है (कर्तृवाच्य)। **हृष्टं कैशैः। हृषितं केशैः।** अर्थ पूर्ववत् है (भाववाच्य)।*

सिद्धि-हृष्टानि लोमानि।** यहां 'हृषु अलीके' (भ्वा०प०) अथवा 'हृष तुष्टौ' (दि०प०) धातु से '**गत्यर्थाकर्मक०**' (३।४।७२) से कर्ता अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से लोम-विषय में इडागम का प्रतिषेध होता है। '**ष्टुना ष्टुः**' (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकार होता है। विकल्प पक्ष में इडागम है-**हृषितानि लोमानि।

*'**हृष्टं लोमभिः, हर्षितं लोमभिः**' यहां '**नपुंसके भावे क्तः**' (३।३।११४) से भाव-अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। अतः '**कर्तृकरणयोस्तृतीया**' (२।३।१८) से कर्ता में तृतीया विभक्ति होती है।*

*'हृषु' धातु के उदित् होने से '**उदितो वा**' (७।२।५६) से 'क्त्वा' प्रत्यय को विकल्प से इडागम का विधान किया गया है। अतः '**यस्य विभाषा**' (७।२।१५) से निष्ठा*

प्रत्यय को इडागम का प्रतिषेध प्राप्त था। इस सूत्र से विकल्प से इडागम का विधान किया गया है।

विशेषः *लोम और केश शब्दों के पृथक्-पृथक् अर्थ हैं किन्तु यहां लोम और केश दोनों का सामान्य रूप से ग्रहण किया गया है।*

निपातनम्–

(२३) अपचितश्च।३०।

प०वि०–अपचितः १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–अङ्गस्य, न, इट्, निष्ठायाम्, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अपचितश्च वा निपातनम्।

अर्थः–अपचित इति च विकल्पेन निपात्यते, अर्थात् अप-पूर्वाच्चायतेरङ्गाद् उत्तरस्या निष्ठाया विकल्पेन इडभावोऽङ्गस्य च चिभावो निपात्यते।

उदा०–अपचितोऽनेन गुरुः, अपचायितोऽनेन गुरुः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपचितः) अपचित यह शब्द (वा) विकल्प से निपातित है अर्थात् अप-उपसर्गपूर्वक चाय् इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (निष्ठायाः) निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय को (वा) विकल्प से (इड् न) इडागम का अभाव और अङ्ग को चि-आदेश निपातित है।*

*उदा०–**अपचितोऽनेन गुरुः, अपचायितोऽनेन गुरुः।** इसने गुरु का सम्मान किया।*

*सिद्धि-**अपचितः।** अप+चाय्+क्त। अप+चाय्+त। अप+चि+त। अपचित+सु। अपचितः।*

*यहां अप-उपसर्गपूर्वक 'चायृ पूजानिशामनयोः' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से निष्ठा-प्रत्यय को इडागम का अभाव और 'चि' आदेश नहीं है-**अपचायितः।***

हु-आदेशः–

(२४) हु ह्वरेश्छन्दसि।३१।

प०वि०–हु १।१ (सु-लुक्) ह्वरेः ६।१ छन्दसि ७।१।

अनु०–अङ्गस्य, निष्ठायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि ह्वरेरङ्गस्य निष्ठायां हुः।

अर्थः-छन्दसि विषये ह्वरेरङ्गस्य स्थाने निष्ठायां परतो ह्रुरादेशो भवति।

उदा०-ह्रुतस्य चाह्रुतस्य च। अह्रुतमसि हविर्धानम् (यजु० १।९)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (ह्वरेः) ह्वरि=ह्वृ इस (अङ्गस्य) अङ्ग के स्थान में (निष्ठायाम्) निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (ह्रुः) ह्रु-आदेश होता है।*

*उदा०-**ह्रुतस्य चाह्रुतस्य च। अह्रुतमसि हविर्धानम्** (यजु० १।९)। अह्रुतम्=कुटिलतारहित।*

सिद्धि-ह्रुतम्। *ह्वृ+क्त। ह्वृ+त। ह्रु+त। ह्रुत+सु। ह्रुतम्।*

*यहां **'ह्वृ कौटिल्ये'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् **'क्त'** प्रत्यय है। इस सूत्र से 'ह्वृ' के स्थान में 'ह्रु' आदेश होता है। 'ह्वृ' धातु के अनुदात्त होने से **'एकाच उपदेशऽनुदात्तात्'** (७।२।१०) से इट्-प्रतिषेध तो है ही, यह सूत्र ह्रु-आदेश करने के लिये है।*

निपातनम्-

(२५) अपरिह्वृताश्च।३२।

प०वि०-अपरिह्वृताः १।३ च अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, निष्ठायाम्, छन्दसीति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि अपरिह्वृताश्च निष्ठायां निपातनम्।

अर्थः-छन्दसि विषयेऽपरिह्वृता इति च निष्ठायां परतो निपात्यते, ह्वरेरङ्गस्य ह्रु-आदेशो न भवतीत्यर्थः।

उदा०-अपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् (ऋ० १।१००।१९)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अपरिह्वृताः) अपरिह्वृताः यह शब्द (च) भी (निष्ठायाम्) निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर निपातित है अर्थात् 'ह्वृ' इस अङ्ग के स्थान में पूर्वोक्त ह्रु-आदेश नहीं होता है।*

*उदा०-**अपरिह्वृताः सनुयाम वाजम्** (ऋ० १।१००।१९)।*

सिद्धि-अपरिह्वृताः। *यहां परि-उपसर्गपूर्वक **'ह्वृ कौटिल्ये'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। **'ह्रु ह्वरेश्छन्दसि'** (७।२।३१) से विहित 'ह्वृ' के स्थान में **'ह्रु'** आदेश नहीं होता है। न और परिह्वृत शब्दों का नञ्तत्पुरुष समास है-**न परिह्वृता इति अपरिह्वृताः।** सब ओर से कुटिलता रहित सरल पुरुष।*

निपातनम्–

(२६) सोमे ह्वरितः।३३।

प०वि०–सोमे ७।१ ह्वरितः १।१।

अनु०–अङ्गस्य, निष्ठायाम्, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि ह्वरितो निष्ठायां सोमः।

अर्थः–छन्दसि विषये ह्वरित इति निष्ठायां परतो निपात्यते, सोमश्चेत् स भवति। ह्वृधातोर्निष्ठायां परतो गुण इडागमश्च निपात्यते इत्यर्थः।

उदा०–मा नः सोमो ह्वरितः, विह्वरितस्त्वम् (द्र०मा०श्रौ० २।५।४।२४)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेद-विषय में (ह्वरितः) ह्वरित यह शब्द (निष्ठायाम्) निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर निपातित है (सोमः) यदि वह सोम हो, अर्थात् 'ह्वृ' धातु से निष्ठा-प्रत्यय परे होने पर गुण और इडागम निपातित है।*

उदा०-मा नः सोमो ह्वरितः, विह्वरितस्त्वम् (द्र०मा०श्रौ० २।५।४।२४)।

सिद्धि-ह्वरितः। *यहां '**ह्वृ कौटिल्ये**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से धातु को गुण और निष्ठा-प्रत्यय को इडागम निपातित है।*

निपातनम्–

(२६) ग्रसितस्कभितस्तभितोत्तभितचत्तविकस्ता विशस्तृशंस्तृ-शास्तृतरुतृतरूतृवरुतृवरूतृवरूत्रीरुज्ज्वलिति-क्षरितिक्षमितिवमित्यमितीति च।३४।

प०वि०–ग्रसित-स्कभित-स्तभित-उत्तभित-चत्त-विकस्ताः १।३ विशस्तृ-शंस्तृ-शास्तृ-तरुतृ-तरूतृ-वरुतृ-वरूत्रीः १।३ उज्ज्वलिति-क्षरिति-क्षमितिवमित्यमिति १।१ इति अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्।

स०–ग्रसितश्च स्कभितश्च स्तभितश्च उत्तभितश्च चत्तश्च विकस्तश्च ते ग्रसित०विकस्ताः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। वितस्ता च शंस्ता च शास्ता च तरुता च तरूता च वरुता च वरूता च वरूत्री च ताः-विशस्तृशंस्तृ-शास्तृतरुतृतरूतृवरुतृवरूतृवरूत्रीः (जसि पूर्वसवर्णं छान्दसम्)। उज्ज्वलितिश्च क्षरितिश्च क्षमितिश्च वमितिश्च अमितिश्च एतेषां समाहारः–उज्ज्वलितिक्षरितिक्षमितिवमित्यमिति (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अर्थः-छन्दसि विषये ग्रसित, स्कभित, स्तभित, उत्तभित, चत्त, विकस्त, विशस्तृ, शंस्तृ, शास्तृ, तरुतृ, तरूतृ, वरुतृ, वरूतृ, वरूत्री, उज्ज्वलिति, क्षरिति, क्षमिति, वमिति, अमिति इत्येतानि शब्दरूपाणि निपात्यन्ते। **उदाहरणम्**--

(१) **ग्रसितः**-ग्रसितं वा एतत् सोमस्य (मै०सं० ३।७।४)। ग्रस्तमिति भाषायाम्।

(२) **स्कभितः**-विष्कभिते अजरे (ऋ० ६।७०।१)। विस्कब्ध इति भाषायाम्।

(३) **स्तभितः**-येन स्तः स्तभितम् (ऋ० १०।१२१।५)। स्तब्धमिति भाषायाम्।

(४) **उत्तभितः**-सत्येनोत्तभिता भूमिः (ऋ० १०।८५।१)। उत्तब्धेति भाषायाम्।

(५) **चत्तः**-चत्ता वर्षेण विद्युत्। चतितेति भाषायाम्।

(६) **विकस्तः**-उत्तानाया हृदयं यद् विकस्तम् (मै०सं० २।७।४)। विकसितमिति भाषायाम्।

(७) **विशस्ता**-एकस्त्वष्टुरश्वस्य विशस्ता (ऋ० १।१६२।१९)। विशसितेति भाषायाम्।

(८) **शंस्ता**-उत शंस्ता सुविप्तः (ऋ० १।१६२।५)। शंसितेति भाषायाम्।

(९) **शास्ता**-प्रशास्ता (ऋ० १।९४।६)। प्रशासितेति भाषायाम्।

(१०) **तरुता**-तरुतारं रथानाम् (ऋ० १०।१७८।१)।

(११) **तरूता**-तरूतारम्। तरितारम्।

(१२) **वरुता**-वरुतारं रथानाम्।

(१३) **वरूता**-वरूतारं रथानाम्। वरितारम्। वरूतारमिति च भाषायाम्।

(१४) **वरूत्रीः**-वरूत्रीष्ट्वा देवीविश्वदेव्यावतीः (यजु० ११।६१)।

(१५) **उज्ज्वलिति**-अग्निरुज्ज्वलिति। उज्ज्वलतीति भाषायाम्।

(१६) **क्षरिति**-स्तोकं क्षरिति। क्षरतीति भाषायाम्।

(१७) **क्षमिति**-स्तोमं क्षमिति। क्षमतीति भाषायाम्।

(१८) **वमिति**-यः सोमं वमिति। वमतीति भाषायाम्।

(१९) **अमिति**-अभ्यमिति वरुणः। अभ्यमतीति भाषायाम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेद-विषय में (ग्रसित०) ग्रसित, स्कभित, स्तभित, उत्तभित, चत्त, विकस्त, विशस्ता, शंस्ता, शास्ता, तरुता, तरूता, वरुता, वरूता, वरूत्री, उज्ज्वलिति, क्षरिति क्षमिति, वमिति, अमिति ये शब्द निपातित हैं।*

उदा०-उदाहरण संस्कृत-भाग में देख लेवें।

*सिद्धि-(१) **ग्रसितः**। ग्रस्+क्त। ग्रस्+त। ग्रस्+इट्+त। ग्रस्+इ+त। ग्रसित+सु। ग्रसितः।*

*यहां **'ग्रसु अदने'** (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। 'ग्रसु' धातु के उदित् होने से 'उदितो वा' (७।२।५६) से 'क्त्वा' प्रत्यय का विकल्प से इडागम का विधान किया गया है, अतः **'यस्य विभाषा'** (७।२।१५) से निष्ठा में इडागम का प्रतिषेध प्राप्त था, इसलिये इस सूत्र से यहां इडागम का निपातन किया गया है।*

*(२) **स्कभितः**। यहां **'स्कम्भु स्तम्भे'** (सौत्रधातु) से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। **'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति'** (६।४।२४) से अनुनासिक (न्) का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **स्तभितः**। **'स्तम्भु निष्कोषणे'** (सौत्रधातु) से पूर्ववत्।*

*(४) **उत्तभितः**। यहां उत्-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'स्तम्भु' धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। **'उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य'** (८।४।६१) से पूर्व सवर्ण आदेश होता है-उत्+स्तभितः। उत्+०तभितः=उत्तभितः। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(५) **चत्तः**। यहां **'चते याचने'** (भ्वा०प०) से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है।*

*(६) **विकस्तः**। यहां वि-उपसर्गपूर्वक **'कस गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है।*

*(७) **विशस्ता**। यहां वि-उपसर्गपूर्वक **'शसु हिंसायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। इडागम का अभाव निपातित है।*

*(८) **शंस्ता**। यहां **'शंसु स्तुतौ'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। इडागम का अभाव निपातित है।*

*(९) **शास्ता।** यहां **'शासु अनुशिष्टौ'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् **'तृच्'** प्रत्यय **है**। इडागम का अभाव निपातित है।*

*(१०) **तरुता।** यहां **'तॄ प्लवनसन्तरणयोः'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। उट्-आगम निपातित है।*

*(११) **तरूता।** यहां पूर्वोक्त 'तॄ' धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। ऊट्-आगम निपातित है।*

*(१२) **वरुता।** यहां **'वृङ् सम्भक्तौ'** (क्र्या०आ०) तथा **'वृञ् वरणे'** (स्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। उट्-आगम निपातित है।*

*(१३) **वरूता।** यहां पूर्वोक्त वृङ् और वृञ् धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। ऊट्-आगम निपातित है।*

*(१४) **वरूत्री।** यहां 'वरूतृ' शब्द से स्त्रीत्व-विवक्षा में **'ऋन्नेभ्यो ङीप्'** (३।१।६८) 'ङीप्' प्रत्यय है।*

*(१५) **उज्ज्वलिति।** यहां उत्-उपसर्गपूर्वक **'ज्वल दीप्तौ'** (भ्वा०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय है। यहां 'शप्' के स्थान में इकारादेश निपातित है। अथवा-शप् का लुक् और 'तिप्' को इडागम निपातित है।*

*(१६) **क्षरिति।** 'क्षर सञ्चलने' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(१७) **क्षमिति।** 'क्षमूष् सहने' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(१८) **वमिति।** 'टुवम् उद्गिरणे' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(१९) **अमिति।** **'अम गत्यादिषु'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

।। इति इट्प्रतिषेधप्रकरणम्।।

इडागमप्रकरणम्

इडागमः-

(१) आर्धधातुकस्येड्वलादेः।३५।

प०वि०-आर्धधातुकस्य ६।१ इट् १।१ वलादेः ६।१।

स०-वल् आदिर्यस्य स वलादिः, तस्य-वलादेः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य इत्यनुवर्तते। 'छन्दसि' इति च निवृत्तम्।

अन्वयः-अङ्गाद् वलादेरार्धधातुकस्य इट्।

अर्थः-अङ्गाद् उत्तरस्य वलादेरार्धधातुकस्य इडागमो भवति।

उदा०-लूञ्-लविता, लवितुम्, लवितव्यम्। **पूञ्**-पविता, पवितुम्, पवितव्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अङ्गात्) अङ्ग से परे (वलादेः) वल्-वर्ण जिसके आदि में उस (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक प्रत्यय को (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०-लूञ्-**लविता**। काटनेवाला। **लवितुम्**। काटने के लिये। **लवितव्यम्**। काटना चाहिये। **पूञ्-पविता**। पवित्र करनेवाला। **पवितुम्**। पवित्र करने के लिये। **पवितव्यम्**। पवित्र करना चाहिये।*

*सिद्धि-(१) **लविता**। लू+तृच्। लू+इट्+तृ। लो+इ+तृ। लवितृ+सु। लविता।*

*यहां 'लूञ् छेदने' (क्रया०उ०) धातु से '**ण्वुलतृचौ**' (३।१।१३३) से वलादि, आर्धधातुक 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इडागम होता है। '**आर्धधातुकं शेषः**' (३।४।११४) से 'तृच्' प्रत्यय की आर्धधातुक संज्ञा है। ऐसे ही 'पूञ् पवने' (क्रया०उ०) धातु से-**पविता**।*

*(२) **लवितुम्**। यहां पूर्वोक्त 'लू' धातु से '**तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्**' (३।३।१०) से 'तुमुन्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही पूर्वोक्त 'पू' धातु से-**पवितुम्**।*

*(३) **लवितव्यम्**। यहां पूर्वोक्त 'लू' धातु से '**तव्यत्तव्यानीयरः**' (३।१।९६) से 'तव्यत्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही पूर्वोक्त 'पू' धातु से-**पवितव्यम्**।*

इडागमः—

(२) स्नुक्रमोरनात्मनेपदनिमित्ते।३६।

प०वि०-स्नु-क्रमोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) अनात्मनेपदनिमित्ते १।२।

स०-स्नुश्च क्रम् च तौ स्नुक्रमौ, तयोः-स्नुक्रमोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। आत्मनेपदस्य निमित्तमिति आत्मनेपदनिमित्तम्, न आत्मनेपदनिमित्तमिति अनात्मनेपदनिमित्तम्, ते (१।२) अनात्मनेपदनिमित्ते (षष्ठीगर्भितनञ्-तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, इट्, वलादेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अनात्मपदनिमित्ताभ्यां स्नुक्रमिभ्याम् अङ्गाभ्यां वलादेरार्धधातुकस्य इट्।

अर्थः-आत्मनेपदनिमित्तरहिताभ्यां स्नुक्रमिभ्याम् अङ्गाभ्याम् उत्तरस्य वलादेरार्धधातुकस्य इडागमो भवति।

उदा०-(स्नुः) प्रस्नविता, प्रस्नवितुम्, प्रस्नवितव्यम्। **(क्रम्)** प्रक्रमिता, प्रक्रमितुम्, प्रक्रमितव्यम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अनात्मपदनिमित्ताभ्याम्) आत्मनेपद के निमित्त से रहित (स्नुक्रमिभ्याम्) स्नु और क्रम् इन (अङ्गाभ्याम्) अङ्गों से परे (वलादेः) वलादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक प्रत्यय को (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०-(स्नु) **प्रस्नविता।** झरनेवाला। **प्रस्नवितुम्।** झरने के लिये। **प्रस्नवितव्यम्।** झरना चाहिये। (क्रम्) **प्रक्रमिता।** चलनेवाला। **प्रक्रमितुम्।** चलने के लिये। **प्रक्रमितव्यम्।** चलना चाहिये।*

*सिद्धि-(१) **प्रस्नविता।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'ष्णु प्रस्रवणे'** (अदा०प०) धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से वलादि, आर्धधातुक 'तृच्' प्रत्यय को इडागम होता है। ऐसे ही प्र-उपसर्गपूर्वक **'क्रमु पादविक्षेपे'** (भ्वा०प०) धातु से-**प्रक्रमिता।***

*(२) **प्रस्नवितुम्।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'स्नु' धातु से **'तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्'** (३।३।१०) से 'तुमुन्' प्रत्यय है। ऐसे ही प्र-उपसर्गपूर्वक 'क्रम्' धातु से-**प्रक्रमितुम्।***

*(३) **प्रस्नवितव्यम्।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'स्नु' धातु से **'तव्यत्तव्यानीयरः'** (३।१।९६) से 'तव्यत्' प्रत्यय है। ऐसे ही प्र-उपसर्गपूर्वक 'क्रम्' धातु से-**प्रक्रमितव्यम्।***

'स्नु' और 'क्रम्' धातु आत्मनेपद का निमित्त कहां है ? जहां उनके आश्रय से आत्मनेपद होता है जैसे-भाववाच्य, कर्मवाच्य, कर्मकर्तृवाच्य और कर्मव्यतिहार, प्रस्नोषीष्ट, प्रस्नोष्यते। प्रक्रसीष्ट, प्रक्रस्यते इत्यादि। यहां इडागम नहीं होता है।

इटो दीर्घत्वम्-

(३) ग्रहोऽलिटि दीर्घः।३७।

प०वि०-ग्रहः ५।१ अलिटि ७।१। दीर्घः १।१।

स०-न लिडिति अलिट्, तस्मिन्-अलिटि (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, इट्, वलादेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-ग्रहोऽङ्गादऽलिटो वलादेरार्धधातुकस्य इटो दीर्घः।

अर्थः-ग्रहोऽङ्गाद् उत्तरस्य लिड्वर्जितस्य वलादेरार्धधातुकस्य इटो दीर्घो भवति।

उदा०-ग्रहीता, ग्रहीतुम्, ग्रहीतव्यम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(ग्रहः) ग्रह इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (अलिटः) लिट् से भिन्न (वलादेः) वलादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक प्रत्यय के (इटः) इडागम को (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-**ग्रहीता।** ग्रहण करनेवाला। **ग्रहीतुम्।** ग्रहण करने के लिये। **ग्रहीतव्यम्।** ग्रहण करना चाहिये।*

सिद्धि-(१) ग्रहीता।** यहां **'ग्रह उपादाने'** (क्र्या०प०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इडागम को दीर्घ होता है। तुमुन्-**ग्रहीतुम्।** तव्यत्-**ग्रहीतव्यम्।

इटो दीर्घत्व-विकल्पः--

(४) वृतो वा।३८।

प०वि०-वृ-ऋतः ५।१ वा अव्ययपदम्।

स०-वृश्च ऋच्च एतयोः समाहारः-वृत्, तस्मात्-वृतः (समाहार-द्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, इट्, वलादेः, दीर्घ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-वृतोऽङ्गाद् वलादेरार्धधातुकस्य इटो वा दीर्घः।

अर्थः-वृ-इत्येतस्माद् ऋकारान्ताच्चाङ्गाद् उत्तरस्य वलादेरार्ध-धातुकस्य इटो विकल्पेन दीर्घो भवति।

उदा०-(वृ) वरिता, वरीता। प्रवरिता, प्रवरीता। **(ऋकारान्तः)** तरिता, तरीता। आस्तरिता, आस्तरीता।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(वृतः) 'वृ' इस और ऋकारान्त (अङ्गात्) अङ्ग से परे (वलादेः) वलादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक प्रत्यय के (इटः) इडागम को (वा) विकल्प से (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-(वृ) **वरिता, वरीता।** सेवा करनेवाला। **प्रवरिता, प्रवरीता।** आच्छादित करनेवाला। (ऋकारान्त) **तरिता, तरीता।** तरनेवाला। **आस्तरिता, आस्तरीता।** आच्छादित करनेवाला।*

सिद्धि-(१) वरिता।** यहां **'वृङ् सम्भक्तौ'** धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इडागम होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम को दीर्घ होता है-**वरीता।** प्र-उपसर्ग पूर्वक **'वृञ् आच्छादने'** (स्वा०उ०) धातु से-**प्रवरिता, प्रवरीता।

(२) तरिता।** यहां ऋकारान्त **'तृ प्लवनसन्तरणयोः'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। विकल्प-पक्ष में इडागम को दीर्घ होता है-**तरीता।** आङ्पूर्वक **'स्तृञ् आच्छादने'** (क्र्या०उ०) धातु से-**आस्तरिता, आस्तरीता।

इटो दीर्घत्वप्रतिषेधः–

(५) न लिङि।३६।

प०वि०–न अव्ययपदम्, लिङि ७।१।

अनु०–अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, इट्, वलादेः, दीर्घ इति चानुवर्तते।

अन्वयः–वृतोऽङ्गाद् वलादेरार्धधातुकस्य लिङ इटो दीर्घो न।

अर्थः–वृ-इत्येतस्माद् ॠकारान्ताच्चाऽङ्गाद् उत्तरस्य वलादेरार्धधातुकस्य लिङ इटो दीर्घो न भवति।

उदा०–**(वृ)** विवरिषीष्ट। प्रावरिषीष्ट। **(ॠकारान्तः)** आस्तरिषीष्ट। विस्तरिषीष्ट।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(वृतः) वृ इस और ॠकारान्त (अङ्गात्) अङ्ग से परे (वलादेः) वलादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक (लिङः) लिङ्लकार के (इटः) इडागम को (दीर्घः) दीर्घ (न) नहीं होता है।*

*उदा०–(वृ) **विवरिषीष्ट**। वह सेवा करे (आशीर्वाद)। **प्रावरिषीष्ट**। वह आच्छादित करे। (ॠकारान्त) **आस्तरिषीष्ट**। वह आच्छादित करे (आशीर्वाद)। **विस्तरिषीष्ट**। वह विस्तार करे।*

*सिद्धि-(१) **विवरिषीष्ट**। यहां वि-उपसर्गपूर्वक 'वृङ् **सम्भक्तौ**' (क्रया०आ०) धातु से '**आशिषि लिङ्लोटौ**' (३।३।१७३) से आशीर्वाद अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय है। '**लिङः सीयुट्**' (४।१०२) से 'सीयुट्' आगम होता है। इस लिङ्सम्बन्धी, वलादि, आर्धधातुक के इडागम को इस सूत्र से दीर्घ नहीं होता है। '**वृतो वा**' (७।२।३८) से विकल्प से दीर्घ प्राप्त था, उसका प्रतिषेध किया गया है।*

*ऐसे ही प्र और आङ् उपसर्गपूर्वक '**वृञ् आच्छादने**' (स्वा०उ०) धातु से-**प्रावरिषीष्ट**। आङ्पूर्वक '**स्तृञ् आच्छादने**' (क्रया०उ०) धातु से-**आस्तरिषीष्ट**। वि-उपसर्गपूर्वक 'स्तृ' धातु से-**विस्तरिषीष्ट**।*

इटो दीर्घत्वप्रतिषेधः–

(६) सिचि च परस्मैपदेषु।४०।

प०वि०–सिचि ७।१ च अव्ययपदम्, परस्मैपदेषु ७।३।

अनु०–अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, इट्, वलादेः, दीर्घः, वृतः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-वृतोऽङ्गाद् वलादेरार्धधातुकस्य परस्मैपदपरस्य सिचश्च इटो दीर्घो न।

अर्थः-वृ-इत्येतस्माद् ऋकारान्ताच्चाङ्गाद् उत्तरस्य वलादेरार्ध-धातुकस्य परस्मैपदपरस्य सिचश्च इटो दीर्घो न भवति।

उदा०-(**वृ**) तौ प्रावरिष्टाम्, ते प्रावरिषुः। (**ऋकारान्तः**) तौ अतारिष्टाम्, ते अतारिषुः। तौ आस्तरिष्टाम्, ते आस्तरिषुः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(वृतः) वृ-इस और ऋकारान्त (अङ्गात्) अङ्ग से परे (वलादेः) वलादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक (परस्मैपदपरस्य) परस्मैपदपरक (सिचः) सिच् के (इटः) इट् को (च) भी (दीर्घः) दीर्घ (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(वृ) **तौ प्रावरिष्टाम्।** उन दोनों ने आच्छादित किया। **ते प्रावरिषुः।** उन सब ने आच्छादित किया। **(ऋकारान्त) तौ अतारिष्टाम्।** वे दोनों तरें। **ते अतारिषुः।** वे सब तरें। **तौ आस्तरिष्टाम्।** उन दोनों ने आच्छादित किया। **ते आस्तरिषुः।** उन सब ने आच्छादित किया।*

*सिद्धि-(१) **प्रावरिष्टाम्।** यहां प्र और आङ् उपसर्गपूर्वक 'वृञ् आच्छादने' (स्वा०उ०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से भूतकाल अर्थ में 'लुङ्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तस्' आदेश और इसके स्थान में **'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः'** (३।४।१०१) से 'ताम्' आदेश है। **'च्लेः सिच्'** (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश है। इस सूत्र से इस परस्मैपदपरक 'सिच्' के इडागम को दीर्घ नहीं होता है।*

*(२) **प्रावरिषुः।** यहां लकार के स्थान में 'झि' आदेश और **'झेर्जुस्'** (३।४।१०८) से 'झि' के स्थान में 'जुस्' आदेश है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*ऐसे ही **'तॄ प्लवनसन्तरणयोः'** (भ्वा०प०) धातु से-**अतारिष्टाम्, अतारिषुः।** आङ्-उपसर्गपूर्वक **'स्तॄञ् आच्छादने'** (क्र्या०उ०) धातु से-**आस्तारिष्टाम्, आस्तारिषुः।***

इडागम-विकल्पः—

(७) इट् सनि वा।४१।

प०वि०-इट् १।१ सनि ७।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, वलादेः, वृत इति चानुवर्तते।

अन्वयः-वृतोऽङ्गाद् वलादेरार्धधातुकस्य सनो वा इट्।

अर्थः-वृ-इत्येतस्माद् ऋकारान्ताच्चाङ्गाद् उत्तरस्य वलादेरार्ध-धातुकस्य सनो विकल्पेन इडागमो भवति।

उदा०-(वृ) वुवूर्षति, विवरिषते, विवरीषते। प्रावुवूर्षति, प्राविवरिषति, प्राविवरीषति। **(ऋकारान्तः)** तितीर्षति, तितरिषति, तितरीषति। आतिस्तीर्षते, आतिस्तरिषते, आतिस्तरीषते। **'सनि ग्रहगुहोश्च'** (७।२।१२) इति इट्प्रतिषेधे प्राप्ते पक्षे इडागमो विधीयते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(वृतः) वृ-इस और ऋकारान्त (अङ्गात्) अङ्ग से परे (वलादेः) वलादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक (सनः) सन् प्रत्यय को (वा) विकल्प से (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०-(वृ) **वुवूर्षति, विवरिषते, विवरीषते।** वह सेवा करना चाहता है। **प्रावुवूर्षति, प्राविवरिषति, प्राविवरीषति।** वह आच्छादित करना चाहता है। **(ऋकारान्त) तितीर्षति, तितरिषति, तितरीषति।** वह तरना चाहता है। **आतिस्तीर्षते, आतिस्तरिषते, आतिस्तरीषते।** वह आच्छादित करना चाहता है।*

*सिद्धि-(१) **वुवूर्षति।** वृ+सन्। वृ+स। वॄ+स। वुर्+स। वुर् स्-वुरस। वु-वुरस। वुवूरष। वुवुर्ष+लट्। वुवूर्षति।*

*यहां **'वृङ् सम्भक्तौ'** (क्र्या०आ०) धातु से **'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'** (३।१।७) से 'सन्' प्रत्यय है। **'इको झल्'** (१।२।९) से 'सन्' प्रत्यय किद्वत् है। **'अज्झनगमां सनि'** (६।४।१६) से अङ्ग (वृ) को दीर्घ (वॄ) होता है। **'उदोष्ठ्यपूर्वस्य'** (७।१।१०२) से उकार-आदेश और यह 'उरण् रपरः' (१।१।५१) से रपर (वुर्) होता है। 'सन्यङोः' (६।१।९) से सनन्त धातु को द्वित्व और 'हलादिः शेषः' (७।४।६०) से आदिम हल् (वु) शेष रहता है और **'हलि च'** (८।२।७७) से दीर्घ (वू) है। इस सूत्र से 'सन्' को इडागम का प्रतिषेध होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**विवरिषते।** 'वॄतो वा' (७।२।३८) से इडागम को दीर्घ होता है-**विवरीषते।***

*ऐसे ही प्र और आङ् उपसर्गपूर्वक **'वृञ् आच्छादने'** (स्वा०उ०) धातु से-**प्रावुवूर्षति, प्राविवरिषति, प्राविवरीषति।** **'तॄ प्लवनसन्तरणयोः'** (भ्वा०प०) धातु से-**तितीर्षति, तितरिषति, तितरीषति।** आङ्-उपसर्गपूर्वक 'स्तॄञ् आच्छादने' (क्र्या०उ०) धातु से-**आतिस्तीर्षति, आतिस्तरिषति, आतिस्तरीषति।***

इडागम-विकल्पः-

(८) लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु।४२।

प०वि०-लिङ्-सिचोः ७।२ आत्मनेपदेषु ७।३।

स०-लिङ् च सिच् च तौ लिङ्सिचौ, तयोः-लिङ्सिचोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, वलादेः, वृतः, इट्, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-वृतोऽङ्गाद् वलादेरार्धधातुकस्य आत्मनेपदपरस्य लिङः सिचश्च वा इट्।

अर्थः-वृ-इत्येतस्माद् ऋकारान्ताच्चाऽङ्गाद् उत्तरस्य वलादेरार्धधातुकस्य आत्मनेपदपरस्य लिङः सिचश्च विकल्पेन इडागमो भवति।

उदा०-(वृ) लिङ्-वृषीष्ट, वरिषीष्ट। प्रावृषीष्ट, प्रावरिषीष्ट। **सिच्**-अवृत, अवरिष्ट, अवरीष्ट, प्रावृत, प्रावरिष्ट, प्रावरीष्ट (**ऋकारान्तः**) **लिङ्**-आस्तीर्षीष्ट, आस्तरिषीष्ट। **सिच्**-आस्तीर्ष्ट, आस्तरिष्ट, आस्तरीष्ट।

आर्यभाषाः *अर्थ-(वृतः) वृ इस और ऋकारान्त (अङ्गात्) अङ्ग से परे (वलादेः) वलादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक (आत्मनेपदपरस्य) आत्मनेपदपरक (लिङः सिचश्च) लिङ् और सिच् को (वा) विकल्प से (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०-(वृ) लिङ्-**वृषीष्ट, वरिषीष्ट।** वह सेवा करे (आशीर्वाद)। **प्रावृषीष्ट, प्रावरिषीष्ट।** वह आच्छादित करे (आशीर्वाद)। सिच्-**अवृत, अवरिष्ट, अवरीष्ट।** उसने सेवा की। **प्रावृत, प्रावरिष्ट, प्रावरीष्ट।** उसने आच्छादित किया। **(ऋकारान्त)** लिङ्-**आस्तीर्षीष्ट, आस्तरिषीष्ट।** वह आच्छादित करे (आशीर्वाद)। सिच्-**आस्तीर्ष्ट, आस्तरिष्ट, आस्तरीष्ट।** उसने आच्छादित किया।*

*सिद्धि-(१) **वृषीष्ट।** यहां **'वृङ् सम्भक्तौ'** (क्र्या०आ०) धातु से **'आशिषि लिङ्लोटौ'** (३।३।१७३) से आशीर्वाद अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय है और यहां **'लिङाशिषि'** (३।४।११६) से आर्धधातुक है। **'लिङः सीयुट्** (३।४।१०२) से 'सीयुट्' आगम होता है। इस सूत्र से इसे इडागम का प्रतिषेध है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**वरिषीष्ट। 'न लिङि'** (७।२।३९) से इडागम को दीर्घ नहीं होता है।*

*ऐसे ही प्र और आङ् उपसर्गपूर्वक **'वृञ् आच्छादने'** (स्वा०उ०) धातु से-**प्रावृषीष्ट, प्रावरिषीष्ट।** आङ्-उपसर्गपूर्वकपूर्वक **'स्तॄञ् आच्छादने'** (क्र्या०उ०) धातु से-**आस्तीर्षीष्ट, आस्तरिषीष्ट।***

*(२) **अवृत।** वृ+लुङ्। अट्+वृ+च्लि+ल्। अ+वृ+सिच्+त। अ+वृ+०+त। अवृत।*

*यहां **'वृङ् सम्भक्तौ'** (क्र्या०आ०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से भूतकाल अर्थ में 'लुङ्' प्रत्यय है। 'च्लेः सिच्' (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश है। इस सूत्र से इसे इडागम का प्रतिषेध होता है। 'उश्च' (१।२।१२) से 'सिच्' प्रत्यय किद्वत् है। 'ह्रस्वादङ्गात्' (८।२।२७) से 'सिच्' का लोप होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**अवरिष्ट।** 'वृतो वा' (७।२।३८) से इडागम का दीर्घ होता है-**अवरीष्ट।***

*ऐसे ही प्र और आङ्पूर्वक 'वृञ् आच्छादने' (स्वा०उ०) धातु से-**प्रावृत, प्रावरिष्ट, प्रावरीष्ट**। आङ्पूर्वक 'स्तृञ् आच्छादने' (क्र्या०उ०) धातु से-**आस्तीर्ष्ट, आस्तरिष्ट, आस्तरीष्ट**।*

इडागम-विकल्पः—

(६) ऋतश्च संयोगादेः।४३।

प०वि०- ऋतः ५।१ च अव्ययपदम्, संयोगादेः ५।१।

स०- संयोग आदिर्यस्य स संयोगादिः, तस्मात्-संयोगादेः (बहुव्रीहिः)।

अनु०- अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, वलादेः, दीर्घः, इट्, लिङ्सिचोः, आत्मनेपदेषु इति चानुवर्तते।

अन्वयः- संयोगादेर्ऋतश्चाङ्गाद् वलादेरार्धधातुकस्य आत्मनेपदपरयोर्लिङ्सिचोर्वा इट्।

अर्थः- संयोगादेर्ऋकारान्ताद् अङ्गाच्च उत्तरस्य वलादेरार्धधातुकस्य **आत्मनेपदपरस्य** लिङः सिचश्च विकल्पेन इडागमो भवति।

उदा०- **(लिङ्)** ध्वृषीष्ट, ध्वरिषीष्ट। स्मृषीष्ट, स्मरिषीष्ट। **(सिच्)** तौ अध्वृषाताम्, अध्वरिषाताम्। तौ अस्मृषाताम्, अस्मरिषाताम्।

आर्यभाषाः अर्थ- *(संयोगादेः) संयोग जिसके आदि में है उस (ऋतः) ऋकारान्त (अङ्गात्) अङ्ग से (च) भी परे (वलादेः) वलादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक (आत्मनेदपरस्य) आत्मनेपदपरक (लिङः सिचश्च) लिङ् और सिच् को (वा) विकल्प से (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०-(लिङ्) **ध्वृषीष्ट, ध्वरिषीष्ट**। वह कुटिलता करे (आशीर्वाद)। **स्मृषीष्ट, स्मरिषीष्ट**। वह स्मरण करे (आशीर्वाद)। **(सिच्) तौ अध्वृषाताम्, अध्वरिषाताम्**। उन दोनों ने कुटिलता की। **तौ अस्मृषाताम्, अस्मरिषाताम्**। उन दोनों ने स्मरण किया।*

*सिद्धि-(१) **ध्वृषीष्ट**। यहां 'ध्वृ हूर्च्छने' (भ्वा०प०) धातु से **'आशिषि लिङ्लोटौ'** (३।३।१७३) से आशीर्वाद अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय है। यह धातु संयोगादि और ऋकारान्त है। इस सूत्र से लिङ्-सम्बन्धी 'सीयुट्' को इडागम नहीं होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**ध्वरिषीष्ट**। 'न लिङि' (७।२।३९) से इडागम को दीर्घ नहीं होता है। ऐसे ही **'स्मृ चिन्तायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से-**स्मृषीष्ट, स्मरिषीष्ट**।*

(२) अध्वरिषाताम्। यहां पूर्वोक्त 'ध्वृ' धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से भूतकाल में 'लुङ्' प्रत्यय है। 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश होता है। 'उश्च' (१।२।१२) से 'सिच्' किद्वत् है। इस सूत्र से 'सिच्' को इडागम नहीं होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-अध्वरिषाताम्। ऐसे ही 'स्मृ चिन्तायाम्' (भ्वा०प०) धातु से-अस्मृषाताम्, अस्मरिषाताम्।

इडागम-विकल्पः–

(१०) स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा।४४।

प०वि०–स्वरति-सूति-सूयति-धूञ्-ऊदितः ५।१ वा अव्ययपदम्।

स०–ऊद् इद् यस्य ऊदित्। स्वरतिश्च सूतिश्च सूयतिश्च धूञ् च ऊदिच्च एतेषां समाहारः स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदित्, तस्मात्–स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितः (बहुव्रीहिगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, इट्, वलादेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितोऽङ्गाद् वलादेरार्धधातुकस्य वा इट्।

अर्थः–स्वरतिसूतिसूयतिधूञ्भ्य ऊदिद्भ्यश्चाङ्गेभ्य उत्तरस्य वलादेरार्धधातुकस्य विकल्पेन इडागमो भवति।

उदा०–**(स्वरतिः) स्वृ**–स्वर्ता, स्वरिता। **(सूतिः) षूङ् अदादिः**–प्रसोता, प्रसविता। **(सूयतिः) षूङ् दिवादिः**–सोता, सविता। **(धूञ्)** धोता, धविता। **(ऊदित्) गाहू**–विगाढा, विगाहिता। गुपू–गोप्ता, गोपिता।

आर्यभाषाः अर्थ-*(स्वरति०) स्वरति, सूति, सूयति, धूञ् और जिनका ऊकार इत् है उन (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (वलादेः) वलादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक प्रत्यय को (वा) विकल्प से (इट्) इडागम होता है।*

उदा०–(स्वरतिः) स्वृ–स्वर्ता, स्वरिता। शब्द/उपताप (दुःख) करनेवाला। (सूति) षूङ् अदादि–प्रसोता, प्रसविता। पैदा होनेवाला। (सूयति) षूङ् दिवादि–सोता, सविता। अर्थ पूर्ववत्। (धूञ्) धोता, धविता। कांपनेवाला। (ऊदित्) गाहू–विगाढा, विगाहिता। बिलोडन करनेवाला। गुपू–गोप्ता, गोपिता। रक्षा करनेवाला।

सिद्धि–(१) स्वर्ता। यहां 'स्वृ शब्दोपतापयोः' (भ्वा०प०) धातु से 'ण्वुल्तृचौ' (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इडागम का प्रतिषेध होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है–स्वरिता।

*(२) **प्रसोता।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'षूङ् **प्राणिगर्भविमोचने**' (अदा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इडागम का प्रतिषेध होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**प्रसविता।***

*(३) **सोता।** यहां 'षूङ् **प्राणिप्रसवे**' (दि०आ०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इडागम का प्रतिषेध होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**सविता।***

*(४) **धोता।** यहां 'धूञ् **कम्पने**' (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इडागम का प्रतिषेध होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**धविता।***

*(५) **विगाढा।** यहां वि-उपसर्गपूर्वक '**गाहू विलोडने**' (भ्वा०आ०) इस ऊदित् धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। 'हो ढः' (८।२।३१) से हकार को ढकार, '**झषस्तथोर्धोऽधः**' से तकार को धकार और 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४१) से धकार को टवर्ग ढकार होता है। '**ढो ढे लोपः**' (८।३।१३) से पूर्ववर्ती ढकार का लोप होता है। '**ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः**' (६।३।१११) से पर्जन्यवत् सूत्रप्रवृत्ति से दीर्घ होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**विगाहिता।***

*(६) **गोप्ता।** यहां 'गुपू रक्षणे' (भ्वा०प०) इस ऊदित् धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**गोपिता।***

इडागम-विकल्पः-

(११) रधादिभ्यश्च।४५।

प०वि०-रध-आदिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-रध आदिर्येषां ते रधादयः, तेभ्यः-रधादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, इट्, वलादेः, वा, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-रधादिभ्योऽङ्गेभ्यश्च वलादेरार्धधातुकस्य वा इट्।

अर्थः-रधादिभ्योऽङ्गेभ्य उत्तरस्य वलादेरार्धधातुकस्य विकल्पेन इडागमो भवति।

उदा०-एते रधादयोऽष्टौ धातवो दिवादिगणे पठ्यन्ते-

(१) रध हिंसासंराध्योः-रद्धा, रधिता।

(२) णश अदर्शने-नंष्टा, नशिता।

(३) तृप प्रीणने-त्रप्ता, तर्प्ता, तर्पिता।

(४) दृप हर्षमोहनयोः-द्रप्ता, दर्प्ता, दर्पिता।

(५) द्रुह जिघांसायाम्-द्रोग्धा, द्रोढा, द्रोहिता।

(६) मुह वैचित्ये-मोग्धा, मोढा, मोहिता।

(७) ष्णुह उद्गिरणे-स्नोग्धा, स्नोढा, स्नोहिता।

(८) ष्णिह प्रीतौ-स्नेग्धा, स्नेढा, स्नेहिता।

आर्यभाषाः अर्थ-*(रधादिभ्यः) रध आदि आठ (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (च) भी (वलादेः) वलादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक प्रत्यय को (वा) विकल्प से (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०-**(रध) रद्धा, रधिता।** हिंसा/संसिद्धि (पूर्ण) करनेवाला। **(णश) नंष्टा, नशिता।** नाश करनेवाला। **(तृप) त्रप्ता, तर्प्ता, तर्पिता।** तृप्त (प्रसन्न) करनेवाला। **(दृप) द्रप्ता, दर्प्ता, दर्पिता।** हर्ष और मोहित करनेवाला। **(द्रुह) द्रोग्धा, द्रोढा, द्रोहिता।** द्रोह (मारने की इच्छा) करनेवाला। **(मुह) मोग्धा, मोढा, मोहिता।** पागल/बुद्धिभ्रष्ट। **(ष्णुह) स्नोग्धा, स्नोढा, स्नोहिता।** वमन करनेवाला। **(ष्णिह) स्नेग्धा, स्नेढा, स्नेहिता।** प्रीति करनेवाला।*

*सिद्धि-**(१) रद्धा।** यहां **'रध हिंसासंराध्योः'** (दि०प०) धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। **'झषस्तथोर्धोऽधः'** (८।२।४०) से तकार को धकार और 'झलां जश् झशि' (८।४।५३) पूर्ववर्ती धकार को जश् दकार होता है। इस सूत्र से इडागम का प्रतिषेध होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**रधिता।***

(२) नंष्टा।** यहां **'णश अदर्शने'** (दि०प०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। **'मस्जिनशोर्झलि'** (७।१।६०) से 'नुम्' आगम होता है। **'व्रश्चभ्रस्ज०'** (८।२।३६) से शकार को षकार और **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकार होता है। इस सूत्र से इडागम का प्रतिषेध होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**नशिता।

(३) त्रप्ता।** यहां 'तृप प्रीणने' (दि०प०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। **'अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम्'** (६।१।५९) से अम्-आगम और ऋकार को यणादेश (र्) है। अमागम के विकल्प-पक्ष में-**तर्प्ता।** इस सूत्र से इडागम का प्रतिषेध होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**तर्पिता।

***(४) द्रप्ता।** यहां 'दृप हर्षमोहनयोः' (दि०प०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

***(५) द्रोग्धा।** यहां **द्रुह जिघांसायाम्'** (दि०प०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। **'वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम्'** (८।२।३३) से हकार को घकार, **'झषस्तथोर्धोऽधः'** (८।२।४०) से तकार को धकार और 'झलां जश् झशि' (८।४।५२) से घकार को जश् गकार होता है। विकल्प-पक्ष में हकार को घकारादेश नहीं है-**द्रोढा।** यहां पूर्ववत् हकार को ढकार,*

*तकार को धकार, धकार को टवर्ग ढकार और पूर्ववर्ती ढकार का लोप होता है। इस सूत्र से इडागम का प्रतिषेध होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**द्रोहिता।***

*(६) **मोग्धा।** 'मुह वैचित्ये' (दि०प०) धातु से सब कार्य पूर्ववत् है।*

*(७) **स्नोग्धा।** 'ष्णुह उद्गिरणे' (दि०प०) धातु से सब कार्य पूर्ववत् है।*

*(८) **स्नेग्धा।** 'ष्णिह प्रीतौ' (दि०प०) धातु से सब कार्य पूर्ववत् है।*

इडागम-विकल्पः–

(१२) निरः कुषः।४६।

प०वि०–निरः ५।१ कुषः ५।१।

अनु०–अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, इट्, वलादेः, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः–निरः कुषोऽङ्गाद् वलादेरार्धधातुकस्य वा इट्।

अर्थः–निरः पूर्वात् कुषोऽङ्गाद् उत्तरस्य वलादेरार्धधातुकस्य विकल्पेन इडागमो भवति।

उदा०–निष्कोष्टा, निष्कोषिता। निष्कोष्टुम्, निष्कोषितुम्। निष्कोष्टव्यम्, निष्कोषितव्यम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(निरः) निर्-उपसर्गपूर्वक (कुषः) कुष् इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (वलादेः) वलादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक प्रत्यय को (वा) विकल्प से (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०-**निष्कोष्टा, निष्कोषिता।** तलवार आदि को खैंचकर बाहर निकालनेवाला। **निष्कोष्टुम्, निष्कोषितुम्।** बाहर निकालने के लिये। **निष्कोष्टव्यम्, निष्कोषितव्यम्।** बाहर निकालना चाहिये।*

*सिद्धि-(१) **निष्कोष्टा।** यहां निर्-उपसर्गपूर्वक '**कुष् निष्कर्षे**' (क्र्या०प०) धातु से '**ण्वुल्तृचौ**' (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। 'निर्' के रेफ को '**खरवसानयोर्विसर्जनीयः**' (८।३।३५) से विसर्जनीय की अनुवृत्ति में '**इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य**' (८।३।४१) से विसर्जनीय के षत्व होता है। इस सूत्र से इडागम का प्रतिषेध होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**निकोषिता।***

*(२) **निष्कोष्टुम्।** यहां निर्-उपसर्गपूर्वक 'कुष्' धातु से '**तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्**' (३।३।१०) से 'तुमुन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **निष्कोष्टव्यम्।** यहां निर्-उपसर्गपूर्वक 'कुष्' धातु से '**तव्यत्तव्यानीयरः**' (३।१।९६) से 'तव्यत्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

इडागमः–

(१३) इण् निष्ठायाम् ।४७।

प०वि०–इट् १।१ निष्ठायाम् ७।१।

अनु०–अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, वलादेः, निरः, कुष इति चानुवर्तते।

अन्वयः–निरः कुषोऽङ्गाद् वलादेरार्धधातुकस्य निष्ठाया इट्।

अर्थः–निरः पूर्वात् कुषोऽङ्गाद् उत्तरस्य वलादेरार्धधातुकस्य निष्ठाप्रत्ययस्य इडागमो भवति।

उदा०–निष्कुषितः, निष्कुषितवान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(निरः) निर्-उपसर्गपूर्वक (कुषः) कुष् इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (वलादेः) वलादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक (निष्ठायाः) निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय को (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०–**निष्कुषितः, निष्कुषितवान्।** तलवार आदि को खैंचकर बाहर निकाला।*

सिद्धि–निष्कुषितः। *यहां निर्-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'कुष' धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से भूतकाल अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस निष्ठासंज्ञक प्रत्यय को इडागम होता है। ऐसे ही 'क्तवतु' प्रत्यय में-**निष्कुषितवान्।***

इडागम-विकल्पः–

(१४) तीषसहलुभरुषरिषः ।४८।

प०वि०–ति ७।१ इष-सह-लुभ-रुष-रिषः ५।१।

स०–इषश्च सहश्च लुभश्च रुषश्च रिष् च एतेषां समाहार इषसहलुभरुषरिष्, तस्मात्-इषसहलुभरुषरिषः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, इट्, वलादेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–इषसहलुभरुषरिषोऽङ्गादेर्वलादेरार्धधातुकस्य वा इट्।

अर्थः–इषसहलुभरुषरिषिभ्योऽङ्गेभ्य उत्तरस्य तकारादेर्वलादेरार्ध-धातुकस्य विकल्पेन इडागमो भवति।

उदा०–(इष) एष्टा, एषिता। **(सह)** सोढा, सहिता। **(लुभ)** लोब्धा, लोभिता। **(रुष)** रोष्टा, रोषिता। **(रिष)** रेष्टा, रेषिता।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इष०) इष, सह, लुभ, रुष, रिष इन (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (तादेः) तकारादि रूप (वलादेः) वलादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक प्रत्यय को (वा) विकल्प से (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०-**(इष) एष्टा, एषिता।** इच्छा करनेवाला। **(सह) सोढा, सहिता।** सहन करनेवाला। **(लुभ) लोब्धा, लोभिता।** लोभ करनेवाला। **(रुषः) रोष्टा, रोषिता।** रोष करनेवाला। **(रिषः) रेष्टा, रेषिता।** हिंसा करनेवाला।*

सिद्धि-(१) एष्टा। *यहां **'इषु इच्छायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से तकारादि 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इडागम का प्रतिषेध होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**एषिता।***

*यहां **'इषु इच्छायाम्'** (भ्वा०प०) धातु का ग्रहण है, **'इष गतौ'** (दि०प०) इस दैवादिक धातु का नहीं, इसे नित्य इडागम होता है-**प्रेषिता, प्रेषितुम्, प्रेषितव्यम्।** **'इष आभीक्ष्ण्ये'** (क्र्या०प०) धातु क्र्यादिगण में पठित है। उसका भी यहां ग्रहण अभीष्ट नहीं है। अतः कई आचार्य सूत्र में 'इषु' पाठ मानते हैं।*

(२) सोढा। *यहां **'षह मर्षणे'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् तकारादि 'तृच्' प्रत्यय है। **'सहिवहोरोदवर्णस्य'** (६।३।११२) से अ-वर्ण को 'ओकार' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(३) लोब्धा। *यहां **'लुभ गार्ध्ये'** (दि०प०) और **'लुभ विमोहने'** (तु०प०) धातु से पूर्ववत् तकारादि 'तृच्' प्रत्यय है। **'झषस्तथोर्धोऽधः'** (८।२।४०) से तकार को धकार और **'झलां जश् झशि'** (८।४।५३) से भकार को 'जश्' बकार होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(४) रोष्टा। *यहां **'रुष रोषे'** (चु०प०) धातु से पूर्ववत् तकारादि 'तृच्' प्रत्यय है। **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकार होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(५) रेष्टा। *यहां **'रिष हिंसायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् तकारादि 'तृच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

इडागम-विकल्पः-

(१५) सनीवन्तर्धभ्रस्जदम्भुश्रिस्वृयूर्णुभरज्ञपिसनाम्।४६।

प०वि०-सनि ७।१ इवन्त-ऋध-भ्रस्ज-दम्भु-श्रि-स्वृ-यु-ऊर्णु-भर-ज्ञपि-सनाम् ६।३।

स०-इव् अन्ते यस्य स इवन्तः। इवन्तश्च ऋधश्च भ्रस्जश्च दम्भुश्च श्रिश्च स्वृश्च युश्च ऊर्णुश्च भरश्च ज्ञपिश्च सन् च ते-इवन्त०सनः, तेषाम्-इवन्त०सनाम् (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, इट्, वलादेः, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-इवन्तर्धभ्रस्जदम्भुश्रिस्वृयुर्णुभरज्ञपिसनिभ्योऽङ्गेभ्यो वलादेरार्धधातुकस्य सनो वा इट्।

अर्थः-इवन्तेभ्य ऋधभ्रस्जदम्भुश्रिस्वृयूर्णुभरज्ञपिसनिभ्योऽङ्गेभ्य उत्तरस्य वलादेरार्धधातुकस्य सनो विकल्पेन इडागमो भवति। **उदाहरणम्**-

सं०	धातुः इवन्तः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
(१)	दिव्	दिदेविषति	वह क्रीडा आदि करना चाहता है।
		दुद्यूषति	-सम-
(२)	सिव्	सिसेविषति	वह सिलाई करना चाहता है।
		सुस्यूषति	-सम-
(३)	ऋध्	अर्दिधिषति	वह बढ़ना चाहता है।
		ईर्त्सति	-सम-
(४)	भ्रस्ज	बिभ्रज्जिषति	वह पकाना चाहता है।
		बिभ्रक्षति	-सम-
		बिभर्ज्जिषति	-सम-
		बिभर्क्षति	-सम-
(५)	दम्भु	दिदम्भिषति	वह दम्भ (ढोंग) करना चाहता है।
		धिप्सति	-सम-
		धीप्सति	-सम-
(६)	श्रि	उच्छिश्रयिषति	वह सेवा करना चाहता है।
		उच्छिश्रीषति	-सम-
(७)	स्वृ	सिस्वरिषति	वह शब्द/उपताप (पीड़ा) करना चाहता है।
		सुस्वूर्षति	-सम-
(८)	यु	यियविषति	वह मिश्रण-अमिश्रण करना चाहता है।
		युयूषति	-सम-

सं०	धातुः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
(९)	ऊर्णु	प्रौर्णुनविषति	वह आच्छादि करना चाहता है।
		प्रौर्णुनुविषति	–सम–
		प्रौर्णुनूषति	–सम–
(१०)	भर	बिभरिषति	वह धारण-पोषण करना चाहता है।
		बुभूर्षति	–सम–
(११)	ज्ञपि	जिज्ञपयिषति	वह धारण-पोषण करना चाहता है।
		ज्ञीप्सति	–सम–
(१२)	सनि	सिसनिषति	वह दान करना चाहता है।
		सिषासति	–सम–

आर्यभाषाः *अर्थ-(इवन्त०) इव् जिसके अन्त में हैं उससे तथा ऋध, भ्रस्ज, दम्भु, श्रि, स्वृ, यु, ऊर्णु, भर, ज्ञपि और सन् इन (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (वलादेः) वलादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक (सनः) सन्-प्रत्यय को (वा) विकल्प से (इट्) इडागम होता है।*

उदा०–उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-(१) ***दिदेविषति।*** *यहां* ***'दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमद-स्वप्नकान्तिगतिषु'*** *(दि०प०) धातु से* ***'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'*** *(३।१।७) से इच्छा-अर्थ में 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'सन्' को इडागम होता है। तत्पश्चात् सनन्त 'देविष' धातु से द्वित्व और 'लट्' प्रत्यय है।*

(२) ***दुद्यूषति।*** *दिव्+सन्। दि ऊठ्+स। द्यू+स। द्यूष। द्यूष्-द्यूष। दु+द्यूष। दुद्यूष+लट्। दुद्यूषति।*

यहां पूर्वोक्त 'दिव्' धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। विकल्प-पक्ष में इडागम नहीं है। ***'हलन्ताच्च'*** *(१।२।१०) से 'सन्' प्रत्यय को कित्त्व,* ***'च्छ्वोः शूडनुनासिके च'*** *(६।४।१९) से वकार को ऊठ्-आदेश,* ***'इको यणचि'*** *(६।१।७६) से यणादेश होकर* ***'सन्यङोः'*** *(६।१।९) से 'द्यूष' को द्वित्व होता है।* ***'हलादिः शेषः'*** *(७।४।६०) से आदि-हल् (व्) का शेषत्व और* ***'ह्रस्वः'*** *(७।४।५९) से अभ्यास को ह्रस्व (उ) होता है।*

ऐसे ही ***'षिवु तन्तुसन्ताने'*** *(दि०प०) धातु से-****सिसेविषति, सुस्यूषति।***

(३) ***अर्दिधिषति।*** *यहां* ***'ऋधु वृद्धौ'*** *(दि०प०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम होता है।* ***'पुगन्तलघूपधस्य च'*** *(७।३।८६) से लघूपध गुण*

करने पर *'अजादेर्द्वितीयस्य'* (६।१।२) से अजादि 'अर्धि' के द्वितीय एकाच् 'धिस' को द्वित्व, 'हलादिः शेषः' (७।४।६०) से आदि हल् का शेषत्व (धि) होता है। *'न न्द्राः संयोगादयः'* (६।१।३) से संयोगादि रेफ को द्वित्व नहीं होता है। *'अभ्यासे चर्च'* (८।४।५४) से अभ्यासस्थ धकार को जश् दकार होता है।

(४) **ईर्त्सति।** ऋध्+सन्। ऋध्+स। ऋध्स। ऋ+ध्स्-धस। ऋ+ध्-ध्स। ऋ+द-ध्स। ऋ+दि-ध्स। ईर्+०+ध्स्। ईर्+त्स। ईर्त्स। ईर्त्स+लट्। ईर्त्सति।

यहां *'ऋधु वृद्धौ'* (दि०प०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। *'अजादेर्द्वितीयस्य'* (६।१।२) से द्वितीय एकाच् अवयव (ध्स) को द्वित्व, 'हलादिः शेषः' (७।४।६०) से आदि हल् का शेषत्व, *'अभ्यासे चर्च'* (८।४।५४) से अभ्यासस्थ धकार को जश् दकार होता है। *'सन्यतः'* (७।४।७९) से अभ्यास को इत्व (दि), *'आप्ज्ञप्यृधामीत्'* (७।४।५५) से ईत्व और 'उरण् रपरः' (१।१।५१) से रपरत्व, 'अत्र लोपोऽभ्यासस्य' (७।४।५८) से अभ्यास का लोप और *'खरि च'* (८।४।५५) से से धकार को चर् तकार होता है।

(५) **बिभ्रज्जिषति।** यहां *'भ्रस्ज पाके'* (तु०उ०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम होता है। 'झलां जश् झशि' (८।४।५३) से सकार को जश् दकार और *'स्तोः श्चुना श्चुः'* (८।४।४०) से दकार को चवर्ग जकार होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम नहीं है-**बिभ्रक्षति। बिभर्जिषति** में *'भ्रस्जो रोपधयो रमन्यतरस्याम्'* (६।४।४७) से 'भ्रस्ज्' के रेफ और उपधाभूत सकार के स्थान में 'रम्' आगम है। **बिभर्क्षति**-में विकलप-पक्ष में इडागम नहीं है। पूर्ववत् 'रम्' आगम रेफ और उपधाभूत सकार की निवृत्ति होकर *'चोः कुः'* (८।२।३०) से जकार को कुत्व गकार और *'खरि च'* (८।४।५५) से गकार को चर् ककार और *'आदेशप्रत्यययोः'* (८।३।५९) से षत्व होता है।

(६) **दिदम्भिषति।** यहां *'दम्भु दम्भे'* (स्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(७) **धिप्सति।** दम्भ्+सन्। दभ्+स। दभ्स। दभ्स्-दभ्स। ०-दभ्स। धभ्स। धिप्स।। धिप्स+लट्। धिप्सति।। धीप्सति।

यहां *'दम्भु दम्भे'* (स्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। विकल्प-पक्ष में इडागम नहीं है। पूर्ववत् अभ्यास का लोप, *'एकाचो बशो भष्०'* (८।२।३७) से दकार को भष् धकार, *'खरि च'* (८।४।५५) से भकार को चर् पकार होता है। 'हलन्ताच्च' (१।२।१०) से 'सन्' के किद्वत् होने से *'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति'* (६।४।२४) से अनुनासिक (न्) का लोप होता है। *'दम्भ इच्च'* (७।४।५६) से इत्त्व और ईत्त्व भी होता है-**धीप्सति।**

(८) **उच्छिश्रयिषति।** यहां उत्-उपसर्गपूर्वक **'श्रिञ् सेवायाम्'** (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम होता है। **'शश्छोऽटि'** (८।४।६३) से शकार को छकार और **'स्तोः श्चुना श्चुः'** (८।४।४०) से तकार को चवर्ग चकार होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। विकल्प-पक्ष में इडागम नहीं है-**उच्छिश्रीषति। 'अज्झनगमां सनि'** (६।४।१६) से दीर्घ होता है।

(९) **सिस्वरिषति।** यहां **'स्वृ शब्दोपतापयोः'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। **'उरत्'** (७।३।६६) से अभ्यासस्थ ऋकार को अकार आदेश, **'उरण् रपरः'** (१।१।५१) से इसे रपरत्व और **'सन्यतः'** (७।४।७९) से इकार आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम नहीं है-**सुस्वूर्षति। 'अज्झनगमां सनि'** (६।४।१६) से दीर्घ (स्वॄ) **'उदोष्ठ्यपूर्वस्य'** (७।१।१०२) से 'ॠ' के स्थान में उकारादेश और **'उरण् रपरः'** (१।१।५१) से रपरत्व और **'हलि च'** (८।२।७७) से दीर्घ होता है। तत्पश्चात् 'स्वूर्ष' इसको द्वित्व और अभ्यास-कार्य होता है।

(१०) **यियविषति।** यहां **'यु मिश्रणे च'** (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। **'ओः पुयण्ज्यपरे'** (७।४।८०) से अभ्यास को इकार आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(११) **प्रोर्णुनविषति।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'ऊर्णुञ् आच्छादने'** (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। **'अजादेर्द्वितीयस्य'** (६।१।२) से द्वितीय एकाच् अवयव (नुस्) को द्वित्व होता है। इस सूत्र से 'सन्' को इडागम होता है। **'विभाषोर्णोः'** (१।२।३) से 'सन्' के ङिद्वत् होने से **'अचि श्नुधातुभ्रुवां०'** (६।४।७७) से उवङ्-आदेश होता है-**प्रोर्णुनुविषति।** विकल्प-पक्ष में इडागम नहीं है-**प्रोर्णुनूषति। 'अज्झनगमां सनि'** (६।४।१६) से अङ्ग को दीर्घ होता है।

(१२) **बिभरिषति।** यहां **'डुभृञ् धारणपोषणयोः'** (जु०उ०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम नहीं है-**बुभूर्षति। 'उदोष्ठ्यपूर्वस्य'** (७।२।१०२) से ऋकार को उत्व, **'उरण् रपरः'** (१।१।५१) से इसे रपरत्व और **'हलि च'** (८।२।७७) से दीर्घ होता है।

(१३) **जिज्ञपयिषति।** यहां **'मारणतोषणनिशामनेषु ज्ञा'** (भ्वा०प०) इस णिजन्त धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम नहीं है-**ज्ञीप्सति। 'अर्तिह्री०'** (७।३।३६) से 'पुक्' आगम, **'आप्ज्ञप्यृधामीत्'** (७।४।५५) से ईकार आदेश और **'अत्र लोपोऽभ्यासस्य'** (७।४।५८) से अभ्यास का लोप होता है।

(१४) **सिसनिषति।** यहां **'षणु दाने'** (त०उ०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम होता है। विकल्प पक्ष में इडागम नहीं है-**सिषासति। 'जनसनखनां सञ्झलोः'** (६।४।४३) से आकार आदेश होता है।

इडागम-विकल्पः–

(१६) क्लिशः क्त्वानिष्ठयोः।५०।

प०वि०–क्लिशः ५।१ क्त्वा-निष्ठयोः ६।२।

स०–क्त्वा च निष्ठा च ते क्त्वानिष्ठे, तयोः-क्त्वानिष्ठयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, इट्, वलादेः, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः–क्लिशोऽङ्गाद् वलाद्योरार्धधातुकयोः क्त्वानिष्ठयोर्वा इट्।

अर्थः–क्लिशोऽङ्गाद् उत्तरयोर्वलाद्योरार्धधातुकयोः क्त्वानिष्ठयोर्विकल्पेन इडागमो भवति।

उदा०-(क्त्वा) क्लिष्ट्वा, क्लिशित्वा। **(निष्ठा)** क्लिष्टः, क्लिष्टवान्। क्लेशितः, क्लेशितवान्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(क्लिशः) क्लिश इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (वलाद्योः) वलादि (आर्धधातुकयोः) आर्धधातुक (क्त्वानिष्ठयोः) क्त्वा और निष्ठा-संज्ञक प्रत्ययों को (वा) विकल्प से (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०-**(क्त्वा) क्लिष्ट्वा, क्लिशित्वा।** दुःख देकर। **(निष्ठा) क्लिष्टः, क्लिष्टवान्। क्लेशितः, क्लेशितवान्।** दुःख दिया।*

*सिद्धि-(१) **क्लिष्ट्वा।** यहां **'क्लिशू विबाधने'** (क्रया०प०) धातु से **'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले'** (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम का प्रतिषेध होता है। **'व्रश्चभ्रस्ज०'** (८।२।३६) से शकार को षकार और **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकार होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**क्लिशित्वा। 'मृडमृदगुधकुषक्लिशवदवसः क्त्वा'** (१।२।७) से सेट् क्त्वा के कित् होने से **'क्ङिति च'** (१।१।५) से गुण का प्रतिषेध होता है।*

*(२) **क्लिष्टः।** यहां पूर्वोक्त 'क्लश्' धातु से 'निष्ठा' (३।२।१०२) से भूतकाल अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। क्तवतु प्रत्यय में-**क्लिष्टवान्।** विकल्प-पक्ष में इडागम है-**क्लिशितः, क्लिशितवान्।***

इडागम-विकल्पः–

(१७) पूङश्च।५१।

प०वि०–पूङः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, इट्, वलादेः, वा, क्त्वानिष्ठयोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-पूङोऽङ्गाद् वलाद्योरार्धधातुकयोः क्त्वानिष्ठयोर्वा इट्।

अर्थः-पूङोऽङ्गाद् उत्तरयोर्वलाद्योरार्धधातुकयोः क्त्वानिष्ठयोर्विकल्पेन इडागमो भवति।

उदा०-(क्त्वा) पूत्वा, पवित्वा। **(निष्ठा)** सोमोऽतिपूतः, सोमोऽतिपवितः। पूतवान्, पवितवान्।

***आर्यभाषाः* *अर्थ*-**(पूङः) पूङ् इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (वलाद्योः) वलादि (आर्धधातुकयोः) आर्धधातुक (क्त्वानिष्ठयोः) क्त्वा और निष्ठा-प्रत्ययों को (वा) विकल्प से (इट्) इडागम होता है।

उदा०-(क्त्वा) ***पूत्वा, पवित्वा।*** *पवित्र करके।* ***(निष्ठा) सोमोऽतिपूतः, सोमोऽतिपवितः।*** *सोम को अति पवित्र (शुद्ध) किया गया।* ***पूतवान्, पवितवान्।*** *पवित्र किया गया।*

सिद्धि-पूत्वा। *यहां 'पूङ् पवने' (भ्वा०आ०) धातु से 'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले' (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम का प्रतिषेध होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-* ***पवित्वा।*** *ऐसे ही निष्ठा प्रत्यय में-* ***पूतः, पवितः। पूतवान्, पवितवान्।*** *'श्र्युकः किति' (७।२।११) से इडागम का प्रतिषेध प्राप्त था, अतः विकल्प-विधान किया गया है।*

इडागमः--

(१८) वसतिक्षुधोरिट्।५२।

प०वि०-वसति-क्षुधोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) इट् १।१।

स०-वसतिश्च क्षुध् च तौ वसतिक्षुधौ, तयोः-वसतिक्षुधोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, वलादेः, क्त्वानिष्ठयोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-वसतिक्षुधिभ्यामङ्गाभ्यां वलाद्योरार्धधातुकयोः क्त्वानिष्ठयोरिट्।

अर्थः-वसतिक्षुधिभ्यामङ्गाभ्याम् उत्तरयोर्वलाद्योरार्धधातुकयोः क्त्वानिष्ठयोरिडागमो भवति।

उदा०-(**वसतिः**) **क्त्वा**-उषित्वा। **निष्ठा**-उषितः, उषितवान्। (**क्षुधिः**) **क्त्वा**-क्षुधित्वा। **निष्ठा**-क्षुधितः, क्षुधितवान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(वसतिक्षुधिभ्याम्) वसति, क्षुधि इन (अङ्गाभ्याम्) अङ्गों से परे (वलाद्योः) वलादि (आर्धधातुकयोः) आर्धधातुक (क्त्वानिष्ठयोः) क्त्वा और निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय को (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०-(वसति) क्त्वा-**उषित्वा**। निवास करके। निष्ठा-**उषितः, उषितवान्**। निवास किया। (क्षुधि) क्त्वा-**क्षुधित्वा**। भूखा होकर। निष्ठा-**क्षुधितः, क्षुधितवान्**। भूखा हुआ।*

*सिद्धि-(१) **उषित्वा**। यहां **'वस निवासे'** (भ्वा०प०) धातु से **'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले'** (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है, इस सूत्र से इसे इडागम होता है। **'वचिस्वपियजादीनां किति'** (६।४।१५) से सम्प्रसारण और **'शासिवसिघसीनाम्'** (८।३।६०) से षत्व होता है। **'न क्त्वा सेट्'** (१।२।१८) से 'क्त्वा' प्रत्यय को कित्त्व प्रतिषेध की प्राप्ति में **'मृडमृदगुधकुषक्लिशवदवसः क्त्वा'** (१।२।७) से सेट् क्त्वा किद्वत् होता है। 'वस' धातु के अनिट् होने से **'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्'** (७।२।१०) से इडागम का विधान किया गया है।*

*ऐसे ही निष्ठा-प्रत्यय में-**उषितः, उषितवान्**। **'क्षुध बुभुक्षायाम्'** (दि०प०) धातु से-**क्षुधित्वा, क्षुधितः, क्षुधितवान्**।*

इडागमः-

(१६) अञ्चेः पूजायाम्।५३।

प०वि०-अञ्चेः ५।१ पूजायाम् ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, वलादेः, क्त्वानिष्ठयोः, इडिति चानुवर्तते।

अन्वयः-पूजायाम् अञ्चेरङ्गाद् वलाद्योरार्धधातुकयोः क्त्वानिष्ठयोरिट्।

अर्थः-पूजायामर्थे वर्तमानाद् अञ्चेरङ्गाद् उत्तरयोर्वलाद्योरार्धधातुकयोः क्त्वानिष्ठयोरिडागमो भवति।

उदा०-(**क्त्वा**) अञ्चित्वा। (**निष्ठा**) अञ्चिता अस्य गुरवः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पूजायाम्) पूजा अर्थ में विद्यमान (अञ्चेः) अञ्चि इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (वलाद्योः) वलादि (आर्धधातुकयोः) आर्धधातुक (क्त्वानिष्ठयोः) क्त्वा और निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय को (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०-(क्त्वा) **अञ्चित्वा।** पूजा करके। (निष्ठा) **अञ्चिता अस्य गुरवः।** यह गुरुजनों का पूजक है।*

***सिद्धि-(१) अञ्चित्वा।** यहां 'अञ्चु गतिपूजनयोः' (भ्वा०प०) धातु से पूजा अर्थ में '**समानकर्तृकयोः पूर्वकाले**' (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम होता है। 'अञ्चति' धातु का '**अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति**' (६।४।२४) से अनुनासिक (न्) का लोप प्राप्त है, किन्तु '**नाञ्चेः पूजायाम्**' (६।४।३०) से प्रतिषेध होता है।*

*'अञ्चु' धातु के उदित होने से '**उदितो वा**' (७।२।५६) से 'क्त्वा' प्रत्यय को विकल्प से इडागम प्राप्त था, अतः यह नित्य इडागम विधान किया गया है।*

*(२) **अञ्चिता अस्य गुरवः।** यहां 'अञ्चु' धातु से '**मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च**' (३।२।१८८) से वर्तमानकाल अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। '**क्तस्य च वर्तमाने**' (२।३।६७) से कर्ता में (अस्य) षष्ठीविभक्ति का प्रतिषेध प्राप्त था, अतः इस सूत्र से इडागम का विधान किया गया है।*

इडागमः—

(२०) लुभो विमोहने।५४।

प०वि०-लुभः ५।१ विमोहने ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, वलादेः, क्त्वानिष्ठयोः, इडिति चानुवर्तते।

अन्वयः-विमोहने लुभोऽङ्गाद् वलाद्योरार्धधातुकयोः क्त्वानिष्ठयोरिट्।

अर्थः-विमोहनेऽर्थे वर्तमानाल्लुभोऽङ्गाद् उत्तरयोर्वलाद्योरार्धधातुकयोः क्त्वानिष्ठयोरिडागमो भवति।

उदा०-(क्त्वा) लुभित्वा, लोभित्वा। **(निष्ठा)** विलुभिताः केशाः, विलुभितः सीमन्तः, विलुभितानि पदानि।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(विमोहने) व्याकुल करने अर्थ में विद्यमान (लुभः) लुभ् इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (वलाद्योः) वलादि (आर्धधातुकयोः) आर्धधातुक (क्त्वानिष्ठयोः) क्त्वा और निष्ठा प्रत्यय को (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०-(क्त्वा) **लुभित्वा, लोभित्वा।** व्याकुल करके। (निष्ठा) **विलुभिताः केशाः।** बिखरे हुये बाल। **विलुभितः सीमन्तः।** बिखरी हुई केशों की मांग। **विलुभितानि पदानि।** बिखरे हुये पद।*

*सिद्धि-**लुभित्वा**। यहां **'लुभ विमोहने'** (तु०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त्वा' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम होता है। **'रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च'** (१।२।२६) से सेट् क्त्वा प्रत्यय के किद्वत् होने से **'क्ङिति च'** (१।१।५) से गुण का प्रतिषेध होता है। विकल्प-पक्ष में लघूपध गुण होता है **लोभित्वा**। ऐसे ही निष्ठा में-**विलुभिताः केशाः** इत्यादि।*

*'क्त्वा' प्रत्यय में **'तीषसहलुभरुषरिषः'** (७।२।४८) से विकल्प से इडागम प्राप्त था और निष्ठा में **'यस्य विभाषा'** (७।२।१५) से इडागम का प्रतिषेध प्राप्त था, अतः इस सूत्र से नित्य इडागम का विधान किया गया है।*

इडागमः-

(२१) जॄव्रश्च्योः क्त्वि।५५।

प०वि०-जॄ-व्रश्च्योः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) क्त्वि ७।१।

स०-जॄश्च व्रश्चिश्च तौ जॄव्रश्ची, तयो:-जॄव्रश्च्योः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, वलादेः, इडिति चानुवर्तते।

अन्वयः-जॄव्रश्चिभ्यामङ्गाभ्यां वलादेरार्धधातुकस्य क्त्व इट्।

अर्थः-जॄव्रश्चिभ्यामङ्गाभ्याम् उत्तरस्य वलादेरार्धधातुकस्य क्त्वाप्रत्ययस्य इडागमो भवति।

उदा०-(जॄ) जरित्वा, जरीत्वा। **(व्रश्चिः)** व्रश्चित्वा।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(जॄव्रश्चिभ्याम्) जॄ, व्रश्चि इन (अङ्गाभ्याम्) अङ्गों से परे (वलादेः) वलादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक (क्त्व:) क्त्वा प्रत्यय को (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०-**(जॄ) जरित्वा, जरीत्वा।** जीर्ण (वृद्ध) होकर। **(व्रश्चि) व्रश्चित्वा।** काटकर।*

*सिद्धि-(१) **जरित्वा**। यहां **'जॄ वयोहानौ'** (चु०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त्वा' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम होता है। **'वॄतो वा'** (७।२।३५) से इडागम को विकल्प से दीर्घ होता है-**जरीत्वा**। **'आधृषाद्वा'** (चु०गणसूत्र) से 'जॄ' धातु को विकल्प से 'णिच्' प्रत्यय होता है। अतः 'णिच्' प्रत्यय नहीं है।*

*(२) **जरित्वा**। **'ओव्रश्चू छेदने'** (तु०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त्वा' प्रत्यय है। **'न क्त्वा सेट्'** (१।२।१८) से **'क्त्वा'** प्रत्यय के कित् न होने से **'ग्रहिज्यावयि०'** (६।१।१६) से 'व्रश्च्' को **सम्प्रसारण नहीं है।***

*'जृ' धातु से परे 'क्त्वा' प्रत्यय को '**श्र्युकः किति**' (७।२।११) से इडागम का प्रतिषेध प्राप्त था। 'व्रश्चु' धातु से 'क्त्वा' प्रत्यय को '**उदितो वा**' (७।२।५६) से विकल्प में इडागम प्राप्त था। अतः यह नित्य इडागम का विधान का विधान किया गया है।*

इडागम-विकल्पः–

(२२) उदितो वा।५६।

प०वि०–उदितः ५।१ वा अव्ययपदम्।

स०–उद् इद् यस्य स उदित्, तस्मात्–उदितः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, वलादेः, इट्, क्त्वि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–उदितोऽङ्गाद् वलादेरार्धधातुकस्य क्त्वो वा इट्।

अर्थः–उदितोऽङ्गाद् उत्तरस्य वलादेरार्धधातुकस्य क्त्वाप्रत्ययस्य विकल्पेन इडागमो भवति।

उदा०–**शमु**–शमित्वा, शान्त्वा। **तमु**–तमित्वा, तान्त्वा। **दमु**–दमित्वा, दान्त्वा।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(उदितः) जिसका उकार इत् है उस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (वलादेः) वलादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक (क्त्वः) क्त्वा–प्रत्यय को (वा) विकल्प से (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०–शमु–**शमित्वा, शान्त्वा।** उपशान्त करके। तमु–**तमित्वा, तान्त्वा।** आकाङ्क्षा करके। दमु–**दमित्वा, दान्त्वा।** उपशान्त करके।*

*सिद्धि–(१) **शमित्वा।** यहां 'शमु उपशमे' (दि०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त्वा' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम नहीं है–**शान्त्वा।** '**अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति**' (६।४।१५) से दीर्घ होता है।*

*ऐसे ही 'तमु काङ्क्षायाम्' (दि०प०) धातु से–**तमित्वा, तान्त्वा।** 'दमु उपशमे' (दि०प०) धातु से–**दमित्वा, दान्त्वा।***

इडागम-विकल्पः–

(२३) सेऽसिचि कृतचृतच्छृदतृदनृतः।५७।

प०वि०–से ७।१ असिचि ७।१ कृत-चृत-च्छृद-तृद-नृतः ५।१।

स०–न सिजिति असिच्, तस्मिन्–असिचि (नञ्तत्पुरुषः)। कृतश्च चृतश्च छृदश्च तृदश्च नृच्च एतेषां समाहारः–कृतचृतच्छृदतृदनृत्, तस्मात्–कृतचृतच्छृदतृदनृतः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, इट्, वा, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कृतचृतच्छृदतृदनृतोऽङ्गाद् असिचः सस्यार्धधातुकस्य वा इट्।

अर्थः-कृतचृतच्छृदतृदनृतिभ्योऽङ्गेभ्य उत्तरस्य सिज्वर्जितस्य सकारादेरार्धधातुकस्य विकल्पेन इडागमो भवति। **उदाहरणम्**--

	धातुः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
(१)	कृत	कर्त्स्यति, कर्तिष्यति।	वह काटेगा/लपेटेगा (कातेगा)।
		अकर्त्स्यत्, अकर्तिष्यत्।	यदि वह काटता/लपेटता।
		चिकृत्सति, चिकर्तिष्यति।	वह काटना/लपेटना चाहता है।
(२)	चृत	चर्त्स्यति, चर्तिष्यति।	वह मारेगा/गूंथेगा।
		अचर्त्स्यत्, अचर्तिष्यत्।	यदि वह मारता/गूंथता।
		चिचृत्सति, चिचर्तिषति।	वह मारना/गूंथना चाहता है।
(३)	छृद	छर्त्स्यति, छर्दिष्यति।	वह चमकेगा/खेलेगा।
		अच्छर्त्स्यत्, अच्छर्दिष्यत्।	यदि वह चमकता/खेलता।
		चिच्छृत्सति, चिच्छर्दिष्यति।	वह चमकना/खेलना चाहता है।
(४)	तृद	तर्त्स्यति, तर्दिष्यति।	वह हिंसा/दान करेगा।
		अतर्त्स्यत्, अतर्दिष्यत्।	यदि वह हिंसा/दान करता।
		तितृत्सति, तितर्दिष्यति।	वह हिंसा/दान करना चाहता है।
(५)	नृत	नर्त्स्यति, नर्तिष्यति।	वह नाचेगा।
		अनर्त्स्यत्, अनर्तिष्यत्।	यदि वह नाचता।
		निनृत्सति, निनर्तिष्यति।	वह नाचना चाहता है।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कृत०) कृत, चृत, छृद, तृद, नृत् इन (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (असिचः) सिच् से भिन्न (सकारादेः) सकारादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक को (वा) विकल्प से (इट्) इडागम होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-(१) कर्त्स्यति। *यहां **'कृती छेदने'** (रुधा०प०) धातु से **'लृट् शेषे च'** (३।३।१३) से 'लृट्' प्रत्यय है। **'स्यतासी लृलुटोः'** (३।१।३३) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय*

*है। इस सूत्र से इस सकारादि 'स्य' प्रत्यय को इडागम नहीं होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**कर्तिष्यति**।*

*(२) **अकर्त्स्यत्।** यहां पूर्वोक्त 'कृती' धातु से '**लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ**' (३।३।१३९) से लृङ् प्रत्यय है। पूर्ववत् 'स्य' विकरण-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से इस सकारादि 'स्य' प्रत्यय को इडागम नहीं होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**अकर्तिष्यत्।***

*(३) **चिकृत्सति।** यहां पूर्वोक्त 'कृती' धातु से '**धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा**' (३।१।७) से इच्छार्थ में 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस सकारादि प्रत्यय को इडागम नहीं होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**चिकर्तिषति।***

*(४) **चर्त्स्यति।** '**चृती हिंसासंग्रन्थनयोः**' (तु०प०) पूर्ववत्।*

*(५) **छर्त्स्यति।** '**उच्छृदिर् दीप्तिदेवनयोः**' (रु०उ०) पूर्ववत्।*

*(६) **तर्त्स्यति।** '**उतृदिर् हिंसादानयोः**' (रु०उ०) पूर्ववत्।*

*(७) **नर्त्स्यति।** '**नृती गात्रविक्षेपे**' (तु०प०) पूर्ववत्।*

इडागमः-

(२४) गमेरिट् परस्मैपदेषु।५८।

प०वि०-गमेः ५।१ इट् १।१ परस्मैपदेषु ७।३।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, से इति चानुवर्तते।

अन्वयः-गमेरङ्गात् सस्यार्धधातुकस्य परस्मैपदेषु इट्।

अर्थः-गमेरङ्गाद् उत्तरस्य सकारादेरार्धधातुकस्य परस्मैपदेषु परत इडागमो भवति।

उदा०-गमिष्यति। अगमिष्यत्। जिगमिषति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(गमेः) गमि इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (सस्य) सकारादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक प्रत्यय को (परस्मैपदेषु) परस्मैपद-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०-**गमिष्यति।** वह जायेगा। **अगमिष्यत्।** यदि वह जाता। **जिगमिष्यति।** वह जाना चाहता है।*

*सिद्धि-(१) **गमिष्यति।** यहां 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लृट्' और 'स्य' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस सकारादि 'स्य' प्रत्यय को इडागम होता है।*

*(२) **अगमिष्यत्।** यहां पूर्वोक्त 'गम्लृ' धातु से पूर्ववत् 'लृङ्' प्रत्यय है।*

*(३) **जिगमिषति।** यहां पूर्वोक्त 'गम्लृ' धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है।*

इडागम-प्रतिषेधः–

(२५) न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः ।५६।

प०वि०–न अव्ययपदम्, वृद्भ्यः ५ ।३ चतुर्भ्यः ५ ।३ ।

अनु०–अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, से, इट्, परस्मैपदेषु, न इति चानुवर्तते ।

अन्वयः–चतुर्भ्यो वृद्भ्योऽङ्गेभ्यः सस्यार्धधातुकस्य परस्मैपदेषु इड् न ।

अर्थः–चतुर्भ्यो वृद्भ्यः–वृत्-आदिभ्योऽङ्गेभ्य उत्तरस्य सकारादेरार्धधातुकस्य परस्मैपदेषु परत इडागमो न भवति । **उदाहरणम्**–

	धातुः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
(१)	वृतु	वर्त्स्यति ।	वह वर्ताव करेगा ।
		अवर्त्स्यत् ।	यदि वह वर्ताव करता ।
		विवृत्सति ।	वह वर्ताव करना चाहता है ।
(२)	वृधु	वर्त्स्यति ।	वह बढ़ेगा ।
		अवर्त्स्यत् ।	यदि वह बढ़ता ।
		विवृत्सति ।	वह बढ़ना चाहता है ।
(३)	शृधु	शर्त्स्यति ।	वह पादेगा ।
		अशर्त्स्यत् ।	यदि वह पादता ।
		शिशृत्सति ।	वह पादना चाहता है ।
(४)	स्यन्दू	स्यन्त्स्यति ।	वह बहेगा ।
		अस्यन्त्स्यत् ।	यदि वह बहता ।
		सिस्यन्त्सति ।	वह बहना चाहता है ।

वृतु वर्तने, वृधु वृद्धौ, शृधु शब्दकुत्सायाम्, स्यन्दू प्रसवणे इति भ्वादिगणान्तर्गताश्चत्वारो वृतादयः ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(चतुर्भ्यः) चार (वृद्भ्यः) वृत् आदि (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (सस्य) सकारादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक को (परस्मैपदेषु) परस्मैपद-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

***उदा०**-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।*

सिद्धि-(१) वर्त्स्यति। यहां 'वृतु वर्तने' (भ्वा०आ०) से 'लृट् शेषे च' (३।३।१३) से 'लृट्' प्रत्यय और 'स्यतासी लृलुटोः' (३।१।३३) 'स्य' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम नहीं होता है। 'वृद्भ्यः स्यसनोः' (१।३।९२) से परस्मैपद होता है।

(२) अवर्त्स्यत्। यहां पूर्वोक्त 'वृतु' धातु से 'लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ' (३।३।१३९) से 'लृङ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) विवृत्सति। यहां पूर्वोक्त 'वृतु' धातु से 'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा' (३।१।७) से इच्छा अर्थ में 'सन्' प्रत्यय है।

ऐसे ही 'वृधु वृद्धौ' आदि धातुओं से शेष पदों की सिद्धि करें।

इडागम-प्रतिषेधः—

(२६) तासि च क्लृपः।६०।

प०वि०-तासि ७।१ च अव्ययपदम्, क्लृपः ५।१।

अनु०-अङ्गस्य, आर्धधातुकस्य, से, इट्, परस्मैपदेषु, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-क्लृपोऽङ्गात् तासेः सस्य चार्धधातुकस्य परस्मैपदेषु इड् न।

अर्थः-क्लृपोऽङ्गाद् उत्तरस्य तासेः सकारादेश्चाऽऽर्धधातुकस्य परस्मैपदेषु परत इडागमो न भवति।

उदा०-(**तास्**) स श्वः कल्प्ता। (**सकारादिः**) कल्प्स्यति। अकल्प्स्यत्। चिक्लृप्सति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(क्लृपः) क्लृप् इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (तासेः) तासि (च) और (सस्य) सकारादि (आर्धधातुकस्य) आर्धधातुक प्रत्यय को (परस्मैपदेषु) परस्मैपद-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(तासि) स श्वः **कल्प्ता**। वह कल समर्थ होगा। (**सकारादि**) **कल्प्स्यति**। वह समर्थ होगा। **अकल्प्स्यत्**। यदि वह समर्थ होता। **चिक्लृप्सति**। वह समर्थ होना चाहता है।*

सिद्धि-(१) कल्प्ता। यहां 'कृपू सामर्थ्ये' (भ्वा०आ०) धातु से 'अनद्यतने लुट्' (३।३।१५) से 'लुट्' प्रत्यय और 'स्यतासी लृलुटोः' (३।१।३३) से 'तासि' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम नहीं होता है। 'कृप्' धातु को 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८५) से लघूपध गुण होकर 'कृपो रो लः' (८।२।१८) से रेफ को लकारादेश होता है। कृप्=करप्=कल्प्। 'लुटि च क्लृपः' (१।३।९३) से परस्मैपद होता है।

(२) कल्प्स्यति। यहां पूर्वोक्त 'कृप्' धातु से 'लृट् शेषे च' (३।३।१३) से 'लृट्' प्रत्यय और 'स्यतासी लृलुटोः' (३।१।३३) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) अकल्प्स्यत्। यहां पूर्वोक्त 'कृप्' धातु से 'लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ' (३।३।१३९) से 'लृङ्' प्रत्यय और 'स्यतासी लृलुटोः' (३।१।३३) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(४) चिक्लृप्सति। यहां पूर्ववत् 'कृप्' धातु से 'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा' (३।१।७) से इच्छार्थ में 'सन्' प्रत्यय है। यह 'हलन्ताच्च' (१।२।१०) से किद्वत् होता है अतः प्राप्त लघूपध गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्रतिषेध होता है। 'कृपो रो लः' (८।२।१८) से 'कृप्' धातु के ऋकारस्थ रेफांश को लकार आदेश होता है। कृप्=क्लृऋप्=क्लृप्। शेष कार्य पूर्ववत् है।

इडागम-प्रतिषेधः—

(२७) अचस्तास्वत् थल्यनिटो नित्यम्।६१।

प०वि०- अचः ५।१ तास्वत् १।१ थलि ७।१ अनिटः ५।१ नित्यम् १।१।

तद्धितवृत्तिः-तासाविव इति तासवत् '**तत्र तस्येव**' (५।१।११५) इत्यनेन सप्तम्यर्थे वतिः प्रत्ययः।

स०-न विद्यते इड् यस्य सः-अनिट्, तस्मात्-अनिटः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, इट्, न। उत्तरसूत्राद् 'उपदेशे' इत्यनुकर्षणीयम्।

अन्वयः-उपदेशेऽचस्तासवन्नित्यमनिटः, तासवत् थल इड् न।

अर्थः-उपदेशे येऽजन्ता धातवः, तासौ नित्यमनिटः तेभ्यस्तासवत् थल इडागमो न भवति।

उदा०-**(या) याता**-ययाथ। **(चि) चेता**-चिचेथ। **(नी) नेता**-निनेथ। **(हु) होता**-जुहोथ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(उपदेशे) पाणिनीय धातुपाठ के उपदेश में जो (अचः) अजन्त धातु (तास्वत्) तासि प्रत्यय परे होने पर (नित्यम्-अनिटः) नित्य-अनिट् हैं, उनसे परे (तास्वत्) तास् प्रत्यय के समान (थलः) थल् प्रत्यय को (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**(या) याता-ययाथ।** तूने पहुंचाया। **(चि) चेता-चिचेथ।** तूने चयन किया। **(नी) नेता-निनेथ।** तूने पहुंचाया। **(हु) होता-जुहोथ।** तूने यज्ञ किया।*

*सिद्धि-**ययाथ**। यहां '**या प्रापणे**' (अदा०प०) इस अजन्त, नित्य अनिट् धातु से '**परोक्षे लिट्**' (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय, '**तिप्तस्झि०**' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'सिप्' आदेश और '**परस्मैपदानां णलतुसुस्०**' (३।४।८२) से 'सिप्' के स्थान में 'थल्' आदेश है। इस सूत्र से इसे तास्-प्रत्यय के समान इडागम नहीं होता है।*

*ऐसे ही-'**चिञ् चयने**' (स्वा०उ०) धातु से-**चिचेथ**। '**णीञ् प्रापणे**' (भ्वा०उ०) धातु से-**निनेथ**। 'हु दानादनयोः, आदाने चेत्येके' (जु०प०) धातु से-**जुहोथ**।*

इडागम-प्रतिषेधः—

(२८) उपदेशेऽत्वतः।६२।

प०वि०-उपदेशे ७।१ अत्वतः ५।१।

स०-अत् (अकारः) अस्मिन्नस्तीति अत्वान्, तस्मात्-अत्वतः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, इट्, न, तास्वत्, थलि, अनिटः, नित्यमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-उपदेशे योऽत्ववान् तासौ नित्यम् अनिट्, तस्माद् अत्वतोऽङ्गात् थलस्तासवद् इड् न।

अर्थः-उपदेशे यो धातुरकारवान्, तासौ च नित्यम् अनिट्, तस्माद् अकारवतोऽङ्गाद् उत्तरस्य थलस्तास्वद् इडागमो न भवति।

उदा०-(पच) पक्ता-पपक्थ। **(यज) यष्टा**-इयष्ठ। **(शक्लृ) शक्ता**-शशक्थ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(उपदेशे) पाणिनीय धातुपाठ के उपदेश में जो धातु अकारवाली है और तासि प्रत्यय परे होने पर (नित्यम् अनिट्) नित्य-अनिट् है उस (अत्वतः) अकारवाले (अङ्गात्) अङ्ग से परे (थलः) थल् प्रत्यय को (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(पच) **पक्ता-पपक्थ**। तूने पकाया। **(यज) यष्टा-इयष्ठ**। तूने यज्ञ किया। **(शक्लृ) शक्ता-शशक्थ**। तू समर्थ हुआ।*

*सिद्धि-**पपक्थ**। यहां '**डुपचष् पाके**' (स्वा०उ०) इस अकारवान् धातु से '**परोक्षे लिट्**' (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय, '**तिप्तस्झि०**' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'सिप्' आदेश और '**परस्मैपदानां णलतुसुस्०**' (३।४।८२) से 'सिप्' के स्थान में 'थल्' आदेश है। इस सूत्र से इसे तास्-प्रत्यय के समान इडागम नहीं होता है।*

*ऐसे ही '**यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु**' (भ्वा०उ०) धातु से-**इयष्ठ**। '**शक्लृ शक्तौ**' (स्वा०प०) धातु से-**शशक्थ**।*

इडागम-प्रतिषेधः--

(२६) ऋतो भारद्वाजस्य।६३।

प०वि०-ऋतः ५।१ भारद्वाजस्य ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, इट्, न, तासवत्, थलि, अनिटः, नित्यम्, उपदेशे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-उपदेशे य ऋदन्यस्तासौ च नित्यमनिट्, तस्माद् ऋतोऽङ्गात् थल इड् न, भारद्वाजस्य।

अर्थः-उपदेशे यो ऋकारान्तस्तासौ च नित्यमनिट्, तस्माद् ऋकारान्ताद् अङ्गाद् उत्तरस्य थलस्तास्वद् इडागमो न भवति, भारद्वाजस्याऽऽचार्यस्य मतेन।

उदा०-(स्मृ) स्मर्ता-सस्मर्थ। **(ध्वृ) ध्वर्ता**-दध्वर्थ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(उपदेशे) पाणिनीय धातुपाठ के उपदेश में जो धातु ऋकारान्त है और तासि प्रत्यय परे होने पर (नित्यम्-अनिट्) नित्य-अनिट् है* ***उस*** *(ऋतः) ऋकारान्त (अङ्गात्) अङ्ग से परे (थलः) थल् प्रत्यय को (इट्) इडागम (न) नहीं होता है (भारद्वाजस्य) भारद्वाज आचार्य के मत में।*

*उदा०-**(स्मृ) स्मर्ता-सस्मर्थ।** तूने चिन्ता (स्मरण) की। **(ध्वृ) ध्वर्ता-दध्वर्थ।** तूने हूर्छा (कुटिलता) की।*

*सिद्धि-**सस्मर्थ।** यहां 'स्मृ चिन्तायाम्' (भ्वा०प०) इस ऋकारान्त धातु से पूर्ववत् 'लिट्' प्रत्यय, 'तिप्' आदेश और 'तिप्' के स्थान में 'थल्' आदेश है। इस सूत्र से इसे भारद्वाज आचार्य के मत में इडागम नहीं होता है। ऐसे ही 'ध्वृ हूर्च्छने' (भ्वा०प०) धातु से-**दध्वर्थ।***

विशेषः *भारद्वाज आचार्य के मत में केवल ऋकारान्त धातुओं से परे थल् को इडागम नहीं होता है, अन्यत्र तो होता है-**ययिथ, पेचिथ, शेकिथ।** इस प्रकार पूर्वोक्त दोनों सूत्रों में विकल्प-विधान हो जाता है।*

निपातनम्--

(३०) बभूथाततन्थजगृम्भववर्थेति निगमे।६४।

प०वि०-बभूथ क्रियापदम्, आततन्थ क्रियापदम्, जगृम्भ क्रियापदम्, ववर्थ क्रियापदम्, इति अव्ययपदम्, निगमे ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, इट्, न, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-निगमे बभूथ ततन्थ जगृम्भ ववर्थेति निपातनम्।

अर्थः-निगमे=वेदविषये बभूथ, आततन्थ, जगृम्भ, ववर्थ इत्येतानि पदानि निपात्यन्ते, अर्थात्-एतेषु क्रादिनियमात् प्राप्तस्येडागमस्याऽभावो निपात्यते। उदाहरणम्--

(१) **बभूथ**-त्वं हि होता प्रथमो बभूथ (तै०सं० ३।१।४।४)। **बभूथ**=तू हुआ। बभूविथ इति भाषायाम्।

(२) **आततन्थ**-येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ (ऋ० ३।२२।२)। आततन्थ=तूने विस्तार किया। आतेनिथ इति भाषायाम्।

(३) **जगृम्भ**-जगृम्भा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तम् (१०।४७।१) जगृम्भ= हमने ग्रहण किया। जगृहिम इति भाषायाम्।

(४) **ववर्थ**-त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ (ऋ० १।९१।९२)। ववर्थ त्वं हि ज्योतिषा (काशिका)। ववर्थ=तूने वरण किया। ववरिथ इति भाषायाम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(निगमे) वेदविषय में (बभूथ०) बभूथ, आततन्थ, जगृम्भ ववर्थ (इति) ये पद निपातित हैं, अर्थात् **'कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि'** (७।२।१३) इस क्रादि नियम से प्राप्त इडागम का अभाव निपातित है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-*(१) **बभूथ।** यहां 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) धातु से 'परोक्षे लिट्' (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय, **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'सिप्' आदेश और **'परस्मैपदानां णलतुसुस्०'** (३।४।८२) से 'सिप्' के स्थान में 'थल्' आदेश है। इस सूत्र से इसे कृ-आदि नियम से प्राप्त इडागम का प्रतिषेध होता है।*

*(२) **आततन्थ।** आङ्पूर्वक 'तनु विस्तारे' (त०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(३) **जगृम्भ।** यहां 'ग्रह उपादाने' (क्र्या०प०) धातु से पूर्ववत् 'लिट्' प्रत्यय, लकार के स्थान में 'मस्' आदेश, **'परस्मैपदानां णलतुसुस्०'** (३।४।८२) से 'मस्' के स्थान में 'म' आदेश है। **'ग्रहिज्यावयि०'** (६।१।१६) से सम्प्रसारण और वा०- **'हृग्रहोर्भश्छन्दसि'** (८।२।३५) से हकार को भकार आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **ववर्थ।** 'वृञ् वरणे' (क्र्या०उ०) धातु से पूर्ववत्।*

*यहां **'कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि'** (७।२।१३) से इडागम का प्रतिषेध प्राप्त ही था, पुनः वेद में यह नियमार्थ कथन किया गया है कि वेद में इडागम नहीं होता है, भाषा में तो होता है-**ववरिथ।***

इडागम-विकल्पः--

(३१) विभाषा सृजिदृशोः ।६५।

प०वि०-विभाषा १।१ सृजि-दृशोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-सृजिश्च दृश् च तौ सृजिदृशौ, तयोः-सृजिदृशोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, इट्, न, थलि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सृजिदृशिभ्याम् अङ्गाभ्यां थलो विभाषा इड् **न**।

अर्थः-सृजिदृशिभ्यामङ्गाभ्याम् उत्तरस्य थलो विकल्पेन **इडागमो** न भवति।

उदा०-(**सृजि**) त्वं सस्रष्ठ, ससर्जिथ। (**दृशि**) त्वं दद्रष्ठ, **ददर्शिथ**।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(सृजिदृशिभ्याम्) सृजि, दृशि इन (अङ्गानाम्) **अङ्गों से** परे (थलः) थल् प्रत्यय को (विभाषा) विकल्प से (इट्) इडागम (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(सृजि) त्वं **सस्रष्ठ, ससर्जिथ**। तूने सृष्टि की। (दृशि) त्वं **दद्रष्ठ, ददर्शिथ**। तूने दर्शन किया।*

*सिद्धि-(१) **सस्रष्ठ**। यहां 'सृज विसर्गे' (तु०प०) धातु से पूर्ववत् लिट्, सिप् आदेश और इसके स्थान में 'थल्' आदेश है। इस सूत्र से इसे इडागम का प्रतिषेध होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**ससर्जिथ**। 'कृसृभृवृ०' (७।२।१३) इस कृ-आदि नियम से नित्य इडागम प्राप्त था, अतः इस सूत्र से विकल्प-विधान किया गया है।*

*(२) **दद्रष्ठ**। यहां 'दृशिर् प्रेक्षणे' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'थल्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इडागम का प्रतिषेध होता है। 'सृजिदृशोर्झल्यमकिति' (६।१।५८) से 'अम्' आगम और 'व्रश्चभ्रस्ज०' (८।२।३६) से शकार को षत्व होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम है-**ददर्शिथ**।*

***विशेषः** 'नवेति विभाषा' (१।१।४४) से निषेध और विकल्प की विभाषा संज्ञा की गई है अतः प्राप्त-विभाषा में 'न' से निषेध होकर 'वा' से विकल्प किया जाता है।*

इडागमः--

(३२) इडत्त्यर्तिव्ययतीनाम् ।६६।

प०वि०-इट् १।१ अत्ति-अर्ति-व्ययतीनाम् ६।३ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-अत्तिश्च अर्तिश्च व्ययतिश्च ते-अत्त्यर्तिव्ययतयः, तेषाम्-अत्त्यर्तिव्ययतीनाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, थलि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अत्त्यर्तिव्ययतिभ्योऽङ्गेभ्यस्थल इट्।

अर्थः-अत्त्यर्तिव्ययतिभ्योऽङ्गेभ्य उत्तरस्य थल इडागमो भवति।

उदा०-**(अत्तिः)** त्वम् आदिथ। **(अर्तिः)** त्वम् आरिथ। **(व्ययतिः)** त्वं संविव्ययिथ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अत्त्यर्तिव्ययतिभ्यः) अत्ति, अर्ति, व्ययति इन (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (थलः) थल् प्रत्यय को (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०-**(अत्ति) त्वम् आदिथ।** तूने भक्षण किया। **(अर्ति) त्वम् आरिथ।** तूने गति=ज्ञान, गमन, प्राप्ति की। **(व्ययति) त्वं संविव्ययिथ।** तूने वस्त्र धारण किया।*

*सिद्धि-(१) **आदिथ।** यहां **'अद भक्षणे'** (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'थल्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम होता है।*

*(२) **आरिथ।** यहां **'ऋ गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'थल्' प्रत्यय है। इस सूत्र इसे इडागम होता है। **'ऋतो भारद्वाजस्य'** (७।२।६३) से इडागम का नित्य प्रतिषेध प्राप्त था, अतः यह इडागम विधान किया गया है।*

*(३) **संविव्ययिथ।** यहां सम्-उपसर्गपूर्वक **'व्येञ् संवरणे'** (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'थल्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम होता है। **'ऋतो भारद्वाजस्य'** (७।२।६३) के नियम से अत्ति और व्ययति धातुओं को विकल्प से इडागम प्राप्त था, अतः यह नित्य इडागम विधान किया गया है। 'व्येञ्' धातु को प्राप्त आत्त्व का **'न व्यो लिटि'** (६।१।४६) से प्रतिषेध होता है।*

इडागमः—

(३३) वस्वेकाजाद्घासाम्।६७।

प०वि०-वसु ६।१ (लुप्तषष्ठीकं पदम्) एकाच्-आत्-घासाम् ६।३ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-एकोऽज् यस्मिन् स एकाच्। एकाच् च आच्च घस् च ते-एकाजाद्घसः, तेषाम्-एकाजाद्घसाम् (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, इडिति चानुवर्तते।

अन्वयः-एकाजाद्घसिभ्योऽङ्गेभ्यो वसोरिट्।

अर्थः-एकाचः (कृतद्विर्वचनात्) आकारान्ताद् घसेश्चाङ्गाद् उत्तरस्य वसोरिडागमो भवति।

उदा०-**(एकाच्)** आदिवान्, आशिवान्, पेचिवान्, शेकिवान्। **(आत्)** ययिवान्, तस्थिवान्। (घस्) जक्षिवान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(एकाजादघसिभ्यः) कृतद्विर्वचन, एक अच्वाले, आकारान्त और घस् इन (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (वसोः) वसु प्रत्यय को (इट्) इडागम होता है।*

उदा०-(एकाच्) ***आदिवान्।*** *भक्षण करनेवाला।* ***आशिवान्।*** *भोजन करनेवाला।* ***पेचिवान्।*** *पकानेवाला।* ***शेकिवान्।*** *समर्थ होनेवाला।* ***(आत्) ययिवान्।*** *पहुंचानेवाला।* ***तस्थिवान्।*** *ठहरनेवाला।* ***(घस्) जक्षिवान्।*** *भक्षण करनेवाला।*

सिद्धि-(१) आदिवान्। *अद्+लिट्। अद्+क्वसु। अद्+वसु। अद्-अद्+वस्। अ-अद+वस्। आ-अद्+वस्। आद्+इट्+वस्। आदिव। आदिवस्+सु। आदिव नुम् स्+स्। आदिवन्स्+स्। आदिवान्स्+स्। आदिवान्स्+०। आदिवान्०। आदिवान्।*

यहां ***'अद भक्षणे'*** *(अदा०प०) धातु से* ***'छन्दसि लिट्'*** *(३।२।१०५) से लिट् प्रत्यय,* ***'क्वसुश्च'*** *(३।२।१०७) से लकार के स्थान में 'क्वसु' आदेश है।* ***'लिटि धातोरनभ्यासस्य'*** *(६।१।८) से 'अद्' को द्वित्व,* ***'हलादिः शेषः'*** *(६।४।६०) से अभ्यास-कार्य,* ***'अत आदेः'*** *(६।४।७०) से अभ्यास को दीर्घ,* ***'अकः सवर्णे दीर्घः'*** *(६।१।९९) से सवर्ण दीर्घ होता है। इस स्थिति में इस सूत्र से 'वसु' को इडागम होता है।* ***'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः'*** *(७।१।७०) से 'नुम्' आगम,* ***'सान्तमहतः संयोगस्य'*** *(६।४।१०) से दीर्घ,* ***'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'*** *(६।१।६७) से 'सु' का लोप और* ***'संयोगान्तस्य लोपः'*** *(८।२।२३) से संयोगान्त सकार का लोप होता है।*

ऐसे ही ***'अश भोजने'*** *(क्र्या०प०) धातु से-****आशिवान्।*** ***'डुपचष् पाके'*** *(भ्वा०प०) धातु से-****पेचिवान्।*** *'अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि' (६।४।१२०) से एत्त्व और अभ्यास का लोप होता है।* ***'शक्लृ शक्तौ'*** *(स्वा०प०) धातु से-****शेकिवान्।*** ***'या प्रापणे'*** *(अदा०प०) धातु से-****ययिवान्।*** ***'ष्ठा गतिनिवृत्तौ'*** *(भ्वा०प०) धातु से-****तस्थिवान्।*** ***'शर्पूर्वाः खयः'*** *७।४।६१) से अभ्यास का खय् (थ्) वर्ण शेष और* ***'आतो लोप इटि च'*** *(६।४।६४) से अङ्ग के आकार का लोप होता है।*

(२) जक्षिवान्। *अद्+लिट्। अद्+क्वसु। घस्+वसु। घस्+इट्+वस्। घस्-घस्+इ+वस्। घ-घ्स्+इ+वस्। झ-घस्+इ+वस्। ज-क्ष्+इ+वस्। ज-क्षिवस्+सु। जक्षिवान्।*

यहां ***'अद भक्षणे'*** *(अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लिट्' प्रत्यय और इसके स्थान में 'क्वसु' आदेश है।* ***'लिट्यन्यतरस्याम्'*** *(२।४।४०) से 'अद्' के स्थान में 'घस्लृ' आदेश है। इस सूत्र से 'घस्' से परे 'वसु' को इडागम होता है।* ***'गमहन०'*** *(६।४।९८) से 'घस्' का उपधालोप,* ***'कुहोश्चुः'*** *(७।४।६२) से घकार को चवर्ग झकार और* ***'अभ्यासे चर्च'*** *(८।४।५४) से झकार को जश् जकार होता है और* ***'खरि च'*** *(८।४।५५) से परवर्ती घकार को चर् ककार और* ***'शासिवसिघसीनां च'*** *(८।३।६०) से षत्व होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

इडागम-विकल्पः--

(३४) विभाषा गमहनविदविशाम्।६८।

प०वि०-विभाषा १।१ गम-हन-विद-विशाम् ६।३ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-गमश्च हनश्च विदश्च विश् च ते गमहनविदविशः, तेषाम्-गमहनविदविशाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, इट्, वसुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-गमहनविदविशिभ्योऽङ्गेभ्यो वसोर्विभाषा इट्।

अर्थः-गमहनविदविशिभ्योऽङ्गेभ्य उत्तरस्य वसोर्विकल्पेन इडागमो भवति।

उदा०-(**गम**) जग्मिवान्, जगन्वान्। (**हन**) जघ्निवान्, जघन्वान्। (**विद**) विविदिवान्, विविद्वान्। (**विश**) विविशिवान्, विविश्वान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(गमहनविदविशिभ्यः) गम, हन, विद, विश इन (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (वसोः) वसु प्रत्यय को (विभाषा) विकल्प से (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०-(गम) **जग्मिवान्, जगन्वान्।** जानेवाला। (हन) **जघ्निवान्, जघन्वान्।** हिंसा/गति करनेवाला। (विद) **विविदिवान्, विविद्वान्।** प्राप्त (लाभ) करनेवाला। (विश) **विविशिवान्, विविश्वान्।** प्रवेश करनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **जग्मिवान्।** यहां **'गम्लृ गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लिट्' और इसके स्थान में 'क्वसु' आदेश है। इस सूत्र से इसे इडागम होता है। **'गमहन०'** (६।४।९८) से 'गम्' का उपधालोप होता है। विकल्प-पक्ष में इडागम नहीं है-**जगन्वान्।** 'मो नो धातोः' (८।२।६४) से 'गम्' धातु के मकार को नकार आदेश होता है।*

*ऐसे ही **'हन हिंसागत्योः'** (अदा०प०) धातु से-**जघ्निवान्, जघ्नवान्। 'अभ्यासाच्च'** (७।३।५५) से हकार को कवर्ग घकार होता है। **'विद्लृ लाभे'** (तु०उ०) धातु से-**विविदिवान्, विविद्वान्। 'विश प्रवेशने'** (तु०प०) इस धातु के साहचर्य से **'विद्लृ लाभे'** (तु०उ०) इस लाभार्थक तौदादिक धातु का ग्रहण किया जाता है; **'विद ज्ञाने'** (अदा०प०) धातु का नहीं। इसे तो नित्य इडागम होता है-**विविदिवान्।** जाननेवाला। **'विश प्रवेशने'** (तु०प०) धातु से-**विविशिवान्, विविश्वान्।***

निपातनम्--

(३५) सनिंससनिवांसम्।६९।

प०वि०-सनिम् २।१ ससनिवांसम् २।१।

अनु०-अङ्गस्य, इट्, वसुरिति चानुवर्तते।

अर्थः-वेदे सनिंससनिवांसम् इति पदं निपात्यते, सनिम्-पूर्वात् सनोतेः सनतेर्वाऽङ्गाद् उत्तरस्य वसोरिडागम एत्त्वमभ्यासलोपाभावश्च निपात्यते इत्यर्थः।

उदा०-आजिं त्वाग्ने०सनिंससनिवांसम् (मा०श्रौ० १।३।४।२)।

आर्यभाषाः अर्थ-(सनिंससनिवांसम्) सनिंससनिवांसम् यह पद निपातित है, अर्थात् सनिम्-पूर्वक सनोति अथवा सनति (अङ्गात्) अङ्ग से परे (वसोः) वसु प्रत्यय को (इट्) इडागम और एत्त्व तथा अभ्यासलोप का अभाव निपातित है।

उदा०-आजिं त्वाग्ने०सनिंससनिवांसम् (मा०श्रौ० १।३।४।२)। सनिः=अर्चा, पूजन, नैवेद्य, भेंट (आ०कौ०)। ससनिवांसम्। दान करनेवाले को/सेवा करनेवाले को।

सिद्धि-ससनिवांसम्। यहां 'षणु दाने' अथवा 'षण सम्भक्तौ' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लिट्' और इसके स्थान में 'क्वसु' आदेश है। इस सूत्र से 'वसु' को इडागम और एत्त्व तथा अभ्यास-लोप का अभाव निपातित है। यह द्वितीया-एकवचनान्त पद है।

विशेषः 'सनिंससनिवांसम्' इन पदों की नियतानुपूर्वी को देखकर यह माना जाता है कि यह निपातन वैदिक है, क्योंकि पदों की नियतानुपूर्वी वेद में ही होती है, भाषा में नहीं। भाषा में 'सेनिवांसम्' प्रयोग होता है।

इडागमः–

(३६) ऋद्धनोः स्ये।७०।

प०वि०-ऋत्-हनोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) स्ये ७।१ (षष्ठ्यर्थे)।

स०-ऋच्च हन् च तौ ऋद्धनौ, तयोः-ऋद्धनोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, इडिति चानुवर्तते।

अन्वयः-ऋद्धनिभ्याम् अङ्गाभ्यां स्यस्य इट्।

अर्थः-ऋकारान्ताद् हन्तेश्चाऽङ्गाद् उत्तरस्य स्यप्रत्ययस्य इडागमो भवति।

उदा०-(ऋकारान्तः) स करिष्यति, स हरिष्यति। (हन्) स हनिष्यति।

आर्यभाषाः अर्थ-(ऋद्धनिभ्याम्) ऋकारान्त और हन्ति इन (अङ्गाभ्याम्) अङ्गों से परे (स्यस्य) स्य-प्रत्यय को (इट्) इडागम होता है।

उदा०-(ऋकारान्त) **स करिष्यति।** वह करेगा। **स हरिष्यति।** वह हरण करेगा। (हन्) **स हनिष्यति।** वह हिंसा/गति करेगा।

सिद्धि-करिष्यति। यहां ऋकारान्त **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से **'लृट् शेषे च'** (३।३।१०) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम होता है। इस 'कृ' और 'हन्' धातु के अनुदात्त होने से **'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्'** (७।२।१०) से इट् का प्रतिषेध प्राप्त था, अतः इस सूत्र से इडागम का विधान किया गया है।

ऐसे ही **'हृञ् हरणे'** (भ्वा०उ०) धातु से-**हरिष्यति। 'हन हिंसागत्योः'** (अदा०प०) धातु से-**हनिष्यति।**

इडागमः-

(३७) अञ्चेः सिचि।७१।

प०वि०-अञ्चेः ५।१ सिचि ७।१ (षष्ठ्यर्थे)।

अनु०-अङ्गस्य, इडिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अञ्जेरङ्गात् सिच इट्।

अर्थः-अञ्जेरङ्गाद् उत्तरस्य सिच इडागमो भवति।

उदा०-स आञ्जीत्। तौ आञ्जिष्टाम्। ते आञ्जिषुः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अञ्जेः) अञ्जि इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (सिचः) सिच् प्रत्यय को (इट्) इडागम होता है।*

उदा०-**स आञ्जीत्।** वह प्रकाशित हुआ। **तौ आञ्जिष्टाम्।** वे दोनों प्रकाशित हुये। **ते आञ्जिषुः।** वे सब प्रकाशित हुये।

सिद्धि-आञ्जीत्। अञ्ज्+लुङ्। आट्+अञ्ज्+ल्। आ+अञ्ज्+च्लि+ल्। आ+अञ्ज्+सिच्+तिप्। आ+अञ्ज् स्+त्। आ+अञ्ज्+इट्+स्+ईट्+त्। आ+अञ्ज्+इ+०+ई+त्। आञ्जीत्।

यहां **'अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु'** (रुधा०प०) से 'लुङ्' प्रत्यय और 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश है। इस सूत्र से इसे इडागम होता है। **'अस्तिसिचोऽपृक्ते'** (७।३।९६) से ईट् आगम होकर **'इट ईटि'** (८।२।२) से 'सिच्' का लोप हो जाता है। ऐसे ही द्विवचन और बहुवचन में-**आञ्जिष्टाम्, आञ्जिषुः।**

'अञ्जू' धातु के ऊदित होने से **'स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा'** (७।२।४४) से विकल्प से इडागम प्राप्त था, इस सूत्र से 'सिच्' को नित्य इडागम होता है।

विशेषः 'अञ्जू' धातु का जाना, साफ करना, स्वच्छ करना, सराहना, विख्यात **करना, चमकना, प्रकाशित होना, तैल मर्दन करना, अभ्यञ्जन करना,** संवारना, सजाना **आदि अर्थों में प्रयोग होता है।**

इडागमः–

(३८) स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु।७२।

प०वि०–स्तु-सु-धूञ्भ्यः ५।३ परस्मैपदेषु ७।३।

स०–स्तुश्च सुश्च धूञ् च ते स्तुसुधूञः, तेभ्यः-स्तुसुधूञ्भ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, इट्, सिचि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–स्तुसुधूञ्भ्योऽङ्गेभ्यः सिचः परस्मैपदेषु इट्।

अर्थः–स्तुसुधूञ्भ्योऽङ्गेभ्य उत्तरस्य सिचः परस्मैपदेषु परत इडागमो भवति।

उदा०–(स्तु) अस्तावीत्। (सु) असावीत्। (धुञ्) अधावीत्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(स्तुसुधूञ्भ्यः) स्तु, सु, धूञ् इन (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (सिचः) सिच् प्रत्यय को (परस्मैपदेषु) परस्मैपद-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर **(इट्)** इडागम होता है।*

*उदा०–**(स्तु) अस्तावीत्।** उसने स्तुति की। **(सु) असावीत्।** उसने अभिषवण (रस निचोड़ना) किया। **(धूञ्) अधावीत्।** उसने कम्पन किया।*

***सिद्धि-अस्तावीत्।** यहां 'ष्टुञ् स्तुतौ' (अदा०उ०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से भूतकाल अर्थ में 'लुङ्' प्रत्यय और 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश होता है। इस सूत्र से इसे 'इट्' आगम होता है। शेष कार्य **'आज्जीत्'** (७।२।१०१) के समान है।*

*ऐसे ही-**'षुञ् अभिषवे'** (स्वा०उ०) धातु से-**असावीत्। 'धूञ् कम्पने'** (स्वा०उ०) धातु से-**अधावीत्।***

*'स्तु' और 'सु' धातु के उपदेश में अनुदात्त होने से 'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्' (७।२।१०) से इडागम का नित्य प्रतिषेध प्राप्त था और 'धूञ्' धातु के **'स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा'** (७।२।४४) इस सूत्र में पठित होने से विकल्प से इडागम प्राप्त था, अतः इस सूत्र से नित्य इडागम का विधान किया गया है।*

इडागमः सक् च–

(३९) यमरमनमातां सक् च।७३।

प०वि०–यम-रम-नम-आताम् ६।२ सक् १।१ च अव्ययपदम्।

स०–यमश्च रमश्च नमश्च आच्च ते यमरमनमातः, तेषाम्-यमरमनमाताम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, इट्, सिचि, परस्मैपदेषु इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यमरमनमाद्भ्योऽङ्गेभ्यः सिचः परस्मैपदेषु इट्, एतेषां सक् च।

अर्थः-यमरमनमिभ्याम् आकारान्तेभ्यश्चाङ्गेभ्य उत्तरस्य सिचः परस्मैपदेषु इडागमो भवति, एतेषां च सगागमो भवति।

उदा०-**(यम)** अयंसीत्, अयंसिष्टाम्, अयंसिषुः। **(रम)** व्यरंसीत्, व्यरंसिष्टाम्, व्यरंसिषुः। **(नम)** अनंसीत्, अनंसिष्टाम्, अनंसिषुः। **(आकारान्तः)** अयासीत्, अयासिष्टाम्, अयासिषुः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(यमरमनमाताम्) यम, रम, नम और आकारान्त (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (सिचः) सिच् प्रत्यय को (परस्मैपदेषु) परस्मैपद-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (इट्) इडागम होता है (च) और इन यम आदि धातुओं को (सक्) सक् आगम होता है।*

*उदा०-(यम) **अयंसीत्।** उसने उपरमण (प्रतिबन्ध) किया। **अयंसिष्टाम्। अयंसिषुः।** (रम) **व्यरंसीत्।** उसने विराम (अवसान) किया। **व्यंसिष्टाम्। व्यरंसिषुः।** (नम) **अनंसीत्।** उसने नमन किया। **अनंसिष्टाम्। अनंसिषुः।** (आकारान्त) **अयासीत्।** वह गया/पहुंचा। **अयासिष्टाम्। अयासिषुः।***

*सिद्धि-**अयंसीत्।** यहां 'यम उपरमे' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' प्रत्यय और 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश है। इस सूत्र से इसे इडागम होता है और 'यम्' धातु को सक् आगम भी होता है।*

*ऐसे ही वि-उपसर्गपूर्वक **'रमु क्रीडायाम्'** (भ्वा०आ०) धातु से-**व्यरंसीत्। 'व्याङ्परिभ्यो रमः'** (१।३।८३) से 'रम्' धातु से परस्मैपद होता है। **'णम प्रहृत्वे शब्दे च'** (भ्वा०प०) धातु से-**अनंसीत्। 'या प्रापणे'** (अदा०प०) धातु से-**अयासीत्।***

इडागमः—

(४०) स्मिपूङ्रञ्ज्वशां सनि।७४।

प०वि०-स्मि-पूङ्-ऋ-अञ्जू-अशाम् ६।३ (पञ्चम्यर्थे) सनि ७।१ (षष्ठ्यर्थे)।

स०-स्मिश्च पूङ् च ऋश्च अञ्जूश्च अश् च ते स्मिपूङ्रञ्ज्वशः, तेषाम्-स्मिपूङ्रञ्ज्वशाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, इडिति चानुवर्तते।

अन्वयः-स्मिपूङ्रञ्ज्वशिभ्योऽङ्गेभ्यः सन इट्।

अर्थः-स्मिपूङ्रञ्ज्वशिभ्योऽङ्गेभ्य उत्तरस्य सन इडागमो भवति।

उदा०-(**स्मिङ्**) स सिस्मयिषते। (**पूङ्**) स पिपविषते। (**ऋ**) अरिरिषति। (**अञ्जू**) अञ्जिजिषति। (**अश्**) अशिशिषते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(स्मिपूङ्रञ्ज्वशिभ्यः) स्मि, पूङ्, ऋ, अञ्जू, अश् इन (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (सनः) सन् प्रत्यय को (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०-(स्मिङ्) **स सिस्मयिषते।** वह मुस्कराना चाहता है। (पूङ्) **स पिपविषते।** वह पवित्र करना चाहता है। (ऋ) **अरिरिषति।** वह गति (ज्ञान-गमन-प्राप्ति) करना चाहता है। (अञ्जू) **अञ्जिजिषति।** वह प्रकाशित होना चाहता है। (अश्) **अशिशिषते।** वह व्याप्त होना चाहता है।*

*सिद्धि-**सिस्मयिषते।** यहां 'स्मिङ् ईषद्धसने' (भ्वा०आ०) धातु से 'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा' (३।१।७) से इच्छार्थ में 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम होता है।*

*ऐसे ही-पूङ् पवने' (भ्वा०आ०) धातु से-**पिपविषते।** 'ओः पुयण्ज्यपरे' (७।४।८०) से अभ्यास को इत्त्व होता है। 'ऋ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से-**अरिरिषति।** 'अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु' (रुधा०प०) धातु से-**अञ्जिजिषति।** 'अशूङ् व्याप्तौ' (स्वा०आ०) धातु से-**अशिशिषते।***

'स्मिङ्' धातु के उपदेश में अनुदात्त होने से 'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्' (७।२।१०) से इडागम का प्रतिषेध प्राप्त था, पूङ्, ऋ और अशूङ् धातुओं के उगन्त होने से 'सनि ग्रहगुहोश्च' (७।२।१२) से नित्य इडागम का प्रतिषेध प्राप्त था और 'अञ्जू' धातु के ऊदित् होने से 'स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा' (७।२।४४) से विकल्प से इडागम प्राप्त था, अतः इस सूत्र से नित्य इडागम का विधान किया गया है।

इडागमः-

(४१) किरश्च पञ्चभ्यः।७५।

प०वि०-किरः ५।१ च अव्ययपदम्, पञ्चभ्यः ५।३।

अनु०-अङ्गस्य, इट्, सनि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-किरादिभ्यः पञ्चभ्यश्चाङ्गेभ्यः सन इट्।

अर्थः-किरादिभ्यः पञ्चभ्यश्चाङ्गेभ्य उत्तरस्य सन इडागमो भवति।

उदा०-(**कॄ**) स चिकरिषति। (**गॄ**) स जिगरिषति। (**दृङ्**) स दिदरिषते। (**धृङ्**) **दिधरिषते।** (**प्रछ**) स पिप्रच्छिषति।

कॄ विक्षेपे। गॄ निगरणे। दृङ् आदरे। धृङ् अवस्थाने। प्रछ ज्ञीप्सायाम्। इति पञ्च किरादयो धातवस्तुदादिगणे पठ्यन्ते।

आर्यभाषाः अर्थ-(किरादिभ्यः) *कॄ आदि (पञ्चभ्यः) पांच (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (च) भी (सनः) सन् प्रत्यय को* ***(इट्)*** *इडागम होता है।*

उदा०- ***(कॄ) स चिकरिषति।*** *वह फैंकना चाहता है।* ***(गॄ) स जिगरिषति।*** *वह निगलना चाहता है।* ***(दृङ्) स दिदरिषते।*** *वह आदर करना चाहता है।* ***(धृङ्) दिधरिषते।*** *वह अवस्थित रहना चाहता है।* ***(प्रछ) स पिप्रच्छिषति।*** *वह पूछना चाहता है।*

सिद्धि-चिकरिषति। *यहां* ***'कॄ विक्षेपे'*** *(तु०प०) धातु से* ***'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'*** *(३।१।७) धातु से इच्छार्थ में 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इडागम होता है।*

ऐसे ही ***'गॄ निगरणे'*** *(तु०प०) आदि धातुओं से* ***'जिगरिषति'*** *आदि पद सिद्ध करें।*

कॄ, गॄ, प्रछ इन धातुओं के उपदेश में अनुदात्त होने से ***'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्'*** *(७।२।१०) से इडागम का नित्य प्रतिषेध प्राप्त था। दृङ् और धृङ् धातुओं के उगन्त होने से* ***'सनिग्रहगुहोश्च'*** *(७।२।१२) से इडागम का नित्य प्रतिषेध प्राप्त था, अतः इस सूत्र से इडागम का विधान किया है।*

इडागमः-

(४२) रुदादिभ्यः सार्वधातुके।७६।

प०वि०-रुदादिभ्यः ५।३ सार्वधातुके ७।१ (षष्ठ्यर्थे)।

स०-रुद आदिर्येषां ते रुदादयः, तेभ्यः-रुदादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, वलादेः इट्, पञ्चभ्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-रुदादिभ्यः पञ्चभ्योऽङ्गेभ्यो वलादेः सार्वधातुकस्य इट्।

अर्थः-रुदादिभ्योऽङ्गेभ्य उत्तरस्य वलादेः सार्वधातुकस्य इडागमो भवति।

उदा०-(रुद्) स रोदिति। **(स्वप्)** स स्वपिति। **(श्वस)** स श्वसिति। **(अन)** स प्राणिति। **(जक्ष)** स जक्षिति।

रुदिर् अश्रुविमोचने। ञिष्वप शये। श्वस प्राणने। अन च (प्राणने)। जक्ष भक्षहसनयोः। इति पञ्च रुदादयो धातवोऽदादिगणे पठ्यन्ते।

आर्यभाषाः अर्थ-*(रुदादिभ्यः) रुद-आदि (पञ्चभ्यः) पांच (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (वलादेः) वलादि (सार्वधातुकस्य) सार्वधातुक-संज्ञक प्रत्यय को (इट्) इडागम होता है।*

उदा०-(रुद्) स रोदिति। वह रोता है। (स्वप) स स्वपिति। वह सोता है। (श्वस) स श्वसिति। वह श्वास लेता है। (अन) स प्राणिति। वह प्राण लेता है। (जक्ष) स जक्षिति। वह खाता/हंसता है।

सिद्धि-(१) रोदिति। यहां 'रुदिर् अश्रुविमोचने' (अदा०प०) धातु से 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय और 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से लकार के स्थान में सार्वधातुक 'तिप्' आदेश है। इस सत्र से इसे इडागम होता है। ऐसे ही 'ञिष्वप शये' (अदा०प०) आदि धातुओं से स्वपिति आदि पद सिद्ध करें।

(२) प्राणिति। यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'अन च (प्राणने)' (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लट्' प्रत्यय है। 'अनितेरन्तः' (८।४।१९) से नकार को णत्व होता है।

इडागमः-

(४३) ईशः से।७७।

प०वि०-ईशः ५।१ से ६।१ (लुप्तषष्ठीकं पदम्)।

अनु०-अङ्गस्य, इट्, सार्वधातुके इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ईशोऽङ्गात् सार्वधातुकस्य सेरिट्।

अर्थः-ईशोऽङ्गात् उत्तरस्य सार्वधातुकस्य से-प्रत्ययस्य इडागमो भवति।

उदा०-त्वम् ईशिषे। त्वम् ईशिष्व।

आर्यभाषाः अर्थ-*(ईशः) ईश् इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (सार्वधातुकस्य) सार्वधातुक-संज्ञक (से) से-प्रत्यय को (इट्) इडागम होता है।*

उदा०-त्वम् ईशिषे। तू ईश्वर (स्वामी) होता है। त्वम् ईशिष्व। तू ईश्वर (स्वामी) हो।

सिद्धि-(१) ईशिषे। यहां 'ईश ऐश्वर्ये' (अदा०आ०) धातु से 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय और 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'थास्' आदेश और 'थासः से' (३।४।८०) से थास् के स्थान में 'से' आदेश है। इस सूत्र से इस सार्वधातुक 'से' प्रत्यय को इडागम होता है।

(२) ईशिष्व। यहां पूर्वोक्त 'ईश्' धातु से 'लोट् च' (३।३।१६२) से 'लोट्' प्रत्यय है। 'सवाभ्यां वामौ' (३।४।९१) से 'से' के एकार को वकार आदेश होता है। 'एकदेशविकृतमनन्यवद् भवति' इस परिभाषा के बल से 'स्व' को भी 'से' मानकर इस सूत्र से इसे इडागम होता है। 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से षत्व होता है।

इडागमः–

(४४) ईडजनोर्ध्वे च।७८।

प०वि०–ईड-जनोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) ध्वे ६।१ (लुप्तषष्ठीकं पदम्) च अव्ययपदम्।

स०–ईडश्च जन् च तौ–ईडजनौ, तयोः–ईडजनोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, इट्, सार्वधातुके, से इति चानुवर्तते।

अन्वयः–ईडजनिभ्याम् अङ्गाभ्यां सार्वधातुकस्य ध्वेः सेश्च इट्।

अर्थः–ईडजनिभ्यामङ्गाभ्याम् उत्तरस्य सार्वधातुकस्य ध्वेः सेश्च प्रत्ययस्य इडागमो भवति।

उदा०–**(ईड्) ध्वे–ईडिध्वे, ईडिध्वम्**। **से**–ईडिषे, ईडिष्व। **(जन) ध्वे**–जनिध्वे, जनिध्वम्। **से**–जनिषे, जनिष्व।

आर्यभाषाः *अर्थ–(ईडजनिभ्याम्) ईड और जनि इन (अङ्गाभ्याम्) अङ्गों से परे (ध्वे) ध्वे प्रत्यय (च) और (से) से प्रत्यय को (इट्) इडागम होता है।*

*उदा०–**(ईड) ध्वे–ईडिध्वे।** तुम सब स्तुति करते हो। **ईडिध्वम्।** तुम सब स्तुति करो। **से–ईडिषे।** तू स्तुति करता है। **ईडिष्व।** तू स्तुति कर। **(जन) ध्वे–जनिध्वे।** तुम सब प्रकट होते हो। **जनिध्वम्।** तुम सब प्रकट होओ। **से–जनिषे।** तू प्रकट होता है। **जनिष्व।** तू प्रकट हो।*

*सिद्धि–**ईडिध्वे।** यहां **'ईड स्तुतौ'** (अदा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'लट्' प्रत्यय और लकार के स्थान में 'ध्वम्' आदेश और इसे **'टित आत्मनेपदानां टेरे'** (३।४।७९) से एकार आदेश होता है। इस सूत्र से इस 'ध्वे' प्रत्यय को इडागम होता है। ऐसे ही लोट् लकार में–**ईडिध्वम्।** से-प्रत्यय में लट् लकार में–ईडिषे और लोट् लकार में–**ईडिष्व।** ऐसे ही **'जनी प्रादुर्भावे'** (दि०आ०) धातु से–**जनिध्वे, जनिध्वम्। जनिषे, जनिष्व।***

।। इति इडागमप्रकरणम् ।।

आदेशप्रकरणम्

सकारलोपः–

(१) लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य।७९।

प०वि०–लिङः ६।१ सलोपः १।१ अनन्त्यस्य ६।१।

स०–**सस्य** लोप इति सलोपः (षष्ठीतत्पुरुषः)। **अन्ते** भवोऽन्त्यः, **न अन्त्य** इति अनन्त्यः, तस्य अनन्त्यस्य।

अनु०-अङ्गस्य, सार्वधातुके इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अङ्गात् सार्वधातुकस्य लिङोऽनन्त्यस्य सलोपः।

अर्थः-अङ्गाद् उत्तरस्य सार्वधातुकस्य लिङोऽनन्त्यस्य सकारस्य लोपो भवति।

यासुट्-सुट्-सीयुटां यो सकारः स लिङोऽनन्त्यः सकारो वेदितव्यः।

उदा०-स कुर्यात्। तौ कुर्याताम्। ते कुर्युः। स कुर्वीत। तौ कुर्वीयाताम्। ते कुर्वीरन्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अङ्गात्) अङ्ग से परे (सार्वधातुकस्य) सार्वधातुक-संज्ञक (लिङः) लिङ्सम्बन्धी (अनन्त्यस्य) अनन्तवर्ती (सलोपः) सकार का लोप होता है।*

यासुट्, सुट् और सीयुट् आगम का जो सकार है उसे ही लिङ् लकार का अनन्त्य सकार जानें।

*उदा०-**स कुर्यात्।** वह करे। **तौ कुर्याताम्।** वे दोनों करें। **ते कुर्युः।** वे सब करें। **स कुर्वीत।** वह करे। **तौ कुर्वीयाताम्।** वे दोनों करें। **ते कुर्वीरन्।** वे सब करें।*

सिद्धि-*(१) **कुर्यात्।** कृ+लिङ्। कृ+यासुट्+ल्। कृ+यास्+तिप्। कृ+या०+उ+त्। कर्+०+या+त्। कुर्+या+त्। कुर्यात्।*

*यहां **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से **'विधिनिमन्त्रणा०'** (३।३।१६१) से 'लिङ्' प्रत्यय है। **'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च'** (३।४।१०३) से लिङ् को 'यासुट्' आगम होता है। इस सूत्र से इसके अनन्त्य सकार का लोप होता है। **'तनादिकृञ्भ्य उः'** (३।१।७९) से 'उ' विकरण-प्रत्यय है और इसका **'ये च'** (६।४।१०९) से लोप होता है। 'कृ' धातु को **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।४।८४) से गुण, इसे **'उरण् रपरः'** (१।१।५१) से रपरत्व और **'अत उत् सार्वधातुके'** (६।४।११०) से अकार को उकार आदेश होता है।*

*ऐसे ही द्विवचन में-**कुर्याताम्।** **'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः'** (३।४।१०१) से 'तस्' को 'ताम्' आदेश है। बहुवचन में-**कुर्युः।** **'झेर्जुस्'** (३।४।१०८) से 'झि' को 'जुस्' आदेश और **'उस्यपदान्तात्'** (६।१।९५) पररूप-एकादेश होता है-आ+उस्=उस्।*

*(२) **कुर्वीत।** कृ+लिङ्। कृ+सीयुट्+ल्। कृ+सीय्+त। कृ+सीय्+सुट्+त। कृ+सीय्+स्+त। कृ+उ+सीय्+स्+त। कर्+उ+ईय्+०+त। कुर्+उ+ई०+त। कुर्वीत।*

*यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से पूर्ववत् 'लिङ्' प्रत्यय, **'लिङः सीयुट्'** ३।४।१०२) से 'सीयुट्' आगम और **'सुट् तिथोः'** (३।४।१०७) से 'त' को 'सुट्' आगम होता है। इस सूत्र से 'सीयुट्' और 'सुट्' के सकार का लोप होता है। **'तनादिकृञ्भ्य उः'** (३।१।७९)*

*से 'उ' विकरण-प्रत्यय है। इसे **'इको यणचि'** (६।१।७६) से यणादेश (व्) और **'लोपो व्योर्वलि'** (६।१।६४) से यकार का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही द्विवचन में-**कुर्वीयाताम्।** बहुवचन में-**कुर्वीरन्।** **'झस्य रन्'** (३।४।१०५) से 'झ' को 'रन्' आदेश होता है।*

'लिङाशिषि' (३।४।११६) से आशीर्लिङ् की आर्धधातुक संज्ञा है, किन्तु 'विधिलिङ्' सार्वधातुक-संज्ञक है।

इय-आदेशः--

(२) अतो येयः।८०।

प०वि०-अतः ५।१ या ६।१ (लुप्तषष्ठीकं पदम्) इयः १।१।

अनु०-अङ्गस्य, सार्वधातुके इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अतोऽङ्गात् सार्वधातुकस्य या इयः।

अर्थः-अकारान्ताद् अङ्गाद् उत्तरस्य सार्वधातुकस्य या इत्येतस्य स्थाने इय आदेशो भवति।

उदा०-स पचेत्। तौ पचेताम्। ते पचेयुः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अतः) अकारान्त (अङ्गात्) अङ्ग से परे (सार्वधातुकस्य) सार्वधातुक-संज्ञक (या) 'या' इस प्रत्यय के स्थान में (इयः) इय आदेश होता है।*

*उदा०-**स पचेत्।** वह पकाये। **तौ पचेताम्।** वे दोनों पकायें। **ते पचेयुः।** वे सब पकायें।*

*सिद्धि-(१) **पचेत्।** पच्+लिङ्। पच्+यासुट्+ल्। पच्+शप्+यास्+तिप्। पच्+अ+या०+त्। पच्+अ+इय्+त। पच्+अ+इ०+त्। पचेत्।*

*यहां **'डुपचष् पाके'** (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'लिङ्' प्रत्यय और इसे 'यासुट्' आगम है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय है। **'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य'** (७।२।७९) से 'यास्' के सकार का लोप होता है। इस सूत्र से शेष 'या' को 'इय्' आदेश होता है। **'लोपो व्योर्वलि'** (६।१।६५) से इसके यकार का लोप होता है। ऐसे ही द्विवचन में-**पचेताम्।** बहुवचन में-**पचेयुः।***

इय-आदेशः--

(३) आतो ङितः।८१।

प०वि०-आतः ६।१ ङितः ६।१।

स०-ङ् इद् यस्य स ङित्, तस्य-ङितः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, सार्वधातुके, अतः, इय इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अतोऽङ्गात् सार्वधातुकस्य ङित आत इयः।

अर्थः-अकारान्तादङ्गाद् उत्तरस्य सार्वधातुकस्य ङिदवयवस्याऽऽकारस्य स्थाने इय आदेशो भवति।

उदा०-तौ पचेते। युवां पचेथे। तौ पचेताम्। युवां पचेथाम्। तौ यजेते। युवां यजेथे। तौ यजेताम्। युवां यजेथाम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अतः) अकारान्त (अङ्गात्) अङ्ग से परे (सार्वधातुकस्य) सार्वधातुक-संज्ञक (ङितः) ङित्-प्रत्यय के अवयवभूत (आतः) आकार के स्थान में (इयः) इय आदेश होता है।*

*उदा०-**तौ पचेते।** वे दोनों पकाते हैं। **युवां पचेथे।** तुम दोनों पकाते हो। **तौ पचेताम्।** वे दोनों पकायें। **युवां पचेथाम्।** तुम दोनों पकाओ। **तौ यजेते।** वे दोनों यज्ञ करते हैं। **युवां यजेथे।** तुम दोनों यज्ञ करते हो। **तौ यजेताम्।** वे दोनों यज्ञ करें। **युवां यजेथाम्।** तुम दोनों यज्ञ करो।*

*सिद्धि-**पचेते।** पच्+लट्। पच्+ल्। पच्+शप्+आताम्। पच्+अ+आताम्। पच्+अ+इय् ताम्। पच्+अ+इ०ते। पचेते।*

*यहां **'डुपचष् पाके'** (भ्वा०उ०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय और लकार के स्थान में **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से 'आताम्' आदेश है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से सार्वधातुक तथा ङित् 'आताम्' प्रत्यय के 'आ' को 'इय' आदेश होता है। **'सार्वधातुकमपित्'** (१।२।४) से आताम् प्रत्यय ङिद्वत् है। **'टित आत्मनेपदानां टेरे'** (३।४।७९) से आताम् के टि-भाग (आम्) को 'ए' आदेश होता है। ऐसे ही आथाम् प्रत्यय में-**पचेथे।***

***पचेताम्, पचेथाम्** ये लोट् लकार के प्रयोग हैं। **'लोटो लङ्वत्'** (३।४।८५) से लोट् को लङ्वद्भाव होने से पूर्ववत् टि-भाग (आम्) को 'ए' आदेश नहीं होता है।*

***'यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु'** (भ्वा०उ०) धातु से-**यजेते** आदि प्रयोग सिद्ध करें।*

मुक्-आगमः-

(४) आने मुक्।८२।

प०वि०-आने ७।१ मुक् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, अत इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अतोऽङ्गस्य आने मुक्।

अर्थः-अकारान्तस्याङ्गस्य आने परतो मुगागमो भवति।

उदा०-पचमानः। यजमानः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अतः) अकारान्त (अङ्गस्य) अङ्ग को (आने) आन-प्रत्यय परे होने पर (मुक्) मुक् आगम होता है।*

*उदा०-**पचमानः**। पकाता हुआ। **यजमानः**। यज्ञ करता हुआ।*

*सिद्धि-**पचमानः**। पच्+लट्। पच्+ल्। पच्+शप्+शानच्। पच्+अ+आन। पच्+अ+मुक्+आन। पच्+अ+म्+आन। पचमान+सु। पचमानः।*

*यहां **'डुपचष् पाके'** (भ्वा०उ०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। **'लक्षणहेत्वोः क्रियायाः'** (३।२।१२४) से 'लट्' के स्थान में 'शानच्' आदेश और **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से अकारान्त अङ्ग (पच) को मुक् आगम होता है। ऐसे ही **'यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु'** (भ्वा०उ०) धातु से **'पूङ्यजोः शानन्'** (३।२।१२८) से 'शानन्' प्रत्यय करने पर-**यजमानः**।*

ईद्-आदेशः-

(५) ईदासः।८३।

प०वि०-ईत् १।१ आसः ५।१।

अनु०-अङ्गस्य, आने इति चानुवर्तते।

अन्वयः-आसोऽङ्गाद् आनस्य ईत्।

अर्थः-आसोऽङ्गाद् उत्तरस्याऽऽनप्रत्ययस्य ईकारादेशो भवति।

उदा०-आसीनो यजते देवदत्तः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(आसः) आस् इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (आनस्य) आन-प्रत्यय को (ईत्) ईकार आदेश होता है।*

*उदा०-**आसीनो यजते देवदत्तः**। देवदत्त बैठा हुआ यज्ञ कर रहा है।*

*सिद्धि-**आसीनः**। आस्+लट्। आस्+शप्+शानच्। आस्+०+आन। आस्+ईन। आसीन+सु। आसीनः।*

*यहां **'आस उपवेशने'** (अदा०आ०) धातु से **'लक्षणहेत्वोः क्रियायाः'** (३।२।१२४) से लट् के स्थान में 'शानच्' प्रत्यय है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और इसका **'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।७२) से लुक् होता है। इस सूत्र से 'आन' प्रत्यय को ईकार आदेश होता है। **'आदेः परस्य'** (१।१।५४) के नियम से यह ईकारादेश 'आन' आदि-अल् (आ) के स्थान में किया जाता है।*

आकार-आदेशः–

(६) अष्टन आ विभक्तौ।८४।

प०वि०–अष्टनः ६।१ आः १।१ विभक्तौ ७।१।

अनु०–अङ्गस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अष्टनोऽङ्गस्य विभक्तौ आः।

अर्थः–अष्टनोऽङ्गस्य विभक्तौ परत आकारादेशो भवति।

उदा०–अष्टाभिः। अष्टाभ्यः। अष्टानाम्। अष्टासु।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अष्टनः) अष्टन् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर (आः) आकार आदेश होता है।*

*उदा०–**अष्टाभिः**। आठों के द्वारा। **अष्टाभ्यः**। आठों के लिये/से। **अष्टानाम्**। आठों का। **अष्टासु**। आठों में।*

***सिद्धि-अष्टाभिः**। यहां अष्टन् शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से तृतीया विभक्ति का बहुवचन 'भिस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस विभक्ति के परे होने पर 'अष्टन्' शब्द को आकार आदेश होता है। यह '**अलोऽन्त्यस्य**' (१।१।५२) के नियम से अन्तिम अल् (न्) के स्थान में किया जाता है। ऐसे ही–**अष्टाभ्यः** आदि।*

आकार-आदेशः–

(७) रायो हलि।८५।

प०वि०–रायः ६।१ हलि ७।१।

अनु०–अङ्गस्य, आः, विभक्ताविति चानुवर्तते।

अन्वयः–रायोऽङ्गस्य हलि विभक्तौ आः।

अर्थः–रायोऽङ्गस्य हलादौ विभक्तौ परत आकारादेशो भवति।

उदा०–राभ्याम्। राभिः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(रायः) रै इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (हलि) हलादि (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर (आः) आकार आदेश होता है।*

*उदा०–**राभ्याम्**। दो धनों के द्वारा। **राभिः**। सब धनों के द्वारा।*

***सिद्धि-राभ्याम्**। यहां 'रै' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से तृतीया विभक्ति का द्विवचन 'भ्याम्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस हलादि विभक्ति के परे होने पर 'रै' शब्द के अन्त्य अल् (ऐ) को आकार आदेश होता है। ऐसे ही–**राभिः**।*

आकार-आदेशः--

(८) युष्मदस्मदोरनादेशे।८६।

प०वि०-युष्मद्-अस्मदोः ६।२ अनादेशे ७।१।

स०-युष्मच्च अस्मच्च ते युष्मदस्मदी, तयोः-युष्मदस्मदोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)। न आदेश इति अनादेशः, तस्मिन्-अनादेशे (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, आः, विभक्ताविति चानुवर्तते।

अन्वयः-युष्मदस्मदोरङ्गयोरनादेशे विभक्तौ आः।

अर्थः-युष्मदस्मदोरङ्गयोरनादेशे विभक्तौ परत आकारादेशो भवति।

उदा०-**(युष्मद्)** युष्माभिः। युष्मासु। **(अस्मद्)** अस्माभिः। अस्मासु।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(युष्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् इन (अङ्गयोः) अङ्गों के स्थान में (अनादेशे) आदेश-रहित (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर (आः) आकार आदेश होता है।*

*उदा०-(युष्मद्) **युष्माभिः**। तुम सब के द्वारा। **युष्मासु**। तुम सब में/पर। (अस्मद्) **अस्माभिः**। हम सब के द्वारा। **अस्मासु**। हम सब में/पर।*

*सिद्धि-**युष्माभिः**। यहां युष्मद् शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से तृतीया विभक्ति का बहुवचन 'भिस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस आदेशरहित 'भिस्' विभक्ति के परे होने पर युष्मद् के अन्त्य अल् (द्) को आकार आदेश होता है। ऐसे ही-**युष्मासु**। अस्मद् शब्द से-**अस्माभिः, अस्मासु**।*

आकार-आदेशः--

(९) द्वितीयायां च।८७।

प०वि०-द्वितीयायाम् ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, **आः, विभक्तौ,** युस्मदस्मदोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-युष्मदस्मदोरङ्गयोर्द्वितीयायां विभक्तौ च आः।

अर्थः-युष्मदस्मदोरङ्गयोः स्थाने द्वितीयायां विभक्तौ च परत आकारादेशो भवति।

उदा०-**(युष्मद्)** त्वाम्, युवाम्, युष्मान्। **(अस्मद्)** माम्, आवाम्, अस्मान्।

आर्यभाषाः अर्थ-(युष्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् इन (अङ्गयोः) अङ्गों के स्थान में (द्वितीयायाम्) द्वितीया (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर (च) भी (आः) आकार आदेश होता है।

*उदा०-(युष्मद्) **त्वाम्।** तुझ को। **युवाम्।** तुम दोनों को। **युष्मान्।** तुम सब को। **माम्।** मुझ को। **आवाम्।** हम दोनों को। **अस्मान्।** हम सब को।*

*सिद्धि-(१) **त्वाम्।** युष्मद्+अम्। युष्म आ+अम्। त्व अ आ+अम्। त्व आ+अम्। त्वा+अम्। त्वाम्।*

*यहां 'युष्मद्' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से द्वितीया विभक्ति का एकवचन 'अम्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस द्वितीया विभक्ति के परे होने पर 'युष्मद्' के अन्त्य अल् (द्) को आकार आदेश होता है। '**त्वमावेकवचने**' (७।२।९७) से 'युष्मद्' के मपर्यन्त के स्थान में 'त्व' आदेश होता है। '**अतो गुणे**' (६।१।९६) से पूर्वरूप एकादेश (अ+अ=अ) और '**अकः सवर्णे दीर्घः**' (६।१।९९) से दीर्घरूप एकादेश (अ+आ=आ) होता है। '**ङेप्रथमयोरम्**' (७।१।२८) से 'अम्' के स्थान में 'अम्' आदेश और '**अमि पूर्वः**' (६।१।१०५) से पूर्वसवर्ण एकादेश होता है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**माम्।***

*(२) **युवाम्।** यहां 'युष्मद्' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से द्वितीया विभक्ति का द्विवचन 'औ' प्रत्यय है। '**युवावौ द्विवचने**' (७।२।९२) से 'युष्मद्' शब्द के मपर्यन्त के स्थान में 'युव्' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**आवाम्।***

*(३) **युष्मान्।** युष्मद्+शस्। युष्मा+अस्। युष्मान्स्। युष्मान्०। युष्मान्।*

*यहां 'युष्मद्' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से द्वितीया विभक्ति का बहुवचन 'शस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस द्वितीया विभक्ति के परे होने पर आकार आदेश होता है। '**शसो न**' (७।१।२९) से 'शस्' के अकार को नकार आदेश होकर '**संयोगान्तस्य लोपः**' (८।२।२३) से 'शस्' के सकार का लोप होता है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**अस्मान्।***

आकार-आदेशः—

(१०) प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम्।८८।

प०वि०- प्रथमायाः ६।३ च अव्ययपदम्, द्विवचने ७।१ भाषायाम् ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, आः, युष्मदस्मदोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-भाषायां युष्मदस्मदोरङ्गयोः प्रथमायाश्च द्विवचने आः।

अर्थः-भाषायां विषये युष्मदस्मदोरङ्गयोः स्थाने प्रथमायाश्च द्विवचने परत आकारादेशो भवति।

उदा०-**(युष्मद्)** युवाम्। **(अस्मद्)** आवाम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(भाषायाम्) लौकिक भाषा में (युष्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् इन (अङ्गयोः) अङ्गों के स्थान में (प्रथमायाः) प्रथमा विभक्ति को (च) भी (द्विवचने) द्विवचन परे होने पर (आः) आकार आदेश होता है।*

*उदा०-(युष्मद्) **युवाम्।** तुम दोनों। (अस्मद्) **आवाम्।** हम दोनों।*

सिद्धि-युवाम्। *युष्मद्+औ। युष्मद्+अम्। युव अद्+अम्। युव अ+आ+अम्। युव आ+अम्। युवा+अम्। युवाम्।*

*यहां 'युष्मद्' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से प्रथमा विभक्ति का द्विवचन 'औ' प्रत्यय है। '**ङे प्रथमयोरम्**' (७।१।२८) से 'औ' के स्थान में 'अम्' आदेश होता है। इस सूत्र से इस अम् (औ) प्रत्यय के परे होने पर युष्मद् के अन्त्य अल् (द्) के स्थान में आकार आदेश होता है। '**युवावौ द्विवचने**' (७।२।९२) से युष्मद् के मपर्यन्त के स्थान में 'युव' आदेश, '**अतो गुणे**' (६।१।९७) से पररूप एकादेश और '**अकः सवर्णे दीर्घः**' (६।१।१०१) से दीर्घरूप एकादेश होता है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**आवाम्।***

यकार-आदेशः--

(११) योऽचि।८६।

प०वि०-यः १।१ अचि ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, विभक्तौ, युष्मदस्मदोः, अनादेशे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-युष्मदस्मदयोरङ्गयोरनादेशेऽचि विभक्तौ यः।

अर्थः-युष्मदस्मदयोरङ्गयोः स्थानेऽनादेशेऽजादौ विभक्तौ परतो यकारादेशो भवति।

उदा०-**(युष्मद्)** त्वया। त्वयि। युवयोः। **(अस्मद्)** मया। मयि। आवयोः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(युष्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् इन (अङ्गयोः) अङ्गों के स्थान में (अनादेशे) आदेश से रहित (अचि) अजादि (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर (यः) यकार आदेश होता है।*

*उदा०-(युष्मद्) **त्वया।** तुझ द्वारा। **त्वयि।** तुझ में। **युवयोः।** तुम दोनों में। **(अस्मद्) मया।** मुझ द्वारा। **मयि।** मुझ में। **आवयोः।** हम दोनों का/हम दोनों में।*

सिद्धि-त्वया। युष्मद्+टा। त्व अ य्+टा। त्व य्+आ। त्वया।

यहां युष्मद् शब्द से 'स्वौजस्०' (४।१।२) से तृतीया विभक्ति का एकवचन 'टा' प्रत्यय है। 'त्वमावेकवचने' (७।२।९७) से 'युष्मद् के मपर्यन्त के स्थान में 'त्व' आदेश होता है। इस सूत्र से आदेश रहित, अजादि 'टा' विभक्ति परे होने पर 'युष्मद्' के अन्त्य अल् (द्) के स्थान में यकार आदेश होता है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-मया।

लोपादेशः-

(१२) शेषे लोपः।६०।

प०वि०-शेषे ७।१ लोपः १।१।

अनु०-अङ्गस्य, विभक्तौ, युष्मदस्मदोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-युष्मदस्मदोरङ्गयोः शेषे विभक्तौ लोपः।

अर्थः-युष्मदस्मदोरङ्गयोः शेषे विभक्तौ परतोऽन्त्यस्यालो लोपो भवति।

उदा०-(युष्मद्) त्वम्। यूयम्। तुभ्यम्। युष्मभ्यम्। त्वत्। युष्मत्। तव। युष्माकम्। **(अस्मद्)** अहम्। वयम्। मह्यम्। अस्मभ्यम्। मत्। अस्मत्। मम। अस्माकम्।

कश्चात्र शेषः ? यत्राकारादेशो यकारादेशश्च न विहितः स शेषः। यथा चोक्तम्-

पञ्चम्याश्च चतुर्थ्याश्च षष्ठीप्रथमयोरपि।
यान्यद्विवचनान्यत्र तेषु लोपो विधीयते।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(युष्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् इन (अङ्गयोः) अङ्गों के अन्त्य अल् (द्) का (शेषे) शेष (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-(युष्मद्) **त्वम्**। तू। **यूयम्**। तुम सब। **तुभ्यम्**। तेरे लिये। **युष्मभ्यम्**। तुम सब के लिये। **त्वत्**। तुझ से। **युष्मत्**। तुम सब से। **तव**। तेरा। **युष्माकम्**। तुम सब का। (अस्मद्) **अहम्**। मैं। **वयम्**। हम सब। **मह्यम्**। मेरे लिये। **अस्मभ्यम्**। हम सब के लिये। **मत्**। मुझ से। **अस्मत्**। हम सब से। **मम**। मेरा। **अस्माकम्**। हम सब का।*

यहां शेष कौन है ? जिस विभक्ति के परे होने पर आकारादेश और यकारादेश का विधान नहीं किया गया है वह विभक्ति शेष है। उपरिलिखित कारिका में कहा गया है

कि पञ्चमी, चतुर्थी, षष्ठी और प्रथमा विभक्ति के द्विवचनों को छोड़कर अन्य विभक्तियां शेष हैं। वहां युष्मद् और अस्मद् के अन्त्य अल् (द्) का लोप होता है।

सिद्धि-(१) त्वम्। युष्मद्+सु। त्व अद्+अम्। त्व अ०+अम्। त्व+अम्। त्वम्। यहां 'युष्मद्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। **'ङेप्रथमयोरम्'** (७।१।२८) से 'सु' के स्थान में 'अम्' आदेश होता है। इस सूत्र से इस शेष विभक्ति सु (अम्) परे होने पर 'युष्मद्' के अन्त्य अल् (द्) का लोप होता है। **'त्वाहौ सौ'** (७।२।९४) से युष्मद् के म-पर्यन्त के स्थान में 'त्व' आदेश, **'अतो गुणे'** (६।१।९६) से पररूप एकादेश और **'अमि पूर्वः'** (६।१।१०५) से पूर्वसवर्ण एकादेश होता है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**अहम्।**

(२) **यूयम्।** यहां 'युष्मद्' शब्द से पूर्ववत् 'जस्' प्रत्यय है। **'यूयवयौ जसि'** (७।२।९३) से युष्मद् के म-पर्यन्त के स्थान में 'यूय' आदेश होता है। शेष सूत्र कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**वयम्।**

(३) **तुभ्यम्।** यहां 'युष्मद्' शब्द से पूर्ववत् 'ङे' प्रत्यय है। **'तुभ्यमह्यौ ङयि'** (७।२।९५) से युष्मद् के स्थान में 'तुभ्य' आदेश होता है। शेष सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**मह्यम्।**

(४) **युष्मभ्यम्।** यहां 'युष्मद्' शब्द से पूर्ववत् 'भ्यस्' प्रत्यय है। **'भ्यसोऽभ्यम्'** (७।१।३०) से 'भ्यस्' के स्थान में 'अभ्यम्' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**अस्मभ्यम्।**

(५) **त्वत्।** यहां 'युष्मद्' शब्द से पूर्ववत् 'ङसि' प्रत्यय है। **'एकवचनस्य च'** (७।१।३३) से पञ्चमी-एकवचन 'ङसि' के स्थान में 'अत्' आदेश होता है। **'त्वमावेकवचने'** (७।२।९७) से 'युष्मद्' के म-पर्यन्त के स्थान में 'त्व' आदेश है। शेष सूत्र कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**मत्।**

(६) **युष्मत्।** यहां 'युष्मद्' शब्द से पूर्ववत् 'भ्यस्' प्रत्यय है। **'पञ्चम्या अत्'** (७।१।३१) से पञ्चमी-विभक्ति के 'भ्यस्' के स्थान में 'अत्' आदेश होता है। शेष सूत्र कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**अस्मत्।**

(७) **तव।** यहां 'युष्मद्' शब्द से पूर्ववत् 'ङस्' प्रत्यय है। **'युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश्'** (७।१।२७) से 'ङस्' के स्थान में 'अश्' आदेश और **'तवममौ ङसि'** (७।२।९६) से युष्मद् के स्थान में 'तव' आदेश होता है। शेष सूत्र कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**मम।**

(८) **युष्माकम्।** यहां 'युष्मद्' शब्द से पूर्ववत् 'आम्' प्रत्यय है। **'आमि सर्वनाम्नः सुट्'** (७।१।५२) से इसे 'सुट्' आगम होकर 'साम्' रूप होता है। **'साम आकम्'** (७।१।३३) से 'साम्' के स्थान में 'आकम्' आदेश होता है। शेष सूत्र कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**अस्माकम्।**

अधिकारः–

(१३) मपर्यन्तस्य।६१।

वि०–म-पर्यन्तस्य ६।१।

स०–मकारः पर्यन्तो यस्य स मपर्यन्तः, तस्य-मपर्यन्तस्य (बहुव्रीहिः)।

अर्थः–मपर्यन्तस्य-इत्यधिकारोऽयम्। यदितोऽग्रे वक्ष्यति मपर्यन्तस्य इत्येवं तद् वेदितव्यम्। यथा वक्ष्यति-**'युवावौ द्विवचने'** (७।२।९२) इति। युवाम्। आवाम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(मपर्यन्तस्य) 'म-पर्यन्तस्य के स्थान में' यह अधिकार सूत्र है। पाणिनि मुनि इससे आगे जो कहेंगे वह 'म-पर्यन्त के स्थान में' जानें। जैसे कि पाणिनि मुनि कहेंगे-**'युवावौ द्विवचने'** (७।२।९२) अर्थात् युष्मद् और अस्मद् के म-पर्यन्त के स्थान में यथासंख्य युव और आव आदेश होते हैं। **युवाम्।** तुम दोनों। **आवाम्।** हम दोनों।*

*सिद्धि-**युवाम्** आदि पदों की सिद्धि आगे यथास्थान लिखी जायेगी।*

युव-आवौ–

(१४) युवावौ द्विवचने।६२।

प०वि०–युव-आवौ १।२ द्विवचने ७।१।

स०–युवश्च आवश्च तौ -युवावौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। द्वयोरर्थयोर्वचनम् इति द्विवचनम्, तस्मिन्-द्विवचने (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–अङ्गस्य, विभक्तौ, युष्मदस्मदोः, मपर्यन्तस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः–युष्मदस्मदोरङ्गयोर्मपर्यन्तस्य द्विवचने विभक्तौ युवावौ।

अर्थः–युष्मदस्मदोरङ्गयोर्मपर्यन्तस्य स्थाने द्विवचने विभक्तौ परतो यथासंख्यं युवावावादेशौ भवतः।

उदा०-**(युष्मद्)** युवाम्। युवाभ्याम्। युवयोः। **(अस्मद्)** आवाम्। आवाभ्याम्। आवयोः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(युष्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् इन (अङ्गयोः) अङ्गों के **(मपर्यन्तस्य)** मकारपर्यन्त के स्थान में (द्विवचने) द्विवचन विषयक (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर यथासंख्य (युवावौ) युव, आव आदेश होते है।*

*उदा०-(युष्मद्) **युवाम्।** तुम दोनों। **युवाभ्याम्।** तुम दोनों के द्वारा। **युवयोः।** तुम दोनों का। (अस्मद्) **आवाम्।** हम दोनों। **आवाभ्याम्।** हम दोनों के द्वारा। **आवयोः।** हम दोनों का।*

*सिद्धि-**युवाम्**। यहां 'युष्मद्' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से से 'औ' प्रत्यय है। '**ङेप्रथमयोरम्**' (७।१।२८) से 'औ' के स्थान में 'अम्' आदेश होता है। इस सूत्र से इस द्विवचन विषयक अम् (औ) विभक्ति परे होने पर 'युष्मद्' के म-पर्यन्त के स्थान में 'युव' आदेश होता है। '**प्रथमयाश्च द्विवचने भाषायाम्**' (७।२।८८) से 'युस्मद्' के अन्त्य अल् (द्) को अकार आदेश होता है। ऐसे ही-**युवाभ्याम्, युवयोः**। 'अस्मद्' शब्द से-**आवाम्, आवाभ्याम्, आवयोः**।*

यूय-वयौ–

(१५) यूयवयौ जसि।६३।

प०वि०-यूय-वयौ १।२ जसि ७।१।

स०-यूयश्च वयश्च तौ-यूयवयौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, विभक्तौ, युष्मदस्मदोः, मपर्यन्तस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-युष्मदस्मदोरङ्गयोर्मपर्यन्तस्य जसि विभक्तौ यूयवयौ।

अर्थः-युष्मदस्मदोरङ्गयोर्मपर्यन्तस्य स्थाने जसि विभक्तौ परतो यथासंख्यं यूयवयावादेशौ भवतः।

उदा०-**(युष्मद्)** यूयम्। **(अस्मद्)** वयम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(युष्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् इन (अङ्गयोः) अङ्गों के (मपर्यन्तस्य) मकारपर्यन्त के स्थान में (जसि) जस् (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर यथासंख्य (यूयवयौ) यूय, वय आदेश होते हैं।*

*उदा०-(युष्मद्) **यूयम्**। तुम सब। (अस्मद्) **वयम्**। हम सब।*

*सिद्धि-**यूयम्**। यहां 'युष्मद्' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'जस्' प्रत्यय है। '**ङेप्रथमयोरम्**' (७।१।२८) से 'जस्' के स्थान में अम् आदेश होता है। इस सूत्र से अम् (जस्) विभक्ति परे होने पर 'युष्मद्' के स्थान में 'यूय' आदेश होता है। '**शेषे लोपः**' (७।२।९०) से 'युष्मद्' अन्त्य दकार का लोप और '**अमि पूर्वः**' (६।१।१०५) से पूर्वसवर्ण एकादेश होता है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**वयम्**।*

त्व-अहौ–

(१६) त्वाहौ सौ।६४।

प०वि०-त्व-अहौ १।२ सौ ७।१।

स०-त्वश्च अहश्च तौ-त्वाहौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, विभक्तौ, युष्मदस्मदोः, मपर्यन्तस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-युष्मदस्मदोरङ्गयोर्मपर्यन्तस्य सौ विभक्तौ त्वाहौ।

अर्थः-युष्मदस्मदोरङ्गयोर्मपर्यन्तस्य स्थाने सौ विभक्तौ परतो यथासंख्यं त्वाहावादेशौ भवतः।

उदा०-**(युष्मद्)** त्वम्। **(अस्मद्)** अहम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(युष्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् इन (अङ्गयोः) अङ्गों के (मपर्यन्तस्य) मकारपर्यन्त के स्थान में (सौ) सु (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर यथासंख्य (त्वाहौ) त्व, अह आदेश होते हैं।*

*उदा०-**(युष्मद्) त्वम्।** तू। **(अस्मद्) अहम्।** मैं।*

सिद्धि-त्वम्। *यहां 'अस्मद्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। **'ङेप्रथमयोरम्'** (७।१।२८) से 'सु' के स्थान में 'अम्' आदेश होता है। इस सूत्र से यह अम् (सु) विभक्ति परे होने पर 'युष्मद्' के म-पर्यन्त के स्थान में **'त्व'** आदेश होता है। **'शेषे लोपः'** (७।२।९०) से दकार का लोप और **'अमि पूर्वः'** (६।१।१०५) से पूर्वसवर्ण एकादेश होता है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**अहम्।***

तुभ्य-मह्यौ—

(१७) तुभ्यमह्यौ ङयि।६५।

प०वि०-तुभ्य-मह्यौ १।२ ङयि ७।१।

स०-तुभ्यश्च मह्यश्च तौ-तुभ्यमह्यौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, विभक्तौ, युष्मदस्मदोः, मपर्यन्तस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-युष्मदस्मदोरङ्गयोर्मपर्यन्तस्य ङयि विभक्तौ तुभ्यमह्यौ।

अर्थः-युष्मदस्मदोरङ्गयोर्मपर्यन्तस्य स्थाने ङयि विभक्तौ परतो यथासंख्यं तुभ्यमह्यावादेशौ भवतः।

उदा०-**(युष्मद्)** तुभ्यम्। **(अस्मद्)** मह्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(युष्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् इन (अङ्गयोः) अङ्गों में (मपर्यन्त) मकार-पर्यन्त के स्थान में (ङयि) ङे (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर यथासंख्य (तुभ्यमह्यौ) तुभ्य, मह्य आदेश होते हैं।*

*उदा०-(युष्मद्) **तुभ्यम्।** तेरे लिये। (अस्मद्) **मह्यम्।** मेरे लिये।*

सिद्धि-तुभ्यम्। *यहां 'युष्मद्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'ङे' प्रत्यय है। **'ङेप्रथमयोरम्'** (७।१।२८) से 'ङे' के स्थान में 'अम्' आदेश होता है। इस सूत्र से इस*

*अम् (ङे) विभक्ति परे होने पर 'युष्मद्' के मपर्यन्त के स्थान में 'तुभ्य' आदेश होता है। **'शेषे लोपः'** (७।२।९०) से युष्मद् के अन्त्य दकार का लोप और **'अमि पूर्वः'** (६।१।१०५) से पूर्वसवर्ण एकादेश होता है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**मह्यम्।***

तव-ममौ–

(१८) तवममौ ङसि।६६।

प०वि०-तव-ममौ १।२ ङसि ७।१।

स०-तवश्च ममश्च तौ-तवममौ (इतरेयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, विभक्तौ, युष्मदस्मदोः, मपर्यन्तस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-युष्मदस्मदोरङ्गयोर्मपर्यन्तस्य ङसि विभक्तौ तवममौ।

अर्थः-युष्मदस्मदोरङ्गयोर्मपर्यन्तस्य स्थाने ङसि विभक्तौ परतो यथासंख्यं तवममावादेशौ भवतः।

उदा०-**(युष्मद्)** तव। **(अस्मद्)** मम।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(युष्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् इन (अङ्गयोः) अङ्गों के (मपर्यन्तस्य) मकार-पर्यन्त के स्थान में (ङसि) ङस् (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर **यथासंख्य** (तवममौ) तव, मम आदेश होते हैं।*

*उदा०-(युष्मद्) **तव।** तेरा। **(अस्मद्) मम।** मेरा।*

सिद्धि-तव।** यहां 'युष्मद्' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'ङस्' प्रत्यय है। **'युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश्'** (७।१।२७) से 'ङस्' के स्थान में 'अश्' आदेश होता है। **इस सूत्र से** इस अश् (ङस्) विभक्ति के परे होने पर 'युष्मद्' के म-पर्यन्त के स्थान में 'तव' **आदेश होता है।** 'शेषे लोपः' (७।२।९०) से 'युष्मद्' के दकार का लोप और **'अतो गुणे'** (६।१।९६) से पररूप एकादेश होता है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**मम।

त्व-मौ–

(१६) त्वमावेकवचने।६७।

प०वि०-त्व-मौ १।२ एकवचने ७।१।

स०-त्वश्च मश्च तौ-त्वमौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। एकस्यार्थस्य वचनमिति एकवचनम्, तस्मिन्-एकवचने (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, **विभक्तौ, युष्मदस्मदोः, मपर्यन्तस्य** इति चानुवर्तते।

अन्वयः-युष्मदस्मदोरङ्गयोर्मपर्यन्तस्य एकवचने विभक्तौ त्वमौ।

अर्थः-युष्मदस्मदोरङ्गयोर्मपर्यन्तस्य स्थाने एकवचने विभक्तौ परतो यथासंख्यं त्वमावादेशौ भवतः।

उदा०-(युष्मद्) त्वाम्। त्वया। त्वत्। त्वयि। **(अस्मद्)** माम्। मया। मत्। मयि।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(युष्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् इन (अङ्गयोः) अङ्गों के (मपर्यन्तस्य) मकार पर्यन्त के स्थान में (एकवचने) एकवचन विषयक (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर यथासंख्य (त्वमौ) त्व, म आदेश होते हैं।*

*उदा०-(युष्मद्) **त्वाम्।** तुझ को। **त्वया।** तेरे द्वारा। **त्वत्।** तुझ से। **त्वयि।** तुझ में। (अस्मद्) **माम्।** मुझ को। **मया।** मेरे द्वारा। **मत्।** मुझ से। **मयि।** मुझ में।*

*सिद्धि-(१) **त्वाम्।** यहां 'युष्मद्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'अम्' प्रत्यय है। **'ङेप्रथमयोरम्'** (७।१।२८) से 'अम्' के स्थान में 'अम्' आदेश होता है। इस सूत्र से इस 'अम्' एकवचन विभक्ति परे होने पर 'युष्मद्' के स्थान में 'त्व' आदेश होता है। **'द्वितीयायां च'** (७।२।८७) से 'युष्मद्' के अन्त्य दकार को आकार आदेश होता है। अस्मद् शब्द से-**माम्।***

*(२) **त्वया।** यहां 'युष्मद्' शब्द से पूर्ववत् 'टा' प्रत्यय है। **'योऽचि'** (७।२।८९) से 'युष्मद्' के दकार को यकार आदेश होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। 'अस्मद्' शब्द से-**मया।***

*(३) **त्वत्।** यहां 'युष्मद्' शब्द से पूर्ववत् 'ङसि' प्रत्यय है। **'एकवचनस्य च'** (७।१।३२) से इस पञ्चमी विभक्ति के एकवचन 'ङसि' के स्थान में 'अत्' आदेश होता है। शेष सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**मया।***

*(४) **त्वयि।** यहां 'युष्मद्' शब्द से पूर्ववत् 'ङि' प्रत्यय है। इस एकवचन 'ङि' विभक्ति के परे होने पर **'योऽचि'** (७।२।८९) से 'युष्मद्' के दकार को यकार आदेश होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**मयि।***

त्व-मौ-

(२०) प्रत्ययोत्तरपदयोश्च।६८।

प०वि०-प्रत्यय-उत्तरपदयोः ७।२ च अव्ययपदम्।

स०-प्रत्ययश्च उत्तरपदं च ते प्रत्ययोत्तरपदे, तयोः-प्रत्ययोत्तरपदयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, विभक्तौ, युष्मदस्मदोः, मपर्यन्तस्य, त्वमौ, एकवचने इति **चानुवर्तते।**

अन्वयः-एकवचने विभक्तौ युष्मदस्मदोरङ्गयोर्मपर्यन्तस्य प्रत्ययोत्तरपदयोश्च त्वमौ।

अर्थः-एकवचने विभक्तौ वर्तमानयोर्युष्मदस्मदोरङ्गयोर्मपर्यन्तस्य स्थाने प्रत्यये उत्तरपदे च परतो यथासंख्यं त्वमावादेशौ भवतः।

उदा०-(युष्मद्) प्रत्यये-तवायमिति त्वदीयः। अतिशयेन त्वमिति त्वत्तरः। त्वामिच्छतीति त्वद्यति। त्वमिवाऽऽचरतीति त्वद्यते। **उत्तरपदे**-तव पुत्र इति त्वत्पुत्रः। त्वं नाथोऽस्येति-त्वन्नाथः। **(अस्मद्) प्रत्यये**-ममायमिति मदीयः। अतिशयेन अहमिति मत्तरः। मामिच्छतीति मद्यति। अहमिवाऽऽचरतीति-मद्यते। **उत्तरपदे**-मम पुत्र इति मत्पुत्रः। अहं नाथोऽस्येति-मन्नाथः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(एकवचने) एकवचन **विषयक (विभक्तौ) विभक्ति में** विद्यमान (युष्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् इन (अङ्गयोः) **अङ्गों के (मपर्यन्तस्य) मकार-पर्यन्त** के स्थान में (प्रत्ययोत्तरपदयोः) प्रत्यय और उत्तरपद परे होने पर (च) भी **यथासंख्य** (त्वमौ) त्व, म आदेश होते हैं।*

*उदा०-(युष्मद्) प्रत्यय-**तवायमिति त्वदीयः।** यह तेरा है। **अतिशयेन त्वमिति त्वत्तरः।** दो में से अतिशायी तू। **त्वामिच्छतीति त्वद्यति।** वह तुझ को चाहता है। **त्वमिवाऽऽचरतीति त्वद्यते।** जो तेरे समान आचरण करता है। **उत्तरपद-तव पुत्र इति त्वत्पुत्रः।** तेरा पुत्र। त्वं **नाथो यस्य स-त्वन्नाथः।** वह कि जिसका तू नाथ (स्वामी) है। **(अस्मद्) प्रत्यय-ममायमिति मदीयः।** यह मेरा है। **अतिशयेन अहमिति मत्तरः।** दोनों में से अतिशायी मैं। **मामिच्छतीति मद्यति।** वह मुझ को चाहता है। **अहमिवाऽऽचरतीति-मद्यते।** मेरे समान आचरण करता है। **उत्तरपद-मम पुत्र इति मत्पुत्रः।** मेरा पुत्र। अहं **नाथोऽस्येति-मन्नाथः।** वह कि जिसका मैं नाथ (स्वामी) हूं।*

*सिद्धि-(१) **त्वदीयः।** युष्मद्+छ। युष्मद्+ईय। त्व अद्+ईय। त्वद्+ईय। त्वदीय+सु। त्वदीयः।*

*यहां 'युष्मद्' शब्द से **'तस्येदम्'** (४।३।१२०) से इदम्-अर्थ में **'वृद्धाच्छः'** (४।२।११४) से शैषिक 'छ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है। **'त्यदादीनि च'** (१।१।७४) से 'युष्मद्' शब्द की वृद्धि संज्ञा है। इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय परे होने पर 'युष्मद्' के मपर्यन्त के स्थान में 'त्व' आदेश है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**मदीयः।***

*(२) **त्वत्तरः।** यहां 'युष्मद्' शब्द से **'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ'** (५।३।५७) से 'तरप्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**मत्तरः।***

*(३) **त्वद्यति।** यहां 'युष्मद्' शब्द से 'सुप आत्मनः **क्यच्**' (३।१।८) से इच्छा-अर्थ में 'क्यच्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**मद्यति।***

*(४) **त्वद्यते।** यहां 'युष्मद्' शब्द से 'कर्तुः क्यङ् सलोपश्च' (३।१।११) से आचार-अर्थ में 'क्यङ्' प्रत्यय है। प्रत्यय के ङित् होने से 'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्' (१।३।१२) से आत्मनेपद होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**मद्यते।***

*(५) **त्वत्पुत्रः।** यहां 'युष्मद्' और 'पुत्र' शब्दों का 'षष्ठी' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से 'पुत्र' शब्द उत्तरपद होने पर 'युष्मद्' के म-पर्यन्त के स्थान में 'त्व' आदेश होता है। ऐसे ही 'अस्मद्' शब्द से-**मत्पुत्रः।***

*(६) **त्वन्नाथः।** यहां युष्मद् और नाथ शब्दों का 'अनेकमन्यपदार्थे' (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से 'नाथ' शब्द उत्तरपद होने पर 'युष्मद्' के म-पर्यन्त के स्थान में 'त्व' आदेश होता है।*

युष्मद् शब्द के समस्त रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	त्वम्	युवाम्	यूयम्।
द्वितीया	त्वाम्	युवाम्	युष्मान्।
तृतीया	त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः।
चतुर्थी	तुभ्यम्	युवाभ्याम्	युष्मभ्यम्।
पञ्चमी	त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्।
षष्ठी	तव	युवयोः	युष्माकम्।
सप्तमी	त्वयि	युवयोः	युष्मासु।

अस्मद् शब्द के समस्त रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अहम्	आवाम्	वयम्।
द्वितीया	माम्	आवाम्	अस्मान्।
तृतीया	मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः।
चतुर्थी	मह्यम्	आवाभ्याम्	अस्मभ्यम्।
पञ्चमी	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्।
षष्ठी	मम	आवयोः	अस्माकम्।
सप्तमी	मयि	आवयोः	अस्मासु।

तिसृ-चतसृ–

(२१) त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ।९९।

प०वि०–त्रि–चतुरोः ६ ।२ स्त्रियाम् ७ ।१ तिसृ–चतसृ १ ।१ ।

स०–त्रिश्च चतुर् च तौ त्रिचतुरौ, तयोः–त्रिचतुरोः (इतरेतरयोग-द्वन्द्वः) । तिसृश्च चतसृश्च एतयोः समाहारः–तिसृचतसृ (समाहारद्वन्द्वः) ।

अनु०–अङ्गस्य, विभक्ताविति चानुवर्तते ।

अन्वयः–स्त्रियां त्रिचतुरोरङ्गयोर्विभक्तौ तिसृचतसृ ।

अर्थः–स्त्रियां वर्तमानयोस्त्रिचतुरोरङ्गयोः स्थाने विभक्तौ परतो यथासंख्यं तिसृचतसृ–आदेशौ भवतः ।

उदा०–**(त्रिः)** तिस्रः कन्याः । तिसृभिः कन्याभिः । **(चतर्)** चतस्रः कन्याः, चतसृभिः कन्याभिः ।

आर्यभाषाः *अर्थ–(स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में विद्यमान (त्रिचतुरोः) त्रि, चतुर् इन (अङ्गयोः) अङ्गों के स्थान में (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर यथासंख्य (तिसृचतसृ) तिसृ, चतसृ आदेश होते हैं।*

*उदा०–(त्रि) **तिस्रः कन्याः ।** तीन कन्यायें। **तिसृभिः कन्याभिः ।** तीन कन्याओं के द्वारा। (चतुर्) **चतस्रः कन्याः ।** चार कन्यायें। **चतसृभिः कन्याभिः ।** चार कन्याओं के द्वारा।*

सिद्धि–तिस्रः । *त्रि+जस् । तिसृ+अस् । तिस्रस् । तिस्रः ।*

*यहां 'त्रि' शब्द से **'स्वौजस०'** (४ ।१ ।२) से 'जस्' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में इस सूत्र से 'त्रि' के स्थान में 'तिसृ' आदेश होता है। **'अचि र ऋतः'** (७ ।२ ।१००) से 'ऋ' के स्थान में 'र' आदेश है। भिस्-प्रत्यय में–**तिसृभिः ।** ऐसे ही चतुर् शब्द से–**चतस्रः, चतसृभिः ।***

र-आदेशः–

(२२) अचि र ऋतः।१००।

प०वि०–अचि ७ ।१ रः १ ।१ ऋतः ६ ।१ ।

अनु०–अङ्गस्य, विभक्तौ, तिसृचतसृ इति चानुवर्तते ।

अन्वयः–तिसृचतस्रोरङ्गयोर्ऋतोऽचि विभक्तौ रः ।

अर्थः-तिसृचतस्त्रोरङ्गयोर्ऋकारस्य स्थानेऽजादौ विभक्तौ परतो रेफादेशो भवति।

उदा०-**(तिसृ)** तिस्रः कन्यास्तिष्ठन्ति। तिस्रः कन्याः पश्य। प्रियतिस्र आनय। प्रियतिस्रः स्वम्। प्रियतिस्रि निधेहि। **(चतसृ)** चतस्रः कन्यास्तिष्ठन्ति। चतस्रः कन्याः पश्य। प्रियचतस्र आनय। प्रियचतस्रः स्वम्। प्रियचतस्रि निधेहि।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तिसृचतस्त्रोः) तिसृ, चतसृ इन (अङ्गयोः)* ***अङ्गों के*** *(ऋतः) ऋकार के स्थान में (अचि) अजादि (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर (रः)* ***रेफ*** *आदेश होता है।*

उदा०-***(तिसृ) तिस्रः कन्यास्तिष्ठन्ति।*** *तीन कन्यायें खड़ी है।* ***तिस्रः कन्याः पश्य।*** *तू तीन कन्याओं को देख।* ***प्रियतिस्र आनय।*** *तू तीन प्रियाओंवाले पुरुष* ***को इधर*** *ला।* ***प्रियतिस्रः स्वम्।*** *यह तीन प्रियाओंवाले पुरुष का धन है।* ***प्रियतिस्रि निधेहि।*** *तू इसे तीन प्रियाओंवाले पुरुष में रख।* ***(चतसृ) चतस्रः कन्यास्तिष्ठन्ति।*** *चार कन्यायें खड़ी हैं।* ***चतस्रः कन्याः पश्य।*** *तू चार कन्याओं को देख।* ***प्रियचतस्र आनय।*** *तू चार प्रियाओंवाले पुरुष को इधर ला।* ***प्रियचतस्रः स्वम्।*** *यह चार प्रियाओंवाले पुरुष* ***का धन*** *है।* ***प्रियचतस्रि निधेहि।*** *तू इसे चार प्रियाओंवाले पुरुष में रख।*

सिद्धि-(१) तिस्रः। *तिसृ+जस्। तिसृ+अस्। तिस्‌र्+अस्। तिस्रस्। तिस्रः।*

यहां 'तिसृ' शब्द से ***'स्वौजस०'*** *(४।१।२) से 'जस्' प्रत्यय है। इस* ***सूत्र से*** *अजादि विभक्ति (जस्) के परे होने पर 'तिसृ' के ऋकार को रेफ आदेश होता है।* ***'इको यणचि'*** *(६।१।७६) से भी यह रेफ आदेश सम्भव है किन्तु 'प्रथमयोः* ***पूर्वसवर्णः'*** *(६।१।१००) से प्राप्त पूर्वसवर्ण के प्रतिषेध के लिये यह रेफ आदेश का विधान* ***किया गया*** *है। शस् प्रत्यय में-* ***तिस्रः कन्याः पश्य।*** *ऐसे ही 'चतसृ' शब्द से-* ***चतस्रः। ऐसे*** *ही-* ***प्रियचतस्रः।*** *प्रिय और तिसृ तथा चतसृ शब्दों का* ***'अनेकमन्यपदार्थे'*** *(२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है।* ***'स्त्रियाः पुंवद्०'*** *(६।३।३४)* ***से पुंवद्भाव होता है।***

(२) प्रियतिस्रः स्वम्। *प्रियतिसृ+ङस्। प्रियतिसृ+अस्।* ***प्रियतिस्‌र्+अस्।*** *प्रियतिस्रस्। प्रियतिस्रः।*

यहां 'प्रियतिसृ' शब्द से पूर्ववत् 'ङस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस ***अजादि विभक्ति*** *(ङस्) के परे होने पर 'प्रियतिसृ' के ऋकार को रेफ आदेश होता है।* ***'ऋत उत्'*** *(६।१।१०९) से प्राप्त उकार आदेश नहीं होता है। ऐसे ही ङि-प्रत्यय में-* ***प्रियतिस्रि।*** ***'ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः'*** *(७।३।११०) से प्राप्त गुण नहीं होता है। ऐसे ही-* ***प्रियचतस्रः, प्रियचतस्रि।***

जरसादेश-विकल्पः–

(२३) जराया जरसन्यतरस्याम्।१०१।

प०वि०-जरायाः ६।१ जरस् १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, विभक्तौ, अचीति चानुवर्तते।

अन्वयः-जराया अङ्गस्याऽचि विभक्तावन्यतरस्यां जरस्।

अर्थः-जराया अङ्गस्य स्थानेऽजादौ विभक्तौ परतो विकल्पेन जरसादेशो भवति।

उदा०-जरसा दन्ताः शीर्यन्ते, जरया दन्ताः शीर्यन्ते। जरसे त्वा परिदद्युः, जरायै त्वा परिदद्युः।

आर्यभाषाः अर्थ- *(जरायाः) जरा इस (अङ्गस्य) अङ्ग के स्थान में (अचि) अजादि (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (जरस्) जरस् आदेश होता है।*

*उदा०-**जरसा दन्ताः शीर्यन्ते, जरया दन्ताः शीर्यन्ते।** जरा (बुढ़ापा) से दांत शीर्ण हो जाते हैं। **जरसे त्वा परिदद्युः, जरायै त्वा परिदद्युः।** वे तुझे जरा के लिये परिदान करें अर्थात् तू जरा-अवस्था तक जीवित रह।*

सिद्धि-जरसा। *जरा+टा। जरा+आ। जरस्+आ। जरसा।*

*यहां 'जरा' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'टा' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस अजादि टा (आ) प्रत्यय परे होने पर 'जरा' के स्थान में 'जरस्' आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में 'जरस्' आदेश नहीं है-**जरया।** '**आङि चापः**' (७।३।१०५) से एकार आदेश और '**एचोऽयवायावः**' (६।१।७७) से इसे अय् आदेश होता है। ऐसे ही 'ङे' विभक्ति में-**जरसे।** विकल्प-पक्ष में-**जरायै।** '**याडापः**' (७।३।१०५) से 'याट्' आगम और '**वृद्धिरेचि**' (६।१।८७) से वृद्धिरूप एकादेश (अ+ए=ऐ) होता है।*

जरा शब्द के समस्त रूप

विभक्ति	*एकवचन*	*द्विवचन*	*बहुवचन*
प्रथमा	*जरा*	*जरे (जरसौ)*	*जराः (जरसः)*
द्वितीया	*जराम् (जरसम्)*	*जरे (जरसौ)*	*जराः (जरसः)*
तृतीया	*जरया (जरसा)*	*जराभ्याम्*	*जराभिः।*
चतुर्थी	*जरायै (जरसे)*	*जराभ्याम्*	*जराभ्यः*
पञ्चमी	*जरायाः (जरसः)*	*जराभ्याम्*	*जराभ्यः*
षष्ठी	*जरायाः (जरसः)*	*जरयोः (जरसोः)*	*जराणाम् (जरसाम्)*
सप्तमी	*जरायाम् (जरसि)*	*जरयोः (जरसोः)*	*जरासु*
सम्बोधन	*हे जरे !*	*हे जरे (जरसौ) !*	*हे जराः (जरसः) !*

जरा=वृद्धावस्था इत्यर्थः।

अकार-आदेशः-

(२४) त्यदादीनामः ।१०२।

प०वि०-त्यद्-आदीनाम् ६ ।३ अः १ ।१।

स०-त्यद् आदिर्येषां ते त्यदादयः, तेषाम्-त्यदादीनाम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, विभक्ताविति चानुवर्तते।

अन्वयः-त्यदादीनामङ्गानां विभक्तौ अः।

अर्थः-त्यदादीनामङ्गानां स्थाने विभक्तौ परतोऽकारादेशो भवति।

उदा०-(त्यद्) स्यः, त्यौ, त्ये। **(तद्)** सः, तौ, ते। **(यद्)** यः, यौ, ये। **(एतद्)** एषः, एतौ, एते। **(इदम्)** अयम्, इमौ, इमे। **(अदस्)** असौ, अमू, अमी। **(द्वि)** द्वौ, द्वाभ्याम्।

एते त्यदादयः शब्दाः सर्वादिगणे पठ्यन्ते। **'द्विपर्यन्तानां त्यदादीनामत्वमिष्यते, इह न भवति, भवत्-भवान्** (काशिका)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(त्यदादीनाम्) त्यद् आदि (अङ्गानाम्) अङ्गों को (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर (अः) अकार आदेश होता है।*

*उदा०-(त्यद्) **स्यः।** वह। **त्यौ।** वे दोनों। **त्ये।** वे सब। (तद्) **सः।** वह। **तौ।** वे दोनों। **ते।** वे सब। (यद्) **यः।** जो। **यौ।** जो दोनों। **ये।** जो सब। (एतद्) **एषः।** यह। **एतौ।** ये दोनों। **एते।** ये सब। (इदम्) **अयम्।** यह। **इमौ।** ये दोनों। **इमे।** ये सब। (अदस्) **असौ।** वह। **अमू।** वे दोनों। **अमी।** वे सब। (द्वि) **द्वौ।** दो। **द्वाभ्याम्।** दो के द्वारा।*

ये 'त्यद्' आदि शब्द सर्वादिगण में पठित हैं। यहां 'त्यद्' से लेकर 'द्वि' पर्यन्त शब्दों का ग्रहण किया जाता है।

*सिद्धि-(१) **स्यः।** त्यद्+सु। त्य अ+स्। स्य अ+स्। स्यस्। स्यः।*

*यहां 'त्यद्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४ ।१ ।२) से 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'सु' विभक्ति के परे होने पर 'त्यद्' अन्त्य दकार को अकार आदेश होता है। **'अतो गुणे'** (६ ।१ ।९६) से पररूप एकादेश और **'तदोः सः सावनन्त्ययोः'** (७ ।२ ।१०६) से तकार को सकार आदेश होता है। द्विवचन में-**त्यौ।** बहुवचन में-**त्ये।***

*ऐसे ही 'तद्' शब्द से-**सः, तौ, ते।** 'यद्' शब्द से-**यः, यौ, ये।** 'एतद्' शब्द से-**एषः, एतौ, एते।***

*(२) **अयम्।** यहां 'इदम्' शब्द से पूर्ववत् 'सु' प्रत्यय है। **'इदमो मः'** (७ ।२ ।१०८) से 'इदम्' के मकार के स्थान में मकार आदेश होता है। यह **'त्यदादीनामः'** (७ ।२ ।१०२)*

का अपवाद है। 'इदोऽय् पुंसि' (७।२।१११) से 'इदम्' के 'इद्' भाग को 'अय्' आदेश होता है।

(३) **इमौ।** यहां 'इदम्' शब्द से पूर्ववत् 'औ' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'औ' विभक्ति के परे होने पर 'इदम्' के अन्त्य मकार को अकार आदेश होता है। 'दश्च' (७।२।१०९) से दकार को मकार आदेश है। 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' (६।१।१०२) से पूर्वसवर्ण दीर्घ प्राप्त होने पर 'नादिचि' (६।१।१०४) से उसका प्रतिषेध होकर 'वृद्धिरेचि' (६।१।८८) से पूर्व-पर के स्थान में वृद्धि रूप एकादेश (अ+औ=औ) होता है। जस् प्रत्यय में-**इमे।** 'जसः शी' (७।१।१७) से 'जस्' को 'शी' आदेश है।

(४) **असौ।** यहां 'अदस्' शब्द से पूर्ववत् 'सु' प्रत्यय है। 'अदस औ सुलोपश्च' (७।२।१०७) से 'अदस्' के सकार को आकार आदेश और 'सु' प्रत्यय का लोप होता है। 'तदोः सः सावनन्त्ययोः' (७।२।१०६) से 'अदस्' के दकार को सकार आदेश होता है।

(५) **अमू।** यहां 'अदस्' शब्द से पूर्ववत् 'औ' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'औ' विभक्ति के परे होने पर 'अदस्' के अन्त्य सकार को अकार आदेश होता है। अद अ+औ। इस स्थिति में 'अतो गुणे' (६।१।९७) से पररूप एकादेश और 'वृद्धिरेचि' (६।१।८७) से वृद्धिरूप एकादेश होकर 'अदसोऽसेर्दादु दो मः' (८।२।८०) से दकार को मकार तथा औकार को ऊकार आदेश होता है।

(६) **अमी।** यहां 'अदस्' शब्द से पूर्ववत् 'जस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'जस्' विभक्ति के परे होने पर 'अदस्' के अन्त्य सकार को अकार आदेश होता है। 'जसः शी' (७।१।१७) से 'जस्' के स्थान में 'शी' आदेश, 'आद्गुणः' (६।१।८७) से गुणरूप एकादेश एकार होकर 'एत ईद् बहुवचने' (८।२।८१) से एकार को ईकार आदेश होता है।

(७) **द्वौ।** यहां 'द्वि' शब्द से पूर्ववत् 'औ' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'औ' विभक्ति के परे होने पर 'द्वि' शब्द के अन्त्य इकार को अकार आदेश होता है। 'भ्याम्' प्रत्यय में-**द्वाभ्याम्।** 'सुपि च' (७।४।१०२) से दीर्घ है।

क-आदेशः–

(२५) किमः कः।१०३।

प०वि०-किमः ६।१ कः १।१।

अनु०-अङ्गस्य, विभक्ताविति चानुवर्तते।

अन्वयः-किमोऽङ्गस्य विभक्तौ कः।

अर्थः-किमोऽङ्गस्य स्थाने विभक्तौ परतः कादेशो भवति।

उदा०-कः, कौ, के।

आर्यभाषाः *अर्थ-(किमः) किम् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के स्थान में (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर (कः) क-आदेश होता है।*

उदा०-कः। कौन। कौ। कौन दो। के। कौन सब।

सिद्धि-कः। यहां 'किम्' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'सु' विभक्ति के परे होने पर 'किम्' को 'क' आदेश होता है। द्विवचन 'औ' में-कौ। बहुवचन 'जस्' में-के।

कु-आदेशः–

(२६) कु तिहोः।१०४।

प०वि०-कु १।१ (सु-लुक्) ति-होः ७।२।

स०-तिश्च ह् च तौ तिहौ, तयोः-तिहोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, विभक्तौ, किम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-किमोऽङ्गस्य तिहोर्विभक्त्योः कुः।

अर्थः-किमोऽङ्गस्य स्थाने तकारादौ हकारादौ च विभक्तौ परतः कुरादेशो भवति।

उदा०-तकारादौ-कुतः, कुत्र। **हकारादौ**-कुह।

आर्यभाषाः *अर्थ-(किमः)* ***किम्*** *इस (अङ्गस्य) अङ्ग के स्थान में (तिहोः) तकारादि और हकारादि (विभक्तौ)* ***विभक्ति*** *परे होने पर (कुः) कु-आदेश होता है।*

उदा०-तकारादौ-कुतः। ***कहां से।*** ***कुत्र।*** *कहां। हकारादौ-कुह। कहां।*

सिद्धि-(१) कुतः। ***किम्+तसिल्।*** *कु+तस्। कुतस्+सु। कुतस्+०। कुतस्। कुतः।*

यहां 'किम्' शब्द से ***'पञ्चम्यास्तसिल्'*** *(५।३।७) से 'तसिल्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस तकारादि 'तसिल्' विभक्ति के परे होने पर* ***'किम्'*** *के स्थान में 'कु' आदेश होता है।* ***'प्राग् दिशो विभक्तिः'*** *(५।३।१) से विभक्ति संज्ञा है।* ***'तद्धितश्चासर्वविभक्तिः'*** *(१।१।३८) से 'कुतस्' की अव्यय संज्ञा होकर* ***'अव्ययादाप्सुपः'*** *(२।४।८२) से 'सु' का लुक् होता है।*

(२) कुत्र। यहां 'किम्' शब्द से 'सप्तम्यास्त्रल्' (५।३।१०) से 'त्रल्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) कुह। यहां 'किम्' शब्द से 'वा ह च च्छन्दसि' (५।३।१३) से 'ह' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

क्व-आदेशः-

(२७) क्वाति।१०५।

प०वि०-क्व १।१ (सु-लुक्) अति ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, विभक्तौ, किम इति चानुवर्तते।

अन्वयः-किमोऽङ्गस्य अति विभक्तौ क्वः।

अर्थः-किमोऽङ्गस्य स्थानेऽति विभक्तौ परतः क्वादेशो भवति।

उदा०-स क्व गमिष्यति ? स क्व भोक्ष्यते ?

आर्यभाषाः अर्थ-*(किमः) किम् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के स्थान में (अति) अत् इस (विभक्तौ) विभक्ति के परे होने पर (क्व) क्व आदेश होता है।*

*उदा०-**स क्व गमिष्यति** ? वह कहां जायेगा ? **स क्व भोक्ष्यते** ? वह कहां भोजन करेगा ?*

सिद्धि-क्व। *यहां 'किम्' शब्द से 'किमोऽत्' (५।३।१२) से 'अत्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'अत्' विभक्ति के परे होने पर 'किम्' को 'क्व' आदेश होता है।*

स-आदेशः-

(२८) तदोः सः सावनन्त्ययोः।१०६।

प०वि०-तदोः ६।२ सः १।१ सौ ७।१ अनन्त्ययोः ६।२।

स०-तश्च द् च तौ तदौ, तयोः-तदोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। अन्त्ये भवोऽन्त्यः। न अन्त्याविति अनन्त्यौ, तयोः अनन्त्ययोः (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, विभक्ताविति चानुवर्तते। त्यदादीनामिति च मण्डूकोत्प्लुत्याऽनुवर्तनीयम्।

अन्वयः-त्यदादीनामङ्गानामनन्त्ययोस्तदोः सौ विभक्तौ सः।

अर्थः-त्यदादीनामङ्गानामनन्त्ययोस्तकारदकारयोः स्थाने सौ विभक्तौ परतः सकारादेशो भवति।

उदा०-**(त्यद्) तकारस्य**-स्यः। **(तद्)** सः। **(एतद्)** एषः। **(अदस्) दकारस्य**-असौ।

आर्यभाषाः अर्थ-*(त्यदादीनाम्) त्यद्-आदि (अङ्गानाम्) अङ्गों के (अनन्त्ययोः) अनन्त्य अर्थात् जो कि अन्त में नहीं है उन (तदोः) तकार और दकार के स्थान में (सौ) सु इस (विभक्तौ) विभक्ति के परे होने पर (सः) सकार आदेश होता है।*

*उदा०-(त्यद्) तकार के स्थान में-**स्यः**। वह। (तद्) सः। वह। (एतद्) एषः। यह। (अदस्) दकार के स्थान में-**असौ**। वह।*

***सिद्धि-स्यः।** यहां 'त्यद्' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'सु' विभक्ति के परे होने पर 'त्यद्' के अनन्त्य तकार को सकार आदेश होता है। '**त्यदादीनामः**' (७।२।१०२) से अकारादेश है। ऐसे ही 'तद्' शब्द से-**सः**, 'एतद्' शब्द से-**एषः**, 'अदस्' शब्द से-**असौ**। '**अदस औ सुलोपश्च**' (७।३।१०७) से 'अदस्' के सकार को 'औ' आदेश और 'सु' का लोप होता है।*

औ-आदेशः (सु-लोपः)–

(२६) अदस औ सुलोपश्च।१०७।

प०वि०- अदसः ६।१ औ १।१ (सु-लुक्) सुलोपः १।१ च अव्ययपदम्।

स०-सोर्लोप इति सुलोपः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, विभक्तौ, साविति चानुवर्तते।

अन्वयः-अदसोऽङ्गस्य सौ विभक्तौ औः, सुलोपश्च।

अर्थः-अदसोऽङ्गस्य सौ विभक्तौ परत औकारादेशो भवति, सोश्च लोपो भवति।

उदा०-असौ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अदसः) अदस् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (सौ) सु इस (विभक्तौ) विभक्ति के परे होने पर (औः) औकार आदेश होता है (च) और (सुलोपः) सु का लोप होता है।*

*उदा०-**असौ**। वह।*

***सिद्धि-असौ।** अदस्+सु। अद औ+स्। अस औ+स्। असौ+०। असौ।*

*यहां 'अदस्' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'सु' विभक्ति के परे होने पर 'अदस्' के अन्त्य सकार को औकार आदेश और 'सु' का लोप होता है। '**तदोः सः सावनन्त्ययोः**' (७।२।१०६) से 'अदस्' से अनन्त्य दकार को सकार आदेश होता है।*

म-आदेशः–

(३०) इदमो मः।१०८।

प०वि०-इदमः ६।१ मः १।१।

अनु०-अङ्गस्य, विभक्तौ, साविति चानुवर्तते।

अन्वयः-इदमोऽङ्गस्य सौ विभक्तौ मः।

अर्थः-इदमोऽङ्गस्य स्थाने सौ विभक्तौ परतो मकारादेशो भवति।

उदा०-इयं कन्या। अयं माणवकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इदमः) इदम् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के स्थान में (सौ) सु इस (विभक्तौ) विभक्ति के परे होने पर (मः) मकार आदेश होता है।*

*उदा०-**इयं कन्या।** यह कन्या है। **अयं माणवकः।** यह बालक है।*

सिद्धि-(१) इयम्। *यहां 'इदम्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'सु' विभक्ति के परे होने पर 'इदम्' के मकार को मकार आदेश होता है। यह **'त्यदादीनामः'** (७।२।१०२) से प्राप्त अकार आदेश का अपवाद है। **'यः सौ'** (७।२।११०) से दकार को यकार आदेश होता है।*

(२) अयम्। *यहां 'इदम्' शब्द से पूर्ववत् 'सु' प्रत्यय है। **'इदोऽय् पुंसि'** (७।२।१११) से 'इदम् के इद्-भाग को 'अय्' आदेश होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

म-आदेशः-

(३१) दश्च।१०६।

प०वि०-दः ६।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, विभक्तौ, इदमः, म इति चानुवर्तते।

अन्वयः-इदमोऽङ्गस्य दश्च विभक्तौ मः।

अर्थः-इदमोऽङ्गस्य दकारस्य स्थाने च विभक्तौ परतो मकारादेशो भवति।

उदा०-इमौ माणवकौ। इमे माणवकाः। इमं माणवकम्। इमौ माणवकौ। इमान् माणवकान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इदमः) इदम् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (दः) दकार के स्थान में (च) भी (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर (मः) मकार आदेश होता है।*

*उदा०-**इमौ माणवकौ।** ये दो बालक। **इमे माणवकाः।** ये सब बालक। **इमं माणवकम्।** इस बालक को। **इमौ माणवकौ।** इन दो बालकों को। **इमान् माणवकान्।** इन सब बालकों को।*

*सिद्धि-**इमौ**। यहां 'इदम्' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'औ' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'औ' विभक्ति के परे होने पर 'इदम्' के दकार को भी मकार आदेश होता है। '**त्यदादीनाम:**' (७।२।१०२) से मकार को अकार आदेश होता है।*

*औ विभक्ति में-**इमौ**। जस् विभक्ति में-**इमे**। '**जस: शी**' (७।१।१७) से 'जस्' के स्थान में 'शी' आदेश है। अम् विभक्ति में-**इमम्**। '**अमि पूर्व:**' (६।१।१०५) से पूर्वसवर्ण एकादेश है। औ विभक्ति (२।२) में-**इमौ**। शस् विभक्ति में-**इमान्**। '**तस्माच्छसो न: पुंसि**' (६।१।१०१) से सकार को नकार आदेश होता है।*

य-आदेशः--

(३२) यः सौ।११०।

प०वि०-यः १।१ सौ ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, विभक्तौ, इदमः, म इति चानुवर्तते।

अन्वयः-इदमोऽङ्गस्य मः सौ विभक्तौ यः।

अर्थः-इदमोऽङ्गस्य अकारस्य स्थाने सौ विभक्तौ परतो यकारादेशो भवति।

उदा०-इयं कन्या।

अग्रिमसूत्रे पुंसि इति वचनात् स्त्रियामयं यकारादेशो विधीयते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(इदमः) इदम् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (मः) मकार के स्थान में (सौ) सु इस (विभक्तौ) विभक्ति के परे होने पर (यः) यकार आदेश होता है।*

*उदा०-**इयं कन्या**। यह कन्या।*

आगामी सूत्र में 'पुंसि' इस पद के वचन से यह यकारादेश स्त्रीलिङ्ग में होता है।

*सिद्धि-**इयम्**। यहां 'इदम्' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। 'सु' विभक्ति के परे होने पर '**दश्च**' (७।२।१०९) से 'इदम्' के दकार को मकार आदेश होता है और इस सूत्र से इस मकार को स्त्रीलिङ्ग में यकार आदेश किया जाता है। 'इदमो म:' (७।२।१०८) से मकार को मकार आदेश होता है।*

अय्-आदेशः--

(३३) इदोऽय् पुंसि।१११।

प०वि०-इदः ६।१ अय् १।१ पुंसि ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, विभक्तौ, इदमः, साविति चानुवर्तते।

अन्वयः-पुंसि इदमोऽङ्गस्य इदः सौ विभक्तौ अय्।

अर्थः-पुंसि वर्तमानस्य इदमोऽङ्गस्य इद्भागस्य सौ विभक्तौ परतोऽयादेशो भवति।

उदा०-अयं माणवकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(पुंसि) पुंलिङ्ग में विद्यमान (इदमः) इदम् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (इदः) इद्-भाग के स्थान में (सौ) सु इस (विभक्तौ) विभक्ति के परे होने पर (अय्) अय् आदेश होता है।*

*उदा०-**अयं माणवकः।** यह बालक।*

***सिद्धि-अयम्।** यहां 'इदम्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'सु' विभक्ति के परे होने पर 'इदम्' के इद्-भाग के स्थान में 'अय्' आदेश होता है। **'इदमो मः'** (७।२।१०८) से 'इदम्' के मकार को मकार आदेश होता है।*

अन-आदेशः-

(३४) अनाप्यकः।११२।

प०वि०-अन १।१ (सु-लुक्) आपि ७।१ अकः ६।१।

स०-न विद्यते को यस्मिँस्तत्-अक्, तस्य-अकः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, विभक्तौ, इदमः, इद इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अक इदमोऽङ्गस्य इद आपि विभक्तौ अनः।

अर्थः-अकः=ककारवर्जितस्य इदमोऽङ्गस्य इद्भागस्य स्थाने आपि विभक्तौ परतोऽनादेशो भवति।

उदा०-अनेन माणवकेन। अनयोर्माणवकयोः।

आपि-इत्यत्र तृतीयैकवचनात् प्रभृति सुपः पकारेण 'आप्' इति प्रत्याहारो गृह्यते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अकः) ककार=अकच् से रहित (इदमः) इदम् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (इदः) इद्भाग के स्थान में (आपि) आप् यह (विभक्तौ) विभक्ति परे होने पर (अनः) अन-आदेश होता है।*

*उदा०-**अनेन माणवकेन।** इस बालक के द्वारा। **अनयोर्माणवकयोः।** इन बालकों का/में।*

'आपि' यहां तृतीया-विभक्ति के एकवचन 'टा' से लेकर 'सुपः' इसके पकार पर्यन्त 'आप्' इस प्रत्याहार का ग्रहण किया जाता है।

सिद्धि-अनेन। *यहां 'इदम्' शब्द से* ***'स्वौजस०'*** *(४।१।२) से 'टाप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस आप् (टा) विभक्ति के परे होने पर 'इदम्' के इद्-भाग के स्थान में 'अन' आदेश होता है।* ***'त्यदादीनामः'*** *(७।२।१०२) से मकार को अकार आदेश होकर* ***'टाङसिङसामिनात्स्याः'*** *(७।१।१२) से 'टा' के स्थान में 'इन' आदेश होता है। 'ओस्' प्रत्यय में-**अनयोः।***

लोपादेशः-

(३५) हलि लोपः।११३।

प०वि०-हलि ७।१ लोपः १।१।

अनु०-अङ्गस्य, विभक्तौ, इदमः, इदः, अक इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अक इदमोऽङ्गस्य इदो हलि विभक्तौ लोपः।

अर्थः-अकः=ककारवर्जितस्य इदमोऽङ्गस्य इद्भागस्य हलादौ विभक्तौ परतो लोपो भवति।

उदा०-आभ्यां माणवकाभ्याम्। एभिर्माणवकैः। एभ्यो माणवकेभ्यः। एषां माणवकानाम्। एषु माणवकेषु।

आर्यभाषाः अर्थ- *(अकः) ककार=अकच् प्रत्यय से रहित (इदमः) इदम् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (इदः) इद्-भाग का (हलि) हल् जिसके आदि में है उस (विभक्तौ) विभक्ति के परे होने पर (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-**आभ्यां माणवकाभ्याम्।** इन दो बालकों के द्वारा। **एभिर्माणवकैः।** इन सब बालकों के द्वारा। **एभ्यो माणवकेभ्यः।** इन सब बालकों के लिये/से। **एषां माणवकानाम्।** इन सब बालकों का। **एषु माणवकेषु।** इन सब बालकों में।*

सिद्धि-आभ्याम्। *यहां 'इदम्' शब्द से* ***'स्वौजस०'*** *(४।१।२) से 'भ्याम्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'भ्याम्' हलादि विभक्ति के परे होने पर 'इदम्' के इद्-भाग का लोप होता है। इदम्+भ्याम्। अ अ+भ्याम्। अ+भ्याम्। आभ्याम्। 'त्यदादीनामः' (७।२।१०२) से अकार आदेश, **'अतो गुणे'** (६।१।९६) से पररूप एकादेश होकर 'सुपि च' (७।३।१०२) से दीर्घ होता है। 'भिस्' विभक्ति में-**एभिः।** 'भ्यस्' विभक्ति में-**एभ्यः।** 'आम्' विभक्ति मे-**एषाम्।** सुप् विभक्ति में-**एषु।***

।। इति आदेशप्रकरणम् ।।

पूर्ववृद्धिप्रकरणम्

वृद्धिः–

(१) मृजेर्वृद्धिः।११४।

प०वि०–मृजे: ६।१ वृद्धि: १।१।

अनु०–अङ्गस्य इत्यनुवर्तते। विभक्ताविति च निवृत्तम्। **'इको गुणवृद्धी'** (१।१।३) इति परिभाषया च इक: इति षष्ठ्यन्तं पदमुपतिष्ठते।

अन्वय:–मृजेरङ्गस्य इको वृद्धि:।

अर्थ:–मृजेरङ्गस्य अक: स्थाने वृद्धिर्भवति।

उदा०–मार्ष्टा। मार्ष्टुम्। मार्ष्टव्यम्।

आर्यभाषा: *अर्थ-(मृजे:) मृज् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (इक:) इक् वर्ण के स्थान में (वृद्धि:) वृद्धि होती है।*

*उदा०-**मार्ष्टा।** शुद्ध करनेवाला। **मार्ष्टुम्।** शुद्ध करने के लिये। **मार्ष्टव्यम्।** शुद्ध करना चाहिये।*

*सिद्धि-**(१) मार्ष्टा।** मृज्+तृच्। मृज्+तृ। मार्ज्+तृ। मार्ष्+टृ। मार्ष्टृ+सु। मार्ष्टा।*

*यहां **'मृजूष् शुद्धौ'** (अदा०प०) धातु से **'ण्वुलतृचौ'** (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'तृच्' प्रत्यय के परे होने पर 'मृज्' धातु के इक् वर्ण (ऋ) को वृद्धि (आ) होती है और इसे 'उरण् रपर:' (१।१।५१) से रपरत्व होता है। 'व्रश्चभ्रस्ज०' (८।२।३६) से जकार को षकार और 'ष्टुना ष्टु:' (८।४।४१) से सकार को टवर्ग टकार होता है।*

***(२) मार्ष्टुम्।** यहां पूर्वोक्त 'मृज्' धातु से **'तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्'** (३।३।१०) से 'तुमुन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

***(३) मार्ष्टव्यम्।** यहां पूर्वोक्त 'मृज्' धातु से **'तव्यत्तव्यानीयर:'** (३।१।९६) से 'तव्यत्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

वृद्धिः–

(२) अचो ञ्णिति।११५।

प०वि०–अच: ६।१ ञ्णिति ७।१।

स०–ञश्च णश्च तौ-ञ्णौ। ञ्णावितौ यस्य स:-ञ्णित्, तस्मिन्-ञ्णिति (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहि:)।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अचोऽङ्गस्य ञ्णिति वृद्धिः।

अर्थः-अजन्तस्याऽङ्गस्य ञिति णिति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति।

उदा०-**ञिति**-एकस्तण्डुलनिचायः। द्वौ शूर्पनिष्पावौ। द्वौ कारौ। **णिति**-गौः, गावौ, गावः। सखायौ, सखायः। जैत्रम्। यौत्रम्। च्यौत्नम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अचः) अच् जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग को (ञ्णिति) ञित् और णित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है।*

*उदा०-**ञित् में-एकस्तण्डुलनिचायः।** एक तण्डुल राशि। **द्वौ शूर्पनिष्पावौ।** दो छाज शुद्ध किये हुये तण्डुल (चावल)। **द्वौ कारौ।** धान्य आदि के दो विक्षेप (बरसाना)। **णित् में-गौः, गावौ, गावः।** अर्थ स्पष्ट है। **सखायौ, सखायः।** अर्थ स्पष्ट है। **जैत्रम्।** जीतने का साधन। **यौत्रम्।** मिश्रित करने का साधन। **च्यौत्नम्।** बल।*

*सिद्धि-(१) **तण्डुलनिचायः।** यहां तण्डुल-उपपद और नि-उपसर्गपूर्वक **'चिञ् चयने'** (स्वा०उ०) धातु से **'परिमाणाख्यायां सर्वेभ्यः'** (३।३।२०) से 'घञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस ञित् प्रत्यय के परे होने पर अजन्त 'चि' अङ्ग को वृद्धि होती है।*

*(२) **शूर्पनिष्पावौ।** यहां शूर्प-उपपद और निस्-उपसर्गपूर्वक **'पूञ् पवने'** (क्र्या०उ०) धातु से पूर्ववत् 'घञ्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **द्वौ कारौ।** यहां **'कॄ विक्षेपे'** (तु०प०) धातु से पूर्ववत् 'घञ्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **गौः।** यहां 'गो' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। **'गोतो णित्'** (७।१।९०) से 'सु' प्रत्यय णिद्वत् होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। 'औ' प्रत्यय में-**गावौ।** 'जस्' प्रत्यय में-**गावः।** ऐसे ही 'सखि' शब्द से-**सखायौ, सखायः।** **'सख्युरसम्बुद्धौ'** (७।१।९२) से 'औ' और 'जस्' प्रत्यय णिद्वत् हैं।*

*(५) **जैत्रम्।** यहां **'जि जये'** (भ्वा०प०) धातु से **'सार्वधातुभ्यः ष्ट्रन्'** (उणा० ४।१५९) से औणादिक 'ष्ट्रन्' प्रत्यय है। यह बहुल-वचन से णित् होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*(६) **च्यौत्नम्।** यहां **'च्युङ् गतौ'** (भ्वा०आ०) धातु से **'जनिदाच्यु०'** (उणा० ४।१०५) से औणादिक 'ष्ट्रन्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

उपधावृद्धिः-

(३) अत उपधायाः।११६।

प०वि०-अतः ६।१ उपधायाः ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धि, ञ्णिति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अङ्गस्य उपधाया अतो ञ्णिति वृद्धिः।

अर्थः-अङ्गस्य उपधाभूतस्याऽकारस्य स्थाने ञिति णिति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति।

उदा०-ञिति-पाकः। त्यागः। रागः। **णिति**-पाचयति। पाचकः। पाठयति। पाठकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अङ्गस्य) अङ्ग के (उपधायाः) उपधाभूत (अतः) अकार के स्थान में (ञ्णिति) ञित् और णित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है।*

*उदा०-**ञित्**-**पाकः**। पकाना। **त्यागः**। त्याग करना। **रागः**। रंगना। **णित्**-**पाचयति**। वह पकवाता है। **पाचकः**। पकानेवाला रसोइया। **पाठयति**। वह पढ़ाता है। **पाठकः**। पढ़ानेवाला उपाध्याय।*

*सिद्धि-(१) **पाकः**। यहां '**डुपचष् पाके**' (भ्वा०उ०) धातु से '**भावे**' (३।३।१८) से भाव अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'ञित्' प्रत्यय के परे होने पर 'पच्' धातु के उपधाभूत अकार को वृद्धि (आ) होती है। '**चजोः कु घिण्ण्यतोः**' (७।३।५२) से कुत्व होता है।*

*'**त्यज हानौ**' (भ्वा०प०) धातु से-**त्यागः**। '**रञ्ज रागे**' (भ्वा०उ०) धातु से-**रागः**। '**घञि च भावकरणयोः**' (६।४।२७) से अनुनासिक (ञ्) का लोप होता है।*

*(२) **पाचयति**। यहां '**डुपचष् पाके**' धातु से '**हेतुमति च**' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से प्रत्यय के णित् होने से 'पच्' धातु के उपधाभूत अकार को वृद्धि होती है। '**पठ व्यक्तायां वाचि**' (भ्वा०प०) धातु से-**पाठयति**।*

*(३) **पाचकः**। यहां पूर्वोक्त 'पच्' धातु से '**ण्वुल्तृचौ**' (३।१।१३३) से 'ण्वुल्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। '**युवोरनाकौ**' (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश है। '**पठ व्यक्तायां वाचि**' (भ्वा०प०) धातु से-**पाठकः**।*

आदिवृद्धिः—

(४) तद्धितेष्वचामादेः।११७।

प०वि०-तद्धितेषु ७।३ अचाम् ६।३ आदेः ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अङ्गस्याऽचामादेरचः स्थाने तद्धिते ञ्णिति वृद्धिः।

अर्थ:-अङ्गस्याऽचामादेरचस्तद्धिते ञिति णिति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति।

उदा०-ञिति-गार्ग्यः। वात्स्यः। दाक्षिः। प्लाक्षिः। **णिति**-औपगवः। कापटवः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अङ्गस्य) अङ्ग-सम्बन्धी (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदि के (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित् और णित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है।*

*उदा०-ञित्-**गार्ग्यः**। गर्ग का पौत्र। **वात्स्यः**। वत्स का पौत्र। **दाक्षिः**। दक्ष का पुत्र। **प्लाक्षिः**। प्लक्ष का पुत्र। **णित्-औपगवः**। उपगु का पुत्र। **कापटवः**। कपटु का पुत्र।*

सिद्धि-(१) गार्ग्यः। *यहां 'गर्ग' शब्द से '**गर्गादिभ्यो यञ्**' (४।१।१०५) से गोत्रापत्य अर्थ में तद्धित-संज्ञक 'यञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस प्रत्यय के ञित् होने से 'गर्ग' अङ्ग के आदिम अच् (अ) को वृद्धि होती है। 'वत्स' शब्द से-**वात्स्यः**।*

*(२) **दाक्षिः**। यहां 'दक्ष' शब्द से '**अत इञ्**' (४।१।९५) से अपत्य-अर्थ में 'इञ्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। 'प्लक्ष' शब्द से-**प्लाक्षिः**।*

*(३) **औपगवः**। यहां 'उपगु' शब्द से '**तस्यापत्यम्**' (४।१।९२) से तद्धित-संज्ञक 'अण्' प्रत्यय है। '**ओर्गुणः**' (७।४।१४६) से अङ्ग को गुण होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। 'कपटु' शब्द से-**कापटवः**।*

आदिवृद्धिः-

(५) किति च।११८।

प०वि०-किति ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-क इद् यस्य स कित्, तस्मिन्-किति (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धि, अचः, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अङ्गस्याऽचामादेरचस्तद्धिते किति वृद्धिः।

अर्थः-अङ्गस्याऽचामादेरचः स्थाने तद्धिते किति प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति।

उदा०-'**नडादिभ्यः फक्**' (४।१।९९) नाडायनः, चारायणः। '**प्राग्वहतेष्ठक्**' (४।४।१) आक्षिकः, शालाकिकः।

आर्यभाषाः अर्थ-(अङ्गस्य) अङ्ग-सम्बन्धी (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदि के (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है।

उदा०-**'नडादिभ्यः फक्'** (४।१।९९) **नाडायनः।** नड का पौत्र। **चारायणः।** चर का पौत्र। **'प्राग्वहतेष्ठक्'** (४।४।१) **आक्षिकः।** अक्ष नामक पाशों से खेलनेवाला जुआरी। **शालाकिकः।** शलाका नामक पाशों से खेलनेवाला जुआरी।

सिद्धि-नाडायनः। यहां 'नड' शब्द से **'नडादिभ्यः फक्'** (४।१।९९) से गोत्रापत्य अर्थ में 'फक्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस फक् प्रत्यय के 'कित्' होने से 'नड' के आदिम अच् को वृद्धि (आ) होती है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'फ्' के स्थान में 'आयन्' आदेश है। 'चर' शब्द से-**चारायणः।**

(२) **आक्षिकः।** यहां 'अक्ष' शब्द से **'तेन दीव्यति खनति जयति जितम्'** (४।४।२) से दीव्यति-अर्थ में प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। **'ठस्येकः'** (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है। 'शलाका' शब्द से-**शालाकिकः।**

।। इति पूर्ववृद्धिप्रकरण् ।।

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने सप्तमाध्यायस्य द्वितीयः पादः समाप्तः।



सप्तमाध्यायस्य तृतीयः पादः

उत्तरवृद्धिप्रकरणम्

आत्-आदेशः–

(१) देविकाशिंशपादित्यवाड्दीर्घसत्रश्रेयसामात् ।१।

प०वि०- देविका-शिंशपा-दित्यवाट्-दीर्घसत्र-श्रेयसाम् ६ ।३ आत् १ ।१ ।

स०-देविका च शिंशपा च दित्यवाट् च दीर्घसत्रं च श्रेयाँश्च ते देविका०श्रेयाँसः, तेषाम्-देविका०श्रेयसाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) ।

अनु०-अङ्गस्य, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, कितीति चानुवर्तते ।

अन्वयः- देविकाशिंशपादित्यवाड्दीर्घसत्रश्रेयसामऽङ्गानामऽचामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति चाऽऽत् ।

अर्थः- देविकाशिंशपादित्यवाड्दीर्घसत्रश्रेयसामऽङ्गानामऽचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परत आकारादेशो भवति ।

उदा०-(देविका) देविकायां भवम् उदकम् इति दाविकमुदकम् । देविका कूले भवाः शालय इति दाविकाकूलाः शालयः । पूर्वदेविका नाम प्राचां ग्रामः, तत्र भवः पूर्वदाविकः । **(शिंशपा)** शिंशपाया विकारश्चमस इति शांशपश्चमसः । शिंशपास्थले भवा इति शांशपास्थला देवाः । पूर्वशिंशपानाम प्राचां ग्रामः, तत्र भवः पूर्वशांशपः । **(दित्यवाट्)** दित्यौह इदमिति दात्यौहम् । **(दीर्घसत्रम्)** दीर्घसत्रे भवमिति दार्घसत्रम् । **(श्रेयान्)** श्रेयसि भवमिति श्रायसम् ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(देविका०) देविका, शिंशपा, दित्यवाट्, दीर्घसत्र, श्रेयस् (अङ्गानाम्) अङ्गों के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (आत्) आकारादेश होता है।*

*उदा०-(देविका) **दाविकमुदकम्।** देविका नदी में होनेवाला जल। **दाविकाकूला: शालय:।** देविका नदी के तट पर होनेवाले चावल। **पूर्वदाविक:।** पूर्वदेविका नामक प्राग्देशीय ग्राम है उसमें होनेवाला। (शिंशपा) **शांशपश्चमस:।** शिंशपा (शीशम) की लकड़ी का बना हुआ चमस। (दित्यवाट्) **दात्यौह:।** कृष्ण काक=कौआ। (दीर्घसत्र) **दीर्घसत्रम्।** दीर्घसत्र नामक सोमयाग में होनेवाला। (श्रेयस्) **श्रायसम्।** श्रेय मार्ग में होनेवाले आनन्द।*

*सिद्धि-(१) **दाविकम्।** यहां 'देविका' शब्द से **'तत्र भव:'** (४।३।५२) से भव-अर्थ में प्राग्वहतीय 'अण्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'देविका' शब्द के आदिम अच् एकार को आकार आदेश होता है। ऐसे ही-**दाविकाकूला: शालय:, पूर्वदाविक:। 'प्राचां ग्रामनगराणाम्'** (७।३।१४) से उत्तरपद को वृद्धि प्राप्त थी, यह सूत्र उसका अपवाद है।*

*(२) **शांशप:।** यहां 'शिंशपा' शब्द से **'पलाशादिभ्यो वा'** (४।३।१३९) से विकार-अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**पूर्वशांशप:। 'प्राचां ग्रामनगराणाम्'** (७।३।१४) से उत्तरपद को वृद्धि प्राप्त थी, यह सूत्र उसका अपवाद है।*

*(३) **दित्यौह:।** यहां 'दित्यवाट्' शब्द से **'तस्येदम्'** (४।३।१२०) से यथाविहित प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय है। **'वाह ऊठ्'** (६।४।१३२) से ऊठ्-रूप सम्प्रसारण, **'सम्प्रसारणाच्च'** (६।१।१०६) से पूर्वरूप एकादेश प्राप्त होने पर **'एत्येधत्यूठ्सु'** (६।१।८९) से वृद्धिरूप एकादेश होता है।*

*(४) **दीर्घसत्रम्।** यहां 'दीर्घसत्र' शब्द से **'तत्र भव:'** (४।३।५३) से भव-अर्थ में यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है। ऐसे ही 'श्रेयस्' शब्द से-**श्रायसम्।***

***विशेष:** **देविका**-यह मद्रदेश में बहनेवाली एक प्रसिद्ध नदी थी। इसकी निश्चित पहचान देग नदी के साथ होती है जो जम्मू की पहाड़ियों से निकलकर स्यालकोट, शेखुपुरा में होती हुई रावी में मिल जाती है। आज भी उसके किनारे कई प्रकार के बढ़िया, सुगन्धित, बासमती चावल होते हैं (पाणिनिकालीन भारतवर्ष का इतिहास पृ० ५३)।*

वृद्धिरियादेशश्च-

(२) केकयमित्रयुप्रलयानां यादेरिय:।२।

प०वि०-केकय-मित्रयु-प्रलयानाम् ६।३ यादे: ६।१ इय: १।१।

स०-केकयश्च मित्रयुश्च प्रलयश्च ते केकयमित्रयुप्रलया:, तेषाम्-केकयमित्रयुप्रलयानाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)। य आदिर्यस्य स यादि:, तस्य-यादे: (बहुव्रीहि:)।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धि:, अच:, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदे:, कितीति चानुवर्तते।

अन्वयः-केकयमित्रयुप्रलयानाम् अचामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिः, यादेश्चेयः।

अर्थः-केकयमित्रयुप्रलयानामऽङ्गानाम् अचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति, अङ्गस्य अकारादेश्च भागस्य स्थाने इयादेशो भवति।

उदा०-(केकयः) केकयस्यापत्यम्-कैकेयः। **(मित्रयुः)** मित्रयुभावेन श्लाघते-मैत्रिकया श्लाघते। **(प्रलयः)** प्रलयादागतम्-प्रालेयम् उदकम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(केकयमित्रयुप्रलयानाम्) केकय, मित्रयु, प्रलय इन (अङ्गानाम्) अङ्गों के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है और (अङ्गस्य) अङ्गसम्बन्धी (यादेः) यकारादि भाग के स्थान में (इयः) इय् आदेश होता है।*

*उदा०-**(केकय) कैकेयः।** केकय का पुत्र। **(मित्रयु) मैत्रिकया श्लाघते।** मित्रयु नामक ऋषिभाव से प्रशंसित होता है। **(प्रलय) प्रालेयम् उदकम्।** प्रलय=हिमालय से आया हुआ गङ्गाजल। **प्रकर्षेण लीनाः सन्ति पदार्था अत्रेति प्रलयो हिमालयः** (श०कौ०)।*

*सिद्धि-(१) **कैकेयः।** कैकेय+अण्। कैकय+अ। कैक इय्+अ। कैकेय्+अ। कैकेय+सु। कैकेयः।*

*यहां 'केकय' शब्द से **'जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्'** (४।१।१६६) से अपत्य-अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'केकय' के आदिम अच् (ए) को वृद्धि (ऐ) और यकारादि-भाग (य् अ) के स्थान में इय-आदेश होता है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अन्त्य अकार का लोप और **'आद्गुणः'** (६।१।८७) से गुणरूप एकादेश (अ+इ=ए) होता है।*

*(२) **मैत्रिकया।** मित्रयु+वुञ्। मित्रयु+अक। मैत्रयु+अक। मैत्र इय्+अक। मैत्रेयक।। मैत्रेयक+टाप्। मैत्रेयक+आ। मैत्रेयिक+आ। मैत्रेयिका।। मैत्रेयिका+टा। मैत्रेयिकया।*

*यहां 'मित्रयु' शब्द से **'गोत्रचरणाच्छ्लाघात्याकारतदवेतेषु'** (५।१।१३३) से 'वुञ्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। इस सूत्र से 'मित्रयु' के आदिम अच् को वृद्धि और इसके यकारादि भाग (यु) के स्थान में 'इय' आदेश होता है। तत्पश्चात् स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय और **'प्रत्ययस्थात्कात्०'** (७।३।४४) से इत्त्व होता है। **गोत्रचरणा०'** (५।१।१३३) यहां लौकिक गोत्र का ग्रहण किया जाता है। **'अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्'** (४।१।१६२) इस पारिभाषिक गोत्र का नहीं। लोक में ऋषिवाची शब्द गोत्र कहाता है। **'लोके च ऋषिशब्दो गोत्रमित्यभिधीयते'** (काशिका)।*

(३) प्रालेयम्। यहां 'प्रलय' शब्द से 'तत आगतः' (४।३।७४) से आगत-अर्थ में यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।

विशेषः *केकय-वर्णु (बन्नू) देश की सीध में सिन्धु के पूरब की ओर 'केकय' जनपद था, जो आधुनिक झेलहम, गुजरात और शाहपुर जिलों का केन्द्रीय भाग है।*

वृद्धिप्रतिषेध ऐजादेशश्च–

(३) न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्।३।

प०वि०–न अव्ययपदम्, य्वाभ्याम् ५।२ पदान्ताभ्याम् ५।१ पूर्वौ १।२ तु अव्ययपदम्, ताभ्याम् ५।२ ऐच् १।१।

स०–य् च वश्च तौ य्वौ, ताभ्याम्-य्वाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। पदस्याऽन्ताविति पदान्तौ, ताभ्याम्-पदान्ताभ्याम् (षष्ठीतत्पुरुषः)। पूर्वश्च पूर्वश्च तौ पूर्वौ (एकशेषद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किनीति चानुवर्तते।

अन्वयः–पदान्ताभ्यां य्वाभ्यामऽङ्गाभ्याम् अचामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिर्न, ताभ्यां पूर्वौ तु ऐच्।

अर्थः–पदान्ताभ्यां यकारवकाराभ्याम् अङ्गाभ्याम् उत्तरस्याऽचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्न भवति, ताभ्यां यकारवकाराभ्यां पूर्वौ तु ऐजागमौ भवतः।

उदा०–**यकारात् पूर्वमैकारः**–व्यसने भवम्-वैयसनम्। व्याकरणमधीते वेद वा-वैयाकरणः। **वकारात् पूर्वमौकारः**–स्वश्वस्यापत्यम्-सौवश्वः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पदान्ताभ्याम्) पद के अन्त में विद्यमान (य्वाभ्याम्) यकार और वकार से परे (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि (न) नहीं होती है (तु) अपितु (ताभ्याम्) उन यकार और वकारों से (पूर्वौ) पहले (ऐच्) ऐच्=ऐकार और औकार आगम होते हैं।*

*उदा०-यकार से पूर्व ऐकार-**वैयसनम्**। व्यसन में होनेवाला दुःख। **वैयाकरणः**। व्याकरण शास्त्र का अध्येता वा वेत्ता। वकार से पूर्व औकारः-**सौवश्वः**। स्वश्व का पुत्र।*

*सिद्धि-(१) **वैयसनम्**। व्यसन+अण्। व् ऐ य सन्+अ। वैयसन+सु। वैयसनम्।*

*यहां 'व्यसन' शब्द से 'तत्र भवः' (४।३।५३) से भव-अर्थ में यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है। 'वि+असनम्' इस स्थिति में इस सूत्र से आदिम अच् (इ) को वृद्धि का प्रतिषेध होकर इसके यकार से पूर्व ऐच् (ऐ) आगम होता है। ऐसे ही 'व्याकरण' (वि+आकरण) शब्द से-**वैयाकरणः**। 'तदधीते तद्वेद' (४।२।५९) से अधीते-वेद अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है।*

*(२) **सौवश्व**। यहां 'स्वश्व' शब्द से 'तस्यापत्यम्' (४।१।९२) से अपत्य-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। 'सु+अश्वः' इस स्थिति में इस सूत्र से वृद्धि का प्रतिषेध होकर इसके वकार से पूर्व ऐच् (औ) आगम होता है।*

वृद्धिप्रतिषेध ऐजागमश्च–

(४) द्वारादीनां च।४।

प०वि०-द्वारादीनाम् ६।३ च अव्ययपदम्।

स०-द्वार आदिर्येषां ते द्वारादयः, तेषाम्-द्वारादीनाम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, न, य्वाभ्याम्, पूर्वौ, तु, ताभ्याम्, ऐजिति चानुवर्तते।

अन्वयः-द्वारादीनामङ्गानां च य्वाभ्यामचामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिर्न, ताभ्यां पूर्वौ तु ऐच्।

अर्थः-द्वारादीनामङ्गानां च यकारवकाराभ्याम् उत्तरस्याचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्न भवति, ताभ्यां पूर्वौ तु ऐजागमौ भवतः।

उदा०-द्वारे नियुक्त इति दौवारिकः। द्वारपालस्येदमिति दौवारपालम्। तदादिविधिरत्र भवति। स्वरमधिकृत्य कृतो ग्रन्थ इति सौवरः।

द्वार। स्वर। स्वाध्याय। व्यल्कश। स्वस्ति। स्वर। स्फ्यकृत। स्वादुमृदु। श्वन्। स्व। इति द्वारादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(द्वारादीनाम्) द्वार-आदि (अङ्गानाम्) अङ्गों के (च) भी (य्वाभ्याम्) यकार और वकार से परे (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे*

होने पर (वृद्धिः) वृद्धि (न) नहीं होती है (तु) अपितु (ताभ्याम्) उन यकार और वकारों से (पूर्वौ) पहले (ऐच्) ऐच्=ऐकार और औकार आगम होते हैं।

*उदा०-**दौवारिकः।** द्वार पर नियुक्त पुरुष। **दौवारपालम्।** द्वारपाल सम्बन्धी द्रव्य। यहां तदादिविधि होती है। **सौवरः।** स्वरविषय को अधिकृत करके बनाया गया ग्रन्थविशेष।*

*सिद्धि-(१) **दौवारिकः।** द्वार+ठक्। द्वार+इक। द् औ वा र्+इक। दौवारिक+सु। दौवारिकः।*

*यहां 'द्वार' शब्द से **'तत्र नियुक्तः'** (४।४।६९) से प्राग्वहतीय 'ठक्' प्रत्यय है। **'ठस्येकः'** (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है। इस सूत्र से आदिम अच् को वृद्धि का प्रतिषेध होकर इसके वकार से पूर्व ऐच् (औ) आगम होता है।*

*(२) **दौवारपालम्।** यहां 'द्वारपाल' शब्द से **'तस्येदम्'** (४।३।१२०) से प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय है। यहां तदादिविधि होती है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **सौवरः।** यहां 'स्वर' शब्द से **'अधिकृत्य कृते ग्रन्थे'** (४।३।८७) से अधिकृत्य अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

वृद्धिप्रतिषेध ऐजागमश्च-

(५) न्यग्रोधस्य च केवलस्य।५।

प०वि०-न्यग्रोधस्य ६।१ च अव्ययपदम्, केवलस्य ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, आचाम्, आदेः, किति, न, यात्, पूर्व, तु, तस्मात्, ऐजिति चानुवर्तते।

अन्वयः-केवलस्य न्यग्रोधस्याऽङ्गस्य च यकाराद् अचामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिर्न, तस्मात् पूर्व तु ऐच्।

अर्थः-केवलस्य न्यग्रोधस्याऽङ्गस्य च यकारादुत्तरस्याचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्न भवति, तस्माद् यकारात् पूर्व तु ऐजागमो भवति।

उदा०-न्यग्रोधस्य विकार इति नैयग्रोधश्चमसः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(केवलस्य) केवल (न्यग्रोधस्य) न्यग्रोध इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि*

(न) नहीं होती है (तु) अपितु (तस्मात्) उस (यात्) यकार से (पूर्वम्) पूर्व (ऐच्) ऐच् आगम होता है।

*उदा०-**नैयग्रोधश्चमसः।** न्यग्रोध (बरगद=बड़) की लकड़ी का बना हुआ यज्ञिय चमस।*

*सिद्धि-**नैयग्रोधः।** यहां 'न्यग्रोध' शब्द से **'अनुदात्तादेरञ्'** (४।२।४४) से विकार-अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'न्यग्रोध' शब्द के आदिम अच् (अ) को वृद्धि का प्रतिषेध होकर इसके यकार के पूर्व ऐच् (ऐ) आगम होता है।*

विशेषः *'न्यग्रोध' शब्द में यकार है; वकार नहीं। अतः सम्भवप्रमाण के बल से **'य्वाभ्याम्'** इस पद में से यकार की अनुवृत्ति की जाती है, वकार की नहीं।*

उक्तप्रतिषेधः-

(६) न कर्मव्यतिहारे।६।

प०वि०-न अव्ययपदम्, कर्मव्यतिहारे ७।१।

स०-कर्मणो व्यतिहार इति कर्मव्यतिहारः, तस्मिन्-कर्मव्यतिहारे (षष्ठीतत्पुरुषः)। कर्म=क्रिया, व्यतिहारः=परस्परं करणम्।

अन्वयः-यदुक्तं कर्मव्यतिहारे तन्न।

अर्थः-अस्मिन् प्रकरणे यदुक्तं कर्मव्यतिहारेऽर्थे तन्न भवति।

उदा०-व्यावक्रोशी वर्तते। व्यावलेखी वर्तते। व्यावहासी वर्तते।

आर्यभाषाः अर्थ-*इस प्रकरण में जो विधान किया गया है वह (कर्मव्यतिहारे) कर्मव्यतिहार अर्थ में (न) नहीं होता है। किसी क्रिया का परस्पर करना कर्मव्यतिहार कहाता है।*

*उदा०-**व्यावक्रोशी वर्तते।** परस्पर आह्वान हो रहा है। **व्यावलेखी वर्तते।** परस्पर लेखन-कार्य चल रहा है। **व्यावहासी वर्तते।** परस्पर हास्य चल रहा है।*

*सिद्धि-**व्यावक्रोशी।** यहां वि-अव उपसर्ग पूर्वक **'क्रुश आह्वाने'** (भ्वा०प०) धातु से भाव तथा कर्मव्यतिहार अर्थ में 'णच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् **'णचः स्त्रियामञ्'** (५।४।१४) से स्वार्थ में तद्धित 'अञ्' प्रत्यय है। **'न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्'** (७।३।३) से वृद्धि का प्रतिषेध और ऐच् आगम का विधान किया गया है। इस सूत्र से कर्मव्यतिहार अर्थ में यहां आदिम अच् को वृद्धि होती है और ऐच् आगम नहीं होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'टिड्ढाणञ्०'** (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है।*

ऐसे ही 'लिख अक्षरविन्यासे' (भ्वा०प०) धातु से व्यावलेखी। 'हसे हसने' (भ्वा०प०) धातु से-व्यावहासी।

उक्तप्रतिषेधः--

(७) स्वागतादीनां च।७।

प०वि०-स्वागतादीनाम् ६।३ च अव्ययपदम्।

स०-स्वागत आदिर्येषां ते स्वागतादयः, तेषाम्-स्वागतादीनाम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, नेति चानुवर्तते।

अन्वयः-यदुक्तं स्वागतादीनामङ्गानां च तन्न।

अर्थः-अस्मिन् प्रकरणे यदुक्तं स्वागतादीनामङ्गानां च तन्न भवति।

उदाहरणम्--

(१) **स्वागत**-स्वागतमित्याह इति स्वागतिकः।

(२) **स्वध्वर**-स्वध्वरेण चरतीति स्वाध्वरिकः।

(३) **स्वङ्ग**-स्वङ्गस्यापत्यमिति स्वाङ्गिः।

(४) **व्यङ्ग**-व्यङ्गस्यापत्यमिति व्याङ्गिः।

(५) **व्यड**-व्यडस्यापत्यमिति व्याडिः।

(६) **व्यवहार**-व्यवहारेण चरतीति व्यावहारिकः।

(७) **स्वपति**-स्वपतौ साधुरिति स्वापतेयः।

स्वागत। स्वध्वर। स्वङ्ग। व्यङ्ग। व्यड। व्यवहार। स्वपति। इति स्वागतादयः।।

आर्यभाषाः अर्थ-*इस प्रकरण में जो विधान किया गया है वह (स्वागतादीनाम्) स्वागत-आदि (अङ्गानाम्) अङ्गों को (च) भी (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(स्वागत) **स्वागतिकः**। जो 'स्वागतम्' ऐसा कहता है वह पुरुष। (स्वध्वर) **स्वाध्वरिकः**। सु-अध्वर=उत्तम यज्ञ हेतु विचरण करनेवाला पुरुष। (स्वङ्ग) **स्वाङ्गिः**। स्वङ्ग का पुत्र। (व्यङ्ग) **व्याङ्गिः**। व्यङ्ग का पुत्र। (व्यड) **व्याडिः**। व्यड का पुत्र। (व्यवहार) **व्यावहारिक**। व्यवहार से विचरण करनेवाला पुरुष। (स्वपति) **स्वापतेयः**। वह द्रव्य कि जिस पर स्वपति=मालिक का उचित अधिकार हो।*

*सिद्धि-(१) **स्वागतिकः**। यहां 'स्वागत' शब्द से वा०-'**आहौ प्रभूतादिभ्यः**' (४।४।१) से आह-अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय है। इस सूत्र से '**न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ ताभ्यामैच्**' (७।३।३) से प्राप्त वृद्धि का प्रतिषेध नहीं होता है और ऐच् आगम नहीं होता है।*

*(२) **स्वाध्वरिकः**। यहां 'स्वध्वर' शब्द से '**चरति**' (४।४।८) से चरति-अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'व्यवहार' शब्द से-**व्यावहारिकः**।*

*(३) **स्वाङ्गिः**। यहां 'स्वङ्ग' शब्द से '**अत इञ्**' (४।१।९५) से अपत्य-अर्थ में 'इञ्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'व्यङ्ग' शब्द से-**व्याङ्गि**, 'व्यड' शब्द से-**व्याडिः**।*

*(४) **स्वापतेयः**। यहां 'स्वपति' शब्द से '**पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ्**' (४।४।१०४) से चरति-अर्थ में 'ढञ्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

उक्तप्रतिषेधः-

(८) श्वादेरिञि।८।

प०वि०-श्वादेः ६।१ इञि ७।१।

स०-श्वा आदिर्यस्य स श्वादिः, तस्य-श्वादेः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, नेति चानुवर्तते।

अन्वयः-श्वादेरङ्गस्य इञि यदुक्तं तन्न।

अर्थः-श्वादेरङ्गस्य इञि प्रत्यये परतो यदुक्तं तन्न भवति।

उदा०-श्वभस्त्रस्यापत्यमिति श्वाभस्त्रिः। श्वादंष्ट्रिः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(श्वादेः) श्वा जिसके आदि में है, उस (अङ्गस्य) अङ्ग को (इञि) इञ् प्रत्यय परे होने पर जो इस प्रकरण में विधान किया गया है वह कार्य (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**श्वाभस्त्रिः**। श्वभस्त्र का पुत्र। **श्वादंष्ट्रिः**। श्वदंष्ट्र का पुत्र।*

*सिद्धि-**श्वाभस्त्रिः**। यहां 'श्वभस्त्र' शब्द से '**अत इञ्**' (४।१।९५) से अपत्य-अर्थ में 'इञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से '**न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्**' (७।३।३) से प्राप्त वृद्धि का प्रतिषेध नहीं होता है और ऐच् आगम भी नहीं होता है। ऐसे ही 'श्वदंष्ट्र' शब्द से-**श्वादंष्ट्रिः**।*

उक्तप्रतिषेध-विकल्पः–

(९) पदान्तस्यान्यतरस्याम्।९।

प०वि०–पदान्तस्य ६।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०–पदशब्दोऽन्ते यस्य स पदान्तः, तस्य-पदान्तस्य (बहुव्रीहिः)।

अनु०–अङ्गस्य, न, श्वादेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–पदान्तस्य श्वादेरङ्गस्य यदुक्तं तदन्यतरस्यां न।

अर्थः–पदशब्दान्तस्य श्वादेरङ्गस्य यदुक्तं तद् विकल्पेन न भवति।

उदा०–शुन इव पदमस्येति श्वपदः, श्वपदस्येदमिति श्वापदम्, शौवापदम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(पदान्तस्य) पद शब्द जिसके अन्त में है और (श्वादेः) श्वा शब्द जिसके आदि में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग को जो इस प्रकरण में विधान किया गया है वह कार्य (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**श्वापदम्, शौवापदम्।** श्वा (कुत्ता) के समान पदचिह्न है जिसका वह प्राणी 'श्वपद' कहाता है। श्वपद का सम्बन्धी-श्वापद अथवा शौवापद। 'शौवापद' शब्द में **'अन्येषामपि दृश्यते'** (६।३।१३७) से दीर्घ है।*

सिद्धि-श्वापदम्।** यहां प्रथम श्वन् और पद शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। तत्पश्चात् 'श्वपद' शब्द से **'तस्येदम्'** (४।३।१२०) से इदम्-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। इस सूत्र से **'न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्'** (७।३।३) से प्राप्त वृद्धि का प्रतिषेध नहीं होता है और ऐच् आगम भी नहीं होता है। विकल्प-पक्ष में ऐच् (औ) आगम है-**शौवापदम्।

*'श्वापद' शब्द में वार्तिककार कात्यायन के मत में वा०-**'शुनो दन्तदंष्ट्राकर्णकुन्दवराहपुच्छपदेषु'** (६।३।१३७) से दीर्घ होता है।*

{उत्तरपदवृद्धिः}

अधिकारः–

(१०) उत्तरपदस्य।१०।

वि०–उत्तरपदस्य ६।१।

अर्थः–उत्तरपदस्य इत्यधिकारोऽयम्। **'हनस्तोऽचिण्णलोः'** (७।३।३२) प्रागेतस्माद् यदितोऽग्रे वक्ष्यति 'उत्तरपदस्य' इत्येवं तद् वेदितव्यम्। यथा वक्ष्यति-**'अवयवादृतोः'** (७।३।११) इति।

उदा०-पूर्ववार्षिकम्। अपरवार्षिकम्। पूर्वहैमनम्। अपरहैमनम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(उत्तरपदस्य) 'उत्तरपदस्य' यह अधिकार-सूत्र है। पाणिनि मुनि '**हनस्तोऽचिण्णलोः**' (७।३।३२) इस सूत्र से पहले-पहले जो इससे आगे कहेंगे वह 'उत्तरपद' को होता है, ऐसा जानें। जैसे कि पाणिनि मुनि कहेंगे-'**अवयवादृतोः**' (७।३।११) अर्थात् अवयववाची पद से परे ऋतुवाची उत्तरपद के अचों में से आदिम अच् को तद्धित ञित्, णित् और कित् प्रत्यय परे होने पर वृद्धि होती है।*

*उदा०-**पूर्ववार्षिकम्।** वर्षा ऋतु के पूर्व भाग में होनेवाला। **अपरवार्षिकम्।** वर्षा ऋतु के अपर=पश्चिम भाग में होनेवाला। **पूर्वहैमनम्।** हेमन्त ऋतु के पूर्व भाग में होनेवाला। **अपरहैमनम्।** हेमन्त ऋतु के अपर=पश्चिम भाग में होनेवाला।*

*सिद्धि-'**पूर्ववार्षिकम्**' आदि पदों की सिद्धि आगे यथास्थान लिखी जायेगी।*

उत्तरपदवृद्धिः—

(११) अवयवादृतोः।११।

प०वि०-अवयवात् ५।१ ऋतोः ५।१।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, उत्तरपदस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अवयवाद् ऋतोरङ्गस्योत्तरपदस्याचामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिः।

अर्थः-अवयववाचिनः पूर्वपदाद् उत्तरस्य ऋतुवाचिनोऽङ्गस्य उत्तरपदस्याऽचामादेरचः स्थाने ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति।

उदा०-पूर्वं वर्षाणामिति पूर्ववर्षाः। पूर्ववर्षासु भवमिति पूर्ववार्षिकम्। अपरं वर्षाणामिति अपरवर्षाः। अपरवर्षासु भवमिति अपरवार्षिकम्। पूर्वं हेमन्तस्येति पूर्वहेमन्तम्। पूर्वहेमन्ते भवमिति पूर्वहैमनम्। अपरं हेमन्तस्येति अपरहेमन्तम्। अपरहेमन्ते भवमिति अपरहैमनम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अवयवात्) अवयववाची पूर्वपद से परे (ऋतोः) ऋतुवाची (अङ्गस्य) अङ्ग के (उत्तरपदस्य) उत्तरपद के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है।*

*उदा०-**पूर्ववार्षिकम्**। वर्षा ऋतु के पूर्व भाग में होनेवाला कार्य। **अपरवार्षिकम्**। वर्षा ऋतु के अपर=पश्चिम भाग में होनेवाला कार्य। **पूर्वहैमनम्**। हेमन्त ऋतु के पूर्व भाग में होनेवाला कार्य। **अपरहैमनम्**। हेमन्त ऋतु के अपर भाग में होनेवाला कार्य।*

*सिद्धि-(१) **पूर्ववार्षिकम्**। यहां प्रथम 'पूर्व' और 'वर्षा' शब्दों का '**पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे**' (२।२।१) से एकदेशितत्पुरुष समास है। तत्पश्चात् 'पूर्ववर्षा' इस ऋतु अवयववाची शब्द से '**वर्षाभ्यष्ठक्**' (४।३।१८) से भव-अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय है। इस सूत्र से उत्तरपदस्थ 'वर्षा' शब्द के आदिम 'अच्' को वृद्धि होती है। ऐसे ही-**अपरवार्षिकम्**।*

*(२) **पूर्वहैमनम्**। यहां प्रथम 'पूर्व' और हेमन्त' शब्दों का पूर्ववत् एकदेशितत्पुरुष समास है। तत्पश्चात् 'पूर्वहिमन्त' इस ऋतु अवयववाची शब्द से '**सर्वत्राण् च तलोपश्च**' (४।३।२२) से भव-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय और हिमन्त' के तकार का लोप होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**अपरहैमनम्**।*

उत्तरपदवृद्धिः-

(१२) सुसर्वार्धाज्जनपदस्य।१२।

प०वि०-सु-सर्व-अर्धात् ५।१ जनपदस्य ६।१।

स०-सुश्च सर्वश्च अर्धं च एतेषां समाहारः सुसर्वार्धम्, तस्मात्-सुसर्वार्धात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, उत्तरपदस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सुसर्वार्धाज्जनपदस्याऽङ्गस्योत्तरपदस्याचामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिः।

अर्थः-सुसर्वार्धात् पूर्वपदाद् उत्तरस्य जनपदवाचिनोऽङ्गस्य उत्तर-पदस्याऽचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति।

उदा०-(सुः) शोभनाश्च ते पञ्चाला इति सुपञ्चालाः, सुपञ्चालेषु जात इति सुपाञ्चालकः। **(सर्वः)** सर्वे च ते पञ्चाला इति सर्वपञ्चालाः, सर्वपञ्चालेषु जात इति सर्वपाञ्चालकः। **(अर्धम्)** पञ्चालानामर्धमिति अर्धपञ्चालाः, अर्धपञ्चालेषु जात इति अर्धपाञ्चालकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सुसर्वार्धात्) सु, सर्व, अर्ध इन पूर्वपदों से परे (जनपदस्य) जनपदवाची (अङ्गस्य) अङ्ग के (उत्तरपदस्य) उत्तरपद के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है।*

उदा०-(सु) सुपाञ्चालकः। उत्तम पञ्चाल में उत्पन्न हुआ। (सर्व) सर्वपाञ्चालकः। सब पञ्चाल में उत्पन्न हुआ। (अर्धम्) अर्धपाञ्चालकः। आधे पञ्चाल में उत्पन्न हुआ।

सिद्धि-(१) सुपाञ्चालकः। *यहां प्रथम 'सु' और 'पञ्चाल' शब्दों का **'कुगतिप्रादयः'** (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है। तत्पश्चात् 'सुपञ्चाल' शब्द से **'अवृद्धादपि बहुवचनविषयात्'** (४।२।१२४) से जात-आदि अर्थों में 'वुञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'पञ्चाल' उत्तरपद को आदिवृद्धि होती है।*

(२) सर्वपाञ्चालकः। *यहां 'सर्व' और 'पाञ्चाल' शब्दों का **'पूर्वकालैकसर्वजरत्-पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन'** (२।१।४९) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

(३) अर्धपाञ्चालकः। *यहां 'अर्ध' और 'पञ्चाल' शब्दों का **'अर्धं नपुंसकम्'** (२।२।२) से एकदेशितत्पुरुष समास है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

उत्तरपदवृद्धिः–

(१३) दिशोऽमद्राणाम्।१३।

प०वि०-दिशः ५।१ अमद्राणाम् ६।३।

स०-न मद्रा इति अमद्राः, तेषाम्-अमद्राणाम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, उत्तरपदस्य, जनपदस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-दिशोऽमद्रस्य जनपदस्याङ्गस्योत्तरपदस्याऽचामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिः।

अर्थः-दिग्वाचिनः शब्दाद् उत्तरस्य मद्रवर्जितस्य जनपदवाचिनोऽङ्गस्य उत्तरपदस्याऽचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति।

उदा०-पूर्वेषु पञ्चालेषु भव इति पूर्वपाञ्चालकः। अपरपाञ्चालकः। दक्षिणपाञ्चालकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दिशः) दिशावाची पूर्वपद से परे (अमद्रस्य) मद्र से भिन्न (जनपदस्य) जनपदवाची (अङ्गस्य) अङ्ग के (उत्तरपदस्य) उत्तरपद के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है।*

*उदा०-**पूर्वपाञ्चालकः।** पूर्व पञ्चाल में होनेवाला। **अपरपाञ्चालकः।** अपर (पश्चिम) पञ्चाल में होनेवाला। **दक्षिणपाञ्चालकः।** दक्षिण पञ्चाल में होनेवाला।*

*सिद्धि-(१) पूर्वपाञ्चालकः। यहां 'पूर्व' और 'पञ्चाल' शब्दों का '**तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च**' (२।१।५०) से तद्धितार्थ में कर्मधारय तत्पुरुष समास है। '**अवृद्धादपि बहुवचनविषयात्**' (४।२।१२५) से भव-अर्थ में 'वुञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'पञ्चाल' उत्तरपद को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**अपरपाञ्चालकः, दक्षिणपाञ्चालकः।***

विशेषः *पञ्चाल जनपद के तीन हिस्से थे-पूर्वपञ्चाल, अपरपञ्चाल और दक्षिणपञ्चाल। महाभारत के अनुसार दक्षिण और उत्तर पञ्चाल के बीच गंगा-नदी सीमा थी। एटा-फर्रुखाबाद के जिले दक्षिण-पञ्चाल थे। ज्ञात होता है कि उत्तर-पञ्चाल के भी पूर्व और अपर दो भाग थे, दोनों को रामगंगा नदी बांटती थी। ये ही व्याकरण के पूर्वपञ्चाल और अपरपञ्चाल हैं। इसी प्रकार समस्त जनपद अथवा उसके आधे भाग के वाचक नाम भाषा में प्रचलित थे-सर्वपञ्चाल, **अर्धपञ्चाल** (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ५८)।*

उत्तरपदवृद्धिः-

(१४) प्राचां ग्रामनगराणाम्।१४।

प०वि०-प्राचाम् ६।३ ग्राम-नगराणाम् ६।३।

स०-ग्रामाश्च नगराणि च तानि ग्रामनगराणि, तेषाम्-ग्रामनगराणाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, उत्तरपदस्य, दिश इति चानुवर्तते।

अन्वयः-दिशः प्राचां ग्रामनगराणाम् अङ्गानाम् उत्तरपदानाम-चामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिः।

अर्थः-दिग्वाचिनः शब्दाद् उत्तरेषां प्राचां देशे वर्तमानानां ग्रामवाचिनां नगरवाचिनां चोत्तरपदानामचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति।

उदा०-**ग्रामाणाम्**-पूर्वेषुकामशम्यां भव इति पूर्वैषुकामशमः। अपरैषुकामशमः। पूर्वकार्ष्णमृत्तिकः। अपरकार्ष्णमृत्तिकः। **नगराणाम्**-पूर्वस्मिन् पाटलिपुत्रे भव इति पूर्वपाटलिपुत्रकः। अपरपाटलिपुत्रकः। पूर्वकान्यकुब्जकः। अपरकान्यकुब्जकः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(दिशः) दिशावाची शब्द से परे (प्राचाम्) प्राग्देशीय (ग्रामनगराणाम्) ग्रामवाची और नगरवाची (अङ्गानाम्) अङ्गों के (उत्तरपदानाम्) उत्तरपदों के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है।*

*उदा०-(ग्राम) **पूर्वैषुकामशमः**। पूर्व-इषुकामशमी ग्राम में होनेवाला। **अपरैषुकामशमः**। अपर-इषुकामशमी ग्राम में होनेवाला। **पूर्वकार्ष्णमृत्तिकः**। पूर्व-कृष्णमृत्तिका ग्राम में होनेवाला। **अपरकार्ष्णमृत्तिकः**। अपर-कृष्णमृत्तिका ग्राम में होनेवाला। (नगर) **पूर्वपाटलिपुत्रकः**। पूर्व-पाटलिपुत्र नगर में होनेवाला। **अपरपाटलिपुत्रकः**। अपर-पाटलिपुत्र नगर में होनेवाला। **पूर्वकान्यकुब्जकः**। पूर्व-कान्यकुब्ज नगर में होनेवाला। **अपरकान्यकुब्जकः**। अपर-कान्यकुब्ज नगर में होनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **पूर्वैषुकामशमः**। यहां प्रथम 'पूर्वा' और 'इषुकामशमी' शब्दों का **'दिक्संख्ये संज्ञायाम्'** (२।१।५०) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है-**पूर्वा चेयम् इषुकामशमीति पूर्वेषुकामशमी**। तत्पश्चात् 'पूर्वेषुकामशमी' शब्द से **'तत्र भवः'** (४।२।५३) से भव-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। इस सूत्र से ग्रामवाची 'इषुकामशमी' उत्तरपद को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**अपरैषुकामशमी** आदि।*

*(२) **पूर्वपाटलिपुत्रकः**। यहां 'पूर्व' और 'पाटलिपुत्र' शब्दों का **'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च'** (२।१।५१) से तद्धितार्थ में कर्मधारयतत्पुरुष समास है। तत्पश्चात्-**'रोपधेतोः प्राचाम्'** (४।२।१२३) से भव-अर्थ में 'वुञ्' प्रत्यय है। सूत्र कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **पूर्वकान्यकुब्जः**। यहां 'पूर्व' और 'कान्यकुब्ज' शब्दों का पूर्ववत् तद्धितार्थ में कर्मधारयतत्पुरुष समास है। तत्पश्चात् 'तत्र भवः' (४।३।५३) से भव-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। सूत्र कार्य पूर्ववत् है।*

विशेषः *(१) **पाटलिपुत्र**-मगध या दक्षिण बिहार के एक नगर का नाम। यह गंगा और सोननदी के संगम पर बसाया गया था। इसका दूसरा नाम कुसुमपुर है (श०कौ०)।*

*(२) **कान्यकुब्ज**-इक्षुमती या काली नदी तथा गंगा के संगम पर अवस्थित प्राचीनकालीन एक राज्य। इसकी राजधानी आधुनिक कन्नौज कस्बा है, जो फर्रुखाबाद जिले के अन्तर्गत है। यह राजा गाधि की राजधानी थी (श०कौ०)।*

उत्तरपदवृद्धिः–

(१५) संख्यायाः संवत्सरसंख्यस्य च।१५।

प०वि०–संख्यायाः ५।१ संवत्सर-संख्यस्य ६।१ च अव्ययपदम्।

स०–संवत्सरश्च संख्या च एतयोः समाहारः संवत्सरसंख्यम्, तस्य-संवत्सरसंख्यस्य (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, उत्तरपदस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः–संख्यायाः संवत्सरसंख्यस्याऽङ्गयोत्तरपदस्याचामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिः।

अर्थः–संख्यावाचिनः शब्दाद् उत्तरस्य संवत्सरशब्दस्य संख्यावाचिनश्चाङ्गस्योत्तरपदस्याचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति।

उदा०–**(संवत्सरः)** द्वौ संवत्सरावधीष्टो भृतो भूतो भावी वेति द्विसांवत्सरिकः। त्रिसांवत्सरिकः। **(संख्या)** द्वे षष्टी अधीष्टो भृतो भूतो भावी वेति द्विषाष्टिकः। द्विसाप्ततिकः।

***आर्यभाषाः* अर्थ**–*(संख्यायाः) संख्यावाची शब्द से परे (संवत्सरसंख्यस्य) संवत्सर और संख्यावाची (अङ्गस्य) अङ्ग के (उत्तरपदस्य) उत्तरपद के (च) भी (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है।*

उदा०–(संवत्सर) ***द्विसांवत्सरिकः।*** *दो संवत्सर तक अधीष्ट=सत्कृत (आचार्य), भृत, भूत व भावी कार्य।* ***त्रिसांवत्सरिकः।*** *तीन संवत्सर तक अधीष्ट=सत्कृत (आचार्य), भृत, भूत व भावी कार्य।* ***(संख्या) द्विषाष्टिकः।*** *२+६०=६२ वर्ष तक अधीष्ट, भृत, भूत व भावी कार्य।* ***द्विसाप्ततिकः।*** *२+७०=७२ वर्ष तक अधीष्ट, भृत, भूत व भावी कार्य।*

सिद्धि–द्विसांवत्सरिकः। *यहां 'द्वि' और 'संवत्सर' शब्दों का* ***'तद्धितार्थोत्तरपद-समाहारे च'*** *(२।१।५१) से तद्धितार्थ में कर्मधारयतत्पुरुष समास है।* ***'तमधीष्टो भृतो भूतो भावी'*** *(५।१।७९) से अधीष्ट-आदि अर्थों में 'ठञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से संवत्सर उत्तरपद को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही–* ***त्रिसांवत्सरिकः। द्विषाष्टिकः। त्रिसाप्तिकः।*** *द्विषष्टि आदि शब्द संख्येय वर्ष अर्थ के वाचक हैं, अतः इससे काल-अधिकार में विहित पूर्ववत् 'ठञ्' प्रत्यय होता है।*

उत्तरपदवृद्धिः–

(१६) वर्षस्याभविष्यति।१६।

प०वि०–वर्षस्य ६।१ अभविष्यति ७।१।

स०– न भविष्यद् इति अभविष्यत्, तस्मिन्-अभविष्यति (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, उत्तरपदस्य, संख्यायाः इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संख्याया वर्षस्योत्तरपदस्याऽङ्गस्याचामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिः, अभविष्यति।

अर्थः–संख्यावाचिनः शब्दाद् उत्तरस्य वर्षशब्दस्योत्तरपदस्याऽङ्गस्याचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति, स चेत् तद्धितो भविष्यत्यर्थे न भवति।

उदा०–द्वे वर्षे अधीष्टो भृतो भूतो वेति द्विवार्षिकः, त्रिवार्षिकः।

आर्यभाषाः अर्थ–*(संख्यायाः) संख्यावाची शब्द से परे (वर्षस्य) वर्ष इस (उत्तरपदस्य) उत्तरपद रूप (अङ्गस्य) अङ्ग के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है (अभविष्यति) यदि वह तद्धित प्रत्यय भविष्यत्काल {भावी} अर्थ में न हो।*

*उदा०–**द्विवार्षिकः।** दो वर्ष तक अधीष्ट, भृत वा भूत कार्य। **त्रिवार्षिकः।** तीन वर्ष तक अधीष्ट, भृत वा भूत कार्य।*

*सिद्धि–**द्विवार्षिकः।** यहां 'द्वि' और वर्ष शब्दों का **'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च'** (२।१।५१) से तद्धितार्थ में कर्मधारयतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से 'वर्ष' उत्तरपद को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही–**त्रिवार्षिकः।***

*'**अभविष्यति**' का कथन इसलिये किया है कि यहां उत्तरपद को आदिवृद्धि न हो–**त्रीणि वर्षाणि भावीति–त्रैवर्षिकम्।** तीन वर्ष तक होनेवाला कार्य।*

उत्तरपदवृद्धिः–

(१७) परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणयोः।१७।

प०वि०–परिमाणान्तस्य ६।१ असंज्ञा-शाणयोः ७।२।

स०-परिमाणमन्ते यस्य स परिमाणान्तः, तस्य-परिमाणान्तस्य (बहुव्रीहिः)। संज्ञा च शाणं च ते संज्ञाशाणे, न संज्ञाशाणे इति असंज्ञाशाणे, तयोः-असंज्ञाशाणयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, उत्तरपदस्य, संख्यायाः इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संख्यायाः परिमाणान्तरस्याङ्गस्योत्तरपदस्याऽचामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिः, असंख्याशाणयोः।

अर्थः-संख्यावाचिनः शब्दाद् उत्तरस्य परिमाणान्तस्याङ्गस्योत्तरपदस्याऽचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति, संज्ञायां विषये शाणे चोत्तरपदे तु न भवति।

उदा०-द्वौ कुडवौ प्रयोजनमस्येति द्विकौडविकः। द्वाभ्यां सुवर्णाभ्यां क्रीतमिति द्विसौवर्णिकम्। द्वाभ्यां निष्काभ्यां क्रीतमिति द्विनैष्किकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संख्यायाः) संख्यावाची शब्द से परे (परिमाणान्तस्य) परिमाणवाची शब्द जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग के (उत्तरपदस्य) उत्तरपद के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है (असंज्ञाशाणयोः) संज्ञा विषय और शाण-उत्तरपद में तो नहीं होती है।*

*उदा०-**द्विकौडविकः**। जिसका दो कुडव प्रयोजन है वह पुरुष। कुडव=साढे बारह तोला (ढाई छटांक) सुवर्ण आदि। **द्विसौवर्णिकम्**। दो सुवर्णों से क्रीत (खरीदा हुआ) वस्त्र आदि। सुवर्ण=एक कर्ष, १० गुंजा (रत्ती)। **द्विनैष्किकम्**। दो निष्कों से क्रीत वस्त्र आदि। निष्क=१६ माशे का सोने का सिक्का।*

सिद्धि-(१) द्विकौडविकम्। *यहां 'द्वि' और 'कुडव' शब्दों का '**तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च**' (२।१।५१) से तद्धितार्थ में कर्मधारयतत्पुरुष समास है। 'द्विकुडव' शब्द से '**प्रयोजनम्**' (५।१।१०८) से प्रयोजन-अर्थ में 'ठञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से परिमाणवाची 'कुडव' उत्तरपद को आदिवृद्धि होती है।*

*(२) **द्विसौवर्णिकम्**। यहां 'द्वि' और 'सुवर्ण' शब्दों का पूर्ववत् कर्मधारयतत्पुरुष समास है। 'द्विसुवर्ण' शब्द से '**तेन क्रीतम्**' (५।१।३६) से क्रीत-अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**द्विनैष्किकम्**।*

उत्तरपदवृद्धिः--

(१८) जे प्रोष्ठपदानाम् ।१८।

प०वि०-जे ७ ।१ प्रोष्ठपदानाम् ६ ।३ ।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, कितीति चानुवर्तते ।

अन्वयः-प्रोष्ठपदानाम् अङ्गानाम् उत्तरपदानामाचामादेरचो जे तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिः ।

अर्थः-प्रोष्ठपदानाम्=प्रोष्ठपदवाचिनाम् अङ्गानाम् उत्तरपदानाम-चामादेरचः स्थाने, जे=जातार्थे तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति ।

उदा०-प्रोष्ठपदाभिर्युक्तः कालः प्रोष्ठपदाः । प्रोष्ठपदासु जात इति प्रोष्ठपादो माणवकः । भद्रपदाभिर्युक्तः कालो भद्रपदाः । भद्रपदासु जात इति भद्रपादो माणवकः ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(प्रोष्ठपदानाम्) प्रोष्ठपदवाची (अङ्गानाम्) अङ्गों के (उत्तरपदानाम्) उत्तरपद के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (जे) जात-अर्थ में विद्यमान (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है।*

*उदा०-**प्रोष्ठपादो माणवकः ।** प्रोष्ठपदा नक्षत्र से युक्त काल-प्रोष्ठपदा कहाता है। प्रोष्ठपदा में उत्पन्न प्रोष्ठपाद बालक। ऐसे ही-**भद्रपादो माणवकः ।***

*सिद्धि-**प्रोष्ठपादः ।** यहां प्रथम 'प्रोष्ठपदा' शब्द से **'नक्षत्रेण युक्तः कालः'** (४ ।२ ।३) से युक्त-काल अर्थ में 'अण्' प्रत्यय और इसका **'लुबविशेषे'** (४ ।२ ।४) से लुप् हो जाता है। तत्पश्चात् **'सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्'** (४ ।३ ।१६) से जात-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है। इस सूत्र से 'प्रोष्ठपदा' में विद्यमान 'पद' उत्तरपद को आदिवृद्धि होती है।*

विशेषः** (१) सूत्रपाठ में **'प्रोष्ठपदानाम्'** इस बहुवचन निर्देश से उसके पर्यायवाची 'भद्रपदा' शब्द का भी ग्रहण किया जाता है-**भद्रपादो माणवकः ।

(२) 'जे' शब्द से जात-अर्थ का ग्रहण होता है।

(३) प्रोष्ठपदा चार नक्षत्रों का समूह है। दो पूर्वप्रोष्ठपदा और दो उत्तरपोष्ठपदा नामक नक्षत्र हैं।

*(४) प्रोष्ठः=**गौरिव पादा यस्य स प्रोष्ठपदः ।** 'सुप्रातः०' (५ ।४ ।१२०) **इति निपातनात्** 'पादः पत्' (६ ।३ ।१२०) **इत्यनेन प्राप्तः पदादेशो न भवति । भद्रः=गौः ।***

{उभयपदवृद्धिः}

उभयपदवृद्धिः–

(१६) हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च।१६।

प०वि०–हृद्-भग-सिन्ध्वन्ते ७।१ पूर्वपदस्य ६।१ च अव्ययपदम्।

स०–हृच्च भगं च सिन्धुश्च एतेषां समाहारो हृद्भगसिन्धु। हृद्भगसिन्धु अन्ते यस्य तद् हृद्भगसिन्ध्वन्तम्, तस्मिन्-हृद्भगसिन्ध्वन्ते (समाहारद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०–अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, उत्तरपदस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः–हृद्भगसिन्ध्वन्तेऽङ्गे पूर्वपदस्योत्तरपदस्य चामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिः।

अर्थः–हृद्भगसिन्ध्वन्तेऽङ्गे पूर्वदस्योत्तरपदस्य चाचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति।

उदा०–(हृद्) सुहृदयस्य भाव इति सौहार्दम्। सुहृदयस्येदमिति सौहार्दम्। **(भगम्)** सुभगस्य भाव इति सौभाग्यम्। दुर्भगस्य भाव इति दौर्भाग्यम्। सुभगाया अपत्यमिति सौभागिनेयः। दुर्भगाया अपत्यमिति दौर्भागिनेयः। **(सिन्धुः)** सक्तुप्रधानाः सिन्धव इति सक्तुसिन्धवः। सक्तुसिन्धुषु भव इति साक्तुसैन्धवः। पानसिन्धुषु भव इति पानसैन्धवः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(हृद्भगसिन्ध्वन्ते) हृद्, भग, सिन्धु हैं अन्त में जिसके उस (अङ्गे) अङ्ग में (पूर्वपदस्य) पूर्वपद के (च) और (उत्तरपदस्य) उत्तरपद के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है।*

*उदा०–(हृद्) **सौहार्दम्।** सुहृदय का भाव, सुहृदय से सम्बन्धित। (भग) **सौभाग्यम्।** सुभग का भाव। **दौर्भाग्यम्।** दुर्भग का भाव। **सौभागिनेय।** सुभगा का पुत्र। **दौर्भागिनेयः।** दुर्भगा का पुत्र। (सिन्धु) **साक्तुसिन्धवः।** सक्तुप्रधान सिन्धु में होनेवाला। **पानसैन्धवः।** पानप्रधान सिन्धु में होनेवाला। सिन्धु=नदी।*

*सिद्धि-(१) **सौहार्दम्।** यहां 'सुहृदय' शब्द से 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' (५।१।१२४) से भाव-अर्थ में 'ष्यञ्' प्रत्यय है। 'वा शोकष्यञ्रोगेषु' (६।३।५१) से हृदय के स्थान में 'हृद्' आदेश होता है। इस सूत्र से पूर्वपद और उत्तरपद को आदिवृद्धि होती है।*

*(२) **सौहार्दम्।** यहां 'सुहृदय' शब्द से **'तस्येदम्'** (४।३।१२०) से इदम्-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। **हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेषु'** (६।३।५०) से 'हृदय' के स्थान में 'हृद्' आदेश होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **सौभाग्यम्।** यहां 'सुभग' शब्द से पूर्ववत् भाव-अर्थ में 'ष्यञ्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'दुर्भग' शब्द से-**दौर्भाग्यम्।***

*(४) **सौभागिनेयः।** यहां 'सुभगा' शब्द से **'कल्याण्यादीनामिनङ् च'** (४।१।१२६) से अपत्य-अर्थ में 'ढक्' प्रत्यय और इनङ् आदेश है। सूत्र कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'दुर्भगा' शब्द से-**दौर्भागिनेयः।***

*(५) **साक्तुसैन्धवः।** यहां प्रथम सक्तुप्रधान और सिन्धु शब्दों का वा०-**'शाकपार्थिवादीनामुपसंख्यानम्'** (२।१।६०) से मध्यपदलोपी कर्मधारय समास है। तत्पश्चात् 'सक्तुसिन्धु' शब्द से 'तत्र भवः' (४।३।५३) से भव-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**पानसैन्धवः।***

उभयपदवृद्धिः-

(२०) अनुशतिकादीनां च।२०।

प०वि०-अनुशतिकादीनाम् ६।३ च अव्ययपदम्।

स०-अनुशतिक आदिर्येषां ते-अनुशतिकादयः, तेषाम्-अनुशतिकादीनाम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, उत्तरपदस्य, पूर्वपदस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-अनुशतिकादीनामङ्गानां च पूर्वपदस्योत्तरपदस्य चाचामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिः।

अर्थः-अनुशतिकादीनामङ्गानां च पूर्वपदस्योत्तरपदस्य चाऽचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति।

उदा०-अनुशतिकस्येदमिति आनुशातिकम्। अनुहोडेन चरतीति आनुहौडिकः। अनुसंवरणे दीयते इति आनुसांवरणम्। अनुसंवत्सरे दीयते इति आनुसांवत्सरिकः, इत्यादिकम्।

अनुशतिक। अनुहोड। अनुसंवरण। अनुसंवत्सर। अङ्गारवेणु। असिहत्य। वध्योग। पुष्करसत्। अनुहरत्। कुरुकत। कुरुपञ्चाल।

उदकशुद्ध। इहलोक। परलोक। सर्वलोक। सर्वपुरुष। सर्वभूमि। प्रयोग। परस्त्री। राजपुरुषात् ष्यञि। सूत्रनड। इति अनुशतिकादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अनुशतिकादीनाम्) अनुशतिक आदि (अङ्गानाम्) अङ्गों के (पूर्वपदस्य) पूर्वपद और (उत्तरपदस्य) उत्तरपद के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है।*

*उदा०-**आनुशतिकम्।** अनुशतिक सम्बन्धी कार्य। 'शुक्रनीति' (२।१।४४) के अनुसार सेना में शतानीक नामक अधिकारी का सहायक अनुशातिक कहलाता था। **आनुहौडिकः।** बेड़ा/नाव से विचरण करनेवाला। **आनुसांवरणम्।** सुरक्षा-कोष में देय द्रव्य। **आनुसांवत्सरिकः।** संवत्सर में होनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **आनुशतिकम्।** यहां 'अनुशतिक' शब्द से 'तस्येदम्' (४।३।१२०) से इदम्-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'अनुशतिक' शब्द के पूर्वपद और उत्तरपद को आदिवृद्धि होती है।*

*(२) **आनुहोडिकम्।** यहां 'अनुहोड' शब्द से 'चरति' (४।४।८) से चरति-अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **आनुसांवरणम्।** यहां 'अनुसंवरण' शब्द से 'तत्र च दीयते कार्यं भववत्' (५।१।९५) से भववत्-अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **आनुसांवत्सरिकम्।** यहां 'अनुसंवत्सर' शब्द से 'तत्र च दीयते कार्यं भववत्' (५।१।९५) से भववत् अतिदेश होकर 'बह्वचोऽन्तोदात्ताट्ठञ्' (४।३।६७) से भव-अर्थ में 'ठञ्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

उभयपदवृद्धिः-

(२१) देवताद्वन्द्वे च।२१।

प०वि०-देवताद्वन्द्वे ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-देवतानां द्वन्द्व इति देवताद्वन्द्वः, तस्मिन्-देवताद्वन्द्वे (षष्ठी-तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, उत्तरपदस्य, पूर्वपदस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-देवताद्वन्द्वे चाऽङ्गस्य पूर्वपदस्योत्तरपदस्य चाऽचामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिः।

अर्थः-देवतावाचिनां शब्दानां द्वन्द्वे समासे चाऽङ्गस्य पूर्वपदस्योत्तरपदस्य चाऽचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति ।

उदा०-अग्निमारुतीं पृश्निमालभेत (मै०सं० २।५।७)। अग्निमारुतं कर्म।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(देवताद्वन्द्वे) देवतावाची शब्दों के द्वन्द्वसमास में (च) भी (अङ्गस्य) अङ्ग के (पूर्वपदस्य) पूर्वपद के और (उत्तरपदस्य) उत्तरपद के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है।*

*उदा०-**अग्निमारुतीं पृश्निमालभेत** (मै०सं० २।५।७)। **अग्निमारुतं कर्म।***

*सिद्धि-**आग्निमारुतीम्।** यहां प्रथम देवतावाची अग्नि और मरुत् शब्दों का द्वन्द्वसमास है-**अग्निश्च मरुच्च तौ अग्निमरुतौ।** तत्पश्चात्-**सास्य देवता'** (४।२।२४) से देवता-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है-**अग्निमरुतौ देवते अस्या इति-आग्निमारुती।** इस सूत्र से देवतावाची अग्नि और मरुत् शब्दों को उभयपद वृद्धि होती है। **'इद्वृद्धौ'** (६।३।२८) से 'अग्नि' शब्द को आनङ्-विषय में इकार आदेश और स्त्रीत्व-विवक्षा में **'टिड्ढाणञ्०'** (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय है। ऐसे ही-**अग्निमारुतं कर्म।***

उक्तप्रतिषेधः-

(२२) नेन्द्रस्य परस्य।२२।

प०वि०-न अव्ययपदम्, इन्द्रस्य ६।१ परस्य ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, देवताद्वन्द्वे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-देवताद्वन्द्वे परस्येन्द्रस्याङ्गस्याऽचामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिर्न।

अर्थः-देवतावाचिनां शब्दानां द्वन्द्वे समासे परस्येन्द्रस्याऽचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्न भवति।

उदा०-सौमेन्द्रः । आग्नेन्द्रः ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(देवताद्वन्द्वे) देवतावाची शब्दों के द्वन्द्वसमास में (परस्य) पर=उत्तरपदवर्ती (इन्द्रस्य) इन्द्र इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (वृद्धिः) वृद्धि (न) नहीं होती है।*

*उदा०-**सौमेन्द्रः**। सोम और इन्द्र जिसके देवता हैं। **आग्नेन्द्रः**। अग्नि और इन्द्र जिसके देवता हैं।*

*सिद्धि-सौमेन्द्रः। यहां प्रथम देवतावाची सोम और इन्द्र शब्दों का '**चार्थे द्वन्द्वः**' (२।२।२९) से द्वन्द्वसमास है-**सोमश्च इन्द्रश्च तौ सोमेन्द्रौ**। तत्पश्चात् '**साऽस्य** देवता' (४।२।२४) में देवता-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है। इस सूत्र से पर=उत्तरपदवर्ती 'इन्द्र' शब्द को आदिवृद्धि का प्रतिषेध होता है। **सोमेन्द्रौ देवते अस्येति-सौमेन्द्रः**। 'देवताद्वन्द्वे च' (६।३।२६) से अनङ् आदेश और 'आद्गुणः' (६।१।८७) से गुणरूप एकादेश होता है। ऐसे ही-**आग्नेन्द्रः**।*

उक्तप्रतिषेधः-

(२३) दीर्घाच्च वरुणस्य।२३।

प०वि०-दीर्घात् ५।१ च अव्ययपदम्, वरुणस्य ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, देवताद्वन्द्वे, नेति चानुवर्तते।

अन्वयः-देवताद्वन्द्वे दीर्घाच्च वरुणस्याङ्गस्याचामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिर्न।

अर्थः-देवतावाचिनां शब्दानां द्वन्द्वे समासे दीर्घादुत्तरस्य च वरुणस्याऽङ्गस्याऽचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्न भवति।

उदा०-ऐन्द्रावरुणम्। मैत्रावरुणम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(देवताद्वन्द्वे) देवतावाची शब्दों के द्वन्द्वसमास में (च) और (दीर्घात्) दीर्घान्त शब्द से परे (वरुणस्य) वरुण इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि (न) नहीं होती है।*

*उदा०-**ऐन्द्रावरुणम्**। इन्द्र और वरुण जिसके देवता हैं वह हवि। **मैत्रावरुणम्**। मित्र और वरुण जिसके देवता हैं वह हवि।*

*सिद्धि-**ऐन्द्रावरुणम्**। यहां प्रथम देवतावाची इन्द्र और वरुण शब्दों का '**चार्थे द्वन्द्वः**' (२।२।२९) से द्वन्द्वसमास है-**इन्द्रश्च वरुणश्च तौ इन्द्रावरुणौ**। **देवताद्वन्द्वे च**' (६।३।२६) से आनङ् आदेश होता है। तत्पश्चात् '**साऽस्य देवता**' (४।२।२४) से 'अण्' प्रत्यय है-**इन्द्रावरुणौ देवते अस्येति-ऐन्द्रावरुणम्**। इस सूत्र से दीर्घान्त 'इन्द्रा' शब्द से परे 'वरुण' शब्द को आदिवृद्धि नहीं होती है। ऐसे ही-**मैत्रावरुणम्**।*

उभयपदवृद्धिः–

(२४) प्राचां नगरान्ते।२४।

प०वि०–प्राचाम् ६।३ नगरान्ते ७।१।

स०–नगरमन्ते यस्य तदिति नगरान्तम्, तस्मिन्–नगरान्ते (बहुव्रीहिः)।

अनु०–अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, उत्तरपदस्य, पूर्वपदस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः–प्राचां नगरान्तेऽङ्गे पूर्वपदस्योत्तरपदस्य चाऽचामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिः।

अर्थः–प्राचां देशे नगरान्तेऽङ्गे पूर्वपदस्योत्तरपदस्य चाऽचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति।

उदा०–सुह्मनगरे भव इति सौह्मनागरः। पुण्ड्रनगरे भव इति पौण्ड्रनागरः।

आर्यभाषाः *अर्थ–(प्राचाम्) प्राग्देश में विद्यमान (नगरान्ते) नगर जिसके अन्त में है उस (अङ्गे) अङ्ग में (पूर्वपदस्य) पूर्वपद और (उत्तरपदस्य) उत्तरपद के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है।*

*उदा०–**सौह्मनागरः**। सुह्मनगर में होनेवाला। **पौण्ड्रनागरः**। पुण्ड्रनगर में होनेवाला।*

*सिद्धि–**सौह्मनागरः**। यहां प्राग्देशवाची, नगरान्त 'सुह्मनगर' शब्द से '**तत्र भवः**' (४।३।५३) से भव-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। इस सूत्र से उभयपद वृद्धि होती है। ऐसे ही–**पौण्ड्रनगरः**।*

विशेषः *सुह्म–बंग देश के पश्चिम का देश। इसकी राजधानी ताम्रलिप्त थी। इसका आधुनिक नाम 'तमलूक' है जो कोसी नदी के दक्षिण तट पर बसा हुआ है (श०कौस्तुभ)।*

उभयपदवृद्धिः {उत्तरपदस्य विभाषा}–

(२५) जङ्गलधेनुवलजान्तस्य विभाषितमुत्तरम्।२५।

प०वि०– जङ्गल-धेनु-वलजान्तस्य ६।१ विभाषितम् १।१ उत्तरम् १।१।

स०-जङ्गलं च धेनुश्च वलजं च एतेषां समाहारो जङ्गलधेनुवलजम्, जङ्गलधेनुवलजमन्ते यस्य तदिति जङ्गलधेनुवलजान्तम्, तस्य-जङ्गलधेनुवलजान्तस्य (समाहारद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, उत्तरपदस्य, पूर्वपदस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-जङ्गलधेनुवलजान्तस्याङ्गस्य पूर्वपदस्याचामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिः, उत्तरं विभाषितम्।

अर्थः-जङ्गलधेनुवलजान्तस्याङ्गस्य पूर्वपदस्याचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति, उत्तरपदस्य तु विकल्पेन भवति।

उदा०-(**जङ्गलम्**) कुरुजङ्गलेषु भवमिति कौरुजङ्गलम्, कौरुजाङ्गलम्। (**धेनुः**) विश्वेषां धेनुरिति विश्वधेनुः, विश्वधेनौ भवमिति वैश्वधेनवम्, वैश्वधैनवम्, धेनुः=नवप्रसूता गौः। (**वलजम्**) सुवर्णविकारो वलजमिति सुवर्णवलम्, सुवर्णवलजे भव इति सौवर्णवलजः, सौवर्णवालजः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(जङ्गलधेनुवलजान्तस्य) जङ्गल, धेनु, वलज हैं अन्त में जिसके उस (अङ्गस्य) अङ्ग के (पूर्वपदस्य) पूर्वपद के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होनेप पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है, और (उत्तरम्) उत्तरपद को तो (विभाषितम्) विकल्प से होती है।*

*उदा०-(जङ्गल) **कौरुजङ्गलम्, कौरुजाङ्गलम्।** कुरुजङ्गल नामक देश में होनेवाला। कुरुजङ्गल=रोहतक-हिसार का क्षेत्र। (धेनु) **वैश्वधेनवम्, वैश्वधैनवम्।** विश्वदेव (कुत्ता, बिल्ली आदि उपकारी पशु) से सम्बन्धित, धेनु=नवप्रसूता गौ। (वलज) **सुवर्णवलम्, सौवर्णवलजः।** सुवर्ण से बना हुआ गोलाकार आभूषण विशेष।*

सिद्धि-कौरुजङ्गलम्। *यहां जङ्गलान्त 'कुरुजङ्गल' शब्द से 'तत्र भवः' (४।३।५३) से भव-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसके पूर्वपद को आदिवृद्धि होती है और इसके उत्तरपद को विकल्प से आदिवृद्धि होती है-**कौरुजाङ्गलम्।** ऐसे ही-**वैश्वधेनवम्, वैश्वधैनवम्। सौवर्णवलजः, सौवर्णवालजः।***

उभयवृद्धिः {पूर्वपदस्य वा}–

(२६) अर्धात् परिमाणस्य पूर्वस्य तु वा।२६।

प०वि०–अर्धात् ५ । परिमाणस्य ६ ।१ पूर्वस्य ६ ।१ तु अव्ययपदम्, वा अव्ययपदम्।

अनु०–अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, उत्तरपदस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः–अर्धात् परिमाणस्याङ्गस्योत्तरपदस्याऽचामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिः, पूर्वस्य तु वा।

अर्थः–अर्धाद् उत्तरस्य परिमाणवाचिनोऽङ्गस्योत्तरपदस्याऽचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति, पूर्वस्य= पूर्वपदस्य तु विकल्पेन भवति।

उदा०–अर्धद्रोणेन क्रीतमिति आर्धद्रौणिकम्, अर्धद्रौणिकम्। अर्धकुडवेन क्रीतमिति आर्धकौडविकम्, अर्धकौडविकम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अर्धात्) अर्ध शब्द से परे (परिमाणस्य) परिमाणवाची (अङ्गस्य) अङ्ग के (उत्तरपदस्य) उत्तरपद के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है (पूर्वस्य) पूर्वपद को (तु) तो (वा) विकल्प से होती है।*

*उदा०-**आर्धद्रौणिकम्, अर्धद्रौणिकम्।** आधा द्रौण से खरीदा हुआ द्रव्य। द्रोण= १० सेर। **आर्धकौडविकम्, अर्धकौडविकम्।** आधा कुडव से खरीदा हुआ द्रव्य। कुडव= १ प्रस्थ (५० तोले)।*

सिद्धि-आर्धद्रौणिकम्।** यहां 'अर्धद्रोण' शब्द से '**तेन क्रीतम्**' (५।१।३६) से क्रीत-अर्थ में 'ठञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसके परिमाणवाची उत्तरपद 'द्रोण' शब्द को आदिवृद्धि होती है। पूर्वपद को विकल्प से आदिवृद्धि होती है-**अर्धद्रौणिकम्।** ऐसे ही-**आर्धकौडविकम्, अर्धकौडविकम्।

वृद्धिप्रतिषेधः {पूर्वपदस्य वा}–

(२७) नातः परस्य।२७।

प०वि०–न अव्ययपदम्, अतः ६ ।१ परस्य ६ ।१ ।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, किति, अर्धात्, परिमाणस्य, पूर्वस्य, तु, वेति चानुवर्तते।

अन्वयः-अर्धात् परिमाणस्याङ्गस्य परस्याऽतस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिर्न, पूर्वस्य तु वा।

अर्थः-अर्धाद् उत्तरस्य परिमाणवाचिनोऽङ्गस्य परस्य=उत्तरपदस्याऽकारस्य स्थाने, ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्न भवति, पूर्वस्य=पूर्वपदस्य तु विकल्पेन भवति।

उदा०-अर्धप्रस्थेन क्रीत इति आर्धप्रस्थिकः, अर्धप्रस्थिकः। अर्धकंसेन क्रीत इति आर्धकंसिकः, अर्धकंसिकः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अर्धात्) अर्ध शब्द से परे (परिमाणस्य) परिमाणवाची (अङ्गस्य) अङ्ग के (परस्य) उत्तरपद के (अतः) अकार के स्थान में (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि (न) नहीं होती है (पूर्वस्य) पूर्वपद को (तु) तो (वा) विकल्प से वृद्धि होती है।*

*उदा०-**आर्धप्रस्थिकः, अर्धप्रस्थिकः**। आधा प्रस्थ से खरीदा हुआ पदार्थ। प्रस्थ=५० तोले। **आर्धकंसिकः, अर्धकंसिकः**। आधा कंस से खरीदा हुआ पदार्थ। कंस=८ प्रस्थ (४०० तोले)।*

सिद्धि-आर्धप्रस्थिकः। *यहां 'अर्धप्रस्थ' शब्द से **'तेन क्रीतम्'** (५।१।३६) से क्रीत-अर्थ में 'ठञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से प्रस्थ उत्तरपद के अकार को आदिवृद्धि का प्रतिषेध होता है।*

उभयपदवृद्धिः {पूर्वपदस्य वा}-

(२८) प्रवाहणस्य ढे।२८।

प०वि०-प्रवाहणस्य ६।१ ढे ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, उत्तरपदस्य, पूर्वस्य तु वेति चानुवर्तते।

अन्वयः-प्रवाहणस्याऽङ्गस्योत्तरपदस्याऽचामादेरचस्तद्धिते ढे वृद्धिः, पूर्वस्य तु वा।

अर्थः-प्रवाहणस्याऽङ्गस्योत्तरपदस्याऽचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ढकि प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति, पूर्वपदस्य तु विकल्पेन भवति।

उदा०–प्रवाहणस्यापत्यमिति प्रावाहणेयः, प्रवाहणेयः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(प्रवाहणस्य) प्रवाहरण इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (उत्तरपदस्य) उत्तरपद के (अचाम्) अचों में से (आदिः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ढे) ढक् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है (पूर्वस्य) पूर्वपद को (तु) तो (वा) विकल्प से होती है।*

*उदा०-**प्रावाहणेयः, प्रवाहणेयः।** प्रवाहण का पुत्र।*

*सिद्धि-**प्रावाहणेयः।** यहां 'प्रवाहण' शब्द से **'शुभ्रादिभ्यश्च'** (४।१।१२३) से अपत्य-अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसके उत्तरपद को आदिवृद्धि होती है। पूर्वपद को विकल्प से आदिवृद्धि होती है-**प्रवाहणेयः।***

उभयपदवृद्धिः {पूर्वपदस्य वा}–

(२६) तत्प्रत्ययस्य च।२६।

प०वि०–तत्प्रत्ययस्य ६।१ च अव्ययपदम्।

स०–स प्रत्ययो यस्मात् स तत्प्रत्ययः, तस्य-तत्प्रत्ययस्य (बहुव्रीहिः)।

अनु०–अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, उत्तरपदस्य, पूर्वस्य, तु, वा, प्रवाहणस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत्प्रत्ययस्य प्रवाहणस्याऽङ्गस्य चोत्तरपदस्याऽचामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिः, पूर्वस्य तु वा।

अर्थः–तत्प्रत्ययस्य=ढक्प्रत्ययान्तस्य प्रवाहणस्याऽङ्गस्य चोत्तरपदस्याऽचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति, पूर्वपदस्य तु विकल्पेन भवति।

उदा०–प्रवाहणेयस्यापत्यमिति प्रावाहणेयिः, प्रवाहणेयिः। प्रवाहणेयस्येदमिति प्रावाहणेयकम्, प्रवाहणेयकम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्प्रत्ययस्य) उस ढक्-प्रत्ययान्त (प्रवाहणस्य) प्रवाहण (अङ्गस्य) अङ्ग के (च) भी (उत्तरपदस्य) उत्तरपद के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित्, णित् (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है (पूर्वस्य) पूर्वपद को (तु) तो (वा) विकल्प से होती है।*

*उदा०-**प्रावाहणेयिः, प्रवाहणेयिः।** प्रवाहणेय का युवापत्य (प्रपौत्र)। **प्रावाहणेयकम्, प्रवाहणेयकम्।** प्रवाहणेय से सम्बन्धित।*

*सिद्धि-(१) **प्रावाहणेयिः ।** यहां ठक् प्रत्ययान्त 'प्रवाहणेय' शब्द से **'अत इञ्'** (४।१।९५) से युवापत्य अर्थ में 'इञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसके उत्तरपद को वृद्धि होती है। पूर्वपद को विकल्प से आदिवृद्धि होती है-**प्रवाहणेयिः ।***

*(२) **प्रावाहणेयकम् ।** यहां ठक्-प्रत्ययान्त 'प्रवाहणेय' शब्द से **'गोत्रचरणाद् वुञ्'** (४।३।१२६) से इदम्-अर्थ में 'वुञ्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। पूर्वपद को विकल्प से आदिवृद्धि होती है-**प्रवाहणेयकम् ।***

उभयपदवृद्धिः {पूर्वपदस्य वा}-

(३०) नञः शुचीश्वरक्षेत्रज्ञकुशलनिपुणानाम् ।३०।

प०वि०-नञः ५।१ शुचि-ईश्वर-क्षेत्रज्ञ-कुशल-निपुणानाम् ६।३।

स०-शुचिश्च ईश्वरश्च क्षेत्रज्ञश्च कुशलश्च निपुणश्च ते शुचीश्वर-क्षेत्रज्ञकुशलनिपुणाः, तेषाम्-शुचीश्वरक्षेत्रज्ञकुशलनिपुणानाम् (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, उत्तरपदस्य, पूर्वस्य, तु, वेति चानुवर्तते।

अन्वयः-नञः शुचीश्वरक्षेत्रज्ञकुशलनिपुणानामङ्गानाम् उत्तरपदस्याऽ-चामादेरचस्तद्धिते ञ्णिति किति च वृद्धिः, पूर्वस्य तु वा।

अर्थः-नञ उत्तरेषां शुचीश्वरक्षेत्रज्ञकुशलनिपुणानामङ्गानाम् उत्तरपदस्याऽचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति, पूर्वपदस्य तु विकल्पेन भवति।

उदा०-(शुचिः) अशुचेर्भावः कर्म वेति आशौचम्, अशौचम्। **(ईश्वरः)** अनीश्वरस्य भावः कर्म वेति आनैश्वर्यम्, अनैश्वर्यम्। **(क्षेत्रज्ञः)** अक्षेत्रज्ञस्य भावः कर्म वेति आक्षेत्रज्ञम्, अक्षेत्रज्ञम्। **(कुशलः)** अकुशल-स्येदमिति आकौशलम्, अकौशलम्। **(निपुणः)** निपुणस्येदमिति आनैपुणम्, अनैपुणम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(नञः) नञ् से परे (शुचि०) शुचि, ईश्वर, क्षेत्रज्ञ, कुशल, निपुण इन (अङ्गानाम्) अङ्गों के (उत्तरपदस्य) उत्तरपद के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान मे (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक (ञ्णिति) ञित्, णित् और (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है (पूर्वस्य) पूर्वपद को (तु) तो (वा) विकल्प से होती है।*

*उदा०-(शुचि) **आशौचम्, अशौचम्।** अशुचि का भाव वा कर्म। (ईश्वर) **आनैश्वर्यम्, अनैश्वर्यम्।** अनीश्वर का भाव वा कर्म। (क्षेत्रज्ञ) **आक्षेत्रज्ञम्, अक्षेत्रज्ञम्।** अक्षेत्रज्ञ का भाव वा कर्म। क्षेत्रज्ञ=चतुर। (कुशल) **आकौशलम्, अकौशलम्।** अकुशल से सम्बन्धित। (निपुण) **आनैपुणम्, अनैपुणम्।** निपुण से सम्बन्धित।*

*सिद्धि-(१) **आशौचम्।** यहां 'नञ्' और 'शुचि' शब्द का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है **'न विद्यते शुचिर्यस्मिन् सः-अशुचिः।** तत्पश्चात् इस 'अशुचि' शब्द से **'इगन्ताच्च लघुपूर्वात्'** (५।१।१३१) से भाव-कर्म अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'शुचि' उत्तरपद को आदिवृद्धि होती है। पूर्वपद को विकल्प से आदिवृद्धि है-**अशौचम्।***

*(२) **आनैश्वर्यम्।** यहां 'नञ्' और 'ईश्वर' शब्दों का **'नञ्'** (२।२।६) से नञ्तत्पुरुष समास है। तत्पश्चात् 'अनीश्वर' शब्द से **'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च'** (५।१।१२३) से भाव-कर्म अर्थ में 'ष्यञ्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**आक्षेत्रज्ञम्, अक्षेत्रज्ञम्।***

*(३) **आकौशलम्।** यहां 'नञ्' और 'कुशल' शब्दों का पूर्ववत् नञ्तत्पुरुष समास है। तत्पश्चात् 'अकुशल' शब्द से **'तस्येदम्'** (४।३।१२०) से इदम्-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**आनैपुणम्, अनैपुणम्।***

पर्यायेण वृद्धिः-

(३१) यथातथयथापुरयोः पर्यायेण।३१।

प०वि०-यथातथ-यथापुरयोः ६।२ पर्यायेण ३।१।

स०-यथातथं च यथापुरं च तौ यथातथायथापुरौ, तयोः-यथातथ-यथापुरयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिः, अचः, ञ्णिति, तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, उत्तरपदस्य, पूर्वस्य, नञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-नञो यथातथयथापुरयोरङ्गयोरुत्तरपदस्य पूर्वस्याऽचामादेरच-स्तद्धिते ञ्णिति किति च पर्यायेण वृद्धिः।

अर्थः-नञ उत्तरयोर्यथातथयथापुरयोरङ्गयोरुत्तरपदस्य पूर्वपदस्य चाऽचामादेरचः स्थाने, तद्धिते ञिति णिति किति च प्रत्यये परतः पर्यायेण वृद्धिर्भवति।

उदा०-(यथातथम्) अयथातथस्य भाव इति आयथातथ्यम्, अयाथातथ्यम्। **(यथापुरम्)** अयथापुरस्य भाव इति आयथापुर्यम्, अयाथापुर्यम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(नञः) नञ् से परे (यथातथयथापुरयोः) यथातथा, यथापुर इन (अङ्गयोः) अङ्गों के (उत्तरपदस्य) उत्तरपद और (पूर्वस्य) पूर्वपद के (अचाम्) अचों में से (आदेः) आदिम (अचः) अच् के स्थान में (पर्यायेण) क्रमशः (वृद्धिः) वृद्धि होती है।*

*उदा०-**(यथातथ) आयथातथ्यम्, अयाथातथ्यम्।** यथातथ का अभाव, जैसे का तैसा न होना। **(यथापुरम्) आयथापुर्यम्, अयाथापुर्यम्।** यथापूर्व का अभाव, जैसा कि पहले था वैसा न होना।*

*__सिद्धि-आयथातथ्यम्।__ यहां 'नञ्' और 'यथातथ' शब्दों का **'नञ्'** (२।२।६) से नञ्तत्पुरुष समास है। तत्पश्चात् 'अयथातथ' शब्द से **'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च'** (५।१।१२४) से ब्राह्मणादि के आकृतिगण होने से 'ष्यञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से पूर्वपद और उत्तरपद के पर्यायशः (क्रमशः) वृद्धि होती है। यहां पूर्वपद को वृद्धि है और यहां उत्तरपद को आदिवृद्धि है-**अयाथातथ्यम्।** ऐसे ही-**आयथापुर्यम्, अयाथापुर्यम्।***

।। इति उत्तरवृद्धिप्रकरणम्।।

आदेशागमप्रकरणम्

{आदेश-विधिः}

त-आदेशः-

(१) हनस्तोऽचिण्णलोः।३२।

प०वि०-हनः ६।१ तः १।१ अचिण्णलोः ७।२।

स०-चिण् च णल् च तौ चिण्णलौ, न चिण्णलाविति अचिण्णलौ, तयोः-अचिण्णलोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, ञ्णितीति चानुवर्तते।

अन्वयः-हनोऽङ्गस्याऽचिण्णलोर्ञ्णिति तः।

अर्थः-हन्तेरङ्गस्य चिण्णल्वर्जिते ञिति णिति च प्रत्यये परतस्तकारादेशो भवति।

उदा०-स घातयति। घातकः। साधुघाती। घातंघातम्। घातो वर्तते।

आर्यभाषाः अर्थ-*(हनः) हन् इस (अङ्गस्य) अङ् को (अचिण्णलोः) चिण् और णल् से भिन्न (ञ्णिति) ञित् और णित् प्रत्यय परे होने पर (तः) तकारादेश होता है।*

*उदा०-**स घातयति।** वह हिंसा/गति कराता है। **घातकः।** हिंसक/गतिकारक। **साधुघाती।** ठीक हिंसा/गति करनेवाला। **घातंघातम्।** पुनः-पुनः हिंसा/गति करके। **घातो वर्तते।** हिंसा/गति है।*

***सिद्धि-(१) घातयति।** हन्+णिच्। हन्+इ। हत्+इ। घत्+इ। घात्+इ। घाति+लट्। घातयति।*

*यहां प्रथम **'हन हिंसागत्योः'** (अदा०प०) धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से हेतुमान् अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से णित् णिच् प्रत्यय परे होने पर 'हन्' के अन्त्य नकार को तकारादेश होता है। **'हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु'** (७।३।५४) से हकार को कुत्व घकार और **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से उपधावृद्धि होती है। तत्पश्चात् णिजन्त 'घाति' धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है।*

*(२) **घातकः।** यहां पूर्वोक्त 'हन्' धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (१।३।१३३) से 'ण्वुल्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **साधुघाती।** यहां साधु-उपपद पूर्वोक्त 'हन्' धातु से **'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये'** (३।२।७८) से 'णिनि' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **घातंघातम्।** यहां पूर्वोक्त 'हन्' धातु से **'आभीक्ष्ण्ये णमुल् च'** (३।४।२२) से 'णमुल्' प्रत्यय है। वा०-**'आभीक्ष्ण्ये द्वे भवतः'** (३।४।२२) से द्वित्व होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(५) **घातः।** यहां पूर्वोक्त 'हन्' धातु से **'भावे'** (३।३।१८) से भाव-अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

आगमप्रकरणम्

युक्-आगमः-

(१) आतो युक् चिण्कृतोः।३३।

प०वि०-आतः ६।१ युक् १।१ चिण्-कृतोः ७।२।

स०-चिण् च कृच्च तौ चिण्कृतौ, तयोः-चिण्कृतोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, ञ्णितीति चानुवर्तते।

अन्वयः-आतोऽङ्गस्य चिणि ञ्णिति कृति च युक्।

अर्थः-आकारान्तस्याऽङ्गस्य चिणि, ञिति णिति कृति च प्रत्यये परतो युगागमो भवति।

उदा०-**(चिण्)** अदायि भवता। अधायि भवता। **(कृत्)** दायः, दायकः। धायः, धायकः।

आर्यभाषाः अर्थ- *(आतः) आकारान्त (अङ्गस्य) अङ्ग को (चिणि) चिण् और (ञ्णिति) ञित्, णित् (किति) कृत्-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (युक्) युग आगम होता है।*

*उदा०-**(चिण्) अदायि भवता।** आपके द्वारा दान किया गया। **अधायि भवता।** आपके द्वारा धारण-पोषण किया गया। **(कृत्) दायः।** दान करना। **दायकः।** दान करनेवाला। **धायः।** धारण-पोषण करना। **धायकः।** धारण-पोषण करनेवाला।*

सिद्धि-(१) अदायि। *यहां **'डुदाञ् दाने'** (जु०उ०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। **'चिण् भावकर्मणोः'** (३।१।६६) से 'च्लि' के स्थान में 'चिण्' आदेश होता है। इस सूत्र से 'चिण्' परे होने पर आकारान्त 'दा' धातु को 'युक्' आगम होता है। **'चिणो लुक्'** (६।४।१०४) से 'त' प्रत्यय का लुक् होता है। ऐसे ही **'डुधाञ् धारणपोषणयोः'** (जु०उ०) धातु से-**अधायि।***

*(२) **दायः।** यहां पूर्वोक्त 'दा' धातु से **'भावे'** (३।३।१८) से भाव-अर्थ में कृत्-संज्ञक 'घञ्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही पूर्वोक्त 'धा' धातु से-**धायः।***

*(३) **दायकः।** यहां पूर्वोक्त 'दा' धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से कृत्-संज्ञक 'ण्वुल्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही पूर्वोक्त 'धा' धातु से-**धायकः।***

उक्तप्रतिषेधः-

(२) नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्यानाचमेः।३४।

प०वि०- न अव्ययपदम्, उदात्तोपदेशस्य ६।१ मान्तस्य ६।१ अनाचमेः ६।१।

स०-उपदेशे उदात्त इति उदात्तोपदेशः, तस्य-उदात्तोपदेशस्य (सप्तमीतत्पुरुषः)। मकारोऽन्ते यस्य स मान्तः, तस्य-मान्तस्य (बहुव्रीहिः)। न आचमिरिति अनाचमिः, तस्य-अनाचमेः (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, ञ्णिति, चिण्कृतोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अनाचमेरुदात्तोपदेशस्य मान्तस्याऽङ्गस्य चिणि ञ्णिति कृति च न।

अर्थः-आचमिवर्जितस्योदात्तोपदेशस्य मकारान्तस्याऽङ्गस्य चिणि, ञिति णिति कृति च प्रत्यये परतो यदुक्तं तन्न भवति। **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) इति विहिता उपधावृद्धिर्न भवतीत्यर्थः।

उदा०-(चिण्) अशमि भवता। अतमि भवता। अदमि भवता। **(कृत्)** शमकः। तमकः। दमकः। शमः। तमः। दमः।

आर्यभाषाः अर्थ-(अनाचमेः) आङ्पूर्वक चमु धातु से भिन्न (उदात्तोपदेशस्य) उपदेश में उदात्त (मान्तस्य) मकारान्त (अङ्गस्य) अङ्ग को (चिणि) चिण् और (ञ्णिति) ञित्, णित् (कृति) कृत्-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (न) जो कहा गया है वह नहीं होता है, अर्थात् ***'अत उपधायाः'*** (७।२।११६) से विहित उपधावृद्धि नहीं होती है।

उदा०-(चिण्) ***अशमि भवता।*** *आपके द्वारा उपशमन किया गया।* ***अतमि भवता।*** *आपके द्वारा आकाङ्क्षा की गई।* ***अदमि भवता।*** *आपके द्वारा दमन किया गया। (कृत्)* ***शमकः।*** *उपशमन करनेवाला।* ***तमकः।*** *आकाङ्क्षा करनेवाला।* ***दमकः।*** *दमन करनेवाला।* ***शमः।*** *उपशमन करना।* ***तमः।*** *आकाङ्क्षा करना।* ***दमः।*** *दमन करना।*

सिद्धि-(१) अशमि। *यहां* ***'शमु उपशमे'*** *(दि०प०) धातु से* ***'लुङ्'*** *(३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है* ***'चिण् भावकर्मणोः'*** *(३।१।६६) से 'च्लि' के स्थान में 'चिण्' आदेश है। इस सूत्र से* ***'अत उपधायाः'*** *(७।२।११६) से प्राप्त उपधावृद्धि का प्रतिषेध होता है।* ***'चिणो लुक्'*** *(६।४।१०४) से 'त' प्रत्यय का लुक् होता है। ऐसे ही* ***'तमु काङ्क्षायाम्'*** *(दि०प०) धातु से-* ***अतमि।*** ***'दमु उपशमे'*** *(दि०प०) धातु से-* ***अदमि।***

(२) शमकः। *यहां* ***'शमु उपशमे'*** *(दि०प०) धातु से* ***'ण्वुल्तृचौ'*** *(३।१।१३३) से 'ण्वुल्' प्रत्यय है। इस सूत्र से पूर्ववत् प्राप्त उपधावृद्धि का प्रतिषेध होता है। ऐसे ही पूर्वोक्त 'तमु' धातु से-* ***तमकः*** *और 'दमु' धातु से-* ***दमकः।***

(३) शमः। *यहां पूर्वोक्त 'शमु' धातु से* ***'भावे'*** *(३।३।१८) से भाव-अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से पूर्ववत् प्राप्त उपधावृद्धि का प्रतिषेध होता है। ऐसे ही पूर्वोक्त 'तमु' धातु से-* ***तमः*** *और 'दमु' धातु से-* ***दमः।***

ये 'शमु' आदि मकारान्त धातु पाणिनीय धातुपाठ के उपदेश में उदात्त (सेट्) पठित हैं।

उक्तप्रतिषेधः-

(३) जनिवध्योश्च।३५।

प०वि०-जनिवध्योः ६।२ च अव्ययपदम्।

स०-जनिश्च वधिश्च तौ जनिवधी, तयोः-जनिवध्योः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, वृद्धिः, ञ्णिति, चिण्कृतोः, नेति चानुवर्तते।

अन्वयः-जनिवध्योरङ्गयोश्च चिणि ञ्णिति कृति च न।

अर्थः-जनिवध्योरङ्गयोश्च चिणि ञिति णिति कृति च प्रत्यये परतो यदुक्तं तन्न भवति। **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) इति विहिता उपधावृद्धिर्न भवतीत्यर्थः।

उदा०-(चिण्) जनिः-अजनि भवता। **वधिः**-अवधि भवता। **(कृत्) जनिः**-जनकः। प्रजनः। **वधिः**-वधकः। वधः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(जनिवध्योः) जनि, वधि इन (अङ्गयोः) अङ्गों को (च) भी (चिणि) चिण् और (ञ्णिति) ञित्, णित् (कृति) कृत्-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (न) जो कहा गया है वह नहीं होता है, अर्थात् **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से विहित उपधावृद्धि नहीं होती है।*

*उदा०-**(चिण्) जनि-अजनि भवता।** आपके द्वारा उत्पन्न किया गया। **वधि-अवधि भवता।** आपके द्वारा वध (हत्या) किया गया। **(कृत्) जनि-जनकः।** उत्पन्न करनेवाला। **प्रजनः।** उत्पन्न करना। **वधि-वधकः।** वध=हत्या करनेवाला। **वधः।** वध करना।*

सिद्धि-(१) अजनि। *यहां **'जनी प्रादुर्भावे'** (दि०आ०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। **'चिण् भावकर्मणोः'** (३।१।६६) से 'च्लि' के स्थान में 'चिण्' आदेश है। इस सूत्र से **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से प्राप्त उपधावृद्धि का प्रतिषेध होता है। **'चिणो लुक्'** (६।४।१०४) से 'त' प्रत्यय का लुक् होता है। ऐसे ही **'वध हिंसायाम्'** (भ्वादि, पदमञ्जरी) धातु से-**अवधि।***

*(२) **जनकः।** यहां पूर्वोक्त 'जन्' धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से 'ण्वुल्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही पूर्वोक्त 'वध' धातु से-**वधकः।***

*(३) **प्रजनः।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'जन्' धातु से **'भावे'** (३।३।१८) से भाव-अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही पूर्वोक्त 'वध्' धातु से-**वधः।***

विशेषः *'हनो वध लिङि' (२।४।४३) से 'हन्' के स्थान में विहित 'वध' आदेश अकारान्त है, उसे उपधावृद्धि प्राप्त नहीं होती है, अतः यहां उसका ग्रहण नहीं किया गया है। **'वध हिंसायाम्'** यह पृथक् धातु है, उसका यहां ग्रहण किया जाता है। जैसे 'ण्वुल्' प्रत्यय में भी 'वध' धातु का प्रयोग देखा जाता है-*

भक्षकश्चेन्न विद्येत वधकोऽपि न विद्यते।।

***अर्थ**-यदि मांसभक्षक न हो तो प्राणियों का कोई वधक (घातक) भी न रहे।*

पुक्-आगमः-

(४) अर्तिह्रीव्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातां पुग् णौ ।३६।

प०वि०-अर्ति-ह्री-व्ली-री-क्नूयी-क्ष्मायी-आताम् ६ ।३ पुक् १ ।१ णौ ७ ।१।

स०-अर्तिश्च ह्रीश्च व्लीश्च रीश्च क्नूयीश्च क्ष्मायीश्च आच्च ते अर्ति०आतः, तेषाम्-अर्ति०आताम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्येत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अर्तिह्रीव्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातामङ्गानां णौ पुक्।

अर्थः-अर्तिह्रीव्लीरीक्नूयीक्ष्मायीनामाऽऽकारान्तानां चाऽङ्गानां णौ प्रत्यये परतः पुगागमो भवति।

उदा०-**(अर्तिः)** सोऽर्पयति। **(ह्री)** स ह्रेपयति। **(व्ली)** स व्लेपयति। **(री)** स रेपयति। **(क्नूयी)** स क्नोपयति। **(क्ष्मायी)** स क्ष्मापयति। **(आकारान्त)** स दापयति। स धापयति।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(अर्ति०) ऋ, ह्री, व्ली, री, क्नूयी, क्ष्मायी और आकारान्त (अङ्गानाम्) अङ्गों को (णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (पुक्) पुक् आगम होता है।

उदा०-(अर्ति) __सोऽर्पयति।__ वह अर्पण करता है। (ह्री) __स ह्रेपयति।__ वह लज्जित करता है। (व्ली) __स व्लेपयति।__ वह वरण (पसन्द) करता है। (री) __स रेपयति।__ वह गमन/अरण्यपशु के समान पुकारता है। (क्नूयी) __स क्नोपयति।__ वह शब्द/गीला करता है। (क्ष्मायी) __स क्ष्मापयति।__ वह हिलाता है। (आकारान्त) दा-__स दापयति।__ वह दान कराता है। धा-__स धापयति।__ वह धारण-पोषण कराता है।

__सिद्धि-(१) अर्पयति।__ ऋ+णिच्। ऋ+इ। ऋ पुक्+इ। ऋ प्+इ। अर् प्+इ। अर्पि+लट्। अर्पयति।

यहां 'ऋ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से 'हेतुमति च' (३ ।१ ।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे णिच् प्रत्यय परे होने पर 'पुक्' आगम होता है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७ ।३ ।८६) से 'ऋ' को गुण (अर्) होता है। तत्पश्चात् णिजन्त 'अर्पि' धातु से 'वर्तमाने लट्' (३ ।२ ।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है।

(२) __ह्रेपयति।__ 'ह्री लज्जायाम्' (जु०प०) धातु से पूर्ववत्।

(३) __व्लेपयति।__ 'व्ली वरणे' (क्र्या०प०)।

(४) __रेपयति।__ 'री गतिरेषणयोः' (क्र्या०प०)।

*(५) **क्नोपयति।** 'क्नूयी शब्द उन्दे च' (भ्वा०आ०)। **'लोपो व्योर्वलि'** (६।१।६६) से यकार का लोप होता है।*

*(६) **क्ष्मापयति।** 'क्ष्मायी विधूनने' (भ्वा०आ०)।*

*(७) **दापयति।** 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०)।*

*(८) **धापयति।** 'डुधाञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०)।*

युक्-आगमः–

(५) शाच्छासाह्वाव्यावेपां युक्।३७।

प०वि०-शा-च्छा-सा-ह्वा-व्या-वे-पाम् ६।३ युक् १।१।

स०-शाश्च छाश्च साश्च ह्वाश्च व्याश्च वेश्च पाश्च ते-शा०पाः, तेषाम्-शा०पाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, णाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-शाच्छासाह्वाव्यावेपामऽङ्गानां णौ युक्।

अर्थः-शाच्छासाह्वाव्यावेपामऽङ्गानां णौ प्रत्यये परतो युगागमो भवति।

उदा०-(शा) निशाययति। **(छा)** अवच्छाययति। **(सा)** अवसाययति। **(ह्वा)** ह्वाययति। **(व्या)** संव्याययति। **(वे)** वेञ्-वाययति। **(पा)** पाययति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(शा०) शा, छा, सा, ह्वा, व्या, वे, पा इन (अङ्गानाम्) अङ्गों को (णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (युक्) युक् आगम होता है।*

*उदा०-**(शा) निशाययति।** वह तीक्ष्ण कराता है। **(छा) अवच्छाययति।** वह कतरवाता है। **(सा) अवसाययति।** वह विध्वस कराता है। **(ह्वा) ह्वाययति।** वह बुलाता है। **(व्या) संव्याययति।** वह आच्छादित कराता है। **(वे) वेञ्-वाययति।** वह बुनवाता है (वस्त्र)। **(पा) पाययति।** वह पिलाता है।*

*सिद्धि-(१) **निशाययति।** यहां नि-उपसर्गपूर्वक **'शो तनूकरणे'** (दि०प०) धातु से **हेतुमति च'** (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे युक् आगम होता है। 'आदेच उपदेशेऽशिति' (६।१।४५) से ओकार को आत्व होता है। पूर्वसूत्र (७।३।३६) से 'पुक्' आगम प्राप्त था, अतः इस सूत्र से 'युक्' आगम का विधान किया गया है।*

*(२) **अवच्छाययति।** अव-उपसर्गपूर्वक **'छो छेदने'** (दि०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(३) **अवसाययति।** अव-उपसर्गपूर्वक **'षोऽन्तकर्मणि'** (दि०प०)।*

(४) ह्वाययति। 'ह्वेञ् स्पर्धायां शब्दे च' (भ्वा०उ०)।

(५) संव्याययति। सम्-उपसर्गपूर्वक 'व्येञ् संवरणे' (भ्वा०प०)।

(६) वाययति। 'वेञ् तन्तुसन्ताने' (भ्वा०उ०)।

(७) पाययति। 'पा पाने' (भ्वा०प०)।

जुक्-आगमः–

(६) वो विधूनने जुक्।३८।

प०वि०–वः ६।१ विधूनने ७।१ जुक् १।१।

अनु०–अङ्गस्य, णाविति चानुवर्तते।

अन्वयः–विधूनने वोऽङ्गस्य णौ जुक्।

अर्थः–विधूननेऽर्थे वर्तमानस्य वोऽङ्गस्य णौ प्रत्यये परतो जुगागमो भवति।

उदा०–पक्षेणोपवाजयति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(विधूनने) विकम्पित करने अर्थ में विद्यमान (वः) वा इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (जुक्) जुक् आगम होता है।*

*उदा०–**पक्षेणोपवाजयति।** वह पंखे से हवा कराता है (बीजणा करता है)।*

*सिद्धि-**उपवाजयति।** यहां उप-उपसर्गपूर्वक **'वा गतिगन्धनयोः'** (अदा०प०) धातु से विधूनन अर्थ में इस सूत्र से 'जुक्' आगम होता है। **'अर्तिह्री०'** (७।३।३६) से 'पुक्' आगम प्राप्त था। यह उसका अपवाद है।*

नुग्लुकावागमौ–

(७) लीलोर्नुग्लुकावन्यतरस्यां स्नेहविपातने।३६।

प०वि०–लीलोः ६।२ नुग्लुकौ १।२ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्, स्नेहविपातने ७।१।

स०–लीश्च लाश्च तौ लीलौ, तयोः-लीलोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। नुक् च लुक् च तौ नुग्लुकौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। स्नेहस्य विपातनमिति स्नेहविपातनम्, तस्मिन्-स्नेहविपातने (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–अङ्गस्य, णाविति चानुवर्तते।

अन्वयः–स्नेहविपातने लीलोरङ्गयोर्णावन्यतरस्यां नुग्लुकौ।

अर्थ:-स्नेहविपातनेऽर्थे वर्तमानयोर्लीलोरङ्गयोर्णौ प्रत्यये परतो विकल्पेन यथासंख्यं नुग्लुकावागमौ भवतः।

उदा०-(ली) स घृतं विलीनयति (नुक्)। विलाययति। **(ला)** स घृतं विलालयति (लुक्)। विलापयति। विलाययति।

आर्यभाषा: *अर्थ-(स्नेहविपातने) घृत आदि पदार्थों के पिघालने अर्थ में विद्यमान (लीलोः) ली, ला इन (अङ्गयोः) अङ्गों को (णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से यथासंख्य (नुग्लुकौ) नुक् और लुक् आगम होते हैं।*

*उदा०-(ली) स घृतं विलीनयति (नुक्)। **विलाययति।** वह घृत को पिघलाता है। (ला) स घृतं विलालयति (लुक्)। **विलापयति। विलाययति।** वह घृत को पिघलाता है।*

सिद्धि-(१) विलीनयति। *यहां वि-उपसर्गपूर्वक 'लीङ् श्लेषणे' (दि०आ०) धातु से स्नेहविपातन अर्थ में पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे 'लुक्' आगम होता है। विकल्प पक्ष में 'लुक्' आगम नहीं है-**विलाययति।***

*(२) **विलालयति।** यहां वि-उपसर्गपूर्वक 'ला आदाने' (अदा०प०) धातु से स्नेहविपातन अर्थ में 'हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे 'नुक्' आगम होता है। विकल्प पक्ष में 'नुक्' आगम नहीं है-**विलापयति। 'अर्तिह्री०'** (७।३।३६) से पुक्-आगम होता है।*

विशेष: *'लीङ् श्लेषणे' (दि०आ०) धातु को 'ली' रूप में ही नुक् आगम होता है-विलीनयति। इसे 'विभाषा लीयतेः' (६।१।५०) से विकल्प से आत्व होता है। आत्व-पक्ष में **'अर्तिह्री०'** (७।३।३६) से पुक् आगम होता है-**विलापयति।** जहां आत्व नहीं होता है वहां-**विलाययति।***

षुक्-आगमः—

(८) भियो हेतुभये षुक्।४०।

प०वि०-भियः ६।१ हेतुभये ७।१ षुक् १।१।

स०-हेतोर्भयमिति हेतुभयम्, तस्मिन् हेतुभये (पञ्चमीतत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, णाविति चानुवर्तते।

अन्वय:-हेतुभये भियोऽङ्गस्य णौ षुक्।

अर्थ:-हेतुभयेऽर्थे वर्तमानस्य भियोऽङ्गस्य णौ प्रत्यये परतः षुगागमो भवति।

उदा०-मुण्डो भीषयते माणवकम्। जटिलो भीषयते माणवकम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(हेतुभये) हेतु से भय अर्थ में विद्यमान (भियः) भी इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (षुक्) षुक् आगम होता है।*

*उदा०-**मुण्डो भीषयते माणवकम्।** शिरोमुण्डित पुरुष बालक को डराता है। **जटिलो भीषयते माणवकम्।** जटाधारी पुरुष बालक को डराता है।*

सिद्धि-भीषयते। *यहां **'ञिभी भये'** (जु०प०) धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से हेतुमान् अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे 'षुक्' आगम होता है।*

आदेशप्रकरणम्

व-आदेशः–

(१) स्फायो वः।४१।

प०वि०-स्फायः ६।१ वः १।१।

अनु०-अङ्गस्य, णाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-स्फायोऽङ्गस्य णौ वः।

अर्थः-स्फायोऽङ्गस्य णौ प्रत्यये परतो वकारादेशो भवति।

उदा०-स स्फावयति धनम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(स्फायः) स्फाय् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (वः) वकारादेश होता है।*

*उदा०-स **स्फावयति धनम्।** वह धन को बढ़ाता है।*

सिद्धि-स्फावयति। *यहां **'स्फायी वृद्धौ'** (भ्वा०आ०) धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे वकार अन्त्य आदेश होता है।*

त-आदेशः–

(२) शदेरगतौ तः।४२।

प०वि०-शदेः ६।१ अगतौ ७।१ तः १।१।

स०-न गतिरिति अगतिः, तस्याम्-अगतौ (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, णाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-अगतौ शदेरङ्गस्य णौ तः।

अर्थः-गत्यर्थवर्जितस्य शदेरङ्गस्य णौ प्रत्यये परतस्तकारादेशो भवति।

उदा०-सा पुष्पाणि शातयति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अगतौ) गति अर्थ से भिन्न (शदेः) शदि इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (तः) तकारादेश होता है।*

*उदा०-सा **पुष्पाणि शातयति।** वह फूलों को तुड़वाती है।*

***सिद्धि-शातयति।** यहां 'शद्लृ शातने' (भ्वा०आ०) धातु से गति से भिन्न अर्थ में हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे तकार अन्त्य आदेश होता है।*

प-आदेशविकल्पः--

(३) रुहः पोऽन्यतरस्याम्।४३।

प०वि०-रुहः ६।१ पः १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, णाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-रुहोऽङ्गस्य णावन्यतरस्यां पः।

अर्थः-रुहोऽङ्गस्य णौ प्रत्यये परतो विकल्पेन पकारादेशो भवति।

उदा०-स व्रीहिन् रोपयति। स व्रीहिन् रोहयति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(रुहः) रुह् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (पः) पकारादेश होता है।*

*उदा०-**स व्रीहिन् रोपयति। स व्रीहिन् रोहयति।** वह धान लगवाता है।*

सिद्धि-रोपयति।** यहां 'रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च' (भ्वा०प०) धातु से 'हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे पकार अन्त्य आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में पकारादेश नहीं है-**रोहयति।

इद्-आदेशः--

(४) प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्यात इदाप्यसुपः।४४।

प०वि०-प्रत्ययस्थात् ५।१ कात् ५।१ पूर्वस्य ६।१ अतः ६।१ इत् १।१ आपि ७।१ असुपः ५।१।

स०-प्रत्यये तिष्ठतीति प्रत्ययस्थः, तस्मात्-प्रत्ययस्थात् (उपपद-तत्पुरुषः)। न सुबिति असुप्, तस्मात्-असुपः (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अङ्गस्य प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्यात आपि इत्, असुपः।

अर्थः-अङ्गस्य प्रत्ययस्थात् ककारात् पूर्वस्याऽकारस्य स्थाने, आपि प्रत्यये परत इकारादेशो भवति, स चेदाऽऽप् सुपः परो न भवति।

उदा०-जटिलिका। मुण्डिका। कारिका। हारिका। एतिकाश्चरन्ति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अङ्गस्य) अङ्ग के (प्रत्ययस्थात्) प्रत्यय में अवस्थित (कात्) ककार वर्ण से (पूर्वस्य) पूर्ववर्ती (अतः) अकार के स्थान में (आपि) आप्=टाप्, डाप्, चाप् प्रत्यय परे होने पर (इत्) इकारादेश होता है (असुपः) यदि वह आप् प्रत्यय सुप् से परे न हो।*

*उदा०-**जटिलिका**। जटाधारिणी अज्ञात नारी। **मुण्डिका**। शिरोमुण्डिता अज्ञात नारी। **कारिका**। करनेवाली। **हारिका**। हरण करनेवाली। **एतिकाश्चरन्ति**। ये अज्ञात कन्यायें घूम रही हैं।*

*सिद्धि-(१) **जटिलिका**। जटिला+क। जटिल+क। जटिलक+टाप्। जटिलक+आ। जटिलिका+सु। जटिलिका+०। जटिलिका।*

*यहां प्रथम 'जटिला' शब्द से **'अज्ञाते'** (५।३।७३) से स्व-स्वामी सम्बन्ध रूप से अज्ञात-अर्थ में 'क' प्रत्यय है। तत्पश्चात् स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस आप्-प्रत्यय के परे होने पर अङ्ग के प्रत्ययस्थ ककार से पूर्ववर्ती अकार को इकारादेश होता है। **'केऽणः'** (७।४।१३) से आकार को ह्रस्व होता है। ऐसे ही 'मुण्ड' शब्द से-**मुण्डिका**।*

*(२) **कारिका**। यहां **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से 'ण्वुल्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। तत्पश्चात् 'कारक' शब्द से शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही **'हृञ् हरणे'** (भ्वा०उ०) धातु से-**हारिका**।*

*(३) **एतिका**। एत् अकच् अद्। एतक् अ अ। एतक+टाप्। एतक+आ। एतिका+सु। एतिका+०। एतिका।*

*यहां 'एतद्' शब्द से **'अज्ञाते'** (५।३।७३) से स्व-स्वामी रूप सम्बन्ध से अज्ञात अर्थ में **'अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः'** (५।३।७२) के नियम से टि-भाग (अद्) से पूर्व 'अकच्' प्रत्यय है। **'त्यदादीनामः'** (७।२।१०२) से अन्त्य दकार को अकारादेश और **'अतो गुणे'** (६।१।९६) से पररूप एकादेश है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

इदादेश-प्रतिषेधः—

(५) न यासयोः।४५।

प०वि०-न अव्ययपदम्, या-सयोः ६।२।

स०-या च सा च ते यासे, तयोः-यासयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्थात्, कात्, पूर्वस्य, अतः इद्, आपि, असुप इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यासयोरङ्गयोः प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्यात आपि इद् न, असुपः।

अर्थः-यासयोरङ्गयोः प्रत्ययस्थात् ककारात् पूर्वस्याऽकारस्याऽऽपि प्रत्यये परत इकारादेशो न भवति, स चेद् आप् सुपः परो न भवति।

उदा०-(या) यका कन्या। **(सा)** सका कन्या।

"या सा इति निर्देशोऽतन्त्रम्, यत्तदोरुपलक्षणमेतत्। इहापि प्रतिषेध इष्यते-यकां यकामधीमहे। तकां तकां पचामहे" (काशिका)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(यासयोः) या, सा इन (अङ्गयोः) अङ्गों के (प्रत्ययस्थात्) प्रत्यय में अवस्थित (कात्) ककार वर्ण से (पूर्वस्य) पूर्ववर्ती (अतः) अकार के स्थान में (आपि) आप् (टाप्, डाप्, चाप्) प्रत्यय परे होने पर (इत्) इकारादेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**(या) यका** कन्या। जो अज्ञात कन्या। **(सा) सका कन्या।** वह अज्ञात कन्या।*

*"सूत्रपाठ में **'या सा'** यह अप्रधान निर्देश है, यह यत् और तद् शब्दों का उपलक्षण है। अतः यहां भी इकारादेश का प्रतिषेध अभीष्ट है-**यकां यकामधीमहे। तकां तकां पचामहे**" (काशिका)।*

सिद्धि-यका। *य् अकच् अद्। य् अक् अ अ। यक अ। यक+टाप्। यक+आ। यका+सु। यका+०। यका।*

*यहां प्रथम 'यद्' शब्द से **'अज्ञाते'** (५।३।७३) से स्व-स्वामी सम्बन्ध से अज्ञात अर्थ में **'अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः'** (५।३।७१) के नियम से टि-भाग से पूर्व 'अकच्' प्रत्यय है। पूर्ववत् दकार को अकार और पररूप एकादेश होकर स्त्रीत्व-विवक्षा में 'टाप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे इकारादेश का प्रतिषेध होता है। ऐसे ही 'तद्' शब्द से-**सका।** 'तदोः स सावनन्त्ययोः' (७।२।१०६) से तकार को सकारादेश है।*

इदादेश-प्रतिषेधः-

(६) उदीचामातः स्थाने यकपूर्वायाः।४६।

प०वि०-उदीचाम् ६।३ आतः ६।१ स्थाने ७।१ यकपूर्वायाः ६।३।

स०-यश्च कश्च तौ यकौ, यकौ पूर्वौ यस्याः सा यकपूर्वा, तस्याः-यकपूर्वायाः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्थात्, कात्, पूर्वस्य, अतः, इद्, आपि, असुपः, नेति चानुवर्तते।

अन्वयः-अङ्गस्य यकपूर्वाया आतः स्थानेऽतः, प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यापि इद् न, असुपः, उदीचाम्।

अर्थः-अङ्गस्य यकारपूर्वस्याः ककारपूर्वायाश्चाऽऽतः स्थाने योऽकारस्तस्य प्रत्ययस्थात् ककारात् पूर्वस्य स्थाने, आपि प्रत्यये परत इकारादेशो न भवति, स चेद् आप् सुपः परो न भवति, उदीचामाचार्याणां मतेन। पाणिनिमते तु भवत्येव।

उदा०-**यकारपूर्वायाः**-इभ्यका, इभ्यिका। क्षत्रियका, क्षत्रियिका। **ककारपूर्वायाः**-चटकका, चटकिका। मूषिकका, मूषिकिका।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अङ्गस्य) अङ्ग के (यकपूर्वायाः) यकारपूर्ववाले और ककारपूर्ववाले (आतः) आकार के स्थान में (अतः) जो अकार आदेश होता है, (प्रत्ययस्थात्) प्रत्यय में अवस्थित (कात्) ककार से (पूर्वस्य) पूर्ववर्ती उस अकार के स्थान में (आपि) आप् प्रत्यय परे होने पर (इत्) इकारादेश (न) नहीं होता है (असुपः) यदि वह आप् प्रत्यय सुप् से परे न हो (उदीचाम्) उत्तर भारत के अचार्यों के मत में। पाणिनि मुनि के मत में तो इकारादेश होता ही है।*

*उदा०-**यकारपूर्वा-इभ्यका, इभ्यिका।** छोटी हथिनी। **क्षत्रियका, क्षत्रियिका।** छोटी क्षत्रिया नारी। **ककारपूर्वा-चटकका, चटकिका।** छोटी चिड़िया। **मूषिकका, मूषिकिका।** छोटी मूसी (चूही)।*

__सिद्धि-इभ्यका।__ यहां 'इभ्या' शब्द से __'ह्रस्वे'__ (५।३।८६) से ह्रस्व-अर्थ में 'क' प्रत्यय है। __'केऽणः'__ (७।४।१३) से 'क' प्रत्यय परे होने पर अण् (आकार) को ह्रस्व होता है। इस सूत्र से इस यकारपूर्वा आकार के स्थान में विहित, प्रत्ययस्थ ककार से पूर्ववर्ती अकार के स्थान में उदीच्य आचार्यों के मत में इकार आदि का प्रतिषेध हेता है। पाणिनि मुनि के मत में तो इकारादेश होता है-__इभ्यिका।__ ऐसे ही-क्षत्रियका, क्षत्रियिका आदि।

विशेषः *सूत्रपाठ में __'यकारपूर्वायाः'__ पद में स्त्रीलिङ्ग निर्देश आप् (स्त्रीलिङ्ग) प्रत्यय की दृष्टि से किया गया है।*

इदादेश-प्रतिषेधः--

(७) भस्त्रैषाजाज्ञाद्वास्वा नञ्पूर्वाणामपि।४७।

प०वि०-भस्त्रा-एषा-जा-ज्ञा-द्वा-स्वा ६।३ (लुप्तषष्ठीकं पदम्) **नञ्पूर्वाणाम् ६।३ अपि अव्ययपदम्।**

स०-भस्त्रा च एषा च जा च ज्ञा च द्वा च स्वा च ता:-भस्त्रैषा-जाज्ञाद्वास्वा:, तासाम्-भस्त्रैषाजाज्ञाद्वास्वानाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)। नञ् पूर्वो यासां ता नञ्पूर्वा:, तासाम्-नञ्पूर्वाणाम् (बहुव्रीहि:)।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्थात्, कात्, पूर्वस्य, अत:, इद्, आपि, असुप:, न उदीचाम्, आत:, स्थाने इति चानुवर्तते।

अन्वय:-नञ्पूर्वाणामपि भस्त्रैषाजाज्ञाद्वास्वानामङ्गानामाऽऽत: स्थानेऽत: प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्याऽऽपि इद् न, असुप:, उदीचाम्।

अर्थ:-नञ्पूर्वाणाम् अनञ्पूर्वाणामपि भस्त्रैषाजाज्ञाद्वास्वानाम-ऽङ्गानामाऽऽत: स्थाने योऽकारस्तस्य प्रत्ययस्थात् ककारात् पूर्वस्य स्थाने, आपि प्रत्यये परत इकारादेशो न भवति, स चेद् आप् सुप: परो न भवति, उदीचामाऽऽचार्याणां मतेन, पाणिनिमते तु भवत्येव। **उदाहरणम्**-

(१) **भस्त्रा**-भस्त्रका, भस्त्रिका। (नञ्पूर्वा) अभस्त्रका, अभस्त्रिका।

(२) **एषा**-एषका, एषिका। (नञ्पूर्वा) अनेषका, अनेषिका।

(३) **जा**-जका, जिका। (नञ्पूर्वा) अजका, अजिका।

(४) **ज्ञा**-ज्ञका, ज्ञिका। (नञ्पूर्वा) अज्ञका, अज्ञिका।

(५) **द्वा**-द्वके, द्विके। (नञ्पूर्वा) अद्वके, अद्विके।

(६) **स्वा**-स्वका, स्विका। (नञ्पूर्वा) अस्वका, अस्विका।

आर्यभाषा:* *अर्थ-*(नञ्पूर्वाणाम्, अपि) नञ्पूर्वक और अनञ्पूर्वक भी (भस्त्रा०) भस्त्रा, एषा, जा, ज्ञा, द्वा, स्वा इन (अङ्गानाम्) अङ्गों के (आत:) आकार के स्थान में जो (अत:) अकारादेश होता है उस (प्रत्ययस्थात्) प्रत्यय में अवस्थित (कात्) ककार से (पूर्वस्य) पूर्ववर्ती अकार के स्थान में (आपि) आप् प्रत्यय परे होने पर (इत्) इकारादेश (न) नहीं होता है (असुप:) यदि वह आप् प्रत्यय सुप् से परे न हो (उदीचाम्) उत्तर भारत के आचार्यों के मत में, पाणिनि मुनि के मत में तो इकारादेश होता है।*

*उदा०-(भस्त्रा) **भस्त्रका, भस्त्रिका।** छोटी मशक चर्ममय जलपात्रविशेष। (नञ्पूर्वा) **अभस्त्रका, अभस्त्रिका।** मशक नहीं। (एषा) एषका, एषिका। थोड़ी इच्छा। (नञ्पूर्वा) **अनेषका, अनेषिका।** थोड़ी इच्छा नहीं। (जा) जका, जिका। छोटी स्त्री। (नञ्पूर्वा) **अजका, अजिका।** छोटी स्त्री नहीं। (ज्ञा) **ज्ञका, ज्ञिका।** अल्पज्ञा नारी। (नञ्पूर्वा) **अज्ञका, अज्ञिका।** अल्पज्ञा नारी नहीं। (द्वा) **द्वके, द्विके।** दो निन्दित नारियां। (नञ्पूर्वा)*

अद्वके, अद्विके। दो निन्दित नारी नहीं। (स्वा) स्वका, स्विका। अपनी अनुकिम्पत नारी। (नञ्पूर्वा) अस्वका, अस्विका। अपनी अनुकम्पित नारी नहीं।

सिद्धि-(१) भस्त्रका। यहां 'भस्त्रा' शब्द से 'ह्रस्वे' (५।३।८६) से ह्रस्व-अर्थ में 'क' प्रत्यय है। 'केऽणः' (७।४।१३) से आकार को ह्रस्व होता है। तत्पश्चात् स्त्रीत्व-विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। इस सूत्र से इस आकार के स्थान में विहित अकार के स्थान में उदीच्य आचार्यों के मत में इकारादेश नहीं होता है। पाणिनि मुनि के मत में होता है-भस्त्रिका। ऐसे ही नञ्पूर्वक से-अभस्त्रका, अभस्त्रिका।

'प्रागिवात् कः' (५।३।७०) से अज्ञात, कुत्सित, अनुकम्पा, अल्प, ह्रस्व आदि अर्थों में 'क' प्रत्यय का विधान किया गया है। तदनुसार एषका, एषिका आदि शब्दों के अर्थों की स्वयं ऊहा कर लेवें।

इदादेश-प्रतिषेधः-

(८) अभाषितपुंस्काच्च।।४८।।

प०वि०-अभाषितपुंस्कात् ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-भाषितः पुमान् येन यस्मिन्नर्थे स भाषितपुंस्कः, न भाषितपुंस्कः इति अभाषितपुंस्कः, तस्मात्-अभाषितपुंस्कात् (बहुव्रीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्थात्, कात्, पूर्वस्य, अतः, इद्, आपि, असुपः, न, उदीचाम्, आतः, स्थाने, नञ्पूर्वाणाम्, अपि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अनञ्पूर्वादपि अभाषितपुंस्कादऽङ्गाच्चाऽऽतः स्थानेऽतः प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्य स्थाने आपि इद् न, असुपः, उदीचाम्।

अर्थः-नञ्पूर्वाद् अनञ्पूर्वादपि अभाषितपुंस्काद् अङ्गाच्च विहितस्याऽऽतः स्थाने योऽकारस्तस्य प्रत्ययस्थात् पूर्वस्य स्थाने, आपि प्रत्यये परत इकारादेशो न भवति, स चेद् आप् सुपः परो न भवति, उदीचामाचार्याणां मतेन।

उदा०-खट्वका, खट्विका। (नञ्पूर्वः) अखट्वका, अखट्विका। परमखट्वका, परमखट्विका।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अनञ्पूर्वादपि) नञ् से पूर्व और अनञ् से पूर्व (अभाषितपुंस्कात्) जिसने पुंलिङ्ग को नहीं कहा है उस (अङ्गात्) अङ्ग से विहित (आतः) आकार से स्थान में जो (अतः) अकारादेश होता है उस (प्रत्ययस्थात्) प्रत्यय में अवस्थित (कात्)*

ककार से पूर्ववर्ती अकार के स्थान में (आपि) आप् प्रत्यय परे होने पर (इत्) इकारादेश (न) नहीं होता है (असुपः) यदि वह आप् प्रत्यय सुप् से परे न हो (उदीचाम्) उत्तर भारत के आचार्यों के मत में। पाणिनि मुनि के मत में तो इकारादेश होता ही है।

उदा०-खट्वका, खट्विका। छोटी खाट। (नञ्पूर्व) अखट्वका, अखट्विका। छोटी खाट नहीं। परमखट्वका, परमखट्विका। कुत्सित बड़ी खाट।

सिद्धि-खट्वका। यहां अभाषितपुंस्क 'खट्वा' शब्द से 'ह्रस्वे' (५।३।८६) से ह्रस्व-अर्थ में 'क' प्रत्यय है। 'केऽणः' (७।४।१३) से आकार के स्थान में अकार आदेश होता है। इस सूत्र से इस अकार के स्थान में उदीच्य आचार्यों के मत में इकारादेश नहीं होता है। पाणिनिमुनि के मत में तो होता ही है-खट्विका। ऐसे ही नञ्पूर्वक से-अखट्वका, अखट्विका। परमखट्वका, परमखट्विका। यहां 'कुत्सिते' (५।३।७४) से कुत्सित=निन्दित अर्थ में 'क' प्रत्यय है।

आद्-आदेशः-

(६) आदाचार्याणाम्।४६।।

प०वि०-आत् १।१ आचार्याणाम् ६।३ आदरार्थं बहुवचनम्।

अनु०-अङ्गस्य, प्रत्ययस्थात्, कात्, पूर्वस्य, अतः, इद्, आपि, असुपः, आतः, स्थाने, नञ्पूर्वाणाम्, अपि अभाषितपुंस्कादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-नञ्पूर्वादपि अभाषितपुंस्कादऽङ्गादाऽऽतः स्थानेऽतः, प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्य स्थाने आपि आद्, असुपः, आचार्याणाम्।

अर्थः-नञ्पूर्वाद् अनञ्पूर्वादपि भाषितपुंस्कादऽङ्गाद् विहितस्याऽऽतः स्थाने योऽकारस्तस्य प्रत्ययस्थात् ककारात् पूर्वस्य स्थाने, आपि प्रत्यये परत आकारादेशो भवति, आचार्याणां मतेन।

उदा०-खट्वाका। (नञ्पूर्वः) अखट्वाका। परमखटवाका।

आर्यभाषाः अर्थ- *(नञ्पूर्वादपि) नञ्पूर्वक और अनञ्पूर्वक भी (अभाषितपुंस्कात्) जिसने पुंलिङ्ग को नहीं कहा है उस (अङ्गात्) अङ्ग से विहित (आतः) आकार के स्थान में जो (अतः) अकारादेश है उस (प्रत्ययस्थात्) प्रत्यय में अवस्थित (कात्) ककार से (पूर्वः) पूर्ववर्ती अकार के स्थान में (आत्) आकारादेश होता है (आचार्याणाम्) पाणिनि मुनि के गुरुवर आचार्य के मत में।*

उदा०-खट्वाका। छोटी खाट। (नञ्पूर्व) अखट्वाका। छोटी खाट नहीं। परमखट्वाका। कुत्सित बड़ी खाट।

*सिद्धि-खट्वाका। यहां 'खट्वा' शब्द से **'ह्रस्वे'** (५।३।८६) से ह्रस्व-अर्थ में 'क' प्रत्यय है। **'केऽणः'** (७।४।१३) से आकार को ह्रस्वादेश होता है। इस सूत्र से इस अकार के स्थान में पाणिनि मुनि के गुरुवर आचार्य (वर्ष) के मत में आकारादेश होता है। ऐसे ही नञ्पूर्व से-**अखट्वाका। परमखट्वाका।** यहां **'कुत्सिते'** (५।३।७४) से कुत्सित-अर्थ में 'कन्' प्रत्यय है।*

विशेषः** अष्टाध्यायी सूत्रपाठ में जहां **'आचार्याणाम्'** इस बहुवचनान्त पद का प्रयोग है, वहां पाणिनि मुनि के गुरुवर वर्ष आचार्य के मत का ग्रहण किया जाता है। इस पद में बहुवचन आदर के लिये है-**आदरार्थं बहुवचनम्।

इक-आदेशः—

(१०) ठस्येकः।५०।

प०वि०-ठस्य ६।१ इकः १।१।

अनु०-अङ्गस्येत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अङ्गाट्ठस्येकः।

अर्थः-अङ्गाद् उत्तरस्य ठस्य स्थाने इकादेशो भवति।

उदा०-**प्राग्वहतेष्ठक्** (४।४।१) आक्षिकः, शालाकिकः। **लवणाट्ठञ्** (४।४।५२) लावणिकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अङ्गात्) अङ्ग से परे (ठस्य) ठ-प्रत्यय के स्थान में (इकः) इक-आदेश होता है।*

*उदा०-प्राग्वहतेष्ठक् (४।४।१) **आक्षिकः।** पासों से खेलनेवाला, जुआरी। **शालाकिकः।** शलाका के आकार के पासों से खेलनेवाला, जुआरी। **लवणाट्ठञ्** (४।४।५२) **लावणिकः।** लवण (नमक) का व्यापारी।*

*सिद्धि-(१) **आक्षिकः।** अक्ष+ठक्। अक्ष+इक। आक्ष्+इक। आक्षिक+सु। आक्षिकः।*

*यहां 'अक्ष' शब्द से **'तेन दीव्यति खनति जयति जितम्'** (४।४।२) से यथाविहित 'ठक्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'ठ' के स्थान में 'इक' आदेश होता है। **'किति च'** (७।२।११८) से आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अङ्ग के अकार का लोप होता है।*

*(२) **लावणिकः।** यहां 'लवण' शब्द से 'लवणाट्ठञ्' (४।४।५२) से पण्य-अर्थ में 'ठञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

क-आदेशः–

(११) इसुसुक्तान्तात् कः।५१।

प०वि०–इस्-उस-उक्-तान्तात् ५।१ कः १।१।

स०–इस् च उस् च उक् च तश्च एतेषां समाहार इसुसुक्तम्, इसुसुक्तम् अन्ते यस्य स इसुसुक्तान्तः, तस्मात्-इसुसुक्तान्तात् (समाहारद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०–अङ्गस्य, ठस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः–इसुसुक्तान्ताद् अङ्गाट्ठस्येकः।

अर्थः–इसन्ताद् उसन्ताद् उगन्तात् तकारान्ताच्चाऽङ्गाद् उत्तरस्य ठस्य स्थाने इकारादेशो भवति।

उदा०–(इस्) सार्पिष्कः। **(उस्)** याजुष्कः, धानुष्कः। **(उक्)** नैषादकर्षुकः, शाबरजम्बुकः, मातृकम्, पैतृकम्। **(तान्तः)** औदश्वित्कः, याकृत्कः, शाकृत्कः।

आर्यभाषाः अर्थ–(इसुसुक्तान्तात्) इस्, उस्, उक् और तकारान्त (अङ्गात्) अङ्ग से परे (ठस्य) ठ-प्रत्यय के स्थान में (कः) क-आदेश होता है।

*उदा०–**(इस्) सार्पिष्कः।** सर्पि=घृत का व्यापारी। **(उस्) याजुष्कः।** यज्ञ से जीतनेवाला। **धानुष्कः।** धनुषशस्त्रधारी। **(उक्) नैषादकर्षुकः।** निषादकर्षू देश में उत्पन्न। **शाबरजम्बुकः।** शबरजम्बू देश में उत्पन्न। **मातृकम्।** माता से आया हुआ द्रव्य। **पैतृकम्।** पिता से आया हुआ धन आदि। **(तकारान्त) औदश्वित्कम्।** उदश्वित्=लस्सी को संस्कृत करनेवाला लवण आदि। **याकृत्कः।** यकृत् से संसृष्ट। यकृत्=जिगर। **शाकृत्कः।** शकृत्=मल से संसृष्ट (मिश्रित)।*

*सिद्धि–**(१) सार्पिष्कः।** यहां इसन्त 'सर्पिष्' शब्द से 'तदस्य पण्यम्' (४।४।५१) से पण्य-अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'ठ' के स्थान में 'क' आदेश होता है। 'इणः षः' (८।४।३९) से विसर्जनीय को षकारादेश होता है।*

*(२) **याजुष्कः।** यहां उसन्त 'यजुष्' शब्द से 'तेन दीव्यति खनति जयति जितम्' (४।४।२) से जयति-अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय है।*

*(३) **नैषादकर्षुकः।** यहां उगन्त 'निषादकर्षू' शब्द से 'ओर्देशे ठञ्' (४।२।११८) से जात-अर्थ में 'ठञ्' प्रत्यय है। ऐसे ही शबरजम्बू शब्द से-शाबरजम्बुकः। 'केऽणः' (७।४।१३) से ह्रस्व (उ) होता है।*

*(४) **मातृकम्।** यहां उगन्त 'मातृ' शब्द से 'ऋतष्ठञ्' (४।३।७८) से आगत-अर्थ में 'ठञ्' प्रत्यय प्रत्यय है। ऐसे ही 'पितृ' शब्द से-**पैतृकम्।***

*(५) **औदश्वित्कः।** यहां तकारान्त 'उदश्वित्' शब्द से 'उदश्वितोऽन्यतरस्याम्' (४।२।१८) से संस्कृत अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय है।*

*(६) **याकृत्कः।** यहां तकारान्त 'यकृत्' शब्द से 'संसृष्टे' (४।४।२२) से संसृष्ट-अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय है। ऐसे ही 'शकृत्' शब्द से-**शाकृत्कः।***

कु-आदेशः—

(१२) चजोः कु घिण्ण्यतोः।।५२।।

प०वि०-चजोः ६।२ कु १।१ (सु-लुक्) घित्-ण्यतोः ७।२।

स०-चश्च ज् च तौ चजौ, तयोः-चजोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। घ इद् यस्य स घित्, घिच्च ण्यच्च तौ घिण्ण्यतौ, तयोः-घिण्ण्यतोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्येत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अङ्गस्य चजोर्घिण्ण्यतोः कुः।

अर्थः-अङ्गस्य चकार-जकारयोः स्थाने घिति ण्यति च प्रत्यये परतः कवर्गादेशो भवति।

उदा०-(घित्) पाकः, त्यागः, रागः। (ण्यत्) पाक्यम्, वाक्यम्, रेक्यम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अङ्गस्य) अङ्ग के (चजोः) चकार और जकार के स्थान में (घिण्ण्यतोः) घित् और ण्यत् प्रत्यय परे होने पर (कुः) कवर्ग आदेश होता है।*

*उदा०-(घित्) **पाकः।** पकाना। **त्यागः।** छोड़ना। **रागः।** रंगना। (ण्यत्) **पाक्यम्।** पकाना चाहिये। **वाक्यम्।** कहना चाहिये। **रेक्यम्।** मलशुद्धि करनी चाहिये।*

*सिद्धि-(१) **पाकः।** यहां 'डुपचष्' (भ्वा०उ०) धातु से 'भावे' (३।३।१८) से भाव-अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे कवर्ग (क्) आदेश होता है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से उपधावृद्धि होती है। ऐसे ही 'त्यज हानौ' (भ्वा०प०) धातु से-**त्यागः।** 'रञ्ज रागे' (भ्वा०उ०) धातु से-**रागः।** 'घञि च भावकरणयोः' (६।४।२७) से 'रञ्ज्' के नकार का लोप होता है।*

*(२) **पाक्यम्।** यहां पूर्वोक्त 'पच्' धातु से 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे कवर्ग (क्) आदेश होता है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से उपधावृद्धि होती है। ऐसे ही 'वच परिभाषणे' (अदा०प०) धातु से-**वाक्यम्।** 'रिचिर् विरेचने' (रुधा०उ०) धातु से-**रेक्यम्।***

कु-आदेशः–

(१३) न्यङ्क्वादीनां च।५३।

प०वि०-न्यङ्कु-आदीनाम् ६।३ च अव्ययपदम्।

स०-न्यङ्कु आदिर्येषां ते न्यङ्क्वादयः, तेषाम्-न्यङ्क्वादीनाम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, कुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-न्यङ्क्वादीनामऽङ्गानां च कुः।

अर्थः-न्यङ्क्वादीनामङ्गानां च कवर्गादेशो भवति।

उदा०-न्यङ्कुः, मद्गुः, भृगुः, इत्यादिकम्।

न्यङ्कुः। मद्गुः। भृगुः। दूरेपाकः। फलेपाकः। फलेपाका। क्षणेपाकः। दूरेपाकः। फलेपाकः। तक्रम्। वक्रम्। व्यतिषङ्गः। अनुषङ्गः। अवसर्गः। उपसर्गः। मेघः। श्वपाकः। मांसपाकः। कपोतपाकः। उलूकपाकः। संज्ञायाम्। अर्घः। अवदाघः। निदाघः। न्यग्रोधः। इति न्यङ्क्वादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(न्यङ्क्वादीनाम्) न्यङ्कु आदि (अङ्गानाम्) अङ्गों को (च) भी (कुः) कवर्गादेश होता है।*

*उदा०-**न्यङ्कुः।** हरिणविशेष। **मद्गुः।** जलप्लवी पक्षी। **भृगुः।** ऋषिविशेष। इत्यादि।*

सिद्धि-(१) न्यङ्कुः। *नि+अञ्च्+उ। नि+अङ्क्+उ। न्यङ्कु+सु। न्यङ्कुः।*

*यहां नि-उपसर्गपूर्वक **'अञ्चु गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से 'नावञ्चेः' (उणा० १।१७) से 'उ' प्रत्यय है। इस सूत्र से कवर्ग आदेश होता है।*

(२) मद्गुः। *मस्ज्+उ। मद्ज्+उ। मद्ग्+उ। मद्गु+सु। मद्गुः।*

*यहां 'टुमस्जो शुद्धौ' (तु०प०) धातु से **'भृमृशीङ्मस्जिभ्य** उः' (उणा० १।७) 'उ' प्रत्यय है। 'झलां जश् झशि' (८।४।५२) से सकार को जश् दकार होता है। इस सूत्र से जकार को कवर्ग गकारादेश होता है।*

(३) भृगुः। भ्रस्ज्+उ। भृस्ज्+उ। भृ०ज्+उ। भृग्+उ। भृगु+सु। भृगुः।

*यहां 'भ्रस्ज पाके' (तु०उ०) धातु से **'प्रथिम्रदिभ्रस्जां सम्प्रसारणं सलोपश्च'** (उणा० १।२८) से 'उ' प्रत्यय, सम्प्रसारण और सकार का लोप होता है। इस सूत्र से जकार को कवर्ग गकारादेश होता है। **भृज्जति तपसा शरीरमिति-भृगुः, ऋषिविशेषः।***

कु-आदेशः--

(१४) हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु।५४।

प०वि०-हः ६।१ हन्तेः ६।१ ञ्णिन्नेषु ७।१।

स०-ञश्च णश्च तौ ञ्णौ, इच्च इच्च तौ इतौ, ञ्णावितौ येषां ते ञ्णितः, ञ्णितश्च नश्च ते ञ्णिन्नाः, तेषु-ञ्णिन्नेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, कुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-हन्तेरङ्गस्य हो ञ्णिन्नेषु कुः।

अर्थः-हन्तेरङ्गस्य हकारस्य स्थाने, ञिति णिति प्रत्यये नकारे च परतः कवर्गादेशो भवति।

उदा०-**(ञित्)** घातो वर्तते। **(णित्)** स घातयति, घातकः, साधुघाती, घातंघातम्। **(नकारः)** ते घ्नन्ति। ते घ्नन्तु। तेऽघ्नन्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(हन्तेः) हन् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (हः) हकार के स्थान में (ञ्णिन्नेषु) ञित् और णित् प्रत्यय तथा नकार परे होने पर (कुः) कवर्गादेश होता है।*

उदा०-(ञित्) घातो वर्तते। हिंसा है। (णित्) स घातयति। वह हिंसा कराता है। घातकः। हिंसक। साधुघाती। साधु हिंसाशील। घातंघातम्। पुनः-पुनः हिंसा करके। (नकार) ते घ्नन्ति। वे हिंसा करते हैं। ते घ्नन्तु। वे हिंसा करें। तेऽघ्नन्। उन्होंने हिंसा की।

सिद्धि-(१) घातः। *हन्+घञ्। हन्+अ। घन्+अ। घत्+अ। घात्+अ। घात+सु। घातः।*

यहां 'हन हिंसागत्योः' (अदा०प०) धातु से 'भावे' (३।३।१८) से 'घञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'हन्' के हकार को कवर्ग घकारादेश होता है-'हकारेण चतुर्थः' (पा०शि० ४।९)। 'हनस्तोऽचिण्णलोः' (७।३।३२) से तकारादेश और 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से उपधावृद्धि होती है।

(२) घातयति। यहां पूर्वोक्त 'हन्' धातु से 'हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) घातकः। यहां पूर्वोक्त 'हन्' धातु से 'ण्वुल्तृचौ' (३।१।१३३) से 'ण्वुल्' प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'वु' को 'अक' आदेश है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(४) साधुघाती। यहां पूर्वोक्त 'हन्' धातु से 'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये' (३।२।७८) से 'णिनि' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

*(५) **घातंघातम्।** यहां पूर्वोक्त 'हन्' धातु से **'आभीक्ष्ण्ये णमुल् च'** (३।४।२२) से 'णमुल्' प्रत्यय है। वा०-**'आभीक्ष्ण्ये द्वे भवतः'** (३।४।२२) से द्वित्व होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(६) **घ्नन्ति।** हन्+लट्। हन्+झि। हन्+शप्+अन्ति। हन्+०+अन्ति। ह्न्+अन्ति। घ्न्+अन्ति। घ्नन्ति।*

*यहां पूर्वोक्त 'हन्' धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। **'गमहनजन०'** (६।४।९८) से 'हन्' धातु के उपधा-अकार का लोप होता है। इस सूत्र से नकार परे होने पर, हकार को कवर्ग घकारादेश होता है। ऐसे ही लोट् लकार में-**घ्नन्तु।** **'एरुः'** (३।४।८६) से उकारादेश है। लङ् लकार में-**अघ्नन्।***

कु-आदेशः--

(१५) अभ्यासाच्च।५५।

प०वि०-अभ्यासात् ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, कुः, हः, हन्तेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अभ्यासाच्च च हन्तेरङ्गस्य हः कुः।

अर्थः-अभ्यासाद् उत्तरस्य च हन्तेरङ्गस्य हकारस्य स्थाने कवर्गादेशो भवति।

उदा०-स जिघांसति। स जङ्घन्यते। अहं जघन।

__आर्यभाषाः अर्थ__-(अभ्यासात्) अभ्यास से परे (च) भी (हन्तेः) हन् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (हः) हकार के स्थान में (कुः) कवर्गादेश होता है।

*उदा०-**स जिघांसति।** वह हिंसा करना चाहता है। **स जङ्घन्यते।** वह पुनः पुनः हिंसा करता है। **अहं जघन।** मैंने हिंसा की (मिथ्या भाषण)।*

*__सिद्धि__-(१) **जिघांसति।** हन्+सन्। हन्+स। हन्-हन्+स। ह-हन्+स। ह-घन्+स। ह-घान्स। झ-घान्+स। झि-घान्+स। जिघा + स। जिघांस+लट्। जिघांसति।*

*यहां **'हन हिंसागत्योः'** (अदा०प०) धातु से **'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'** (३।१।७) से 'सन्' प्रत्यय है। **'सन्यङोः'** (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से अभ्यास से उत्तरवर्ती 'हन्' धातु के हकार को कवर्ग घकारादेश होता है। **'अज्झनगमां सनि'** (६।४।१६) से दीर्घ, **'कुहोश्चुः'** (७।४।६२) से अभ्यास हकार को चवर्ग झकार और **'अभ्यासे चर्च'** (८।४।५४) से झकार को जश् जकार और **'सन्यतः'** (७।४।७९) से अभ्यास-अकार को इकारादेश होता है।*

(२) जङ्घन्यते। हन्+यङ्। हन्+य। हन्-हन्+य। ह-हन्+य। ह-घन्+य। ह नुक्-घन्+य। हन्-घन्+य। झन्-घन्+य। जन्-घन्+य। जङ्-घन्+य। जङ्घन्य+लट्। जङ्घन्यते।

*यहां पूर्वोक्त 'हन्' धातु से **'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्'** (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय है। **'सन्यङोः'** (६।१।९) से 'हन्' धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से अभ्यास से उत्तरवर्ती 'हन्' के हकार को कवर्ग घकारादेश होता है। **'नुगतोऽनुनासिकान्तस्य'** (७।४।८५) से अभ्यास को 'नुक्' आगम और इसे **'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः'** (८।४।५८) से परसवर्ण होता है। अभ्यास-कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **जघन।** हन्+लिट्। हन्+मिप्। हन्+णल्। हन्+अ। हन्-हन्+अ। ह+हन्+अ। ह-घन्+अ। झ-हन्+अ। ज-घन्+अ। जघन।*

*यहां पूर्वोक्त 'हन्' धातु से **'परोक्षे लिट्'** (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय है। **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से 'हन्' धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से अभ्यास से उत्तरवर्ती 'हन्' धातु के हकार को कवर्ग घकारादेश होता है। **'णलुत्तमो वा'** (७।१।९१) से उत्तमपुरुष का णल् विकल्प से णित् है अतः विकल्प-पक्ष में **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से प्राप्त उपधावृद्धि नहीं होती है। यह अणित् पक्ष का उदाहरण है। णित्-पक्ष में तो पूर्व-सूत्र (७।३।५४) से कुत्व हो जाता है। अभ्यास-कार्य पूर्ववत् है।*

कु-आदेशः--

(१६) हेरचङि।५६।

प०वि०-हेः ६।१ अचङि ७।१।

स०-न चङ् इति अचङ्, तस्मिन्-अचङि (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, कुः, हः, अभ्यासादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अभ्यासाद् हेरङ्गस्य होऽचङि कुः।

अर्थः-अभ्यासाद् उत्तरस्य हिनोतेरङ्गस्य हकारस्य स्थाने चङ्वर्जिते प्रत्यये परतः कवर्गादेशो भवति।

उदा०-स प्रजिघीषति। स प्रजेघीयते। स प्रजिघाय।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अभ्यासात्) अभ्यास से परे (हेः) हि=हिनोति इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (हः) हकार के स्थान में (अचङि) चङ् से भिन्न प्रत्यय परे होने पर (कुः) कवर्गादेश होता है।*

*उदा०-स **प्रजिघीषति।** वह प्रेरणा करना चाहता है। स **प्रजेघीयते।** वह पुनः-पुनः प्रेरणा करता है। स **प्रजिघाय।** उसने प्रेरणा की।*

सिद्धि-(१) प्रजिघीषति। प्र+हि+सन्। प्र+हि-हि+स। प्र+हि-घि+स। प्र+हि-घी+स। प्र+झि-घी+स। प्र+जि-घी+स। प्रजिघीष+लट्। प्रजिघीषति।

*यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'हि गतौ वृद्धौ च'** (स्वा०प०) से **'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'** (३।१।७) से 'सन्' प्रत्यय है। 'सन्यङोः' (६।१।९) से 'हि' धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से अभ्यास से उत्तरवर्ती 'हि' धातु के हकार को कवर्ग घकारादेश होता है। **'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्'** (७।२।१०) से 'सन्' को इडागम का प्रतिषेध, **'इको झल्'** (१।२।९) से 'सन्' को किद्वद्भाव होने से **'क्ङिति च'** (१।१।५) से गुण का प्रतिषेध और **'अज्झनगमां सनि'** (६।४।१६) से दीर्घ होता है। अभ्यास-कार्य पूर्ववत् है।*

*(२) **प्रजेघीयते।** प्र+हि+यङ्। प्र+हि-हि+य। प्र+हि-घि+य। प्र+हि-घी+य। प्र+झि-घी+य। प्र+जे-घी+य। प्रजेघीय+लट्। प्रजेघीयते।*

*यहां प्र-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'हि' धातु से **'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्'** (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय है। **'अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः'** (७।४।२२) से 'हि' को दीर्घ और **'गुणो यङ्लुकोः'** (७।४।८२) से अभ्यास को गुण होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **प्रजिघाय।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'हि' धातु से **'परोक्षे लिट्'** (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय है। 'णल्' प्रत्यय परे होने पर **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से 'हि' को वृद्धि और **'एचोऽयवायावः'** (७।१।७७) से आय्-आदेश है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

कु-आदेशः—

(१७) सन्लिटोर्जेः ।५७।

प०वि०-सन्-लिटोः ७।२ जेः ६।१।

स०-सँश्च लिट् च तौ सन्लिटौ, तयोः-सन्लिटोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, कुः, अभ्यासादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अभ्यासाज्जेरङ्गस्य सन्लिटोः कुः।

अर्थः-अभ्यासाद् उत्तरस्य जयतेरङ्गस्य सनि लिटि च प्रत्यये परतः कवर्गादेशो भवति।

उदा०-(सन्) स जिगीषति। (लिट्) स जिगाय।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अभ्यासात्) अभ्यास से परे (जेः) जि इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (सन्लिटोः) सन् और लिट् प्रत्यय परे होने पर (कुः) कवर्गादेश होता है।*

*उदा०-(सन्) स **जिगीषति।** वह विजय करना चाहता है। (लिट्) स **जिगाय।** उसने विजय किया।*

*सिद्धि-(१) **जिगीषति।** जि+सन्। जि-जि+स। जि-गि+स। जि-गी+स। जिगीष+लट्। जिगीषति।*

*यहां 'जि जये' (भ्वा०प०) धातु से **'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'** (३।१।७) से 'सन्' प्रत्यय है। **'सन्यङोः'** (६।१।९) से 'जि' धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से अभ्यास से उत्तरवर्ती 'जि' धातु के जकार को कवर्ग गकारादेश होता है। **'अज्झनगमां सनि'** (६।४।१६) से दीर्घ और 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से षत्व होता है।*

*(२) जिगाय। यहां पूर्वोक्त 'जि' धातु से **'परोक्षे लिट्'** (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय है। 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' (६।१।८) से 'जि' धातु को द्वित्व होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। 'अचो ञ्णिति' (७।२।११५) से वृद्धि और **'एचोऽयवायावः'** (६।१।७७) से 'आय्' आदेश है।*

कु-आदेशविकल्पः–

(१८) विभाषा चेः।५८।

प०वि०-विभाषा १।१ चेः ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, कुः, अभ्यासात्, सन्लिटोर् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अभ्यासाच्चेरङ्गस्य सन्लिटोर्विभाषा कुः।

अर्थः-अभ्यासाद् उत्तरस्य चिनोतेरङ्गस्य सनि लिटि च प्रत्यये परतो विकल्पेन कवर्गादेशो भवति।

उदा०-(सन्) स चिचीषति, चिकीषति। **(लिट्)** स चिचाय, चिकाय।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अभ्यासात्) अभ्यास से परे (चेः) चि इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (सन्लिटोः) सन् और लिट् प्रत्यय परे होने पर (विभाषा) विकल्प से (कुः) कवर्गादेश होता है।*

*उदा०-(सन्) स **चिचीषति, चिकीषति।** वह चयन करना चाहता है। (लिट्) **स चिचाय, चिकाय।** उसने चयन किया।*

सिद्धि-(१) चिचीषति। यहां 'चिञ् चयने' (स्वा०उ०) धातु से 'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा' (३।१।७) से 'सन्' प्रत्यय है। 'सन्यङोः' (६।१।९) से 'चि' धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से अभ्यास से परे 'चि' धातु को कवर्गादेश नहीं होता है। विकल्प-पक्ष में कवर्गादेश है-**चिकीषति।** 'अज्झनगमां सनि' (६।४।१६) से दीर्घ होता है।

(२) चिचाय। यहां पूर्वोक्त 'चि' धातु से 'परोक्षे लिट्' (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय है। 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' (६।१।८) से 'चि' धातु को द्वित्व होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। विकल्प-पक्ष में कवर्गादेश है-**चिकाय।**

कु-आदेशप्रतिषेधः-

(१६) न क्वादेः।५६।

प०वि०-न अव्ययपदम्, कु-आदेः ६।१।

स०-कुरादिर्यस्य स क्वादिः, तस्य-क्वादेः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, कुरिति चानुवर्तते। **'चजोः कु घिण्ण्यतोः'** (७।३।५२) इत्यस्माच्च चजोरिति च मण्डूकोत्प्लुत्याऽनुवर्तनीयम्।

अन्वयः-क्वादेरङ्गस्य चजोः कुर्न।

अर्थः-कवर्गादिरङ्गस्य चकारस्य जकारस्य च स्थाने कवर्गादेशो न भवति।

उदा०-कूजो वर्तते। खर्जः। गर्जः। कूज्यं भवता। खर्ज्यं भवता। गर्ज्यं भवता।

आर्यभाषाः *अर्थ-(क्वादेः) कवर्ग जिसके आदि में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग के (चजोः) चकार और जकार के स्थान में (कुः) कवर्गादेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**कूजो वर्तते।** पक्षियों का कूजन (चहचाना) है। **खर्जो वर्तते।** दुःख है। गर्जो वर्तते। मेघ का गर्जन है। **कूज्यं भवता।** आपको कूजन करना चाहिये। **खर्ज्यं भवता।** आपको पूजित होना चाहिये। **गर्ज्यं भवता।** आपको गर्जन करना चाहिये।*

सिद्धि-(१) कूजः। यहां **'कुज अव्यक्ते शब्दे'** (भ्वा०प०) इस कवर्गादि धातु से 'भावे' (३।३।१८) से भाव-अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसके जकार को कवर्गादेश का प्रतिषेध होता है। 'चजोः कु घिण्ण्यतोः' (७।३।५२) से कुत्व प्राप्त था। ऐसे ही 'खर्ज व्यथने पूजने च' (भ्वा०प०) से-**खर्जः।** 'गर्ज शब्दे' (भ्वा०प०) धातु से-**गर्जः।**

(२) कूज्यम्। यहां 'कूज अव्यक्ते शब्दे' (भ्वा०प०) धातु से 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही पूर्वोक्त 'खर्ज' और 'गर्ज' धातुओं से-खर्ज्यम्, गर्ज्यम्।

कु-आदेशप्रतिषेधः--

(२०) अजिव्रज्योश्च।६०।

प०वि०-अजि-व्रज्यो: ६।२ च अव्ययपदम्।

स०-अजिश्च व्रजिश्च तौ अजिव्रजी, तयो:-अजिव्रज्यो: (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, चजो:, कु:, नेति चानुवर्तते।

अन्वय:-अजिव्रज्योरङ्गयोश्च चजो: कुर्न।

अर्थ:-अजिव्रज्योरङ्गयोश्च चकार-जकारयो: स्थाने कवर्गादेशो न भवति।

उदा०-(अजि:) समाज:, उदाज:। (व्रजि:) परिव्राज:, परिव्राज्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अजिव्रज्यो:) अजि, व्रजि इन (अङ्गयो:) अङ्गों के (च) भी (चजो:) चकार और जकार के स्थान में (कु:) कवर्गादेश (न) नहीं होता है।*

उदा०-(अजि) समाज:। मनुष्यों का समुदाय। उदाज:। प्रेरणा। (व्रजि) परिव्राज:। परिव्राट्-संन्यासी। परिव्राज्यम्। परिव्रजन (भ्रमण) करना चाहिये।

सिद्धि-(१) समाज:। यहां सम्-उपसर्गपूर्वक 'अज गतिक्षेपणयो:' (भ्वा०प०) धातु से 'हलश्च' (३।३।१२१) से 'घञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे कवर्गादेश का प्रतिषेध होता है। 'चजो: कु घिण्ण्यतो:' (७।३।५२) से कुत्व प्राप्त था। ऐसे ही उत्-उपसर्गपूर्वक 'अज' धातु से-उदाज:।

(२) परिव्राज:। यहां परि-उपसर्गपूर्वक 'व्रज गतौ' (भ्वा०प०) धातु से 'भावे' (३।३।१८) से 'घञ्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।

(३) परिव्राज्यम्। यहां परि-उपसर्गपूर्वक 'व्रज' धातु से 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय है। 'अत उपधाया:' (७।२।११६) से अङ्ग को उपधावृद्धि होती है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।

विशेषः *'अज' धातु को 'घञ्' और 'अप्' प्रत्यय से भिन्न आर्धधातुक विषय में 'अजेर्व्यघञपो:' (२।४।५६) से 'वी' आदेश होता है। अत: इसका 'ण्यत्' प्रत्यय में उदाहरण दिया गया है।*

निपातनम्–

(२१) भुजन्युब्जौ पाण्युपतापयोः ।६१।

प०वि०–भुज-न्युब्जौ १।२ पाणि-उपतापयोः ७।२।

स०–भुजश्च न्युब्जश्च तौ भुजन्युब्जौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। पाणिश्च उपतापश्च तौ पाण्युपतापौ, तयोः-पाण्युपतापयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, चजोः, कुः, नेति चानुवर्तते।

अन्वयः–पाण्युपतापयोर्भुजन्युब्जौ {अङ्गयोश्चजोः कुर्न}।

अर्थः–पाण्युपतापयोरर्थयोर्यथासंख्य भुजन्युब्जशब्दौ निपात्येते, अर्थात्-एतयोरङ्गयोश्चकारजकारयोः स्थाने कवर्गादेशो न भवति।

उदा०–(भुजः) भुज्यतेऽनेनेति भुजः पाणिः। (**न्युब्जः**) न्युब्जिता=अधोमुखाः शेरतेऽस्मिन्निति न्युब्जः उपतापः, रोग इत्यर्थः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(पाण्युपतापयोः) पाणि=हाथ और उपताप=रोग अर्थ में यथासंख्य (भुजन्युब्जौ) भुज और न्युब्ज शब्द निपातित है अर्थात् इन के (अङ्गयोः) अङ्गों के (चजोः) चकार और जकार के स्थान में (कुः) कवर्गादेश (न) नहीं होता है।*

उदा०-(भुजः) भुजः=पाणि (हाथ)। इससे पालन और अभ्यवहार (खानपान) किया जाता है अतः यह 'भुज' कहलाता है। (न्युब्जः) न्युब्जः=उपताप (रोग)। इसमें लोग अधोमुख पड़े रहते हैं अतः रोग को 'न्युब्ज' कहते हैं।

सिद्धि-(१) भुजः। *यहां **'भुज पालनाभ्यवहारयोः'** (रुधा०आ०) धातु से **'अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्'** (३।३।१९) से संज्ञा अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसके जकार को कवर्गादेश का प्रतिषेध और **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से प्राप्त लघूपधलक्षण गुण का अभाव निपातित है।*

*(२) न्युब्जः। यहां नि-उपसर्गपूर्वक **'उब्ज आर्जवे'** (तु०प०) धातु से पूर्ववत् 'घञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसके जकार को कवर्गादेश का प्रतिषेध निपातित है। 'चजोः कु घिण्ण्यतोः' (७।३।५२) से कुत्व प्राप्त था।*

निपातनम्–

(२२) प्रयाजानुयाजौ यज्ञाङ्गे ।६२।

प०वि०–प्रयाज-अनुयाजौ १।२ यज्ञाङ्गे ७।१।

स०–प्रयाजश्च अनुयाजश्च तौ प्रयाजानुयाजौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। **यज्ञस्य** अङ्गमिति यज्ञाङ्गम्, तस्मिन्-यज्ञाङ्गे।

अनु०-अङ्गस्य, चजोः, कुः, नेति चानुवर्तते।

अन्वयः-यज्ञाङ्गे प्रयाजानुयाजौ {अङ्गयोश्च जोः कुर्न}।

अर्थः-यज्ञाङ्गे विषये प्रयाजानुयाजौ शब्दौ निपात्येते, अर्थात्-एतयोरङ्गयोश्चकारजकारयोः स्थाने कवर्गादेशो न भवति।

उदा०-पञ्च प्रयाजाः (तै०सं० २।६।१०)। त्रयोऽनुयाजाः (श०ब्रा० ११।४।१।११)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(यज्ञाङ्गे) यज्ञ के अवयव विषय में (प्रयाजानुयाजौ) प्रयाज और अनुयाज शब्द निपातित है, अर्थात् इन (अङ्गयोः) अङ्गों के (चजोः) चकार और जकार के स्थान में (कुः) कवर्गादेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**पञ्च प्रयाजाः** (तै०सं० २।६।१०)। पांच प्रयाज नामक यज्ञ। **त्रयोऽनुयाजाः** (श०ब्रा० ११।४।१।११)। तीन अनुयाज नामक यज्ञ।*

सिद्धि-प्रयाजाः।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु'** (भ्वा०उ०) धातु से **'अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्'** (३।३।१९) से संज्ञा-विषय में 'घञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसके जकार को कवर्गादेश का प्रतिषेध निपातित है। ऐसे ही-**अनुयाजाः।

***विशेषः** (१) दर्शपौर्णमास-इष्टि में पांच आहुतियां दी जाती हैं, जिन्हें पांच प्रयाज कहते थे। यह यज्ञ का पूर्वाङ्ग या पूर्वभाग था। इसके बाद की तीन गौण आहुति अनुयाज कहलाती थी।*

*(२) शतपथ के अनुसार समिध्-प्रयाज आदि पांच प्रयाज ये हैं- **{१} समिधो यजति {२} तनूनपातं यजति {३} बर्हिर्यजति {४} इडो यजति {५} स्वाहाकारं यजति** (श० १।५।३।१-१३)।*

*(३) अनुयाज तीन हैं-**त्रयोऽनुयाजाश्चत्वारः पत्नीसंयाजाः** (शत० ११।४।१।११)। दर्शपौर्णमास-इष्टि में तीन अनुयाजों के बाद यजमान-पत्नी चार पत्नी-संयाज आहुति देती है (पाणिनि कालीन भारतवर्ष, पृ० ३७१)।*

(४) काशिकावृत्ति में 'पञ्चानुयाजा' यह अपपाठ है। अनुयाज तीन हैं, पांच नहीं।

कु-आदेशप्रतिषेधः-

(२३) वञ्चेर्गतौ।६३।

प०वि०-वञ्चेः ६।१ गतौ ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, चजोः, कुः, नेति चानुवर्तते।

अन्वयः-गतौ वञ्चेरङ्गस्य चजोः कुर्न।

अर्थः-गतावर्थे वर्तमानस्य वञ्चेरङ्गस्य चकारस्य स्थाने कवर्गादेशो न भवति।

उदा०-वञ्च्यं वञ्चन्ति वणिजः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(गतौ) गति-अर्थ में विद्यमान (वञ्चेः) वञ्चि इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (चजोः) चकार के स्थान में (कुः) कवर्गादेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**वञ्च्यं वञ्चन्ति वणिजः**। व्यापारी लोग अपने गन्तव्य देश को जाते हैं।*

***सिद्धि-वञ्च्यम्**। यहां '**वञ्चु गतौ**' (भ्वा०प०) धातु से '**ऋहलोर्ण्यत्**' (३।४।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे कवर्गादेश का प्रतिषेध होता है। '**चजोः कु घिण्ण्यतोः**' (७।३।५२) से कुत्व प्राप्त था।*

***विशेषः** 'वञ्चि' धातु में चकार है, जकार नहीं। अतः जकार की अनुवृत्ति एकपद की परवशता से की गई है।*

निपातनम्-

(२४) ओक उचः के।६४।

प०वि०-ओकः १।१ उचः ५।१ के ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, कुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-उचोऽङ्गात् के ओकः कुः।

अर्थः-उचोऽङ्गात् के प्रत्यये परत ओक इति निपात्यते, अत्र कवर्गादेशो भवतीत्यर्थः।

उदा०-न्युचतीति न्योकः शकुन्तः। न्युचन्त्यस्मिन्निति न्योको गृहम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(उचः) उच् इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (ओकः) ओक यह शब्द निपातित है अर्थात् यहां (कुः) कवर्गादेश होता है।*

*उदा०-**न्योकः शकुन्तः**। जो समुदाय बनाकर रहता है वह-पक्षी। **न्योको गृहम्**। जिस में लोग निवास करते हैं वह-घर।*

***सिद्धि-न्योकः**। नि+उच्+क। नि+उक्+अ। न्योक+सु। न्योकः।*

*यहां नि-उपसर्गपूर्वक '**उच समवाये**' (दि०प०) धातु से '**इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः**' (३।१।१३५) से कर्ता अर्थ में 'क' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे 'क' प्रत्यय के 'कित्' होने से '**क्ङिति च**' (१।१।५) से प्राप्त गुणप्रतिषेध भी नहीं होता है। अथवा-'**घञर्थे कविधानं०**' (३।३।५८) से अधिकरण कारक में 'क' प्रत्यय है।*

कु-आदेशप्रतिषेधः–

(२५) ण्य आवश्यके।६५।

प०वि०-ण्ये ७।१ आवश्यके ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, कुः, नेति चानुवर्तते।

अन्वयः-आवश्यके ण्येऽङ्गस्य कुर्न।

अर्थः-आवश्यकेऽर्थे ण्ये प्रत्यये परतोऽङ्गस्य कवर्गादेशो न भवति।

उदा०-अवश्यपाच्यम्। अवश्यवाच्यम्। अवश्यरेच्यम्।

आर्यभाषाः अर्थ-(आवश्यके) आवश्यक अर्थ में (ण्ये) ण्य-प्रत्यय परे होने पर (अङ्गस्य) अङ्ग को (कुः) कवर्गादेश (न) नहीं होता है।

*उदा०-**अवश्यपाच्यम्।** अवश्य पकाने योग्य। **अवश्यवाच्यम्।** अवश्य कहने योग्य। **अवश्यरेच्यम्।** अवश्य मलशुद्धि करने योग्य।*

*सिद्धि-**अवश्यपाच्यम्।** यहां अवश्य-उपपद **'डुपचष् पाके'** (भ्वा०उ०) धातु से **'कृत्याश्च'** (३।३।७१) से कृत्य-संज्ञक 'ण्यत्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे कवर्गादेश का प्रतिषेध होता है। **'चजोः कु घिण्ण्यतोः'** (७।३।५२) से कुत्व प्राप्त था। अवश्यम् और पाच्य शब्दों का **'मयूरव्यंसकादयश्च'** (२।१।७२) से कर्मधारय समास है और **'लुम्पेदवश्यमः कृत्ये तुम्काममनसोरपि'** (महा० ६।१।१३९) से 'अवश्यम्' के मकार का लोप होता है। ऐसे ही **'वच परिभाषणे'** (अदा०प०) धातु से-**अवश्यवाच्यम्। 'रिचिर् विरेचने'** (रुधा०आ०) धातु से-**अवश्यरेच्यम्।***

कु-आदेशप्रतिषेधः–

(२६) यजयाचरुचप्रवचर्चश्च।६६।।

प०वि०-यज-याच-रुच-प्रवच-ऋचः ६।१ च अव्ययपदम्।

स०-यजश्च याचश्च रुचश्च प्रवचश्च ऋच् च एतेषां समाहारो यज०ऋच्, तस्य यज०ऋचः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, चजोः, कुः, न, ण्ये इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यजयाचरुचप्रवचर्चामङ्गानां च चजोर्ण्ये कुर्न।

अर्थः-यजयाचरुचप्रवचर्चामङ्गानां च चकारस्य जकारस्य च स्थाने, ण्ये प्रत्यये परतः कवर्गादेशो न भवति।

उदा०-(यज) याज्यम्। (याच) याच्यम्। (रुच) रोच्यम्। (प्रवच) प्रवाच्यम्। (ऋच) अर्च्यम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(यज०) यज, याच, रुच, प्रवच, ऋच इन (अङ्गानाम्) अङ्गों के (चजोः) चकार और जकार के स्थान में (ण्ये) ण्य-प्रत्यय परे होने पर (कुः) कवर्गादेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**(यज) याज्यम्।** यज्ञ करना चाहिये। **(याच) याच्यम्।** मांगना चाहिये। **(रुच) रोच्यम्।** चमकना चाहिये। **(प्रवच) प्रवाच्यम्।** प्रवचन करना चाहिये। **(ऋच) अर्च्यम्।** स्तुति करनी चाहिये।*

*सिद्धि-**याज्यम्।** यहां 'यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) धातु से 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसके जकार को कवर्गादेश का प्रतिषेध होता है। 'चजोः कु घिण्ण्यतोः' (७।३।५२) से कुत्व प्राप्त था। ऐसे ही 'टुयाचृ याच्ञायाम्' (भ्वा०आ०) धातु से-**याच्यम्।** 'रुच दीप्तौ' (भ्वा०आ०) धातु से-**रोच्यम्।** प्र-उपसर्गपूर्वकपूर्वक 'वच परिभाषणे' (अदा०प०) धातु से-**प्रवाच्यम्।** 'ऋच स्तुतौ' (भ्वा०प०) धातु से-**अर्च्यम्।***

कु-आदेशप्रतिषेधः-

(२७) वचोऽशब्दसंज्ञायाम्।६७।

प०वि०-वचः ६।१ अशब्दसंज्ञायाम् ७।१।

स०-शब्दस्य संज्ञेति शब्दसंज्ञा न शब्दसंज्ञेति अशब्दसंज्ञा, तस्याम्-अशब्दसंज्ञायाम् (षष्ठीगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, चजोः, कुः, न, ण्ये इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अशब्दसंज्ञायां वचोऽङ्गस्य चजोर्ण्ये कुर्न।

अर्थः-शब्दसंज्ञावर्जिते विषये वचोऽङ्गस्य चकारस्य जकारस्य च स्थाने, ण्ये प्रत्यये परतः कवर्गादेशो न भवति।

उदा०-स वाच्यमाह। सोऽवाच्यमाह।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अशब्दसंज्ञायाम्) शब्दशास्त्र की संज्ञा से भिन्न विषय में (वचः) वच् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (चजोः) चकार और जकार के स्थान में (ण्ये) ण्य-प्रत्यय परे होने पर (कुः) कवर्गादेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**स वाच्यमाह।** वह कहने योग्य वचन कहता है। **सोऽवाच्यमाह।** वह न कहने योग्य वचन कहता है।*

सिद्धि-वाच्यम्। यहां 'वच परिभाषणे' (अदा०प०) धातु से 'ऋहलोर्ण्यत्' (३।१।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे अशब्दसंज्ञा विषय में कवर्गादेश का प्रतिषेध होता है। 'चजोः कु घिण्ण्यतोः' (७।३।५२) से कुत्व प्राप्त था। नञ्पूर्वक से-अवाच्यम्।

निपातनम्-

(२८) प्रयोज्यनियोज्यौ शक्यार्थे।६८।

प०वि०-प्रयोज्य-नियोज्यौ १।२ शक्यार्थे ७।१।

स०-प्रयोज्यश्च नियोज्यश्च तौ-प्रयोज्यनियोज्यौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। शक्यश्चासावर्थ इति शक्यार्थः, तस्मिन्-शक्यार्थे (कर्मधारयः)।

अनु०-अङ्गस्य, चजोः, कुः, न, ण्ये इति चानुवर्तते।

अन्वयः-शक्यार्थे प्रयोज्यनियोज्यौ {एतयोश्चजोर्ण्ये कुर्न}।

अर्थः-शक्यार्थे प्रयोज्यनियोज्यौ शब्दौ निपात्येते अर्थात् एतयोरङ्गयोर्जकारस्य स्थाने, ण्ये प्रत्यये परतः कवर्गादेशो न भवति।

उदा०-(**प्रयोज्यः**) प्रयोक्तुं शक्य इति प्रयोज्यो भृत्यः। (**नियोज्यः**) नियोक्तुं शक्य इति नियोज्यो दासः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(शक्यार्थे) शक्य-अर्थ में (प्रयोज्यनियोज्यौ) प्रयोज्य और नियोज्य ये शब्द निपातित है, अर्थात् इन अङ्गों के जकार के स्थान में (कुः) कवर्गादेश (न) नहीं होता है।*

उदा०-(प्रयोज्य) प्रयोग कर सकने योग्य-प्रयोज्य भृत्य (नौकर)। (नियोज्य) नियोग=आज्ञा कर सकने योग्य-नियोज्य दास।

सिद्धि-प्रयोज्यः। यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'युजिर् योगे' (रुधा०उ०) धातु से 'शकि लिङ् च' (३।३।१७२) से शक्यार्थ में कृत्य-संज्ञक 'ण्यत्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसके जकार को कवर्गादेश का प्रतिषेध निपातित है। 'चजोः कु घिण्ण्यतोः' (७।३।५२) से कुत्व प्राप्त था। ऐसे ही अनु-उपसर्गपूर्वक 'युज्' धातु से-अनुयोज्यः।

निपातनम्-

(२९) भोज्यं भक्ष्ये।६९।

प०वि०-भोज्यम् १।१ भक्ष्ये ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, चजोः कुः, न, ण्ये इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भक्ष्ये भोज्यम् {चजोर्ण्ये कुन्} ।

अर्थः-भक्ष्येऽर्थे भोज्यमिति निपात्यते, अर्थात्-एतस्याऽङ्गस्य जकारस्य ण्ये प्रत्यये परतः कवर्गादेशो न भवति।

उदा०-भोज्य ओदनः । भोज्या यवागूः ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(भक्ष्य) भक्ष्य अर्थ में (भोज्यम्) भोज्य यह शब्द निपातित है, अर्थात् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (चजोः) जकार को (ण्ये) ण्य-प्रत्यय परे होने पर (कुः) कवर्गादेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**भोज्य ओदनः**। खाने योग्य भात (चावल)। **भोज्या यवागूः**। खाने योग्य यवागू (लापसी)।*

***सिद्धि-भोज्यः**। यहां 'भुज पालनाभ्यवहारयोः' (रुधा०प०) धातु से भक्ष्य-अर्थ में '**ऋहलोर्ण्यत्**' (३।४।१२४) से 'ण्यत्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसके जकार को कवर्गादेश का प्रतिषेध निपातित है। 'चजोः कु घिण्ण्यतोः' (७।३।५२) से कुत्व प्राप्त था। स्त्रीत्व-विवक्षा में-**भोज्या यवागूः**।*

{इति कवर्गादेशप्रकरणम्}

लोपादेशप्रकरणम्

लोपादेश-विकल्पः–

(३०) घोर्लोपो लेटि वा।७०।

प०वि०-घोः ६।१ लोपः १।१ लेटि ७।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्येत्यनुवर्तते।

अन्वयः-घोरङ्गस्य लेटि वा लोपः।

अर्थः-घुसंज्ञकस्याङ्गस्य लेटि प्रत्यये परतो विकल्पेन लोपो भवति।

उदा०-दधद् रत्नानि दाशुषे (ऋ० ४।१५।३)। सोमो ददद् गन्धर्वाय (ऋ० १०।८५।४१) न च भवति-यदग्निरग्नये ददात्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(घोः) घु-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्ग का (लेटि) लेट् प्रत्यय परे होने पर (वा) विकल्प से (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-दधद् रत्नानि दाशुषे (ऋ० ४।१५।३)। दधत्=धारण करता है। **सोमो ददद् गन्धर्वाय** (ऋ० १०।८५।४१) ददत्=देता है। और कहीं लोपादेश नहीं भी होता है-**यदग्निरग्नये ददात्**। ददात्=देता है।*

सिद्धि-दधत्। धा+लेट्। धा+ल्। धा+तिप्। धा+शप्+ति। धा+०+त्। धा-धा+अट्+त्। ध-धा+अ+त्। द-ध्+अ+त्। दधत्।

यहां **'डुधाञ् धारणपोषणयोः'** *(जु०उ०) धातु से* **'लिङर्थे लेट्'** *(३।४।७) से 'लेट्' प्रत्यय है।* **'दाधा घ्वदाप्'** *(१।१।१९) से 'धा' धातु की 'घु' संज्ञा है।* **'कर्तरि शप्'** *(३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और इसको* **'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः'** *(२।४।७५) से श्लु (लोप) और 'श्लौ' (६।१।१०) से 'धा' धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से 'धा' के अन्त्य आकार का लोप होता है।* **'लेटोऽडाटौ'** *(३।४।९४) से 'अट्' आगम और* **'इतश्च लोपः परस्मैपदेषु'** *(३।४।९७) से 'तिप्' के इकार का लोप होता है। 'ह्रस्वः' (७।४।५९) से अभ्यास को 'ह्रस्व' और* **'अभ्यासे चर्च'** *(८।४।५४) से अभ्यासस्थ धकार को जश् दकार होता है। ऐसे ही* **'डुदाञ् दाने'** *(जु०उ०) धातु से-ददत्। विकल्प-पक्ष में लोपादेश नहीं है-ददात्।*

लोपादेशः-

(३१) ओतः श्यनि।७१।

प०वि०-ओतः ६।१ श्यनि ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, लोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ओतोऽङ्गस्य श्यनि लोपः।

अर्थः-ओकारान्तस्याऽङ्गस्य श्यनि प्रत्यये परतो लोपो भवति।

उदा०-(शो) स निश्यति। **(छो)** सोऽवच्छ्यति। **(दो)** सोऽवद्यति। **(सो)** सोऽवस्यति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ओतः) ओकारान्त (अङ्गस्य) अङ्ग का (श्यनि) श्यन् प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-***(शो) स निश्यति।** *वह तीक्ष्ण करता है (पैनाता) है।* **(छो) सोऽवच्छ्यति।** *वह काटता है।* **(दो) सोऽवद्यति।** *वह टुकड़े करता है।* **(सो) सोऽवस्यति।** *वह अन्त (समाप्त) करता है।*

सिद्धि-(१) निश्यति। *यहां नि-उपसर्गपूर्वक 'शो तनूकरणे' (दि०प०) धातु से* **'वर्तमाने लट्'** *(३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय और* **'दिवादिभ्यः श्यन्'** *(३।१।६९) से 'श्यन्' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से 'शो' धातु के अन्त्य ओकार का लोप होता है।*

(२) ***अवच्छ्यति।*** *अव-उपसर्गपूर्वक* **'छो छेदने'** *(दि०प०) धातु से पूर्ववत्।*

(३) ***अवद्यति।*** *अव-उपसर्गपूर्वक* **'दो उवखण्डने'** *(दि०प०)।*

(४) ***अवस्यति।*** *अव-उपसर्गपूर्वक* **'षोऽन्तकर्मणि'** *(दि०प०)।*

लोपादेशः–

(३२) क्सस्याचि ।७२।

प०वि०-क्सस्य ६ ।१ अचि ७ ।१ ।

अनु०-अङ्गस्य, लोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः-क्सस्याङ्गस्याऽचि लोपः ।

अर्थः-क्सस्याऽङ्गस्याऽजादौ प्रत्यये परतो लोपो भवति।

उदा०-तौ अधुक्षाताम्। युवाम् अधुक्षाथाम्। अहम् अधुक्षि।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(क्स) क्स इस (अङ्गस्य) अङ्ग का (अचि) अजादि प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-**तौ अधुक्षाताम्।** उन दोनों ने दोहन किया, दूध निकाला। **युवाम् अधुक्षाथाम्।** तुम दोनों ने दोहन किया। **अहम् अधुक्षि।** मैंने दोहन किया।*

***सिद्धि-अधुक्षाताम्।** दुह्+लुङ्। अट्+दुह्+च्लि+ल्। अ+दुह्+क्स+आताम्। अ+दुघ्+स्+आताम्। अ+धुघ्+स्+आताम्। अ+धुक्+स्+आताम्। अ+धुक्+ष्+आताम्। अधुक्षाताम्।*

*यहां 'दुह प्रपूरणे' (अदा०उ०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। 'शल इगुपधादनिटः क्सः' (३।१।४५) से 'च्लि' के स्थान में 'क्स' आदेश होता है। इस सूत्र से अजादि 'आताम्' प्रत्यय परे होने पर 'अलोऽन्त्यस्य' (१।१।५२) के नियम से 'क्स' के अन्त्य अकार का लोप होता है। 'एकाचो बशो भष्०' (८।२।३७) से दकार को भष् धकार, 'खरि च' (८।४।५५) से घकार को चर् ककार और 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से षत्व होता है। ऐसे ही 'आथाम्' प्रत्यय में-**अधुक्षाथाम्।** इट् (उ०पु० एकवचन) में-**अधुक्षि।***

लुग्-विकल्पः–

(३३) लुग् वा दुहदिहलिहामात्मनेपदे दन्त्ये।७३।

प०वि०-लुक् १।१ वा अव्ययपदम्, दुह-दिह-लिहाम् ६।३ आत्मनेपदे ७।१ दन्त्ये ७।१।

स०-दुहश्च दिहश्च लिह् च ते दुहदिहलिहः, तेषाम्-दुहदिहलिहाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, क्सस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-दुहदिहलिहामऽङ्गानां क्सस्य दन्त्ये आत्मनेपदे वा लुक्।

अर्थः-दुहदिहलिहामऽङ्गानां क्सप्रत्ययस्य, दन्त्यादावाऽऽत्मनेपदे परतो विकल्पेन लुग् भवति।

उदा०-(**दुह**) सोऽदुग्ध, अधुक्षत। त्वम् अदुग्धाः, अधुक्षथाः। यूयम् अदुग्ध्वम्, अधुक्षध्वम्। आवाम् अदुह्वहि, अधुक्षावहि। (**दिह**) सोऽदिग्ध, अधिक्षत। (**लिह**) सोऽलीढ, अलिक्षत। (**गुह**) स न्यूगढ, न्यधुक्षत।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दुह०) दुह, दिह, लिह् इन (अङ्गानाम्) अङ्गों के (क्सस्य) क्सप्रत्यय का (दन्त्ये) दन्त्य वर्ण जिसके आदि में है उस (आत्मनेपदे) आत्मनेपद-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (वा) विकल्प से (लुक्) लुक् होता है।*

*उदा०-(दुह) **सोऽदुग्ध, अधुक्षत।** उसने दोहन किया, दूध निकाला। **त्वम् अदुग्धाः, अधुक्षथाः।** तूने दोहन किया। **यूयम् अदुग्ध्वम्, अधुक्षध्वम्।** तुम सबने दोहन किया। **आवाम् अदुह्वहि, अधुक्षावहि।** हम दोनों ने दोहन किया। (दिह) **सोऽदिग्ध, अधिक्षत।** वह बढ़ा। (लिह) **सोऽलीढ, अलिक्षत।** उसने आस्वादन किया, चाटा। (गुह) **स न्यूगढ, न्यधुक्षत।** उसने आच्छादित किया, छुपाया।*

*सिद्धि-(१) **अदुग्ध।** दुह्+लुङ्। अट्+दुह्+च्लि+ल्। अ+दुह्+क्स+त। अ+दुह्+०+त। अ+दुघ्+त। अ+अदुघ्+ध। अ+दुग्+ध। अदुग्ध।*

*यहां 'दुह प्रपूरणे' (अदा०उ०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) 'लुङ्' प्रत्यय है। '**शल इगुपधादनिटः क्सः**' (३।१।४५) से 'च्लि' के स्थान में 'क्स' आदेश है। इस सूत्र से दन्त्यादि आत्मनेपद 'त' प्रत्यय परे होने पर 'क्स' प्रत्यय का लुक् होता है। '**दादेर्धातोर्घः**' (८।२।३२) से हकार को घकार, '**झषस्तथोर्धोऽधः**' (८।२।४०) से तकार को धकार और '**झलां जश् झशि**' (८।४।५३) से घकार को जश् गकार होता है। विकल्प-पक्ष में 'क्स' प्रत्यय का लुक् नहीं है-**अधुक्षत।** ऐसे ही 'थास्' प्रत्यय में-**अदुग्धाः, अधुक्षथाः।** 'ध्वम्' प्रत्यय में-**अदुग्ध्वम्, अधुक्षध्वम्।** 'वहि' प्रत्यय में-**अदुह्वहि, अधुक्षावहि।***

*(२) **अदिग्ध।** '**दिह उपचये**' (अदा०उ०) धातु से पूर्ववत्। विकल्प-पक्ष में 'क्स' प्रत्यय का लुक् नहीं है-**अधिक्षत।***

*(३) **अलीढ।** '**लिह आस्वादने**' (अदा०उ०) धातु से पूर्ववत्। '**हो ढः**' (८।२।३१) से हकार को ढकार, '**झषस्तथोर्धोऽधः**' (८।२।४०) से तकार को धकार, '**ष्टुना ष्टुः**' (८।४।४१) से धकार को ढकार, '**ढो ढे लोपः**' (८।३।१३) से पूर्ववर्ती ढकार का लोप और '**ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः**' (६।३।१११) से दीर्घ होता है। विकल्प-पक्ष में 'क्स' प्रत्यय का लुक् नहीं है-**अलिक्षत।***

*(४) **न्यगूढ।** यहां नि-उपसर्गपूर्वक '**गुहू संवरणे**' (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत्। विकल्प-पक्ष में 'क्स' प्रत्यय का लुक् नहीं है-**न्यधुक्षत।***

दीर्घः–

(३४) शमामष्टानां दीर्घः श्यनि।७४।

प०वि०-शमाम् ६।३ बहुवचनमादित्वद्योतनार्थम्, दीर्घः १।१ श्यनि ७।१।

अनु०-अङ्गस्येत्यनुवर्तते।

अन्वयः-शमामष्टानामङ्गानां श्यनि दीर्घः।

अर्थः-शमाम्=शमादीनामष्टामऽङ्गानां श्यनि प्रत्यये परतो दीर्घो भवति। उदाहरणम्–

	धातुः	रूपम्	भाषार्थः
(१)	शम्	स शाम्यति	वह उपशमन करता है।
(२)	तम्	स ताम्यति	वह आकाङ्क्षा (इच्छा) करता है।
(३)	दम्	स दाम्यति	वह उपशमन करता है।
(४)	श्रम्	स श्राम्यति	वह श्रान्त होता है।
(५)	भ्रम्	स भ्राम्यति	वह अवस्थित नहीं रहता है, घूमता है।
(६)	क्षम्	स क्षाम्यति	वह क्षमा (सहन) करता है।
(७)	क्लम्	स क्लाम्यति	वह ग्लानि करता है।
(८)	मदी	स माद्यति	वह हर्षित होता है।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(शमाम्) शम् आदि (अष्टानाम्) आठ (अङ्गानाम्) अङ्गों को (श्यनि) श्यन् प्रत्यय परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-शाम्यति। यहां 'शमु उपशमे' (दि०प०) धातु से 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। 'दिवादिभ्यः श्यन्' (३।१।६९) से 'श्यन्' विकरण-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से इसे 'श्यन्' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ होता है। ऐसे ही 'तमु काङ्क्षायाम्' धातु से-ताम्यति। 'दमु उपशमे' धातु से-दाम्यति। 'श्रमु तपसि खेदे च' धातु से-श्राम्यति। 'क्षमु सहने' धातु से-क्षाम्यति। 'क्लमु ग्लानौ' धातु से-क्लाम्यति। 'मदी हर्षे' धातु से-माद्यति।

ये 'शमु उपशमे' आदि आठ धातु पाणिनीय धातुपाठ के दिवादिगण में पठित हैं।

दीर्घः-

(३५) ष्ठिवुक्लमुचमां शिति।७५।

प०वि०-ष्ठिवु-क्लमु-चमाम् ६।३ शिति ७।१।

स०-ष्ठिवुश्च क्लमुश्च चम् च ते ष्ठिवुक्लमुचमः, तेषाम्-ष्ठिवुक्लमुचमाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। श् इद् यस्य स शित्, तस्मिन् शिति (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, दीर्घ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ष्ठिवुक्लमुचमामङ्गानां शिति दीर्घः।

अर्थः-ष्ठिवुक्लमुचमामङ्गानां शिति प्रत्यये परतो दीर्घो भवति।

उदा०-(ष्ठिवु) स ष्ठीवति। **(क्लमु)** स क्लामति। **(चम्)** स आचामति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ष्ठिवुक्लमुचमाम्) ष्ठिवु, क्लमु, चम् इन (अङ्गानाम्) अङ्गों को (शिति) शित् प्रत्यय परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-**(ष्ठिवु) स ष्ठीवति।** वह थूकता है। **(क्लमु) स क्लामति।** वह ग्लानि करता है। **(चम्) स आचामति।** वह आचमन करता है।*

*सिद्धि-**ष्ठीवति।** यहां **'ष्ठिवु निरसने'** (भ्वा०प०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। इस सूत्र से शित् 'शप्' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ (ई) होता है। ऐसे ही **'क्लमु ग्लानौ'** (भ्वा०प०) धातु से-**क्लामति।** आङ्पूर्वक **'चमु अदने'** (भ्वा०प०) धातु से-**आचामति।***

दीर्घः-

(३६) क्रमः परस्मैपदेषु।७६।

प०वि०-क्रमः ६।१ परस्मैपदेषु ७।३।

अनु०-अङ्गस्य, दीर्घः, शितीति चानुवर्तते।

अन्वयः-क्रमोऽङ्गस्य परस्मैपदपरके शिति दीर्घः।

अर्थः-क्रमोऽङ्गस्य परस्मैपदपरके शिति प्रत्यये परतो दीर्घो भवति।

उदा०-स क्रामति। तौ क्रामतः। ते क्रामन्ति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(क्रमः) क्रम् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (परस्मैपदे) परस्मैपद-परक (शिति) शित् प्रत्यय परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-स **क्रामति**। वह जाता है, चलता है। **तौ क्रामतः**। वे दोनों जाते हैं। **ते क्रामन्ति**। वे सब जाते हैं।*

*सिद्धि-**क्रामति**। यहां **'क्रमु पादविक्षेपे'** (भ्वा०उ०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** ३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में परस्मैपद-संज्ञक 'तिप्' प्रत्यय है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे परस्मैपदपरक, शित् 'शप्' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ (आ) होता है। ऐसे ही 'तस्' प्रत्यय में-**क्रामतः**। 'झि' प्रत्यय में-**क्रामन्ति**।*

छ-आदेशः—

(३७) इषुगमियमां छः।७७।

प०वि०-इषु-गमि-यमाम् ६।३ छः १।१।

स०-इषुश्च गमिश्च यम् च ते इषुगमियमः, तेषाम्-इषुगमियमाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, शितीति चानुवर्तते।

अन्वयः-इषुगमियमामङ्गानां शिति छः।

अर्थः-इषुगमियमामङ्गानां शितिप्रत्यये परतश्छकारादेशो भवति।

उदा०-(**इषुः**) स इच्छति। (**गमिः**) स गच्छति। (**यम्**) स यच्छति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(इषुगमियमाम्) इषु, गमि, यम् इन (अङ्गानाम्) अङ्गों को (शिति) शित् प्रत्यय परे होने पर (छः) छकार आदेश होता है।*

*उदा०-(इषु) **स इच्छति**। वह इच्छा करता है, चाहता है। (गमि) **स गच्छति**। वह गति करता है, जाता है। (यम्) **स यच्छति**। वह उपरत होता है, रोकता है।*

*सिद्धि-**इच्छति**। यहां 'इषु **इच्छायाम्**' (तु०प०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। 'तुदादिभ्यः शः' (३।१।७७) से 'श' विकरण-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से इसे शित् 'श' प्रत्यय परे होने पर **'अलोऽन्त्यस्य'** (१।१।५२) के नियम से षकार को छकारादेश होता है। **'छे च'** (६।१।७२) से 'तुक्' आगम और इसे 'स्तोः श्चुना श्चुः' (८।४।४०) से चवर्ग चकारादेश होता है। ऐसे ही 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से-**गच्छति**। **'यम उपरमे'** (भ्वा०प०) धातु से-**यच्छति**।*

पादीनां पिबादय आदेशाः–

(३८) पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्तिसर्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदाः ।७८।

प०वि०–पा-घ्रा-ध्मा-स्था-म्ना-दाण्-दृशि-अर्ति-सर्ति-शद-सदाम् ६ ।३ पिब-जिघ्र-धम-तिष्ठ-मन-यच्छ-पश्य-ऋच्छ-धौ-शीय-सीदाः १ ।३ ।

स०–पाश्च घ्राश्च ध्माश्च स्थाश्च म्नाश्च दाण् च दृशिश्च अर्तिश्च शदश्च सद् च ते-पा०सदः, तेषाम्-पा०सदाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) । पिबश्च जिघ्रश्च धमश्च तिष्ठश्च मनश्च यच्छश्च पश्यश्च ऋच्छश्च धौश्च शीयश्च सीदश्च ते-पिब०सीदाः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) ।

अनु०–अङ्गस्य, शितीति चानुवर्तते ।

अन्वयः–पा०सदामङ्गानां शिति पिब०सीदाः ।

अर्थः–पाघ्राध्मास्थाम्नादाणदृश्यर्तिसर्तिशदसदामऽङ्गानां स्थाने शिति प्रत्यये परतो यथासंख्यं पिबजिघ्रतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदा आदेशा भवन्ति । **उदाहरणम्**–

स्थानी	आदेशः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
(१) पा	पिब	स पिबति	वह पान करता है ।
(२) घ्रा	जिघ्र	स जिघ्रति	वह गन्ध ग्रहण करता है ।
(३) ध्मा	धम	स धमति	वह बाजा बजाता है अथवा अग्नि सुलगाता है ।
(४) स्था	तिष्ठ	स तिष्ठति	वह ठहरता है ।
(५) म्ना	मन	स मनति	वह अभ्यास करता है ।
(६) दाण्	यच्छ	स यच्छति	वह दान करता है ।
(७) दृशि	पश्य	स पश्यति	वह देखता है ।
(८) अर्ति (ऋ)	ऋच्छ	स ऋच्छति	वह जाता है ।
(९) सर्ति (सृ)	धौ	स धावति	वह दौड़ता है ।
(१०) शद	शीय	स शीयते	वह जीर्ण होता है ।
(११) सद	सीद	स सीदति	वह जाता है, चलता है ।

आर्यभाषाः अर्थ-(पा०) पा, घ्रा, ध्मा, स्था, म्ना, दाण्, दृशि, अर्ति (ऋ), सर्ति (सृ), शद, सद् इन (अङ्गानाम्) अङ्गों के स्थान में (शिति) शित् प्रत्यय परे होने पर यथासंख्य (पिब०) पिब, जिघ्र, धम, तिष्ठ, मन, यच्छ, पश्य, ऋच्छ, धौ, शीय, सीद आदेश होते हैं।

उदा०-उदाहरण और भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

*सिद्धि-(१) **पिबति।** यहां '**पा पाने**' धातु से '**वर्तमाने लट्**' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से शित् 'शप्' प्रत्यय परे होने पर 'पिब' आदेश होता है।*

*(२) **जिघ्रति।** '**घ्रा गन्धोपादाने**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(३) **धमति।** '**ध्मा शब्दाग्निसंयोगयोः**' (भ्वा०प०)।*

*(४) **तिष्ठति।** '**ष्ठा गतिनिवृत्तौ**' (भ्वा०प०)।*

*(५) **मनति।** '**म्ना अभ्यासे**' (भ्वा०प०)।*

*(६) **यच्छति।** '**दाण् दाने**' (भ्वा०प०)।*

*(७) **पश्यति।** '**दृशिर् प्रेक्षणे**' (भ्वा०प०)।*

*(८) **ऋच्छति।** '**ऋ गतौ**' (भ्वा०प०)।*

*(९) **धावति।** '**सृ गतौ**' (भ्वा०प०)।*

*(१०) **शीयते।** '**शद्लृ शातने**' (भ्वा०आ०)।*

*(११) **सीदति।** '**षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु**' (भ्वा०प०)।*

ज्ञा-आदेशः—

(३६) ज्ञाजनोर्जा।७६।

प०वि०-ज्ञा-जनोः ६।२ जा १।१ (सु-लुक्)।

अनु०-अङ्गस्य, शितीति चानुवर्तते।

अन्वयः-ज्ञाजनोरङ्गयोः शिति जाः।

अर्थः-ज्ञाजनोरङ्गयोः स्थाने शिति प्रत्यये परतो जाऽऽदेशो भवति।

उदा०-(ज्ञा) स जानाति। **(जन्)** स जायते।

आर्यभाषाः अर्थ-(ज्ञाजनोः) ज्ञा, जन् इन (अङ्गयोः) अङ्गों के स्थान में (शिति) शित् प्रत्यय परे होने पर (जाः) जा-आदेश होता है।

*उदा०-(ज्ञा) **स जानाति।** वह समझता है, जानता है। (जन्) **स जायते।** वह प्रकट होता है, पैदा होता है।*

सिद्धि-(१) जानाति। यहां 'ज्ञा अवबोधने' (क्र्या०उ०) धातु से 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। 'क्र्यादिभ्यः श्ना' (३।१।८१) से 'श्ना' विकरण-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से इसे शित् 'श्ना' प्रत्यय परे होने पर 'जा' आदेश होता है।

(२) जायते। यहां 'जनी प्रादुर्भावे' (दि०आ०) धातु से पूर्ववत् 'लट्' प्रत्यय है। 'दिवादिभ्यः श्यन्' (३।१।६९) से 'श्यन्' विकरण-प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।

ह्रस्वादेशः--

(४०) प्वादीनां ह्रस्वः।८०।

प०वि०-पू-आदीनाम् ६।३ ह्रस्वः १।१।

स०-पू-आदिर्येषां ते प्वादयः, तेषाम्-प्वादीनाम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, शितीति चानुवर्तते।

अन्वयः-प्वादीनामङ्गानां शिति ह्रस्वः।

अर्थः-प्वादीनामङ्गानां शिति प्रत्यये परतो ह्रस्वो भवति।

उदा०-**(पूञ्)** स पुनाति। **(लूञ्)** स लुनाति। **(स्तॄञ्)** स स्तृणाति।

एते प्वादयो धातवः पाणिनीयधातुपाठस्य क्र्यादिगणे पठ्यन्ते। 'पूञ् पवने' इत्यतः प्रभृति व्ली गतौ (वृत्) इति यावत् प्वादयः। अपरे आ गणान्ताः प्वादय इति मन्यन्ते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(प्वादीनाम्) पूञ् पवने इत्यादि (अङ्गानाम्) अङ्गों को (शिति) शित् प्रत्यय परे होने पर (ह्रस्वः) ह्रस्व होता है।*

उदा०-(पूञ्) स पुनाति। वह पवित्र करता है। (लूञ्) स लुनाति। वह काटता है। (स्तॄञ्) स स्तृणाति। वह आच्छादित करता है, ढकता है।

सिद्धि-पुनाति। यहां 'पूञ् पवने' (क्र्या०उ०) धातु से 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। 'क्र्यादिभ्यः श्ना' (३।१।८१) से 'श्ना' विकरण-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से इसे शित् 'श्ना' प्रत्यय परे होने पर ह्रस्व (उ) होता है। ऐसे ही 'लूञ् लवने' (क्र्या०उ०) धातु से-लुनाति। 'स्तॄञ् आच्छादने' (क्र्या०उ०) धातु से-स्तृणाति।

ये पू-आदि धातु पाणिनीय धातुपाठ के क्र्यादिगण में पठित हैं। 'पूञ् पवने' से लेकर 'व्ली गतौ' (वृत्) इस वृत्कार पर्यन्त पू-आदि धातु हैं। कई आचार्य गण की समाप्ति पर्यन्त पू-आदि धातु मानते हैं।

ह्रस्वादेशः--

(४१) मीनातेर्निगमे।८१।

प०वि०-मीनातेः ६।१ निगमे ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, शिति, ह्रस्व इति चानुवर्तते।

अन्वयः-निगमे मीनातेरङ्गस्य शिति ह्रस्वः।

अर्थः-निगमे विषये मीनातेरङ्गस्य शिति प्रत्यये परतो ह्रस्वो भवति।

उदा०-न किरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि (ऋ० १०।१०।५)।

***आर्यभाषाः* *अर्थ*-*(निगमे) वेद में (मीनातेः) मीनाति इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (शिति) शित् प्रत्यय परे होने पर (ह्रस्वः) ह्रस्व होता है।*

*उदा०-**न किरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि** (ऋ० १०।१०।५)। इस सविता देव के व्रत नष्ट नहीं होते हैं।*

सिद्धि-मिनन्ति। *यहां 'मीञ् हिंसायाम्' (क्र्या०उ०) धातु से 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। 'क्र्यादिभ्यः श्ना' (३।१।८१) से 'श्ना' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे वेदविषय में शित् 'श्ना' प्रत्यय परे होने पर ह्रस्व (इ) होता है। 'श्नाभ्यस्तयोरातः' (६।४।११२) से 'श्ना' के आकार का लोप होता है।*

{गुणादेशप्रकरणम्}

गुणादेशः--

(४२) मिदेर्गुणः।८२।

प०वि०-मिदेः ६।१ गुणः १।१।

अनु०-अङ्गस्य, शितीति चानुवर्तते।

अन्वयः-मिदेरङ्गस्य शिति गुणः।

अर्थः-मिदेरङ्गस्य शिति प्रत्यये परतो गुणो भवति।

उदा०-स मेद्यति। तौ मेद्यतः। ते मेद्यन्ति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(मिदेः) मिदि इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (शिति) शित् प्रत्यय परे होने पर (गुणः) गुण होता है।*

*उदा०-**स मेद्यति।** वह स्नेह करता है। **तौ मेद्यतः।** वे दोनों स्नेह करते हैं। **ते मेद्यन्ति।** वे सब स्नेह करते हैं।*

*सिद्धि-**मेद्यति।** यहां **'ञिमिदा स्नेहने'** (दि०प०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। **'दिवादिभ्यः श्यन्'** (३।१।६९) से 'श्यन्' विकरण-प्रत्यय है। यह प्रत्यय **'सार्वधातुकमपित्'** (१।२।४) से ङिद्वत् है। अतः **'क्ङिति च'** (१।१।५) से गुण का प्रतिषेध प्राप्त था। अतः इस सूत्र से गुण का विधान किया गया है। ऐसे ही तस्-प्रत्यय में-**मेद्यतः।** झि-प्रत्यय में-**मेद्यन्ति।***

गुणादेशः-

(४३) जुसि च।८३।

प०वि०-जुसि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, गुण इति चानुवर्तते। **'इको गुणवृद्धी'** (१।१।३) इति परिभाषया चाऽत्र 'इकः' इति षष्ठ्यन्तं पदमुपतिष्ठते।

अन्वयः-इकोऽङ्गस्य जुसि च गुणः।

अर्थः-इगन्तस्याऽङ्गस्य जुसि च प्रत्यये परतो गुणो भवति।

उदा०-तेऽजुहवुः। तेऽबिभयुः। तेऽबिभरुः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(इकः) इक् जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग को (जुसि) जूस् प्रत्यय परे होने पर (च) भी (गुणः) गुण होता है।*

*उदा०-**तेऽजुहवुः।** उन सबने हवन किया। **तेऽबिभयुः।** वे सब भयभीत हुये। **तेऽबिभरुः।** उन्होंने धारण-पोषण किया।*

*सिद्धि-**अजुहवुः।** हु+लङ्। अट्+हु+ल्। अ+हु+झि। अ+हु+शप्+झि। अ+हु+०+झि। अ+हु-हु+झि। अ+हु-हु+जुस्। अ+झु-हु+उस्। अ+जु-हो+उस। अ+जु-हव्+उस्। अजुहवु+स्। अजुहवुः।*

*यहां **'हु दानादनयोः'** (जु०प०) धातु से **'अनद्यतने लङ्'** (३।२।१५) से 'लङ्' प्रत्यय है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय होता है। **'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः'** (२।४।७५) से 'शप्' को श्लु-आदेश और **'श्लौ'** (६।१।१०) से धातु को द्वित्व होता है। **'सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च'** ३।४।१०९) से अभ्यस्त **'हु' धातु** से परे 'झि' के स्थान में 'जुस्' आदेश होता है। इस सूत्र से इसे 'जुस्' परे होने पर गुण होता है। **'कुहोश्चुः'** (७।४।६२) से अभ्यास के हकार को चवर्ग झकार और **'अभ्यासे चर्च'** (८।४।५४) से झकार को जश् जकार होता है। ऐसे ही **'ञिभी भये'** (जु०प०) धातु से-**अबिभयुः।** **'डुभृञ् धारणपोषणयोः'** (जु०उ०) धातु से-**अबिभरुः।** **'भृञामित्'** (७।४।७६) से अभ्यास को इकारादेश होता है।*

गुणादेशः—

(४४) सार्वधातुकार्धधातुकयोः ।८४।

प०वि०-सार्वधातुक-आर्धधातुकयोः ७।२।

स०-सार्वधातुकं च आर्धधातुकं च ते सार्वधातुकार्धधातुके, तयोः-सार्वधातुकार्धधातुकयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, गुण इति चानुवर्तते। **'इको गुणवृद्धी'** (१।१।३) इति परिभाषया चाऽत्र इक इति षष्ठ्यन्तं पदमुपतिष्ठते।

अन्वयः-इकोऽङ्गस्य सार्वधातुकार्धधातुकयोर्गुणः।

अर्थः-इगन्तस्याऽङ्गस्य सार्वधातुके आर्धधातुके च प्रत्यये परतो गुणो भवति।

उदा०-(सार्वधातुके) स तरति। स नयति। स भवति। **(आर्धधातुके)** कर्ता, चेता, स्तोता।

आर्यभाषाः अर्थ-*(इकः) इक् जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग को (सार्वधातुकार्धधातुकयोः) सार्वधातुक और आर्धधातुक संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (गुणः) गुण होता है।*

*उदा०-(सार्वधातुक) **स तरति**। वह तैरता है। **स नयति**। वह पहुंचाता है। **स भवति**। वह होता है। **(आर्धधातुक) कर्ता**। करनेवाला। **चेता**। चयन करनेवाला। **स्तोता**। स्तुति करनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **तरति**। यहां **'तॄ प्लवनसन्तरणयोः'** (भ्वा०प०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से सार्वधातुक 'शप्' प्रत्यय के परे होने पर इगन्त 'तॄ' धातु को गुण होता है। **'तिङ्शित् सार्वधातुकम्'** (३।४।११३) से 'शप्' प्रत्यय की शित्-लक्षण सार्वधातुक संज्ञा है। ऐसे ही **'णीञ् प्रापणे'** (भ्वा०उ०) धातु से-**नयति**। **'भू सत्तायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से-**भवति**।*

*(२) **कर्ता**। यहां **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से आर्धधातुक 'तृच्' प्रत्यय परे होने पर इगन्त 'कृ' धातु को गुण होता है। **'आर्धधातुकं शेषः'** (३।४।११४) से 'तृच्' प्रत्यय की शेष-लक्षण आर्धधातुक संज्ञा है। ऐसे ही **'चिञ् चयने'** (स्वा०उ०) धातु से-**चेता**। **'ष्टुञ् स्तुतौ'** (अदा०उ०) धातु से-**स्तोता**।*

गुणादेशः–

(४५) जाग्रोऽविचिण्णल्ङित्सु ।८५।

प०वि०–जाग्रः ६ ।१ अविचिण्णल्ङित्सु ७ ।३ ।

स०–ङ् इद् यस्य स ङित्। विश्च, चिण् च णल् च ङिच्च ते विचिण्णल्ङितः, न विचिण्णल्ङित इति अविचिण्णल्ङितः, तेषु-अविचिण्णल्ङित्सु (बहुव्रीहि-इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–अङ्गस्य, गुणः, सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति चानुवर्तते ।

अन्वयः–जाग्रोऽङ्गस्याऽविचिण्णल्ङित्सु सार्वधातुकार्धधातुकेषु गुणः ।

अर्थः–जाग्रोऽङ्गस्य विचिण्णल्ङिद्वर्जितेषु सार्वधातुकार्धधातुकार्ध-धातुकेषु प्रत्ययेषु परतो गुणो भवति ।

उदा०–स जागरयति । जागरकः । साधुजागरी । जागरं जागरम् । जागरो वर्तते । जागरितः । जागरितवान् ।

***आर्यभाषाः* अर्थ**-*(जाग्रः) जागृ इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (अविचिण्णल्ङित्सु) वि, चिण्, णल्, ङित् इन प्रत्ययों से भिन्न (सार्वधातुकार्धधातुकेषु) सार्वधातुक और आर्धधातुक प्रत्यय परे होने पर (गुण) गुण होता है।*

*उदा०–**स जागरयति।** वह जगाता है। **जागरकः।** जागनेवाला। **साधुजागरी।** साधुजागरणशील। **जागरंजागरम्।** पुनः-पुनः जागकर। **जागरो वर्तते।** जागरण है। **जागरितः।** जागा हुआ। **जागरितवान्।** जागा।*

*सिद्धि-(१) **जागरयति।** यहां **'जागृ निद्राक्षये'** (अदा०प०) धातु से **'हेतुमति च'** (३ ।१ ।२६) से हेतुमान् अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे आर्धधातुक णिच् प्रत्यय परे होने पर गुण होता है। **'अचो ञ्णिति'** (७ ।२ ।११५) से वृद्धि प्राप्त थी। यह उसका अपवाद है।*

*(२) **जागरकः।** यहां पूर्वोक्त 'जागृ' शब्द से **'ण्वुल्तृचौ'** (३ ।१ ।१३३) से 'ण्वुल्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **साधुजागरी।** यहां साधु-उपपद 'जागृ' धातु से **'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये'** (३ ।२ ।७८) से 'णिनि' प्रत्यय है।*

*(४) **जागरंजागरम्।** यहां 'जागृ' धातु से **'आभीक्ष्ण्ये णमुल् च'** (३ ।४ ।२२) से 'णमुल्' प्रत्यय है। वा०-**'आभीक्ष्ण्ये द्वे भवतः'** (३ ।४ ।२२) से द्वित्व होता है*

*(५) **जागरः।** यहां 'जागृ' धातु से **'भावे'** (३ ।३ ।१८) से भाव-अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय है।*

(६) जागरितः। यहां जागृ धातु से 'निष्ठा' (३।२।१०२) से भूतकाल अर्थ में निष्ठा-संज्ञक 'क्त' प्रत्यय है। इसके कित् होने से 'क्ङिति च' (१।१।५) से गुण का प्रतिषेध प्राप्त था। इस सूत्र से 'जागृ' को गुण होता है। ऐसे ही 'क्तवतु' प्रत्यय में-जागरितवान्।

गुणादेशः-

(४६) पुगन्तलघूपधस्य च।८६।

प०वि०-पुगन्त-लघूपधस्य ६।१ च अव्ययपदम्।

स०-पुग् अन्ते यस्य तत्-पुगन्तम्, लघ्वी उपधा यस्य तत्-लघूपधम्। पुगन्तं च लघूपधं च एतयोः समाहारः पुगन्तलघूपधम्, तस्य-पुगन्तलघूपधस्य (बहुव्रीहिगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, गुणः, सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति चानुवर्तते। **'इको गुणवृद्धी'** (१।१।३) इति परिभाषया चात्र 'इकः' इति षष्ठ्यन्तं पदमुपतिष्ठते।

अन्वयः-पुगन्तलघूपधस्याऽङ्गस्य चेकः सार्वधातुकार्धधातुकयोर्गुणः।

अर्थः-पुगन्तस्य लघूपधस्याऽङ्गस्य चेकः स्थाने सार्वधातुके आर्धधातुके च प्रत्यये परतो गुणो भवति।

उदा०-(पुगन्तम्) स ह्रेपयति। स व्लेपयति। स क्नोपयति। **(लघूपधम्)** भेदनम्। छेदनम्। भेत्ता। छेत्ता।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पुगन्तलघूपधस्य) पुक् जिसके अन्त में है और जिसकी लघु उपधा है उस (अङ्गस्य) अङ्ग के (इकः) इक् वर्ण के स्थान में (सार्वधातुकार्धधातुकयोः) सार्वधातुक और आर्धधातुक संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (गुणः) गुण होता है।*

*उदा०-**(पुगन्त) स ह्रेपयति।** वह लज्जित करता है। **स व्लेपयति।** वह वरण (पसन्द) करता है। **स क्नोपयति।** वह शब्द/गीला करता है। **(लघूपध) भेदनम्।** फाड़ना। **छेदनम्।** काटना। **भेत्ता।** फाड़नेवाला। **छेत्ता।** काटनेवाला।*

*सिद्धि-(१) ह्रेपयति। यहां 'ह्री लज्जायाम्' (जु०प०) धातु से 'हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। 'अर्तिह्री०' (७।३।३६) से इसे 'पुक्' आगम होता है। इस सूत्र से इसे आर्धधातुक 'णिच्' प्रत्यय परे होने पर पुगन्तलक्षण गुण (ए) होता है। ऐसे ही 'व्ली वरणे' (क्र्या०प०) धातु से-**व्लेपयति।** 'क्नूयी शब्दे उन्दे च' (भ्वा०आ०) धातु से-**क्नोपयति।***

*(२) **भेदनम्।** यहां 'भिदिर् विदारणे' (रुधा०प०) धातु से 'ल्युट् च' (३।३।११५) से भाव-अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे आर्धधातुक 'ल्युट्' प्रत्यय परे होने पर लघूपधलक्षण गुण होता है। ऐसे ही 'छिदिर् द्वैधीकरणे' (रुधा०प०) धातु से-**छेदनम्।***

*(३) **भेत्ता।** यहां पूर्वोक्त 'भिद्' धातु से 'ण्वुल्तृचौ' (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे आर्धधातुक 'तृच्' प्रत्यय परे होने पर लघूपधलक्षण गुण होता है। ऐसे ही पूर्वोक्त 'छिद्' धातु से-**छेत्ता।***

गुणादेशप्रतिषेधः-

(४७) नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके।८७।

प०वि०-न अव्ययपदम्, अभ्यस्तस्य ६।१ अचि ७।१ पिति ७।१ सार्वधातुके ७।१।

स०-पकारो इद् यस्य स पित्, तस्मिन्-पिति (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, गुणः, लघूपधस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-लघूपधस्याभ्यस्तस्याऽङ्गस्येकोऽचि पिति सार्वधातुके गुणो न।

अर्थः-लघूपधस्याऽभ्यस्तसंज्ञकस्याऽङ्गस्येकः स्थानेऽजादौ पिति सार्वधातुके प्रत्यये परतो गुणो न भवति।

उदा०-अहं नेनिजानि, अहम् अनेनिजम्। अहं वेविजानि, अहम् अवेविजम्। अहं परिवेविषाणि, अहं पर्यवेविषम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(लघूपधस्य) लघु उपधावाले (अभ्यस्तस्य) अभ्यस्त-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्ग के (इकः) इक् वर्ण के स्थान में (अचि) अजादि (पिति) पित् (सार्वधातुके) सार्वधातुक-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (गुणः) गुण (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**अहं नेनिजानि।** मैं शौच/पोषण करूं। **अहम् अनेनिजम्।** मैंने शौच/पोषण किया। **अहं वेविजानि।** मैं पृथक् होऊं। **अहम् अवेविजम्।** मैं पृथक् हुआ। **अहं परिवेविषाणि।** मैं सब ओर फैल जाऊं। **अहं पर्यवेविषम्।** मैं सब ओर फैला।*

***सिद्धि-(१) नेनिजानि।** निज्+लोट्। निज्+ल्। निज्+मिप्। निज्+नि। निज्+आट्+नि। निज्+शप्+आ+नि। निज्+0+आ+नि। निज्-निज्+आ+नि। नि-निज्+आ+नि। ने-निज्+आ+नि। नेनिजानि।*

यहां 'णिजिर् शौचपोषणयोः' (जु०प०) धातु से 'लोट् च' (३।३।१६२) से 'लोट्' प्रत्यय है। 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'मिप्' आदेश, 'मेर्निः' (३।४।८९) से 'मि' के स्थान में 'नि' आदेश, 'आडुत्तमस्य पिच्च' (३।४।९२)

से पित् आट्-आगम, 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय, 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' (२।४।७५) से 'शप्' को श्लु-आदेश और 'श्लौ' (६।१।१०) से धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से इस अभ्यस्तसंज्ञक धातु के इक् को अजादि, पित्, सार्वधातुक 'आनि' प्रत्यय परे होने पर लघूपधलक्षण गुण का प्रतिषेध होता है। 'णिजां त्रयाणां गुणः श्लौ' (७।४।७५) से अभ्यास को गुण होता है। ऐसे ही लङ् लकार उत्तमपुरुष एकवचन में-**अनेनिजम्।** 'तस्थस्थमिपां तान्तन्ताम:' (३।४।१०१) से 'मिप्' को 'अम्' आदेश होता है।

(२) **वेविजानि।** 'विजिर् पृथग्भावे' (जु०प०) धातु से पूर्ववत्। लङ् लकार उत्तमपुरुष एकवचन में-**अवेविजम्।**

(३) **परिवेविषाणि।** परि-उपसर्गपूर्वक 'विष्लृ व्याप्तौ' (जु०प०) धातु से पूर्ववत्। लङ् लकार उत्तमपुरुष एकवचन में-**पर्यवेविषम्।**

गुणादेशप्रतिषेधः-

(४८) भूसुवोस्तिङि।८८।

प०वि०-भू-सुवोः ६।२ तिङि ७।१।

स०-भूश्च सूश्च तौ भूसुवौ, तयोः-भूसुवोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, गुणः, न, सार्वधातुके इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भूसुवोरङ्गयोरिकः सार्वधातुके तिङि गुणो न।

अर्थः-भूसुवोरङ्गयोरिकः स्थाने सार्वधातुके तिङि प्रत्यये परतो गुणो न भवति।

उदा०-(भू) सोऽभूत्। त्वम् अभूः। अहम् अभूवम्। (सू) अहं सुवै। आवां सुवावहै। वयं सुवामहै।

आर्यभाषाः अर्थ-(भूसुवोः) भू, सू इन (अङ्गयोः) अङ्गों के (इकः) इक् वर्ण के स्थान में (सार्वधातुके) सार्वधातुक संज्ञक (तिङि) तिङ् प्रत्यय परे होने पर (गुणः) गुण (न) नहीं होता है।

उदा०-(भू) **सोऽभूत्।** वह हुआ/था। **त्वम् अभूः।** तू हुआ/था। **अहम् अभूवम्।** मैं हुआ/था। (सू) **अहं सुवै।** मैं प्रसव करूं। **आवां सुवावहै।** हम दोनों प्रसव करें। **वयं सुवामहै।** हम सब प्रसव करें।

सिद्धि-अभूत्। यहां 'भू सत्तायाम्' (भ्वा०प०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। 'गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु' (२।४।७७) से 'सिच्' का लुक् होता है। इस सूत्र से इसे पित्, सार्वधातुक, तिङ् (तिप्) प्रत्यय परे होने पर गुण नहीं

होता है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से गुण प्राप्त था। ऐसे ही 'सिप्' प्रत्यय में-**अभूः**। 'मिप्' प्रत्यय में-**अभूवम्**। 'भुवो वुग् लुङ्लिटोः' (६।४।८८) से वुक्-आगम है।

(२) **सुवै**। यहां 'षूङ् प्राणिगर्भविमोचने' (अदा०आ०) धातु से 'लोट् च' (३।३।१६२) से 'लोट्' प्रत्यय है। 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'इट्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इसे सार्वधातुक तिङ् (इट्) प्रत्यय परे होने पर गुण नहीं होता है। 'अचि श्नुधातुभ्रुवां०' (६।४।७७) से उवङ् आदेश होता है। 'टित आत्मनेपदानां टेरे' (३।४।७९) से 'इट्' के टि-भाग को एत्व, 'एत ऐ' (३।४।९३) से ऐकारादेश, 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' (२।४।७५) से 'शप्' को श्लु, 'आडुत्तमस्य पिच्च' (३।४।९२) से आट् आगम है। ऐसे ही 'वहि' प्रत्यय में-**सुवावहै**। 'महिङ्' प्रत्यय में-**सुवामहै**।

वृद्धि-आदेशः–

(४६) उतो वृद्धिर्लुकि हलि।८६।

प०वि०-उतः ६।१ वृद्धिः १।१ लुकि ७।१ हलि ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, पिति, सार्वधातुके इति चानुवर्तते।

अन्वयः-उतोऽङ्गस्य लुकि हलि पिति सार्वधातुके वृद्धिः।

अर्थः-उकारान्तस्याऽङ्गस्य लुकि सति हलादौ पिति सार्वधातुके प्रत्यये परतो वृद्धिर्भवति।

उदा०-**(यु)** स यौति। त्वं यौषि। अहं यौमि। **(नु)** स नौति। त्वं नौषि। अहं नौमि। **(स्तु)** स स्तौति। त्वं स्तौषि। अहं स्तौमि।

आर्यभाषाः *अर्थ*-(उतः) उकारान्त (अङ्गस्य) अङ्ग को (लुकि) प्रत्यय का लुक् हो जाने पर (हलि) हलादि (पिति) पित् (सार्वधातुके) सार्वधातुक-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (वृद्धिः) वृद्धि होती है।

उदा०-(यु) **स यौति**। वह मिश्रण/अमिश्रण करता है। **त्वं यौषि**। तू मिश्रण/अमिश्रण करता है। **अहं यौमि**। मैं मिश्रण/अमिश्रण करता हूं। (नु) **स नौति**। वह स्तुति करता है। **त्वं नौषि**। तू स्तुति करता है। **अहं नौमि**। मैं स्तुति करता हूं। (स्तु) **स स्तौति**। वह स्तुति करता है। **त्वं स्तौषि**। तू स्तुति करता है। **अहं स्तौमि**। मैं स्तुति करता हूं।

सिद्धि-(१) **यौति**। यहां 'यु मिश्रणेऽमिश्रणे च' (अदा०प०) धातु से 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से लकार के स्थान में तिप् आदेश, 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'

*(२।४।७२) से 'शप्' का लुक् होता है। इस सूत्र से इसे 'शप्' प्रत्यय का लुक् होने पर हलादि, पित् सार्वधातुक 'तिप्' प्रत्यय परे होने पर वृद्धि होती है। ऐसे ही 'सिप्' प्रत्यय में-**यौषि**। 'मिप्' प्रत्यय में-**यौमि**।*

*(२) **नौमि**। '**णुञ् स्तुतौ**' (अदा०उ०) धातु से पूर्ववत्।*

*(३) **स्तौमि**। '**ष्टुञ् स्तुतौ**' (अदा०उ०) धातु से पूर्ववत्।*

वृद्धि-आदेशविकल्पः-

(५०) ऊर्णोतेर्विभाषा।६०।

प०वि०-ऊर्णोतेः ६।१ विभाषा १।१।

अनु०-अङ्गस्य, पिति, सार्वधातुके, वृद्धिः, हलीति चानुवर्तते।

अन्वयः-ऊर्णोतेरङ्गस्य हलि पिति सार्वधातुके विभाषा वृद्धिः।

अर्थः-ऊर्णोतेरङ्गस्य हलादौ पिति सार्वधातुके प्रत्यये परतो विकल्पेन वृद्धिर्भवति।

उदा०-स प्रोर्णौति, प्रोर्णोति। त्वं प्रोर्णौषि, प्रोर्णोषि। अहं प्रोर्णौमि, प्रोर्णोमि।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(ऊर्णोतेः) ऊर्णोति=ऊर्णु इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (हलि) हलादि (पिति) पित् (सार्वधातुके) सार्वधातुक-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (विभाषा) विकल्प से (वृद्धिः) वृद्धि होती है।*

*उदा०-स **प्रोर्णौति, प्रोर्णोति**। वह आच्छादित करता है, ढकता है। त्वं **प्रोर्णौषि, प्रोर्णोषि**। तू आच्छादित करता है। अहं **प्रोर्णौमि, प्रोर्णोमि**। मैं ढकता हूं।*

*सिद्धि-**प्रोर्णौति**। यहां प्र-उपसर्गपूर्वक '**ऊर्णुञ् आच्छादने**' (अदा०उ०) धातु से '**वर्तमाने लट्**' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। '**तिप्तस्झि०**' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। इस सूत्र से इसे हलादि, पित्, सार्वधातुक-संज्ञक 'तिप्' प्रत्यय परे होने पर वृद्धि होती है। विकल्प-पक्ष में वृद्धि नहीं है-**प्रोर्णोति**। ऐसे ही 'सिप्' प्रत्यय में-**प्रोर्णौषि, प्रोर्णोषि**। 'मिप् प्रत्यय में **प्रोर्णौमि, प्रोर्णोमि**।*

गुण-आदेशः-

(५१) गुणोऽपृक्ते।६१।

प०वि०-गुणः १।१ अपृक्ते ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, पिति, सार्वधातुके, हलि, ऊर्णोतेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-ऊर्णोतिरङ्गस्याऽपृक्ते हलि पिति सार्वधातुके गुणः।

अर्थः-ऊर्णोतिरङ्गस्याऽपृक्ते हलादौ पिति सार्वधातुके प्रत्यये परतो गुणो भवति।

उदा०-स प्रौर्णोत्। त्वं प्रौर्णोः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(ऊर्णोतेः) ऊर्णोति=ऊर्णु इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (अपृक्ते) अपृक्त (हलि) हलादि (पिति) पित् (सार्वधातुके) सार्वधातुक-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (गुणः) गुण होता है।*

*उदा०-**स प्रौर्णोत्।** उसने आच्छादित किया। **त्वं प्रौर्णोः।** तूने आच्छादित किया।*

***सिद्धि-प्रौर्णोत्।** प्र+ऊर्णु+लङ्। प्र+आट्+ऊर्णु+ल्। प्र+आ+ऊर्णु+तिप्। प्र+आ+ऊर्णु+शप्+ति। प्र+आ+ऊर्णु+०+त्। प्र+आ+ऊर्णो+त्। प्रौर्णोत्।*

*यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'ऊर्णुञ् आच्छादने'** (अदा०उ०) धातु से **'अनद्यतने लङ्'** (३।२।१११) से 'लङ्' प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। **'इतश्च'** (३।४।१००) से 'तिप्' के इकार का लोप होता है। इस सूत्र से इसे अपृक्त, हलादि, पित् सार्वधातुक तिप् (त्) प्रत्यय परे होने पर गुण होता है। **'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।७२) से शप् का लुक् और **'आटश्च'** (६।१।८९) से वृद्धिरूप एकादेश होता है प्र+आट्+उ+०=प्रौ। ऐसे ही 'सिप्' प्रत्यय में-**प्रौर्णोः।***

{आगमप्रकरणम्}

इम्-आगमः--

(१) तृणह इम्।९२।

प०वि०-तृणहः ६।१ इम् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, पिति, सार्वधातुके हलीति चानुवर्तते।

अन्वयः-तृणहोऽङ्गस्य हलि पिति सार्वधातुके इम्।

अर्थः-तृणहोऽङ्गस्य हलादौ पिति सार्वधातुके प्रत्यये परत इमागमो भवति।

उदा०-स तृणेढि। त्वं तृणेक्षि। अहं तृणेह्मि। सोऽतृणेट्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तृणहः) तृणह इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (हलि) हलादि (पिति) पित् (सार्वधातुके) सार्वधातुक-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (इम्) इम् आगम होता है।*

*उदा०-स **तृणेढि।** वह हिंसा करता है, मार डालता है। त्वं **तृणेक्षि।** तू हिंसा करता है। अहं **तृणेह्मि।** मैं हिंसा करता हूं। **सोऽतृणेट्।** उसने हिंसा की।*

सिद्धि-तृणेढि। *तृह्+लट्। तृह्+ल्। तृह्+तिप्। तृ श्नम् ह्+ति। तृनह्+ति। तृणह्+ति। तृण इम् ह+ति। तृण इ ह्+ति। तृणेह्+ति। तृणेढ्+धि। तृणेढ्+ढि। तृणे०+ढि। तृणेढि।*

*यहां **'तृह हिंसायाम्'** (रुधा०प०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। **'रुदादिभ्यः श्नम्'** (३।१।७८) से 'श्नम्' विकरण-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से इसे हलादि, पित्, सार्वधातुक-संज्ञक 'तिप्' प्रत्यय परे होने पर 'इम्' आगम होता है। यह मित् होने से **'मिदचोऽन्त्यात् परः'** (१।१।४७) के नियम से अन्तिम अच् से उत्तर किया जाता है। **'हो ढः'** (८।२।३१) से हकार को ढकार, **'झषस्तथोर्धोऽधः'** (८।२।४०) से तकार को धकार, **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से धकार को टवर्ग ढकार, **'ढो ढे लोपः'** (८।३।१३) से पूर्ववर्ती ढकार का लोप होता है। ऐसे ही 'सिप्' प्रत्यय में-**तृणेक्षि।** **'षढोः कः सि'** (८।२।४१) से ढकार को ककार और **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) से षत्व होता है। 'मिप्' प्रत्यय में-**तृणेह्मि।** लङ् लकार में-**अतृणेट्।** **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६७) से अपृक्त 'त्' (तिप्) का लोप और **'झलां जशोऽन्ते'** (८।२।३९) से ढकार को डकार और **'वाऽवसाने'** (८।४।५६) से डकार को चर् टकार होता है।*

ईट्-आगमः-

(२) ब्रुव ईट्।६३।

प०वि०-ब्रुवः ५।१ ईट् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, पिति, सार्वधातुके हलीति चानुवर्तते।

अन्वयः-ब्रुवोऽङ्गाद् हलः पितः सार्वधातुकस्य ईट्।

अर्थः-ब्रुवोऽङ्गाद् उत्तरस्य हलादेः पितः सार्वधातुकस्य ईडागमो भवति।

उदा०-स ब्रवीति। त्वं ब्रवीषि। अहं ब्रवीमि।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(ब्रुवः) ब्रू इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (हलः) हलादि (पितः) पित् (सार्वधातुकस्य) सार्वधातुक-संज्ञक प्रत्यय को (ईट्) ईडागम होता है।*

*उदा०-स **ब्रवीति।** वह कहता है। त्वं **ब्रवीषि।** तू कहता है। अहं **ब्रवीमि।** मैं कहता हूं।*

*सिद्धि-**ब्रवीति।** यहां 'ब्रुञ् व्यक्ताव्यां वाचि' (अदा०उ०) धातु से 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। इस सूत्र से हलादि, पित्, सार्वधातुक-संज्ञक 'तिप्' प्रत्यय को ईट् आगम होता है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से 'ब्रू' को गुण और 'एचोऽयवायावः' (६।१।७७) से अव्-आदेश है। ऐसे ही 'सिप्' प्रत्यय में-**ब्रवीषि।** 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से षत्व होता है। 'मिप्' प्रत्यय में-**ब्रवीमि।***

ईडागम-विकल्पः-

(३) यङो वा।९४।

प०वि०-यङः ५।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, पिति, सार्वधातुके, हलि, इडिति चानुवर्तते।

अन्वयः-यङोऽङ्गाद् हलः पितः सार्वधातुकस्य वा ईट्।

अर्थः-यङन्तादऽङ्गाद् उत्तरस्य हलादेः पितः सार्वधातुकस्य विकल्पेन ईडागमो भवति।

उदा०-शाकुनिको लालपीति। दुन्दुभिर्वावदीति। त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति (ऋ० ४।५८।३)। न च भवति-वर्वर्ति चक्रम् (ऋ० १।१६४।११)। स चर्कर्ति जगत्।

"हलादेः पितः सार्वधातुकस्य यङन्तादभाव इति यङ्लुगन्तस्योदाहरणम्" (काशिकावृत्तिः)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(यङः) यङ् जिसके अन्त में है उस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (हलः) हलादि (पितः) पित् (सार्वधातुकस्य) सार्वधातुक-संज्ञक प्रत्यय को (वा) विकल्प से (ईट्) ईट् आगम होता है।*

*उदा०-**शाकुनिको लालपीति।** चिड़ीमार (बहेलिया) शोर मचाता है। **दुन्दुभिर्वावदीति।** ढोल पुनः-पुनः/अधिक बजता है। **त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति** (ऋ० ४।५८।३)। तीन स्थानों (उरः, कण्ठ, शिर) में बंधा हुआ वृषभ शब्द करता है और कहीं ईट् आगम नहीं होता है-**वर्वर्ति चक्रम्** (ऋ० १६४।११)। चक्र घूमता है। **स चर्कर्ति जगत्।** वह ईश्वर जगत् को पुनः-पुनः बनाता है।*

*सिद्धि-**लालपीति।** यहां प्रथम 'लप व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०) धातु से 'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्' (३।१।७) से 'यङ्' प्रत्यय है। 'सन्यङोः' (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है। 'यङोऽचि च' (२।४।७४) में बहुलवचन से*

अनच् में भी यङ् का लुक् होता है। 'चर्करीतं च' इस अदादिक गणसूत्र से यङ्लुगन्त को अदादिगण में पठित तथा परस्मैपद माना जाता है। 'अतः अदिप्रभृतिभ्यः शपः' (२।४।७२) से 'शप्' का लुक् होता है। इस सूत्र से यङ्लुगन्त 'लालप्' धातु से परे हलादि पित् सार्वधातुक 'तिप्' प्रत्यय को ईट् आगम होता है। 'दीर्घोऽकितः' (७।४।८३) से अभ्यास को दीर्घ होता है। ऐसे ही 'वद व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०) धातु से-वावदीति। 'रु शब्दे' (अदा०प०) धातु से-रोरवीति गुणो यङ्लुकोः' (७।४।८२) से अभ्यास को गुण होता है।

(२) वर्वर्ति। 'वृञ् वरणे' (स्वा०उ०) धातु से पूर्ववत्। विकल्प-पक्ष में ईडागम नहीं है।

(३) चर्कर्ति। 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से पूर्ववत्। विकल्प-पक्ष में ईडागम नहीं है।

ईडागम-विकल्पः–

(४) तुरुस्तुशम्यमः सार्वधातुके।६५।

प०वि०–तु-रु-स्तु-शमि-अमः ५।१ सार्वधातुके ७।१।

स०–तुश्च रुश्च स्तुश्च शमिश्च अम् च एतेषां समाहारः तुरुस्तुशम्यम्, तस्मात्-तुरुस्तुशम्यमः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, हलि, ईट्, वा इति चानुवर्तते। पितीति च निवृत्तम्।

अन्वयः–तुरुस्तुशम्यमोऽङ्गाद् हलादेः सार्वधातुकस्य वा ईट्।

अर्थः–तुरुस्तुशम्यमिभ्योऽङ्गेभ्य उत्तरस्य हलादेः सार्वधातुकस्य विकल्पेन ईडागमो भवति।

उदा०–**(तु)** स उत्तौति, उत्तवीति। **(रु)** स उपरौति, उपरवीति। **(स्तु)** स उपस्तौति, उपस्तवीति। **(शमि)** यूयं शाम्यध्वम्, शमीध्वम् (मै०सं० ४।१३।४)। **(अम्)** अभ्यमति। अभ्यमीति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तुरुस्तुशम्यमः) तु, रु, स्तु, शमि, अम् इन (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (हलः) हलादि (सार्वधातुकस्य) सार्वधातुक-संज्ञक प्रत्यय को (वा) विकल्प से (ईट्) ईट् आगम होता है।*

उदा०-(तु) स उत्तौति, उत्तवीति। वह उन्नति करता है। (रु) स उपरौति, उपरवीति। वह शब्द करता है, शोर करता है। (स्तु) स उपस्तौति, उपस्तवीति। वह स्तुति करता है। (शमि) यूयं शाम्यध्वम्, शमीध्वम् (मै०सं० ४।१३।४)। तुम सब शान्त हो जाओ। (अम्) अभ्यमति, अभ्यमीति। वह गति करता है।

सिद्धि-(१) उत्तौति। यहां उत्-उपसर्गपूर्वक 'तु गतिवृद्धिहिंसासु' (सौत्रधातु-संस्कृत धातुकोष पृ० ५६) से 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। इस सूत्र से हलादि सार्वधातुक 'तिप्' प्रत्यय को ईडागम नहीं होता है। 'उतो वृद्धिर्लुकि हलि' ७।३।८९) से 'तु' को वृद्धि होती है। विकल्प-पक्ष में ईडागम है-उत्तवीति।

(२) उपरौति। उप-उपसर्गपूर्वक 'रु शब्दे' (अदा०प०) धातु से पूर्ववत्। विकल्प-पक्ष में ईडागम है-उपरवीति।

(३) उपस्तौति। उप-उपसर्गपूर्वक 'ष्टुञ् स्तुतौ' (अदा०उ०) धातु से पूर्ववत्। विकल्प-पक्ष में ईडागम है-उपस्तवीति।

(४) शाम्यध्वम्। यहां 'शमु उपशमे' (दि०प०) धातु से 'लोट् च' (३।३।१६७) से 'लोट्' प्रत्यय है। 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'ध्वम्' आदेश है। यह छान्दस प्रयोग होने से 'व्यत्ययो बहुलम्' (३।१।८५) से आत्मनेपद होता है। 'दिवादिभ्यः श्यन्' (३।१।६९) से 'श्यन्' विकरण-प्रत्यय और 'शमामष्टानां दीर्घः श्यनि' (७।३।७४) से दीर्घ होता है। विकल्प-पक्ष में ईडागम है-शमीध्वम्। यहां 'बहुलं छन्दसि' (२।४।७६) से विकरण-प्रत्यय का लुक् होता है। विकरण-प्रत्यय का लुक् होने पर ही हलादि सार्वधातुक अनन्तर (समीप) होता है।

(५) अभ्यमति। अभि-उपसर्गपूर्वक 'अम गत्यादिषु' (भ्वा०प०) धातु से 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय और 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण प्रत्यय है। विकल्प-पक्ष में ईडागम है-अभ्यमीति। यहां भी 'बहुलं छन्दसि' (२।४।७६) से विकरण-प्रत्यय का लुक् होता है। विकरण-प्रत्यय का लुक् होने पर ही हलादि सार्वधातुक अनन्तर होता है।

विशेषः (१) 'सार्वधातुके' पद की अनुवृत्ति होने पर पुनः 'सार्वधातुके' पद का ग्रहण 'पिति' पद की निवृत्ति के लिये किया गया है।

(२) यह सूत्र छन्दोविषयक है। आपिशल वैयाकरण 'तरुस्तुशम्यमः सार्वधातुकासु छन्दसि' ऐसा सूत्र पढ़ते हैं।

ईडागमः-

(५) अस्तिसिचोऽपृक्ते।९६।

प०वि०-अस्ति-सिचः ५।१ अपृक्ते ७।१।

स०-अस्तिश्च सिच् च एतयोः समाहारः-अस्तिसिच्, तस्मात्-अस्तिसिचः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, ईट्, सार्वधातुके इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अस्तिसिचोऽङ्गाद् अपृक्तस्य सार्वधातुकस्य ईट्।

अर्थः-अस्तेः सिजन्ताच्चाऽङ्गाद् उत्तरस्याऽपृक्तस्य सार्वधातुकस्य ईडागमो भवति।

उदा०-(अस्ति) स आसीत्। त्वम् आसीः। **(सिजन्तम्)** अकार्षीत्। असावीत्। अलावीत्। अपावीत्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अस्तिसिचः) अस्ति=अस् और सिच् जिसके अन्त में है उस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (अपृक्तस्य) अपृक्त=(एकाल् प्रत्यय) (सार्वधातुकस्य) सार्वधातुक-संज्ञक प्रत्यय को (ईट्) ईट् आगम होता है।*

*उदा०-(अस्ति) स **आसीत्।** वह था। त्वम् **आसीः।** तू था। (सिजन्त) **अकार्षीत्।** उसने किया। **असावीत्।** उसने अभिषवण किया। **अलावीत्।** उसने काटा। **अपावीत्।** उसने पवित्र किया।*

***सिद्धि-(१) आसीत्।** अस्+लट्। आट्+अस्+ल्। आ+अस्+तिप्। आ+अस्+शप्+ति। अ+अस्+०+त्। आस्+अस्+ईट्+त्। आ+अस्+ई+त्। आसीत्।*

*यहां **'अस भुवि'** (अदा०प०) धातु से **'अनद्यतने लङ्'** (३।२।१११) से 'लङ्' प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश और **'इतश्च'** (३।४।१००) से इसके इकार का लोप होता है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और **'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।७२) से इसका लुक् होता है। इस सूत्र से 'अस्' धातु से परे अपृक्त सार्वधातुक 'त्' 'तिप्' प्रत्यय को ईडागम होता है। **'आटश्च'** (६।१।८९) से वृद्धिरूप एकादेश होता है।*

*(२) **अकार्षीत्।** यहां **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से **'लुङ्'** (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। **'च्लि लुङि'** (३।१।४३) से 'च्लि' प्रत्यय और **'च्लेः सिच्'** (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश होता है। इस सूत्र से सिजन्त अङ्ग से अपृक्त सार्वधातुक 'त्' (तिप्) प्रत्यय को ईडागम होता है। **'सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु'** (७।२।१) से वृद्धि और **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) से षत्व होता है।*

*(३) **असावीत्।** **'षुञ् अभिषवे'** (स्वा०उ०) धातु से पूर्ववत्।*

*(४) **अलावीत्।** **'लुञ् छेदने'** (क्र्या०उ०)।*

*(५) **अपावीत्।** **'पूञ् पवने'** (क्र्या०उ०)।*

बहुलमीडागमः-

(६) बहुलं छन्दसि।६७।

प०वि०-बहुलम् १।१ छन्दसि ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, हलि, ईट्, सार्वधातुके, अस्तिसिचः, अपृक्ते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि अस्तिसिचोऽङ्गस्याऽपृक्तस्य हलादेः सार्वधातुकस्य बहुलम् ईट्।

अर्थः-छन्दसि विषयेऽस्तेः सिजन्ताच्चाङ्गाद् उत्तरस्याऽपृक्तस्य हलादेः सार्वधातुकस्य बहुलमीडागमो भवति।

उदा०-(सिच्) सलिलं सर्वमा इदम् (ऋ० १०।१२९।३)। आसीदित्यस्य स्थाने 'आः' इति क्रियापदम्। अहर्वाव तर्ह्यासीन्न रात्रिः (मै०सं० १।५।१२)। **(सिजन्तम्)** गोभिरक्षाः (ऋ० ९।१०७।९)। प्रत्यञ्चमत्साः (१०।२८।४)। भवति-चेडागमः-अभैषीर्मा पुत्रक। छन्दसि माङ्योगेऽप्यडागमो भवति।

आर्यभाषाः अर्थ-*(छन्दसि) वेदविषय में (अस्तिसिचः) अस्ति=अस् और सिच् जिसके अन्त में है उस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (अपृक्तस्य) अपृक्त=एकाल्-प्रत्यय (हलः) हलादि (सार्वधातुकस्य) सार्वधातुक-संज्ञक प्रत्यय को (बहुलम्) प्रायशः (ईट्) ईडागम होता है।*

*उदा०-**(सिच्) सलिलं सर्वमा इदम्** (ऋ० १०।१२९।३)। यह सब सलिल (जल) था। 'आसीत्' इसके स्थान में 'आः' इस क्रियापद का प्रयोग है। **अहर्वाव तर्ह्यासीन्न** रात्रिः (मै०सं० १।५।१२)। (सिजन्त) **गोभिरक्षाः** (ऋ० ९।१०७।९)। **अक्षाः**=तू क्षरित हुआ (बहा)। **प्रत्यञ्चमत्साः** (१०।२८।४)। **अत्साः**। तूने छद्मगति **की** (कुटिल चाल चला)। छन्द में ईडागम भी होता है-**अभैषीर्मा पुत्रक**। बेटा! मत डरो। यहां छन्द में माङ् के योग में 'भी' धातु को अडागम है।*

*सिद्धि-(१) **आः**। अस्+लङ्। आ+अस्+ल्। आ+अस्+तिप्। आ+अस्+शप्+ति। आ+अस्+०+त्। आ+अस्+०। आस्। आः।*

*यहां **'अस भुवि'** (अदा०प०)धातु से **'अनद्यतने लङ्'** (३।२।१११) से 'लङ्' **प्रत्यय है। अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।७२) से 'शप्' का लुक् होता है। इस सूत्र से अपृक्त, हलादि सार्वधातुक त् (तिप्) प्रत्यय को ईडागम होता है। **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६७) से अपृक्त हल् 'त्' का लोप होता है। विकल्प-पक्ष में ईडागम है-**आसीत्**।*

*(२) **अक्षाः**। क्षर्+लुङ्। अट्+क्षर्+च्लि+ल्। अ+क्षर्+सिच्+तिप्। अ+क्षर्+स्+त्। अ+क्षार्+स्+त्। अ+क्षार्+स्+०। अक्षार्+०। अक्षार्। अक्षाः।*

*यहां 'क्षर **सञ्चलने**' (तु०प०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। **'च्लेः सिच्'** (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश है। **'अतो ल्रान्तस्य'** (७।२।२) से 'क्षर्' को वृद्धि होती है। **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६७) से अपृक्त 'त्' (तिप्) का लोप. **'रात् सस्य'** (८।२।२४) से 'सिच्' का लोप **और***

धातुस्थ रेफ को ***'खरवसानयोर्विसर्जनीयः'*** *(८।३।१५) से विसर्जनीय आदेश होता है। ऐसे ही* ***'त्सर छद्मगतौ'*** *(भ्वा०प०) धातु से-***अत्सः।** *कहीं ईडागम हो भी जाता है-***अभैषीः।** *यहां छन्दविषय में* ***'बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि'*** *(६।४।७५) से माङ् के योग में भी अडागम है।*

ईडागमः—

(७) रुदश्च पञ्चभ्यः।६८।

प०वि०-रुदः ५।१ (व्यत्ययेन बहुवचनस्यैकवचनम्) च अव्ययपदम्, पञ्चभ्यः ५।१।

अनु०-अङ्गस्य, हलि, ईट्, सार्वधातुके, अपृक्ते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-रुद्भ्यः पञ्चभ्योऽङ्गेभ्यश्चाऽपृक्तस्य हलः सार्वधातुकस्य ईट्।

अर्थः-रुदादिभ्यः पञ्चभ्योऽङ्गेभ्यश्च उत्तरस्याऽपृक्तस्य हलादेः सार्वधातुकस्य ईडागमो भवति।

उदा०-**(रुदिर्)** सोऽरोदीत्। त्वम् अरोदीः। **(स्वप)** सोऽस्वपीत्। त्वम् अस्वपीः। **(श्वस)** सोऽश्वसीत्। त्वम् अश्वसीः। **(अन)** स प्राणीत्। त्वम् प्राणीः। **(जक्ष)** सोऽजक्षीत्। त्वम् अजक्षीः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(रुदभ्यः) रुद्-आदि (पञ्चभ्यः) पांच (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (च) भी (अपृक्तस्य) अपृक्त {एकाल्-प्रत्यय}, (हलः) हलादि (सार्वधातुकस्य) सार्वधातुक-संज्ञक प्रत्यय को (ईट्) ईडागम होता है।*

उदा०-(रुदिर्) ***सोऽरोदीत्।*** *वह रोया।* ***त्वम् अरोदीः।*** *तू रोया। (स्वप्)* ***सोऽस्वपीत्।*** *वह सोया।* ***त्वम् अस्वपीः।*** *तू सोया। (श्वस)* ***सोऽश्वसीत्।*** *उसने श्वास लिया।* ***त्वम् अश्वसीः।*** *तूने श्वास लिया। (अन)* ***स प्राणीत्।*** *उसने प्राण धारण किया।* ***त्वं प्राणीः।*** *तूने प्राण धारण किया। (जक्ष)* ***सोऽजक्षीत्।*** *उसने खाया/हंसा।* ***त्वम् अजक्षीः।*** *तूने खाया/हंसा।*

सिद्धि-(१) ***अरोदीत्।*** *रुद्+लङ्। अट्+रुद्+ल्। अ+रुद्+तिप्। अ+रुद्+शप्+ति। अ+रुद्+0त्। अ+रुद्+ईट्+त्। अ+रोद्+ई+त्। अरोदीत्।*

यहां ***'रुदिर् अश्रुविमोचने'*** *(अदा०प०) धातु से* ***'अनद्यतने लङ्'*** *(३।२।१११) से 'लङ्' प्रत्यय है।* ***'तिप्तस्झि०'*** *(३।४।७८) से लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है।* ***'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'*** *(२।४।७२) से 'शप्' का लुक् होता है। इस सूत्र से 'रुद्' से परे* ***अपृक्त, हलादि, सार्वधातुक*** *'त्' (तिप्)* ***प्रत्यय को ईडागम होता है।*** ***'रुदादिभ्यः सार्वधातुके'***

(७।२।७६) से इडागम प्राप्त था, उसका अपवाद ईडागम विधान किया गया है। ऐसे ही 'सिप्' प्रत्यय में-अरोदी:।

*(२) **अस्वपीत्।** 'ञिष्वप शये' (अदा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(३) **अश्वसीत्।** 'श्वस प्राणने' (अदा०प०)।*

*(४) **प्राणीत्।** प्र-उपसर्गपूर्वक 'अन प्राणने' (अदा०प०)।*

*(५) **अजक्षीत्।** 'जक्ष भक्षहसनयोः' (अदा०प०)।*

अडागमः—

(८) अड् गार्ग्यगालवयोः।९९।

प०वि०–अट् १।१ गार्ग्य-गालवयो: ७।२।

स०–गार्ग्यश्च गालवश्च तौ गार्ग्यगालवौ, तयो:-गार्ग्यगालवयो: (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, हलि, सार्वधातुके, अपृक्ते, रुदः, पञ्चभ्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः–रुद्भ्यः पञ्चभ्योऽङ्गेभ्योऽपृक्तस्य हलः सार्वधातुकस्य अट्, गार्ग्यगालवयोः।

अर्थः–रुदादिभ्यः पञ्चभ्योऽङ्गेभ्य उत्तरस्याऽपृक्तस्य हलादेः सार्वधातुकस्य अडागमो भवति, गार्ग्यगालवयोराचार्ययोर्मतेन। **उदाहरणम्**—

धातुः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
(१) रुद	सोऽरोदत्	वह रोया।
	त्वम् अरोदः	तू रोया।
(२) स्व	सोऽस्वपत्	वह सोया।
	त्वम् अस्वपः	तू सोया।
(३) श्वस	सोऽश्वसत्	उसने श्वास लिया।
	त्वम् अश्वसः	तूने श्वास लिया।
(४) अन	स प्राणत्	उसने प्राण धारण किया।
	त्वम् प्राणः	तूने प्राण धारण किया।
(५) जक्ष	सोऽजक्षत्	उसने खाया/हंसा।
	त्वम् अजक्षः	तूने खाया/हंसा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(रुदभ्यः) रुद् आदि (पञ्चभ्यः) पांच (अङ्गेभ्यः) अङ्गों से परे (अपृक्तस्य) अपृक्त (एकाल-प्रत्यय) (हलः) हलादि (सार्वधातुकस्य) सार्वधातुक-संज्ञक प्रत्यय को (अट्) अडागम होता है (गार्ग्यगालवयोः) गार्ग्य और गालव आचार्यों के मत में।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-अरोदत् आदि सब पदों की सिद्धि पूर्ववत् है। केवल अडागम विशेष है।

अडागमः-

(६) अदः सर्वेषाम्।१००।

प०वि०-अदः ५।१ सर्वेषाम् ६।३।

अनु०-अङ्गस्य, हलि, सार्वधातुके, अपृक्ते, अडिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अदोऽङ्गाद् अपृक्तस्य हलः सार्वधातुकस्य अट्, सर्वेषाम्।

अर्थः-अदोऽङ्गाद् उत्तरस्याऽपृक्तस्य हलादेः सार्वधातुकस्याऽडागमो भवति, सर्वेषामाचार्याणां मतेन।

उदा०-स आदत्। त्वम् आदः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अदः) अद् इस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (अपृक्तस्य) अपृक्त (एकाल्-प्रत्यय) (हलः) हलादि (सार्वधातुकस्य) सार्वधातुक-संज्ञक प्रत्यय को (अट्) अडागम होता है (सर्वेषाम्) सब आचार्यों के मत में।*

*उदा०-**स आदत्।** उसने भक्षण किया, खाया। **त्वम् आदः।** तूने भक्षण किया।*

*सिद्धि-**आदत्।** अट्+लङ्। आट्+अद्+ल्। आ+अद्+तिप्। आ+अद्+शप्+ति। आ+अद्+०+त्। आ+अद्+अट्+त्। आद्+अ+त्। आदत्।*

*यहां 'अद भक्षणे' (अदा०प०) धातु से 'अनद्यतने लङ्' (३।२।१११) से 'लङ्' प्रत्यय है। 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' (२।४।७२) से 'शप्' का लुक् होता है। इस सूत्र से 'अद्' से परे अपृक्त, हलादि, सार्वधातुक 'त्' (तिप्) प्रत्यय को सब आचार्यों के मत में 'अट्' आगम होता है। ऐसे ही 'सिप्' प्रत्यय में-**आदः।***

आदेशप्रकरणम्

दीर्घादेशः-

(१) अतो दीर्घो यञि।१०१।

प०वि०-अतः ६।१ दीर्घः १।१ यञि ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, सार्वधातुके इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अतोऽङ्गस्य यञि सार्वधातुके दीर्घः।

अर्थः-अकारान्तस्याऽङ्गस्य यञादौ सार्वधातुके प्रत्यये परतो दीर्घो भवति।

उदा०-अहं पचामि। आवां पचावः। वयं पचामः। अहं पक्ष्यामि। आवां पक्ष्यावः। वयं पक्ष्यामः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अतः) अकार जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग को (यञि) यञादि (सार्वधातुके) सार्वधातुक-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-अहं **पचामि**। मैं पकाता हूं। **आवां पचावः**। हम दोनों पकाते हैं। **वयं पचामः**। हम सब पकाते हैं। **अहं पक्ष्यामि**। मैं पकाऊंगा। **आवां पक्ष्यावः**। हम दोनों पकायेंगे। **वयं पक्ष्यामः**। हम सब पकायेंगे।*

*सिद्धि-(१) **पचामि**। यहां 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से '**वर्तमाने लट्**' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। '**तिप्तस्झि०**' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'मिप्' आदेश होता है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से इस यञादि, सार्वधातुक 'मिप्' प्रत्यय के परे होने पर शप्-प्रत्ययस्थ अकार को दीर्घ होता है। ऐसे ही 'वस्' प्रत्यय में-**पचावः**। 'मस्' प्रत्यय में-**पचामः**।*

*(२) **पक्ष्यति**। यहां पूर्वोक्त 'पच्' धातु से '**लृट् शेषे च**' (३।३।१३) से 'लृट्' प्रत्यय है। '**स्यतासी लृलुटोः**' (३।१।३३) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। 'वस्' प्रत्यय में-**पक्ष्यावः**। 'मस्' प्रत्यय में-**पक्ष्यामः**। '**आदेशप्रत्यययोः**' (८।३।५९) से षत्व होता है।*

दीर्घादेशः—

(२) सुपि च।१०२।

प०वि०-सुपि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, अतः, दीर्घः, यञीति चानुवर्तते।

अन्वयः-अतोऽङ्गस्य यञि सुपि च दीर्घः।

अर्थः-अकारान्तस्याऽङ्गस्य यञादौ सुपि प्रत्यये परतो दीर्घो भवति।

उदा०-वृक्षाय, प्लक्षाय। वृक्षाभ्याम्, प्लक्षाभ्यम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अतः) अकार जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग को (यञि) यञादि (सुपि) सुप् प्रत्यय परे होने पर (च) भी (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-वृक्षाय। वृक्ष के लिये। **प्लक्षाय।** पिलखण के लिये। **वृक्षाभ्याम्।** दो वृक्षों के द्वारा/के लिये/से। **प्लक्षाभ्यम्।** दो पिलखणों के द्वारा/के लिये/से।*

*सिद्धि-**वृक्षाय।** वृक्ष+ङे। वृक्ष+य। वृक्षा+य। वृक्षाय।*

*यहां 'वृक्ष' शब्द से 'स्वौजस्०' (४।१।२) से 'ङे' प्रत्यय है। 'ङेर्यः' (७।१।१३) से 'ङे' के स्थान में 'य' आदेश होता है। इस सूत्र से इस यञादि, सुप्, 'य' (ङे) प्रत्यय के परे होने पर वृक्षस्थ अकार को दीर्घ होता है। ऐसे ही 'प्लक्ष' शब्द से-**प्लक्षाय।** 'भ्याम्' प्रत्यय में-**वृक्षाभ्याम्, प्लक्षाभ्याम्।***

एत्-आदेशः-

(३) बहुवचने झल्येत्।१०३।

प०वि०-बहुवचने ७।१ झलि ७।१ एत् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, अतः, सुपीति चानुवर्तते।

अन्वयः-अतोऽङ्गस्य बहुवचने झलि सुपि एत्।

अर्थः-अकारान्तस्याऽङ्गस्य बहुवचने झलादौ सुपि प्रत्यये परत एकारादेशो भवति।

उदा०-वृक्षेभ्यः, प्लक्षेभ्यः। वृक्षेषु, प्लक्षेषु।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अतः) अकार जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग को (बहुवचने) बहुवचन में (झलि) झलादि (सुपि) सुप् प्रत्यय परे होने पर (एत्) एकारादेश होता है।*

*उदा०-**वृक्षेभ्यः।** वृक्षों के लिये/से। **प्लक्षेभ्यः।** पिलखणों के लिये/से। **वृक्षेषु।** वृक्षों मे। **प्लक्षेषु।** पिलखणों में।*

*सिद्धि-**वृक्षेभ्यः।** यहां 'वृक्ष' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'भ्यस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'वृक्ष' शब्द के अन्त्य अकार को, बहुवचन, झलादि, भ्यस् प्रत्यय परे होने पर एकारादेश होता है। ऐसे ही 'प्लक्ष' शब्द से-**प्लक्षेभ्यः।** 'सुप्' (७।३) प्रत्यय में-**वृक्षेषु, प्लक्षेषु।***

एत्-आदेशः-

(४) ओसि च।१०४।

प०वि०-ओसि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, अतः, एदिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अतोऽङ्गस्य ओसि च एत्।

अर्थः-अकारान्तस्याऽङ्गस्य ओसि प्रत्यये परतश्च एकारादेशो भवति।

उदा०-वृक्षयोः स्वम्। प्लक्षयोः स्वम्। वृक्षयोर्निधेहि। प्लक्षयोर्निधेहि।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अतः) अकार जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग को (ओसि) ओस् प्रत्यय परे होने पर (च) भी (एत्) एकारादेश होता है।*

*उदा०-**वृक्षयोः स्वम्।** दो वृक्षों का धन। **प्लक्षयोः स्वम्।** दो पिलखणों का धन। **वृक्षयोर्निधेहि।** दो वृक्षों में रख। **प्लक्षयोर्निधेहि।** दो पिलखणों में रख।*

*सिद्धि-**वृक्षयोः।** यहां 'वृक्ष' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'ओस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'वृक्ष' शब्द के अन्त्य अकार को 'ओस्' प्रत्यय परे होने पर एकारादेश होता है। ऐसे ही 'प्लक्ष' शब्द से-**प्लक्षयोः।** सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में-**वृक्षयोर्निधेहि, प्लक्षयोर्निधेहि।***

एत्-आदेशः-

(५) आङि चाऽऽपः।१०५।

प०वि०-आङि ७।१ च अव्ययपदम्, आपः ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, एत्, ओसीति चानुवर्तते।

अन्वयः-आपोऽङ्गस्याऽऽङि ओसि च एत्।

अर्थः-आबन्तस्याङ्गस्याऽऽङि ओसि च प्रत्यये परत एकारादेशो भवति।

'आङ्' इति पूर्वाचार्याणां निर्देशेन तृतीयैकवचनं टाप्रत्ययो गृह्यते।

उदा०-**(टा)** खट्वया, मालया। बहुराजया, कारीषगन्ध्यया। **(ओस्)** खट्वयोः, मालयोः। बहुराजयोः, कारीषगन्ध्ययोः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(आपः) आप् प्रत्यय जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग को (आङि) आङ्=टा प्रत्यय (च) और (ओसि) ओस् प्रत्यय परे होने पर (एत्) एकारादेश होता है।*

*उदा०-(टा) **खट्वया।** एक खाट के द्वारा। **मालया।** एक माला के द्वारा। **बहुराजया।** एक बहुराजा नारी के द्वारा। **कारीषगन्ध्यया।** कारीषगन्ध्या नारी के द्वारा। (ओस्) **खट्वयोः।** दो खाटों का/में। **मालयोः।** दो मालाओं का/में। **बहुराजयोः।** दो बहुराजा नारियों का/में। **कारीषगन्ध्ययोः।** दो कारीषगन्ध्या नारियों का/में।*

*सिद्धि-**खट्वया।** यहां टाप्-प्रत्ययान्त 'खट्वा' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'टा' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'खट्वा' शब्द के अन्त्य आकार को 'टा' प्रत्यय परे होने*

पर एकारादेश होता है। 'खट्वा' शब्द में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय है। ऐसे ही 'माला' शब्द से-**मालया**। 'बहुराजा' शब्द से-**बहुराजया**। यहां 'बहुराजन्' शब्द से **'डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्'** (४।१।१३) से स्त्रीलिङ्ग में 'डाप्' प्रत्यय है। 'कारीषगन्ध्या' शब्द से-**कारीषगन्ध्यया**। यहां **'यङश्चाप्'** (४।१।७४) से 'कारीषगन्ध्य' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में 'चाप्' प्रत्यय है। ओस् प्रत्यय में-**खट्वयोः**, **मालयोः**, **बहुराजयोः**, **कारीषगन्ध्ययोः**।

एत्-आदेशः-

(६) सम्बुद्धौ च।१०६।

प०वि०-सम्बुद्धौ ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, एत्, आप इति चानुवर्तते।

अन्वयः-आपोऽङ्गस्य सम्बुद्धौ च एत्।

अर्थः-आबन्तस्याऽङ्गस्य सम्बुद्धौ परतश्च एकारादेशो भवति।

उदा०-हे खट्वे। हे बहुराजे। हे कारीषगन्ध्ये।

आर्यभाषाः *अर्थ-(आपः) आप् प्रत्यय जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग को (सम्बुद्धौ) सम्बुद्धि-संज्ञक {प्रथमा-एकवचन} प्रत्यय परे होने पर (च) भी (एत्) एकारादेश होता है।*

*उदा०-**हे खट्वे**। हे खाट। हे **बहुराजे**। हे बहुराजा नारी। हे **कारीषगन्ध्ये**। हे कारीषगन्ध्या नारी।*

*सिद्धि-**खट्वे**। यहां खट्वा शब्द से सम्बुद्धि अर्थ में **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'खट्वा' शब्द के आकार को सम्बुद्धिवाची 'सु' प्रत्यय परे होने पर एकारादेश होता है। तत्पश्चात् **'एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः'** (६।१।६८) से सम्बुद्धिवाची 'सु' प्रत्यय का लोप हो जाता है। **'एकवचनं सम्बुद्धिः'** (२।३।४९) से 'सु' प्रत्यय की सम्बुद्धि संज्ञा है। ऐसे ही 'बहुराजा' शब्द से-**हे बहुराजे**। 'कारीषगन्ध्या' शब्द से-**हे कारीषगन्ध्ये**।*

ह्रस्वादेशः-

(७) अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः।१०७।

प०वि०-अम्बार्थ-नद्योः ६।२ ह्रस्वः १।१।

स०-अम्बाऽर्थो यस्य सः-अम्बार्थः। अम्बार्थश्च नदी च ते अम्बार्थनद्यौ, तयोः-अम्बार्थनद्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, सम्बुद्धाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-अम्बार्थनद्योरङ्गयोः सम्बुद्धौ ह्रस्वः।

अर्थः-अम्बार्थानां नदीसंज्ञकानां चाऽङ्गानां सम्बुद्धौ प्रत्यये परतो ह्रस्वो भवति।

उदा०-(अम्बार्थकः) हे अम्ब ! हे अक्क ! हे अल्ल ! **(नदी)** हे कुमारि ! हे शाङ्र्गरवि ! हे ब्रह्मबन्धु ! हे वीरबन्धु !

आर्यभाषाः *अर्थ-(अम्बार्थनद्योः) अम्बा के पर्यायवाची और नदी-संज्ञक (अङ्गानाम्) अङ्गों को (सम्बुद्धौ) सम्बुद्धि-संज्ञक {प्रथमा-एकवचन} प्रत्यय परे होने पर (ह्रस्वः) ह्रस्व होता है।*

*उदा०-(अम्बार्थक) **हे अम्ब !** हे **अक्क !** हे **अल्ल !**। हे मातः !। (नदी) **हे कुमारि !**। हे कन्ये !। हे **शाङ्र्गरवि !**। हे शाङ्र्गरवी नामक ऋषिकन्ये !। हे **ब्रह्मबन्धु !**। हे पतितब्राह्मणी !। हे **वीरबन्धु !**। हे पतित क्षत्रिया नारी !।*

सिद्धि-अम्ब। *अम्बा+सु। अम्ब+स्। अम्ब+०। अम्ब।*

*यहां 'अम्बा' शब्द से सम्बुद्धि अर्थ में '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'अम्बा' शब्द को सम्बुद्धिवाची 'सु' प्रत्यय परे होने पर ह्रस्व होता है। तत्पश्चात् '**एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः**' (६।१।६८) से सम्बुद्धिवाची 'सु' प्रत्यय का लोप होता है। ऐसे ही अम्बार्थक 'अक्का' शब्द से-हे **अक्क !** 'अल्ला' शब्द से-हे **अल्ल !** नदीसंज्ञक 'कुमारी' शब्द से-हे **कुमारि !** 'ब्रह्मबन्धू' शब्द से-हे **ब्रह्मबन्धु !**। 'वीरबन्धू' शब्द से-हे **वीरबन्धु !**। कुमारी आदि शब्दों की '**यू स्त्र्याख्यौ नदी**' (१।४।३) से नदी-संज्ञा है।*

गुणादेशः-

(८) ह्रस्वस्य गुणः।१०८।

प०वि०-ह्रस्वस्य ६।१ गुणः १।१।

अनु०-अङ्गस्य, सम्बुद्धाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-ह्रस्वस्याऽङ्गस्य सम्बुद्धौ गुणः।

अर्थः-ह्रस्वान्तस्याऽङ्गस्य सम्बुद्धौ प्रत्यये परतो गुणो भवति।

उदा०-हे अग्ने ! हे वायो ! हे पटो !

आर्यभाषाः *अर्थ-(ह्रस्वस्य) ह्रस्व वर्ण जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग को (सम्बुद्धौ) सम्बुद्धि-संज्ञक {प्रथमा-एकवचन} प्रत्यय परे होने पर (गुणः) गुण होता है।*

*उदा०-हे **अग्ने** ! हे अग्नि देवता ! हे **वायो** ! हे वायु देवता ! हे **पटो** ! हे चतुर वटु (बालक) !*

सिद्धि-अग्ने। *यहां ह्रस्वान्त 'अग्नि' शब्द से* ***'स्वौजस०'*** *(४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'अग्नि' शब्द को सम्बुद्धिवाची 'सु' प्रत्यय परे होने पर गुण (ए) होता है। तत्पश्चात्* ***'एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः'*** *(६।१।६८) से सम्बुद्धिवाची 'सु' प्रत्यय का लोप हो जाता है। ऐसे ही 'वायु' शब्द से-हे* ***वायो*** *! 'पटु' शब्द से-हे* ***पटो*** *!*

गुणादेशः-

(६) जसि च।१०६।

प०वि०-जसि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, ह्रस्वस्य, गुण इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ह्रस्वस्याऽङ्गस्य जसि च गुणः।

अर्थः-ह्रस्वान्तस्याऽङ्गस्य जसि प्रत्यये परतश्च गुणो भवति।

उदा०-**(अग्निः)** अग्नयः। **(वायुः)** वायवः। **(पटुः)** पटवः। **(धेनुः)** धेनवः। **(बुद्धिः)** बुद्धयः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ह्रस्वात्) ह्रस्व वर्ण जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग को (जसि) जस् प्रत्यय परे होने पर (च) भी (गुणः) गुण होता है।*

*उदा०-**(अग्नि) अग्नयः।** बहुत अग्नि देवता। **(वायु) वायवः।** बहुत वायु देवता। **(पटु) पटवः।** बहुत चतुर वटु (बालक)। **(धेनु) धेनवः।** बहुत दुधारु गौवें। **(बुद्धिः) बुद्धयः।** नाना प्रकार की बुद्धियां।*

सिद्धि-अग्नयः। *अग्नि+जस्। अग्नि+अस्। अग्ने+अस्। अग्न् अय्+अस्। अग्नयस्। अग्नयः।*

यहां ह्रस्वान्त 'अग्नि' शब्द से ***'स्वौजस०'*** *(४।१।२) से 'जस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'अग्नि' शब्द के अन्त्य इकार को जस् प्रत्यय परे होने पर गुण (ए) होता है।* ***'एचोऽयवायावः'*** *(६।१।७७) से अय्-आदेश होता है। ऐसे ही-**वायवः** आदि।*

गुणादेशः-

(१०) ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः।११०।

प०वि०-ऋतः ६।१ ङि-सर्वनामस्थानयोः ७।२।

स०-ङिश्च सर्वनामस्थानं च ते ङिसर्वनामस्थाने, तयोः-ङिसर्वनामस्थानयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, गुण इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ऋतोऽङ्गस्य ङिसर्वनामस्थानयोर्गुणः।

अर्थः-ऋकारान्तस्याऽङ्गस्य ङिप्रत्यये सर्वनामस्थानसंज्ञके प्रत्यये च परतो गुणो भवति।

उदा०-(ङि) मातरि। पितरि। भ्रातरि। कर्तरि। **(सर्वनामस्थानम्)** कर्तारौ, कर्तारः। मातरौ, पितरौ, भ्रातरौ।

आर्यभाषाः अर्थ-*(ऋतः) ऋकार जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग को (ङिसर्वनामस्थानयोः) ङि प्रत्यय और सर्वनामस्थान-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (गुणः) गुण आदेश होता है।*

*उदा०-(ङि) **मातरि**। माता में। **पितरि**। पिता में। **भ्रातरि**। भ्राता में। **कर्तरि**। कर्ता में। **(सर्वनामस्थान) कर्तारौ**। दो कर्ताओं ने/को। **कर्तारः**। सब कर्ताओं ने। **मातरौ**। दो माताओं ने/को। **पितरौ**। दो पिताओं ने/को।**भ्रातरौ**। दो भ्राताओं ने/को।*

*सिद्धि-(१) **मातरि**। मातृ+ङि। मातृ+इ। मात् अर्+इ। मातरि।*

*यहां ऋकारान्त 'मातृ' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'ङि' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'मातृ' शब्द के ऋकार को 'ङि' प्रत्यय परे होने पर गुण (अ) होता है तत्पश्चात् 'उरण् रपरः' (१।१।५१) से रपरत्व (अर्) होता है। ऐसे ही 'पितृ' शब्द से-**पितरि**। 'भ्रातृ' शब्द से-**भ्रातरि**।*

*(२) **कर्तारौ**। कर्तृ+औ। कर्त् अर्+औ। कर्त् आर्+औ। कर्तारौ।*

*यहां ऋकारान्त 'कर्तृ' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से सर्वनामस्थान-संज्ञक 'औ' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'कर्तृ' शब्द को इस 'औ' प्रत्यय परे होने पर गुण (अ) होता है। तत्पश्चात् पूर्ववत् रपरत्व होता है। पुनः 'अप्तृन्तृच०' (६।४।११) से उपधा-अकार को दीर्घ होता है। 'सुडनपुंसकस्य' (१।१।४३) से 'औ' प्रत्यय की सर्वनामस्थान संज्ञा है। ऐसे ही 'जस्' प्रत्यय में-**कर्तारः**। 'मातृ' शब्द से-**मातरौ**। 'पितृ' शब्द से-**पितरौ**। 'भ्रातृ' शब्द से-**भ्रातरौ**।*

गुणादेशः-

(११) घेर्ङिति।१११।

प०वि०-घेः ६।१ ङिति ७।१।

स०-ङ् इद् यस्य स ङित्, तस्मिन्-ङिति (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, गुण इति चानुवर्तते।

अन्वयः-घेरङ्गस्य ङिति गुणः।

अर्थः-घि-संज्ञकस्याऽङ्गस्य ङिति प्रत्यये परतो गुणो भवति।

उदा०-**(ङे)** अग्नये, वायवे। **(ङसि)** अग्नेः, वायोः। **(ङस्)** अग्नेः स्वम्। वायोः स्वम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(घिः) घि-संज्ञक (अङ्गस्य) अङ्ग को (ङिति) ङित् प्रत्यय परे होने पर (गुणः) गुण होता है।*

*उदा०-**(ङे) अग्नये।** अग्नि देवता के लिये। **वायवे।** वायु देवता के लिये। **(ङसि) अग्नेः।** अग्नि देवता से। **वायोः।** वायु देवता से। **(ङस्) अग्नेः स्वम्।** अग्नि देवता का धन। **वायोः स्वम्।** वायु देवता का धन।*

*सिद्धि-(१) **अग्नये।** अग्नि+ङे। अग्नि+ए। अग्ने+ए। अग्नय्+ए। अग्नये।*

*यहां घि-संज्ञक 'अग्नि' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'ङे' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'अग्नि' को इकार को ङित् 'ङे' प्रत्यय परे होने पर गुण (ए) होता है। **'एचोऽयवायावः'** (६।१।७७) से अय्-आदेश होता है। ऐसे ही 'वायु' शब्द से-**वायवे।** अग्नि और वायु शब्दों की **'शेषो घ्यसखि'** (१।४।७) से 'घि' संज्ञा है।*

*(२) **अग्नेः।** अग्नि+ङसि। अग्नि+अस्। अग्ने+अस्। अग्ने+०स्। अग्नेस्। अग्नेः।*

*यहां घि-संज्ञक 'अग्नि' शब्द से पूर्ववत् 'ङसि' प्रत्यय है। इस सूत्र से पूर्ववत् गुण होता है। 'ङसिङसोश्च' (६।१।१०८) से 'ङसि' के अकार को पूर्वरूप एकादेश (ए) होता है। ऐसे ही 'वायु' शब्द से-**वायोः।** 'ङस्' प्रत्यय में भी-अग्नेः, **वायोः।***

{आगमप्रकरणम्}

आट्-आगमः--

(१) आण् नद्याः।११२।

प०वि०-आट् १।१ नद्याः ५।१।

अनु०-अङ्गस्य, ङितीति चानुवर्तते।

अन्वयः-नद्या अङ्गाद् ङित आट्।

अर्थः-नदीसंज्ञकादङ्गाद् उत्तरस्य ङित प्रत्ययस्याऽऽडागमो भवति।

उदा०-**(ङे)** कुमार्यै, ब्रह्मबन्ध्वै। **(ङसि)** कुमार्याः, ब्रह्मबन्ध्वाः। **(ङस्)** कुमार्याः, ब्रह्मबन्ध्वाः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(नद्याः) नदी-संज्ञक (अङ्गात्) अङ्ग से परे (ङितः) ङित् प्रत्यय को (आट्) आट् आगम होता है।*

*उदा०-(ङे) **कुमार्यै**। कुमारी के लिये। **ब्रह्मबन्ध्वै**। ब्रह्मबन्धू=पतित ब्राह्मणी के लिये। (ङसि) **कुमार्याः**। कुमारी से। **ब्रह्मबन्ध्वाः**। पतित ब्राह्मणी से। (ङस्) **कुमार्याः**। कुमारी का। **ब्रह्मबन्ध्वाः**। पतित ब्राह्मणी का।*

सिद्धि-कुमार्यै। *कुमारी+ङे। कुमारी+ए। कुमारी+आट्+ए। कुमारी+आ+ए। कुमारी+ऐ। कुमार्य्+ऐ। कुमार्यै।*

*यहां नदी-संज्ञक 'कुमारी' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'ङे' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'कुमारी' शब्द से परे ङित् 'ङे' प्रत्यय को 'आट्' आगम होता है। **'वृद्धिरेचि'** (६।१।८७) से पूर्वपर के स्थान में वृद्धिरूप एकादेश (ऐ) होता है। 'इको **यणचि'** (६।१।७६) से यण् आदेश है। ऐसे ही 'ब्रह्मबन्धू' शब्द से-**ब्रह्मबन्ध्वै**। 'ङसि' और 'ङस्' प्रत्यय में-**कुमार्याः**, **ब्रह्मबन्ध्वाः**।*

याट्-आगमः—

(२) याडापः।११३।

प०वि०-याट् १।१ आपः ५।१।

अनु०-अङ्गस्य, ङितीति चानुवर्तते।

अन्वयः-आपोऽङ्गाद् ङितो याट्।

अर्थः-आबन्तादङ्गाद् उत्तरस्य ङितः प्रत्ययस्य याडाऽऽगमो भवति।

उदा०-(ङे) खट्वायै, बहुराजायै, कारीषगन्ध्यायै। **(ङसि)** खट्वायाः, बहुराजायाः, कारीषगन्ध्यायाः। **(ङस्)** खट्वायाः, बहुराजायाः, कारीष-गन्ध्याः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(आपः) आप् प्रत्यय जिसके अन्त में उस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (ङितः) ङित् प्रत्यय को (याट्) याट् आगम होता है।*

*उदा०-(ङे) **खट्वायै**। खाट के लिये। **बहुराजायै**। बहुराजा नारी के लिये। **कारीषगन्ध्यायै**। कारीषगन्ध्या नारी के लिये। (ङसि) **खट्वायाः**। खाट से। **बहुराजायाः**। बहुराजा नारी से। **कारीषगन्ध्यायाः**। कारीषगन्ध्या नारी से। (ङस्) **खट्वायाः**। खाट का। **बहुराजायाः**। बहुराजा नारी का। **कारीषगन्ध्याः**। कारीषगन्ध्या नारी का।*

सिद्धि-खट्वायै। *खट्वा+ङे। खट्वा+याट्। खट्वा+या+ए। खट्वा+य+ए। खट्वा+य् ऐ। खट्वायै।*

*यहां आबन्त 'खट्वा' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'ङे' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस आबन्त खट्वा से परे ङित् 'ङे' प्रत्यय को 'याट्' आगम होता है। **'वृद्धिरेचि'***

*(६।१।८७) से पूर्वपर के स्थान में वृद्धिरूप एकादेश (ऐ) होता है। ऐसे ही 'बहुराजा' शब्द से-**बहुराजायै**। यहां '**डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्**' (४।१।१३) से स्त्रीलिङ्ग में 'डाप्' प्रत्यय है। 'कारीषगन्ध्या' शब्द से-**कारीषगन्ध्यायै**। यहां '**यङश्चाप्**' (४।१।७४) से स्त्रीलिङ्ग में 'चाप्' प्रत्यय है। 'ङसि' और 'ङस्' प्रत्यय में-**खट्वायाः, बहुराजायाः, कारीषगन्ध्यायाः**।*

स्याट्-आगमः–

(३) सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च।११४।

प०वि०–सर्वनाम्नः ५।१ स्याट् १।१ ह्रस्वः १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–अङ्गस्य, ङिति, आप इति चानुवर्तते।

अन्वयः–सर्वनाम्न आपोऽङ्गाद् ङितः स्याट्, ह्रस्वश्च।

अर्थः–सर्वनामसंज्ञकाद् आबन्तादङ्गाद् उत्तरस्य ङितः प्रत्ययस्य स्याडाऽऽगमो भवति, सर्वनाम्नश्च ह्रस्वो भवति।

उदा०–**(ङे)** सर्वस्यै। विश्वस्यै। यस्यै। तस्यै। कस्यै। अन्यस्यै। **(ङसि)** सर्वस्याः। विश्वस्याः। यस्याः। तस्याः। कस्याः। अन्यस्याः। **(ङस्)** सर्वस्याः। विश्वस्याः। यस्याः। तस्याः। कस्याः। अन्यस्याः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(सर्वनाम्नः) सर्वनाम-संज्ञक (आपः) आप्-प्रत्यय जिसके अन्त में है उस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (ङितः) ङित् प्रत्यय को (स्याट्) स्याट् आगम होता है (च) और उस सर्वनाम को (ह्रस्वः) ह्रस्व होता है।*

*उदा०-(ङे) **सर्वस्यै**। समस्त सभा के लिये। **विश्वस्यै**। समस्त सभा के लिये। **यस्यै**। जिस कन्या के लिये। **तस्यै**। उस कन्या के लिये। **कस्यै**। किस कन्या के लिये। **अन्यस्यै**। अन्य कन्या के लिये। (ङसि) **सर्वस्याः**। समस्त सभा से। **विश्वस्याः**। समस्त सभा से। **यस्याः**। जिस कन्या से। **तस्याः**। उस कन्या से। **कस्याः**। किस कन्या से। **अन्यस्याः**। अन्य कन्या से। (ङस्) **सर्वस्याः**। समस्त सभा का। **विश्वस्याः**। समस्त सभा का। **यस्याः**। जिस कन्या का। **तस्याः**। उस कन्या का। **कस्याः**। किस कन्या का। **अन्यस्याः**। अन्य कन्या का।*

सिद्धि-सर्वस्यै। *सर्वा+ङे। सर्वा+ए। सर्वा+स्याट्+ए। सर्वा+स्या+ए। सर्व+स्या+ए। सर्व+स्य् ऐ। सर्वस्यै।*

*यहां प्रथम सर्वनामसंज्ञक 'सर्व' शब्द से **अजाद्यतष्टाप्** (४।१।४) स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् सर्वनामसंज्ञक, आबन्त 'सर्वा' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२)*

*से 'ङे' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस सर्वनाम, आबन्त 'सर्वा' शब्द से परे ङित् 'ङे' प्रत्यय को स्याट् आगम और सर्वनाम सर्वा शब्द को ह्रस्व होती है। 'वृद्धिरेचि' (६।१।८७) से वृद्धिरूप एकादेश (ऐ) है। ऐसे ही 'विश्वा' शब्द से-**विश्वस्यै**। 'या' शब्द से-**यस्यै**। 'ता' शब्द से-**तस्यै**। 'का' शब्द से-**कस्यै**। 'अन्या' शब्द से-**अन्यस्यै**। 'ङसि' और 'ङस्' प्रत्यय में-**सर्वस्याः, विश्वस्याः, यस्याः, तस्याः, कस्याः, अन्यस्याः**। 'सर्वा' आदि शब्दों की '**सर्वादीनि सर्वनामानि**' (१।१।२७) से सर्वनाम-संज्ञा है।*

स्याडागम-विकल्पः--

(४) विभाषा द्वितीयातृतीयाभ्याम्।११५।

प०वि०-विभाषा १।१ द्वितीया-तृतीयाभ्याम् ५।२।

स०-द्वितीया च तृतीया च ते द्वितीयातृतीये, ताभ्याम्-द्वितीया-तृतीयाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, ङिति, स्याट्, ह्रस्व इति चानुवर्तते।

अन्वयः-द्वितीयातृतीयाभ्यामऽङ्गाभ्यां ङितो विभाषा स्याट्, ह्रस्वश्च।

अर्थः-द्वितीयातृतीयामऽङ्गाभ्याम् उत्तरस्य ङितः प्रत्ययस्य विकल्पेन स्याडागमो भवति, तयोश्च तत्सन्नियोगेन ह्रस्वो भवति।

उदा०-**(द्वितीया)** ङे-द्वितीयस्यै, द्वितीयायै। **(तृतीया)** तृतीयस्यै, तृतीयायै।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(द्वितीयातृतीयाभ्याम्) द्वितीया, तृतीया इन (अङ्गाभ्याम्) अङ्गों से परे (ङितः) ङित् प्रत्यय को (विभाषा) विकल्प से (स्याट्) स्याट् आगम होता और उन दोनों को उस स्याट् आगम के सन्नियोग में (ह्रस्वः) ह्रस्वादेश होता है।*

*उदा०-**(द्वितीया) ङे-द्वितीयस्यै, द्वितीयायै**। द्वितीया श्रेणी के लिये। **(तृतीया) तृतीयस्यै, तृतीयायै**। तृतीया श्रेणी के लिये।*

***सिद्धि-द्वितीयस्यै**। द्वितीया+ङे। द्वितीया+ए। द्वितीया+स्याट्+ए। द्वितीया+स्या+ए। द्वितीय+स्य् ऐ। द्वितीयस्यै।*

*यहां 'द्वितीया' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'ङे' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'द्वितीया' शब्द से परे ङित् 'ङे' प्रत्यय को 'स्याट्' आगम और 'द्वितीया' शब्द के आकार को ह्रस्व (अ) होता है। 'वृद्धिरेचि' (६।१।८७) से वृद्धिरूप एकादेश होता है। विकल्प-पक्ष में स्याट् आगम और ह्रस्वादेश नहीं होता है-**द्वितीयायै**। यहां '**याडापः**' (७।३।११३) से 'याट्' आगम है। तृतीया शब्द से-**तृतीयस्यै, तृतीयायै**।*

{आदेशप्रकरणम्}

आम्-आदेशः-

(१) ङेराम् नद्याम्नीभ्यः।११६।

प०वि०-ङे: ५।१ आम् १।१ नदी-आप्-नीभ्य: ५।३।

स०-नदी च आप् च नीश्च ते नद्याम्न्यः, तेभ्यः-नद्याम्नीभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्येत्यनुवर्तते।

अन्वयः-नद्याम्नीभ्योऽङ्गेभ्यो ङेराम्।

अर्थः-नदीसंज्ञकाद् आबन्ताद् न्यन्ताच्चाऽङ्गाद् उत्तरस्य ङिप्रत्ययस्य स्थाने आमाऽऽदेशो भवति।

उदा०-(नदी) कुमार्याम्, गौर्याम्, ब्रह्मबन्ध्वाम्, वीरबन्ध्वाम्। **(आप्)** खट्वायाम्, बहुराजायाम्, कारीषगन्ध्यायाम्, **(नी)** राजन्याम्, सेनान्याम्, ग्रामण्याम्।

__आर्यभाषाः अर्थ-__(नद्याम्नीभ्यः) नदीसंज्ञक, आबन्त और नी जिसके अन्त में है उस (अङ्गात्) अङ्ग से परे (ङेः) ङि प्रत्यय के स्थान में (आम्) आम् आदेश होता है।

*उदा०-(नदी) **कुमार्याम्।** कुमारी में। **गौर्याम्।** गौरी में। **ब्रह्मबन्ध्वाम्।** पतित ब्राह्मणी में। **वीरबन्ध्वाम्।** पतित क्षत्रिया में। (आप्) **खट्वायाम्।** खाट में। **बहुराजायाम्।** बहुराजा नारी में। **कारीषगन्ध्यायाम्।** कारीषगन्ध्या नारी में। (नी) **राजन्याम्।** राजा के नायक में। **सेनान्याम्।** सेना के नायक में। **ग्रामण्याम्।** ग्राम के नायक में।*

*सिद्धि-**कुमार्याम्।** कुमारी+ङि। कुमारी+इ। कुमारी+आम्। कुमार् य्+आम्। कुमार्याम्।*

*यहां नदी-संज्ञक 'कुमारी' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'ङि' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'कुमारी' शब्द से परे 'ङि' प्रत्यय को 'आम्' आदेश होता है। 'आम्' आदेश अनेकाल् होने से **'अनेकाल्शित् सर्वस्य'** (१।१।५५) के नियम से सर्वादेश होता है। 'कुमारी' शब्द की **'यू स्त्र्याख्यौ नदी'** (१।४।३) से नदी-संज्ञा है। ऐसे ही 'गौरी' शब्द से-**गौर्याम्।** 'ब्रह्मबन्धू' शब्द से-**ब्रह्मबन्ध्वाम्।** 'वीरबन्धू' शब्द से-**वीरबन्ध्वाम्।** टाबन्त 'खट्वा' शब्द से-**खट्वायाम्।** डाबन्त 'बहुराजा' शब्द से-**बहुराजायाम्।** चाबन्त 'कारीषगन्ध्या' शब्द से-**कारीषगन्ध्यायाम्।** **नी-अन्त-** 'राजनी' शब्द से-**राजन्याम्।***

*सेनानी' शब्द से-**सेनान्याम्।** 'ग्रामणी' शब्द से-**ग्रामण्याम्।** यहां 'सत्सूद्विष०' (३।२।६१) से 'क्विप्' प्रत्यय, 'अट्कुप्वाङ्०' (८।४।२) से णत्व और 'एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य' (६।४।८२) से 'यण्' आदेश होता है।*

आम्-आदेशः–

(२) इदुद्भ्याम्।११७।

प०वि०–इद्-उद्भ्याम् ५।२।

स०–इच्च उच्च तौ इदुतौ, ताभ्याम् इदुद्भ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, ङेः, आम्, नदीति चानुवर्तते।

अन्वयः–नदीभ्याम् इदुद्भ्यां ङेराम्।

अर्थः–नदीसंज्ञकाभ्याम् इकारान्तोकारान्ताभ्यामऽङ्गाभ्याम् उत्तरस्य ङिप्रत्ययस्य स्थाने आमाऽऽदेशो भवति।

उदा०–(इद्) कृत्याम्। (उद्) धेन्वाम्।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(नदीभ्याम्) नदी-संज्ञक (इदुद्भ्याम्) इकारान्त और उकारान्त (अङ्गाभ्याम्) अङ्गों से परे (ङे) ङि-प्रत्यय के स्थान में (आम्) आम् आदेश होता है।

*उदा०-(इद्) **कृत्याम्।** कृति=रचना में। (उद्) **धेन्वाम्।** दुधारु गौ में।*

*__सिद्धि-कृत्याम्।__ यहां इकारान्त 'कृति' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'ङि' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'कृति' शब्द से परे 'ङि' को 'आम्' आदेश होता है। 'इको यणचि' (६।१।७५) से यणादेश है। ऐसे ही 'धेनु' शब्द से-**धेन्वाम्।***

आम्-आदेशः–

(३) औत्।११८।

प०वि०–औत् १।१।

अनु०–अङ्गस्य, इदुद्भ्याम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–इदुद्भ्यामऽङ्गाभ्यां ङेरौत्।

अर्थः–इकारान्तोकारान्ताभ्यामऽङ्गाभ्याम् उत्तरस्य ङि-प्रत्ययस्य स्थाने औकारादेशो भवति।

उदा०–(इद्) सख्यौ। पत्यौ। (उद्) ×। यदिकारान्तं न नदीसंज्ञकं नापि घिसंज्ञकं तदिहोदाहरणं वेदितव्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इदुद्भ्याम्) इकारान्त और उकारान्त (अङ्गाभ्याम्) अङ्गों से परे (ङेः) ङि प्रत्यय के स्थान में (औत्) औकारादेश होता है।*

*उदा०-**(इद्) सख्यौ।** सखा में। **पत्यौ।** पति में। **(उद्)** × ।*

*जो इकारान्त शब्द नदी-संज्ञक नहीं है और घि-संज्ञक भी नहीं है उसे यहां उदाहरण समझें। जैसे-**सखि, पति।***

***सिद्धि-सख्यौ।** सखि+ङि। सखि+इ। सखि+औ। सख्य्+औ। सख्यौ।*

*यहां नदी और घि-संज्ञा से भिन्न 'सखि' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'ङि' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'सखि' शब्द से परे 'ङि' प्रत्यय को औकारादेश होता है। **'इको यणचि'** (६।१।७५) से यणादेश है। ऐसे ही 'पति' शब्द से-**पत्यौ।***

औत् आदेशः-

(४) अच्च घेः।११६।

प०वि०-अत् १।१ च अव्ययपदम्, घेः ५।१।

अनु०-अङ्गस्य, ङेः, औदिति चानुवर्तते।

अन्वयः-घेरङ्गाद् ङेरौत्, घेरच्च।

अर्थः-घि-संज्ञकाद् अङ्गाद् उत्तरस्य ङिप्रत्ययस्य स्थाने औकारादेशो भवति, तस्य च घिसंज्ञकस्याऽकारादेशश्च भवति।

उदा०-अग्नौ। वायौ। कृतौ। धेनौ। पटौ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(घेः) घि-संज्ञक (अङ्गात्) अङ्ग से परे (ङे) ङि प्रत्यय के स्थान में (औत्) औकारादेश होता है और उस (घेः) घि-संज्ञक अङ्ग को (अत्) अकारादेश (च) भी होता है।*

*उदा०-**अग्नौ।** अग्नि देवता में। **वायौ।** वायु देवता में। **कृतौ।** रचना में। **धेनौ।** दुधारु गौ में। **पटौ।** चतुर वटु (बालक) में।*

***सिद्धि-अग्नौ।** अग्नि+ङि। अग्नि+इ। अग्नि+औ। अग्न् अ+औ। अग्नौ।*

*यहां घि-संज्ञक 'अग्नि' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'ङि' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'अग्नि' शब्द से परे 'ङि' प्रत्यय को औकारादेश होता है और 'अग्नि' शब्द के अन्त्य इकार को अकारादेश भी होता है। ऐसे ही 'वायु' शब्द से-**वायौ।** 'कृति' शब्द से-**कृतौ।** 'धेनु' शब्द से-**धेनौ।** 'पटु' शब्द से-**पटौ।***

ना-आदेशः–

(५) आङो नास्त्रियाम्।१२०।

प०वि०–आङः ६।१ ना १।१ अस्त्रियाम् ७।१।

स०–न स्त्रीति अस्त्री, तस्याम्–अस्त्रियाम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–अङ्गस्य, घेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–घेरङ्गाद् आङो ना।

अर्थः–स्त्रीलिङ्गवर्जिताद् घिसंज्ञकादऽङ्गाद् उत्तरस्याऽऽङः स्थाने नाऽऽदेशो भवति।

उदा०–अग्निना, वायुना, पटुना।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अस्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग से भिन्न (घेः) घि-संज्ञक (अङ्गात्) अङ्ग से परे (आङः) टा-प्रत्यय के स्थान में (ना) ना-आदेश होता है।*

*उदा०–**अग्निना।** अग्नि देवता के द्वारा। **वायुना।** वायु देवता के द्वारा। **पटुना।** चतुर वटु के द्वारा।*

*सिद्धि–**अग्निना।** यहां स्त्रीलिङ्ग से भिन्न, पुंलिङ्ग 'अग्नि' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'टा' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस 'अग्नि' शब्द से परे 'टा' को 'ना' आदेश होता है। '**शेषो घ्यसखि**' (१।४।७) से 'अग्नि' शब्द की घि-संज्ञा है। ऐसे ही 'वायु' शब्द से–**वायुना।** 'पटु' शब्द से–**पटुना।***

विशेषः *'आङ्' यह 'टा' प्रत्यय की पूर्वाचार्यकृत संज्ञा है।*

।। इति आदेशागमप्रकरणम्।।

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने सप्तमाध्यायस्य तृतीयः पादः समाप्तः।।

सप्तमाध्यायस्य चतुर्थः पादः
आदेशप्रकरणम्

ह्रस्वादेशः--

(१) णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः।१।

प०वि०-णौ ७।१ चङि ७।१ उपधायाः ६।१ ह्रस्वः १।१।

अनु०-अङ्गस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अङ्गस्योपधायाश्चङि णौ ह्रस्वः।

अर्थः-अङ्गस्योपधायाः स्थाने चङ्परके णौ प्रत्यये परतो ह्रस्वो भवति।

उदा०-सोऽचीकरत्। सोऽजीहरत्। सोऽलीलवत्। सोऽपीपवत्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अङ्गस्य) अङ्ग की (उपधायाः) उपधा के स्थान में (चङि) चङ्परक (णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (ह्रस्वः) ह्रस्वादेश होता है।*

*उदा०-**सोऽचीकरत्।** उसने कराया। **सोऽजीहरत्।** उसने हरण कराया। **सोऽलीलवत्।** उसने कटाया। **सोऽपीपवत्।** उसने पवित्र कराया।*

*सिद्धि-**अचीकरत्।** कृ+णिच्। कृ+इ। कार्+इ। कारि।। कारि+लुङ्। अट्+कारि+ल्। अ+कारि+च्लि+ल्। अ+कारि+चङ्+तिप्। अ+कारि+अ+त्। अ+कार्+अ+त्। अ+कर्+अ+त्। अ+कृ+कृ+अ+त्। अ+क+कृ+अ+त्। अ+कि+कर्+अ+त्। अ+की+कर्+अ+त्। अ+ची+कर्+त्। अचीकरत्।*

*यहां प्रथम 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् णिजन्त 'कारि' धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। 'च्लि लुङि' (३।१।४३) से 'च्लि' प्रत्यय और '**णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्**' (३।१।४८) से 'च्लि' के स्थान में 'चङ्' आदेश होता है। 'चङ्' परे होने पर '**चङि**' (६।१।११) से धातु को द्वित्व और इस सूत्र से उपधाह्रस्वत्व की प्राप्ति में परत्व से उपधाह्रस्वत्व होता है। तत्पश्चात् '**णौ कृतं स्थानिवद् भवति**' से 'कृ' धातु को ही द्विर्वचन किया जाता है। 'उरत्' (७।४।६६) से अभ्यास के ऋकार को अकारादेश, 'उरण् रपरः' (१।१।५१) से रपरत्व, '**सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे**' (७।४।९३) से सन्वद्भाव होकर '**सन्यतः**' (७।४।७९) से अभ्यास-अकार को इत्त्व और इसे '**दीर्घो लघोः**' (७।४।९४) से दीर्घ होता है। ऐसे ही 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से-**अजीहरत्।***

*'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से-**अलीलवत्।** 'पूञ् पवने' (क्र्या०उ०) धातु से-**अपीपवत्।** 'लू' और 'पू' धातु के अभ्यास को 'ह्रस्वः' (७।४।५९) से ह्रस्वादेश करने पर 'ओः पुयण्ज्यपरे' (७।४।८०) से ईकारादेश होता है।*

ह्रस्वादेशप्रतिषेधः–

(२) नाग्लोपिशास्वृदिताम्।२।

प०वि०–न अव्ययपदम्, अग्लोपि-शासु-ऋदिताम् ६।३।

स०–अको लोप इति अग्लोपः। अग्लोपोऽस्यास्तीति अग्लोपी। **'अत इनिठनौ'** (५।२।११५) इत्यनेन मतुबर्थे इनिप्रत्ययः। ऋद् इद् यस्य स ऋदित्। अग्लोपी च शासुश्च ऋदिच्च ते-अग्लोपिशास्वृदितः, तेषाम्-अग्लोपिशास्वृदिताम् (नञ्बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, णौ, चङि, उपधायाः, ह्रस्व इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अग्लोपिशास्वृदितामङ्गानामुपधायाश्चङि णौ ह्रस्वो न।

अर्थः–अग्लोपिनाम्, शासेः, ऋदितां चाऽङ्गानामुपधायाः स्थाने चङ्परके णौ प्रत्यये परतो ह्रस्वो न भवति।

उदा०–**(अग्लोपी)** मालामाख्यदिति अममालत्। मातरमाख्यदिति अममातत्। राजानमतिक्रान्तवानिति अत्यरराजत्। लोमान्यनुमृष्टवानिति अन्वलुलोमत्। **(शासु)** सोऽशशासत्। **(ऋदित्)** **बाधृ**-सोऽबबाधत्। **याचृ**- सोऽययाचत्। **ढौकृ**-सौऽडुढौकत्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अग्लोपिशास्वृदिताम्) अक् वर्ण लोपवाले, शासु और ऋकार इत्वाले (अङ्गानाम्) अङ्गों की (उपधायाः) उपधा के स्थान में (चङि) चङ्परक (णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (ह्रस्वः) ह्रस्वादेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**(अग्लोपी) अममालत्।** उसने माला को बनाया। **अममातत्।** उसने माता को कहा। **अत्यरराजत्।** उसने राजा का अतिक्रमण किया, जीता। **अन्वलुलोमत्।** उसने लोमों को शुद्ध किया। **(शासु) सोऽशशासत्।** उसने शिक्षा दिलाई। **(ऋदित्) बाधृ-सोऽबबाधत्।** उसने विलोडन कराया। **याचृ-सोऽययाचत्।** उसने याचना कराई। **ढौकृ-सोऽडुढौकत्।** उसने गमन कराया।*

*सिद्धि-(१) **अममालत्।** यहां प्रथम 'माला' शब्द से **'तत् करोति, तदाचष्टे'** (चुरादि० गणसूत्र) से करोति-अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् वा०-**'णाविष्ठवत् प्रातिपदिकस्य'** (६।४।१५५) से इष्ठवद्भाव होने से **'तुरिष्ठेमेयस्सु'** (६।४।१५४) से*

टि-भाग का लोप होता है। अतः 'मालि' यह 'अग्लोपी' धातु है। इससे पूर्ववत् 'लुङ्' प्रत्यय और 'च्लि' के स्थान में चङ् आदेश करने पर इस सूत्र से उपधा-आकार को ह्रस्वादेश (अ) नहीं होता है।

*(२) **अममालत्।** यहां 'मातृ' शब्द से 'तत्करोति तदाचष्टे' (चुरादि० गणसूत्र) से आचष्टे अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **अत्यरराजत्।** यहां अति-पूर्वक 'राजन्' शब्द से 'प्रातिपदिकाद् धात्वर्थे बहुलमिष्ठवच्च' (चुरादि० गणसूत्र) से 'णिच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **अन्वलुलोमत्।** यहां अनु-पूर्वक 'लोमन्' शब्द से 'सत्यापपाशरूप०' (३।१।२५) से अनुमार्जन अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(५) **अबबाधत्।** यहां 'बाधृ विलोडने' (भ्वा०आ०) इस ऋदित् धातु से 'हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'याचृ याच्ञायाम्' (भ्वा०आ०) धातु से-**अययाचत्।** 'ढौकृ गतौ' (भ्वा०आ०) धातु से-**अडुढौकत्।***

ह्रस्वादेशविकल्पः–

(३) भ्राजभासभाषदीपजीवमीलपीडामन्यतरस्याम्।३।

प०वि०- भ्राज-भास-भाष-दीप-जीव-मील-पीडाम् ६।३ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-भ्राजश्च भासश्च भाषश्च दीपश्च जीवश्च मीलश्च पीड् च ते-भ्राज०पीडः, तेषाम्-भ्राज०पीडाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, णौ, चङि, उपधायाः, ह्रस्व इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भ्राजभासभाषदीपजीवमीलपीडामङ्गानाम् उपधायाश्चङि णावन्यतरस्यां ह्रस्वः।

अर्थः-भ्राजभासभाषदीपजीवमीलपीडामऽङ्गानाम् उपधायाः स्थाने चङ्परके णौ प्रत्यये परतो विकल्पेन ह्रस्वो भवति। **उदाहरणम्-**

	धातुः		शब्दरूपम्	भाषार्थ
(१)	भ्राज	अबिभ्रजत्	अबभ्राजत्	उसने चमकाया, प्रकाशित किया।
(२)	भास	अबीभसत्	अबभासत्	उसने चमकाया, प्रकाशित किया।
(३)	भाष	अबीभषत्	अबभाषत्	उसने भाषण कराया।
(४)	दीप	अदिदीपत्	अदिदीपत्	उसने चमकाया, प्रकाशित किया।

धातुः	शब्दरूपम्		भाषार्थ
(५) जीव	अजिजिवत्	अजिजीलत्	उसने जिलाया।
(६) मील	अमीमिलत्	अमिमीलत्	उसने निमेष कराया।
(७) पीड	अपीपिडत्	अपिपीडत्	उसने दुःख दिया।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(भ्राज०) भ्राज, भास, भाष, दीप, जीव, मील, पीड इन (अङ्गानाम्) अङ्गों की (उपधायाः) उपधा के स्थान में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (ह्रस्वः) ह्रस्वादेश होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

__सिद्धि-अबिभ्राजत्।__ यहां __'भ्राज दीप्तौ'__ (भ्वा०आ०) धातु से __'हेतुमति च'__ (३।१।२६) से हेतुमान् अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् णिजन्त 'भ्राजि' धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से भूतकाल अर्थ में 'लुङ्' प्रत्यय है। __'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्'__ (३।१।४८) से 'च्लि' के स्थान में 'चङ्' आदेश होता है। इस सूत्र से चङ्परक 'णिच्' प्रत्यय परे होने पर 'भ्राज' के उपधा-आकार को ह्रस्व होता है। __'सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे'__ (७।४।९३) से सन्वद्भाव होकर __'सन्यतः'__ (७।४।७९) से अभ्यास-अकार को इकारादेश होता है। विकल्प-पक्ष में उपधा-आकार को ह्रस्वादेश नहीं है-__अबभ्राजत्।__

(२) __अबीभसत्।__ __'भासृ दीप्तौ'__ (भ्वा०आ०)।

(३) __अबीभषत्।__ __'भाष व्यक्तायां वाचि'__ (भ्वा०आ०)।

(४) __अदिदीपत्।__ __'दीपी दीप्तौ'__ (दि०आ०)।

(५) __अजिजीवत्।__ __'जीव प्राणधारणे'__ (भ्वा०प०)।

(६) __अमिमीलत्।__ __'मील निमेषणे'__ (भ्वा०प०)।

(७) __अपिपीडत्।__ __'पीड अवगाहने'__ (चु०आ०)।

लोपादेशः-

(४) लोपः पिबतेरीच्चाभ्यासस्य।४।

प०वि०- लोपः १।१ पिबतेः ६।१ ईत् १।१ च अव्ययपदम्, अभ्यासस्य ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, णौ, चङि, उपधाया इति चानुवर्तते।

अन्वयः-पिबतेरङ्गस्योपधाश्चङि णौ लोपः, अभ्यासस्य ईच्च।

अर्थः-पिबतेरङ्गस्योपधायाश्चङ्परके णौ प्रत्यये परतो लोपो भवति, अभ्यासस्य ईकारादेशश्च भवति।

उदा०-अपीप्यत्। अपीप्यताम्। अपीप्यन्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(पिबतेः) पा इस (अङ्गस्य) अङ्ग की (उपधायाः) उपधा का (चङि) चङ्परक (णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोप होता है और (अभ्यासस्य) अभ्यास को (ईत्) ईकारादेश (च) भी होता है।*

*उदा०-**अपीप्यत्।** उसने पान कराया। **अपीप्यताम्।** उन दोनों ने पान कराया। **अपीप्यन्।** उन सब ने पान कराया।*

*सिद्धि-**अपीप्यत्।** पा+णिच्। पा+इ। पा+युक्+इ। पा+य्+इ। पायि।। पायि+लुङ्। अट्+पायि+ल्। अ+पायि+चङ्+तिप्। अ+पा-पा य्+०+अ+त्। अ+प-प्य्+अ+त्। अ+पी+प्य्+अ+त्। अपीप्यत्।*

*यहां प्रथम **'पा पाने'** (भ्वा०प०) धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से हेतुमान् अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है। **'शाच्छासाह्वाव्यावेपां युक्'** (७।३।३७) से 'पा' को 'युक्' आगम होता है। तत्पश्चात् णिजन्त 'पायि' धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से चङ्परक 'णिच्' प्रत्यय परे होने पर 'पाय्' के उपधा आकार का लोप और अभ्यास-अकार के स्थान में ईकारादेश होता है।*

इत्-आदेशः-

(५) तिष्ठतेरित्।५।

प०वि०-तिष्ठतेः ६।१ इत् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, णौ, चङि, उपधाया इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तिष्ठतेरङ्गस्योपधायाश्चङि णौ इत्।

अर्थः-तिष्ठतेरङ्गस्योपधायाः स्थाने चङ्परके णौ प्रत्यये परत इकारादेशो भवति।

उदा०-अतिष्ठिपत्। अतिष्ठिपताम्। अतिष्ठिपन्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तिष्ठतेः) स्था इस (अङ्गस्य) अङ्ग की (उपधायाः) उपधा के स्थान में (चङि) चङ्परक (णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (इत्) इकारादेश होता है।*

*उदा०-**अतिष्ठिपत्।** उसने ठहराया। **अतिष्ठिपताम्।** उन दोनों ने ठहराया। **अतिष्ठिपन्।** उन सब ने ठहराया।*

*सिद्धि-**अतिष्ठिपत्।** यहां प्रथम **'ष्ठा गतिनिवृत्तौ'** (भ्वा०प०) धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से हेतुमान् अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है। **'अर्तिह्रीव्ली०'** (७।३।३६) से ष्ठा (स्था) को पुक् आगम होता है। तत्पश्चात् णिजन्त 'स्थापि' धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' प्रत्यय*

*और 'च्लि' के स्थान में 'चङ्' आदेश होता है। इस सूत्र से चङ्परक णिच् प्रत्यय परे होने पर 'स्थाप्' धातु के उपधा-आकार को इकारादेश होता है। 'शर्पूर्वाः खयः' (७।४।६१) से अभ्यास का खय् (थ्) शेष और इसे **'अभ्यासे चर्च'** (८।४।५४) से चर् तकारादेश, **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) से षत्व और **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से थकार को टवर्ग टकार होता है।*

इकारादेशविकल्पः–

(६) जिघ्रतेर्वा।६।

प०वि०–जिघ्रतेः ६।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०–अङ्गस्य, णौ, चङि, उपधाया, इद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–जिघ्रतेरङ्गस्योपधायाश्चङि णौ वा इत्।

अर्थः–जिघ्रतेरङ्गस्योपधायाः स्थाने चङ्परके णौ प्रत्यये परतो विकल्पेन इकारादेशो भवति।

उदा०–अजिघ्रिपत्, अजिघ्रपत्। अजिघ्रिपताम्, अजिघ्रपताम्। अजिघ्रिपन्, अजिघ्रपन्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(जिघ्रतेः) घ्रा इस (अङ्गस्य) अङ्ग की (उपधायाः) उपधा के स्थान में (चङि) चङ्परक (णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (वा) विकल्प से (इत्) इकारादेश होता है।*

*उदा०-**अजिघ्रिपत्, अजिघ्रपत्।** उसने सुंघाया। **अजिघ्रिपताम्, अजिघ्रपताम्।** उन दोनों ने सुंघाया। **अजिघ्रिपन्, अजिघ्रपन्।** उन सबने सुंघाया।*

*__सिद्धि-अजिघ्रिपत्।__ यहां प्रथम **'घ्रा गन्धोपदाने'** (भ्वा०प०) धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से हेतुमान् अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है। **'अर्तिह्रीव्ली०'** (७।३।३६) से 'घ्रा' को 'पुक्' आगम होता है। तत्पश्चात् णिजन्त 'घ्रापि' धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' प्रत्यय और 'च्लि' के स्थान में 'चङ्' आदेश होता है। इस सूत्र से चङ्परक 'णिच्' प्रत्यय परे होने पर 'घ्राप्' धातु के उपधा-आकार को इकारादेश होता है। **'अभ्यासे चर्च'** (८।४।५४) से अभ्यास-घकार को जश्-जकारादेश होता है। विकल्प-पक्ष में इकारादेश नहीं है-**अजिघ्रपत्। 'णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः'** (७।४।१) से उपधा-आकार को ह्रस्व होता है। ऐसे ही 'तस्' प्रत्यय में-**अजिघ्रिपताम्, अजिघ्रपताम्।** 'झि' प्रत्यय में-**अजिघ्रिपन्, अजिघ्रपन्।***

ऋकारादेशः–

(७) उर्ऋत्।७।

प०वि०-उः ६।१ ऋत् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, णौ, चङि, उपधाया, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-उरङ्गस्योपधायाश्चङि णौ वा णित्।

अर्थः-उः=ऋकारान्तस्याऽङ्गस्योपधायाः स्थाने चङ्परके णौ प्रत्यये परतो विकल्पेन ऋकारादेशो भवति। इर्-अर्-आरामपवादः।

उदा०-(इर्) अचिकीर्तत्, अचीकृतत्। **(अर्)** अववर्तत्, अवीवृतत्। **(आर्)** अममार्जत्, अमीमृजत्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(उः) ऋकार जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग की (उपधायाः) उपधा के स्थान में (चङि) चङ्परक (णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (वा) विकल्प से (ऋत्) ऋकारादेश होता है। यह इर्, अर्, आर् आदेशों का अपवाद है।*

*उदा०-(इर्) **अचिकीर्तत्, अचीकृतत्।** उसने प्रसिद्ध कराया। (अर्) **अववर्तत्, अवीवृतत्।** उसने चमकाया। (आर्) **अममार्जत्, अमीमृजत्।** उसने शुद्धि कराई।*

***सिद्धि**-(१) **अचिकीर्तत्।** यहां प्रथम **'कृत संशब्दने'** (चु०उ०) धातु से प्रथम **'सत्यापपाश०'** (३।१।२५) से चौरादिक 'णिच्' प्रत्यय होता है। **'उपधायाश्च'** (७।१।१०१) से 'कृत्' धातु के उपधा-ऋकार को इकारादेश, 'उरण् रपरः' (१।१।५१) से रपरत्व और **'हलि च'** (८।२।७७) से इसे दीर्घ होता है। तत्पश्चात् णिजन्त 'कीर्ति' धातु से पूर्ववत् 'लुङ्' प्रत्यय और 'च्लि' के स्थान में 'चङ्' आदेश होता है। इस सूत्र से ऋकार के स्थान में ऋकारादेश नहीं है। विकल्प-पक्ष में ऋकारादेश है-**अचीकृतत्।** यहां 'कृत्' धातु के उपधा-ऋकार को इर् आदेश नहीं होता है।*

*(२) **अववर्तत्।** यहां प्रथम **'वृतु भासार्थः'** (चु०उ०) धातु से पूर्ववत् चौरादिक 'णिच्' प्रत्यय है। इससे चङ्परक 'णिच्' प्रत्यय परे होने पर **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से अकार गुण और इसे **'उरण् रपरः'** (१।१।५१) से रपरत्व होता है। विकल्प-पक्ष में गुण (अर्) नहीं है। विकल्प-पक्ष में ऋकार के स्थान में ऋकारादेश है-**अवीवृतत्।***

*(३) **अममार्जत्।** यहां प्रथम **'मृजूष् शुद्धौ'** (अदा०प०) धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से हेतुमान् अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है। **'मृजेर्वृद्धिः'** (७।२।११४) से ऋकार के स्थान में आकार वृद्धि और इसे पूर्ववत् रपरत्व (आर्) होता है। विकल्प-पक्ष में ऋकार के स्थान में ऋकारादेश है-**अमीमृजत्।***

नित्यमृकारादेशः–

(८) नित्यं छन्दसि।८।

प०वि०–नित्यम् १।१ छन्दसि ७।१।

अनु०–अङ्गस्य, णौ, चङि, उपधायाः, उरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि उरङ्गस्योपधायाश्चङि णौ नित्यम् ऋत्।

अर्थः–छन्दसि विषये उः=ऋकारान्तस्याऽङ्गस्योपधायाः स्थाने चङ्परके णौ प्रत्यये परतो नित्यम् ऋकारादेशो भवति।

उदा०–अवीवृधत् पुरोडाशेन (यजु० २८।२३)। अवीवृधताम्। अवीवृधन्।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(छन्दसि) वेदविषय में (उः) ऋकार जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग की (उपधायाः) उपधा के स्थान में (चङि) चङ्परक (णौ) णिच् प्रत्यय परे होने पर (नित्यम्) सदा (ऋत्) ऋकारादेश होता है।*

*उदा०–**अवीवृधत् पुरोडाशेन** (यजु० २८।२३)। अवीवृधत्=उसने बढ़ाया। **अवीवृधताम्**। उन दोनों ने बढ़ाया। **अवीवृधन्**। उन सबने बढ़ाया।*

*सिद्धि–**अवीवृधत्**। यहां प्रथम 'वृधु वृद्धौ' (भ्वा०आ०) धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से हेतुमान् अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् णिजन्त 'वर्धि' पूर्ववत् धातु से 'लुङ्' प्रत्यय और 'च्लि' के स्थान में 'चङ्' आदेश है। इस सूत्र से चङ्परक 'णिच्' प्रत्यय परे होने पर वेदविषय में ऋकार के स्थान में नित्य ऋकारादेश होता है।*

दिगि-आदेशः–

(९) दयतेर्दिगि लिटि।९।

प०वि०–दयतेः ६।१ दिगि १।१ (सु-लुक्) लिटि ७।१।

अनु०–अङ्गस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–दयतेरङ्गस्य लिटि दिगिः।

अर्थः–दयतेरङ्गस्य स्थाने लिटि प्रत्यये परतो दिगिरादेशो भवति।

उदा०–अवदिग्ये। अवदिग्याते। अवदिग्यिरे।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(दयतेः) देङ् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के स्थान में (लिटि) लिट् प्रत्यय परे होने पर (दिगिः) दिगि आदेश होता है।*

*उदा०–**अवदिग्ये**। उसने रक्षा की। **अवदिग्याते**। उन दोनों ने रक्षा की। **अवदिग्यिरे**। उन सब ने रक्षा की।*

*सिद्धि-**अवदिग्ये** । अव+दा+लिट् । अव+दा+ल् । अव+दिग्+त । अव+दिग्+एश् । अव+दिग्+ए । अवदिग्ये ।*

*यहां अव-उपसर्गपूर्वक **'देङ् रक्षणे'** (भ्वा०आ०) धातु से **'परोक्षे लिट्'** (३ ।२ ।११५) से 'लिट्' प्रत्यय है। इस सूत्र से देङ् (दयति) के स्थान में दिगि आदेश होता है। दिगि-आदेश विधान से द्विर्वचन का बाधन अभीष्ट है, अत: **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६ ।१ ।८) से 'दिगि' को द्वित्व नहीं होता है। **'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्'** (१ ।३ ।१२) से आत्मनेपद और **'लिटस्तझयोरेशिरेच्'** (३ ।४ ।८१) से 'त' को 'एश्' आदेश होता है। आताम् प्रत्यय में-**अवदिग्याते,** 'झ' प्रत्यय में-**अवदिग्यिरे** ।*

गुणादेशः-

(१०) ऋतश्च संयोगादेर्गुणः ।१०।

प०वि०-ऋत: ६ ।१ च अव्ययपदम्, संयोगादे: ६ ।१ गुण: १ ।१ ।

स०-संयोग आदिर्यस्य स संयोगादि:, तस्य-संयोगादे: (बहुव्रीहि:) ।

अनु०-अङ्गस्य, लिटीति चानुवर्तते ।

अन्वय:-संयोगादेर्ऋतोऽङ्गस्य च लिटि गुण: ।

अर्थ:-संयोगादेर्ऋकारान्तस्याऽङ्गस्य च लिटि प्रत्यये परतो गुणो भवति ।

उदा०-**(स्वृ)** तौ सस्वरतु: । ते सस्वरु: । **(ध्वृ)** तौ दध्वरतु: । ते दध्वरु: । **(स्मृ)** तौ सस्मरतु: । ते सस्मरु: ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(ऋत:) ऋकार जिसके अन्त में है उस (संयोगादे:) संयोग आदिवाले (अङ्गस्य) अङ्ग को (लिटि) लिट् प्रत्यय परे होने पर (गुण:) गुण होता है ।*

*उदा०-(स्वृ) **तौ सस्वरतु:** । उन दोनों ने शब्द/उपताप किया । **ते सस्वरु:** । उन सब ने शब्द/उपताप किया । (ध्वृ) **तौ दध्वरतु:** । उन दोनों ने कुटिलता की । **ते दध्वरु:** । उन सब ने कुटिलता की । (स्मृ) **तौ सस्मरतु:** । उन दोनों ने स्मरण किया । **ते सस्मरु:** । उन सब ने स्मरण किया ।*

*सिद्धि-**सस्वरतु:** । स्वृ+लिट् । स्वृ+ल् । स्वृ+तस् । स्वृ+अतुस् । स्वृ-स्वृ+अतुस् । स् अ+स्वर्+अतुस् । सस्वरतुस् । सस्वरतु: ।*

*यहां **'स्वृ शब्दोपतापयो:'** (भ्वा०प०) धातु से **'परोक्षे लिट्'** (३ ।२ ।११५) से 'लिट्' प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३ ।४ ।७८) से लकार के स्थान में 'तस्' आदेश और*

'परस्मैपदानां णलतुसुस०' (३।४।८२) से 'तस्' को अतुस्' आदेश है। इस सूत्र से इस संयोगादि, ऋकारान्त 'स्वृ' धातु को 'अतुस्' प्रत्यय परे होने पर गुण (अर्) होता है। 'उरत्' (७।४।६६) से अभ्यास-ऋकार को अकारादेश होता है। ऐसे ही झि (उस्) प्रत्यय में-सस्वरुः। 'असंयोगाल्लिट् कित्' (१।२।५) से लिट् (तस्) प्रत्यय के कित् होने से 'क्ङिति च' (१।१।५) से गुण का प्रतिषेध प्राप्त था, अतः यह गुण विधान किया गया है। ऐसे ही 'ध्वृ हूर्छने' (भ्वा०प०) धातु से-दध्वरतुः, दध्वरुः। 'स्मृ चिन्तायाम्' (भ्वा०प०) धातु से-सस्मरतुः, सस्मरुः।

गुणादेशः—

(११) ऋच्छत्यॄताम्।११।

प०वि०-ऋच्छति-ऋ-ॠताम् ६।३।

स०-ऋच्छतिश्च ऋश्च ॠच्च ते ऋच्छत्यॄतः, तेषाम्-ऋच्छत्यॄताम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, लिटि, गुण इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ऋच्छत्यॄतामऽङ्गानां लिटि गुणः।

अर्थः-ऋच्छतेर्ऋ इत्येतस्य ॠकारान्तस्य चाऽङ्गस्य लिटि प्रत्यये परतो गुणो भवति।

उदा०-**(ऋच्छतिः)** आनर्च्छ, आनर्च्छतुः, आनर्च्छुः। **(ऋ)** आरतुः, आरुः। **(ॠकारान्तः)** निचकरतुः, निचकरुः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(ऋच्छत्यॄताम्) ऋच्छति, ऋ और ॠकारान्त (अङ्गस्य) अङ्ग को (लिटि) लिट् प्रत्यय परे होने पर (गुणः) गुण होता है।*

*उदा०-**(ऋच्छति) आनर्च्छ।** वह गया। **आनर्च्छतुः।** वे दोनों गये। **आनर्च्छुः।** वे सब गये। **(ऋ) आरतुः।** वे दोनों गये। **आरुः।** वे सब गये। **(ॠकारान्त) कॄ-निचकरतुः।** उन दोनों ने विक्षेप किया, फैंका। **निचकरुः।** उन सबने विक्षेप किया।*

***सिद्धि-आनर्च्छ।** ऋच्छ्+लिट्। ऋच्छ्+ल्। ऋच्छ्+तिप्। ऋच्छ्+णल्। अर्च्छ्+अ। अर्च्छ्-अर्च्छ्+अ। अ-अर्च्छ्+अ। आ-अर्च्छ्+अ। आ नुट्-अर्च्छ्+अ। आ न्-अर्च्छ्+अ। आनर्च्छ।*

*यहां 'ऋच्छ गतौ' (तु०प०) धातु से **'परोक्षे लिट्'** (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश और **'परस्मैपदानां णलतुसुस०'** (३।४।८२) से णल् आदेश है। इस सूत्र से 'ऋच्छ्' को लिट् (णल्) प्रत्यय परे होने पर गुण होता है। तत्पश्चात् **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से 'अर्च्छ्'*

*को द्वित्व, 'हलादि: शेष:' (७।४।६०) से अभ्यास का अकार शेष, इसे 'अत आदे:' (७।४।७०) से दीर्घ और इसे 'तस्मान्नुड् द्विहल:' (७।४।७१) से नुट्-आगम होता है। ऐसे ही तस् (अतुस्) प्रत्यय में-**आनर्च्छतु:।** झि (उस्) प्रत्यय में-**आनर्च्छु:।** 'ऋ गतौ' (जु०प०) धातु से-**आरतु, आरु:।** नि-उपसर्गपूर्वक ॠकारान्त 'कॄ विक्षेपे' (तु०प०) धातु से-**निचकरतु:, निचकरु:।***

ह्रस्वादेशविकल्प:-

(१२) शॄदॄप्रां ह्रस्वो वा।१२।

प०वि०-शॄ-दॄ-प्राम् ६।३ ह्रस्व: १।१ वा अव्ययपदम्।

स०-शॄश्च दॄश्च पॄश्च ते शॄदॄप्र:, तेषाम्-शॄदॄप्राम् (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-अङ्गस्य, लिटीति चानुवर्तते।

अन्वय:-शॄदॄप्रामऽङ्गानां लिटि वा ह्रस्व:।

अर्थ:-शॄदॄप्रामऽङ्गानां लिटि प्रत्यये परतो विकल्पेन ह्रस्वो भवति।

उदा०-**(शॄ)** विशश्रतु:, विशश्रु:। विशशरतु:, विशशरु:। **(दॄ)** विदद्रतु:, विदद्रु:। विददरतु:, विददरु:। **(पॄ)** निपप्रतु:, निपप्रु:। निपपरतु:, निपपरु:।

***आर्यभाषा:** अर्थ-(शॄदॄप्राम्) शॄ, दॄ, पॄ इन (अङ्गानाम्) अङ्गों को (लिटि) लिट्-प्रत्यय परे होने पर (वा) विकल्प से (ह्रस्व:) ह्रस्व होता है।*

*उदा०-**(शॄ) विशश्रतु:, विशश्रु:।** उन दोनों ने हिंसा की, मार डाला। **विशशरतु:, विशशरु:।** उन सब ने हिंसा की। **(दॄ) विदद्रतु:, विदद्रु:।** उन दोनों ने विदारण किया, फाड़ा। **विददरतु:, विददरु:।** उन सब ने विदारण किया। **(पॄ) निपप्रतु:, निपप्रु:।** उन दोनों ने पालन-पूरण किया। **निपपरतु:, निपपरु:।** उन सब ने पालन-पूरण किया।*

***सिद्धि-(शॄ) विशश्रतु:।** वि+शॄ+लिट्। वि+शॄ+ल्। वि+शॄ+अतुस्। वि+शॄ-शॄ+अतुस्। वि+श् अर्+शृर्+अतुस्। वि+श-शृर्+अतुस्। विशश्रतु:।*

*यहां वि-उपसर्गपूर्वक '**शॄ हिंसायाम्**' (क्र्या०प०) धातु से 'लिट्' प्रत्यय है। इस सूत्र से लिट् (अतुस्) प्रत्यय परे होने पर 'शॄ' को ह्रस्व (शृ) होता है। '**इको यणचि**' (६।१।७७) से ऋकार को यणादेश (र्) है। 'उरत्' (७।४।६६) से अभ्यास-ऋकार को अकारादेश, 'उरण् रपर:' (१।१।५१) से इसे रपरत्व और 'हलादि: शेष:' (७।४।६०) से शकार शेष रहता है। विकल्प-पक्ष में 'शॄ' को ह्रस्व नहीं होता है अत: '**ऋच्छत्यॄताम्**' (७।४।११) से 'शॄ' को गुण होता है-**विशशरतु:।** ऐसे ही 'झि' (उस्) प्रत्यय में-**विशश्रु:, विशशरु:।** ऐसे ही '**दॄ विदारणे**' (क्र्या०प०) धातु से-**विदद्रतु:, विददरतु:। विदद्रुत:, विदद्रु:।** '**पॄ पालनपूरणयो:**' (क्र्या०प०) धातु से-**निपप्रतु:, निपपरतु:। निपप्रु:, निपपरु:।***

ह्रस्वादेशः-

(१३) केऽणः ।१३।

प०वि०-के ७ ।१ अणः ।

अनु०-अङ्गस्य, ह्रस्व इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-अणोऽङ्गस्य के ह्रस्वः ।

अर्थः-अणन्तस्याङ्गस्य के प्रत्यये परतो ह्रस्वो भवति ।

उदा०-ज्ञका । कुमारिका । किशोरिका ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अणः) अण् वर्ण जिसके अन्त में उस (अङ्गस्य) अङ्ग को (के) क-प्रत्यय परे होने पर (ह्रस्वः) ह्रस्व होता है।*

*उदा०-**ज्ञका।** अनुकम्पिता (दयापात्रा) ज्ञानिनी। **कुमारिका।** ह्रस्वा (छोटी) कुमारी। **किशोरिका।** ह्रस्वा किशोरी।*

*सिद्धि-(१) **ज्ञका।** ज्ञा+क। ज्ञ+क। ज्ञक+टाप्। ज्ञक+आ। ज्ञका+सु। ज्ञका।*

*यहां 'ज्ञा' शब्द से **'अनुकम्पायाम्'** (५।३।७६) से अनुकम्पा अर्थ में 'क' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'ज्ञा' अणन्त अङ्ग को 'क' प्रत्यय परे होने पर ह्रस्व (अ) होता है। तत्पश्चात् स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय है। **'भस्त्रैषाजाज्ञाद्वास्वानञ्पूर्वाणामपि'** (७।३।४७) से इकारादेश का प्रतिषेध है।*

*(२) **कुमारिका।** यहां 'कुमारी' शब्द से **'ह्रस्वे'** (५।३।८६) से ह्रस्व-अर्थ में 'क' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'किशोरी शब्द से-**किशोरिका।***

ह्रस्वादेशप्रतिषेधः-

(१४) न कपि ।१४।

प०वि०-न अव्ययपदम्, कपि ७ ।१ ।

अनु०-अङ्गस्य, ह्रस्वः, अण इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-अणोऽङ्गस्य कपि ह्रस्वो न ।

अर्थः-अणन्तस्याऽङ्गस्य कपि प्रत्यये परतो ह्रस्वो न भवति ।

उदा०-बहुकुमारीको देशः । बहुब्रह्मबन्धूको देशः । बहुलक्ष्मीको राजा ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अणः) अण् वर्ण जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग को (कपि) कप्-प्रत्यय परे होने पर **(ह्रस्वः) ह्रस्व** (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**बहुकुमारीको देश:।** बहुत कुमारियोंवाला देश। **बहुब्रह्मबन्धूको देश:।** बहुत पतित ब्राह्मणियोंवाला देश। **बहुलक्ष्मीको राजा।** बहुत लक्ष्मीवाला राजा।*

*सिद्धि-**बहुकुमारीक:।** यहां प्रथम बहु और कुमारी शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** से बहुव्रीहि समास है। तत्पश्चात् **'नद्यृतश्च'** (५।४।१५३) से समासान्त 'कप्' प्रत्यय होता है। इस सूत्र से अणन्त 'बहुकुमारी' शब्द को 'कप्' प्रत्यय परे होने पर ह्रस्व (इ) नहीं होता है। **'केऽण:'** (७।४।१३) से ह्रस्वादेश प्राप्त था। ऐसे ही 'ब्रह्मबन्धू' शब्द से-**ब्रह्मबन्धूक:।** 'बहुलक्ष्मी' शब्द से-**बहुलक्ष्मीक:।***

ह्रस्वादेशविकल्प:-

(१५) आपोऽन्यतरस्याम्।१५।

प०वि०-आप: ६।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, ह्रस्व:, न, कपीति चानुवर्तते।

अन्वय:-आपोऽङ्गस्य कपि अन्यतरस्यां ह्रस्वो न।

अर्थ:-आबन्तस्याऽङ्गस्य कपि प्रत्यये परतो विकल्पेन ह्रस्वो न भवति।

उदा०-बहुखट्वाको देश:, बहुखट्वको देश:। बहुमालाको देश:, बहुमालको देश:।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(आप:) आप् प्रत्यय जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग को (कपि) कप् प्रत्यय परे (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (ह्रस्व:) ह्रस्वादेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**बहुखट्वाको देश:, बहुखट्वको देश:।** बहुत खाटोंवाला देश। **बहुमालाको देश:, बहुमालको देश:।** बहुत मालाओंवाला देश।*

*सिद्धि-**बहुखट्वाक:।** यहां प्रथम बहु और खट्वा शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। तत्पश्चात् **'शेषाद् विभाषा'** (५।४।१५४) से समासान्त 'कप्' प्रत्यय होता है। इस सूत्र से आबन्त 'खट्वा' शब्द को 'कप्' प्रत्यय परे होने पर ह्रस्वादेश नहीं होता है। विकल्प-पक्ष में ह्रस्वादेश है-**बहुखट्वक:।** ऐसे ही 'बहुमाला' शब्द से-**बहुमालाक:, बहुमालक:।***

गुणादेश:-

(१६) ऋदृशोऽङि गुण:।१६।

प०वि०-ऋ-दृश: ६।१ अङि ७।१ गुण: १।१।

स०–ऋश्च दृश् च एतयोः समाहार ऋदृश्, तस्य-ऋदृशः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–ऋदृशोऽङ्गस्याऽङि गुणः।

अर्थः–ऋकारान्तस्य दृशेश्चाऽङ्गस्याऽङि प्रत्यये परतो गुणो भवति।

उदा०–**(ऋकारान्तः)** शकलाऽङ्गुष्ठकोऽकरत्। अहं तेभ्योऽकरं नमः (यजु० १६।८)। सोऽसरत्। आरत्। जरा। **(दृशिः)** अदर्शत्, अदर्शताम्, अदर्शन्।

आर्यभाषाः *अर्थ–(ऋदृशः) ऋकारान्त और दृश् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (अङि) अङ् प्रत्यय परे होने पर (गुणः) गुण होता है।*

*उदा०–**(ऋकारान्त) शकलाऽङ्गुष्ठकोऽकरत्।** अकरत्=उसने किया। **अहं तेभ्योऽकरं नमः** (यजु० १६।८)। अकरम्=मैंने किया। **सोऽसरत्।** उसने गति की। **आरत्।** उसने गति की। **जरा।** वयोहानि (बुढ़ापा)। **(दृशि) अदर्शत्।** उसने देखा। **अदर्शताम्।** उन दोनों ने देखा। **अदर्शन्।** उन सबने देखा।*

*सिद्धि–**अकरत्।** यहां **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। **'कृमृदृरुहिभ्यश्छन्दसि'** (३।१।५९) से 'च्लि' के स्थान में 'अङ्' आदेश होता है। इस सूत्र से ऋकारान्त 'कृ' धातु को 'अङ्' प्रत्यय परे होने पर गुण (अर्) होता है। **'क्ङिति च'** (१।१।५) से गुण प्रतिषेध प्राप्त था। ऐसे ही **'सृ गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से–**असरत्। 'ऋ गतिप्रापणयोः'** (भ्वा०प०) धातु से–**आरत्।** यहां **'सर्तिशास्त्यर्तिभ्यश्च'** (३।१।५६) से 'च्लि' के स्थान में 'अङ्' आदेश होता है। 'ऋ' धातु के अजादि होने से **'आडजादीनाम्'** (६।४।७२) से आट्-आगम और **'आटश्च'** (६।१।९०) से वृद्धिरूप एकादेश होता है। **'दृशिर् प्रेक्षणे'** (भ्वा०प०) धातु से–**अदर्शत्।** यहां **'इरितो वा'** (३।१।५७) से 'च्लि' के स्थान में 'अङ्' आदेश होता है।*

*(२) **जरा।** जॄ+अङ्। ज् अर्+अ। जर्+टाप्। जर्+आ। जरा+सु। जरा।*

*यहां **'जॄष् वयोहानौ'** (भ्वा०प०) धातु से **'षिद्भिदादिभ्योऽङ्'** (३।३।१०४) से स्त्रीलिङ्ग में अङ् प्रत्यय है। इस सूत्र से ऋकारान्त 'जॄ' धातु को अङ् प्रत्यय परे होने पर गुण होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय है।*

{आगमविधिः}

थुक्-आगमः—

(१) अस्यतेस्थुक्।१७।

प०वि०-अस्यतेः ६।१ थुक् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, अङीति चानुवर्तते।

अन्वयः-अस्यतेरङ्गस्याऽङि थुक्।

अर्थः-अस्यतेरङ्गस्याऽङि प्रत्यये परतस्थुगागमो भवति।

उदा०-आस्थत्, आस्थताम्, आस्थन्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अस्यतेः) अस्यति=अस् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (अङि) अङ् प्रत्यय परे होने पर (थुक्) थुक् आगम होता है।*

*उदा०-**आस्थत्।** उसने क्षेपण किया, फैंका। **आस्थताम्।** उन दोनों ने क्षेपण किया। **आस्थन्।** उन सब ने क्षेपण किया।*

*सिद्धि-**आस्थत्।** यहां 'असु क्षेपणे' (दि०प०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। **'अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ्'** (३।१।५२) से 'च्लि' के स्थान में 'अङ्' आदेश होता है। इस सूत्र से 'अस्' धातु को 'अङ्' प्रत्यय परे होने पर 'थुक्' आगम होता है। 'अस्' धातु के अजादि होने से **'आडजादीनाम्'** (६।४।७२) से 'आट्' आगम और **'आटश्च'** (६।१।९०) से वृद्धिरूप एकादेश होता है। ऐसे ही तस् (ताम्) प्रत्यय में-**आस्थताम्।** 'झि' प्रत्यय में-**आस्थन्।***

{आदेशविधिः}

अकारादेशः—

(१) श्वयतेरः।१८।

प०वि०-श्वयतेः ६।१ अः १।१।

अनु०-अङ्गस्य, अङीति चानुवर्तते।

अन्वयः-श्वयतेरङ्गस्याऽङि अः।

अर्थः-श्वयतेरङ्गस्याऽङि प्रत्यये परतोऽकारादेशो भवति।

उदा०-अश्वत्, अश्वताम्, अश्वन्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(श्वयतेः) श्वयति=श्वि इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (अङि) अङ् प्रत्यय परे होने पर (अः) अकारादेश होता है।*

*उदा०-**अश्वत्**। उसने गति/वृद्धि की। **अश्वताम्**। उन दोनों ने गति/वृद्धि की। **अश्वन्**। उन सब ने गति/वृद्धि की।*

***सिद्धि-अश्वत्**। यहां '**टुओश्वि गतिवृद्ध्योः**' (भ्वा०प०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। '**जॄस्तम्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यश्च**' (३।१।५८) से 'च्लि' के स्थान में 'अङ्' आदेश होता है। इस सूत्र से 'श्वि' धातु को 'अङ्' प्रत्यय परे होने पर अकार अन्त्य आदेश होता है। अ+श्व् अ+अ+त्। इस स्थिति में '**अतो गुणे**' (६।१।९७) से प्रथम अकार को पररूप एकादेश (अ) होता है। ऐसे ही तस् (ताम्) प्रत्यय में-**अश्वताम्**। 'झि' प्रत्यय में-**अश्वन्**।*

{आगमविधिः}

पुम्-आगमः--

(१) पतः पुम्।१६।

प०वि०-पतः ६।१ पुम् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, अङीति चानुवर्तते।

अन्वयः-पतोऽङ्गस्याऽङि पुम्।

अर्थः-पतोऽङ्गस्याऽङि प्रत्यये परतः पुमाऽऽगमो भवति।

उदा०-अपप्तत्। अपप्ताम्। अपप्तन्।

***आर्यभाषाः अर्थ**-(पतः) पत् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (अङि) अङ् प्रत्यय परे होने पर (पुम्) पुम् आगम होता है।*

*उदा०-**अपप्तत्**। वह गिरा। **अपप्ताम्**। वे दोनों गिरे। **अपप्तन्**। वे सब गिरे।*

***सिद्धि-अपप्तत्**। यहां '**पत्लृ गतौ**' (भ्वा०प०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। '**पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु**' (३।१।५५) से 'च्लि' के स्थान में लृदिल्लक्षण 'अङ्' आदेश होता है। इस सूत्र से 'पत्' धातु को 'अङ्' प्रत्यय परे होने पर 'पुम्' आदेश होता है। अ+प पुम् त्+अ+त्। अ+प प् त्+अ+त्। अपप्तत्। 'पुम्' आगम मित् होने से '**मिदचोऽन्त्यात् परः**' (१।१।४७) के नियम से 'पत्' के अन्त्य अच् से परे किया जाता है। ऐसे ही तस् (तास्) प्रत्यय में-**अपप्ताम्**। 'झि' प्रत्यय में-**अपप्तन्**।*

उम्-आगमः--

(२) वच उम्।२०।

प०वि०-वचः ६।१ उम् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, अङीति चानुवर्तते।

अन्वय:-वचोऽङ्गस्याऽङि उम्।

अर्थ:-वचोऽङ्गस्याऽङि प्रत्यये परत उमागमो भवति।

उदा०-अवोचत्, अवोचताम्, अवोचन्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(वच:) वच् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (अङि) अङ् प्रत्यय परे होने पर (उम्) उम् आगम होता है।*

*उदा०-**अवोचत्।** उसने कहा। **अवोचताम्।** उन दोनों ने कहा। **अवोचन्।** उन सब ने कहा।*

सिद्धि-अवोचत्।** यहां **'वच परिभाषणे'** (अदा०प०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। **'अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ्'** (३।१।५२) से 'च्लि' के स्थान में 'अङ्' आदेश है। इस सूत्र से 'वच्' धातु को 'अङ्' प्रत्यय परे होने पर 'उम्' आगम होता है। यह आगम मित् होने से **'मिदचोऽन्त्यात्पर:'** (१।१।४७) के नियम से 'वच्' के अन्त्य अच् से परे किया जाता है। अ+व उम् च्+अ+त्। अ+व उच्+अ+त्। अवोचत्। **'आद्गुण:'** (६।१।८७) से गुणरूप एकादेश (ओ) होता है। ऐसे ही तस् (ताम्) प्रत्यय में-**अवोचताम्।** झि-प्रत्यय में-**अवोचन्।

{आदेशप्रकरणम्}

गुणादेशः--

(१) शीङः सार्वधातुके गुणः।२१।

प०वि०-शीङ: ६।१ सार्वधातुके ७।१ गुण: १।१।

अनु०-अङ्गस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-शीङोऽङ्गस्य सार्वधातुके गुण:।

अर्थ:-शीङोऽङ्गस्य सार्वधातुके प्रत्यये परतो गुणो भवति।

उदा०-स शेते, तौ शयाते, ते शेरते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(शीङ:) शीङ् इस (अङ्गस्य) अङ् को (सार्वधातुके) सार्वधातुक-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (गुण:) गुण होता है।*

*उदा०-**स शेते।** वह सोता है। **तौ शयाते।** वे दोनों सोते हैं। **ते शेरते।** वे सब सोते हैं।*

सिद्धि-शेते।** यहां **'शीङ् स्वप्ने'** (अदा०आ०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'त' आदेश है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और इसका **'अदिप्रभृतिभ्य: शप:'

*(२।४।७२) से लुक् होता है। इस सूत्र से 'शीङ्' धातु को सार्वधातुक-संज्ञक 'त' प्रत्यय परे होने पर गुण (ए) होता है। **'सार्वधातुकमपित्'** (१।२।४) से 'त' प्रत्यय के ङिद्वत् होने से **'क्ङिति च'** (१।१।५) से गुण प्रतिषेध प्राप्त था। ऐसे ही 'आताम्' प्रत्यय में-**शयाते**। 'झ' प्रत्यय में-**शेरते**। यहां **'शीङो रुट्'** (७।१।६) से 'झ' के स्थान में 'अत्' आदेश और इसे 'रुट्' आगम होता है।*

अयङ्-आदेशः–

(२) अयङ् यि क्ङिति।२२।

प०वि०-अयङ् १।१ यि ७।१ क्ङिति ७।१।

स०-कश्च ङश्च तौ क्ङौ, इच्च इच्च तौ इतौ, क्ङावितौ यस्य स क्ङित्, तस्मिन्-क्ङिति (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-शीङोऽङ्गस्य यि क्ङिति अयङ्।

अर्थः-शीङोऽङ्गस्य यकारादौ किति ङिति च प्रत्यये परतोऽयङादेशो भवति।

उदा०-तेन शय्यते। स शाशय्यते। प्रशय्य। उपशय्य।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(शीङः) शीङ् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (यि) यकारादि (क्ङिति) कित्, ङित् प्रत्यय परे होने पर (अयङ्) अयङ् आदेश होता है।*

*उदा०-**तेन शय्यते।** उसके द्वारा सोया जाता है। **स शाशय्यते।** वह पुनः-पुनः/अधिक सोता है। **प्रशय्य।** अधिक सो कर। **उपशय्य।** पास सो कर।*

***सिद्धि-(१) शय्यते।** यहां 'शीङ् स्वप्ने' (अदा०आ०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से भाव-अर्थ में 'लट्' लकार है। **'सार्वधातुके यक्'** (३।१।६७) से 'यक्' विकरण-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से 'शीङ्' धातु के यकारादि कित् यक् प्रत्यय परे होने पर अयङ् अन्त्य आदेश होता है। श् अय्+य+ते। शय्यते।*

*(२) **शाशय्यते।** यहां पूर्वोक्त 'शीङ्' धातु से **'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे'** (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'शीङ्' धातु को यकारादि, ङित् यङ् प्रत्यय परे होने पर 'अयङ्' आदेश होता है। परत्व और नित्यत्व से 'शीङ्' को 'अयङ्' आदेश करने पर **'सन्यङोः'** (६।१।९) से द्वित्व होता है। **'दीर्घोऽकितः'** (७।४।८३) से अभ्यास-अकार को दीर्घ होता है।*

*(३) **प्रशय्य।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'शीङ्' धातु से **'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले'** (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। **'कुगतिप्रादयः'** (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष*

*समास है। 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' (७।१।३७) से 'क्त्वा' को 'ल्यप्' आदेश है। यह स्थानिवद्भाव से 'कित्' है। इस सूत्र से 'शीङ्' धातु को यकारादि कित् 'ल्यप्' प्रत्यय परे होने पर 'अयङ्' आदेश होता है। ऐसे ही-**उपशय्य।***

ह्रस्वादेशः-

(३) उपसर्गाद्ध्रस्व ऊहतेः।२३।

प०वि०-उपसर्गात् ५।१ ह्रस्वः १।१ ऊहतेः ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, यि, क्ङिति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-उपसर्गाद् ऊहतेरङ्गस्य यि क्ङिति ह्रस्वः।

अर्थः-उपसर्गाद् उत्तरस्य ऊहतेरङ्गस्य यकारादौ किति ङिति च प्रत्यये परतो ह्रस्वो भवति।

उदा०-तेन समुह्यते। तेन अभ्युह्यते। स समुह्य गतः। सोऽभ्युह्य गतः।

आर्यभाषाः अर्थ-(उपसर्गात्) उपसर्ग से परे (ऊहतेः) ऊहति=ऊह् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (यि) यकारादि (क्ङिति) कित् ङित् प्रत्यय परे होने पर (अयङ्) अयङ् आदेश होता है।

*उदा०-**तेन समुह्यते।** उसके द्वारा इकट्ठा किया जाता है। **तेन अभ्युह्यते।** उसके द्वारा तर्क किया जाता है। **स समुह्य गतः।** वह इकट्ठा करके गया। **सोऽभ्युह्य गतः।** वह तर्क करके गया।*

सिद्धि-(१) समुह्यते। *यहां सम् उपसर्गपूर्वक **'ऊह वितर्के'** (भ्वा०आ०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से भाव-अर्थ में 'लट्' प्रत्यय है। **'सार्वधातुके यक्'** (३।१।६७) से 'यक्' विकरण-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से 'ऊह्' धातु को यकारादि, कित् 'यक्' प्रत्यय परे होने पर ह्रस्वादेश (उ) होता है। ऐसे ही अभि-उपसर्गपूर्वक 'ऊह' धातु से-**अभ्युह्यते।***

(२) समुह्य। *यहां सम्-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'ऊह' धातु से **'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले'** (३।४।२२) से 'क्त्वा' प्रत्यय है और इसके स्थान में **'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्'** (७।१।३७) से 'ल्यप्' आदेश है। इस सूत्र से 'ऊह्' धातु को यकारादि कित् 'ल्यप्' प्रत्यय परे होने पर ह्रस्व आदेश होता है। ऐसे ही अभि-उपसर्गपूर्वक 'ऊह' धातु से-**अभ्युह्य।***

ह्रस्वादेशः-

(४) एर्लिङि।२४।

प०वि०-एः ६।१ लिङि ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, उपसर्गात्, यि, क्ङिति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-उपसर्गाद् एतेरङ्गस्य यि क्ङिति लिङि ह्रस्वः।

अर्थः-उपसर्गाद् उत्तरस्य एतेरङ्गस्य यकारादौ क्ङिति लिङि प्रत्यये परतो ह्रस्वो भवति।

उदा०-उदियात्। समियात्। अन्वियात्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(उपसर्गात्) उपसर्ग से परे (एतेः) एति=इण् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (यि) यकारादि (क्ङिति) कित्, ङित् (लिङि) लिङ् प्रत्यय परे होने पर (ह्रस्वः) ह्रस्व होता है।*

*उदा०-**उदियात्।** वह उदित होवे (आशीर्वाद)। **समियात्।** वह संघटित होवे (आशीर्वाद)। **अन्वियात्।** वह अन्वित (युक्त) होवे (आशीर्वाद)।*

*सिद्धि-**उदियात्।** यहां उत्-उपसर्गपूर्वक **'इण् गतौ'** (अदा०प०) धातु से **'आशिषि लिङ्लोटौ'** (३।३।१७३) से आशीर्वाद अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय है। **'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च'** (३।४।१०३) से ङित् 'यासुट्' आगम है। प्रथम **'अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः'** (७।४।२५) से 'इण्' धातु को दीर्घ (ई) होकर इस सूत्र से ह्रस्व (इ) होता है। ऐसे ही उप-उपसर्गपूर्वक से-**समियात्।** अनु-उपसर्गपूर्वक-**अन्वियात्।***

दीर्घादेशः-

(५) अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः।२५।

प०वि०-अकृत्सार्वधातुकयोः ७।२ दीर्घः १।१।

स०-कृच्च सार्वधातुकं च ते कृत्सार्वधातुके, न कृत्सार्वधातुके इति अकृत्सार्वधातुके, तयोः-अकृत्सार्वधातुकयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भित-नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, यि, क्ङिति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अचोऽङ्गस्याऽकृत्सार्वधातुके यि क्ङिति दीर्घः।

अर्थः-अजन्तस्याऽङ्गस्य कृद्वर्जिते सार्वधातुकवर्जिते च यकारादौ किति ङिति च प्रत्यये परतो दीर्घो भवति।

उदा०-भृशायते। सुखायते। दु:खायते। चीयते। चेचीयते। स्तूयते। तोष्टूयते। चीयात्। स्तूयात्।

आर्यभाषाः अर्थ-*अजन्त (अङ्गस्य) अङ्ग को (अकृत्सार्वधातुकयोः) कृत् और सार्वधातुक-संज्ञक प्रत्यय से भिन्न (यि) यकारादि (क्ङिति) कित् और ङित् प्रत्यय परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-**भृशायते**। जो सब नहीं वह सब होता है। **सुखायते**। वह सुख अनुभव करता है। **दु:खायते**। वह दु:ख अनुभव करता है। **चीयते**। उसके द्वारा चयन किया जाता है। **चेचीयते**। वह पुनः-पुनः/अधिक चयन करता है। **स्तूयते**। उसके द्वारा स्तुति की जाती है। **तोष्टूयते**। वह पुनः-पुनः/अधिक स्तुति करता है। **चीयात्**। वह चयन करे (आशीर्वाद)। **स्तूयात्**। वह स्तुति करे (आशीर्वाद)।*

***सिद्धि-(१) भृशायते**। यहां 'भृश' शब्द से '**भृशादिभ्यो भुव्यच्वेर्लोपश्च हलः**' (३।१।१२) से 'क्यङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'भृश' शब्द को कृत् और सार्वधातुक से भिन्न, यकारादि, ङित् 'क्यङ्' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ (आ) होता है।*

*(२) **सुखायते**। यहां 'सुख' शब्द से '**सुखादिभ्यः कर्तृवेदनायाम्**' (३।१।१८) से 'क्यङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'सुख' शब्द को पूर्वोक्त 'क्यङ्' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ (आ) होता है। ऐसे ही 'दु:ख' शब्द से-**दु:खायते**।*

*(३) **चीयते**। यहां '**चिञ् चयने**' (स्वा०उ०) धातु से कर्म-अर्थ में 'लट्' प्रत्यय है। '**सार्वधातुके यक्**' (३।१।६७) से 'यक्' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से 'चि' धातु को कित् 'यक्' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ (ई) होता है। ऐसे ही '**ष्टुञ् स्तुतौ**' (अदा०उ०) धातु से-**स्तूयते**।*

*(४) **चेचीयते**। यहां '**चिञ् चयने**' (स्वा०उ०) धातु से '**धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्**' (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय है। '**सन्यङोः**' (६।१।९) से 'चि' धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से 'चि' धातु को पूर्ववत् ङित् 'यङ्' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ (ई) होता है। '**गुणो यङ्लुकोः**' (७।४।८२) से अभ्यास को गुण होता है। ऐसे ही '**ष्टुञ् स्तुतौ**' (अदा०उ०) धातु से-**तोष्टूयते**।*

*(५) **चीयात्**। यहां पूर्वोक्त 'चि' धातु से '**आशिषि लिङ्लोटौ**' (३।३।१७३) से आशीर्वाद अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय है। यह '**लिङाशिषि**' (३।४।११६) से आर्धधातुक है। '**यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च**' (३।४।१०३) से ङित् 'यासुट्' आगम है। इस सूत्र से 'चि' धातु को ङित् 'यासुट्' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ (ई) होता है। ऐसे ही '**ष्टुञ् स्तुतौ**' (अदा०उ०) धातु से-**स्तूयात्**।*

दीर्घादेशः–

(६) च्वौ च।२६।

प०वि०–च्वौ ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–अङ्गस्य, दीर्घ इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अजन्तस्याऽङ्गस्य च्वौ च दीर्घः।

अर्थः–अजन्तस्याऽङ्गस्य च्वौ प्रत्यये परतश्च दीर्घो भवति।

उदा०–शुची करोति। शुची भवति। शुची स्यात्। पटू करोति। पटू भवति। पटू स्यात्।

***आर्यभाषाः** अर्थ–अजन्त (अङ्गस्य) अङ्ग को (च्वौ) च्वि प्रत्यय परे होने पर (च) भी (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०–**शुची करोति।** वह अशुचि (अशुद्ध) को शुचि (शुद्ध) करता है। **शुची भवति।** जो अशुचि है वह शुचि होता है। **शुची स्यात्।** जो अशुचि है वह शुचि होवे। **पटू करोति।** वह अपटु को पटु (चतुर) बनाता है। **पटू भवति।** जो पटु नहीं है वह पटु होता है। **पटू स्यात्।** जो पटु नहीं है वह पटु होवे।*

*सिद्धि–**शुची करोति।** यहां 'शुचि' शब्द से **'अभूततद्भावे कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः'** (५।४।५०) से 'च्वि' प्रत्यय है। इस सूत्र से अजन्त 'शुचि' शब्द को 'च्वि' प्रत्यय परे होने पर दीर्घ (ई) होता है। **'वेरपृक्तस्य'** (६।१।६७) से 'वि' का लोप हो जाता है। ऐसे ही–**शुची भवति, शुची स्यात्,** इत्यादि।*

रीङ्-आदेशः–

(७) रीङ् ऋतः।२७।

प०वि०–रीङ् १।१ ऋतः ६।१।

अनु०–अङ्गस्य, यि, अकृत्सार्वधातुकयोः, च्वौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः–ऋतोऽङ्गस्य अकृत्सार्वधातुके यि, च्वौ च दीर्घः।

अर्थः–ऋकारान्तस्याऽङ्गस्य कृद्वर्जिते सार्वधातुकवर्जिते च यकारादौ च्वौ च प्रत्यये परतो रीङादेशो भवति।

उदा०–मात्रीयति। मात्रीयते। पित्रीयति। पित्रीयते। चेक्रीयते। मात्रीभूतः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(ऋतः) ऋकारान्त (अङ्गस्य) अङ्ग को (अकृत्सार्वधातुकयोः) कृत् और सार्वधातुक-संज्ञक प्रत्यय से भिन्न (यि) यकारादि और (च्वौ) च्वि प्रत्यय परे होने पर (रीङ्) रीङ् आदेश होता है।*

*उदा०-**मात्रीयति।** वह अपनी माता की इच्छा करता है। **मात्रीयते।** वह माता के समान आचरण करती है। **पित्रीयति।** वह अपने पिता की इच्छा करता है। **पित्रीयते।** वह पिता के समान आचरण करता है। **चेक्रीयते।** वह पुनः-पुनः/अधिक बनाता है। **मात्रीभूतः।** जो माता नहीं है वह माता बना हुआ पुरुष।*

*सिद्धि-(१) **मात्रीयति।** यहां ऋकारान्त 'मातृ' शब्द से '**सुप आत्मनः क्यच्**' (३।१।८) से आत्म-इच्छा अर्थ में 'क्यच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'मातृ' शब्द को यकारादि 'क्यच्' प्रत्यय परे होने पर 'रीङ्' आदेश होता है। मात् रीङ्+य+ति। मात्रीयति। ऐसे ही 'पितृ' शब्द से-**पित्रीयति।***

*(२) **मात्रीयते।** यहां ऋकारान्त 'मातृ' शब्द से '**कर्तुः क्यङ् सलोपश्च**' (३।१।११) से आचार-अर्थ में 'क्यङ्' प्रत्यय है। प्रत्यय के ङित् होने से '**अनुदात्तङित आत्मनेपदम्**' (१।३।१२) से आत्मनेपद होता है। सूत्रकार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'पितृ' शब्द से-**पित्रीयते।***

*(३) **चेक्रीयते।** यहां '**डुकृञ् करणे**' (तना०उ०) धातु से '**धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्**' (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से ऋकारान्त 'कृ' धातु को यकारादि 'यङ्' प्रत्यय परे होने पर 'रीङ्' आदेश होता है। पश्चात् '**सन्यङोः**' (६।१।९) से 'क्री' धातु को द्वित्व होता है। '**गुणो यङ्लुकोः**' (७।४।८२) से अभ्यास को गुण (ए) होता है।*

*(४) **मात्रीभूतः।** यहां ऋकारान्त 'मातृ' शब्द से '**अभूततद्भावे कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः**' (५।४।५०) से 'च्वि' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

रिङ्-आदेशः-

(८) रिङ् शयग्लिङ्क्षु।२८।

प०वि०-रिङ् १।१ श-यक्-लिङ्क्षु ७।३।

स०-शश्च यक् च लिङ् च ते शयग्लिङः, तेषु-शयग्लिङ्क्षु। **'ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम्'** (८।३।३२) इति ङमुट् (ङ्) आगमः। **'खरि च'** (८।४।५४) इति ङकारस्य चर्त्वं ककारः।

अनु०-अङ्गस्य, ऋतः, यि, असार्वधातुके इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ऋतोऽङ्गस्य शे यकि यि असार्वधातुके लिङि च रिङ्।

अर्थः-ऋकारान्तस्याऽङ्गस्य शे, यकि, यकारादावसार्वधातुके लिङि च प्रत्यये परतो रिङादेशो भवति।

उदा०-**(शः)** आद्रियते। आध्रियते। **(यक्)** क्रियते। ह्रियते। **(लिङ्)** क्रियात्। ह्रियात्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(ऋतः) ऋकारान्त (अङ्गस्य) अङ्ग को (शे) श-प्रत्यय (यकि) यक् और (यि) यकारादि (असार्वधातुके) सार्वधातुक से (लिङि) लिङ् प्रत्यय परे होने पर (रिङ्) रिङ् आदेश होता है।*

*उदा०-(श) **आद्रियते।** वह आदर करता है। **आध्रियते।** वह अवस्थित रहता है। (यक्) **क्रियते।** उसके द्वारा किया जाता है। **ह्रियते।** उसके द्वारा हरण किया जाता है। (लिङ्) **क्रियात्।** वह करे (आशीर्वाद)। **ह्रियात्।** वह हरण करे (आशीर्वाद)।*

*सिद्धि-(१) **आद्रियते।** यहां आङ्-उपसर्गपूर्वक 'दृङ् आदरे' (तु०आ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। 'तुदादिभ्यः शः' (३।१।७७) से 'श' विकरण-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से ऋकारान्त 'दृ' धातु को 'श' प्रत्यय परे होने पर 'रिङ्' आदेश होता है। अ+द् रि+अ+ते। इस स्थिति में 'अचि श्नुधातुभ्रुवां०' (६।४।७७) से इयङ् आदेश होता है। ऐसे ही 'धृङ् अवस्थाने' (तु०आ०) धातु से-**आध्रियते।***

*(२) **क्रियते।** यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से कर्म-अर्थ में 'लट्' प्रत्यय है। 'सार्वधातुके यक्' (३।१।६७) से 'यक्' विकरण-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से ऋकारान्त 'कृ' धातु को 'यक्' प्रत्यय परे होने पर रिङ् आदेश होता है। क्रिङ्+य+ते। क्रियते। ऐसे ही 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से-**ह्रियते।***

*(३) **क्रियात्।** यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से 'आशिषि लिङ्लोटौ' (३।३।१७३) से आशीर्वाद अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय है। 'लिङाशिषि' (३।४।११६) से आशीर्लिङ् आर्धधातुक होता है। इस सूत्र से ऋकारान्त 'कृ' धातु से आर्धधातुक लिङ् (यासुट्) प्रत्यय परे होने पर 'रिङ्' आदेश होता है।*

गुणादेशः-

(६) गुणोऽर्तिसंयोगाद्योः।२६।

प०वि०-गुणः १।१ अर्तिसंयोगाद्योः ६।२।

स०-संयोग आदिर्यस्य स संयोगादिः, अर्तिश्च संयोगादिश्च तौ अर्तिसंयोगादी, तयोः-अर्तिसंयोगाद्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, ऋतः, यि, असार्वधातुके, लिङि, यकि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अर्तिसंयोगाद्योरङ्गयोर्ऋतो यकि यि असार्वधातुके लिङि च गुणः।

अर्थः-अर्तेः संयोगादेश्च ऋकारान्तस्याऽङ्गस्य यकि यकारादाव सार्वधातुके लिङि च प्रत्यये परतो गुणो भवति।

उदा०-**(यक्) ऋ**-अर्यते। **संयोगादि-ऋतः**-स्मर्यते। **(लिङ्) ऋ**-अर्यात्। **संयोगादि-ऋतः**-स्मर्यात्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अर्तिसंयोगाद्योः, ऋतः) ऋ और संयोगादि (अङ्गयो) अङ्गों को (यकि) यक् प्रत्यय और (यि) यकारादि (असार्वधातुके) सार्वधातुक से भिन्न (लिङि) लिङ् प्रत्यय परे होने पर (गुणः) गुण होता है।*

*उदा०-**(यक्) ऋ-अर्यते।** उसके द्वारा प्राप्त किया जाता है। **संयोगादि-स्मर्यते।** उसके द्वारा स्मरण किया जाता है। **(लिङ्) ऋ-अर्यात्।** वह प्राप्त करे (आशीर्वाद)। **संयोगादि ऋकारान्त-स्मर्यात्।** वह स्मरण करे (आशीर्वाद)।*

*सिद्धि-(१) **अर्यते।** यहां 'ऋ गतिप्रापणयोः' (भ्वा०प) धातु से कर्म-अर्थ में 'लट्' प्रत्यय है। **'सार्वधातुके यक्'** (३।१।६७) से 'यक्' विकरण-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से 'ऋ' धातु को 'यक्' प्रत्यय परे होने पर गुण (अर्) होता है। **'क्ङिति च'** (१।१।५) से गुण-प्रतिषेध प्राप्त था। ऐसे ही **'स्मृ चिन्तायाम्'** (भ्वा०प०) इस संयोगादि धातु से-**स्मर्यते।***

*(२) **अर्यात्।** यहां पूर्वोक्त 'ऋ' धातु से **'आशिषि लिङ्लोटौ'** (३।३।१७३) से आशीर्वाद अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय है। **'लिङाशिषि'** (३।४।११६) से आशीर्लिङ् आर्धधातुक है। इस सूत्र से 'ऋ' धातु को यकारादि, असार्वधातुक लिङ् (यासुट्) प्रत्यय परे होने पर गुण होता है। ऐसे ही **'स्मृ चिन्तायाम्'** (भ्वा०प०) इस संयोगादि धातु से-**स्मर्यात्।***

गुणादेशः-

(१०) यङि च।३०।

प०वि०-यङि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, ऋतः, गुणः, अर्तिसंयोगाद्योरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अर्तिसंयोगाद्योर्ऋतो यङि गुणः।

अर्थः-अर्तेः संयोगादेर्ऋकारान्तस्याङ्गस्य च यङि प्रत्यये परतश्च गुणो भवति।

उदा०-(ऋ) अरार्यते। संयोगादेर्ऋतः-**(स्मृ)** सास्मर्यते। **(ध्वृ)** दाध्वर्यते। **(स्मृ)** सास्मर्यते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अर्तिसंयोगाद्योः) अर्ति=ऋ और संयोगादि (ऋतः) ऋकारान्त (अङ्गस्य) अङ्ग को (यङि) यङ् प्रत्यय परे होने पर (च) भी (गुणः) गुण होता है।*

*उदा०-(ऋ) **अरार्यते।** वह पुनः-पुनः/अधिक प्राप्त करता है। **संयोगादि ऋकारान्त-(स्मृ) सास्मर्यते।** वह पुनः-पुनः/अधिक शब्द करता है। (ध्वृ) **दाध्वर्यते।** वह पुनः-पुनः/अधिक कुटिलता करता है। (स्मृ) **सास्मर्यते।** वह पुनः-पुनः/अधिक स्मरण करता है।*

***सिद्धि-अरार्यते।** ऋ+यङ्। ऋ+य। अर्+य। अ+र्य-र्य। अ+र-अ-र्य। अ+र् आ-र् य। अरार्य+लट्। अरार्यते।*

*यहां 'ऋ गतिप्रापणयोः' (भ्वा०प०) से '**धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्**' (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'ऋ' धातु को 'यङ्' प्रत्यय परे होने पर गुण (अर्) होता है। पश्चात् '**सन्यङोः**' (६।१।९) से द्विर्वचन की प्राप्ति में '**अजादेर्द्वितीयस्य**' (६।१।२) के नियम से द्वितीय एकाच् अवयव (र्य) को द्वित्व होता है। '**हलादि शेषः**' (७।४।६०) से अभ्यास का आदि हल् (र्अ) शेष रहता है। '**दीर्घोऽकितः**' (७।४।८३) से अभ्यास को दीर्घ (रा) होता है। ऐसे ही संयोगादि और ऋकारान्त '**स्वृ शब्दोपतापयोः**' (भ्वा०प०) धातु से-**सास्वर्यते।** '**ध्वृ हूर्च्छने**' (भ्वा०प०) धातु से-**दाध्वर्यते।** '**स्मृ चिन्तायाम्**' (भ्वा०प०) धातु से-**सास्मर्यते।** 'क्ङिति च' (१।१।५) से गुणप्रतिषेध प्राप्त था।*

ई-आदेशः-

(११) ई घ्राध्मोः।३१।

प०वि०-ई १।१ (सु-लुक्) घ्राध्मोः ६।२।

स०-घ्राश्च ध्माश्च तौ घ्राध्मौ, तयोः-घ्राध्मोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, यङीति चानुवर्तते।

अन्वयः-घ्राध्मोरङ्गयोर्यङि ईः।

अर्थः-घ्राध्मोरङ्गयोर्यङि प्रत्यये परत ईकारादेशो भवति।

उदा०-(घ्रा) जेघ्रीयते। **(ध्मा)** देध्मीयते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(घ्राध्मोः) घ्रा, ध्मा इन (अङ्गयोः) अङ्गों को (यङि) यङ् प्रत्यय परे होने पर (ईः) ईकार आदेश होता है।*

*उदा०-(घ्रा) **जेघ्रीयते।** वह पुनः-पुनः/अधिक सूंघता है। (ध्मा) **देध्मीयते।** वह पुनः-पुनः/अधिक फूंकता है। मुख से वंशी आदि वाद्य बजाता है।*

*सिद्धि-**जेघ्रीयते**। यहां 'घ्रा गन्धोपादाने' (जु०प०) धातु से '**धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्**' (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'घ्रा' को 'यङ्' प्रत्यय परे होने पर ईकारादेश (घ्री) होता है। पश्चात् '**सन्यङोः**' (६।१।९) से द्विर्वचन होता है। '**गुणो यङ्लुकोः**' (७।४।८२) से अभ्यास को गुण और '**अभ्यासे चर्च**' (८।४।५४) से अभ्यास-घकार को जश् जकार होता है। ऐसे ही '**ध्मा शब्दाग्निसंयोगयोः**' (भ्वा०प०) धातु से-**देध्मीयते**।*

ई-आदेशः–

(१२) अस्य च्वौ।३२।

प०वि०-अस्य ६।१ च्वौ ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, ईरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अस्याऽङ्गस्य च्वौ ईः।

अर्थः-अकारान्तस्याऽङ्गस्य च्वौ प्रत्यये परत ईकारादेशो भवति।

उदा०-शुक्ली भवति, शुक्ली स्यात्। खट्वी करोति, खट्वी स्यात्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अस्य) अकारान्त (अङ्गस्य) अङ्ग को (च्वौ) च्वि प्रत्यय परे होने पर (ईः) ईकारादेश होता है।*

*उदा०-**शुक्ली भवति**। जो शुक्ल (श्वेत) नहीं है वह शुक्ल होता है। **शुक्ली स्यात्**। जो शुक्ल नहीं है वह शुक्ल होवे। **खट्वी करोति**। जो खट्वा (खाट) नहीं है उसे खट्वा बनाता है। **खट्वी स्यात्**। जो खट्वा नहीं है वह खट्वा होवे।*

*सिद्धि-**शुक्ली भवति**। यहां 'शुक्ल' शब्द से '**अभूततद्भावे कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः**' (५।४।५०) से 'च्वि' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'शुक्ल' शब्द को 'च्वि' प्रत्यय परे होने पर ईकारादेश होता है। '**वेरपृक्तस्य**' (६।१।६७) से 'वि' का लोप हो जाता है। ऐसे ही अस्ति के योग में-**शुक्ली स्यात्**। 'खट्वा' शब्द से-**खट्वी करोति, खट्वी स्यात्**। यह '**च्वौ च**' (७।४।४६) से प्राप्त दीर्घादेश का अपवाद है।*

ई-आदेशः–

(१३) क्यचि च।३३।

प०वि०-क्यचि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, ईः, अस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-अस्याऽङ्गस्य क्यचि ईः।

अर्थः-अकारान्तस्याऽङ्गस्य क्यचि प्रत्यये परत ईकारादेशो भवति।

उदा०-पुत्रीयति। खट्वीयति। घटीयति। मालीयति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अस्य) अकारान्त (अङ्गस्य) अङ्ग को (क्यचि) क्यच् प्रत्यय परे होने पर (ईः) ईकारादेश होता है।*

*उदा०-**पुत्रीयति।** वह अपने पुत्र की इच्छा करता है। **खट्वीयति।** वह अपनी खट्वा (खाट) की इच्छा करता है। **घटीयति।** वह अपने घट (घड़ा) की इच्छा करता है। **मालीयति।** वह अपनी माला की इच्छा करता है।*

सिद्धि-पुत्रीयति। *यहां 'पुत्र' शब्द से **'सुप आत्मनः क्यच्'** (३।१।८) से आत्म-इच्छा अर्थ में 'क्यच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'पुत्र' शब्द को 'क्यच्' प्रत्यय परे होने पर ईकारादेश होता है। ऐसे ही **'खट्वीयति'** आदि। यह **'अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः'** (७।४।२५) से प्राप्त दीर्घादेश का अपवाद है।*

निपातनम्--

(१४) अशनायोदन्यधनाया बुभुक्षापिपासागर्धेषु।३४।

प०वि०-अशनाय-उदन्य-धनायाः १।३ बुभुक्षा-पिपासा-गर्धेषु ७।३।

स०-अशनायश्च उदन्यश्च धनायश्च ते-अशनायोदन्यधनायाः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। बुभुक्षा च पिपासा च गर्धश्च ते बुभुक्षापिपासागर्धाः, तेषु-बुभुक्षापिपासागर्धेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-क्यचि इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अशनायोदन्यधनायाः क्यचि बुभुक्षापिपासागर्धेषु निपातनम्।

अर्थः-अशनायोदन्यधनायाः शब्दाः क्यचि परतो यथासङ्ख्यं बुभुक्षापिपासागर्धेष्वर्थेषु निपात्यन्ते। **उदाहरणम्**-

(१) **अशनाय**-अशनायतीति भवति, बुभुक्षा चेत्। 'अशनीयति' इत्यन्यत्र भवति। अशनशब्दस्य क्यचि परत आत्वं निपात्यते।

(२) **उदन्य**-उदन्यतीति भवति, पिपासा चेत्। 'उदकीयति' इत्यन्यत्र भवति। उदकशब्दस्य क्यचि परत उदन्नादेशो निपात्यते।

(३) **धनाय**-धनायतीति भवति, गर्धश्चेत्। 'धनीयति' इत्यन्यत्र भवति। **धनशब्दस्य क्यचि परत आत्वं निपात्यते।**

आर्यभाषाः अर्थ-*(अशनायोदन्यधनायाः) अशनाय, उदन्य, धानाय ये शब्द (क्यचि) क्यच् प्रत्यय परे होने पर यथासंख्य (बुभुक्षापिपासासागर्धेषु) बुभुक्षा, पिपासा, गर्ध अर्थों में निपातित है। उदाहरण-*

(१) ***अशनाय-अशनायति।*** *उसे बुभुक्षा है। बुभुक्षा=भोक्तुमिच्छा। खाने की इच्छा। बुभुक्षा अर्थ से अन्यत्र-**अशनीयति।** वह अशन (भोजन) चाहता है। यहां 'अशन' शब्द को 'क्यच्' प्रत्यय परे होने पर आकरादेश निपातित है।*

(२) ***उदन्य-उदन्यति।*** *उसे पिपासा है। पातुमिच्छा=पिपासा। पीने की इच्छा। पिपासा से अन्यत्र-**उदकीयति।** वह उदक=जल चाहता है। 'उदक' शब्द को 'क्यच्' प्रत्यय परे होने पर उदन्-आदेश निपातित है।*

(३) ***धनाय-धनीयति।*** *वह गर्ध (लालच) करता है। गर्ध से अन्यत्र-**धनीयति।** वह धन चाहता है। 'धन' शब्द को 'क्यच्' प्रत्यय परे होने पर आकारादेश निपातित है।*

सिद्धि-*अशनायति आदि शब्दों में '**सुप आत्मनः क्यच्**' (३।१।८) से 'क्यच्' प्रत्यय है। निपातन-कार्य उपरिलिखित है।*

उक्तप्रतिषेधः-

(१५) न च्छन्दस्यपुत्रस्य।३५।

प०वि०-न अव्ययपदम्, छन्दसि ७।१ अपुत्रस्य ६।१।

स०-न पुत्र इति अपुत्रः, तस्य-अपुत्रस्य (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, अस्य, क्यचि, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि अपुत्रस्याऽस्याङ्गस्य क्यचि न।

अर्थः-छन्दसि विषये पुत्रवर्जितस्याऽकारान्तस्याऽङ्गस्य क्यचि परतो यदुक्तं तन्न भवति। किं चोक्तम् ? दीर्घत्वम्, ईत्वं च।

उदा०-मित्रयुः (मै०सं० २।६।१२)। स स्वेदयुः (मै०सं० ४।१२।२)। देवाञ्जिगाति सुम्नयुः (ऋ० ३।२७।१)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(छन्दसि) वेदविषय में (अपुत्रस्य) पुत्र शब्द को छोड़कर (अस्य) अकारान्त (अङ्गस्य) अङ्ग को (क्यचि) क्यच् प्रत्यय परे होने पर (न) जो कहा गया है, वह नहीं होता है। क्या कहा गया है ? दीर्घ और ईकारादेश।*

*उदा०-**मित्रयुः** (मै०सं० २।६।१२)। मित्रयुः=अपने मित्रों की इच्छा करनेवाला पुरुष। **स स्वेदयुः** (मै०सं० ४।१२।२)। स्वदेयुः=पुरुषार्थ की इच्छा करनेवाला पुरुष। **देवाञ्जिगाति सुम्नयुः** (ऋ० ३।२७।१)। सुम्नयुः=अपने सुम्न=मोक्षसुख की इच्छा करनेवाला पुरुष।*

*सिद्धि-**मित्रयुः।** यहां 'मित्र' शब्द से '**सुप आत्मनः क्यच्**' (३।१।८) से आत्म-इच्छा अर्थ में 'क्यच्' प्रत्यय है। पश्चात् 'मित्रय' धातु से '**क्याच्छन्दसि**' (३।२।१७०) से 'उ' प्रत्यय होता है। '**अतो लोपः**' (६।४।४८) से अकार का लोप होता है। यहां '**अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः**' (७।४।२५) से प्राप्त दीर्घत्व और '**क्यचि च**' (७।४।३३) से प्राप्त इकारादेश नहीं होता है। ऐसे ही 'स्वेद' शब्द से-**स्वेदयुः।** 'सुम्न' शब्द से-**सुम्नयुः।***

निपातनम्-

(१६) दुरस्युर्द्रविणस्युर्वृषण्यति रिषण्यति।३६।

प०वि०-दुरस्युः १।१ द्रविणस्युः १।१ वृषण्यति क्रियापदम्, रिषण्यति क्रियापदम्।

अनु०-क्यचि, छन्दसीति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि दुरस्युर्द्रविणस्युर्वृषण्यति रिषण्यति इति निपातनम्।

अर्थः-छन्दसि विषये दुरस्युः, द्रविणस्युः, वृषण्यति, रिषण्यति इत्येते शब्दाः क्यचि प्रत्यये परतो निपात्यन्ते। **उदाहरणम्-**

(१) **दुरस्युः-**अवबाढो दुरस्युः (का०सं० २।११) दुष्टीयतीति प्राप्ते।

(२) **द्रविणस्युः-**द्रविणस्युर्विपन्यया (ऋ० ६।१६।३४) द्रविणीयतीति प्राप्ते।

(३) **वृषण्यति-**वृषण्यति (ऋ० ९।५।६) वृषीयतीति प्राप्ते।

(४) **रिषण्यति-**रिषण्यति (ऋ० २।२३।१२) रिष्यतीति प्राप्ते।

__आर्यभाषाः__ __अर्थ-__(छन्दसि) वेदविषय में (दुरस्यु०) दुरस्यु, द्रविणस्यु, वृषण्यति, रिषण्यति ये शब्द (क्यचि) क्यच् प्रत्यय परे होने पर निपातित किये जाते हैं।

*उदा०-(**दुरस्युः**) **अवबाढो दुरस्युः** (का०सं० २।११) दुष्टीयति यह रूप प्राप्त था। दुरस्युः=दुष्ट की इच्छा करनेवाला। (**द्रविणस्युः**) **द्रविणस्युर्विपन्यया** (ऋ० ६।१६।३४) द्रविणीयति यह रूप प्राप्त था। द्रविणस्युः=द्रविण (धन) की इच्छा करनेवाला। (**वृषण्यति**) **वृषण्यति** (ऋ० ९।५।६) वृषीयति यह रूप प्राप्त था। गौ वृष=सांड को चाहती है। (**रिषण्यति**) **रिषण्यति** (ऋ० २।२३।१२) रिषण्यति यह रूप प्राप्त था। वह नाश चाहता है।*

*सिद्धि-(१) **दुरस्युः।** यहां 'दुष्ट' शब्द से '**सुप आत्मनः क्यच्**' (३।१।८) से 'क्यच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'दुष्ट' शब्द को 'दुरस्' आदेश निपातित है। '**क्याच्छन्दसि**' (३।२।१७०) से 'उ' प्रत्यय होता है।*

(२) द्रविणस्युः। यहां 'द्रविण' शब्द से पूर्ववत् 'क्यच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'द्रविण' शब्द को 'क्यच्' प्रत्यय परे होने पर 'द्रविणस्' आदेश निपातित है। पूर्ववत् 'उ' प्रत्यय होता है।

(३) वृषण्यति। यहां 'वृष' शब्द से पूर्ववत् 'क्यच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'वृष' शब्द को 'क्यच्' प्रत्यय परे होने पर 'वृषन्' आदेश निपातित है।

(४) रिषण्यति। यहां 'रिष्ट' शब्द से पूर्ववत् 'क्यच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'रिष्ट' शब्द को 'क्यच्' प्रत्यय परे होने पर 'रिषन्' आदेश निपातित है।

आत्-आदेशः–

(१७) अश्वाघस्यात्।३७।

प०वि०–अश्वाघस्य ६।१ आत् १।१।

स०–अश्वश्च अघश्च एतयोः समाहारः-अश्वाघम्, तस्य-अश्वाघस्य (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, क्यचि, छन्दसीति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि अश्वाघस्याऽङ्गस्य क्यचि आत्।

अर्थः–छन्दसि विषये अश्वाघयोरङ्गयोः क्यचि प्रत्यये परत आकारादेशो भवति।

उदा०–(**अश्वः**) अश्वायन्तो मघवन् (**ऋ०** ७।३२।२)। (**अघः**) मा त्वा वृका अघायवो विदन् (यजु० ४।३४)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अश्वाघस्य) अश्व, अघ इन (अङ्गस्य) अङ्गों को (क्यचि) क्यच् प्रत्यय परे होने पर (आत्) आकारादेश होता है।*

*उदा०-**(अश्व) अश्वायन्तो मघवन्** (ऋ० ७।३२।२)। **अश्वायन्तः।** अश्व की इच्छा करनेवाले। **(अघ) मा त्वा वृका अघायवो विदन्** (यजु० ४।३४)। **अघायवः।** अघायुः=पाप की इच्छा करनेवाला।*

*सिद्धि-**(१) अश्वायन्तः।** यहां 'अश्व' शब्द से **'सुप आत्मनः क्यच्'** (३।१।८) से इच्छा-अर्थ में 'क्यच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'अश्व' शब्द को आकारादेश होता है। पश्चात् 'अश्वाय' धातु से 'लक्षणहेत्वोः क्रियायाः' (३।२।१२६) से 'लट्' के स्थान में 'शतृ' आदेश है-**अश्वायन्, अश्वायन्तौ, अश्वायन्तः।***

*(२) आघायवः। यहां 'अघ' शब्द से पूर्ववत् 'क्यच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'अघ' शब्द को आकारादेश होता है। 'क्याच्छन्दसि' (३।२।१७०) से 'उ' प्रत्यय है। **अघायुः, अघायू, अघायवः।***

आत्-आदेशः–

(१८) देवसुम्नयोर्यजुषि काठके ।३८।

प०वि०–देव–सुम्नयोः ६ ।२ यजुषि ७ ।१ काठके ७ ।१ ।

स०–देवश्च सुम्नं च ते देवसुम्ने, तयोः-देवसुम्नयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) ।

अनु०–अङ्गस्य, क्यचि, आदिति चानुवर्तते ।

अन्वयः–यजुषि काठके देवसुम्नयोरङ्गयोः क्यचि आत् ।

अर्थः–यजुषि काठके विषये देवसुम्नयोरङ्गयोः क्यचि प्रत्यये परत आकारादेशो भवति ।

उदा०–**(देवः)** देवायते यजमानाय (काठ०सं० २ ।९) । **(सुम्नम्)** सुम्नायन्तो हवामहे (काठ०सं० ८ ।१७) ।

आर्यभाषाः अर्थ–*(यजुषि काठके) यजुर्वेद की काठकसंहिता में (देवसुम्नयोः) देव, सुम्न इन (अङ्गयोः) अङ्गों को (क्यचि) क्यच् प्रत्यय परे होने पर (आत्) आकारादेश होता है ।*

*उदा०–**(देव) देवायते यजमानाय** (काठ०सं० २ ।९) । देवायते=देव (विद्वान्) के इच्छुक के लिये । **(सुम्न) सुम्नायन्तो हवामहे** (काठ०सं० ८ ।१७) । सुम्नायन्तः=मोक्षसुख के इच्छुक हम लोग ।*

सिद्धि–देवायते । *यहां 'देव' शब्द से **'सुप आत्मनः क्यच्'** (३ ।१ ।८) से 'क्यच्' प्रत्यय है । इस सूत्र से 'देव' शब्द को आकारादेश होता है । तत्पश्चात् 'देवाय' धातु से 'लटः शतृशानचा०' (३ ।२ ।१२४) से 'लट्' के स्थान में 'शतृ-आदेश है । **देवायन्, देवायन्तौ, देवायन्तः ।** देवायते (४ ।१) । ऐसे ही 'सुम्न' शब्द से-**सुम्नायन्तः** (१ ।३) ।*

लोपादेशः–

(१९) कव्यध्वरपृतनस्यर्चि लोपः ।३९।

प०वि०–कवि–अध्वर–पृतनस्य ६ ।१ ऋचि ७ ।१ लोपः १ ।१ ।

स०–कविश्च अध्वरश्च पृतना च एतेषां समाहारः कव्यध्वरपृतनम्, तस्य-कव्यध्वरपृतनस्य (समाहारद्वन्द्वः) ।

अनु०–अङ्गस्य, क्यचीति चानुवर्तते ।

अन्वयः–ऋचि कव्यध्वरपृतनस्य क्यचि लोपः ।

अर्थः-ऋचि विषये कव्यध्वरपृतनानामऽङ्गानां क्यचि प्रत्यये परतो लोपो भवति।

उदा०-(कविः) स पूर्वया निविदा कव्यता (ऋ० १।९६।२)। **(अध्वरः)** शंसावाध्वर्यो प्रति मे गृणीहि (ऋ० ३।५३।३)। **(पृतना)** वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम् (ऋ० १।३३।१२)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(ऋचि) ऋग्वेद विषय में (कव्यध्वरपृतनानाम्) कवि, अध्वर, पृतना इन (अङ्गानाम्) अङ्गों का (क्यचि) क्यच् प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-**(कवि) स पूर्वया निविदा कव्यता** (ऋ० १।९६।२)। कवि की इच्छाकरनेवाले के द्वारा। **(अध्वर) शंसावाध्वर्यो प्रति मे गृणीहि** (ऋ० ३।५३।३)। अध्वर्यो ! हे हिंसारहित यज्ञ की इच्छा करनेवाले ! **(पृतना) वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम्** (ऋ० १।३३।१२)। पृतन्युम्=अपनी सेना के इच्छुक शत्रु को।*

*सिद्धि-(१) **कव्यता**। यहां 'कवि' शब्द से **'सुप आत्मनः क्यच्'** (३।१।८) से 'क्यच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'कवि' शब्द के अन्त्य इकार का लोप होता है। तत्पश्चात् 'कव्य' धातु से 'लटः शतृशानचा०' (३।२।१२४) से 'लट्' के स्थान में 'शतृ' आदेश है। **कव्यन्, कव्यन्तौ, कव्यन्तः, कव्यता** (३।१)।*

*(२) **अध्वर्युः**। यहां 'अध्वर' शब्द से पूर्ववत् 'क्यच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'अध्वर' शब्द के अन्त्य अकार का लोप होता है। तत्पश्चात् 'अध्वर्य' धातु से **'क्याच्छन्दसि'** (३।२।१७०) से 'उ' प्रत्यय है। **'अतो लोपः'** (६।४।४८) से अकार का लोप होता है। सम्बुद्धि में-हे **अध्वर्यो** !*

*(३) **पृतन्युम्**। यहां 'पृतना' शब्द से पूर्ववत् 'क्यच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'पृतना' शब्द के अन्त्य आकार का लोप होता है। तत्पश्चात् 'पृतन्य' धातु से **'क्याच्छन्दसि'** (३।२।१७०) से 'उ' प्रत्यय है। द्वितीया एकवचन में-**पृतन्युम्**।*

इत्-आदेशः-

(२०) द्यतिस्यतिमास्थामित्ति किति।४०।

प०वि०-द्यति-स्यति-मा-स्थाम् ६।३ इत् १।१ ति ७।१ किति ७।१।

स०-द्यतिश्च स्यतिश्च माश्च स्थाश्च ते द्यतिस्यतिमास्थाः, तेषाम्-द्यतिस्यतिमास्थाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। क् इद् यस्य स कित्, तस्मिन्-किति (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-द्यतिस्यतिमास्थामऽङ्गानां ति किति इत्।

अर्थः-द्यतिस्यतिमास्थामऽङ्गानां तकारादौ किति प्रत्यये परत इकारादेशो भवति।

उदा०-(द्यतिः) निर्दितः, निर्दितवान्। **(स्यतिः)** अवसितः, अवसितवान्। **(मा)** मितः, मितवान्। **(स्था)** स्थितः, स्थितवान्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(द्यतिस्यतिमास्थाम्) द्यति=दो अवखण्डने स्यति=षो अन्तकर्मणि, मा, स्था इन (अङ्गानाम्) अङ्गों को (ति) तकारादि (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (इत्) इकारादेश होता है।*

*उदा०-(द्यति) **निर्दितः, निर्दितवान्।** उसने अवखण्डित किया, कतरा। **(स्यति) अवसितः, अवसितवान्।** उसने समाप्त किया। **(मा) मितः, मितवान्।** उसने मापा। **(स्था) स्थितः, स्थितवान्।** वह ठहरा।*

सिद्धि-(१) निर्दितः। *यहां निस्-उपसर्गपूर्वक **'दो अवखण्डने'** (दि०प०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से भूतकाल में निष्ठा-संज्ञक 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'दा' के आकार को तकारादि कित् 'क्त' प्रत्यय परे होने पर इकारादेश होता है। **'आदेच उपदेशेऽशिति'** (६।१।४५) से आकारादेश होता है। ऐसे ही 'क्तवतु' प्रत्यय में-**निर्दितवान्।***

(२) अवसितः। *अव-उपसर्गपूर्वक **'षो अन्तकर्मणि'** (दि०प०) धातु से पूर्ववत्।*

(३) मितः। ***'मा माने'*** *(अदा०प०)।* ***'माङ् माने शब्दे च'*** *(जु०आ०)।* ***'मेङ् प्रणिदाने'*** *(भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत्। **'गामादाग्रहणेष्वविशेषः'** इस परिभाषा से 'मा' रूपवाली सब धातुओं का ग्रहण किया जाता है।*

(४) स्थितः। ***'ष्ठा गतिनिवृत्तौ'*** *(भ्वा०प०)।*

इत्-आदेशविकल्पः--

(२१) शाच्छोरन्यतरस्याम्।४१।

प०वि०-शाच्छोः ६।२ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-शाश्च छाश्च तौ शाच्छौ, तयोः-शाच्छोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, इत्, ति, कितीति चानुवर्तते।

अन्वयः-शाच्छोरङ्गयोस्ति किति अन्यतरस्याम् इत्।

अर्थः-शाच्छोरङ्गयोस्तकारादौ किति प्रत्यये परतो विकल्पेन इकारादेशो भवति।

उदा०-(**शा**) निशितम्, निशातम्। निशितवान्, निशातवान्। (**छा**) अवच्छितम्, अवच्छातम्। अवच्छितवान्, अवच्छातवान्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(शाच्छोः) शा, छा, इन (अङ्गयोः) अङ्गों को (ति) तकारादि (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (इत्) इकारादेश होता है।*

*उदा०-(शा) **निशितः, निशातः। निशितवान्, निशातवान्।** उसने पतला किया, छीला। (छा) **अवच्छितः, अवच्छातः। अवच्छितवान्, अवच्छातवान्।** उसने छेदन किया, काटा।*

__सिद्धि-निशितः।__ यहां नि-उपसर्गपूर्वक '__शो तनूकरणे__' (दि०प०) धातु से '__निष्ठा__' (३।२।१०२) से भूतकाल में 'क्त' प्रत्यय है। '__आदेच उपदेशेऽशिति__' (६।१।४५) से ओकार को आकारादेश होता है-(शा)। इस सूत्र से 'शा' के आकार को तकारादि कित् 'क्त' प्रत्यय परे होने पर इकारादेश होता है। विकल्प-पक्ष में इकारादेश नहीं है-__निशातः।__ क्तवतु प्रत्यय में-__निशितवान्, निशातवान्।__ ऐसे ही अव-उपसर्गपूर्वक '__छो छेदने__' (दि०प०) धातु से-__अवच्छितः, अवच्छातः।__ क्तवतु प्रत्यय में-__अवच्छितवान्, अवच्छातवान्।__

हि-आदेशः—

(२२) दधातेर्हिः।४२।

प०वि०-दधातेः ६।१ हिः १।१।

अनु०-अङ्गस्य, ति, कितीति चानुवर्तते।

अन्वयः-दधातेरङ्गस्य ति किति हिः।

अर्थः-दधातेरङ्गस्य तकारादौ किति प्रत्यये परतो हिरादेशो भवति।

उदा०-हितः, हितवान्। हित्वा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दधातेः) दधाति=धा इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (ति) तकारादि (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (हिः) हि-आदेश होता है।*

उदा०-__हितः, हितवान्।__ उसने धारण-पोषण किया। __हित्वा।__ धारण-पोषण करके।

__सिद्धि-(१) हितः।__ यहां '__डुधाञ् धारणपोषणयोः__' (जु०उ०) धातु से '__निष्ठा__' (३।२।१०२) से भूतकाल में 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'धा' धातु को तकारादि कित् 'क्त' प्रत्यय परे होने पर 'हि' आदेश होता है। 'क्तवतु' प्रत्यय में-__हितवान्।__

__(२) हित्वा।__ यहां पूर्वोक्त 'धा' धातु से '__समानकर्तृकयोः पूर्वकाले__' (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।

हि-आदेशः–

(२३) जहातेश्च क्त्वि।४३।

प०वि०–जहातेः ६।१ च अव्ययपदम्, क्त्वि ७।१।

अनु०–अङ्गस्य, हिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–जहातेरङ्गस्य च क्त्वि हिः।

अर्थः–जहातेरङ्गस्य च क्त्वा-प्रत्यये परतो हिरादेशो भवति।

उदा०–हित्वा राज्यं वनं गतः। दयानन्दो गृहं हित्वा गतः। **स** हित्वा गच्छति।

आर्यभाषाः अर्थ-*(जहातेः) जहाति=ओहाक् त्यागे इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (क्त्वि) क्त्वा प्रत्यय परे होने पर (हिः) हि-आदेश होता है।*

*उदा०-**हित्वा राज्यं वनं गतः।** राम राज्य को छोड़कर वन में चला गया। **दयानन्दो गृहं हित्वा गतः।** दयानन्द घर-परिवार को छोड़कर चला गया। **स हित्वा गच्छति।** वह छोड़कर जाता है।*

*सिद्धि-**हित्वा।** यहां **'ओहाक् त्यागे'** (जु०प०) धातु से **'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले'** (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'हा' धातु को 'क्त्वा' प्रत्यय परे होने पर 'हि' आदेश होता है।*

हि-आदेशविकल्पः–

(२४) विभाषा छन्दसि।४४।

प०वि०–विभाषा १।१ छन्दसि ७।१।

अनु०–अङ्गस्य, हिः, जहातेः, क्त्वीति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि जहातेरङ्गस्य क्त्वि विभाषा हिः।

अर्थः–छन्दसि विषये जहातेरङ्गस्य क्त्वा-प्रत्यये परतो विकल्पेन हिरादेशो भवति।

उदा०–हित्वा शरीरं यातव्यम् (द्र०-तै०ब्रा० २।५।६।५)। हात्वा।

आर्यभाषाः अर्थ-*(छन्दसि) वेदविषय में (जहातेः) जहाति=ओहाक् **त्यागे** इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (क्त्वि) क्त्वा प्रत्यय परे होने पर (विभाषा) विकल्प से **(हिः)** हि-आदेश होता है।*

उदा०-हित्वा शरीरं यातव्यम् (द्र०-तै०ब्रा० २।५।६।५)। शरीर को छोड़कर जाना है। हात्वा। छोड़कर।

सिद्धि-'हित्वा' इस पद की सिद्धि पूर्ववत् (७।४।४३) है। विकल्प-पक्ष में हि-आदेश नहीं है-हात्वा। यहां 'घुमास्थागापाजहातिसां हलि' (६।४।६६) से छन्द में ईकारादेश नहीं होता है।

निपातनम्-

(२५) सुधितवसुधितनेमधितधिष्वधिषीय च।४५।

प०वि०-सुधित-वसुधित-नेमधित-धिष्व-धिषीय १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

स०-सुधितं च वसुधितं च नेमधितं च धिष्व च धिषीय च एतेषां समाहारः सुधितवसुधितनेमधितधिष्वधिषीयम् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, छन्दसीति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि सुधितवसुधितनेमधितधिष्वधिषीयमिति निपातनम्।

अर्थः-छन्दसि विषये सुधितवसुधितनेमधितधिष्वधिषीयपदानि निपात्यन्ते।

उदा०-**(सुधितम्)** गर्भं माता सुधितम् (ऋ० १०।२७।१६)। सुहितमिति प्राप्ते। **(वसुधितम्)** वसुधितमग्नौ जुहोति। वसुहितमिति प्राप्ते। **(नेमधितम्)** नेमधिता न पौंस्या (ऋ० १०।९३।१३)। नेमहिता इति प्राप्ते। **(धिष्व)** स्तोमं धिष्व महामह (ऋ० ८।३३।१५)। धत्स्वेति प्राप्ते। **(धिषीय)** धिषीय (तै०सं० १।६।४।४)। धासीयेति प्राप्ते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (सुधित०) सुधित, वसुधित, नेमधित, धिष्व, धिषीय ये पद निपातित हैं।*

*उदा०-(सुधित) **सुधितं माता गर्भम्** (ऋ० १०।२७।१६)। सुहितम् यह रूप प्राप्त था। **सुधितम्।** धारण-पोषण किया। (वसुधित) **वसुधितमग्नौ जुहोति।** वसुहितम् यह रूप प्राप्त था। **वसुधितम्।** वसुओं के द्वारा धारण-पोषण की हुई हवि। (नेमधित) **नेमधिता न पौंस्या** (ऋ० १०।९३।१३)। नेमहिता यह रूप प्राप्त था। **नेमहिता।** अर्धांश में धारण-पोषण की हुई। (धिष्व) **स्तोमं धिष्व महामह** (ऋ० ८।३३।१५)। धत्स्व यह रूप प्राप्त था। **धिष्व।** तू धारण-पोषण कर। (धिषीय) **धिषीय** (तै०सं० १।६।४।४)। धासीय यह रूप प्राप्त था। **धिषीय।** मैं धारण-पोषण करूं।*

*सिद्धि-(१) **सुधितम्**। यहां सु-उपसर्गपूर्वक 'डुधाञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०) धातु से 'निष्ठा' (३।२।१०२) से भूतकाल में 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'धा' धातु को 'क्त' प्रत्यय परे होने पर इकारादेश अथवा 'क्त' प्रत्यय को इडागम निपातत है। ऐसे ही वसु-उपपद 'धा' धातु से-**वसुधितम्**। नेम-उपपद 'धा' धातु से-**नेमधितम्**।*

*(२) **धिष्व**। यहां पूर्वोक्त 'धा' धातु से 'लोट् च' (३।३।१६२) से 'लोट्' प्रत्यय, लकार के स्थान में 'थास्' आदेश, 'सवाभ्यां वामौ' (३।४।९१) से एकार को वकारादेश है। इस सूत्र से 'धा' धातु को इकारादेश अथवा थास् (से) प्रत्यय को इडागम और 'श्लौ' (६।१।१०) से प्राप्त द्विर्वचन का अभाव निपातित है।*

*(३) **धिषीय**। यहां पूर्वोक्त 'धा' धातु से 'आशिषि लिङ्लोटौ' (३।३।१७३) से आशीर्वाद अर्थ में 'लिङ्' प्रत्यय, 'लिङः सीयुट्' (३।४।१०२) से 'सीयुट्' आगम और लकार के स्थान में इट् (उत्तमपुरुष एकवचन) आदेश है। इस सूत्र से 'धा' को इकारादेश अथवा सीयुट् प्रत्यय को इडागम निपातित है।*

दद्-आदेशः--

(२६) दो दद् घोः।४६।

प०वि०-दः ६।१ दद् १।१ घोः ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, ति, कितीति चानुवर्तते।

अन्वयः-घोर्दोऽङ्गस्य ति किति दद्।

अर्थः-घु-संज्ञकस्य दा-अङ्गस्य तकारादौ किति प्रत्यये परतो ददाऽऽदेशो भवति।

उदा०-दत्तः, दत्तवान्। दत्तिः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(घोः) घु-संज्ञक (दः) दा इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (ति) तकारादि (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (दद्) दद् आदेश होता है।*

उदा०-दत्तः, दत्तवान्। उसने दिया। दत्तिः। दान करना।

*सिद्धि-(१) दत्तः। यहां 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से 'निष्ठा' (३।२।१०२) से भूतकाल में 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'दा' धातु को तकारादि, कित् 'क्त' प्रत्यय परे होने पर 'दद्' आदेश होता है। 'खरि च' (८।४।५४) से दकार के स्थान में चर् तकारादेश है। क्तवतु प्रत्यय में-**दत्तवान्**।*

(२) दत्तिः। यहां पूर्वोक्त 'दा' धातु से 'स्त्रियां क्तिन्' (३।३।९४) से 'क्तिन्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।

त-आदेशः–

(२७) अच उपसर्गात्तः।४७।

प०वि०–अचः ५।१ उपसर्गात् ५।१ तः १।१।

अनु०–अङ्गस्य, ति, किति, दः, घोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–अच उपसर्गाद् घोर्दोऽङ्गस्य ति किति तः।

अर्थः–अजन्ताद् उपसर्गाद् उत्तरस्य घु-संज्ञकस्य दा-अङ्गस्य तकारादौ किति प्रत्यये परतस्तकारादेशो भवति।

उदा०–**(प्र)** प्रत्तम्। **(अव)** अवत्तम्। **(नि)** नीत्तम्। **(परि)** परीत्तम्।

आर्यभाषाः *अर्थ–(अचः) अजन्त (उपसर्गात्) उपसर्ग से परे (घोः) घु-संज्ञक (दः) दा इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (ति) तकारादि (किति) कित् प्रत्यय परे होने पर (तः) तकारादेश होता है।*

*उदा०–(प्र) **प्रत्तम्।** उसने प्रदान किया। (अव) **अवत्तम्।** उसने अवदान किया। (नि) **नीत्तम्।** उसने निदान किया। (परि) **परीत्तम्।** उसने परिदान किया।*

*सिद्धि–**प्रत्तम्।** प्र+दा+क्त। प्र+दत्+त। प्र+तृत्+त। प्र+त्०+त। प्रत्त+सु। प्रत्तम्।*

*यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'डुदाञ् दाने'** (जु०उ०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से भूतकाल में 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से अजन्त उपसर्ग 'प्र' से उत्तर 'दा' धातु के आकार को तकारादि कित् 'त' प्रत्यय परे होने पर तकारादेश होता है। 'त' में अकार मुखसुखार्थ (उच्चारण-सुविधा के लिये) है। **'खरि च'** (८।४।५४) से दकार को चर् तकारादेश और **'झरो झरि सवर्णे'** (८।४।६५) से मध्यवर्ती तकार का लोप होता है। ऐसे ही अव-उपसर्गपूर्वक से–**अवत्तम्।** नि-उपसर्गपूर्वक से–**नीत्तम्।** **'दस्ति'** (६।३।१२३) से इगन्त उपसर्ग 'नि' को दीर्घ होता है। परि–उपसर्गपूर्वक से **परीत्तम्।** पूर्ववत् दीर्घ है।*

त-आदेशः–

(२८) अपो भि।४८।

प०वि०–अपः ५।१ भि ७।१।

अनु०–अङ्गस्य, त इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अपोऽङ्गस्य भि तः।

अर्थः–अपोऽङ्गस्य भकारादौ प्रत्यये परतस्तकारादेशो भवति।

उदा०–अद्भिः। अद्भ्यः।

आर्यभाषाः अर्थ-(अपः) अप् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (भि) भकारादि प्रत्यय परे होने पर (तः) तकारादेश होता है।

उदा०-**अद्‌भिः**। जल के द्वारा। **अद्भ्यः**। जल के लिये/से।

सिद्धि-**अद्‌भिः**। अप्+भिस्। अत्+भिस्। अद्+भिस्। अद्‌भिः।

यहां 'अप्' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'भिस्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'अप्' के अन्त्य पकार को भकारादि 'भिस्' प्रत्यय परे होने पर तकारादेश होता है। '**झलां जशोऽन्ते**' (८।२।३९) से तकार को जश् दकारादेश होता है। ऐसे ही 'भ्यस्' प्रत्यय में-**अद्भ्यः**।

त-आदेशः—

(२६) सः स्यार्धधातुके।४६।

प०वि०-सः ६।१ सि ७।१ आर्धधातुके ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सोऽङ्गस्य सि आर्धधातुके तः।

अर्थः-सकारान्तस्याऽङ्गस्य सकारादावाऽऽर्धधातुके प्रत्यये परतस्तकारादेशो भवति।

उदा०-स वत्स्यति। अवत्स्यत्। विवत्सति। स जिघत्सति।

आर्यभाषाः अर्थ-(सः) सकारान्त (अङ्गस्य) अङ्ग को (सि) सकारादि (आर्धधातुके) आर्धधातुक-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (तः) तकारादेश होता है।

उदा०-**स वत्स्यति**। वह निवास करेगा। **अवत्स्यत्**। यदि वह निवास करता। **विवत्सति**। वह निवास करना चाहता है। **स जिघत्सति**। वह खाना चाहता है।

सिद्धि-(१) **वत्स्यति**। यहां '**वस निवासे**' (भ्वा०प०) धातु से '**लृट् शेषे च**' (३।३।१३) से 'लृट्' प्रत्यय है। '**स्यतासी लृलुटोः**' (३।१।३३) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय होता है। इस सूत्र से 'वस्' धातु के सकार को सकारादि आर्धधातुक 'स्य' प्रत्यय परे होने पर तकारादेश होता है। ऐसे ही लृङ् लकार में-**अवत्स्यत्**।

(२) **विवत्सति**। यहां पूर्वोक्त 'वस्' धातु से '**धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा**' (३।१।७) से इच्छा-अर्थ में 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'वस्' के सकार को सकारादि, आर्धधातुक 'सन्' प्रत्यय परे होने पर तकारादेश होता है। '**सन्यङोः**' (६।१।९) से धातु को द्वित्व और '**सन्यतः**' (७।४।७९) से अभ्यास को इकारादेश होता है।

(३) **जिघत्सति**। यहां '**अद भक्षणे**' (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। '**लुङ्सनोर्घस्लृ**' (२।४।३७) से 'घस्' के स्थान में 'घस्लृ' आदेश होता है। इस सूत्र से

'घस्' के सकार को सकारादि, आर्धधातुक 'सन्' प्रत्यय परे होने पर तकारादेश होता है। 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से अभ्यास-घकार को जकार और 'सन्यतः' (७।४।७९) से इकारादेश होता है।

सकारलोपः–

(३०) तासस्त्योर्लोपः।५०।

प०वि०–तास्-अस्त्योः ६।२ लोपः १।१।

स०–तास् च अस्तिश्च तौ तासस्ती, तयोः–तासस्त्योः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, सः, सीति चानुवर्तते।

अन्वयः–तासस्त्योरङ्गयोः सः सि लोपः।

अर्थः–तासेरस्तेश्चाङ्गस्य सकारस्य सकारादौ प्रत्यये परतो लोपो भवति।

उदा०–**(तास्)** त्वं कर्तासि, कर्तासे। **(अस्तिः)** त्वम् असि। त्वं सुखं व्यतिसे।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तासस्त्योः) तास् और अस्ति=अस् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (सः) सकार का (सि) सकारादि प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०–**(तास्) त्वं कर्तासि, कर्तासे।** तू कल करेगा। **(अस्ति) त्वम् असि।** तू है। **त्वं सुखं व्यतिसे।** तू परस्पर सुखपूर्वक रहता है।*

*सिद्धि-(१) **कर्तासि।** यहां **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से **'अनद्यतने लुट्'** (३।३।१५) से 'लुट्' प्रत्यय है। **'स्यतासी लृलुटोः'** (३।१।३३) से 'तासि' विकरण-प्रत्यय होता है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'सिप्' आदेश है। इस सूत्र से 'तास्' के सकार का सकारादि 'स्य' प्रत्यय परे होने पर लोप होता है। ऐसे ही थास् (से) प्रत्यय में-**कर्तासे।***

*(२) **असि।** यहां **'अस भुवि'** (अदा०प०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।३।७८) से लकार के स्थान में 'सिप्' आदेश है। इस सूत्र से 'अस्' धातु के सकार का सकारादि 'सिप्' प्रत्यय परे होने पर लोप होता है। अस्+सि। अ०+सि। असि। **'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।७२) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय का लुक् हो जाता है।*

*(२) **व्यतिसे।** यहां वि+अतिपूर्वक 'अस्' धातु से पूर्ववत् 'लट्' प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'थास्' आदेश और **'थासः से'***

*(३।४।८०) से 'थास्' को 'से' आदेश होता है। इस सूत्र से 'अस्' के सकार का, सकारादि 'से' प्रत्यय परे होने पर लोप होता है। **'श्नसोरल्लोपः'** (६।४।१११) से 'अस्' के अकार का भी लोप हो जाता है। **'कर्तरि कर्मव्यतिहारे'** (१।३।१४) से आत्मनेपद होता है। पूर्ववत् 'शप्' का लुक् होता है।*

सकारलोपः–

(३१) रि च।५१।

प०वि०–रि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–अङ्गस्य, सः, तासस्त्योः, लोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तासस्त्योरङ्गयोः सो रि च लोपः।

अर्थः–तासेरस्तेश्चाङ्गस्य सकारस्य रेफादौ प्रत्यये परतश्च लोपो भवति।

उदा०–**(तास्)** कर्तारौ, कर्तारः। अध्येतारौ, अध्येतारः। **(अस्ति) अस्**–ते सुखं व्यतिरे।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(तासस्त्योः) तास् और अस्ति=अस् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (सः) सकार का (रि) रेफादि प्रत्यय परे होने पर (च) भी (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०–**(तास्) कर्तारौ।** वे दोनों कल करेंगे। **कर्तारः।** वे सब कल करेंगे। **अध्येतारौ।** वे दोनों कल पढ़ेंगे। **अध्येतारः।** वे सब कल पढ़ेंगे। **(अस्ति) अस्–ते सुखं व्यतिरे।** वे परस्पर सुखपूर्वक रहे।*

*सिद्धि–(१) **कर्तारौ।** यहां **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से **'अनद्यतने लुट्'** (३।३।१५) से 'लुट्' प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'तस्' आदेश और **'लुटः प्रथमस्य डारौरसः'** (२।४।८५) से 'तस्' के स्थान में 'रौ' आदेश है। **'स्यतासी लृलुटोः'** (३।१।३३) से तासि विकरण प्रत्यय होता है। इस सूत्र से 'तास्' के सकार का रेफादि 'रौ' प्रत्यय परे होने पर लोप होता है। ऐसे ही झि (रस्) प्रत्यय में–**कर्तारः।** ऐसे ही नित्य अधि-पूर्वक **'इङ् अध्ययने'** (अदा०आ०) धातु से–**अध्येतारौ, अध्येतारः।***

*(२) **व्यतिरे।** व्यति+अस्+लिट्। व्यति+अस्+झ। व्यति+अस्+इरेच्। व्यति+अस्+रे। व्यति+अ०+रे। व्यति+०+रे। व्यतिरे।*

*यहां वि+अतिपूर्वक **'अस भुवि'** (अदा०प०) धातु से **'परोक्षे लिट्'** (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'झ' आदेश, **'लिटस्तझयोरेशिरेच्'** (३।४।८१) से 'झ' के स्थान में 'इरेच्' आदेश और **'इरयो रे'***

*(६।४।७६) से 'इरेच्' के स्थान में 'रे' आदेश होता है। इस सूत्र से 'अस्' के सकार का रेफादि 'रे' प्रत्यय परे होने पर लोप होता है। '**श्नसोरल्लोपः**' (६।४।१११) से 'अस्' के अकार का भी लोप हो जाता है।*

ह-आदेशः--

(३२) ह एति।५२।

प०वि०-हः १।१ एति ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, सः, तासस्त्योरिति चानुवर्तते। लोप इति च नानुवर्तनीयम्।

अन्वयः-तासस्त्योरङ्गयोः स एति हः।

अर्थः-तासेरस्तेश्चाङ्गस्य सकारस्य स्थाने एकारादौ प्रत्यये परतो हकारादेशो भवति।

उदा०-अहं कर्ताहे। अहं सुखं व्यतिहे।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तासस्त्योः) तास् और अस्ति=अस् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (सः) सकार के स्थान में (एति) एकारादि प्रत्यय परे होने पर (हः) हकारादेश होता है।*

*उदा०-**अहं कर्ताहे।** मैं कल करूंगा। **अहं सुखं व्यतिहे।** मैं परस्पर सुखपूर्वक रहा।*

सिद्धि-(१) कर्ताहे। *यहां '**डुकृञ् करणे**' (तना०उ०) धातु से पूर्ववत् 'लुट्' प्रत्यय है। '**तिप्तस्झि०**' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'इट्' (उत्तमपुरुष एकवचन) आदेश है। '**टित आत्मनेपदानां टेरे**' (३।४।७९) से 'इट्' के टि-भाग (इ) को एकारादेश होता है। '**स्यतासी लृलुटोः**' (३।१।३३) से 'तास्' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से 'तास्' के सकार को एकारादि 'ए' प्रत्यय परे होने पर हकारादेश होता है।*

*(२) **व्यतिहे।** यहां वि+अति उपसर्गपूर्वक '**अस भुवि**' (अदा०प०) धातु से '**परोक्षे लिट्**' (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। '**श्नसोरल्लोपः**' (६।४।१११) से 'अस्' के अकार का भी लोप हो जाता है।*

लोपादेशः--

(३३) यीवर्णयोर्दीधीवेव्योः।५३।

प०वि०-यि-इवर्णयोः ७।२ दीधी-वेव्योः ६।२।

स०-यिश्च इवर्णश्च तौ यीवर्णौ, तयोः-यीवर्णयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। यकारे इकार उच्चारणार्थः। दीधीश्च वेवीश्च तौ दीधीवेव्यौ, तयोः-दीधीवेव्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, लोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः-दीधीवेव्योरङ्गयोर्यीवर्णयोर्लोपः।

अर्थः-दीधीवेव्योरङ्गयोर्यकारादाविकारादौ च प्रत्यये परतो लोपो भवति।

उदा०-(दीधी) यकारादौ-आदीध्य गतः। आदीध्यते। **इकारादौ**-आदीधिता। आदीधीत। **(वेवी) यकारादौ**-आवेव्य गतः। आवेव्यते। **इकारादौ**-आवेविता। आवेवीत।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दीधीवेव्योः) दीधी, वेवी इन (अङ्गस्योः) अङ्गों का (यीवर्णयोः) यकारादि और इकारादि प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-(दीधी) यकारादि में-**आदीध्य गतः।** वह प्रसिद्ध होकर गया। **आदीध्यते।** उसके द्वारा प्रसिद्ध हुआ जाता है। **इकारादि में-आदीधिता।** प्रसिद्ध होनेवाला। **आदीधीत।** वह प्रसिद्ध होवे। **(वेवी) यकारादि में-आवेव्य गतः।** वह आकर गया। **आवेव्यते।** उसके द्वारा आया जाता है। **इकारादि में-आवेविता।** आनेवाला। **आवेवीत।** वह आये।*

*सिद्धि-(१) **आदीध्य।** यहां आङ्-उपसर्गपूर्वक **'दीधीङ् दीप्तिदेवनयोः'** (अदा०आ०) धातु से **'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले'** (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय और इसके स्थान में **'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्'** (७।१।३७) से 'ल्यप्' आदेश है। इस सूत्र से 'दीधी' के ईकार का यकारादि ल्यप् (य) प्रत्यय परे होने पर लोप होता है। ऐसे ही **'वेवीङ् वेतिना तुल्ये'** (अदा०आ०) धातु से-**आवेव्य।***

*(२) **आदीध्यते।** यहां आङ्-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'दीधी' धातु से भाव-अर्थ में 'लट्' प्रत्यय है। **'सार्वधातुके यक्'** (३।१।६७) से 'यक्' विकरण-प्रत्यय होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही पूर्वोक्त 'वेवी' धातु से-**आवेव्यते।***

*(३) **आदीधिता।** यहां आङ्-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'दीधी धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। **'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'** (७।२।३५) से 'तृच्' को इडागम होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही पूर्वोक्त 'वेवी' धातु से-**आवेविता।***

*(४) **आदीधीत।** यहां आङ्-उपसर्गपूर्वक 'दीधी' धातु से **'विधिनिमन्त्रणा०'** (३।३।१६१) से 'लिङ्' प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'त' आदेश है। **'लिङः सीयुट्'** (३।४।१०२) से 'सीयुट्' आगम और **'सुट् तिथोः'** (३।४।१०७) से 'त' को सुट् आगम होता है। **'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य'** (७।२।७९) से सकारों का लोप होता है। इस सूत्र से 'दीधी' के ईकार का इकारादि 'ईय्' (सीयुट्) प्रत्यय परे होने पर लोप होता है। ऐसे ही 'वेवी' धातु से-**आवेवीत।***

इस्-आदेशः-

(३४) सनि मीमाघुरभलभशकपतपदामच इस्।५४।

प०वि०- सनि ७।१ मी-मा-घु-रभ-लभ-शक-पत-पदाम् ६।३ अचः ६।१ इस् १।१।

स०-मीश्च माश्च घुश्च रभश्च लभश्च शकश्च पतश्च पद् च ते मीमाघुरभलभशकपतपदः, तेषाम्-मीमाघुरभलभशकपतपदाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, सीति चानुवर्तते।

अन्वयः-मीमाघुरभलभशकपतपदामऽङ्गानामऽचः सि सनि इस्।

अन्वयः-मीमाघुरभलभशकपतपदामऽङ्गानामऽचः स्थाने सकारादौ सनि प्रत्यये परत इसादेशो भवति। **उदाहरणम्-**

धातुः	शब्दरूपम्	भाषार्थ
(१) मी		
(मीञ्)	मित्सति	वह हिंसा करना चाहता है।
(डुमिञ्)	प्रमित्सति	वह फैंकना चाहता है।
(२) मा		
(मा)	मित्सति	वह मांपना चाहता है।
(माङ्)	मित्सते	वह मांपना/शब्द करना चाहता है।
(मेङ्)	अपमित्सते	वह प्रदान करना चाहता है।
(३) घु		
(दा)	दित्सति	वह दान करना चाहता है।
(धा)	धित्सति	वह धारण-पोषण करना चाहता है।
(४) रभ	आरिप्सते	वह आरम्भ करना चाहता है।
(५) लभ	आलिप्सते	वह प्राप्त करना चाहता है।
(६) शक	शिक्षति	वह शक्त (समर्थ) होना चाहता है।
(७) पत	पित्सति	वह गिरना चाहता है।
(८) पद	प्रपित्सते	वह चलना चाहता है।

आर्यभाषाः अर्थ-(मीमा०) मी, मा, घु=घु-संज्ञक, रभ, लभ, शक, तप, पद इन (अङ्गानाम्) अङ्गों के (अचः) अच् के स्थान में (सि) सकारादि (सनि) सन् प्रत्यय होने पर (इस्) इस् आदेश होता है।

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-(१) मित्सति। मी+सन्। म् इस्+स। मित्+स। मित्-मित्+स। ०-मित्+स। मित्स+लट्। मित्सति।

यहां **'मीञ् हिंसायाम्'** (क्र्या०उ०) धातु से **'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'** (३।१।८) से इच्छा-अर्थ में 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'मी' के अच् ईकार के स्थान में सकारादि 'सन्' प्रत्यय परे होने पर 'इस्' आदेश होता है। सकारादि 'सन्' का तात्पर्य इडादि 'सन्' न हो। **'सन्यङोः'** (६।१।९) से द्वित्व और **'अत्र लोपोऽभ्यासस्य'** (७।४।५८) से अभ्यास का लोप होता है। **'सः स्यार्धधातुके'** (७।४।४९) से 'इस्' के सकार को तकारादेश होता है। ऐसे ही प्र-उपसर्गपूर्वक **'डुमिञ् प्रक्षेपणे'** (स्वा०उ०) धातु से-**प्रमित्सति।** **'मा माने'** (अदा०प०) धातु से-**मित्सति।** **'माङ् माने'** (दि०आ०) धातु से-**मित्सते।** **'मेङ् प्रणिदाने'** (भ्वा०आ०) धातु से-**अपमित्सते।** **'गामादाग्रहणेष्वविशेषः'** इस परिभाषा से 'मा' रूप तीनों धातुओं का ग्रहण किया जाता है। **'डुदाञ् दाने'** (जु०उ०) धातु से-**दित्सति।** **'डुधाञ् धारणपोषणयोः'** (जु०उ०) धातु से-**धित्सति।**

(२) आरिप्सते। आङ्+रभ्+सन्। आ+र् इस् भ्+स। आ+र् इ०म्+स। आ+रिभ्-रिभ्+सन्। आ+०-रिभ्+सन्। आ+रिप्+स। आरिप्स+लट्। आरिप्सते।

यहां आङ्- उपसर्गपूर्वक **'रभ राभस्ये'** (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'रभ्' के अच् (अ) के स्थान में इस् आदेश होता है। **'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च'** (८।२।२९) से 'इस्' के सकार का लोप होता है। **'खरि च'** (८।४।५५) से 'रभ्' के भकार को चर् पकार होता है। **'अत्र लोपोऽभ्यासस्य'** (७।४।५८) से अभ्यास का लोप होता है। ऐसे ही **'डुलभष् प्राप्तौ'** (भ्वा०आ०) धातु से-**अलिप्सते।** **'शक्लृ शक्तौ'** (स्वा०प०) धातु से-**शक्षति।** **'पत्लृ गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से-**पित्सति।** प्र-उपसर्गपूर्वक **'पद गतौ'** (दि०आ०) धातु से-**प्रपित्सति।**

ईत्-आदेशः-

(३५) आप्ज्ञप्यृधामीत्।५५।

प०वि०-आप्-ज्ञपि-ऋधाम् ६।३ ईत् १।१।

स०-आप् च ज्ञपिश्च ऋध् च ते-आप्ज्ञप्यृधः, तेषाम्-आप्ज्ञप्यृधाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, अचः, सि, सनीति चानुवर्तते।

अन्वयः-आप्ज्ञप्यृधामऽङ्गानामऽचः सि सनि ईत्।

अर्थः-आप्ज्ञप्यृधामऽङ्गानामऽचः स्थाने सकारादौ सनि प्रत्यये परत ईकारादेशो भवति।

उदा०-**(आप्)** स ईप्सति। **(ज्ञपि)** स ज्ञीप्सति। **(ऋध्)** स ईर्त्सति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(आप्ज्ञप्यृधाम्) आप्, ज्ञपि, ऋध् इन (अङ्गानाम्) अङ्गों के (अचः) अच् के स्थान में (सि) सकारादि (सनि) सन् प्रत्यय परे होने पर (ईत्) ईकारादेश होता है।*

*उदा०-(आप्) **स ईप्सति।** वह प्राप्त करना चाहता है। (ज्ञपि) **स ज्ञीप्सति।** वह मारना चाहता है। (ऋध्) **स ईर्त्सति।** वह बढ़ना चाहता है।*

*सिद्धि-(१) **ईप्सति।** आप्+सन्। आप्+स। आ+प्स-प्स। आ+०+प्स। ई+प्स। ईप्स+लट्। ईप्सति।*

*यहां 'आप्लृ व्याप्तौ' (स्वा०प०) धातु से **'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'** (३।१।८) से इच्छा अर्थ में 'सन्' प्रत्यय है। **'अजादेर्द्वितीयस्य'** (६।१।२) के नियम से द्वितीय एकाच् अवयव (प्स-प्स) को द्वित्व होता है। **'अत्र लोपोऽभ्यासस्य'** (७।४।५८) से अभ्यास (प्स) का लोप होता है। इस सूत्र से 'आप्' के अच् (आ) को ईकारादेश होता है।*

*(२) **ज्ञीप्सति।** ज्ञा+णिच्। ज्ञा+पुक्+इ। ज्ञ+प्+इ। ज्ञप्+इ+सन्। ज्ञप्+०+सन्। ज्ञप्स्-ज्ञप्स। ०+ज्ञप्स। ज्ञीप्स+लट्। ज्ञीप्सति।*

*यहां प्रथम **'ज्ञा अवबोधने'** (क्र्या०उ०) धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से हेतुमान् अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है। **'अर्तिह्रीव्ली०'** (७।३।३६) से 'पुक्' आगम होता है। **'मारणतोषणनिशामनेषु ज्ञा'** (भ्वादि-गणसूत्र) से इसकी मित् संज्ञा होकर **'मितां ह्रस्वः'** (६।४।९२) से ह्रस्व होता है (ज्ञपि)। तत्पश्चात् 'ज्ञपि' धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय, **'णेरनिटि'** (६।४।५१) से णिच् का लोप होता है। **'सन्यङोः'** (६।१।९) से 'ज्ञप्स्' को द्वित्व और **'अत्र लोपोऽभ्यासस्य'** (७।४।५८) से अभ्यास (ज्ञप्स्) का लोप होता है। इस सूत्र से 'ज्ञप्स्' के अच् को इकारादेश होता है।*

*(३) **ईर्त्सति।** यहां **'ऋधु वृद्धौ'** (दि०प०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'ऋध्' के अच् (ऋ) को ईकारादेश, **'उरण् रपरः'** (१।१।५) से रपरत्व और **'खरि च'** (८।४।५५) से धकार को चर् तकार होता है। शेष कार्य 'ईप्सति' के समान है।*

इत्-आदेशश्च–

(३६) दम्भ इच्च।५६।

प०वि०–दम्भः ६।१ इत् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–अङ्गस्य, अचः, सि, सनि, ईदिति चानुवर्तते।

अन्वयः–दम्भोऽङ्गस्याऽचः सि सनि इत्, ईच्च।

अर्थः–दम्भोऽङ्गस्याऽचः स्थाने सकारादौ सनि प्रत्यये परत इकारादेश ईकारादेशश्च भवति।

उदा०–स धिप्सति, धीप्सति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दम्भः) दम्भ् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (अचः) अच् के स्थान में (सि) सकारादि (सनि) सन् प्रत्यय परे होने पर (इत्) इकारादेश (च) और (ईत्) ईकारादेश होता है।*

*उदा०–**स धिप्सति, धीप्सति।** वह ठगना चाहता है।*

सिद्धि-धिप्सति। *दम्भ्+सन्। दभ्+स। दभ्स्-दभ्स। ०+दभ्स। दिभ्स। धिभ्स। धिप्स। धिप्स+लट्। धिप्सति।*

*यहां **'दम्भु दम्भने'** (स्वा०प०) धातु से **'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'** (३।१।८) से इच्छा-अर्थ में 'सन्' प्रत्यय है। **'हलन्ताच्च'** (१।२।१०) से 'सन्' को किद्वत् होकर **'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति'** (६।४।२४) से अनुनासिक (न्) का लोप होता है। **'सन्यङोः'** (६।१।९) से धातु को द्वित्व होकर **'अत्र लोपोऽभ्यासस्य'** (७।४।५८) से अभ्यास का लोप होता है। इस सूत्र से 'दम्भ्' के अच् (अ) को इकारादेश होता है। **'एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः'** (८।२।३७) से 'दम्भ्' के बश् दकार को भष् धकार और **'खरि च'** (८।४।४४) से 'दम्भ्' के भकार को चर् पकारादेश होता है। विकल्प-पक्ष में ईकारादेश होता है-**धीप्सति।***

गुणविकल्पः–

(३७) मुचोऽकर्मकस्य गुणो वा।५७।

प०वि०–मुचः ६।१ अकर्मकस्य ६।१ गुणः १।१ वा अव्ययपदम्।

स०–न विद्यते कर्म यस्य सः-अकर्मकः, तस्य-अकर्मकस्य (बहुव्रीहिः)।

अनु०–अङ्गस्य, सि, सनीति चानुवर्तते।

अन्वयः–अकर्मकस्य मुचोऽङ्गस्य सि सनि वा गुणः।

अर्थः-अकर्मकस्य मुचोऽङ्गस्य सकारादौ सनि प्रत्यये परतो विकल्पेन गुणो भवति।

उदा०-मोक्षते वत्सः स्वयमेव। मुमुक्षते वत्सः स्वयमेव।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अकर्मकस्य) अकर्मक (मुचः) मुच् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (सि) सकारादि (सनि) सन् प्रत्यय परे होने पर (वा) विकल्प से (गुणः) गुण होता है।*

*उदा०-**मोक्षते वत्सः स्वयमेव, मुमुक्षते वत्सः स्वयमेव।** बछड़ा स्वयं ही बन्धन (खूंटा) से छूटना चाहता है।*

सिद्धि-मोक्षते। *यहां 'मुच्लृ मोचने' (तु०प०) धातु से '**धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा**' (३।१।७) से 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इस अकर्मक 'मुच्' धातु को सकारादि 'सन्' प्रत्यय परे होने पर गुण (ओ) होता है। गुणपक्ष में '**अत्र लोपोऽभ्यासस्य**' (७।४।५८) से अभ्यास का लोप हो जाता है। '**हलन्ताच्च**' (१।२।१०) से झलादि 'सन्' प्रत्यय के ङिद्वत् होने से '**क्ङिति च**' (१।१।५) से गुण प्रतिषेध प्राप्त था। '**चोः कुः**' (८।२।३०) से 'मुच्' के चकार को कवर्ग ककार और '**आदेशप्रत्यययोः**' (८।३।५९) से षत्व होता है। विकल्प-पक्ष में-**मुमुक्षते।** यहां अभ्यास का लोप नहीं है। गुण-पक्ष में ही अभ्यास का लोप होता है।*

***मोक्षते वत्सः स्वयमेव** और **मुमुक्षते वत्सः स्वयमेव,** ये कर्मकर्तृवाच्य के प्रयोग हैं क्योंकि कर्मकर्तृवाच्य में ही 'मुच्' धातु अकर्मक होती है। '**कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः**' (३।१।८७) से कर्मवद्भाव होकर '**भावकर्मणोः**' (१।३।१३) से कर्मवाच्य में आत्मनेपद होता है। '**चिण् भावकर्मणोः**' (३।१।६७) से कर्मवाच्य में 'यक्' विकरण-प्रत्यय प्राप्त है अतः वा०-'**भूषाकर्म-किरादि-सनां चान्यत्रात्मनेपदात्**' (महा० ३।१।८७) से सन् में आत्मनेपद को छोड़कर यक्, चिण् और चिणवद्भाव का प्रतिषेध होता है।*

{अभ्यासकार्यप्रकरणम्}

अभ्यासस्य लोपः-

(१) अत्र लोपोऽभ्यासस्य।५८।

प०वि०-अत्र अव्ययपदम्, लोपः १।१ अभ्यासस्य ६।१।

अनु०-अङ्गस्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अत्राऽङ्गस्याऽभ्यासस्य लोपः।

अर्थः-अत्र='**सनि मीमाघुरभलभशकपतपदमच इस्**' (७।४।५४) इत्यारभ्य '**मुचोऽकर्मकस्य गुणो वा**' (७।४।५७) इत्यत्र पर्यन्तम् अङ्गस्याऽभ्यासस्य लोपो भवति।

उदा०-स मित्सति। मोक्षते वत्सः स्वयमेव।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अत्र) यहां अर्थात् **'सनि मीमाघुरभलभशकपतपदमच इस्'** (७।४।५४) से लेकर **'मुचोऽकर्मकस्य गुणो वा'** (७।४।५७) इस सूत्र तक (अङ्गस्य) अङ्ग के (अभ्यासस्य) अभ्यास का (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-स **मित्सति।** वह मांपना चाहता है। **मोक्षते वत्सः स्वयमेव** इत्यादि उदाहरण हैं।*

***सिद्धि-मित्सति** आदि पदों की सिद्धि उक्त प्रकरण में यथास्थान लिखी गई है। उनमें अभ्यास का लोप स्पष्ट है।*

ह्रस्वादेशः-

(२) ह्रस्वः।५६।

वि०-ह्रस्वः १।१।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-अङ्गस्याऽभ्यासस्य ह्रस्वः।

अर्थः-अङ्गस्याऽभ्यासस्य ह्रस्वादेशो भवति।

उदा०-स डुढौकिषते। स तुत्रौकिषते। स डुढौके। स तुत्रौके। सोऽडुढौकत्। सोऽतुत्रौकत्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अङ्गस्य) अङ्ग के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (ह्रस्वः) ह्रस्वादेश होता है।*

*उदा०-स **डुढौकिषते।** वह गमन करना चाहता है। स **तुत्रौकिषते।** वह गमन करना चाहता है। स **डुढौके।** उसने गमन किया। स **तुत्रौके।** उसने गमन किया। **सोऽडुढौकत्।** उसने गमन कराया। **सोऽतुत्रौकत्।** उसने गमन कराया।*

*सिद्धि-(१) **डुढौकिषते।** यहां **'ढौकृ गतौ'** (भ्वा०आ०) धातु से **'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'** (३।१।७) से इच्छा-अर्थ में 'सन्' प्रत्यय है। **'सन्यङोः'** (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है। **'पूर्वोऽभ्यासः'** (६।१।४) से द्विरुक्त में पूर्वभाग की अभ्यास संज्ञा है। इस सूत्र से अभ्यास (ढौकृस्) को ह्रस्वादेश होता है-**ढुकृस्।** **'हलादि शेषः'** (७।४।६०) से अभ्यास का आदि हल् (ढु) शेष रहकर **'अभ्यासे चर्च'** (८।४।५४) से अभ्यास के झल् ढकार को जश् डकारादेश होता है। ऐसे ही **'त्रौकृ गतौ'** (भ्वा०आ०) धातु से-**तुत्रौकिषते।***

*(२) **डुढौके।** यहां **'ढौकृ गतौ'** (भ्वा०आ०) धातु से **'परोक्षे लिट्'** (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय है। **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से धातु को द्वित्व होता है। अभ्यास-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'त्रौकृ' धातु से-**तुत्रौके।***

*(३) अडुढौकत्। यहां प्रथम 'ढौकृ' धातु से 'हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय और पश्चात् णिजन्त 'ढौकि' धातु से 'लुङ्' प्रत्यय है। '**णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्**' (३।१।४८) से 'च्लि' के स्थान में 'चङ्' आदेश है। 'चङि' (६।१।११) से धातु को द्वित्व होता है। अभ्यास-कार्य पूर्ववत् है।*

आदिहलः शेषत्वम्—

(३) हलादिः शेषः।६०।

प०वि०–हल् १।१ आदिः १।१ शेषः १।१।

अनु०–अङ्गस्य, अभ्यासस्येत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अङ्गस्याऽभ्यासस्याऽऽदिर्हल् शेषः।

अर्थः–अङ्गस्याऽभ्यासस्याऽऽदिर्हल् शेषो भवति, अन्यो हल् च लुप्यते।

उदा०–स जग्लौ। स मम्लौ। स पपाच। स पपाठ। आट, आटतुः, आटुः।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(अङ्गस्य) अङ्ग के (अभ्यासस्य) अभ्यास का (आदिः) आदिम (हल्) हल् वर्ण (शेषः) शेष रहता है और अन्य हल्मात्र का लोप हो जाता है।*

*उदा०–**स जग्लौ।** उसने ग्लानि की। **स मम्लौ।** उसने ग्लानि की। **स पपाच।** उसने पकाया। **स पपाठ।** उसने पढ़ा। **आट।** उसने अटन (भ्रमण) किया। **आटतुः।** उन दोनों ने अटन किया। **आटुः।** उन सब ने अटन किया। अटन=भ्रमण।*

*सिद्धि–**जग्लौ।** यहां '**ग्लै हर्षक्षये**' (भ्वा०प०) धातु से '**परोक्षे लिट्**' (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय है। '**तिप्तस्झि०**' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश, '**परस्मैपदानां णल०**' (३।४।८२) से 'तिप्' के स्थान में 'णल्' आदेश और '**आत औ णलः**' (७।१।३४) से 'णल्' के स्थान में 'औ' आदेश है। '**लिटि धातोरनभ्यासस्य**' (६।१।८) से धातु को द्वित्व होता है-ग्ला-ग्ला+अ। इस सूत्र से अभ्यास का आदिम हल् 'ग्' शेष रहता है अन्य हल् (ल्) का लोप हो जाता है। आ 'अच्' शेष रहा रहता है। गा-ग्ला+अ। इस स्थिति में '**ह्रस्वः**' (७।४।५९) से अभ्यास को ह्रस्व (ग) होता है। '**कुहोश्चुः**' (७।४।६२) से अभ्यास-गकार को चवर्ग जकारादेश होता है। '**म्लै हर्षक्षये**' (भ्वा०प०) धातु से-**मम्लै।** ऐसे ही '**डुपचष् पाके**' (भ्वा०उ०) धातु से-**पपाच।** '**पठ व्यक्तायां वाचि**' (भ्वा०प०) धातु से-**पपाठ।** '**अट गतौ**' (भ्वा०प०) धातु से-**आट, आटतुः, आटुः।***

खयः शेषत्वम्–

(४) शर्पूर्वाः खयः।६१।

प०वि०-शर्पूर्वाः १।३ खयः १।३।

स०-शर् पूर्वो येषां ते शर्पूर्वाः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, शेष इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अङ्गस्याऽभ्यासस्य शर्पूर्वाः खयः शेषाः।

अर्थः-अङ्गस्याऽभ्यासस्य ये शर्पूर्वाः खयो वर्णास्तत्र खयः शेषा भवन्ति, न तु शरः।

उदा०-स चुश्च्योतिषति। स तिष्ठासति। स पिस्पन्दिषते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अङ्गस्य) अङ्ग के (अभ्यासस्य) अभ्यास के जो (शर्पूर्वाः) शर्पूर्वक (खयः) खय् वर्ण हैं उनमें (खयः) खय् वर्ण (शेषाः) शेष रहते हैं, शर् वर्ण नहीं।*

*उदा०-स **चुश्च्योतिषति।** वह सींचना चाहता है। स **तिष्ठासति।** वह ठहरना चाहता है। स **पिस्पन्दिषते।** वह कुछ चलना चाहता है।*

*सिद्धि-**चुश्च्योतिषति।** यहां **'श्च्युतिर् क्षरणे'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। 'सन्यङोः' (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है। इसके शर्पूर्वी अभ्यास (श्च्युत्) का खय् वर्ण 'च्' शेष रहता है, 'हलादि शेषः' (६।४।६०) से प्राप्त आदि हल् शकार शेष नहीं रहता है। चु-श्च्योतिष। चुश्च्योतिष+लट्। चुश्च्योतिषति। ऐसे ही **'ष्ठा गतिनिवृत्तौ'** (स्था) (भ्वा०प०) धातु से-**तिष्ठासति। 'सन्यतः'** (७।४।७९) से अभ्यास-अकार को इकारादेश होता है। **'स्पदि किञ्चिच्चलने'** (भ्वा०आ०) धातु से-**पिस्पन्दिषते।** 'इदितो नुम् धातोः' (७।१।५८) से धातु को नुम् आगम होता है।*

चु-आदेशः–

(५) कुहोश्चुः।६२।

प०वि०-कुहोः ६।२ चुः १।१।

स०-कुश्च ह् च तौ कुहौ, तयोः-कुहोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-अङ्गस्याऽभ्यासस्य कुहोश्चुः।

अर्थः-अङ्गस्याऽभ्यासस्य कवर्गस्य हकारस्य च स्थाने चवर्गादेशो भवति।

उदा०-(कवर्गः) कृ-स चकार। खन्-स चखान। गम्-स जगाम। अद् (घस्लृ)-स जघास। (हकारः) हन्-स जघान। हृ-स जहार। ओहाक्-स जहौ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अङ्गस्य) अङ्ग के (अभ्यासस्य) अभ्यास के (कुहोः) कवर्ग और हकार के स्थान में (चुः) चवर्ग आदेश होता है।*

*उदा०-(कवर्ग) कृ-स **चकार**। उसने किया। खन्-स **चखान**। उसने अवदारण किया, खोदा। गम्-स **जगाम**। वह गया। अद् (घस्लृ)-स **जघास**। उसने भक्षण किया, खाया। (हकार) हन्-स **जघान**। उसने हिंसा/गति की। हृ-स **जहार**। उसने हरण किया, चुराया। ओहाक्-स **जहौ**। उसने त्याग दिया, छोड़ दिया।*

सिद्धि-चकार। *यहां '**डुकृञ् करणे**' (तना०उ०) धातु से '**परोक्षे लिट्**' (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय है। '**तिप्तस्झि०**' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश और '**परस्मैपदानां णल०**' (३।४।८२) से 'तिप् के स्थान में 'णल्' आदेश है। '**लिटि धातोरनभ्यासस्य**' (६।१।८) से धातु को द्वित्व होता है-कृ+कृ+अ। इस सूत्र से अभ्यास-ककार को चवर्ग चकारादेश होता है। '**उरत्**' (७।४।६६) से ऋकार को अकार आदेश होता है। ऐसे ही '**खनु अवदारणे**' (भ्वा०प०) धातु से-**चखान**। यहां खकार को चवर्ग छकार और इसे '**अभ्यासे चर्च**' (८।४।५४) से चर् चकार होता है। '**गम्लृ गतौ**' (भ्वा०प०) धातु से-**जगाम**। '**अद भक्षणे**' (अदा०प०) धातु से-**जघास**। '**लिट्यन्तरस्याम्**' से अद् के स्थान में घस्लृ आदेश होता है। '**हन हिंसागत्योः**' (अदा०प०) धातु से-**जघान**। '**हृञ् हरणे**' (भ्वा०उ०) धातु से-**जहार**। **ओहाक् त्यागे** {हा} (जु०प०) धातु से-**जहौ**। यहां हकार को चवर्ग झकार और '**अभ्यासे चर्च**' (८।४।५४) से झकार को जश् जकार होता है।*

चु-आदेशप्रतिषेधः-

(६) न कवतेर्यङि।६३।

प०वि०-न अव्ययपदम्, कवतेः ६।१ यङि ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, चुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-कवतेरङ्गस्याऽभ्यासस्य यङि चुर्न।

अर्थः-कवतेरङ्गस्याऽभ्यासस्य यङि प्रत्यये परतश्चवर्गादेशो न भवति।

उदा०-कोकूयते उष्ट्रः। कोकूयते खरः।

आर्यभाषाः अर्थ- *(कवतेः) कवति=कु इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (यङि) यङ् प्रत्यय परे होने पर (चुः) चवर्ग-आदेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**कोकूयते उष्ट्रः**। ऊंट पुनः-पुनः/अधिक शब्द विशेष करता है। **कोकूयते खरः**। गधा पुनः-पुनः/अधिक शब्द विशेष करता है।*

सिद्धि-कोकूयते। यहां 'कुङ् शब्दार्थः' (भ्वा०आ०) धातु से 'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्' (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय है। 'सन्यङोः' (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है। इससे अभ्यास-ककार को चवर्ग आदेश का प्रतिषेध होता है। 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से चवर्ग आदेश प्राप्त था। 'अकृत्सार्वधातुकयोः' (७।४।२५) से 'कु' को दीर्घ और 'गुणो यङ्लुकोः' (७।४।८२) से अभ्यास को गुण (ओ) होता है।

विशेषः सूत्रपाठ में 'कवति' में शप्-विकरण का निर्देश होने से 'कूङ् शब्दे' (तु०आ०) और 'कु शब्दे' (अदा०प०) धातु का ग्रहण नहीं किया जाता है।

चु-आदेशप्रतिषेधः—

(७) कृषेश्छन्दसि।६४।

प०वि०-कृषेः ६।१ छन्दसि ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, चुः, न, यङीति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि कृषेरङ्गस्याऽभ्यासस्य यङि चुर्न।

अर्थः-छन्दसि विषये कृषेरङ्गस्याऽभ्यासस्य यङि प्रत्यये परतश्चवर्गादेशो न भवति।

उदा०-करीकृष्यते यज्ञकुणपः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (कृषेः) कृषि इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (यङि) यङ् प्रत्यय परे होने पर (चुः) चवर्ग आदेश (न) नहीं होता है।*

उदा०-करीकृष्यते यज्ञकुणपः। यज्ञ का पाक पुनः-पुनः/अधिक आकृष्ट करता है।

सिद्धि-करीकृष्यते। यहां 'कृष विलेखने' (भ्वा०प०) धातु से 'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्' (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय है। 'सन्यङोः' (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से 'कृष्' धातु के अभ्यास को चवर्ग आदेश का प्रतिषेध होता है। 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से चवर्ग आदेश प्राप्त था।

निपातनम्—

(८) दाधर्तिदर्धर्तिदर्धर्षिबोभूतुतेतिक्तेऽलर्ष्यापनीफणत्संसनिष्यदत्करिक्रत्कनिक्रदद्भरिभ्रद्दविध्वतोदविद्युतत्तरित्रतःसरीसृपतंवरीवृजन्मर्मृज्यागनीगन्तीति च।६५।

प०वि०- दाधर्ति-दधर्ति-दर्धर्षि-बोभूतु-तेतिक्ते-अलर्षि-आपनी-फणत्-संसनिष्यदत्-करिक्रत्-कनिक्रदत्-भरिभ्रत्-दविध्वतः-दविद्युतत्-

तरित्रतः-सरीसृपतम्-वरीवृजत्-मर्मृज्य-आगनीगन्ति १।१ इति अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्।

स०-दाधर्तिश्च दर्धर्तिश्च दधर्षिश्च बोभूतुश्च तेतिक्तेश्च अलर्षिश्च आपनीफणच्च संसनिष्यदच्च, करिक्रच्च दविद्युतच्च तरित्रतश्च सरीसृपतं च वरीवृजच्च मर्मज्यं च आगनीगन्ति च एतेषां समाहारः-दार्धर्ति०आगनी-गन्ति (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-छन्दसीत्यनुवतति।

अन्वयः-छन्दसि दाधर्ति०आगनीगन्तीति च निपातनम्।

अर्थः-छन्दसि विषये दाधर्ति, दर्धर्ति, दर्धर्षि, बोभूतु, तितिक्ते, अलर्षि, आपनीफणत्, संसनिष्यदत्, करिक्रत्, कनिक्रदत्, भरिभ्रत्, दविध्वतः, दविद्युतत्, तरित्रतः, सरीसृपतम्, वरीवृजत्, मर्मृज्य, आगनीगन्तीत्येतानि अष्टादश शब्दरूपाणि च निपात्यते। **उदाहरणम्**-

शब्दः	उदाहरणम्	भाषार्थः
(१) दाधर्ति	दाधर्ति	वह धारण/अवस्थान/ अवध्वंस करता है।
(२) दर्धर्ति	दर्धति	पूर्ववत्।
(३) दर्धर्षि	दर्धर्षि (ऋ० ५।८४।३)	पूर्ववत्।
(४) बोभूतु	बोभूतु	वह पुनः-पुनः/अधिक होवे।
(५) तेतिक्ते	तेतिक्ते	वह पुनः-पुनः/अधिक तीक्ष्ण करता है।
(६) अलर्षि	अलर्षि दक्षः (ऋ० ८।४८।४)	वह प्राप्त करता है।
(७) आपनीफणत्	आपनीफणत् (ऋ० ४।४०।४)	वह पुनः-पुनः/अधिक आगमन करता है।
(८) संसनिष्यदत्	संसनिष्यदत्	वह मिलकर प्रस्रवित होता हुआ, प्रवाहित होता हुआ।
(९) करिक्रत्	करिक्रत् (ऋ० १।१३१।३)	वह पुनः-पुनः/अधिक करता हुआ।

शब्दः	उदाहरणम्	भाषार्थः
(१०) करिक्रदत्	करिक्रदत् (ऋ० १।१२८।३)	वह आह्वान/रोदन करता हुआ।
(११) भरिभ्रत्	भरिभ्रत् (ऋ० १०।४५।७)	वह पुनः-पुनः/अधिक धारण-पोषण करता हुआ।
(१२) दविध्वतः	दविध्वतो रश्मयः सूर्यस्य ऋ० ४।१३।४)	नष्ट करनेवाले की।
(१३) दविद्युतत्	दविद्युतत् (ऋ० ६।१६।४५)	वह पुनः-पुनः/अधिक प्रदीप्त होता हुआ।
(१४) तरित्रतः	सहोर्जा तरित्रतः (ऋ० ४।४०।३)	उस पुनः-पुनः/अधिक तैरते हुये का।
(१५) सरीसृपतम्	सरीसृपतम्	उस पुनः-पुनः/अधिक सर्पण करनेवाले को।
(१६) वरीवृजत्	वरीवृजत् (ऋ० ७।२४।४)	वह पुनः-पुनः/अधिक वर्जन (निषेध) करता हुआ।
(१७) मर्मृज्य	मर्मृज्य	उसने पुनः-पुनः/अधिक शुद्धि की।
(१८) आगनीगन्ति	वक्ष्यन्ती वेदा-गनीगन्ति कर्णम् (ऋ० ६।७५।३)	वे आगमन करते हैं, आते हैं।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (दाधर्ति०) दाधर्ति, दर्धर्ति, दर्धर्षि, बोभूतु, तेतिक्ते, अलर्षि, आपनीफणत्, संसनिष्यदत्, करिक्रत्, कनिक्रदत्, भरिभ्रत्, दविध्वतः, दविद्युतत्, तरित्रतः, सरीसृपतम्, वरीवृजत्, मर्मृज्य, आगनीगन्ति (इति) ये अठारह शब्द (च) भी निपातित हैं।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-(१) दाधर्ति। *यहां **'धृञ् धारणे'** (भ्वा०उ०), **'धृङ् अवस्थाने'** (तु०आ०), **'धृङ् अवध्वंसने'** (भ्वा०आ०) इन धातुओं से प्रथम **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से शप् विकरण-प्रत्यय और **'बहुलं छन्दसि'** (२।४।७३) से 'शप्' को श्लु और **'श्लौ'** (६।१।१०) से धातु को द्वित्व होता है। निपातन से णिच् का लोप और अभ्यास को दीर्घ होता है।*

अथवा-पूर्वोक्त 'धृञ्' आदि धातुओं से यहां प्रथम पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय है। इन धातुओं के णिजन्त में अनेकाच् होने से **'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्'** (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय प्राप्त नहीं है, अतः यह निपातन से होता है। उपधा ह्रस्वत्व भी निपातित है। **'बहुलं छन्दसि'** (२।४।७६) से 'यङ्' का लुक् होता है। **'णेरनिटि'** (६।४।५१) से णिच् का लोप और **'दीर्घोऽकितः'** (७।४।८३) से अभ्यास को दीर्घ होता है।

(२) **दर्धर्ति।** यहां पूर्वोक्त 'धृञ्' आदि धातुओं से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय और 'शप्' को 'श्लु' आदेश है। अभ्यास को 'रुक्' आगम और 'णिच्' प्रत्यय का लोप निपातन से होता है। 'सिप्' प्रत्यय में-**दर्धर्षि।** यङ्लुक् पक्ष में **'दीर्घोऽकितः'** (७।४।८३) प्राप्त अभ्यास दीर्घत्व का अभाव निपातित है।

(३) **बोभूतु।** यहां **'भू सत्तायाम्'** धातु से प्रथम पूर्ववत् 'यङ्' प्रत्यय और इसका लुक् है। **'लोट् च'** (३।३।१६२) से 'लोट्' प्रत्यय, लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश और **'एरुः'** (३।४।८६) से इकार को उकार आदेश है। **'चर्करीतं च'** (अदादि गणसूत्र) से यङ् लुगन्त धातु अदादिगण के अन्तर्गत होती है। अतः **'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।७२) से 'शप्' का लुक् होता है। **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से प्राप्त इगन्त लक्षण गुण का अभाव निपातित है।

(४) **तेतिक्ते।** यहां **'तिज निशाने'** (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'यङ्' प्रत्यय और इसका लुक् होता है। यङ् के ङित् होने से **'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्'** (१।३।१२) से आत्मनेपद सिद्ध है, पुनः आत्मनेपद निपातन से यह ज्ञापक होता है कि अन्यत्र यङ् लुगन्त धातु से आत्मनेपद नहीं होता है। **'चोः कुः'** (८।२।३०) से 'तिज्' के जकार को कवर्ग गकार और **'खरि च'** (८।४।५४) से गकार को चर् ककार होता है।

(५) **अलर्षि।** यहां **'ऋ गतौ'** (जु०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और लकार के स्थान में 'सिप्' आदेश है। **'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः'** (२।४।७५) से शप् को श्लु और **'श्लौ'** (६।१।११) से धातु को द्वित्व होता है। ऋ-ऋ+सि। **'उरत्'** (७।४।६६) से अभ्यास-ऋकार को अकारादेश, **'उरण् रपरः'** (१।१।५१) से रपरत्व (अर्) होता है। इस अभ्यास के रेफ को निपातन से लत्व होता है। **'हलादिः शेषः'** (७।४।६०) से आदिहल् का शेषत्व नहीं होता है। **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से 'ऋ' को गुण और **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) से षत्व होता है। **'अर्तिपिपर्त्योश्च'** (७।४।७७) से प्राप्त अभ्यास को इत्व निपातन से नहीं होता है।

(६) **आपनीफणत्।** यहां आङ् उपसर्गपूर्वक **'फण गतौ'** धातु से पूर्ववत् 'यङ्' प्रत्यय और इसका लुक् होता है। पुनः यङ्लुगन्त धातु से 'लट्' प्रत्यय और **'लटः शतृशानचा०'** (३।२।१२४) से 'लट्' के स्थान में 'शतृ' आदेश है। आ+प-फण्+शतृ। आ+प नीक्-फण्+अत्। आपनीफणत्। इस सूत्र से अभ्यास को 'नीक्' आगम निपातित है।

(७) **संसनिष्यदत्।** यहां सम्-उपसर्गपूर्वक **'स्यन्दू प्रस्रवणे'** (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'यङ्' प्रत्यय और इसका लुक् है। पुनः यङ्लुगन्त धातु से पूर्ववत् 'शतृ' प्रत्यय है। सम्+स-स्यन्द्+शतृ। सम्+निक्-ष्यद्+अत्। संसनिष्यदत्। अभ्यास को 'निक्' आगम और धातुस्थ सकार को षत्व निपातित है। **'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति'** (६।४।२४) से अनुनासिक (न्) का लोप होता है।

(८) **करिक्रत्।** यहां **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से पूर्ववत् 'यङ्' प्रत्यय और इसका लुक् होता है। पुनः यङ्लुगन्त धातु से पूर्ववत् शतृ प्रत्यय है। कृ-कृ+शतृ। कर्+कृ+अत्। क रिक्-कृ+अत्। करि+कृ+अत्। करिक्रत्। अभ्यास को 'रिक्' आगम और **'कुहोश्चुः'** (७।४।६२) से प्राप्त चुत्व का अभाव निपातित है।

(९) **कनिक्रदत्।** यहां **'क्रदि आह्वाने रोदने च'** (भ्वा०प०) धातु से 'लुङ्' प्रत्यय, 'च्लि' के स्थान में 'अङ्' आदेश, धातु को द्वित्व, अभ्यास को चुत्व का अभाव और 'निक्' आगम निपातित है।

(१०) **भरिभ्रत्।** यहां **'डुभृञ् धारणपोषणयोः'** (जु०उ०) धातु से पूर्ववत् 'यङ्' प्रत्यय और इसका लुक् है। पुनः यङ्लुगन्त धातु से पूर्ववत् 'शतृ' प्रत्यय है। अभ्यास को 'रिक्' आगम निपातित है। **'अभ्यासे चर्च'** (८।४।५४) प्राप्त अभ्यास-जश्त्व का अभाव और **'भृञामित्'** (७।४।७६) से प्राप्त अभ्यास को इत्त्व का अभाव भी निपातित है।

(११) **दविध्वतः।** यहां **'ध्वृ हिंसायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् यङ् प्रत्यय और इसका लुक् है। पुनः यङ्लुगन्त धातु से पूर्ववत् 'शतृ' प्रत्यय है। अभ्यास को 'विक्' आगम और 'ध्वृ' धातु के ऋकार का लोप निपातित है। **'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः'** (७।१।७०) से प्राप्त 'नुम्' आगम का **'नाभ्यस्ताच्छतुः'** (७।१।७८) से प्रतिषेध होता है। यह षष्ठी-एकवचन (ङस्) का रूप है।

(१२) **दविद्युतत्।** यहां **'द्युत दीप्तौ'** (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् यङ् प्रत्यय और इसका लुक् है। पुनः यङ्लुगन्त धातु से पूर्ववत् 'शतृ' प्रत्यय है। **'द्युतिस्वाप्योः सम्प्रसारणम्'** (७।४।६७) से प्राप्त अभ्यास के सम्प्रसारण का अभाव, अभ्यास को अत्व और 'विक्' आगम निपातित है। द्युत्-द्युत्+शतृ। दु+द्युत्+अत्। द विक्+द्युत्+अत्। द वि-द्युत्+अत्=दविद्युतत्।

(१३) **तरित्रतः।** यहां **'तॄ प्लवनसन्तरणयोः'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'शतृ' प्रत्यय और 'शप्' को 'श्लु' आदेश है। 'श्लौ' (६।१।१०) से धातु को द्वित्व, 'उरत्' (७।४।६६) से अभ्यास-ऋकार को अकारादेश और अभ्यास को 'रिक्' आगम निपातित है। यह षष्ठी एकवचन (ङस्) का रूप है।

(१४) **सरीसृपतम्।** यहां **'सृप्लृ गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'शतृ' प्रत्यय और 'शप्' को 'श्लु' आदेश है। अभ्यास को 'रीक्' आगम निपातित है। यह द्वितीया-एकवचन (अम्) का रूप है।

(१५) वरीवृजत्। यहां 'वृजी वर्जने' (रुधा०प०) धातु से पूर्ववत् 'शतृ' प्रत्यय और 'शप्' को 'श्लु' आदेश है। अभ्यास को 'रीक्' आगम निपातित है।

(१६) मर्मृज्य। यहां 'मृजूष् शुद्धौ' (अदा०प०) धातु से 'परोक्षे लिट्' (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय, लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश और 'तिप्' के स्थान में 'णल्' आदेश है। अभ्यास को 'रुक्' आगम और धातु को 'युक्' आगम निपातित है। 'युक्' आगम होने पर 'मृजेर्वृद्धिः' (७।२।११४) से प्राप्त वृद्धि नहीं होती है।

(१७) आगनीगन्ति। यहां आङ्-उपसर्गपूर्वक 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और 'शप्' विकरण-प्रत्यय है। पूर्ववत् 'शप्' को 'श्लु' होता है। अभ्यास को 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से प्राप्त चुत्व का अभाव और 'नीक्' आगम निपातित है। आ+ग नीक्-गम्+ति। आ+ग नी-गन्+ति। आगनीगन्ति। 'गम्' के मकार को 'मोऽनुस्वारः' (८।३।२३) से अनुस्वारादेश और इसे 'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः' (८।४।५७) से परसवर्ण नकार होता है।

अत्-आदेशः–

(६) उरत्।६६।

प०वि०–उः ६।१ अत् १।१।

अनु०–अङ्गस्य, अभ्यासस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः–उरङ्गस्याऽभ्यासस्याऽत्।

अर्थः–उः=ऋकारान्तस्याऽङ्गस्याऽभ्यासस्याऽकारादेशो भवति।

उदा०–स ववृते। स ववृधे। स शशृधे। सा नर्तर्ति। सा नरिनर्ति। सा नरीनर्ति।

आर्यभाषाः अर्थ–(उः) ऋकारान्त (अङ्गस्य) अङ्ग के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (अत्) अकारादेश होता है।

उदा०–**स ववृते।** उसने वर्ताव (व्यवहार) किया। **स ववृधे।** उसने वृद्धि की। **स शशृधे।** उसने निन्दित शब्द किया। **सा नर्तर्ति। सा नरिनर्ति। सा नरीनर्ति।** वह पुनः-पुनः/अधिक नाचती है।

सिद्धि–(१) ववृते। यहां 'वृतु वर्तने' (भ्वा०आ०) धातु से 'लिट्' प्रत्यय, लकार के स्थान 'त' आदेश और 'लिटस्तझयोरेशिरेच्' (३।४।८१) से 'त' के स्थान में 'एश्' आदेश है। 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' (६।१।८) से धातु को द्वित्व होता है-वृत्-वृत्+ए। वृ-वृत्+ए। इस सूत्र से अभ्यास-ऋकार को अकार आदेश होता है। ऐसे ही 'वृधु वृद्धौ' (भ्वा०आ०) धातु से-ववृधे। 'शृधु शब्दकुत्सायाम्' (भ्वा०आ०) धातु से-शशृधे।

(२) नर्नर्ति। यहां 'नृती गात्रविक्षेपे' (दि०प०) धातु से पूर्ववत् 'यङ्' प्रत्यय और इसका लुक् होता है। पुनः यङ् लुगन्त धातु से 'लट्' प्रत्यय है। इस सूत्र से अभ्यास-ऋकार को अकारादेश, इसे 'उरण् रपरः' (१।१।५१) से रपरत्व और 'हलादिः शेषः' (७।४।६०) से आदिम हल् शेष होकर 'रुग्रिकौ च लुकि' (७।४।९१) से अभ्यास को 'रुक्' आगम होता है। रिक्-आगम पक्ष में-नरिनर्ति। रीक्-आगम पक्ष में-नरीनर्ति।

सम्प्रसारणम्–

(१०) द्युतिस्वाप्योः सम्प्रसारणम्।६७।

प०वि०-द्युति-स्वाप्योः ६।२ सम्प्रसारणम् १।१।

स०-द्युतिश्च स्वापिश्च तौ द्युतिस्वापी, तयोः-द्युतिस्वाप्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-द्युतिस्वाप्योरङ्गयोरभ्यासस्य सम्प्रसारणम्।

अर्थः-द्युतिस्वाप्योरङ्गयोरभ्यासस्य सम्प्रसारणं भवति।

उदा०-**(द्युतिः) लिट्**-स विदिद्युते। **लुङ् (चङ्)** स व्यदिद्युतत्। **सन्**-विदिद्योतिषते, विदिद्युतिषते। **यङ्**-विदेद्युत्यते। **(स्वापिः)** स सुष्वापयिषति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(द्युतिस्वाप्योः) द्युति, स्वापि इन (अङ्गयोः) अङ्गों के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (सम्प्रसारणम्) सम्प्रसारण होता है।*

*उदा०-(द्युति) लिट्-स **विदिद्युते**। वह प्रकाशित (प्रसिद्ध) हुआ। लुङ् (चङ्) स **व्यदिद्युतत्**। वह प्रकाशित हुआ। सन्-**विदिद्योतिषते, विदिद्युतिषते**। वह प्रकाशित होना चाहता है। (यङ्) **विदेद्युत्यते**। वह पुनः-पुनः/अधिक प्रकाशित होता है। **(स्वापि) स सुष्वापयिषति**। वह सुलाना चाहता है।*

*सिद्धि-(१) **विदिद्युते**। यहां वि-उपसर्गपूर्वक 'द्युत दीप्तौ' (भ्वा०आ०) धातु से 'लिट्' प्रत्यय, लकार के स्थान में 'त' आदेश और 'लिटस्तझयोरेशिरेच्' (३।४।८१) से 'त' के स्थान में 'एश्' आदेश है। 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' (६।१।८) से धातु को द्वित्व होता है। वि+द्युत्-द्युत्+ए। वि+द् इ उ-द्युत्+ए। वि+दि-द्युत्+ए। विदिद्युते। इस सूत्र से अभ्यास-यकार को इकार सम्प्रसारण और 'सम्प्रसारणाच्च' (६।१।८) से उकार को पूर्वरूप एकादेश (इ) होता है।*

*(२) **व्यदिद्युतत्**। यहां वि-उपसर्गपूर्वक 'द्युत्' धातु से प्रथम 'हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय, पुनः णिजन्त 'द्योति' धातु से 'लुङ्', 'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि*

*चङ्' (३।१।४८) से 'च्लि' के स्थान में 'चङ्' आदेश, **'णेरनिटि'** (६।४।५१) से णिच् का लोप, **'णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः'** (७।४।१) से उपधा को ह्रस्व, **'चङि'** (६।१।११) से धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से अभ्यास-यकार को सम्प्रसारण और पूर्ववत् पूर्वरूप एकादेश होता है।*

*(३) **विदिद्युतिषते।** यहां वि-उपसर्गपूर्वक 'द्युत्' धातु से 'सन्' प्रत्यय है। **'रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च'** (१।२।२६) से 'सन्' प्रत्यय विकल्प से किद्वत् होता है। कित्त्व-पक्ष में **'क्ङिति च'** (१।१।५) से लघूपधलक्षण गुण का प्रतिषेध होता है। **'सन्यङोः'** (६।१।९) से धातु को द्वित्व और इस सूत्र से अभ्यास-यकार को सम्प्रसारण होता है। विकल्प-पक्ष में **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से लघूपधलक्षण गुण होता है-**विदिद्योतिषते।***

*(४) **विदेद्युत्यते।** यहां वि-उपसर्गपूर्वक 'द्युत्' धातु से **'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्'** (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय है। **'सन्यङोः'** (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से अभ्यास-यकार को सम्प्रसारण इकारादेश होकर **'गुणो यङ्लुकोः'** (७।४।८२) से अभ्यास (इ) को गुण (ए) होता है।*

*(५) **सुस्वापयिषति।** यहां प्रथम **'ञिष्वप् शये'** (अदा०प०) धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। पुनः णिजन्त 'स्वापि' धातु से 'सन्' प्रत्यय है। **'सन्यङोः'** (६।१।९) से धातु को द्वित्व करते समय **'णौ कृतं स्थानिवद् भवति'** (महा० १।१।५७) से अद्विर्वचन निमित्तक णिच् के अच् (इ) परे होने पर भी रूपातिदेश होकर द्वित्व होता है-**स्वप्-स्वापि।** इस सूत्र से अभ्यास-वकार को उकार सम्प्रसारण और **'सम्प्रसारणाच्च'** (६।१।१०८) से अकार को पूर्वरूप एकादेश (उ) होता है। **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) से षत्व होता है। **'सुष्वापयिष'** णिजन्त पूर्वक सनन्त धातु से 'लट्' प्रत्यय है। **'स्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासात्'** (८।३।६१) से अभ्यास-इण् से उत्तर आदेश-सकार को षत्व होता है।*

सम्प्रसारणम्—

(११) व्यथो लिटि।६८।

प०वि०-व्यथः ६।१ लिटि ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, सम्प्रसारणमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-व्यथोऽङ्गस्याऽभ्यासस्य लिटि सम्प्रसारणम्।

अर्थः-व्यथोऽङ्गस्याऽभ्यासस्य लिटि प्रत्यये परतः सम्प्रसारणं भवति।

उदा०-स विव्यथे। तौ विव्यथाते। ते विव्यथिरे।

आर्यभाषाः *अर्थ-(व्यथः) व्यथ् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (लिटि) लिट् प्रत्यय परे होने पर (सम्प्रसारणम्) सम्प्रसारण होता है।*

*उदा०-**स विव्यथे।** वह भयभीत/संचलित हुआ। **तौ विव्यथाते।** वे दोनों भयभीत/संचलित हुये। **ते विव्यथिरे।** वे सब भयभीत/संचलित हुये।*

सिद्धि-विव्यथे। *यहां '**व्यथ भयसंचलनयोः**' (भ्वा०आ०) धातु से 'लिट्' प्रत्यय, लकार के स्थान में 'त' आदेश और 'त' के स्थान में '**लिटस्तझयोरेशिरेच्**' (३।४।८१) से 'एश्' आदेश है। '**लिटि धातोरनभ्यासस्य**' (६।१।८) से 'व्यथ' धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से अभ्यास-यकार को इकार सम्प्रसारण और '**सम्प्रसारणाच्च**' (६।१।१०८) से अकार को पूर्वरूप एकादेश (इ) होता है। '**न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम्**' (६।१।३७) से 'व्यथ्' के वकार को सम्प्रसारण नहीं होता है। आताम् प्रत्यय में-**विव्यथाते।** 'झ' (इरेच्) प्रत्यय में-**विव्यथिरे।***

दीर्घादेशः–

(१२) दीर्घ इणः किति।६६।

प०वि०-दीर्घः १।१ इणः ६।१ किति ७।१।

स०-क् इद् यस्य स कित्, तस्मिन्-किति (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, लिटीति चानुवर्तते।

अन्वयः-इणोऽङ्गस्याऽभ्यासस्य किति लिटि दीर्घः।

अर्थः-इणोऽङ्गस्याऽभ्यासस्य किति लिटि प्रत्यये परतो दीर्घो भवति।

उदा०-तौ ईयतुः। ते ईयुः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इणः) इण् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (किति) कित् (लिटि) लिट् प्रत्यय परे होने पर (दीर्घः) होता है।*

*उदा०-**तौ ईयतुः।** वे दोनों गये। **ते ईयुः।** वे सब गये।*

सिद्धि-ईयतुः। *इ+लिट्। इ+तस्। इ+अतुस्। य्+अतुस्। इ-इय्+अतुस्। ई-य्+अतुस्। ईयतुः।*

*यहां '**इण् गतौ**' (अदा०प०) धातु से 'लिट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तस्' आदेश और 'तस्' के स्थान में 'अतुस्' आदेश है। यह '**असंयोगाल्लिट् कित्**' (१।२।५) से किद्वत् होता है। '**लिटि धातोरनभ्यासस्य**' (६।१।८) से द्वित्व करते समय प्रथम '**इणो यण्**' (६।४।८१) से यणादेश होता है। पश्चात् '**द्विर्वचनेऽचि**' (१।१।५८) से रूपातिदेश होकर इण् को द्वित्व होता है-इ-य्+अतुस्। इस सूत्र से अभ्यास को दीर्घ होता है-ई-य्+अतुस्=ईयतुः। ऐसे ही झि (उस्) प्रत्यय में-**ईयुः।***

दीर्घादेशः-

(१३) अत आदेः ।७०।

प०वि०-अतः ६ ।१ आदेः ६ ।१ ।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, लिटि, दीर्घ इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-अङ्गस्याऽभ्यासस्याऽऽदेरतो लिटि दीर्घः ।

अर्थः-अङ्गस्याऽभ्यासस्याऽऽदेरकारस्य लिटि प्रत्यये परतो दीर्घो भवति ।

उदा०-स आट । तौ आटतुः । ते आटुः ।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अङ्गस्य) अङ्ग के (अभ्यासस्य) अभ्यास के (आदेः) आदिम (अतः) अकार को (लिटि) लिट् प्रत्यय परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-**स आट।** उसने अटन (भ्रमण) किया। **तौ आटतुः।** उन दोनों ने अटन किया। **ते आटुः।** उन सब ने अटन किया।*

सिद्धि-आट। *यहां 'अट गतौ' (भ्वा०प०) धातु से 'लिट्' प्रत्यय, लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश और 'तिप् के स्थान में 'णल्' आदेश है। **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६ ।१ ।८) से धातु को द्वित्व होता है। अट्-अट्+अ। अ-अट्+अ। आ-आट्+अ। आट। यहां **'अतो गुणे'** से पररूप एकादेश प्राप्त था। यह उसका अपवाद है। तस् (अतुस्) प्रत्यय में-**आटतुः।** झि (उस्) प्रत्यय में-**आटुः।***

नुट्-आगमः-

(१४) तस्मान्नुड् द्विहलः ।७१।

प०वि०-तस्मात् ५ ।१ नुट् १ ।१ द्विहलः ६ ।१ ।

स०-द्वौ हलौ यस्मिन् स द्विहल्, तस्य-द्विहलः (बहुव्रीहिः) ।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, लिटि, अत इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-तस्माद् अतोऽभ्यासाद् द्विहलोऽङ्गस्य लिटि नुट् ।

अर्थः-तस्माद् दीर्घीभूताद् आकाराद् अभ्यासाद् उत्तरस्य द्विहलोऽङ्गस्य लिटि परतो नुडागमो भवति ।

उदा०-स आनङ्ग । तौ आनङ्गतुः । ते आनङ्गुः । स आनञ्ज । तौ आनञ्जतुः । ते आनञ्जुः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्मात्) उस दीर्घीभूत (अतः) अकार (अभ्यासात्) अभ्यास से परे (द्विहलः) दो हलोंवाले (अङ्गस्य) अङ्ग को (लिटि) लिट्-प्रत्यय परे होने पर (नुट्) नुट् आगम होता है।*

*उदा०-**स आनङ्ग।** वह गया। **तौ आनङ्गतुः।** वे दोनों गये। **ते आनङ्गुः।** वे सब गये। **स आनञ्ज।** वह प्रकट हुआ। **तौ आनञ्जतुः।** वे दोनों प्रकट हुये। **ते आनञ्जुः।** वे सब प्रकट हुये।*

*सिद्धि-**आनङ्ग।** यहां प्रथम 'अगि गतौ' (भ्वा०प०) धातु को **'इदितो नुम् धातोः'** (७।१।५८) से 'नुम्' आगम होता है। पश्चात् 'अङ्ग्' धातु से 'लिट्' प्रत्यय, लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश और 'तिप्' के स्थान में 'णल्' आदेश है। **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से धातु को द्वित्व होता है-अङ्ग्-अङ्ग+अ। अ-अङ्ग+अ। आ-अङ्ग्+अ। इस स्थिति में **'अत आदेः'** (७।४।७०) से दीर्घीभूत आकार-अभ्यास से परे दो हल्वाले 'अङ्ग्' को 'नुट्' आगम होता है। तस् (अतुस्) प्रत्यय में-**आनङ्गतुः।** झि (उस्) प्रत्यय में-**आनङ्गुः।** **'अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु'** (रुधा०प०) धातु से-**आनञ्ज, आनञ्जतुः, आनञ्जुः।***

नुट्-आगमः-

(१५) अश्नोतेश्च।७२।

प०वि०-अश्नोतेः ६।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, लिटि, अतः, तस्मात्, नुडिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्माद् अतोऽभ्यासाद् अश्नोतेरङ्गस्य च लिटि नुट्।

अर्थः-तस्माद् दीर्घीभूताद् आकाराद् अभ्यासाद् उत्तरस्याऽश्नोतेरङ्गस्य लिटि प्रत्यये परतो नुडागमो भवति।

उदा०-स व्यानशे। तौ व्यनशाते। ते व्यानशिरे। अद्विहलार्थोऽयमारम्भः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्मात्) उस दीर्घीभूत (अतः) आकार (अभ्यासात्) अभ्यास से परे (अश्नोतेः) अश्नोति=अश् इस (अङ्गस्य) अङ्ग को (च) भी (नुट्) नुडागम होता है।*

*उदा०-**स व्यानशे।** उसने व्याप्त किया। **तौ व्यनशाते।** उन दोनों ने व्याप्त किया। **ते व्यानशिरे।** उन सब ने व्याप्त किया।*

*सिद्धि-**व्यानशे।** यहां वि-उपसर्गपूर्वक **'अशूङ् व्याप्तौ'** (स्वा०आ०) धातु से 'लिट्' प्रत्यय, लकार के स्थान में 'त' आदेश और **'लिटस्तझयोरेशिरेच्'** (३।४।८१) से 'त' के स्थान में 'एश्' आदेश है। **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से धातु को द्वित्व*

*होता है-वि+अश्-अश्+ए। वि+आ-अश्+ए। वि+आ नुट्+अश्+ए। वि+आन्+अश्+ए। व्यानशे। 'अतः आदेः' (७।४।७०) से अभ्यास को दीर्घ होता है। 'अश्' धातु के दो हल्वाली न होने से 'तस्मान्नुड् द्विहलः' (७।४।७१) से नुट् आगम प्राप्त नहीं था, अतः यह विधान किया गया है। आताम् प्रत्यय में-**व्यानशाते**। झ (इरेच्) प्रत्यय में-**व्यानशिरे**।*

अ-आदेशः–

(१६) भवतेरः।७३।

प०वि०-भवतेः ६।१ अः १।१।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, लिटीति चानुवर्तते।

अन्वयः-भवतेरङ्गस्याऽभ्यासस्य लिटि अः।

अर्थः-भवतेरङ्गस्याऽभ्यासस्य लिटि प्रत्यये परतोऽकारादेशो भवति।

उदा०-स बभूव। तौ बभूवतुः। ते बभूवुः। तेन अनुबभूवे।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(भवतेः) भवति=भू इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (लिटि) लिट् प्रत्यय परे होने पर (अः) अकारादेश होता है।*

*उदा०-**स बभूव**। वह हुआ। **तौ बभूवतुः**। वे दोनों हुये। **ते बभूवुः**। वे सब हुये। **तेन अनुबभूवे**। उसके द्वारा अनुभव किया गया।*

*सिद्धि-(१) **बभूव**। यहां **'भू सत्तायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से 'लिट्' प्रत्यय, लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश और 'तिप्' के स्थान में 'णल्' आदेश है। **'भुवो वुग् लुङ्लिटोः'** (६।४।८८) से 'भू' को 'वुक्' आगम होता है। **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से धातु को द्वित्व होता है-भूव्-भूव्+अ। भू-भूव्+अ। इस स्थिति में 'ह्रस्वः' (७।४।५९) से अभ्यास (भू) को ह्रस्व होकर इस सूत्र से अभ्यास-उकार को अकारादेश होता है। **'अभ्यासे चर्च'** (८।४।५४) से अभ्यास-भकार को जश् बकारादेश है। तस् (अतुस्) प्रत्यय में-**बभूवतुः**। झि (उस्) प्रत्यय में-**बभूवुः**।*

*(२) **अनुबभूवे**। यहां अनु-उपसर्गपूर्वक 'भू' धातु से कर्मवाच्य अर्थ में 'लिट्' प्रत्यय है। **'भावकर्मणोः'** (१।३।१३) से कर्मवाच्य में आत्मनेपद होता है। अतः लकार के स्थान में 'त' आदेश और **'लिटस्तझयोरेशिरेच्'** (३।४।८१) से 'त' के स्थान में 'एश्' आदेश है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

निपातनम्–

(१७) ससूवेति निगमे।७४।

प०वि०-ससूव क्रियापदम्, इति अव्ययपदम्, निगमे ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, लिटि, अ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-निगमे ससूवेति निपातनम् {अङ्गस्याऽभ्यासस्य लिटि अः}।

अर्थः-निगमे=वेदविषये ससूवेति पदं निपात्यते, अर्थात्-ससूव इत्यत्राऽङ्गस्याऽभ्यासस्य लिटि प्रत्यये परतोऽकारादेशो भवति, धातोः परस्मैपदं वुगागमश्च निपात्यते।

उदा०-गृष्टिः ससूव स्थविरम् (ऋ० ४।१८।१०)।

***आर्यभाषाः* अर्थ**-*(निगमे) वेदविषय में (ससूव) ससूव (इति) यह पद निपातित है, अर्थात्-इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (लिटि) लिट् प्रत्यय परे होने पर (अः) अकारादेश होता है। 'षूङ्' धातु से परस्मैपद और उसे वुक् आगम निपातन से होता है।*

*उदा०-गृष्टिः **ससूव स्थविरम्** (ऋ० ४।१८।१०)। ससूव=उत्पन्न किया।*

सिद्धि-ससूव। *यहां **'षूङ् प्राणिगर्भविमोचने'** (अदा०आ०) धातु से 'लिट्' प्रत्यय, लकार के स्थान में निपातन से 'तिप्' आदेश और 'तिप्' के स्थान में 'णल्' आदेश है। 'सू' धातु को निपातन से 'वुक्' आगम और इसके अभ्यास-उकार को अकारादेश होता है।*

गुणादेशः-

(१८) निजां त्रयाणां गुणः श्लौ।७५।

प०वि०-निजाम् ६।३ त्रयाणाम् ६।३ गुणः १।१ श्लौ ७।१।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-निजां त्रयाणामङ्गानामभ्यासस्य श्लौ गुणः।

अर्थः-निजादीनां त्रयाणामङ्गानामभ्यासस्य श्लौ सति गुणो भवति।

उदा०-**(निज्)** स नेनेक्ति। **(विज्)** स वेवेक्ति। **(विष्)** स वेवेष्टि।

णिजिर् शौचपोषणयोः। विजिर् पृथग्भावे। विष्लृ व्याप्तौ इति त्रयो निजादयः पाणिनीयधातुपाठस्य जुहोत्यादिगणे पठ्यन्ते।

***आर्यभाषाः* अर्थ**-*(निजाम्) निज् आदि (त्रयाणाम्) तीन (अङ्गानाम्) अङ्गों के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (श्लौ) शप् को श्लु आदेश होने पर (गुणः) गुण होता है।*

*उदा०-(निज्) **स नेनेक्ति।** वह शोधन/पोषण करता है। (विज्) **स वेवेक्ति।** वह पृथक् होता है। (विष्) **स वेवेष्टि।** वह व्यापक होता है।*

*'**णिजिर् शौचपोषणयोः**' (जु०प०) इत्यादि तीन धातु पाणिनीय धातुपाठ के जुहोत्यादि गण में पठित हैं।*

*सिद्धि-**नेनेक्ति**। यहां **'णिजिर् शौचपोषणयोः'** (जु०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से शप् विकरण-प्रत्यय होता है उसको 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' (२।४।७५) से श्लु (लोप) आदेश हो जाता है। **'श्लौ'** (६।१।१०) से धातु को द्वित्व होता है-निज्-निज्+०+ति। नि-निज्+ति। इस स्थिति में इस सूत्र से अभ्यास-इकार को गुण (ए) होता है। ऐसे ही **'विजिर् पृथग्भावे'** (जु०प०) धातु से-**वेवेक्ति**। 'विष्लृ व्याप्तौ' धातु से-**वेवेष्टि**।*

इत्-आदेशः-

(१६) भृञामित्।७६।

प०वि०-भृञाम् ६।३ इत् १।१।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, त्रयाणाम्, श्लाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-भृञां त्रयाणामऽङ्गानामऽभ्यासस्य श्लौ इत्।

अर्थः-भृञादीनां त्रयाणामऽङ्गानामऽभ्यासस्य श्लौ सति इकारादेशो भवति।

उदा०-**(डुभृञ्)** स बिभर्ति। **(माङ्)** स मिमीते। **(ओहाङ्)** स जिहीते।

डुभृञ् धारणपोषणयोः (जु०उ०) माङ् माने शब्दे च (जु०आ०) ओहाङ् गतौ (जु०आ०) इत्येते त्रयो भृञादयो धातवः पाणिनीयधातुपाठस्य जुहोत्यादिगणे पठ्यन्ते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(भृञाम्) भृञ् आदि (त्रयाणाम्) तीन (अङ्गानाम्) अङ्गों के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (श्लौ) शप् को श्लु आदेश होने पर (इत्) इकारादेश होता है।*

*उदा०-**(भृ) स बिभर्ति**। वह धारण-पोषण करता है। **(मा) स मिमीते**। वह मापता/शब्द करता है। **(हा) स जिहीते**। वह गमन करता है।*

'डुभृञ् धारणपोषणयोः' (जु०उ०) इत्यादि तीन धातु पाणिनीय धातुपाठ के जुहोत्यादिगण में पठित हैं।

*सिद्धि-**बिभर्ति**। यहां **'डुभृञ् धारणपोषणयोः'** (जु०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' (२।४।७५) से इसको श्लु (लोप) आदेश होता है। 'श्लौ' (६।१।१०) से धातु को द्वित्व होता है। भृ-भृ+०+ति। भ-भर्+ति।*

*इस स्थिति में 'उरत्' (७।४।५६) से अभ्यास-ऋकार को अकारादेश होकर इस सूत्र से अभ्यास-अकार को इकारादेश होता है। **'अभ्यासे चर्च'** (८।४।५४) से अभ्यास-भकार को जश् बकार होता है। ऐसे ही **'माङ् माने शब्दे च'** (जु०आ०) धातु से-**मिमीते।** **'ई हल्यघोः'** ६।४।११३) से 'मा' के आकार को ईकारादेश होता है। **'ओहाङ् गतौ'** (जु०आ०) धातु से-**जिहीते।** 'हा' को पूर्ववत् ईकारादेश है। **'कुहोश्चुः'** (७।४।६२) से अभ्यास-हकार को चवर्ग झकार और **'अभ्यासे चर्च'** (८।४।५४) से झकार को जश् जकार होता है।*

इत्-आदेशः–

(२०) अर्तिपिपर्त्योश्च।७७।

प०वि०-अर्ति-पिपर्त्योः ६।२ च अव्ययपदम्।

स०-अर्तिश्च पिपर्तिश्च तौ अर्तिपिपर्ती, तयोः-अर्तिपिपर्त्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, श्लौ, इदिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अर्तिपिपर्त्योरङ्गयोऽभ्यासस्य च श्लौ इत्।

अर्थः-अर्तिपिपर्त्योरङ्गयोऽभ्यासस्य च श्लौ सति इकारादेशो भवति।

उदा०-(**अर्तिः**) इयर्ति धूमम्। (**पिपर्तिः**) स पिपर्ति सोमम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अर्तिपिपर्त्योः) अर्ति=ऋ और पिपर्ति=पृ इन (अङ्गयोः) अङ्गों के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (च) भी (श्लौ) शप् को श्लु आदेश होने पर (इत्) इकारादेश होता है।*

*उदा०-(अर्ति) **इयर्ति धूमम्।** धूमां निकलता है। (पिपर्ति) **स पिपर्ति सोमम्।** वह सोम का पालन-पूरण करता है।*

सिद्धि-(१) इयर्ति।** यहां **'ऋ गतौ'** (जु०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और **'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः'** (२।४।७५) से 'शप्' को 'श्लु' (लोप) होता है। **'श्लौ'** (६।१।१०) से धातु को द्वित्व होता है-ऋ-ऋ+०+ति। अर्-ऋ+ति। अ-ऋ+ति। इ-ऋ+ति। इयङ्-अर्+ति। इय्-अर्+ति। इयर्ति। 'उरत्' (७।४।६६) से अभ्यास-ऋकार को अकारादेश और इस अकार को इस सूत्र से इकारादेश होकर **'अभ्यासस्यासवर्णे'** (६।४।७८) से इसे 'इयङ्' आदेश होता है। ऐसे ही **'पृ पालनपूरणयोः'** (जु०प०) धातु से-**पिपर्ति।

इत्-आदेशः (बहुलम्)–

(२१) बहुलं छन्दसि।७८।

प०वि०–बहुलम् १।१ छन्दसि ७।१।

अनु०–अङ्गस्य, अभ्यासस्य, श्लौ, इदिति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि अङ्गस्याऽभ्यासस्य श्लौ बहुलम् इत्।

अर्थः–छन्दसि विषयेऽङ्गस्याऽभ्यासस्य श्लौ सति बहुलमिकारादेशो भवति।

उदा०–पूर्णां विवष्टि (ऋ० ७।१६।११)। जनिमा विवक्ति (ऋ० १।९७।७)। वत्सं न माता सिषक्ति (ऋ० १।३८।८)। जिघर्ति सोमम्। न च भवति–ददातीत्येवं ब्रूयात्। जजनदिन्द्रम् (मै०सं० १।९।१)। माता यद्वीरं दधनद् धनिष्ठा (ऋ० १०।७३।१)।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(छन्दसि) वेदविषय में (अङ्गस्य) अङ्ग के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (श्लु) शप् को श्लु आदेश होने पर (बहुलम्) प्रायशः (इत्) इकारादेश होता है।*

*उदा०–**पूर्णां विवष्टि** (ऋ० ७।१६।११)। विवष्टि=वह कामना करता है। **जनिमा विवक्ति** (ऋ० १।९७।७)। विवक्ति=वह कहता है। **वत्सं न माता सिषक्ति** (ऋ० १।३८।८)। सिषक्ति=वह समवेत (संयुक्त) होता है। **जिघर्ति सोमम्।** वह गन्ध ग्रहण करता है, सूंघता है। बहुलवचन से कहीं ईकारादेश नहीं होता है–**ददातीत्येवं ब्रूयात्।** ददाति=वह देता है। **जजनदिन्द्रम्** (मै०सं० १।९।१)। जजनत्=उसने उत्पन्न किया। **माता यद्वीरं दधनद्धनिष्ठा** (ऋ० १०।७३।१)। दधनत्=उत्पन्न किया।*

*सिद्धि–(१) **विवष्टि।** यहां 'वश कान्तौ' (जु०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय, लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश और 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय है। 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' (२।४।७५) से 'शप्' को 'श्लु' आदेश होता है। 'श्लौ' (६।१।१०) से 'वश्' धातु को द्वित्व होकर इस सूत्र से अभ्यास को इकारादेश होता है। 'व्रश्चभ्रस्ज०' (८।२।३६) से शकार को षकार और 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४१) से तकार को टकारादेश है। ऐसे ही 'वच परिभाषणे' (अदा०प०) धातु से–**विवक्ति।** 'षच समवाये' (भ्वा०उ०) धातु से–**सिषक्ति।** 'घ्रा गन्धोपादाने' (भ्वा०प०) धातु से–**जिघ्रति।***

*(२) **ददाति।** यहां 'डुदाञ् दाने' (जु०उ०) धातु से 'लट्' आदि कार्य पूर्ववत् हैं। बहुल-वचन से अभ्यास को इकारादेश नहीं होता है।*

*(३) **जजनत्।** यहां 'जन जनने' (भ्वा०प०) धातु से 'लङ्' प्रत्यय, लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश और 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय है। 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' (२।४।७५) से 'शप्' को 'श्लु' आदेश होता है। 'श्लौ' (६।१।१०) से 'जन्' धातु को द्वित्व होता है। बहुल-वचन से अभ्यास को इकारादेश नहीं होता है। 'बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि' (६।४।७५) से अडागम का अभाव है। ऐसे ही 'धन धान्ये' (जु०प०) धातु से-**दधनत्।***

इत्-आदेशः–

(२२) सन्यतः।७६।

प०वि०-सनि ७।१ अतः ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, इदिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अङ्गस्याऽतोभ्यासस्य सनि इत्।

अर्थः-अङ्गस्याऽकारान्तस्याऽभ्यासस्य सनि प्रत्यये परत इकारादेशो भवति।

उदा०-स पिपक्षति। स यियक्षति। स तिष्ठासति। स पिपासति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अङ्गस्य) अङ्ग के (अतः) अकारान्त (अभ्यासस्य) अभ्यास को (सनि) सन् प्रत्यय परे होने पर (इत्) इकारादेश होता है।*

*उदा०-स **पिपक्षति।** वह पकाना चाहता है। **स यियक्षति।** वह यज्ञ करना चाहता है। **स तिष्ठासति।** वह ठहरना चाहता है। **स पिपासति।** वह पान करना चाहता है।*

सिद्धि-पिपक्षति।** यहां 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से 'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा' (३।१।७) से इच्छा-अर्थ में 'सन्' प्रत्यय है। 'सन्यङोः' (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है-पच्स्-पच्स। प-पच्स। इस स्थिति में इस सूत्र से अकारान्त अभ्यास को इकारादेश होता है। 'चोः कुः' (८।२।३०) से चकार को ककार और 'आदेशप्रत्ययोः' (८।३।५९) से सकार को षकारादेश होता है। ऐसे ही 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) धातु से-**यियक्षति।** 'व्रश्चभ्रस्जयज०' (८।२।३६) से जकार को षकारादेश 'षढोः कः सि' (८।२।४१) से षकार को ककारादेश और सकार को पूर्ववत् षत्व होता है। 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' (भ्वा०प०) धातु से-**तिष्ठासति।** 'पा पाने' (भ्वा०प०) धातु से-**पिपासति।

इत्-आदेशः–

(२३) ओः पुयण्ज्यपरे।८०।

प०वि०–ओः ६।१ पुयण्जि ७।१ अपरे ७।१।

स०–पुश्च यण् च ज् च एतेषां समाहारः पुयण्ज्, तस्मिन्–पुयण्जि (समाहारद्वन्द्वः)। अः परो यस्मात् सः–अपरः, तस्मिन्–अपरे (बहुव्रीहिः)।

अनु०–अङ्गस्य, अभ्यासस्य, इत्, सनीति चानुवर्तते।

अन्वयः–अङ्गस्य ओरभ्यासस्याऽपरे पुयण्जि सनि इत्।

अर्थः–अङ्गस्य उकारान्तस्याऽभ्यासस्याऽवर्णपरके पवर्गे यणि जकारे च सति सनि प्रत्यये परत इकारादेशो भवति।

उदा०–अवर्णपरके पवर्गे–स पिपविषते। स पिपावयिषति। स बिभावयिषति। **अवर्णपरके यणि**–स यियविषति। स यियावयिषति। स रिरावयिषति। स लिलावयिषति। **अवर्णपरके जकारे**–स जिजावयिषति। 'जु' इत्ययं सौत्रो धातुर्वर्तते।

आर्यभाषाः अर्थ–*(अङ्गस्य) अङ्ग के (ओः) उकारान्त (अभ्यासस्य) अभ्यास को (अपरे) अवर्ण-परक (पुयण्जि) पवर्ग, यण्-वर्ग और जकार परे होने पर (सनि) सन् प्रत्यय परे रहते (इत्) इकारादेश होता है।*

*उदा०–अवर्णपरक **पवर्ग–स पिपविषते।** वह पवित्र करना चाहता है। **स पिपावयिषति।** वह पवित्र कराना चाहता है। **स बिभावयिषति।** वह सत्ता में रखना चाहता है। **अवर्णपरक यण्–स यियविषति।** वह मिश्रण-अमिश्रण करना चाहता है। **स यियावयिषति।** वह मिश्रण-अमिश्रण कराना चाहता है। **स रिरावयिषति।** वह शब्द (शोर) कराना चाहता है। **स लिलावयिषति।** वह छेदन (कटाई) कराना चाहता है। **अवर्णपरक जकार–स जिजावयिषति।** वह गमन कराना चाहता है।*

सिद्धि–(१) पिपविषते। *यहां 'पूङ् पवने' (भ्वा०आ०) धातु से 'धातोः **कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा**' (३।१।७) से 'सन्' प्रत्यय है। '**स्मिपूङ्रञ्ज्वशां सनि**' (७।२।७४) से 'सन्' को इडागम होता है। पू+सन्। पू+इट्+स। पो+इ+स। पविष। इस स्थिति में– '**द्विर्वचनेऽचि**' (१।१।५९) से अजादेश (पव्) को स्थानिवत् मानकर 'पू' को द्विर्वचन होता है–पू-**पविष।** इस स्थिति में प्रथम '**ह्रस्वः**' (७।४।५९) से अभ्यास को ह्रस्वादेश होकर इस सूत्र से अवर्णपरक पवर्ग (प्) परे होने पर अभ्यास-उकार को इकारादेश होता है। पि+पविष। पिपवष+लट्=पिपविषति।*

*(२) **पिपावयिषति।** यहां 'पूङ्' धातु से प्रथम 'हेतुमति च' (३।१।२६) से हेतुमान् अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है-पू+णिच्। पौ+इ। पावि। तत्पश्चात् णिजन्त 'पावि' धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है। पूर्ववत् स्थानिवद् भाव होकर 'पू' को द्विर्वचन होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही णिजन्त **'भू सत्तायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से-**बिभावयिषति।***

*(३) **यियविषसति।** यहां अवर्णपरक यण् की अवस्था में-**यु मिश्रणेऽमिश्रणे च'** (अदा०प०) धातु से पूर्ववत्। णिजन्त 'यु' धातु से-**यियावयिषति।** णिजन्त 'लूञ् छेदने' (क्रया०उ०) धातु से-**लिलावयिषति।***

*(४) **जिजावयिषति।** णिजन्त **'जुगतौ'** (सौत्रधातु) से अवर्णपरक जकार की अवस्था में पूर्ववत्।*

ईत्-आदेशविकल्पः–

(२४) स्रवतिशृणोतिद्रवतिप्रवतिप्लवतिच्यवतीनां वा।८१।

प०वि०- स्रवति-शृणोति-द्रवति-प्रवति-प्लवति-च्यवतीनाम् ६।३ वा अव्ययपदम्।

स०-स्रवतिश्च शृणोतिश्च द्रवतिश्च प्रवतिश्च प्लवतिश्च च्यवतिश्च ते स्रवतिशृणोतिद्रवतिप्रवतिप्लवतिच्यवतयः, तेषाम्-स्रवतिशृणोतिद्रवति-प्रवतिप्लवतिच्यवतीनाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, इत्, सनि, ओः, यणि, अपरे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-स्रवतिशृणोतिद्रवतिप्रवतिप्लवतिच्यवतीनामऽङ्गानाम् ओरभ्यासस्याऽपरे यणि सनि वा इत्।

अर्थः- स्रवतिशृणोतिद्रवतिप्रवतिप्लवतिच्यवतीनामऽङ्गानाम् उकारान्तस्याऽभ्यासस्याऽवर्णपरके यणि सति, सनि प्रत्यये परतो विकल्पेन इकारादेशो भवति। **उदाहरणम्**–

धातुः	उदाहरणम्	भाषार्थः
(१) स्रवति	सिस्रावयिषति	वह स्राव (बहाव) कराना चाहता है।
	सुस्रावयिषति	–सम–
(२) शृणोति	शिश्रावयिषति	वह सुनाना चाहता है।
	शुश्रावयिषति	–सम–

धातुः	उदाहरणम्	भाषार्थः
(३) द्रवति	दिद्रावयिषति	वह दौड़ कराना चाहता है।
	दुद्रावयिषति	-सम-
(४) प्रवति	पिप्रावयिषति	वह उछालना चाहता है।
	पुप्रावयिषति	-सम-
(५) प्लवति	पिप्लावयिषति	-सम-
	पुप्लावयिषति	-सम-
(६) च्यवति	चिच्यावयिषति	वह हटाना चाहता है।
	चुच्यावयिषति	-सम-

***आर्यभाषाः अर्थ**-(स्रवति०) स्रवति, शृणोति, द्रवति, प्रवति, प्लवति, च्यवति इन (अङ्गानाम्) अङ्गों के (ओः) उकारान्त (अभ्यासस्य) अभ्यास को (अपरे) अवर्ण-परक (यणि) यण्-वर्ण परे रहते (सनि) सन् प्रत्यय परे होने पर (वा) विकल्प से (इत्) इकारादेश होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-सिस्रावयिषति।** यहां **'स्रु गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से प्रथम **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से हेतुमान् अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है। स्रु+णिच्=स्रावि। पश्चात् णिजन्त 'स्रावि' धातु से **'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'** (३।१।७) से इच्छा-अर्थ में 'सन्' प्रत्यय है। **'सन्यङोः'** (६।१।९) से द्विर्वचन करते समय **'द्विर्वचनेऽचि'** (१।१।५८) से अजादेश (स्राव्) को स्थानिवद्भाव होकर 'स्रु' को द्विर्वचन होता है-स्रु-स्राविष। सु-स्राविष। इस स्थिति में अभ्यास-उकार से व्यवधानरहित तो अवर्णपरक यण्-वर्ण (रा) नहीं है किन्तु मध्य में सकार का व्यवधान है पुनरपि इस सूत्रवचन से उकारान्त अभ्यास (सु) को इकारादेश होता है-**सिस्रावयिषति।** विकल्प-पक्ष में इकारादेश नहीं है-**सुस्रावयिषति।** ऐसे ही **'श्रु श्रवणे'** (भ्वा०प०) धातु से-**शिश्रावयिषति, शिश्रावयिषति।** **'द्रु गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से-**दिद्रावयिषति, दिद्रावयिषति।** **'प्रुङ् गतौ'** (भ्वा०आ०) धातु से-**पिप्रावयिषति, पिप्रावयिषति।** **'प्लुङ् गतौ'** (भ्वा०आ०) धातु से-**पिप्लावयिषति, पुप्लावयिषति।** **'च्युङ् गतौ'** (भ्वा०आ०) धातु से-**चिच्यावयिषति, चुच्यावयिषति।

गुणादेशः-

(२५) गुणो यङ्लुकोः।८२।

प०वि०-गुणः १।१ यङ्-लुकोः ७।२।

स०-यङ् च लुक् च तौ यङ्लुकौ, तयोः-यङ्लुकोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-अङ्गस्याऽभ्यासस्य यङ्लुकोर्गुणः।

अर्थः-अङ्गस्याऽभ्यासस्य यङि यङ्लुकि च परतो गुणो भवति।

उदा०-(यङ्) स चेचीयते। स लोलूयते। (यङ्लुक्) स जोहवीति। स चोक्रुशीति।

आर्यभाषाः अर्थ-(अङ्गस्य) अङ्ग के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (यङ्लुकोः) यङ् प्रत्यय और यङ्लुक् परे होने पर (गुणः) गुण होता है।

*उदा०-(यङ्) **स चेचीयते।** वह पुनः-पुनः चयन करता है। **स लोलूयते।** वह पुनः-पुनः छेदन (कटाई) करता है। (यङ्लुक्) **स जोहवीति।** वह पुनः-पुनः हवन करता है। **स चोक्रुशीति।** वह पुनः-पुनः आक्रोश करता है, चिल्लाता है।*

*सिद्धि-(१) **चेचीयते।** यहां 'चिञ् चयने' (स्वा०उ०) धातु से **'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्'** (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय है। **'सन्यङोः'** (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है-चिय्-चिय। चि-चिय। इस स्थिति में इस सूत्र से इगन्त अभ्यास को गुण होता है। चेचीय+लट्। चेचीयते। **'अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः'** (७।४।२५) से दीर्घ होता है। ऐसे ही 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से-**लोलूयते।***

*(२) **जोहवीति।** हु+यङ्। हु+य। हुय्-हुय। हु+हुय। हु-हुय+लट्। हु-हु०+तिप्। हु-हु+शप्+ति। हु-हु+०+ति। हु-हु+ईट्+ति। हु-हु+ई+ति। हो+हो+इ+ति। झो-हव्+ई+ति। जो+हव्+ई+ति। जोहवीति।*

*यहां 'हु दानादनयोः' (जु०प०) धातु से पूर्ववत् 'यङ्' प्रत्यय है। **'सन्यङोः'** (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है। यङन्त धातु से 'लट्' प्रत्यय है। **'यङोऽचि च'** (२।४।७४) से 'यङ्' का लुक् हो जाता है। इस सूत्र से यङ्लुक् होने पर इगन्त अभ्यास (हु) को गुण होता है। **'यङो वा'** (७।३।९४) से ईट् आगम होता है। **'कुहोश्चुः'** (७।४।६२) से हकार को चवर्ग झकार और **'अभ्यासे चर्च'** (८।४।५४) से झकार को जश् जकार होता है।*

*(३) **चोक्रुशीति।** यहां 'क्रुश आह्वाने' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'यङ्' प्रत्यय और इसका लुक् है। 'यङो वा' (७।३।९४) से ईट् आगम है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से प्राप्त गुण का **'नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके'** (७।३।८७) से प्रतिषेध होता है।*

दीर्घादेशः–

(२६) दीर्घोऽकितः।८३।

प०वि०-दीर्घः १।१ अकितः ६।१।

स०-क् इद् यस्य स कित्, न किदिति अकित्, तस्य-अकितः (बहुव्रीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, यङ्लुकोरिति चानवर्तते।

अन्वयः-अङ्गस्याऽकितोऽभ्यासस्य यङ्लुकोर्दीर्घः।

अर्थः-अङ्गस्य किद्वर्जितस्याऽभ्यासस्य यङि यङ्लुकि च परतो दीर्घो भवति।

उदा०-**(यङ्)** स पापच्यते। स यायज्यते। **(यङ्लुक्)** स पापचीति। स यायजीति।

आर्यभाषाः अर्थ-(अङ्गस्य) अङ्ग के (अकितः) कित्-आगम से रहित (अभ्यासस्य) अभ्यास को (यङ्लुकोः) यङ् और यङ्लुक् परे होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।

*उदा०-(यङ्) **स पापच्यते।** वह पुनः-पुनः पकाता है। **स यायज्यते।** वह पुनः-पुनः यज्ञ पकाता है। **(यङ्लुक्) स पापचीति।** अर्थ पूर्ववत् है। **स यायजीति।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-**पापच्यते।** यहां 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से '**धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्**' (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय है। '**सन्यङोः**' (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है-पच्-पच्य। इस स्थिति में इस सूत्र से कित्-आगम से रहित अभ्यास को दीर्घ होता है। ऐसे ही यङ्लुक् में-**पापचीति।** 'यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) धातु से-**यायज्यते।** यङ्लुक् में-**यायजीति।***

नीक्-आगमः–

(२७) नीग् वञ्चुस्रंसुध्वंसुभ्रंसुकसपतपदस्कन्दाम्।८४।

प०वि०- नीक् १।१ वञ्चु-स्रंसु-ध्वंसु-भ्रंसु-कस-पत-पद-स्कन्दाम् ६।३।

स०-वञ्चुश्च स्रंसुश्च ध्वंसुश्च भ्रंसुश्च कसश्च पतश्च पदश्च स्कन्द् च ते-वञ्चुस्रंसुध्वंसुभ्रंसुकसपतपदस्कन्दः, तेषाम्-वञ्चुस्रंसुध्वंसुभ्रंसु-कसपतपदस्कन्दाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, यङ्लुकोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-वञ्चुस्रंसुध्वंसुभ्रंसुकसपतपदस्कन्दामऽङ्गानामऽभ्यासस्य यङ्लुकोर्नीक्।

अर्थः-वञ्चुस्रंसुध्वंसुभ्रंसुकसपतपदस्कन्दामऽङ्गानामऽभ्यासस्य यङि यङ्लुकि च परतो नीगागमो भवति। **उदाहरणम्**-

धातुः	उदाहरणम्	भाषार्थः
(१) वञ्चु	वनीवच्यते (यङ्)	वह पुनः-पुनः ठगता है।
	वनीवञ्चीति (लुक्)	-सम-
(२) स्रंसु	सनीस्रस्यते (यङ्)	वह पुनः गिरता है, खिसकता है।
	सनीस्रंसीति (लुक्)	-सम-
(३) ध्वंसु	दनीध्वस्यते (यङ्)	वह पुनः-पुनः नष्ट होता है।
	दनीध्वंसीति (लुक्)	-सम-
(४) भ्रंसु	बनीभ्रस्यते (यङ्)	वह पुनः-पुनः पतित होता है।
	बनीभ्रंसीति (लुक्)	-सम-
(५) कस	चनीकस्यते (यङ्)	वह पुनः हिलता/कांपता है।
	चनीकसीति (लुक्)	-सम-
(६) पत	पनीपत्यते (यङ्)	वह पुनः-पुनः गिरता है।
	पनीपतीति (लुक्)	-सम-
(७) पद	पनीपद्यते (यङ्)	वह पुनः-पुनः जाता है।
	पनीपदीति (लुक्)	-सम-
(८) स्कन्द	चनीस्कद्यते (यङ्)	वह पुनः-पुनः जाता/सूखता है।
	चनीस्कन्दीति (लुक्)	-सम-

आर्यभाषाः *अर्थ-(वञ्चु०) वञ्चु, स्रंसु, ध्वंसु, भ्रंसु, कस, पत, पद, स्कन्द इन (अङ्गानाम्) अङ्गों के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (यङ्लुकोः) यङ् प्रत्यय और यङ्लुक् परे होने पर (नीक्) नीक् आगम होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-(१) वनीवच्यते। *यहां **'वञ्चु गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'यङ्' प्रत्यय है। 'सन्यङोः' (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है-व-वञ्च्य। इस स्थिति में इस सूत्र से अभ्यास को 'नीक्' आगम होता है। **'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति'** (६।४।२४) से अनुनासिक (न्) का लोप होता है। ऐसे ही यङ्लुक् में-**वनीवञ्चीति।** यहां यङ् प्रत्यय का लुक् हो जाने से **'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति'** (६।४।२४) से अनुनासिक (न्) का लोप नहीं होता है। **'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्'** (१।१।६२) से भी प्रत्ययलक्षण कार्य नहीं किया जा सकता है क्योंकि **'न लुमताऽङ्गस्य'** (१।१।६३) अर्थात् लुमान् (लुक्-श्लु-लुप्) के द्वारा किये गये प्रत्यय-लोप में प्रत्ययलक्षण कार्य नहीं होता है।*

*(२) **सनीस्रस्यते।** **'स्रंसु अवस्रंसने'** (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत्।*

*(३) **दनीध्वंस्यते।** **'ध्वंसु अवस्रंसने'** (भ्वा०आ०)।*

*(४) **बनीभ्रस्यते।** **'भ्रंसु अवस्रंसने'** (भ्वा०आ०)।*

*(५) **चनीकस्यते।** **'कस गतौ'** (भ्वा०प०)।*

*(६) **पनीपत्यते।** **'पत्लृ गतौ'** (भ्वा०प०)।*

*(७) **पनीपद्यते।** 'पद गतौ' (दि०आ०)।*

*(८) **चनीस्कद्यते। स्कन्दिर्** {स्कन्द्} (भ्वा०आ०)।*

नुक्-आगमः-

(२८) नुगतोऽनुनासिकान्तस्य।८५।

प०वि०-नुक् १।१ अतः १।१ अनुनासिकान्तस्य ६।१।

स०-अनुनासिकोऽन्ते यस्य तद् अनुनासिकान्तम्, तस्य-अनुनासिकान्तस्य (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, यङ्लुकोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अनुनासिकान्तस्याऽङ्गस्याऽतोऽभ्यासस्य यङ्लुकोर्नुक्।

अर्थः-अनुनासिकान्तस्याऽङ्गस्याऽकारान्तस्याऽभ्यासस्य यङि यङ्लुकि च परतो नुगागमो भवति। **उदाहरणम्-**

धातुः	उदाहरणम्	भाषार्थः
(१) तन्	स तन्तन्यते	वह पुनः-पुनः विस्तृत करता है।
	स तन्तनीति	-सम-
(२) गम्	जङ्गम्यते	वह पुनः-पुनः गमन करता है।
	जङ्गमीति	-सम-
(३) यम्	स यंयम्यते	वह पुनः-पुनः उपरत होता है।
	स यंयमीति	-सम-
(४) रम्	स रंरम्यते	वह पुनः-पुनः रमण करता है।
	स रंरमीति	-सम-

आर्यभाषाः *अर्थ-(अनुनासिकान्तस्य) अनुनासिक वर्ण जिसके अन्त में है उस (अङ्गस्य) अङ्ग के (अतः) अकारान्त (अभ्यासस्य) अभ्यास को (यङ्लुकोः) यङ् प्रत्यय और यङ्लुक् परे होने पर (नुक्) नुक् आगम होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-तन्तन्यते। *यहां 'तनु विस्तारे' (तना०उ०) धातु से पूर्ववत् 'यङ्' प्रत्यय है। 'सन्यङोः' (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है। त-तनय्। इस स्थिति में इस सूत्र से इस अनुनासिकान्त अभ्यास के अकार को 'नुक्' आगम होता है। **'नश्चापदान्तस्य झलि'** (८।३।२४) से नकार को अनुस्वार और **'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः'** (८।४।५८) से परसवर्ण नकार होता है। ऐसे ही यङ्लुक् में-**तन्तनीति।** 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से-**जङ्गम्यते, जङ्गमीति।** 'यम उपरमे' (भ्वा०प०) धातु से-**यंयम्यते, यंयमीति।***

*यह नुक्-आगम अनुस्वार का उपलक्षण है, अतः यहां अनुस्वार ही आगम होता है, नुक् नहीं, क्योंकि 'नुक्' आगम करने पर यहां **'नश्चापदान्तस्य झलि'** (८।३।२४) से परसवर्ण नहीं हो सकता क्योंकि झल्-वर्ण (य्) परे नहीं है। वा०- **'पदान्तवच्च'** (८।४।५८) से इस उक्त नुक् (अनुस्वार) आगम को पदान्तवत् मानकर **'वा पदान्तस्य'** (८।४।५९) से विकल्प से परसवर्ण होता है-**यंयम्यते।** परसवर्ण पक्ष में-**यंयम्यते।** **'रमु क्रीडायाम्'** (भ्वा०आत्मनेपद) धातु से-**रंरम्यते, रंरमीति।** यहां परसवर्ण नहीं होता है, क्योंकि **"रेफोष्मणां सवर्णा न सन्ति"** (पा०शिक्षा)।*

नुक्-आगमः-

(२६) जपजभदहदशभञ्जपशां च।८६।

प०वि०-जप-जभ-दह-दश-भञ्ज-पशाम् ६।३ च अव्ययपदम्।

स०-जपश्च जभश्च दहश्च भञ्जश्च पश् च ते जपजभदहदशभञ्ज-पशः, तेषाम्-जपजभदहदशभञ्जपशाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, यङ्लुकोः अतः, नुगिति चानुवर्तते।

अन्वयः-जपजभदहदशभञ्जपशामऽङ्गानां चाभ्यासस्यातो यङ्-लुकोर्नुक्।

अर्थः-जपजभदहदशभञ्जपशामऽङ्गानां चाऽभ्यासस्याऽकारस्य यङि यङ्लुकि च परतो नुगागमो भवति। **उदाहरणम्**-

धातुः	उदाहरणम्	भाषार्थः
(१) जप	स जञ्जप्यते	वह निन्दित विधि से जप करता है।
	स जञ्जपीति	-सम-
(२) जभ	स जञ्जभ्यते	वह निन्दित विधि से जंभाई लेता है।
	स जञ्जमीति	-सम-
(३) दह	स दन्दह्यते	वह निन्दित विधि से भस्म करता है।
	स दन्दहीति	-सम-
(४) दश	स दन्दश्यते	वह निन्दित विधि से डसता करता है।
	स दन्दशीति	-सम-
(५) भञ्ज	स बम्भज्यते	वह पुनः-पुनः तोड़ता है।
	स बम्भजीति	-सम-
(६) पश	स पम्पश्यते	वह पुनः-पुनः बांधता है।
	स पम्पशीति	-सम-

***आर्यभाषाः** अर्थ-(जप०) जप, जभ, दी, दश, भञ्ज, पश इन (अङ्गानाम्) अङ्गों के (च) भी (अभ्यासस्य) अभ्यास के (अतः) अकार को (यङ्लुकोः) यङ् प्रत्यय और यङ्लुक् परे होने पर (नुक्) नुक् आगम होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-(१) जञ्जप्यते।** यहां **'जप व्यक्तायां वाचि मानसे च'** (भ्वा०प०) धातु से **'लुपसदचरजपजभदहदशगॄभ्यो भावगर्हायाम्'** (३।१।२४) से भाव-गर्हा अर्थ में 'यङ्' प्रत्यय है, क्रियासमभिहार में नहीं। 'सन्यङोः' (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है-ज-जप्य। इस स्थिति में अभ्यास-अकार को नुक् आगम होता है। **'नश्चापदान्तस्य झलि'** (८।३।२४) से नकार को अनुस्वार और **'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः'** (८।४।५७) से परसवर्ण ञकार होता है। यङ्लुक् में-**जञ्जपीति।** ऐसे ही **'जभी गात्रविनामे'

(भ्वा०आ०) धातु से-जञ्जभ्यते, जञ्जभीति। 'दह भस्मीकरणे' (भ्वा०प०) धातु से-दन्दह्यते, दन्दहीति। 'दशि दंशनदर्शनयोः' (चु०आ०) धातु से-दन्दश्यते, दन्दशीति। यह धातु सूत्रपाठ में 'दश' पठित है, अतः यङ्लुक् में भी अनुनासिक का लोप होता है।

(२) बम्भज्यते। 'भञ्जो आमर्दने' (रुधा०प०) धातु से पूर्ववत्।

(३) पम्पश्यते। 'पश बन्धने' (चु०उ०)।

नुक्-आगमः—

(३०) चरफलोश्च।८७।

प०वि०-चर-फलोः ६।२ च अव्ययपदम्।

स०-चरश्च फल् च तौ चरफलौ, तयोः-चरफलोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, यङ्लुकोः, अतः, नुगिति चानुवर्तते।

अन्वयः-चरफलोरङ्गयोश्चाऽभ्यासस्याऽतो यङ्लुकोर्नुक्।

अर्थः-चरफलोरङ्गयोश्चाऽभ्यासस्याऽकारस्य यङि यङ्लुकि च परतो नुगागमो भवति।

उदा०-(चर) स चञ्चूर्यति, स चञ्चूरीति। (फल) स पम्फुल्यते, पम्फुलीति।

आर्यभाषाः अर्थ-*(चरफलोः) चर, फल इन (अङ्गयोः) अङ्गों के (अभ्यासस्य) अभ्यास के (अतः) अकार को (यङ्लुकोः) यङ् प्रत्यय और यङ्लुक् परे होने पर (नुक्) नुक् आगम होता है।*

उदा०-(चर) स चञ्चूर्यति, स चञ्चूरीति। वह निन्दित विधि से चलता है अथवा खाता है। (फल) स पम्फुल्यते, पम्फुलीति। वह पुनः-पुनः सफल होता है।

सिद्धि-(१) चञ्चूर्यति। यहां 'चर गतिभक्षणयोः' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'यङ्' प्रत्यय है। 'सन्यङोः' (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है-च-चुर्य। इस स्थिति में इस सूत्र से अभ्यास-अकार को नुक् आगम होता है। पूर्ववत् नकार को अनुस्वार और उसे परसवर्ण आदेश होता है। 'उत्परस्यातः' (७।४।८८) से अभ्यास से परवर्ती चर् के अकार को उकारादेश और इसे 'हलि च' (८।२।७७) से दीर्घ होता है। यङ्लुक् में-चञ्चुरीति। ऐसे ही 'फल निष्पत्तौ' (भ्वा०प०) धातु से-पम्फुल्यते। यङ्लुक् में-पम्फुलीति।

उत्-आदेशः–

(३१) उत्परस्यातः।८८।

प०वि०–उत् १।१ परस्य ६।१ अतः ६।१।

अनु०–अङ्गस्य, अभ्यासस्य, यङ्लुकोः, चरफलोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–चरफलोरङ्गयोरभ्यासात् परस्यातो यङ्लुकोरुत्।

अर्थः–चरफलोरङ्गयोरभ्यासात् परस्याऽकारस्य स्थाने यङि यङ्लुकि च परत उकारादेशो भवति।

उदा०–(**चर**) स चञ्चूर्यति, स चञ्चूरीति। (**फल**) स पम्फुल्यते, पम्फुलीति।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(चरफलोः) चर, फल इन (अङ्गयोः) अङ्ग के (अभ्यासात्) अभ्यास से (परस्य) परवर्ती (अतः) अकार के स्थान में (यङ्लुकोः) यङ् प्रत्यय और यङ्लुक् परे होने पर (उत्) उकारादेश होता है।*

*उदा०–(चर) **स चञ्चूर्यति, स चञ्चूरीति।** वह निन्दित विधि से चलता है अथवा खाता है। (फल) **स पम्फुल्यते, पम्फुलीति।** वह पुनः-पुनः सफल होता है।*

*सिद्धि–**चञ्चूर्यते।** यहां 'चर गतिभक्षणयोः' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'यङ्' प्रत्यय और धातु को द्वित्व होता है–च-चर्य। इस स्थिति में इस सूत्र से अभ्यास से परवर्ती चर् के अकार को उकार आदेश होता है और 'हलि च' (८।२।७७) से इसे दीर्घ होता है। यङ्लुक् में–**चञ्चुरीति।** 'चरफलोश्च' (७।४।८७) से अभ्यास-अकार को 'नुक्' आगम होता है। ऐसे ही 'फल निष्पत्तौ' (भ्वा०प०) धातु से–**पम्फुल्यते।** यङ्लुक् में–**पम्फुलीति।***

उत्-आदेशः–

(३२) ति च।८९।

प०वि०–ति ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–अङ्गस्य, चरफलोः, उत्, अत इति चानुवर्तते।

अन्वयः–चरफलोरङ्गयोरतस्ति च उत्।

अर्थः–चरफलोरङ्गयोरकारस्य स्थाने तकारादौ प्रत्यये परतश्च उकारादेशो भवति।

उदा०-(चर) चरणं चूर्तिः। ब्रह्मणश्चूर्तिः। (फल) प्रफुल्तिः। प्रफुल्ताः सुमनसः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(चरफलोः) चर, फल इन (अङ्गयोः) अङ्गों के (अतः) अकार के स्थान में (ति) तकारादि प्रत्यय परे होने पर (च) भी (उत्) उकारादेश होता है।*

*उदा०-(चर) **चरणं चूर्तिः।** चलना वा खाना। **ब्रह्मणश्चूर्तिः।** ब्राह्मण का चलना वा खाना। (फल) **प्रफुल्तिः।** सुसफल होना। **प्रफुल्ताः सुमनसः।** सुसफल पण्डितजन।*

*सिद्धि-**चूर्तिः।** यहां 'चर गतिभक्षणयोः' (भ्वा०प०) धातु से **'स्त्रियां क्तिन्'** (३।३।९४) से स्त्रीलिङ्ग में 'क्तिन्' प्रत्यय है। प्र+चर्+ति। इस स्थिति में इस सूत्र से तकारादि 'क्तिन्' प्रत्यय परे होने पर 'चर्' के अकार को उकारादेश होता है और इसे 'हलि च' (८।२।७७) से इसे दीर्घ होता है। ऐसे ही **'फल निष्पत्तौ'** (भ्वा०प०) धातु से-**प्रफुल्तिः।** क्त प्रत्यय में-**प्रफुल्ताः।***

विशेषः *यहां **अभ्यासस्य** और **यङ्लुकोः** इन पदों की अनुवृत्ति है किन्तु उनका अर्थवश सम्बन्ध नहीं होता है।*

रीक्-आगमः-

(३३) रीगृदुपधस्य च।९०।

प०वि०-रीक् १।१ ऋदुपधस्य ६।१ च अव्ययपदम्।

स०-ऋद् उपधा यस्य स ऋदुपधः, तस्य-ऋदुपधस्य (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, यङ्लुकोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-ऋदुपधस्याऽङ्गस्याऽभ्यासस्य यङ्लुकोरीक्।

अर्थः-ऋकारोपधस्याऽङ्गस्य चाऽभ्यासस्य यङि यङ्लुकि च परतो रीगागमो भवति।

उदा०-(वृतु) स वरीवृत्यते, वरीवृतीति। (वृधु) स वरीवृध्यते, वरीवृधीति। (नृत्) स नरीनृत्यते, नरीनृतीति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ऋदुपधस्य) ऋकार-उपधावाले (अङ्गस्य) अङ्ग के (च) भी (अभ्यासस्य) अभ्यास को (यङ्लुकोः) यङ् प्रत्यय और यङ्लुक् परे होने पर (रीक्) रीक् आगम होता है।*

उदा०-(वृतु) स वरीवृत्यते, वरीवृतीति। वह पुनः-पुनः वर्ताव (व्यवहार) करता है। (वृधु) स वरीवृध्यते, वरीवृधीति। वह पुनः-पुनः बढ़ता है। (नृत्) स नरीनृत्यते, नरीनृतीति। वह पुनः-पुनः नाचती है।

सिद्धि-वरीवृत्यते। यहां 'वृतु वर्तने' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् यङ् प्रत्यय और धातु को द्वित्व होता है। वृ-वृत्य। 'उरत्' (७।४।६६) से अभ्यास-ऋकार को अकारादेश होता है। व-वृत्य। इस स्थिति में इस सूत्र से ऋकार-उपधावान् 'वृतु' धातु के अभ्यास को रीक् आगम होता है-वरीक्+वृत्य। वरी-वृत्य। वरीवृत्य+लट्। वरीवृत्यते। यङ्लुक् में-वरीवृतीति। ऐसे ही 'वृधु वृद्धौ' (भ्वा०आ०) धातु से-वरीवृध्यते। यङ्लुक् में-वरीवृधीति। 'नृती गात्रविक्षेपे' (दि०प०) धातु से-नरीनृत्यते। यङ्लुक् में-नरीनृतीति।

रुक्-रिक्-रीक्-आगमः-

(३४) रुग्रिकौ च लुकि।६१।

प०वि०-रुक्-रिकौ १।२ च अव्ययपदम्, लुकि ७।१।

स०-रुक् च रिक् च तौ रुग्रिकौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, रीक्, ऋदुपधस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-ऋदुपधस्याऽङ्गस्याऽभ्यासस्य यङ्लुकि रुग्रिकौ रीक् च।

अर्थः-ऋकारोपधस्याऽङ्गस्याऽभ्यासस्य यङ्लुकि सति रुग्रिकौ रीक् चाऽऽगमो भवति।

उदा०-(नृत्) **रुक्**-नर्नर्ति। **रिक्**-नरिनर्ति। **रीक्**-नरीनर्ति। (वृतु) **रुक्**-वर्वर्ति। **रिक्**-वरिवर्ति। **रीक्**-वरीवर्ति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ऋदुपधस्य) ऋकार उपधावाले (अङ्गस्य) अङ्ग के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (यङ्लुकि) यङ्लुक् परे होने पर (रुग्रिकौ) रुक्, रिक् (च) और (रीक्) रीक् आगम होता है।*

उदा०-(नृत्) रुक्-नर्नर्ति। रिक्-नरिनर्ति। रीक्-नरीनर्ति। वह पुनः-पुनः नाचती है। (वृतु) रुक्-वर्वर्ति। रिक्-वरिवर्ति। रीक्-वरीवर्ति। वह पुनः-पुनः वर्ताव (व्यवहार) करता है।

सिद्धि-नर्नर्ति। यहां 'नृती गात्रविक्षेपे' (दि०प०) इस ऋकार-उपधावान् धातु से पूर्ववत् 'यङ्' प्रत्यय और धातु को द्वित्व होता है। 'यङोऽचि च' (२।४।७४) से 'यङ्' का लुक् हो जाता है। न+नृत्। इस स्थिति में इस सूत्र से अभ्यास को 'रुक्' आगम होता है-नरुक्+नृत्। नर+नृत। नर्नृत्+लट्। नर्नतीति। रिक् आगम में-नरिनृतीति। रीक् आगम में-नरीनृतीति। ऐसे ही 'वृतु वर्तने' (भ्वा०आ०) धातु से-वर्वर्ति, वरिवर्ति, वरीवर्ति।

रुक्-रिक्-रीक्-आगमः—

(३५) ऋतश्च।६२।

प०वि०–ऋतः ६।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–अङ्गस्य, अभ्यासस्य, रीक्, रुग्रिकौ, लुकीति चानुवर्तते।

अन्वयः-ऋतोऽङ्गस्य चाऽभ्यासस्य यङ्लुकि रुग्रिकौ रीक् च।

अर्थः–ऋकारान्तस्याऽङ्गस्य चाऽभ्यासस्य यङ्लुकि परतो रुग्रिकौ रीक् चाऽऽगमो भवति।

उदा०–(कृ) **रुक्**–चर्कर्ति। **रिक्**–चरिकर्ति। **रीक्**–चरीकर्ति। (हृ) **रुक्**–जर्हर्ति। **रिक्**–जरिहर्ति। **रीक्**–जरीहर्ति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(ऋतः) ऋकारान्त (अङ्गस्य) अङ्ग के (च) भी (अभ्यासस्य) अभ्यास को (यङ्लुकि) यङ्लुक् परे होने पर (रुग्रिकौ) रुक्, रिक् और (रीक्) रीक् आगम होता है।*

*उदा०-(कृ) रुक्-**चर्कर्ति**। रिक्-**चरिकर्ति**। रीक्-**चरीकर्ति**। वह पुनः-पुनः बनाता है। (हृ) रुक्-**जर्हर्ति**। रिक्-**जरिहर्ति**। रीक्-**जरीहर्ति**। वह पुनः-पुनः हरण करता है।*

***सिद्धि-चर्कर्ति**। यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से पूर्ववत् 'यङ्' प्रत्यय और धातु को द्वित्व होता है। 'यङोऽचि च' (२।४।७४) से 'यङ्' का लुक् हो जाता है। 'उरत्' (७।४।६६) से अभ्यास-ऋकार को अकारादेश होता है। क-कृ। इस स्थिति में इस सूत्र से अभ्यास को 'रुक्' आगम होता है। क रुक्-कृ। कर्-कृ। चर्-कृ। चर्कृ+लट्। चर्कर्ति। 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से अभ्यास-ककार को चवर्ग चकारादेश होता है। रिक् आगम में-**चरिकर्ति**। रीक् आगम में-**चरीकर्ति**। ऐसे ही 'हृञ् हरणे' (भ्वा०प०) धातु से-**जर्हर्ति, जरिहर्ति, जरीहर्ति**।*

सन्वद्भावः—

(३६) सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे।६३।

प०वि०–सन्वत् अव्ययपदम्, लघुनि ७।१ चङ्परे ७।१ अनग्लोपे ७।१

तद्धितवृत्तिः–सनि इवेति सन्वत् **'तत्र तस्येव'** (५।१।११६) इति सप्तम्यर्थे वतिः प्रत्ययः।

स०-चङ्परो यस्मात् तत्-चङ्परम्, तस्मिन्-चङ्परे (बहुव्रीहिः)। अको लोप इति अग्लोपः, न विद्यतेऽग्लोपो यस्मिँस्तत्-अनग्लोपम्, तस्मिन्-अनग्लोपे (षष्ठीगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-लघुनि अङ्गस्याऽभ्यासस्य चङ्परे णौ, अनग्लोपे सन्वत्।

अर्थः-लघुनि धात्वक्षरे परतोऽङ्गस्य योऽभ्यासस्तस्य चङ्परके णौ परतोऽनग्लोपे च सति सन्वत् कार्यं भवति। **उदाहरणम्**-

(१) **'सन्यतः'** (७।४।७९) इत्युक्तम्, चङ्परेऽपि तद्भवति। यथा-अचीकरत्, अजीकरत्।

(२) **'ओः पुयण्ज्यपरे'** (७।४।८०) इत्युक्तम्, चङ्परेऽपि तद्भवति। यथा-अपीपवत्, अलीलवत्। अजीजवत्।

(३) **'स्रवतिशृणोतिद्रवतिप्रवतिप्लवतिच्यवतीनां वा'** (७।४।८१) इत्युक्तम्, चङ्परेऽपि तद्भवति। यथा-**(स्रवति)** असिस्रवत्, असुस्रवत्। **(शृणोति)** अशिश्रवत्, अशुश्रवत्। **(द्रवति)** अदिद्रवत्, अदुद्रवत्। **(प्रवति)** अपिप्रवत्, अपुप्रवत्। **(प्लवति)** अपिप्लवत्, अपुप्लवत्। **(च्यवति)** अचिच्यवत्, अचुच्यवत्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(लघुनि) लघु धातु-अक्षर परे होने पर (अङ्गस्य) अङ्ग का जो (अभ्यासस्य) अभ्यास है, उसको (चङ्परे) चङ्परक णिच् प्रत्यय परे होने पर तथा (अनग्लोपे) अक्-वर्ण का लोप न होने पर (सन्वत्) सन् प्रत्यय परे होने पर जो अभ्यास-कार्य होता है, वह यहां भी होता है। उदाहरण-*

*(१) 'सन्यतः' (७।४।७९) से जो अभ्यास-कार्य कहा है वह चङ्परक णिच् प्रत्यय परे होने पर भी होता है। **अचीकरत्।** उसने कराया, बनवाया। **अजीकरत्।** उसने हरण कराया।*

*(२) 'ओः पुयण्ज्यपरे' (७।४।८०) से जो अभ्यास-कार्य कहा है वह चङ्परक णिच् प्रत्यय परे होने पर भी होता है। **अपीपवत्।** उसने पवित्र कराया। **अलीलवत्।** उसने छेदन (कटाई) कराया। **अजीजवत्।** उसने गमन कराया।*

*(३) 'स्रवतिशृणोतिद्रवतिप्रवतिप्लवतिच्यवतीनां वा' (७।४।८१) से जो अभ्यास-कार्य कहा है वह चङ्परक णिच् प्रत्यय परे होने पर भी होता है। **(स्रवति) असिस्रवत्, असुस्रवत्।** उसने स्राव (बहाव) कराया। **(शृणोति) अशिश्रवत्, अशुश्रवत्।***

उसने सुनवाया। (द्रवति) अदिद्रवत्, अदुद्रवत्। उसने दौड़ कराई, भगाया। (प्रवति) अपिप्रवत्, अपुप्रवत्। उसने उछलवाया। (प्लवति) अपिप्लवत्, अपुप्लवत्। उसने प्लवन कराया। (च्यवति) अचिच्यवत्, अचुच्यवत्। उसने हटवाया।

सिद्धि-**अचीकरत्**। यहां प्रथम '**डुकृञ् करणे**' (तना०उ०) से '**हेतुमति च**' (३।१।२६) से णिच् प्रत्यय है। पश्चात् णिजन्त 'कारि' धातु से 'लुङ्' प्रत्यय, '**णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्**' (३।१।४८) से 'च्लि' के स्थान में चङ् आदेश और 'चङि' से द्वित्व करते समय '**द्विर्वचनेऽचि**' (१।१।५९) से स्थानिवद्भाव होकर-कृ-कारि द्वित्व होता है। '**णेरनिटि**' (६।४।५१) से 'णिच्' का लोप और '**णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः**' (७।४।१) से उपधा को ह्रस्वादेश होता है। '**उरत्**' (७।४।६६) से अभ्यास-ऋकार को अकारादेश होता है। क-कर्+अ। इस स्थिति में इस सूत्र से सन्वद्भाव होने से '**सन्यतः**' (७।४।७९) से अभ्यास-अकार को इकारादेश होता है और '**दीर्घो लघोः**' (७।४।९४) से इसे दीर्घ होता है। '**कुहोश्चुः**' (७।४।६२) से अभ्यास-ककार को चवर्ग चकारादेश होता है। '**हृञ् हरणे**' (भ्वा०उ०) धातु से-**अजीहरत्**। ऐसे ही '**पूञ् पवने**' (क्र्या०उ०) आदि धातुओं से '**अपीपवत्**' आदि पदों की सिद्धियां समझें।

दीर्घादेशः-

(३७) दीर्घो लघोः।९४।

प०वि०-दीर्घः १।१ लघोः ६।१।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, लघुनि, चङ्परे, अनग्लोपे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-लघुनि अङ्गस्याऽभ्यासस्य लघोश्चङ्परे णौ, अनग्लोपे दीर्घः।

अर्थः-लघुनि धात्वक्षरे परतोऽङ्गस्य योऽभ्यासस्तस्य लघोर्वर्णस्य चङ्परके णौ परतोऽनग्लोपे च सति दीर्घो भवति।

उदा०-अचीकरत्, अजीहरत्, अलीलवत्, अपीपवत्।

***आर्यभाषाः** अर्थ*-(लघुनि) लघु धातु अक्षर परे होने पर (अङ्गस्य) अङ्ग का जो (अभ्यासस्य) अभ्यास है उसके (लघोः) लघु वर्ण को (चङ्परे) चङ्परक णिच् प्रत्यय परे होने पर तथा (अनग्लोपे) अक्-वर्ण का लोप न होने पर (दीर्घः) दीर्घ होता है।

उदा०-**अचीकरत्**। उसने कराया, बनवाया। **अजीहरत्**। उसने हरण कराया। **अलीलवत्**। उसने लवन (कटाई) कराया। **अपीपवत्**। उसने पवित्र कराया।

सिद्धि-**अचीकरत्**। आदि पदों की सिद्धियां पूर्ववत् (७।४।९३) हैं। अभ्यास के लघु-वर्ण को दीर्घादेश का कथन विशेष है।

अत्-आदेशः-

(३८) अत् स्मृदृत्वरप्रथम्रदस्तृस्पशाम्।६५।

प०वि०-अत् १।१ स्मृ-दृ-त्वर-प्रथ-म्रद-स्तृ-स्पशाम् ६।३।

स०-स्मृश्च दृश्च त्वरश्च प्रथश्च म्रदश्च स्तृश्च स्पश् च ते-स्मृदृत्वरप्रथम्रदस्तृस्पशः, तेषाम्-स्मृदृत्वरप्रथम्रदस्तृस्पशाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अङ्गस्य, अभ्यासस्य, चङ्परे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-स्मृदृत्वरप्रथम्रदस्तृस्पशामऽङ्गानामऽभ्यासस्य चङ्परे णौ अत्।

अर्थः-स्मृदृत्वरप्रथम्रदस्तृस्पशामऽङ्गानामभ्यासस्य चङ्परे णौ परतोऽकारादेशो भवति।

उदा०-(स्मृ) असस्मरत्। (दृ) अददरत्। (त्वर) अतत्वरत्। **(प्रथ) अपप्रथत्।** (म्रद) अमम्रदत्। (स्तृ) अतस्तरत्। (स्पश) अपस्पशत्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(स्मृ०) स्मृ, दृ, त्वर, प्रथ, म्रद, स्तृ, स्पश इन (अङ्गानाम्) अङ्गों के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (चङ्परे) चङ्परक णिच् प्रत्यय परे होने पर (अत्) अकारादेश होता है।*

*उदा०-(स्मृ) **असस्मरत्।** उसने स्मरण कराया। (दृ) **अददरत्।** उसने डराया। (त्वर) **अतत्वरत्।** उसने सम्भ्रम (तकाजा) कराया। (प्रथ) **अपप्रथत्।** उसने प्रख्यात कराया। (म्रद) **अमम्रदत्।** उसने मर्दन कराया। (स्तृ) **अतस्तरत्।** उसने आच्छादित कराया, ढकवाया। (स्पश) **अपस्पशत्।** उसने बाधित/स्पर्श कराया।*

*सिद्धि-(१) **असस्मरत्।** यहां प्रथम **'स्मृ चिन्तायाम्'** (भ्वा०उ०) धातु से 'हेतुमति च' (३।१।२६) से हेतुमान् अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है। पश्चात् णिजन्त 'स्मारि' धातु से 'लुङ्' प्रत्यय और **'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्'** (३।१।४८) से 'च्लि' के स्थान में 'चङ्' आदेश है। 'चङि' (६।१।११) से धातु को द्वित्व होता है-स्मृ-स्मारि। स्म-मर्+अ। इस स्थिति में 'उरत्' (७।४।६६) से अभ्यास-ऋकार को अकारादेश होकर इस सूत्र से इसे अकारादेश होता है। 'सन्वतः' (७।४।७९) से इकारादेश प्राप्त था। यह उसका अपवाद है।*

(२) अददरत्। 'दॄ भये' (स्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।

(३) अतत्वरत्। 'ञित्वरा सम्भ्रमे' (भ्वा०आ०)।

(४) अपप्रथत्। 'प्रथ प्रख्याने' (भ्वा०आ०)।

(५) अमम्रदत्। 'म्रद मर्दने' (भ्वा०आ०)।

(६) अतस्तरत्। 'स्तॄञ् आच्छादने' (स्वा०उ०)।

(७) अपस्पशत्। 'स्पश बाधनस्पर्शयोः' (भ्वा०उ०)।

अत्-आदेशविकल्पः–

(३६) विभाषा वेष्टिचेष्ट्योः।६६।

प०वि०–विभाषा १।१ वेष्टि-चेष्ट्योः ६।२।

स०–वेष्टिश्च चेष्टिश्च तौ वेष्टिचेष्टी, तयोः वेष्टिचेष्ट्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–अङ्गस्य, अभ्यासस्य, चङ्परे, अदिति चानुवर्तते।

अन्वयः–वेष्टिचेष्ट्योरङ्गयोरभ्यासस्य चङ्परे णौ विभाषाऽत्।

अर्थः–वेष्टिचेष्ट्योरङ्गयोरभ्यासस्य चङ्परके णौ परतो विकल्पेनाऽकारादेशो भवति।

उदा०–**(वेष्टि)** अववेष्टत्, अविवेष्टत्। **(चेष्टि)** अचचेष्टत्, अचिचेष्टत्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(वेष्टिचेष्ट्योः) वेष्टि, चेष्टि इन (अङ्गयोः) अङ्गों के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (चङ्परे) चङ्परक णिच् प्रत्यय परे होने पर (विभाषा) विकल्प से (अत्) अकारादेश होता है।*

*उदा०-(वेष्टि) **अववेष्टत्, अविवेष्टत्।** उसने वेष्टन (लपेटना) कराया। **(चेष्टि) अचचेष्टत्, अचिचेष्टत्।** उसने चेष्टा (प्रयत्न) कराई।*

*सिद्धि-**अववेष्टत्।** यहां प्रथम 'वेष्ट वेष्टने' (भ्वा०आ०) धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। पश्चात् णिजन्त 'वेष्टि' धातु से 'लुङ्' प्रत्यय, **'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्'** (३।१।४८) से 'च्लि' के स्थान में 'चङ्' आदेश और **'चङि'** (६।१।११) से धातु को द्वित्व होता है। वि-वेष्टि। इस स्थिति में इस सूत्र से अभ्यास-इकार को अकारादेश होता है। विकल्प-पक्ष में अकारादेश नहीं है-**अविवेष्टत्।** ऐसे ही 'चेष्ट चेष्टायाम्' (भ्वा०प०) धातु से-**अचचेष्टत्, अचिचेष्टत्।***

ईकार-अकारादेशौ—

(४०) ई च गणः।६७।

प०वि०–ई १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्, गणः ६।१।

अनु०–अङ्गस्य, अभ्यासस्य, चङ्परे, अदिति चानुवर्तते।

अन्वयः–गणोऽङ्गस्याऽभ्यासस्य चङ्परे णौ ईः, अच्च।

अर्थः–गणोऽङ्गस्याऽभ्यासस्य चङ्परके णौ परत ईकारोऽकारश्चाऽऽदेशो भवति।

उदा०–अजीगणत्, अजगणत्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(गणः) गण् इस (अङ्गस्य) अङ्ग के (अभ्यासस्य) अभ्यास को (चङ्परे) चङ्परक णिच् प्रत्यय परे होने पर (ईः) ईकार (च) और (अत्) अकारादेश होता है।*

*उदा०–**अजीगणत्, अजगणत्।** उसने गणना की।*

*सिद्धि-**अजीगणत्।** यहां प्रथम **'गण संख्याने'** (चु०उ०) धातु से **'सत्यापपाश०'** (३।१।२५) से चौरादिक 'णिच्' प्रत्यय है। पश्चात् णिजन्त 'गणि' धातु से 'लुङ्' प्रत्यय, **'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्'** (३।१।४७) से 'च्लि' के स्थान में 'चङ्' आदेश और **'चङि'** (६।१।११) से धातु को द्वित्व होता है-ग-गणि। इस स्थिति में इस सूत्र से अभ्यास को ईकारादेश होता है। 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से गकार को चवर्ग जकारादेश होता है। अकारादेश पक्ष में-**अजगणत्।***

{इति अभ्यासकार्यप्रकरणम्}

।। इति अङ्गाधिकारः समाप्तः।।

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने
सप्तमाध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः।
समाप्तश्चायं सप्तमोऽध्यायः।।

अष्टमाध्यायस्य प्रथमः पादः

द्विर्वचनप्रकरणम्

द्विर्वचनाधिकारः–

(१) सर्वस्य द्वे।१।

प०वि०–सर्वस्य ५।१ द्वे १।२।

अर्थः–सर्वस्य द्वे भवतः इत्यधिकारोऽयम्। **'पदस्य'** (८।१।१६) इत्यस्मात्–प्राक्, यदितोऽग्रे वक्ष्यति तत्र सर्वस्य द्वे भवत इत्येवं तद् वेदितव्यम्। यथा वक्ष्यति–**'नित्यवीप्सयोः'** (८।१।४) इति, तत्र सर्वस्य स्थाने द्वे भवतः।

उदा०–पचति पचति। ग्रामो ग्रामो रमणीय इत्यादिकम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(सर्वस्य, द्वे) 'सर्वस्य द्वे' यह अधिकार सूत्र है। **'पदस्य'** (८।१।१६) इस सूत्र से पहले पाणिनि मुनि इससे आगे जो कहेंगे वहां सबके स्थान में द्वित्व होता है, ऐसा जानना चाहिये। जैसे कि पाणिनि मुनि कहेंगे–**'नित्यवीप्सयोः'** (८।१।४) अर्थात् नित्य और वीप्सा अर्थ में (सर्वस्य) सब को (द्वे) द्वित्व होता है।*

*उदा०–**पचति पचति।** वह पुनः-पुनः पकाता है। **ग्रामो ग्रामो रमणीयः।** ग्राम-ग्राम (प्रत्येक ग्राम) सुन्दर है।*

आम्रेडित-संज्ञा–

(२) तस्य परमाम्रेडितम्।२।

प०वि०–तस्य ६।१ परम् १।१ आम्रेडितम् १।१।

अर्थः–तस्य द्विरुक्तस्य यत् परं शब्दरूपं तदाऽऽम्रेडितसंज्ञकं भवति।

उदा०–चौर चौर३ वृषल वृषल३ दस्यो दस्यो३ घातयिष्यामि त्वा, बन्धयिष्यामि त्वा।

आर्यभाषाः अर्थ-*(तस्य) उस द्वित्व किये हुये शब्द के (परम्) परवर्ती शब्द की (आम्रेडितम्) आम्रेडित संज्ञा होती है।*

*उदा०–**चौर चौर३ वृषल वृषल३ दस्यो दस्यो३ घातयिष्यामि त्वा, बन्धयिष्यामि त्वा।** हे चौर चौर३ वृषल वृषल३ दस्यो दस्यो३ मैं तुझे मरवाऊंगा, मैं तुझे बन्धवाऊंगा।*

सिद्धि-चौर चौर३। यहां 'वाक्यादेरामन्त्रितस्य०' (८।१।८) से भर्त्सन-अर्थ में द्विर्वचन होता है। इससे परवर्ती अर्थात् द्वितीय 'चौर' शब्द की आम्रेडित संज्ञा होती है। 'आम्रेडितं भर्त्सने' (८।२।९५) से आम्रेडित के टि-भाग (अ) को प्लुत होता है। ऐसे ही-वृषल वृषल३। दस्यो दस्यो३।

अनुदात्तस्वरः-

(३) अनुदात्तं च।३।

प०वि०-अनुदात्तम् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-आम्रेडितमित्यनुवर्तते।

अन्वयः-आम्रेडितमनुदात्तं च।

अर्थः-यदाऽऽम्रेडितं शब्दरूपं तदनुदात्तं च भवति।

उदा०-भुङ्क्ते भुङ्क्ते। पशून् पशून्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(आम्रेडितम्) जो आम्रेडित-संज्ञक शब्द है वह (अनुदात्तम्) अनुदात्त (च) भी होता है।*

उदा०-भुङ्क्ते भुङ्क्ते। वह पुनः-पुनः खाता है। पशून् पशून्। सब पशुओं को, पशुमात्र को।

सिद्धि-भुङ्क्ते भुङ्क्ते। यहां 'नित्यवीप्सयोः' (८।१।४) से नित्य अर्थ में 'भुङ्क्ते' शब्द को द्विर्वचन होता है। 'तस्य परमाम्रेडितम्' (८।१।२) से परवर्ती 'भुङ्क्ते' शब्द की आम्रेडित संज्ञा है और इस सूत्र से इसे अनुदात्त स्वर होता है। ऐसे ही पशून् पशून्। यहां 'नित्यवीप्सयोः' (८।१।४) से वीप्सा (व्याप्ति) अर्थ में द्विर्वचन होता है। सूत्रकार्य पूर्ववत् है।

द्विर्वचनम्-

(४) नित्यवीप्सयोः।४।

प०वि०-नित्य-वीप्सयोः ७।२।

स०-नित्यं च वीप्सा च ते नित्यवीप्से, तयोः-नित्यवीप्सयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-सर्वस्य, द्वे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-नित्यवीप्सयोः सर्वस्य द्वे।

अर्थः-नित्ये वीप्सायां चार्थे यः शब्दस्तस्य सर्वस्य द्वे भवतः।

उदा०-नित्ये-पचति पचति। जल्पति जल्पति। भुक्त्वा भुक्त्वा व्रजति। भोजं भोजं व्रजति। लुनीहि लुनीहि इत्येवमयं लुनाति। **वीप्सायाम्**-ग्रामो ग्रामो रमणीयः। जनपदो जनपदो रमणीयः। पुरुषः पुरुषो निधनमुपैति।

केषु नित्यता ? तिङ्क्षु अव्ययेषु कृत्सु च नित्यता भवति। कुत एतत् ? आभीक्ष्ण्यमिह नित्यता कथ्यते। आभीक्ष्ण्यं च क्रियाधर्मो वर्तते। कर्ता यां क्रियां प्राधान्येनाऽनुपरमन् सन् कुरुते तन्नित्यमित्युच्यते।

अथ केषु वीप्सा ? सुप्सु वीप्सा भवति। का पुनर्वीप्सा भवति ? प्रयोक्तुर्व्याप्तिविशेषविषया येच्छा सा वीप्सेत्यभिधीयते। नानावाचिनां द्रव्याणां क्रियागुणाभ्यां प्रयोक्तुर्युगपद्व्याप्तुमिच्छा वीप्सेत्याख्यायते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(नित्यवीप्सयोः) नित्य और वीप्सा अर्थ में जो शब्द है उस (सर्वस्य) सबको (द्वि) द्विर्वचन होता है।*

*उदा०-**नित्य-पचति पचति।** वह पुनः-पुनः पकाता है। **जल्पति जल्पति।** वह पुनः-पुनः बकता है। **भुक्त्वा भुक्त्वा व्रजति।** वह पुनः-पुनः खाकर जाता है। **भोजं भोजं व्रजति।** वह पुनः-पुनः खाता हुआ जाता है। **वीप्सा-ग्रामो ग्रामो रमणीयः।** इस हरयाणा प्रदेश का ग्राम-ग्राम सुन्दर है। **जनपदो जनपदो रमणीयः।** इस भारतवर्ष का जनपद-जनपद (प्रदेश) सुन्दर है। **पुरुषः पुरुषो निधनमुपैति।** जन-जन (प्रत्येक) मृत्यु को प्राप्त होता है।*

सिद्धि-(१) पचति पचति। *यहां नित्य अर्थ में इस सूत्र से 'पचति' शब्द को द्विर्वचन होता है। **'तस्य परमाम्रेडितम्'** (८।१।२) से परवर्ती 'पचति' शब्द की आम्रेडित-संज्ञा होकर **'अनुदात्तं च'** (८।१।३) से इसे अनुदात्तस्वर होता है। ऐसे ही-**जल्पति जल्पति।***

(२) भुक्त्वा भुक्त्वा। *यहां **'भुज पालनाभ्यवहारयोः'** (रुधा०आ०) धातु से **'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले'** (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

(३) भोजं भोजम्। *यहां 'भुज' धातु से **'आभीक्ष्ण्ये णमुल् च'** (३।४।२२) से आभीक्ष्ण्य=पुनः पुनर्भाव अर्थ में 'णमुल्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही वीप्सा अर्थ में-**ग्रामो ग्रामो रमणीयः** आदि।*

नित्यता धर्म किन शब्दों में रहता है ? तिङन्त, अव्यय और कृदन्त शब्दों में नित्यता धर्म रहता है। ऐसा क्यों है ? क्योंकि यहां नित्यता का अर्थ आभीक्ष्ण्य है और यह क्रिया का धर्म है। कर्ता जिस क्रिया को प्रमुख रूप में विराम रहित होकर करता है, उसे 'नित्य' कहते हैं।

वीप्सा धर्म किन शब्दों में रहता है ? सुबन्त शब्दों में वीप्सा धर्म रहता है। शब्द के प्रयोक्ता की व्याप्तिविशेष विषयक जो इच्छा है वह 'वीप्सा' कहाती है। नाना अर्थवाले द्रव्यों का क्रिया और गुण के द्वारा प्रयोक्ता की एक साथ जो व्याप्त करने की इच्छा है, उसे 'वीप्सा' कहते हैं।

द्विर्वचनम्–

(५) परेर्वर्जने।५।

प०वि०–परे: ६।१ वर्जने ७।१।

अनु०–द्वे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–वर्जने परेर्द्वे।

अर्थः–वर्जनेऽर्थे वर्तमानस्य परिशब्दस्य द्वे भवतः।

उदा०–परि परि त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देवः। परि परि सौवीरेभ्यो वृष्टो देवः। परि परि सर्वसेनेभ्यो वृष्टो देवः। वर्जनम्=परिहारः।

आर्यभाषाः अर्थ–*(वर्जने) परिहार अर्थ में विद्यमान (परेः) परि शब्द को (द्वे) द्विर्वचन होता है।*

*उदा०–**परि परि त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देवः।** त्रिगर्त (कांगड़ा) देश को छोड़कर बादल बरसा। **परि परि सौवीरेभ्यो वृष्टो देवः।** सौवीर (रोड़ी) देश को छोड़कर बादल बरसा। **परि परि सर्वसेनेभ्यो वृष्टो देवः।** सर्वसेन (मरुस्थल) देश को छोड़कर बादल बरसा।*

सिद्धि–परि परि त्रिगर्तेभ्यः। *यहां वर्जन अर्थ में 'परि' शब्द को इस सूत्र से द्विर्वचन होता है। पूर्ववत् परवर्ती 'परि' शब्द की आम्रेडित संज्ञा होकर इसे अनुदात्त स्वर होता है। **'अपपरी वर्जने'** (१।४।८७) से 'परि' शब्द की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होकर **'पञ्चम्यपाङ्परिभिः'** (२।३।१०) से **'त्रिगर्तेभ्यः'** पद में पञ्चमी विभक्ति होती है। यहां **'नित्यवीप्सयोः'** (८।१।४) से वीप्सा अर्थ में द्विर्वचन प्राप्त था, अतः इस सूत्र से वर्जन अर्थ में द्विवर्चन का कथन किया गया है।*

द्विर्वचनम्–

(६) प्रसमुपोदः पादपूरणे।६।

प०वि०–प्र-सम्-उप-उदः ६।१ पादपूरणे ७।१।

स०–प्रश्च सम् च उपश्च उत् च एतेषां समाहारः प्रसमुपोत्, तस्य-प्रसमुपोदः (समाहारद्वन्द्वः)। पादस्य पूरणमिति पादपूरणम्, तस्मिन्-पादपूरणे (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–द्वे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–पादपूरणे प्रसमुपोदां द्वे।

अर्थः–पादपूरणेऽभिधेये प्रसमुपोदां शब्दानां द्वे भवतः।

उदा०–**(प्र)** प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे (ऋ० ७।८।४)। **(सम्)** संसमिद्युवसे वृषन् (ऋ० १०।१९१।१)। **(उप)** उपोप मे परामृश (ऋ० १।१२६।७)। **(उत्)** किं नोदुदु हर्षसि दातवा उ (ऋ० ४।२१।९)।

आर्यभाषाः अर्थ–*(पादपूरणे) वेदमन्त्र के पाद=चरण की पूर्ति करने में (प्रसमुपोदाम्) प्र, सम्, उप, उत् शब्दों को (द्वे) द्विर्वचन होता है।*

*उदा०–(प्र) **प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे** (ऋ० ७।८।४) इत्यादि पादपूर्ति विषयक सब वैदिक उदाहरण संस्कृत-भाग में देखें।*

सिद्धि–*'**प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे**' यह ऋग्वेद के मन्त्र का त्रिष्टुप् छन्द का प्रथम चरण है। त्रिष्टुप् छन्द के प्रत्येक चरण में ११ ग्यारह वर्ण होते हैं। यहां पादपूर्ति अर्थात् चरण के वर्णों को पूरा करने के लिये 'प्र' शब्द को द्विर्वचन किया गया है। सम्पूर्ण ऋचा यह है–*

प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे
वि यत् सूर्यो न रोचते बृहद् भाः।
अभि यः पुरुं पृतनासु तस्थौ
द्युतानो दैव्योऽअतिथिः शुशोच।। (ऋ० ७।८।४)

इसके सहाय से अन्य उदाहरणों का अभिप्राय भी समझ लेवें।

द्विर्वचनम्–

(७) उपर्यध्यधसः सामीप्ये।७।

प०वि०–उपरि-अधि-अधसः ६।१ सामीप्ये ७।१।

स०–उपरिश्च अधिश्च अधश्च एतेषां समाहारः-उपर्यध्यधः, तस्य-उपर्यध्यधसः (समाहारद्वन्द्वः)।

तद्धितवृत्तिः–समीपस्य भाव इति सामीप्यम्, तस्मिन्- सामीप्ये। '**गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च**' (५।१।१२४) इति ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ् प्रत्ययः।

अनु०–द्वे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-सामीप्ये उपर्यध्यधसां द्वे।

अर्थः-सामीप्येऽर्थे विवक्षिते उपर्यध्यधसां शब्दानां द्वे भवतः। सामीप्यं देशकृतं कालकृतं चेति द्विविधं भवति।

उदा०-**(उपरि)** उपर्युपरि ग्रामम्। उपर्युपरि दुःखम्। **(अधि)** अध्यधि ग्रामम्। **(अधः)** अधोऽधो नगरम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सामीप्ये) समीपता अर्थ की विवक्षा में (उपर्यध्यधसाम्) उपरि, अधि, अधस् इन शब्दों को (द्वे) द्विर्वचन होता है। समीपता देश और काल के भेद से दो प्रकार की होती है।*

*उदा०-(उपरि) **उपर्युपरि ग्रामम्।** ग्राम के समीपवर्ती उपरिभाग में। **उपर्युपरि दुःखम्।** आगामी समीपवर्ती समय में दुःख है। (अधि) **अध्यधि ग्रामम्।** ग्राम के समीपवर्ती ऊपर के भाग में। (अधः) **अधोऽधो नगरम्।** ग्राम के समीपवर्ती अधोभाग में।*

*सिद्धि-**उपर्युपरि ग्रामम्।** यहां सामीप्य अर्थ में 'उपरि' शब्द को इस सूत्र से द्विर्वचन होता है और अधोलिखित कारिकावचन से द्वितीया विभक्ति होती है-*

उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु।
द्वितीयाऽऽम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते। (अष्टा० २।३।२)।

*ऐसे ही-**अध्यधि ग्रामम्। अधोऽधः ग्रामम्।***

द्विर्वचनम्-

(८) वाक्यादेरामन्त्रितस्यासूयासम्मति-कोपकुत्सनभर्त्सनेषु।८।

प०वि०-वाक्यादेः ६।१ आमन्त्रितस्य ६।१ असूया-सम्मति-कोप-कुत्सन-भर्त्सनेषु ७।३।

स०-वाक्यस्य आदिरिति वाक्यादिः, तस्य-वाक्यादेः (षष्ठीतत्पुरुषः)। असूया च सम्मतिश्च कोपश्च कुत्सनं च भर्त्सनं च तानि असूयासम्मति-कोपकुत्सनभर्त्सनानि, तेषु-असूयासम्मतिकोपकुत्सनभर्त्सनेषु (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-द्वे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-असूयासम्मतिकोपकुत्सनभर्त्सनेषु वाक्यादेरामन्त्रितस्य द्वे।

अर्थः-असूयासम्मतिकोपकुत्सनभर्त्सनेष्वर्थेषु वर्तमानस्य वाक्यादेरामन्त्रितस्य द्वे भवतः। **उदाहरणम्**-

(१) **असूया** (परगुणानामसहनम्) माणवक३ माणवक, अभिरूपक३ अभिरूपक रिक्तं ते आभिरूप्यम्।

(२) **सम्मतिः** (पूजा) माणवक३ माणवक, अभिरूपक३ अभिरूपक शोभनः खल्वसि।

(३) **कोपः** (क्रोधः) माणवक३ माणवक, अविनीतक३ अविनीतक इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म।

(४) **कुत्सनम्** (निन्दनम्) शक्तिके३ शक्तिके, यष्टिके३ यष्टिके रिक्ता ते शक्तिः।

(५) **भर्त्सनम्** (अपकारशब्दैर्भयोत्पादनम्) चौर चौर३ वृषल वृषल३ धातयिष्यामि त्वा, बन्धयिष्यामि त्वा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(असूया०) असूया, सम्मति, कोप, कुत्सन और भर्त्सन अर्थ में विद्यमान (वाक्यादेः) वाक्य के प्रारम्भ में (आमन्त्रितस्य) आमन्त्रित=सम्बोधनवाची शब्द को (द्वे) द्विर्वचन होता है। उदाहरण-*

*(१) **असूया** (दूसरे के गुणों को सहन न करना) माणवक३ माणवक, अभिरूपक३ अभिरूपक तेरा सौन्दर्य खाली है, अपूर्ण है।*

*(२) **सम्मति** (पूजा) माणवक३ माणवक, अभिरूपक३ अभिरूपक तू निश्चय से सोहणा है।*

*(३) **कोप** (क्रोध) माणवक३ माणवक, अविनीतक३ अविनीतक तुझे अब पता चलेगा।*

*(४) **कुत्सन** (निन्दा) शक्तिके३ शक्तिके, यष्टिके३ यष्टिके तेरी शक्ति खाली है, अपूर्ण है।*

*(५) **भर्त्सन** (अपकारवाची शब्दों से भय उत्पन्न करना) चौर चौर३ वृषल वृषल३ मैं तुझे मरवाऊंगा, मैं तुझे बंधवाऊंगा।*

सिद्धि-माणवक३ माणवक। *यहां असूया शब्द में विद्यमान तथा वाक्य के प्रारम्भ में आमन्त्रितवाची 'माणवक' शब्द को इस सूत्र से द्विर्वचन होता है। असूया, सम्मति, कोप, कुत्सन और भर्त्सन अर्थ में **'स्वरितमाऽऽम्रेडितेऽसूयासम्मतिकोपकुत्सनेषु'** (८।२।१०३) से पूर्वपद को प्लुत होता है और भर्त्सन अर्थ में **'आम्रेडितं भर्त्सने'** (८।२।९५) से आम्रेडित पद को प्लुत होता है, जैसा कि ऊपर उदाहरणों में दिखाया गया है।*

द्विर्वचनं बहुव्रीहिवद्भावश्च–

(६) एकं बहुव्रीहिवत्।६।

प०वि०–एकम् १।१ बहुव्रीहिवत् अव्ययपदम्।

तद्धितवृत्तिः–बहुव्रीहेरिवेति बहुव्रीहिवत् **'तत्र तस्येव'** (५।१।११६) इति षष्ठ्यर्थे वतिः प्रत्ययः।

अनु०–द्वे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–एकं द्वे बहुव्रीहिवच्च।

अर्थः–एकमित्येत्येतस्य शब्दस्य द्वे भवतः, बहुव्रीहिवच्च कार्यं भवति।

उदा०–एकैकमक्षरं पठति। एकैकयाऽऽहुत्या जुहोति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(एकम्) एक इस शब्द को (द्वे) द्विर्वचन होता है और (बहुव्रीहिवत्) बहुव्रीहि समास के समान कार्य होता है।*

*उदा०–**एकैकमक्षरं पठति।** वह एक-एक अक्षर पढ़ता है। **एकैकयाऽऽहुत्या जुहोति।** वह एक-एक आहुति से यज्ञ करता है।*

सुप् प्रत्यय का लोप और पुंवद्भाव ये बहुव्रीहिवद्भाव के प्रयोजन हैं।

*सिद्धि-(१) **एकैकम्।** एकम्+एकम्। एक-एक। एकैक+सु। एकैक+अम्। एकैकम्।*

*यहां 'एक' शब्द को **'नित्यवीप्सयोः'** (८।१।४) से वीप्सा अर्थ में द्विर्वचन है। इस सूत्र से बहुव्रीहिवद्भाव होने से **'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः'** (२।४।७१) से 'सुप्' प्रत्यय का लुक् होता है। पश्चात् **'कृत्तद्धितसमासाश्च'** (१।४।४६) से प्रातिपदिक संज्ञा होकर **'स्वौजस०'** (१।४।२) से 'सु' उत्पत्ति और **'अतोऽम्'** (७।१।२४) से 'सु' को 'अम्' आदेश होता है। **'वृद्धिरेचि'** (६।१।८५) से वृद्धिरूप एकादेश और **'अमि पूर्वः'** (६।१।१०७) से पूर्वरूप एकादेश होता है।*

*(२) **एकैकया।** एका+एका। एक+एक। एकैक+टाप्। एकैके+आ। एकैक् अय्+आ। एकैकया।*

*यहां एका शब्द का पूर्ववत् वीप्सा अर्थ में द्विर्वचन होता है। बहुव्रीहिवद्भाव से **'स्त्रियाः पुंवत्०'** (६।३।३३) से पुंवद्भाव होता है। पश्चात् स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' और तृतीया-एकवचन की विवक्षा में 'टा' प्रत्यय, **'आङि चापः'** (७।३।१०५) से एकारादेश और **'एचोऽयवायावः'** (६।१।७८) से अय्-आदेश है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

द्विर्वचनं बहुव्रीहिवद्भावश्च–

(१०) आबाधे च।१०।

प०वि०–आबाधे ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–द्वे बहुव्रीहिवदिति चानुवर्तते।

अन्वयः–आबाधे च शब्दस्य द्वे, बहुव्रीहिवत्।

अर्थः–आबाधेऽर्थे च वर्तमानस्य शब्दस्य द्वे भवतः, बहुव्रीहिवच्चास्य कार्यं भवति।

उदा०–गतगतः। नष्टनष्टः। पतितपतितः। गतगता। नष्टनष्टा। पतितपतिता।

आर्यभाषाः अर्थ-*(आबाधे) पीडा अर्थ में विद्यमान शब्द को (द्वे) द्विर्वचन होता है और इसे (बहुव्रीहिवत्) बहुव्रीहि समास के समान कार्य होता है।*

*उदा०–**गतगतः**। कोई व्यक्ति अपने प्रिय के चले जाने पर आबाधित (पीडित) हुआ वियोग में कहता है कि-वह चला गया। **नष्टनष्टः**। वह अदृष्ट होगया। **पतितपतितः**। वह गिर गया। **गतगता**। वह चली गई। **नष्टनष्टा**। वह अदृष्ट होगई। **पतितपतिता**। वह गिर गई।*

सिद्धि-'गतगतः' आदि पदों की सिद्धियां पूर्ववत् हैं।

कर्मधारयवद्भावः–

(११) कर्मधारयवदुत्तरेषु।११।

प०वि०–कर्मधारयवत् अव्ययपदम्, उत्तरेषु ७।३।

तद्धितवृत्तिः–कर्मधारस्येव कर्मधारयवत्। 'तत्र तस्येव' (५।१।११६) इति षष्ठ्यर्थे वतिः प्रत्ययः।

अनु०–द्वे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–उत्तरेषु द्विर्वचनेषु कर्मधारयवत्।

अर्थः–इत उत्तरेषु प्रोच्यमानेषु द्विर्वचनेषु कर्मधारयवत् कार्यं भवतीति वेदितव्यम्। सुब्लोपपुंवद्भावान्तोदात्तत्वानि कर्मवद्भावस्य प्रयोजनानि।

उदा०–**(सुब्लोपः)** पटुपटुः। मृदुमृदुः। पण्डितपण्डितः **(पुंवद्भावः)** पटुपट्वी। मृदुमृद्वी। कालककालिका। **(अन्तोदात्तः)** पटुपटुः पटुपट्वी।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(उत्तरेषु) इससे आगे कहे जानेवाले द्विर्वचनों में (कर्मधारयवत्) कर्मधारय समास के समान कार्य होता है। सुब्लोप, पुंवद्भाव और अन्तोदात्तत्व ये कर्मवद्भाव के प्रयोजन हैं।*

*उदा०-(**सुब्लोप**) **पटुपटुः**। पटु (चतुर) के सदृश। **मृदुमृदुः**। मृदु (कोमल) के सदृश। **पण्डितपण्डितः**। पण्डित के सदृश। (**पुंवद्भाव**) **पटुपट्वी**। पट्वी (चतुरा) नारी के सदृश। **मृदुमृद्वी**। मृदु नारी के सदृश। **कालककालिका**। कालिका नारी के सदृश। (**अन्तोदात्त**) **पटुपटुः**। **पटुपट्वी**।*

***सिद्धि**-(१) **पटुपटुः**। यहां 'पटु' शब्द को **'प्रकारे गुणवचनस्य'** (८।१।१२) से प्रकार (सदृश) अर्थ में द्विर्वचन होता है। कर्मवद्भाव से 'सु' प्रत्यय का लोप होता है। **'कृत्तद्धितसमासाश्च'** (१।२।४६) से प्रातिपदिक संज्ञा होकर पुनः **'स्वौजस०'** (४।१।२) से सु-उत्पत्ति होती है। ऐसे ही-**मृदुमृदुः**। **पण्डितपण्डितः**।*

*(२) **पटुपट्वी**। यहां 'पट्वी' शब्द को पूर्ववत् प्रकार-अर्थ में द्विर्वचन होता है। 'पटु' शब्द से स्त्रीत्व विवक्षा में **'वोतो गुणवचनात्'** (४।१।४४) से 'ङीष्' प्रत्यय है। इस सूत्र से कर्मवद्भाव होने से **'स्त्रियाः पुंवत्०'** (६।३।३४) से पुंवद्भाव होकर पूर्वपद का 'ङीष्' प्रत्यय निवृत्त हो जाता है। ऐसे ही-**मृदुमृद्वी**। **कालककालिका**। यहां **'न कोपधायाः'** (६।३।३७) से पुंवद्भाव का प्रतिषेध होता है, किन्तु इस सूत्र से कर्मधारयवद्भाव होकर **'पुंवत् कर्मधारयजातीयदेशेषु'** (६।३।४२) से पुंवद्भाव होता है।*

*(३) **पटुपटुः**। यहां इस सूत्र से कर्मवद्भाव होने से **'समासस्य'** (६।१।१२०) से अन्तोदात्तस्वर होता है। ऐसे ही स्त्रीत्व-विवक्षा में-**पटुपट्वी**।*

द्विर्वचनम्-

(१२) प्रकारे गुणवचनस्य।१२।

प०वि०-प्रकारे ७।१ गुणवचनस्य ६।१।

स०-गुणमुक्तवानिति गुणवचनः (उपपदतत्पुरुषः)।

अनु०-द्वे, कर्मधारयवदिति चानुवर्तते।

अन्वयः-प्रकारे गुणवचनस्य द्वे, कर्मधारयवच्च।

अर्थः-प्रकारेऽर्थे वर्तमानस्य गुणवचनस्य शब्दस्य द्वे भवतः, कर्मधारयवच्चास्य कार्यं भवति।

उदा०-पटुपटुः। मृदुमृदुः। पण्डितपण्डितः। अपूर्णगुण इत्यर्थः। प्रकारः-भेदः सादृश्यं च। तदिह सादृश्यं प्रकारो गृह्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(प्रकारे) सादृश्य अर्थ में विद्यमान (गुणवचनस्य) गुणवाची शब्द को (द्वि) द्विर्वचन होता है और (कर्मधारयवत्) कर्मधारय समास के समान इसे कार्य होता है।*

*उदा०-**पटुपटुः।** पटु (चतुर) के सदृश। **मृदुमृदुः।** मृदु (कोमल) के सदृश। **पण्डितपण्डितः।** पण्डित के सदृश।*

सिद्धि-पटुपटुः। *यहां 'पटु' शब्द को इस सूत्र से प्रकार (सदृश) अर्थ में (द्वि) द्विर्वचन होता है। कर्मवद्भाव होने से **'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः'** (२।४।७१) से 'सु' का लोप होता है। **'कृत्तद्धितसमासाश्च'** (१।२।४६) से प्रातिपदिक संज्ञा होकर पुनः 'सु' उत्पत्ति होती है। ऐसे ही-**मृदुमृदुः। पण्डितपण्डितः।***

प्रकार शब्द के भेद और सादृश्य ये दो अर्थ हैं। यहां सादृश्य अर्थ का ग्रहण किया जाता है।

द्विर्वचन-विकल्पः--

(१३) अकृच्छ्रे प्रियसुखयोरन्यतरस्याम्।१३।

प०वि०-अकृच्छ्रे ७।१ प्रिय-सुखयोः ६।२ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-कृच्छ्रम्=दुःखम्। न कृच्छ्रमिति अकृच्छ्रम्, तस्मिन्-अकृच्छ्रे (नञ्तत्पुरुषः)। प्रियं च सुखं च ते प्रियसुखे, तयोः-प्रियसुखयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-द्वे, कर्मधारयवदिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकृच्छ्रे प्रियसुखयोरन्यतरस्यां द्वे, कर्मधारयवच्च।

अर्थः-अकृच्छ्रे=दुःखभावे द्योत्ये प्रियसुखयोः शब्दयोर्विकल्पेन द्विर्वचनं भवति, कर्मधारयवच्च तत्र कार्यं भवति।

उदा०-(प्रियम्) प्रियप्रियेण ददाति। प्रियेण ददाति। **(सुखम्)** सुखसुखेन ददाति। सुखेन ददाति। अत्यन्तदयितमपि वस्त्वनायासेन ददातीत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अकृच्छ्रे) सुख अर्थ प्रकाशित होने पर (प्रियसुखयोः) प्रिय और सुख शब्दों को (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (द्वि) द्विर्वचन होता है और (कर्मधारयवत्) वहां कर्मधारय समास के समान कार्य होता है।*

*उदा०-(प्रिय) **प्रियप्रियेण ददाति। प्रियेण ददाति।** वह अत्यन्त प्रिय वस्तु को भी आराम से प्रदान करता है। (सुख) **सुखसुखेन ददाति। सुखेन ददाति।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-**प्रियप्रियेण ददाति।** यहां अकृच्छ्र अर्थ में प्रिय शब्द को इस सूत्र से द्विर्वचन होता है और कर्मवद्भाव होने से **'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः'** (२।४।७१) से 'टा' विभक्ति का लोप होता है। **'कृत्तद्धितसमासाश्च'** (१।२।४६) से प्रातिपदिक संज्ञा होकर पुनः 'टा' प्रत्यय की उत्पत्ति होती है। विकल्प-पक्ष में द्विर्वचन नहीं है-**प्रियेण ददाति।** ऐसे ही-**सुखसुखेन ददाति। सुखेन ददाति।***

निपातनम्--

(१४) यथास्वे यथायथम्।१४।

प०वि०-यथास्वे ७।१ यथायथम् १।१।

स०-यो यः स्वः=आत्मा, यद्यद् आत्मीयं तद् यथास्वम्, तस्मिन् यथास्वे। **'यथाऽसादृश्ये'** (२।१।७) इति वीप्सायामऽव्ययीभावसमासः।

अनु०-द्वे, कर्मधारयवदिति चानुवर्तते।

अर्थः-यथास्वेऽर्थे यथायथमिति निपात्यते, कर्मधारयवच्चाऽत्र कार्यं भवति। यथाशब्दस्य द्विर्वचनं नपुंसकलिङ्गता च निपातनेन विधीयते।

उदा०-ज्ञाताः सर्वे पदार्था यथायथम्। यथास्वभावमित्यर्थः। सर्वेषां तु यथायथं ज्ञातम्। यथात्मीयमित्यर्थः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(यथास्वे) यथास्व अर्थ में (यथायथम्) यथायथ शब्द निपातित है (कर्मधारयवत्) और यहां कर्मधारय समास के समान कार्य होता है। 'यथा' शब्द को द्विर्वचन और नपुंसकलिङ्गता निपातन से होती है।*

*उदा०-**ज्ञाताः सर्वे पदार्था यथायथम्।** मैंने सब पदार्थों के स्वभाव को जान लिया है। **सर्वेषां तु यथायथं ज्ञातम्।** मैंने सब की आत्मीयता को जान लिया है।*

*सिद्धि-**यथायथम्।** यहां 'यथा' शब्द को यथास्व अर्थ में द्विर्वचन और नपुंसकलिङ्गता निपातित है। नपुंसकलिङ्ग होने से **'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य'** (१।२।४७) से ह्रस्वादेश होता है, कर्मवद्भाव होने से **'समासस्य'** (६।१।२२०) से अन्तोदात्त स्वर होता है-**यथायथम्।***

निपातनम्--

(१५) द्वन्द्वं रहस्यमर्यादावचनव्युत्क्रमणयज्ञपात्र-प्रयोगाभिव्यक्तिषु।१५।

प०वि०-द्वन्द्वम् १।१ रहस्य-मर्यादावचन-व्युत्क्रमण-यज्ञपात्रप्रयोग-अभिव्यक्तिषु ७।३।

स०-रहस्यं च मर्यादावचनं च व्युत्क्रमणं च यज्ञपात्रप्रयोगश्च अभिव्यक्तिश्च ता रहस्यमर्यादावचनव्युत्क्रमणयज्ञपात्रप्रयोगाभिव्यक्तयः, तासु-रहस्यमर्यादावचनव्युत्क्रमणयज्ञपात्रप्रयोगाभिव्यक्तिषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-द्वे, कर्मधारयवदिति चानुवर्तते।

अन्वयः-रहस्यमर्यादावचनव्युत्क्रमणयज्ञपात्रप्रयोगाभिव्यक्तिषु द्वन्द्वम्, द्वे, कर्मधारयवच्च।

अर्थः-रहस्यमर्यादावचनव्युत्क्रमणयज्ञपात्रप्रयोगाभिव्यक्तिष्वर्थेषु द्वन्द्वमिति पदं निपात्यते, कर्मधारयवच्चात्र कार्यं भवति।

द्वन्द्वमित्यत्र द्विशब्दस्य द्विर्वचनम्, द्विर्वचने कृते पूर्वपदस्याऽम्भाव उत्तरपदस्य चाऽत्त्वं निपात्यते। **उदाहरणम्**-

(१) **रहस्यम्**-ते द्वन्द्वं मन्त्रयन्ते।

(२) **मर्यादावचनम्**-मर्यादा स्थित्यनतिक्रमः। आचतुरं हीमे पशवो द्वन्द्वं मिथुनयन्ति। माता पुत्रेण मिथुनं गच्छति, पौत्रेण, तत्पुत्रेणापीति मर्यादार्थः।

(३) **व्युत्क्रमणम्**-व्युत्क्रमणं भेदः, पृथगवस्थानम्। द्विवर्गसम्बन्धेन पृथगवस्थिता द्वन्द्वं व्युत्क्रान्ता इत्युच्यन्ते।

(४) **यज्ञपात्रप्रयोगः**-द्वन्द्वं न्यञ्चि यज्ञपात्राणि प्रयुनक्ति (द्र० आप०श्रौत० १।११।४)।

(५) **अभिव्यक्तिः**-द्वन्द्वं नारदपर्वतौ। द्वन्द्वं संकर्षणवासुदेवौ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(रहस्य०) रहस्य, मर्यादावचन, व्युत्क्रमण, यज्ञपात्रप्रयोग और अभिव्यक्ति अर्थ में (द्वन्द्वम्) द्वन्द्व यह पद निपातित है और यहां (कर्मधारयवत्) कर्मधारय समास के समान कार्य होता है।*

'द्वन्द्व' इस पद में 'द्वि' शब्द को द्विर्वचन, द्विर्वचन करने पर पूर्वपद को अम् आदेश और उत्तरपद को अकारादेश निपातन से होता है। उदाहरण-

*(१) **रहस्य**-वे द्वन्द्व अर्थात् दो-दो मिलकर रहस्य पर मन्त्रणा करते हैं।*

*(२) **मर्यादावचन**-स्थिति का अतिक्रमण न करना मर्यादा कहाती है। ये पशु चार द्वन्द्व अर्थात् मर्यादा पर्यन्त मिथुन करते हैं। माता-पुत्र, पौत्र और उसके पुत्र के साथ मैथुन करती है। इतनी ही पशुओं की आयु है।*

*(३) **व्युत्क्रमण**-व्युत्क्रमण का अर्थ भेद अर्थात् पृथग् रहना है। दो वर्गों के सम्बन्ध से पृथग् रहनेवाले पुरुष द्वन्द्व व्युत्क्रान्त कहाते हैं, अर्थात् वे दो-दो वर्ग बनाकर पृथक् अवस्थित हैं।*

*(४) **यज्ञपात्रप्रयोग**-धीरपुरुष न्यग्भूत=अधोमुख यज्ञपात्रों को दो-दो करके वेदि पर रखता है। एक स्फ्य और दूसरा कपाल।*

*(५) **अभिव्यक्ति**-नारद और पर्वत का द्वन्द्व है अर्थात् दोनों साहचर्य से अभिव्यक्त हुये। संकर्षण और वासुदेव का द्वन्द्व है अर्थात् दोनों साहचर्य से अभिव्यक्त हुये।*

***सिद्धि-द्वन्द्वम्।** द्वि-द्वि। द्व् अम्-द्व् अ। द्वन्द्व+सु। द्वन्द्व+अम्। द्वन्द्वम्।*

*यहां रहस्य आदि अर्थों में 'द्वि' शब्द को द्विर्वचन, पूर्वपद को अम्भाव और उत्तरपद को अकारादेश निपातित है। कर्मधारयवद्भाव से **'समासस्य'** (६।१।१२०) से अन्तोदात्त स्वर होता है-**द्वन्द्वम्।***

।। इति द्विर्वचनप्रकरणम्।।

पदकार्यप्रकरणम्

पदस्याधिकारः-

(१) पदस्य।१६।

वि०-पदस्य ६।१।

अर्थः-पदस्येत्यधिकारोऽयम्, प्राक् **'अपदान्तस्य मूर्धन्यः'** (८।३।५५) इत्यपदान्ताधिकारात्। यदितोऽग्रे वक्ष्यति पदस्येत्येवं तद् वेदितव्यम्। यथा वक्ष्यति-**'संयोगान्तस्य लोपः'** (८।२।२३) इति।

उदा०-पचन्। यजन्।

***आर्यभाषाः अर्थ**-(पदस्य) पदस्य यह अधिकार सूत्र है, **'अपदान्तस्य मूर्धन्यः'** (८।३।५५) इस अपदान्त-अधिकार से पहले-पहले 'पदस्य' का अधिकार है। पाणिनि मुनि जो इससे आगे कहेंगे वह 'पदस्य' अर्थात् पद के स्थान में जानें। जैसे कि पाणिनि मुनि **'संयोगान्तस्य लोपः'** (८।२।२३) अर्थात् संयोगान्त पद का लोप होता है।*

*उदा०-**पचन्।** वह पकाता हुआ। **यजन्।** वह यज्ञ करता हुआ।*

***सिद्धि-पचन्।** यहां **'डुपचष् पाके'** (भ्वा०उ०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। **'लटः शतृशानचा०'** (३।२।१२४) से लकार के स्थान में 'शतृ' आदेश और **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और **'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः'** (७।१।७०) से 'शतृ' को 'नुम्' आगम होता है। पच्+अ+अनुम्त्।*

*पच्+अ+अन्त्+सु। इस स्थिति में 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०' (६।१।६८) से 'सु' का लोप होकर 'संयोगान्तस्य लोपः' (८।२।२३) से संयोगान्त पद के तकार का लोप होता है। ऐसे ही 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) धातु से-**यजन्।***

पदात्-अधिकारः-

(२) पदात्।१७।

वि०-पदात् ५।१।

अर्थः-पदादित्यधिकारोऽयम्, प्राक् **'कुत्सने च सुप्यगोत्रादौ'** (८।१।६९) इत्यस्मात्। यदितोऽग्रे वक्ष्यति 'पदात्' इत्येवं तद् वेदितव्यम्। यथा वक्ष्यति-**'आमन्त्रितस्य च'** (८।१।१९) इति। आमन्त्रितस्य पदस्य पदात् परस्याऽनुदात्तादेशो भवति।

उदा०-पचसि देवदत्त !

***आर्यभाषाः** अर्थ-(पदात्) 'पदात्' यह अधिकार सूत्र है। 'कुत्सने च सुप्यगोत्रादौ' (८।१।६९) इस सूत्र से पहले-पहले 'पदात्' का अधिकार है। पाणिनि मुनि जो इससे आगे कहेंगे वह 'पदात्' अर्थात् पद से परे जानें। जैसे कि पाणिनि मुनि कहेंगे 'आमन्त्रितस्य च' (८।१।१९) अर्थात् पद से परे आमन्त्रित पद को अनुदात्त आदेश होता है।*

*उदा०-**पचसि देवदत्त** ! हे देवदत्त तू पकाता है।*

*सिद्धि-**पचसि देवदत्त** ! यहां 'पचसि' इस पद से परे देवदत्त आमन्त्रित पद को 'आमन्त्रितस्य च' (८।१।१९) से अनुदात्त स्वर होता है।*

{सर्वानुदात्तप्रकरणम्}

अनुदात्त-अधिकारः-

(१) अनुदात्तं सर्वमपादादौ।१८।

प०वि०-अनुदात्तम् १।१ सर्वम् १।१ अपादादौ ७।१।

स०-पादस्याऽऽदिरिति पादादिः, न पादादिरिति अपादादिः, तस्मिन्-अपादादौ (षष्ठीगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, पदादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-पदादपादादौ पदस्य सर्वमनुदात्तम्।

अर्थः-पदाद् उत्तरस्याऽपादादौ वर्तमानस्य पदस्य सर्वमनुदात्तं भवतीत्यधिकारोऽयम्, **'तिङि चोदात्तवति'** (८।१।७१) इति यावत्। यथा वक्ष्यति-**'आमन्त्रितस्य च'** (८।१।१९) इति।

उदा०-पचसि देवदत्तः। पादशब्देनात्र ऋक्पादः श्लोकपादश्च गृह्यते।

आर्यभाषाः अर्थ-*(पदात्) पद से परे (अपादादौ) पाद के आदि में अविद्यमान (पदस्य) पद को (सर्वमनुदात्तम्) सर्व-अनुदात्त स्वर होता है, यह **'तिङि चोदात्तवति'** (८।१।७१) तक अधिकार सूत्र है। जैसे कि पाणिनि मुनि कहेंगे-**'आमन्त्रितस्य च'** (८।१।१९) अर्थात् पद से परे पाद के अविद्यमान आमन्त्रित पद को सर्व-अनुदात्त स्वर होता है।*

*उदा०-**पचसि देवदत्त !** हे देवदत्त तू पकाता है।*

सिद्धि-पचसि देवदत्त ! *यहां 'पचति' इस शब्द से परे पाद के आदि में अविद्यमान आमन्त्रित देवदत्त' पद को **'आमन्त्रितस्य च'** (८।१।१९) से सर्व-अनुदात्त स्वर होता है।*

सर्वमनुदात्तम्—

(२) आमन्त्रितस्य च।१६।

प०वि०-आमन्त्रितस्य ६।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादिविति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदादाऽऽमन्त्रितस्य पदस्य च सर्वमनुदात्तम्।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानस्य पदाद् उत्तरस्याऽऽमन्त्रितस्य पदस्य च सर्वमनुदात्तं भवति।

उदा०-पचसि देवदत्त! यजसि यज्ञदत्त! अपादादाविति किम्? यत्ते नियानं रजसं मृत्योऽनवधर्ष्यम् (शौ०सं० ८।२।१०)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि अविद्यमान (पदात्) पद से परे (आमन्त्रितस्य) आमन्त्रित-संज्ञक (पदस्य) पद को (च) भी (सर्वम् अनुदात्तम्) सर्व-अनुदात्त स्वर होता है।*

*उदा०-**पचसि देवदत्त !** हे देवदत्त ! तू पकाता है। **यजसि यज्ञदत्त !** हे यज्ञदत्त ! तू यज्ञ करता है।*

सिद्धि-पचसि देवदत्त ! *यहां पाद के आदि में अविद्यमान, 'पचसि' इस पद से परे आमन्त्रित-संज्ञक 'देवदत्त' पद को इस सूत्र से सर्व-अनुदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-**यजसि यज्ञदत्त !***

वान्नावादेशौ–

(३) युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वान्नावौ ।२०।

प०वि०–युष्मद्-अस्मदोः ६ ।२ षष्ठी-चतुर्थी-द्वितीयास्थयोः ६ ।२ वान्नावौ १ ।२ ।

स०–युष्मच्च अस्मच्च तौ युष्मदस्मदौ, तयोः-युष्मदस्मदोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) । षष्ठी च चतुर्थी च द्वितीया च ताः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयाः, षष्ठीचतुर्थीद्वितीयासु यौ तिष्ठतस्तौ षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थौ, तयोः-षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितोपपदतत्पुरुषः) । वां च नौ च तौ-वाम्नावौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) ।

अनु०–पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादाविति चानुवर्तते ।

अन्वयः–अपादादौ पदात् षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्युष्मदस्मदोः पदयोः वाम्नावौ, सर्वौ चानुदात्तौ ।

अर्थः–अपादादौ वर्तमानयोः पदात् परयोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्युष्मदस्मदोः पदयोः स्थाने यथासंख्यं वाम्नावादेशौ भवतः, तौ च सर्वानुदात्तौ भवतः ।

उदा०–(युष्मद्) षष्ठी–ग्रामो वां स्वम् । **चतुर्थी–**ग्रामो वां दीयते । **द्वितीया–**ग्रामो वां पश्यति । **(अस्मद्) षष्ठी–**ग्रामो नौ स्वम् । **चतुर्थी–**ग्रामो नौ दीयते । **द्वितीया–**ग्रामो नौ पश्यति । अपादादाविति किम् ?

रुद्रो विश्वेश्वरो देवो युष्माकं कुलदेवता ।
स एव नाथो भगवानस्माकं शत्रुमर्दनः ।।

आर्यभाषाः अर्थ–(अपादादौ) पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोः) षष्ठी, चतुर्थी और द्वितीया विभक्ति में अवस्थित (युष्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् के (पदयोः) पदों के स्थान में यथासंख्य (वाम्नावौ) वाम्, नौ आदेश होते हैं और वे दोनों (सर्वौ, अनुदात्तौ) सर्वानुदात्त होते हैं ।

*उदा०–(युष्मद्) षष्ठी–**ग्रामो वां स्वम्।** यह ग्राम तुम दोनों की सम्पत्ति है। **चतुर्थी–ग्रामो वां दीयते।** यह ग्राम तुम दोनों को दिया जाता है। **द्वितीया–ग्रामो वां पश्यति।** यह ग्राम तुम दोनों को देखता है। (अस्मद्) षष्ठी–**ग्रामो नौ स्वम्।** यह ग्राम हम दोनों की सम्पत्ति है। **चतुर्थी–ग्रामो नौ दीयते।** यह ग्राम हम दोनों को दिया जाता है। **द्वितीया–ग्रामो नौ पश्यति।** यह ग्राम हम दोनों को देखता है।*

*सिद्धि-**ग्रामो वां स्वम्।** यहां पाद के आदि में अविद्यमान, ग्राम पद से परवर्ती, षष्ठीविभक्ति में अवस्थित, युष्मद्-पद अर्थात् 'युवयोः' के स्थान में इस सूत्र से 'वाम्' सर्वानुदात्त आदेश होता है। चतुर्थी विभक्ति युवाभ्याम् में-**ग्रामो वां दीयते।** द्वितीया विभक्ति युवाम् में-**ग्रामो वां पश्यति।** ऐसे ही अस्मद् शब्द से षष्ठीविभक्ति 'आवयोः' के स्थान में-**ग्रामो नौ स्वम्।** चतुर्थी विभक्ति 'आवाभ्याम्' में-**ग्रामो नौ दीयते।** द्वितीया विभक्ति 'आवाम्' में-**ग्रामो नौ पश्यति।***

वस्नसावादेशौ–

(४) बहुवचनस्य वस्नसौ।२१।

प०वि०-बहुवचनस्य ६।१ वस्-नसौ १।२।

स०-वस् च नस् च तौ वस्नसौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, युष्मदस्मदोः, षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदात् षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्बहुवचनयोर्युष्मद-स्मदोः पदयोर्वस्नसौ, सर्वौ चानुदात्तौ।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानयोः पदात् परयोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयो-र्बहुवचनान्तयोर्युष्मदस्मदोः पदयोः स्थाने यथासंख्यं वस्नसावादेशौ भवतः, तौ च सर्वानुदात्तौ भवतः।

उदा०-(युष्मद्) षष्ठी-ग्रामो वः स्वम्। **चतुर्थी**-ग्रामो वो दीयते। **द्वितीया**-ग्रामो वः पश्यति। **(अस्मद्) षष्ठी**-ग्रामो नः स्वम्। **चतुर्थी**-ग्रामो नो दीयते। **द्वितीया**-ग्रामो नः पश्यति।

***आर्यभाषाः अर्थ**-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोः) षष्ठी, चतुर्थी और द्वितीया विभक्ति में अवस्थित (बहुवचनयोः) बहुवचनान्त (युष्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् के (पदयोः) पदों के स्थान में यथासंख्य (वस्नसौ) वस्, नस् आदेश होते हैं और वे दोनों (सर्वौ, अनुदात्तौ) सर्वानुदात्त होते हैं।*

*उदा०-(युष्मद्) षष्ठी-**ग्रामो वः स्वम्।** यह ग्राम तुम सब की सम्पत्ति है। चतुर्थी-**ग्रामो वो दीयते।** यह ग्राम तुम सब को दिया जाता है। द्वितीया-**ग्रामो वः पश्यति।** यह ग्राम तुम सब को देखता है। (अस्मद्) षष्ठी-**ग्रामो नः स्वम्।** यह ग्राम हम सब की सम्पत्ति है। चतुर्थी-**ग्रामो नो दीयते।** यह ग्राम हम सब को दिया जाता है। द्वितीया-**ग्रामो नः पश्यति।** यह ग्राम हम सब को देखता है।*

सिद्धि-ग्रामो व॒: स्वम्। यहां पाद के आदि में अविद्यमान, ग्राम पद से परवर्ती, षष्ठीविभक्ति में अवस्थित, बहुवचनान्त युष्मद्-पद अर्थात् 'युष्माकम्' के स्थान में इस सूत्र से 'वस्' सर्वानुदात्त आदेश होता है। 'ससजुषो रुः' (८।२।६६) से सकार को रुत्व और इसे 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' (८।३।१५) से सर्लक्षण विसर्जनीयादेश है। चतुर्थी विभक्ति 'युष्मभ्यम्' में-ग्रामो वो॒ दीयते। द्वितीया विभक्ति 'अस्मान्' में-ग्रामो व॒: पश्यति। ऐसे ही अस्मद् शब्द से षष्ठीविभक्ति 'अस्माकम्' में-ग्रामो न॒: स्वम्। चतुर्थी विभक्ति 'अस्मभ्यम्' में-ग्रामो नो॒ दीयते। द्वितीया विभक्ति 'अस्मान्' में-ग्रामो न॒: पश्यति।

तेमयावादेशौ–

(५) तेमयावेकवचनस्य।२२।

प०वि०-ते-मयौ १।२ एकवचनस्य ६।१।

स०-तेश्च मेश्च तौ तेमयौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, युष्मदस्मदोः, षष्ठीचतुर्थीस्थयोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदात् षष्ठीचतुर्थीस्थयोरेकवचनयोर्युष्मदस्मदोः पदयोस्तेमयौ, सर्वौ चानुदात्तौ।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानयोः पदात् परयोः षष्ठीचतुर्थीस्थयोरेकवचनान्तयोर्युष्मदस्मदोः पदयोः स्थाने यथासंख्यं तेमयावादेशौ भवतः, तौ च सर्वानुदात्तौ भवतः।

उदा०-(युष्मद्) षष्ठी-ग्रामस्ते॒ स्वम्। **चतुर्थी**-ग्रामस्ते॒ दीयते। **(अस्मद्) षष्ठी**-ग्रामो मे॒ स्वम्। **चतुर्थी**-ग्रामो मे॒ दीयते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (षष्ठीचतुर्थीस्थयोः) षष्ठी, और चतुर्थी विभक्ति में अवस्थित (एकवचनयोः) एकवचनान्त (युष्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् के (पदयोः) पदों के स्थान में यथासंख्य (तेमयौ) ते, मे आदेश होते हैं और वे दोनों (सर्वौ, अनुदात्तौ) सर्वानुदात्त होते हैं।*

*उदा०-(युष्मद्) षष्ठी-**ग्रामस्ते॒ स्वम्**। यह ग्राम तेरी सम्पत्ति है। **चतुर्थी-ग्रामस्ते॒ दीयते**। यह ग्राम तेरे लिये दिया जाता है। **(अस्मद्) षष्ठी-ग्रामो मे॒ स्वम्**। यह ग्राम मेरी सम्पत्ति है। **चतुर्थी-ग्रामो मे॒ दीयते**। यह ग्राम मेरे लिये दिया जाता है।*

सिद्धि-ग्रामस्ते॒ स्वम्। यहां पाद के आदि में अविद्यमान, ग्राम पद से परवर्ती, षष्ठीविभक्ति में अवस्थित, एकवचनान्त युष्मद्-पद 'तव' के स्थान में इस सूत्र से

*सर्वानुदात्त ते' आदेश होता है। चतुर्थी विभक्ति 'तुभ्यम्' में-**ग्रामस्ते दीयते।** ऐसे ही अस्मद्-पद के षष्ठीविभक्ति 'मम' में-**ग्रामो मे स्वम्।** चतुर्थी विभक्ति 'तुभ्यम्' में-**ग्रामो मे दीयते।***

विशेषः *आगामी सूत्र में द्वितीया विभक्ति में त्वा, मा आदेश का विधान किया गया है अत: यहां षष्ठी और चतुर्थी विभक्ति की अनुवृत्ति की जाती है, द्वितीया विभक्ति की नहीं।*

त्वामावादेशौ–

(६) त्वामौ द्वितीयायाः।२३।

प०वि०-त्वा-मौ १।२ द्वितीयाया: ६।१।

स०-त्वाश्च माश्च तौ त्वामौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, युष्मदस्मदोः, एकवचनस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदाद् द्वितीयाया एकवचनयोर्युष्मदस्मदोः पदयोस्त्वामौ, सर्वौ चानुदात्तौ।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानयो: पदात् परयोर्द्वितीयास्थयोरेकवचनान्तयोर्युष्मदस्मदोः पदयो: स्थाने यथासंख्यं त्वामावादेशौ भवत:, तौ च सर्वानुदात्तौ भवतः।

उदा०-(युष्मद्) द्वितीया-ग्रामस्त्वा पश्यति। **(अस्मद्) द्वितीया**-ग्रामो मा पश्यति।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अपादा०) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (द्वितीयास्थयोः) द्वितीया विभक्ति में अवस्थित (एकवचनयोः) एकवचनान्त (युष्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् (पदयोः) पदों के स्थान में यथासंख्य (त्वामौ) त्वा, मा आदेश होते हैं और वे दोनों (सर्वौ, अनुदात्तौ) सर्वानुदात्त होते हैं।*

*उदा०-(युष्मद्) **द्वितीया-ग्रामस्त्वा पश्यति।** यह ग्राम तुझको देखता है। (अस्मद्) **द्वितीया-ग्रामो मा पश्यति।** यह ग्राम मुझको देखता है।*

सिद्धि-ग्रामस्त्वा पश्यति। *यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, ग्राम पद से परवर्ती, द्वितीया विभक्ति में अवस्थित, एकवचनान्त युष्मद्-पद के 'माम्' के स्थान में इस सूत्र से सर्वानुदात्त 'त्वा' आदेश होता है। ऐसे ही अस्मद्-पद के एकवचनान्त 'माम्' के स्थान में 'मा' आदेश है-**ग्रामो मा पश्यति।***

उक्तादेशप्रतिषेधः—

(७) न चवाहाहैवयुक्ते।२४।

प०वि०—न अव्ययपदम्, च-वा-अह-एवयुक्ते ७।१।

स०—चश्च वाश्च हश्च अहश्च एवश्च ते चवाहाहैवाः, तैश्चवाहाहैवैर्युक्तमिति चवाहाहैवयुक्तम्, तस्मिन्-चवाहाहैवयुक्ते (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भिततृतीयातत्पुरुषः)।

अनु०—पदस्य, पदात्, युष्मदस्मदोः, षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोः वान्नावौ, अपादादाविति चानुवर्तते।

अन्वयः—अपादादौ पदाच्चवाहाहैवयुक्तयोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्युष्मदस्मदोः पदयोर्न।

अर्थः—अपादादौ वर्तमानयोः पदात् परयोश्चवाहाहैवयुक्तयोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्युष्मदस्मदोः पदयोः स्थाने पूर्वोक्ता वाम्नावादय आदेशा न भवन्ति। **उदाहरणम्—**

स्थानी	योगः	उदाहरणम्	भाषार्थः
(युष्मद्)			
(१) षष्ठी	च	ग्रामस्तव च स्वम्	ग्राम तेरी भी सम्पत्ति है।
		ग्रामो युवयोश्च स्वम्	ग्राम तुम दोनों की भी सम्पत्ति है।
		ग्रामो युष्माकं च स्वम्	ग्राम तुम सब की भी सम्पत्ति है।
चतुर्थी	,,	ग्रामस्तुभ्यं च दीयते	ग्राम तेरे लिये भी दिया जाता है।
		ग्रामो युवाभ्यां च दीयते	ग्राम तुम दोनों के लिये भी दिया जाता है।
		ग्रामो युष्मभ्यं च दीयते	ग्राम तुम सब के लिये भी दिया जाता है।
द्वितीया	,,	ग्रामस्त्वा च पश्यति	ग्राम तुझको भी देखता है।
		ग्रामो युवां च पश्यति	ग्राम तुम दोनों को भी देखता है।
		ग्रामो युष्माँश्च पश्यति	ग्राम तुम सब को भी देखता है।
(२) षष्ठी	वा	ग्रामस्तव वा स्वम्	ग्राम तेरी सम्पत्ति के समान है।
		ग्रामो युवयोर्वा स्वम्	ग्राम तुम दोनों की सम्पत्ति के समान है।
		ग्रामो युष्माकं वा स्वम्	ग्राम तुम सब की सम्पत्ति के समान है।

	स्थानी	योग:	उदाहरणम्	भाषार्थ:
	चतुर्थी	वा	ग्रामस्तुभ्यं वा दीयते	ग्राम तुझे दानसा किया जाता है।
			ग्रामो युवाभ्यां वा दीयते	ग्राम तुम दोनों को दानसा किया जाता है।
			ग्रामो युष्मभ्यं वा दीयते	ग्राम तुम सब को दानसा किया जाता है।
	द्वितीया	,,	ग्रामस्त्वां वा पश्यति	ग्राम तुझे देखता-सा है।
			ग्रामो युवां वा पश्यति	ग्राम तुम दोनों को देखता-सा है।
			ग्रामो युष्मान् वा पश्यति	ग्राम तुम सब को देखता-सा है।
(३)	षष्ठी	ह	ग्रामस्तव ह स्वम्	ग्राम तेरी निश्चित सम्पत्ति है।
			ग्रामो युवयोर्ह स्वम्	ग्राम तुम दोनों की निश्चित सम्पत्ति है।
			ग्रामो युष्माकं ह स्वम्	ग्राम तुम सब की निश्चित सम्पत्ति है।
	चतुर्थी	,,	ग्रामस्तुभ्यं ह दीयते	ग्राम तुझे निश्चित दिया जाता है।
			ग्रामो युवाभ्यां ह दीयते	ग्राम तुम दोनों को निश्चित दिया जाता है।
			ग्रामो युष्मभ्यं ह दीयते	ग्राम तुम सब को निश्चित दिया जाता है।
	द्वितीया	,,	ग्रामस्त्वां ह पश्यति	ग्राम तुझे निश्चित देखता है।
			ग्रामो युवां ह पश्यति	ग्राम तुम दोनों को निश्चित देखता है।
			ग्रामो युष्मान् ह पश्यति	ग्राम तुम सब को निश्चित देखता है।
(४)	षष्ठी	अह	ग्रामस्तवाह स्वम्	आश्चर्य है ग्राम तेरी सम्पत्ति है।
			ग्रामो युवयोरह स्वम्	आश्चर्य है ग्राम तुम दोनों की सम्पत्ति है।
			ग्रामो युष्माकमह स्वम्	आश्चर्य है ग्राम तुम सब की सम्पत्ति है।
	चतुर्थी	,,	ग्रामस्तुभ्यमह दीयते	आश्चर्य है ग्राम तुझे दिया जाता है।
			ग्रामो युवाभ्यामह दीयते	आश्चर्य है ग्राम तुम दोनों को दिया जाता है।
			ग्रामो युष्मभ्यमह दीयते	आश्चर्य है ग्राम तुम सब को दिया जाता है।
	द्वितीया	,,	ग्रामस्त्वामह पश्यति	आश्चर्य है ग्राम तुझे देखता है।
			ग्रामो युवामह पश्यति	आश्चर्य है ग्राम तुम दोनों को देखता है।
			ग्रामो युष्मानह पश्यति	आश्चर्य है ग्राम तुम सब को देखता है।
(५)	षष्ठी	एव	ग्रामस्तवैव स्वम्	ग्राम तेरी ही सम्पत्ति है।
			ग्रामो युवयोरेव स्वम्	ग्राम तुम दोनों की सम्पत्ति है।

स्थानी	योगः	उदाहरणम्	भाषार्थः
	एव	ग्रामो युष्माकमेव स्वम्	ग्राम तुम सब की सम्पत्ति है।
चतुर्थी	,,	ग्रामस्तुभ्यमेव दीयते	ग्राम तुझे ही दिया जाता है।
		ग्रामो युवाभ्यामेव दीयते	ग्राम तुम दोनों को ही दिया जाता है।
		ग्रामो युष्मभ्यमेव दीयते	ग्राम तुम सब को ही दिया जाता है।
द्वितीया	,,	ग्रामो त्वामेव च पश्यति	ग्राम तुझे ही देखता है।
		ग्रामो युवामेव पश्यति	ग्राम तुम दोनों को ही देखता है।
		ग्रामो युष्मानेव पश्यति	ग्राम तुम सब को ही देखता है।
(अस्मद्)			
(१) षष्ठी	च	ग्रामो मम च स्वम्	ग्राम तेरी भी सम्पत्ति है।
		ग्राम आवयोश्च स्वम्	ग्राम हम दोनों की भी सम्पत्ति है।
		ग्रामोऽस्माकं च स्वम्	ग्राम हम सब की भी सम्पत्ति है।
चतुर्थी	,,	ग्रामो मह्यं च दीयते	ग्राम मुझे भी दिया जाता है।
		ग्राम आवाभ्यां च दीयते	ग्राम हम दोनों को भी दिया जाता है।
		ग्रामोऽस्मभ्यं च दीयते	ग्राम हम सब को भी दिया जाता है।
द्वितीया	,,	ग्रामो मां च पश्यति	ग्राम मुझे भी देखता है।
		ग्राम आवां च पश्यति	ग्राम हम दोनों को भी देखता है।
		ग्रामोऽस्माँश्च पश्यति	ग्राम हम सब को भी देखता है।
(२) षष्ठी	वा	ग्रामो मम वा स्वम्	ग्राम मेरी सम्पत्ति के समान है।
		ग्राम आवयोर्वा स्वम्	ग्राम हम दोनों की सम्पत्ति के समान है।
		ग्रामोऽस्माकं वा स्वम्	ग्राम हम सब की सम्पत्ति के समान है।
चतुर्थी	,,	ग्रामो मह्यं वा दीयते	ग्राम मुझे दानसा किया जाता है।
		ग्राम आवाभ्यां वा दीयते	ग्राम हम दोनों को दानसा किया जाता है।
		ग्रामोऽस्मभ्यं वा दीयते	ग्राम हम सब को दानसा किया जाता है।
द्वितीया	,,	ग्रामो मां वा पश्यति	ग्राम मुझे देखता-सा है।
		ग्राम आवां वा पश्यति	ग्राम हम दोनों को देखता-सा है।
		ग्रामोऽस्मान् वा पश्यति	ग्राम हम सब को देखता-सा है।

स्थानी	योग:	उदाहरणम्	भावार्थ:
(३) षष्ठी	ह	ग्रामो मम ह स्वम्	ग्राम मेरी निश्चित सम्पत्ति है।
		ग्राम आवयोर्ह स्वम्	ग्राम हम दोनों की निश्चित सम्पत्ति है।
		ग्रामोऽस्माकं ह स्वम्	ग्राम हम सब की निश्चित सम्पत्ति है।
चतुर्थी	,,	ग्रामो मह्यं ह दीयते	ग्राम मुझे निश्चित दिया जाता है।
		ग्राम आवाभ्यां ह दीयते	ग्राम हम दोनों को निश्चित दिया जाता है।
		ग्रामोऽस्मभ्यं ह दीयते	ग्राम हम सब को निश्चित दिया जाता है।
द्वितीया	,,	ग्रामो मां ह पश्यति	ग्राम मुझे निश्चित देखता है।
		ग्राम आवां ह पश्यति	ग्राम हम दोनों को निश्चित देखता है।
		ग्रामोऽस्मान् ह पश्यति	ग्राम हम सब को निश्चित देखता है।
(४) षष्ठी	अह	ग्रामो ममाह स्वम्	आश्चर्य है ग्राम मेरी सम्पत्ति है।
		ग्राम आवयोरह स्वम्	आश्चर्य है ग्राम हम दोनों की सम्पत्ति है।
		ग्रामोऽस्माकमह स्वम्	आश्चर्य है ग्राम हम सब की सम्पत्ति है।
चतुर्थी	,,	ग्रामो मह्यमह दीयते	आश्चर्य है ग्राम मुझे दिया जाता है।
		ग्राम आवाभ्यामह दीयते	आश्चर्य है ग्राम हम दोनों को दिया जाता है।
		ग्रामोऽस्मभ्यमह दीयते	आश्चर्य है ग्राम हम सब को दिया जाता है।
द्वितीया	,,	ग्रामो मामह पश्यति	आश्चर्य है ग्राम मुझे देखता है।
		ग्राम आवामह पश्यति	आश्चर्य है ग्राम हम दोनों को देखता है।
		ग्रामोऽस्मानह पश्यति	आश्चर्य है ग्राम हम सब को देखता है।
(५) षष्ठी	एव	ग्रामो ममैव स्वम्	ग्राम तेरी ही सम्पत्ति है।
		ग्राम आवयोरेव स्वम्	ग्राम तुम दोनों की सम्पत्ति है।
		ग्रामोऽस्माकमेव स्वयम्	ग्राभ तुम सब की सम्पत्ति है।
चतुर्थी	,,	ग्रामो मह्यमेव दीयते	ग्राम मुझे ही दिया जाता है।
		ग्राम आवाभ्यामेव दीयते	ग्राम हम दोनों को ही दिया जाता है।
		ग्रामोऽस्मभ्यमेव दीयते	ग्राम हम सब को ही दिया जाता है।
द्वितीया	,,	ग्रामो मामेव पश्यति	ग्राम मुझे ही देखता है।
		ग्राम आवामेव पश्यति	ग्राम हम दोनों को ही देखता है।
		ग्रामोऽस्मानेव पश्यति	ग्राम हम सब को ही देखता है।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (चवाहाहैवयुक्ते) च, वा, ह, अह, एव इनसे संयुक्त (षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोः) षष्ठी, चतुर्थी और द्वितीया विभक्ति में अवस्थित (युष्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् (पदयोः) पदों के स्थान में पूर्वोक्त (वान्नावौ) वाम्, नौ आदि आदेश (न) नहीं होते हैं।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-ग्रामस्तव च स्वम्। *यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, ग्राम पद से परवर्ती, 'च' के योग में षष्ठीविभक्ति में अवस्थित, युष्मद्-पद 'तव' के स्थान में इस सूत्र से 'ते' आदेश का प्रतिषेध होता है।* ***'तवममौ ङसि'*** *(७।२।७६) से 'युष्मद्' के स्थान में 'तव' आदेश होता है। ऐसे ही समस्त उदाहरणों की स्वयं ऊहा कर लेवें।*

उक्तादेशप्रतिषेधः-

(८) पश्यार्थैश्चानालोचने।२५।

प०वि०-पश्यार्थैः ३।३ च अव्ययपदम्, अनालोचने ७।१।

स०-पश्योऽर्थो येषां ते पश्यार्थाः, तैः-पश्यार्थैः (बहुव्रीहिः)। **'दृशिर् प्रेक्षणे'** (भ्वा०प०) इत्यस्माद् धातोः **'पाघ्राध्माधेट्दृशः शः'** (३।१।१३७) इत्यनेनाऽस्मादेव निपातनाद् भावेऽर्थे शः प्रत्ययः। **'पाघ्रास्था०'** (७।३।७८) इत्यनेन दृशः स्थाने पश्यादेशः। पश्यार्थैः=दर्शनार्थैः। दर्शनमिह ज्ञानं गृह्यते। न आलोचनमिति अनालोचनम्, तस्मिन्-अनालोचने (नञ्तत्पुरुषः)। आलोचनम्=चक्षुर्विज्ञानम्, तत्प्रतिषेधः-अनालोचनम्।

अनु०-पदस्य, पदात्, अपादादौ, युष्मदस्मदोः, षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोः, वाम्नावौ, न, युक्ते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदाद् अनालोचने पश्यार्थैर्युक्तयोश्च षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्युष्मदस्मदोर्वाम्नावौ न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानयोः, पदात् परयोः, अनालोचनेऽर्थे पश्यार्थैर्धातुभिर्युक्तयोश्च षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्युष्मदस्मदोः स्थाने वाम्नावादय आदेशा न भवन्ति।

उदा०-(युष्मद्) षष्ठी-ग्रामस्तव स्वं समीक्ष्यागतः। **चतुर्थी**-ग्रामस्तुभ्यं दीयमानं समीक्ष्यागतः। **द्वितीया**-ग्रामस्त्वां समीक्ष्यागतः।

(अस्मद्) षष्ठी–ग्रामो मम स्वं समीक्ष्यागतः। **चतुर्थी**–ग्रामो मह्यं दीयमानं समीक्ष्यागतः। **द्वितीया**–ग्रामो मां समीक्ष्यागतः, इत्यादिकम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (अनालोचने) चक्षुर्विज्ञान से भिन्न (पश्यार्थैः) पश्यार्थक धातुओं से (युक्तयोः) संयुक्त (षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोः) षष्ठी, चतुर्थी और द्वितीया विभक्ति में अवस्थित (युष्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् के (पदयोः) पदों के स्थान में (वाम्नावौ) वाम्, नौ आदि आदेश (न) नहीं होते हैं।*

*उदा०–(युष्मद्) **षष्ठी–ग्रामस्तव स्वं समीक्ष्यागतः।** ग्राम तेरा धन जानकर आया है। **चतुर्थी–ग्रामस्तुभ्यं दीयमानं समीक्ष्यागतः।** ग्राम तुझे दीयमान पदार्थ को जानकर आया है। **द्वितीया–ग्रामस्त्वां समीक्ष्यागतः।** ग्राम तुझे जानकर आया है। (अस्मद्) **षष्ठी–ग्रामो मम स्वं समीक्ष्यागतः।** ग्राम मेरा धन जानकर आया है। **चतुर्थी–ग्रामो मह्यं दीयमानं समीक्ष्यागतः।** ग्राम मुझे दीयमान पदार्थ को जानकर आया है। **द्वितीया–ग्रामो मां समीक्ष्यागतः।** ग्राम मुझे जानकर आया है, इत्यादि।*

*सिद्धि–**ग्रामस्तव स्वं समीक्ष्यागतः।** यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, ग्राम पद से परे, अनालोचन=दर्शन अर्थ से भिन्न पश्यार्थक (ज्ञानार्थक) 'ईक्ष' धातु से युक्त, षष्ठीविभक्ति में अवस्थित युष्मद्-पद के 'तव' के स्थान में इस सूत्र से सर्वानुदात्त 'ते' आदेश का प्रतिषेध होता है। इस प्रकार समस्त उदाहरणों की सिद्धियों को स्वयं ऊहा कर लेवें।*

उक्तादेशविकल्पः–

(६) सपूर्वायाः प्रथमाया विभाषा।२६।

प०वि०–सपूर्वायाः ५।१ प्रथमायाः ५।१ विभाषा १।१।

स०–सह=विद्यमानं पूर्वं यस्याः सा सपूर्वा, तस्याः–सपूर्वायाः। '**तेन सहेति तुल्ययोगे**' (२।२।२८) इत्यनेन बहुव्रीहिसमासः। '**वोपसर्जनस्य**' (६।३।८०) इत्यनेन च सहस्य स्थाने सादेशः।

अनु०–पदस्य, पदात्, अपादादौ, युष्मदस्मदोः, षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोः, वाम्नावौ, न।

अन्वयः–अपादादौ सपूर्वायाः प्रथमायाः पदात् षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्युष्मदस्मदोर्वाम्नावौ विभाषा न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानयोर्विद्यमानपूर्वात् प्रथमान्तात् पदात् षष्ठी-चतुर्थीद्वितीयास्थयोर्युष्मदस्मदोः स्थाने वाम्नावादय आदेशा विकल्पेन न भवन्ति।

उदा०-(युष्मद्) षष्ठी-ग्रामे कम्बलस्ते स्वम्, ग्रामे कम्बलस्तव स्वम्। **चतुर्थी**-ग्रामे कम्बलस्ते दीयते, ग्रामे कम्बलस्तुभ्यं दीयते। **द्वितीया**-ग्रामे छात्रास्त्वा पश्यन्ति, ग्रामे छात्रास्त्वां पश्यन्ति। **(अस्मद्) षष्ठी**-ग्रामे कम्बलो मे स्वम्, ग्रामे कम्बलो मम स्वम्। **चतुर्थी**-ग्रामे कम्बलो मे दीयते, ग्रामे कम्बलो मह्यं दीयते। **द्वितीया**-ग्रामे छात्रा मा पश्यन्ति, ग्रामे छात्रा मां पश्यन्ति, इत्यादिकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (सपूर्वायाः) विद्यमानपूर्वी (प्रथमायाः) प्रथमान्त (पदात्) पद से परवर्ती (षष्ठीचतुर्थी-द्वितीयास्थयोः) षष्ठी, चतुर्थी और द्वितीया विभक्ति में अवस्थित (युष्मदस्मदोः) युष्मद्, अस्मद् के (पदयोः) पदों के स्थान में (वाम्नावौ) वाम्, नौ आदि आदेश (विभाषा) विकल्प से (न) नहीं होते हैं, अर्थात् विकल्प से होते हैं।*

उदा०-(युष्मद्) ***षष्ठी-ग्रामे कम्बलस्ते/तव स्वम्।*** *ग्राम में कम्बल तेरा धन है।* ***चतुर्थी-ग्रामे कम्बलस्ते/तुभ्यम् दीयते।*** *ग्राम में कम्बल तुझे प्रदान किया जाता है।* ***द्वितीया-ग्रामे छात्रास्त्वा/त्वां पश्यन्ति।*** *ग्राम में छात्र तुझे देखते हैं। (अस्मद्)* ***षष्ठी-ग्रामे कम्बलो मे/मम स्वम्।*** *ग्राम में कम्बल मेरा धन है।* ***चतुर्थी-ग्रामे कम्बलो मे/मह्यं दीयते।*** *ग्राम में कम्बल मुझे प्रदान किया जाता है।* ***द्वितीया-ग्रामे छात्रास्त्वा/त्वां पश्यन्ति।*** *ग्राम में छात्र मुझे देखते हैं।*

सिद्धि-ग्रामे कम्बलस्ते स्वम्। *यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, प्रथमान्त 'कम्बल' शब्द से 'ग्रामे' इस पूर्वपदवाले कम्बल पद से परवर्ती, षष्ठीविभक्ति में अवस्थित युस्मद्-पद (तव) के स्थान में इस सूत्र से 'ते' आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में ते' आदेश नहीं है-* ***ग्रामे कम्बलस्तव स्वम्।*** *ऐसे ही-* ***ग्रामे कम्बलस्ते दीयते*** *आदि।*

सर्वमनुदात्तम्-

(१०) तिङो गोत्रादीनि कुत्सनाभीक्ष्ण्ययोः।२७।

प०वि०-तिङः ५।१ गोत्रादीनि १।३ कुत्सन-आभीक्ष्ण्ययोः ७।२।

स०-गोत्रम् आदिर्येषां तानि गोत्रादीनि (बहुव्रीहिः)। कुत्सनं च आभीक्ष्ण्यं च ते कुत्सनाभीक्ष्ण्ये, तयोः-कुत्सनाभीक्ष्ण्ययोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ कुत्सनाभीक्ष्ण्ययोस्तिङः पदात् गोत्रादीनि पदानि सर्वाण्यानुदात्तानि।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानानि कुत्सने आभीक्ष्ण्ये चार्थे तिङन्तात् पदात् पराणि गोत्रादीनि पदानि सर्वानुदात्तानि भवन्ति।

उदा०-**(कुत्सनम्)** पचति गोत्रम्। जल्पति गोत्रम्। पचति ब्रुवम्। जल्पति ब्रुवम्। **(आभीक्ष्ण्यम्)** पचति पचति गोत्रम्। जल्पति जल्पति गोत्रम्, इत्यादिकम्।

गोत्र। ब्रुव। प्रवचन। प्रहसन। प्रकथन। प्रत्ययन। प्रचक्षण। प्राय। विचक्षण। अवचक्षण। स्वाध्याय। भूयिष्ठ। वा नाम। इति गोत्रादीनि।। (नाम इत्येतद् वा निहन्यते)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (कुत्सनाभीक्ष्ण्ययोः) कुत्सन=निन्दा और आभीक्ष्ण्ये=पुनः पुनर्भाव अर्थ में विद्यमान (तिङः) तिङन्त (पदात्) पद से परे (गोत्रादीनि) गोत्र आदि (पदानि) पद (सर्वाण्यनुदात्तानि) सर्वानुदात्त=निघात होते हैं।*

*उदा०-(कुत्सन) पचति गोत्रम्। जल्पति गोत्रम्। पचति ब्रुवम्। जल्पति ब्रुवम्। जो पुरुषार्थ को छोड़कर अपने गोत्र की उच्चता आदि बतलाकर जीवन-यापन करता है वह-**पचति गोत्रम्**, जल्पति गोत्रम् कहा जाता है। यहां 'पच्' धातु व्यक्तीकरण (प्रसिद्धि) अर्थ में है, पकाने अर्थ में नहीं। **पचति ब्रुवम्।** वह निन्दित पकाता है। **जल्पति ब्रुवम्।** वह निन्दित तर्क करता है। (आभीक्ष्ण्य) **पचति पचति गोत्रम्।** वह अपने गोत्र को पुनः पुनः प्रकट करता है। **जल्पति जल्पति गोत्रम्।** अर्थ पूर्ववत् है।*

सिद्धि-पचति गोत्रम्। *यहां 'पचति' इस तिङन्त पद से परे कुत्सन (निन्दा) अर्थ में 'गोत्रम्' पद इस सूत्र से सर्वानुदात्त=निघात होता है। ऐसे ही-**जल्पति गोत्रम्।** आभीक्ष्ण्य अर्थ में-**पचति पचति गोत्रम्। जल्पति जल्पति गोत्रम्।***

अपना गोत्र बतलाकर जीविका करना धर्मशास्त्र के अनुसार निन्दित है। मनुस्मृति में लिखा है-

न भोजनार्थं स्वे विप्रः कुलगोत्रे निवेदयेत्।
भोजनार्थं हि ते शंसन् वान्ताशीत्युच्यते बुधैः।। *(मनु० ३।१०९)*

सर्वमनुदात्तम्–

(११) तिङ्ङतिङः।२८।

प०वि०–तिङ् १।१ अतिङः ५।१।

स०–न तिङ् इति अतिङ्, तस्मात्–अतिङः (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादाविति चानुवर्तते।

अन्वयः–अपादादावतिङः पदात् तिङ्पदं सर्वमनुदात्तम्।

अर्थः–अपादादौ वर्तमानमतिङन्तात् पदात् परं तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं भवति।

उदा०–देवदत्तः पचति। यज्ञदत्तो यजति।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (अतिङः) तिङन्त–भिन्न (पदात्) पद से परे (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (सर्वम्, अनुदात्तम्) सर्वानुदात्त होता है।*

*उदा०–देवदत्तः **पचति।** देवदत्त पकाता है। **यज्ञदत्तो यजति।** यज्ञदत्त यज्ञ करता है।*

सिद्धि–देवदत्तः पचति।** यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान अतिङन्त (सुबन्त) देवदत्त' पद से परे तिङन्त 'पचति' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त=निघात स्वर होता है। ऐसे ही–**यज्ञदत्तो यजति।

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः–

(१२) न लुट्।२९।

प०वि०–न अव्ययपदम्, लुट् १।१।

अनु०–पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङिति चानुवर्तते।

अन्वयः–अपादादौ पदाल्लुट् तिङ् पदं सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः–अपादादौ वर्तमानं पदात् परं लुङन्तं तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०–स श्वः कर्ता। तौ श्वः कर्तारौ। ते मासेन कर्तारः।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पर से परवर्ती (लुट्) लुट्–प्रत्ययान्त (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद को (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त स्वर (न) नहीं होता है।*

उदा०-स श्वः कर्ता। वह कल करेगा। तौ श्वः कर्तारौ। वे दोनों कल करेंगे। ते मासेन कर्तारः। वे सब एक मास में करेंगे।

सिद्धि-श्वः कर्ता। यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान 'श्वः' पद से पदवर्ती लुट्-प्रत्ययान्त, तिङन्त 'कर्ता' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त स्वर का प्रतिषेध होता है।

'कर्ता' यहां 'डुकृञ् करणे' धातु से 'अनद्यतने लुट्' (३।३।१५) से 'लुट्' प्रत्यय, लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश और 'लुटः प्रथमस्य डारौरसः' (२।४।८५) से 'तिप्' के स्थान में 'डा' आदेश होता है। 'स्यतासी लृलुटोः' (३।१।३३) से तासि विकरण-प्रत्यय है। वा०-'डित्यभस्यापि टेर्लोपः' (६।४।१४३) से 'तास्' के टि-भाग (आ) का लोप होता है। इस सूत्र से सर्वानुदात्त=निघात स्वर का प्रतिषेध होने पर 'तास्यनुदात्तेन्ङित्०' (६।१।१८०) से तासि को सर्वोदात्त स्वर होता है-श्वः कर्तारौ, कर्तारः। और जहां टि-भाग का लोप होता है वहां 'अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः' (६।१।१६१) से ल-सार्वधातुक प्रत्यय ही उदात्त होता है-श्वः कर्ता।

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः-

(१३) निपातैर्यद्यदिहन्तकुविन्नेच्चेच्चण्-कच्चिद्यत्रयुक्तम्।३०।

प०वि०- निपातैः ३।३ यत्-यदि-हन्त-कुवित्-नेत्-चेत्-चण्-कच्चित्-यत्रयुक्तम् १।१।

स०-यच्च यदिश्च हन्तश्च कुविच्च नेच्च चेच्च चण् च कच्चिच्च यत्रश्च ते-यद्०यत्राः, तैर्युक्तमिति-यद्०यत्रोक्तम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भित-तृतीयातत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, नेति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदाद् निपातैर्यद्यदिहन्तकुविन्नेच्चेच्चण्-कच्चिद्यत्रयुक्तं तिङ् पदं सर्वम् अनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परं निपातैर्यद्यदिहन्तकुविन्नेच्चे-च्चण्कच्चिद्यत्रयुक्तं तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं न भवति। **उदाहरणम्-**

निपातः	उदाहरणम्	भाषार्थः
(१) यत्	स यत् करोति।	वह जब करता है।
	स यत् पचति।	वह जब पकाता है।
(२) यदि	स यदि करोति।	वह अगर करता है।
	स यदि पचति।	वह अगर पकाता है।
(३) हन्त	स हन्त करोति।	वह सहर्ष करता है।
	स हन्त पचति।	वह सहर्ष पकाता है।
(४) कुवित्	स कुवित् करोति।	वह अच्छा करता है।
	स कुवित् पचति।	वह अच्छा पकाता है।
(५) नेत्	नेजिह्मायन्त्यो नरके पतेम (खि० १०।१०६)	हम कुटिल कर्म करती हुई कभी नरक में न गिर जायें।
(६) चेत्	स चेद् भुङ्क्ते।	वह यदि खाता है।
	स चेदधीते।	वह यदि पढ़ता है।
(७) चण्	अयं च मरिष्यति।	यह यदि मरेगा।
(८) कच्चित्	स कच्चिद् भुङ्क्ते।	क्या वह खाता है।
	स कच्चिदधीते।	क्या वह पढ़ता है।
(९) यत्र	स यत्र भुङ्क्ते।	वह जहां खाता है।
	स यत्राधीते।	वह जहां पढ़ता है।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (निपातैः) निपात-संज्ञक (यद०) यत्, यदि, हन्त, कुवित्, नेत्, चेत्, चण्, कच्चित्, यत्र से संयुक्त (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (सर्वानुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-स यत् करोति। *यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, यत् पद से परवर्ती तथा इस निपात से युक्त तिङन्त 'करोति' पद इस सूत्र से सर्वानुदात्त निघात नहीं होता है। अतः **'तनादिकृञ्भ्य उः'** (३।१।७९) से विहित 'उ' विकरण-प्रत्यय **'आद्युदात्तश्च'** (३।१।३) से उदात्त होता है। ऐसे ही-**स यत् पचति।** यहां 'शप्' विकरण-प्रत्यय **'अनुदात्तौ सुप्पितौ'** (३।१।४) से अनुदात्त होकर **'उदात्तादनुदात्तस्य***

स्वरितः' (८।४।६६) से स्वरित होता है। 'स्वरितात् संहितायामनुदात्तानाम्' (१।२।३९) से परवर्ती अनुदात्त को एकश्रुति स्वर होता है। ऐसे ही शेष उदाहरणों में स्वराङ्कन करें।

यद् यदार्थे च हेतौ च विचारे यदि चेच्चण:।
हन्त हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयो:।।
कच्चित्प्रश्ने नेन्निषेधे प्रशंसायां कुवित्स्मृतम्।
यत्राधारे निपातत्वं यदादीनां विशेषणम्।। (पदमञ्जरी)

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः–

(१४) नह प्रत्यारम्भे।३१।

प०वि०–नह अव्ययपदम्, प्रत्यारम्भे ७।१।

अनु०–पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, निपातैः, युक्तमिति चानुवर्तते।

अन्वयः–अपादादौ पदात् प्रत्यारम्भे नह-निपातेन युक्तं तिङ् पदं सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः–अपादादौ वर्तमानं पदात् परं प्रत्यारम्भेऽर्थे नह इत्यनेन निपातेन युक्तं तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०–त्वं नह भोक्ष्यसे। त्वं नह अध्येष्यसे।

"चोदितस्यावधीरणे उपलिप्सया प्रतिषेधयुक्तः प्रत्यारम्भः क्रियते" (काशिका)। प्रत्यारम्भः=पुनरारम्भ इत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (प्रत्यारम्भे) पुनरारम्भ-अर्थ में (नह) नह इस (निपातेन) निपात-संज्ञक शब्द से (युक्तम्) संयुक्त (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

*उदा०–**त्वं नह भोक्ष्यसे।** क्या तू भोजन नहीं करेगा ? **त्वं नह अध्येष्यसे।** क्या तू अध्ययन नहीं करेगा ?*

कोई व्यक्ति किसी को भोजन आदि क्रिया के लिये प्रेरित करता है किन्तु वह उसकी उपेक्षा कर देता है तब उसे भोजन आदि कराने की इच्छा से जो पुनः निषेधात्मक कथन किया जाता है, वह 'प्रत्यारम्भ' कहाता है।

*सिद्धि–**नह भोक्ष्यसे।** यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, प्रत्यारम्भ वाची 'नह' पद से परवर्ती तथा इससे संयुक्त 'भोक्ष्यसे' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का*

*प्रतिषेध होता है। अतः 'भोक्ष्यसे' पद में **'स्यतासी लृलुटोः'** (३।१।३३) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय **'आद्युदात्तश्च'** (३।१।३) से उदात्त होता है। शेष स्वराङ्कन पूर्ववत् है। ऐसे ही-**त्वं नह अध्येष्यसे।***

'नह' शब्द चादिगण में पठित होने से 'चादयोऽसत्त्वे' (१।४।५८) से निपात-संज्ञक है।

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः--

(१५) सत्यं प्रश्ने।३२।

प०वि०-सत्यम् अव्ययपदम्, प्रश्ने ७।१।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, निपातैः, युक्तमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदात् प्रश्ने सत्यं निपातेन युक्तं तिङ् पदं सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परं प्रश्नेऽर्थे सत्यमित्यनेन निपातेन युक्तं तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०-त्वं सत्यं भोक्ष्यसे ? त्वं सत्यमध्येष्यसे ? प्रश्ने इति किम् ? सत्यं वक्ष्यामि नानृतम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (प्रश्ने) प्रश्न अर्थ में (सत्यम्) सत्यम् इस (निपातेन) निपात-संज्ञक शब्द से (युक्तम्) संयुक्त (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**त्वं सत्यं भोक्ष्यसे** ? क्या तू भोजन करेगा ? **त्वं सत्यमध्येष्यसे** ? क्या तू अध्ययन करेगा ? प्रश्न अर्थ से अन्यत्र-**सत्यं वक्ष्यामि नानृतम्।** मैं सत्य कहूंगा, झूठ नहीं।*

सिद्धि-सत्यं भोक्ष्यसे।** यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, 'सत्यम्' इस पद से परवर्ती तथा इससे संयुक्त तिङन्त 'भोक्ष्यसे' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। अतः 'भोक्ष्यसे' पद पूर्ववत् मध्योदात्त होता है। ऐसे ही-**त्वं सत्यमध्येष्यसे।

'सत्यम्' शब्द चादिगण में पठित होने से निपात-संज्ञक है।

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः--

(१६) अङ्गाप्रातिलोम्ये।३३।

प०वि०-अङ्ग अव्ययपदम्, अप्रातिलोम्ये ७।१।

स०-प्रातिलोम्यम्=प्रातिकूल्यम् (प्रतिकूलता)। न प्रातिलोम्यमिति अप्रातिलोम्यम्, तस्मिन्-अप्रातिलोम्ये (नञ्तत्पुरुषः)। अप्रातिलोम्यम्-आनुकूलमित्यर्थः।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, निपातैः, युक्तमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदात् प्रातिलोम्ये सत्यं निपातेन युक्तं तिङ् पदं सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परमप्रातिलोम्ये गम्यमानेऽङ्गेत्यनेन निपातेन युक्तं तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०-अङ्ग कुरु। अङ्ग पच। अङ्ग पठ।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (अप्रातिलोम्ये) अनुकूलता अर्थ की प्रतीति में (अङ्ग) अङ्ग इस (निपातेन) निपात-संज्ञक शब्द से (युक्तम्) संयुक्त (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**अङ्ग कुरु।** अच्छा बेटा कर। **अङ्ग पच।** अच्छा बेटा पका। **अङ्ग पठ।** अच्छा बेटा पढ़।*

*सिद्धि-**अङ्ग कुरु।** यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, अङ्ग पद से परवर्ती तथा अप्रातिलोम्य अर्थ की प्रतीति में 'अङ्ग' इस निपात से संयुक्त तिङन्त 'कुरु' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त (निघात) का प्रतिषेध होता है। अतः 'कुरु' पद पूर्ववत् प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त होता है। ऐसे ही-**अङ्ग पच।** 'पच' पद में 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' (३।१।४) से अनुदात्त है और इसे 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' (८।४।६६) से स्वरित होता है। ऐसे ही-**अङ्ग पठ।***

'अङ्ग' शब्द चादिगण में पठित होने से निपात-संज्ञक है। यह यहां आज्ञार्थक होने से, अप्रातिलोम्य=अनुकूलता अर्थ की अभिव्यक्ति स्पष्ट है।

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः-

(१७) हि च।३४।

प०वि०-हि अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, निपातैः, युक्तम्, अप्रातिलोम्ये इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदात् प्रातिलोम्ये हि निपातेन युक्तं तिङ् पदं सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परमप्रातिलोम्ये गम्यमाने हि इत्यनेन निपातेन युक्तं तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०-स हि त्वं कुरु। स हि त्वं पच। स हि त्वं पठ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (अप्रातिलोम्ये) अनुकूलता अर्थ की अभिव्यक्ति (हि) हि इस (निपातेन) निपात-संज्ञक शब्द से (च) भी (युक्तम्) संयुक्त (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**स हि त्वं कुरु।** वह (देवदत्त) तू ही कर। **स हि त्वं पच।** वह (यज्ञदत्त) तू ही पका। **स हि त्वं पठ।** वह (ब्रह्मदत्त) तू ही पढ़।*

सिद्धि**-**स हि त्वं कुरु।** यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, 'त्वम्' इस पद से परवर्ती, अप्रातिलोम्य (अनुकूलता) अर्थ की अभिव्यक्ति में 'हि' इस निपात से संयुक्त तिङन्त 'कुरु' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। अतः पूर्ववत् प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त होता है। ऐसे ही-**स हि त्वं पच। स हि त्वं पठ।

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः--

(१८) छन्दस्यनेकमपि साकाङ्क्षम्।३५।

प०वि०- छन्दसि ७।१ अनेकम् १।१ अपि अव्ययपदम्, साकाङ्क्षम् १।१।

स०-न एकमिति अनेकम् (नञ्तत्पुरुषः)। सहाऽऽकाङ्क्षया वर्तते इति साकाङ्क्षम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, निपातैः, युक्तम्, निपातैः, हीति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि अपादादौ पदात् हि निपातेन युक्तम् अनेकमपि साकाङ्क्षं तिङ् पदं सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-छन्दसि विषयेऽपादादौ वर्तमानं पदात् परं हीत्यनेन निपातेन युक्तमनेकमपि साकाङ्क्षं तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं न भवति। अनेकमपि कदाचिदेकं कदाचिदनेकमित्यर्थः।

उदा०-**(अनेकम्)** अनृतं हि मत्तो वदति, पाप्मा एनं विपुनाति। अत्र तिङन्तद्वयमपि न निहन्यते। **(एकम्)** अग्निर्हि पूर्वमुदजयत् तमिन्द्रोऽनूदयजत्। तिङन्तद्वयमप्येतद् हिनिपातेन युक्तम्, अत्रैकम् 'उदजयत्' इत्याद्युदात्तम्, अपरञ्चानुदात्तम्। अजा ह्यग्नेरजनिष्ट गर्भात् सा वाऽअपश्य-ज्जनितारमग्रे (तै०सं० ४।२।१०।४)। अत्र 'अजनिष्ट' इत्याद्युदात्तम्, 'अपश्यत्' इति चानुदात्तम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (हि) हि इस (निपातेन) निपात-संज्ञक शब्द से (युक्तम्) संयुक्त (अनेकम्, अपि) एक तथा अनेक भी (साकाङ्क्षम्) व्यपेक्षा सहित (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है। 'अनेकमपि' का तात्पर्य यह है कि कभी एक तिङन्त पद और कभी अनेक तिङन्त पद।*

*उदा०-**(अनेक) अनृतं हि मत्तो वदति, पाप्मा एनं विपुनाति।** यहां अनेक=दोनों तिङन्तपदों को सर्वानुदात्त नहीं होता है। **(एकम्) अग्निर्हि पूर्वमुदजयत् तमिन्द्रोऽनूदयजत्।** यहां दोनों तिङन्त पद 'हि' इस निपात से संयुक्त हैं। इनमें एक 'उदजयत्' तिङन्त पद आद्युदात्त है और दूसरा 'अनूदजयत्' यह अनुदात्त है। **अजा ह्यग्नेरजनिष्ट गर्भात् सा वाऽपश्यज्जनितारमग्रे** (तै०सं० ४।२।१०।४)। यहां 'अजनिष्ट' यह तिङन्त पद आद्युदात्त है और दूसरा 'अपश्यत्' यह अनुदात्त है।*

***सिद्धि-(१) अनृतं हि मत्तो वदति, पाप्मा एनं विपुनाति।** यहां वदति और विपुनाति ये दोनों तिङन्त पद हेतुहेतुमद्भाव होने से साकाङ्क्ष हैं और दोनों पद 'हि' निपात से संयुक्त है। अर्थ यह है-क्योंकि मत्त (पागल) झूठ बोलता है अतः पाप्मा (पागलपन) उसे शुद्ध करता है अर्थात् वह मत्तता के कारण अनृत भाषण के दोष का भागी नहीं होता है। अतः 'वदति' पद आद्युदात्त और विपुनाति पद प्रत्यय स्वर से मध्योदात्त होता है। 'वि' उपसर्ग **'तिङि चोदात्तवति'** (८।१।७१) से निघात होता है।*

***(२) अग्निर्हि पूर्वमुदजयत् तमिन्द्रोऽनूदयजत्।** यहां उदजयत् और अनूदजयत् दोनों तिङन्त पद 'हि' निपात से संयुक्त हैं और पूर्ववत् हेतुहेतुमद्भाव से साकाङ्क्ष हैं। अर्थ यह है-क्योंकि अग्नि ने पहले जय को प्राप्त किया और इन्द्र पश्चात् विजय को प्राप्त हुआ। यहां भी दोनों तिङन्त पद 'हि' निपात से संयुक्त हैं किन्तु इस सूत्रवचन से प्रथम तिङन्त पद 'उदजयत्' को सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है और दूसरा 'अनूदजयत्' पद **'तिङ्ङतिङः'** (८।१।२८) से निघात होता है।*

'उदजयत्' पद में उत्-उपसर्गपूर्वक 'जि जये' (भ्वा०प०) धातु से 'लङ्' प्रत्यय है। 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' (६।४।७१) से उदात्त अडागम होता है। अतः यह आद्युदात्त है। अनूदजयत्। अनु और उत् उपसर्गपूर्वक 'जि' धातु से पूर्ववत्।

(३) अजा ह्यग्नेरजनिष्ट गर्भात् सा वाऽपश्यज्जनितारमग्रे। यहां 'अजनिष्ट' और 'अपश्यत्' दोनों तिङन्त पद 'हि' निपात से संयुक्त हैं और साकाङ्क्ष भी हैं। अर्थ यह है-क्योंकि अजा (प्रकृति) अग्नि के गर्भ से उत्पन्न हुई और उसने अपने जनक को प्रथम देखा। इस सूत्रवचन से प्रथम 'अजनिष्ट' पद को निघात का प्रतिषेध होता है और द्वितीय 'अपश्यत्' को नहीं।

'अजनिष्ट' पद में 'जनी प्रादुर्भावे' (भ्वा०आ०) धातु से 'लुङ्' प्रत्यय और 'अपश्यत्' पद में 'दृशिर् प्रेक्षणे' (भ्वा०प०) धातु से 'लङ्' प्रत्यय है। 'पाघ्राध्मा०' (७।३।७८) से 'दृश्' के स्थान में 'पश्य' आदेश होता है।

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः–

(१६) यावद्यथाभ्याम्।३६।

प०वि०–यावत्-यथाभ्याम् ५।२।

स०–यावच्च यथाश्च तौ यावद्यथौ, ताभ्याम्-यावद्यथाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, निपातैः, युक्तमिति चानुवर्तते।

अन्वयः–अपादादौ पदाद् निपाताभ्यां यावद्यथाभ्यां युक्तं तिङ् पदं सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः–अपादादौ वर्तमानं पदात् परं निपाताभ्यां यावद्यथाभ्यां युक्तं तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०–**(यावत्)** यावद् भुङ्क्ते। यावदधीते। देवदत्तः पचति यावत्। **(यथा)** यथा भुङ्क्ते। यथा अधीते। देवदत्तः पचति यथा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (निपाताभ्याम्) निपात-संज्ञक (यावद्यथाभ्याम्) यावत् और यथा शब्दों से परे (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(यावत्) **यावद् भुङ्क्ते।** वह जितना खाता है। **यावदधीते।** वह जितना अध्ययन करता है। **देवदत्तः पचति यावत्।** देवदत्त जब तक पकाता है। **(यथा) यथा भुङ्क्ते।** वह जैसे खाता है। **यथा अधीते।** वह जैसे अध्ययन करता है। **देवदत्तः पचति यथा।** देवदत्त जैसे पकाता है।*

सिद्धि-यावद् भुङ्क्ते। यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, 'यावत्' पद से परवर्ती तथा इससे संयुक्त तिङन्त 'भुङ्क्ते' पद इस सूत्र से सर्वानुदात्त नहीं होता है। अतः ***'तास्यनुदात्तेन्०'*** *(६।१।१८६) से 'त' प्रत्यय अनुदात्त है और 'श्नम्' प्रत्ययस्वर से उदात्त है* ***'श्नसोरल्लोपः'*** *(६।४।१११) से 'श्नम्' के अकार का लोप होने से* ***'अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः'*** *(६।१।१६२) से 'त' प्रत्यय आद्युदात्त होता है। ऐसे ही-यावदधीते। देवदत्तः पचति यावत्। यहां परवर्ती 'यावत्' शब्द के योग में भी सर्वानुदात्त का प्रतिषेध है। 'शप्' प्रत्यय के 'पित्' होने से* ***'अनुदात्तौ सुप्पितौ'*** *(३।१।४) से अनुदात्त और इसे* ***'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः'*** *(८।४।६६) से इसे स्वरित हो जाता है। ऐसे ही 'यथा भुङ्क्ते' आदि।*

अनुदात्तमेव–

(२०) पूजायां नानन्तरम्।३७।

प०वि०-पूजायाम् ७।१ न अव्ययपदम्, अनन्तरम् १।१।

स०-न विद्यतेऽन्तरं यस्मिंस्तत्-अनन्तरम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, निपातैः, युक्तम्, यावद्यथाभ्यामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदाद् निपाताभ्यां यावद्यथाभ्यां युक्तं तिङ् पदं अनन्तरं पूजायाम्, न सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परं निपाताभ्यां यावद्यथाभ्यां युक्तमनन्तरं तिङन्तं पदं पूजायां विषये न सर्वमनुदात्तं न भवति, अनुदात्तमेव भवतीत्यर्थः।

उदा०-**(यावत्)** यावत् पचति शोभनम्। यावत् करोति चारु। **(यथा)** यथा पचति शोभनम्। यथा करोति चारु।

आर्यभाषाः ***अर्थ***-*(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (निपाताभ्याम्) निपात-संज्ञक (यावद्यथाभ्याम्) यावत् और यथा इनसे (युक्तम्) संयुक्त (अनन्तरम्) व्यवधानरहित (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (पूजायाम्) पूजा विषय में (न सर्वमनुदात्तम्) नहीं सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है अर्थात् सर्वानुदात्त ही होता है।*

उदा०-(यावत्) यावत् पचति शोभनम्। वह जितना पकाता है, सोहणा पकाता है। यावत् करोति चारु। वह जितना करता है, सुन्दर करता है (बनाता है)। (यथा) यथा पचति शोभनम्। वह जैसा पकाता है, सोहणा पकाता है। यथा करोति चारु। वह जैसे करता है, सुन्दर करता है।

सिद्धि-यावत् पचति शोभनम्। यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, यावत् पद से परवर्ती तथा इस संयुक्त 'पचति' पद पूजा विषय में इस सूत्र से सर्वानुदात्त ही होता है। ऐसे ही-*यावत् करोति चारु। यथा पचति शोभनम्। यथा करोति चारु।*

अनुदात्तमेव-

(२१) उपसर्गव्यपेतं च।३८।

प०वि०-उपसर्गव्यपेतम् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-व्यपेतम्=व्यवहितमित्यर्थः। उपसर्गेण व्यपेतमिति उपसर्गव्यपेतम् (तृतीयातत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, निपातैः, युक्तम्, यावद्यथाभ्याम्, पूजायाम्, न, अनन्तरमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदाद् निपाताभ्यां यावद्यथाभ्यां युक्तमनन्तरं उपसर्गव्यपेतं च तिङ् पदं पूजायां न सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परं निपाताभ्यां यावद्यथाभ्यां युक्तमनन्तरं उपसर्गव्यपेतं च तिङन्तं पदं पूजायां विषये न सर्वमनुदात्तं न भवति, अनुदात्तमेव भवतीत्यर्थः।

उदा०-(यावत्) यावत् प्रपचति शोभनम्। यावत् प्रकरोति चारु। **(यथा)** यथा प्रपचति शोभनम्। यथा प्रकरोति चारु।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (निपाताभ्याम्) निपात-संज्ञक (यावद्यथाभ्याम्) यावत् और यथा इन शब्दों से (युक्तम्) संयुक्त (अनन्तरम्) व्यवधान से रहित (च) और (उपसर्गव्यपेतम्) उपसर्ग से व्यवहित (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (पूजायाम्) पूजा विषय में (न सर्वमनुदात्तम्) नहीं सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है, अर्थात् सर्वानुदात्त ही होता है।*

*उदा०-(यावत्) **यावत् प्रपचति शोभनम्।** वह जितना प्रकृष्ट पकाता है, सोहणा पकाता है। **यावत् प्रकरोति चारु।** वह जितना प्रकृष्ट करता है, सुन्दर करता है (बनाता है)। (यथा) **यथा प्रपचति शोभनम्।** वह जैसा प्रकृष्ट पकाता है, सोहणा पकाता है। **यथा प्रकरोति चारु।** वह जैसा प्रकृष्ट करता है, सुन्दर करता है।*

*सिद्धि-**यावत् प्रपचति शोभनम्।** यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, यावत् पद से परवर्ती तथा इससे संयुक्त, व्यवधान से रहित और 'प्र' उपसर्ग से व्यवहित 'पचति' पद पूजा विषय में इस सूत्र से सर्वानुदात्त ही होता है। ऐसे ही-**यावत् प्रकरोति चारु। यथा प्रपचति शोभनम्। यथा प्रकरोति चारु।***

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः--

(२२) तुपश्यपश्यताहैः पूजायाम्।३६।

प०वि०-तु-पश्य-पश्यत-अहैः ३।३ पूजायाम् ७।१।

स०-तुश्च पश्यश्च पश्यतश्च अहश्च ते तुपश्यपश्यताहाः, तैः-तुपश्यपश्यताहैः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, निपातैः, युक्तम्, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदाद् निपातैस्तुपश्यपश्यताहैर्युक्तं तिङ् पदं पूजायां सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परं निपातैस्तुपश्यपश्यताहैर्युक्तं तिङन्तं पदं पूजायां विषये सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०-(तु) माणवकस्तु भुङ्क्ते शोभनम्। **(पश्य)** पश्य माणवको भुङ्क्ते शोभनम्। **(पश्यत)** पश्यत माणवको भुङ्क्ते शोभनम्। **(अह)** अह माणवको भुङ्क्ते शोभनम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (निपातैः) निपात-संज्ञक (तुपश्यपश्यताहैः) तु, पश्य, पश्यत, अह इन शब्दों से (युक्तम्) संयुक्त (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (पूजायाम्) पूजा विषय में (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**(तु) माणवकस्तु भुङ्क्ते शोभनम्।** यह बालक तो शोभन विधि से खाता है। **(पश्य) पश्य माणवको भुङ्क्ते शोभनम्।** तू देख, यह बालक शोभन विधि से खाता है। **(पश्यत) पश्यत माणवको भुङ्क्ते शोभनम्।** तुम सब देखो, यह बालक शोभन विधि से खाता है। **(अह) अह माणवको भुङ्क्ते शोभनम्।** आश्चर्य है, यह बालक शोभन विधि से खाता है।*

***सिद्धि**-**माणवकस्तु भुङ्क्ते शोभनम्।** यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, 'तु' पद से परवर्ती तथा इससे संयुक्त तिङन्त 'भुङ्क्ते' पद पूजा विषय में इस सूत्र से सर्वानुदात्त नहीं होता है अपितु पूर्ववत् अन्तोदात्त होता है। ऐसे ही **'पश्य माणवको भुङ्क्ते शोभनम्'** आदि।*

विशेषः *(१) यहां 'तु' और 'अह' निपात हैं अतः निपात-विशेषण का इन्हीं के साथ सम्बन्ध है, 'पश्य' और 'पश्यत' पदों के साथ नहीं।*

(२) 'पूजायाम्' पद की अनुवृत्ति में पुनः 'पूजायाम्' पद का ग्रहण सर्वानुदात्त-प्रतिषेध के लिये किया गया है। अनुवर्तमान 'पूजायाम्' पद निघात-प्रतिषेध के प्रतिषेध से सम्बद्ध था, अतः उसकी अनुवृत्ति नहीं की गई है।

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः–

(२३) अहो च।४०।

प०वि०–अहो अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्।

अनु०–पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, निपातैः, युक्तम्, पूजायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः–अपादादौ पदाद् निपातेन अहो च युक्तं तिङ् पूजायां सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः–अपादादौ वर्तमानं पदात् परं निपातेनाऽहो इत्यनेन च युक्तं तिङन्तं पदं पूजायां विषये सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०–अहो देवदत्तः पचति शोभनम्। अहो विष्णुमित्रः करोति शोभनम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (निपातेन) निपात-संज्ञक (अहो) अहो इस शब्द (च) भी (युक्तम्) संयुक्त (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (पूजायाम्) पूजा विषय में (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

*उदा०–**अहो देवदत्तः पचति शोभनम्।** आश्चर्य है, देवदत्त शोभन विधि से पकाता है। **अहो विष्णुमित्रः करोति शोभनम्।** आश्चर्य है, विष्णुमित्र शोभन विधि से करता (बनाता) है।*

सिद्धि**–**अहो देवदत्तः पचति शोभनम्।** यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, देवदत्त' पद से परवर्ती, 'अहो' निपात से संयुक्त 'पचति' पद पूजा विषय में इस सूत्र से सर्वानुदात्त नहीं होता है, अपितु पूर्ववत् स्वर होता है। ऐसे ही–**अहो विष्णुमित्रः करोति शोभनम्।

सर्वानुदात्तविकल्पः–

(२४) शेषे विभाषा।४१।

प०वि०–शेषे ७।१ विभाषा १।१।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, निपातैः, युक्तम्, अहो इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदाद् निपातेन अहो युक्तं तिङ् पदं शेषे विभाषा सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परं निपातेनाऽहो इत्यनेन युक्तं तिङन्तं पदं शेषे विषये विकल्पेन सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०-कटमहो करिष्यसि। कटमहो करिष्यसि। मम गेहमहो एष्यसि। मम गेहमहो एष्यसि। यदन्यत् पूजायाः स शेषो वेदितव्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (निपातेन) निपात-संज्ञक (अहो) अहो इस शब्द से (युक्तम्) संयुक्त (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (शेषे) शेष अर्थात् पूजा से भिन्न विषय में (विभाषा) विकल्प से (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

*उदा०-कटमहो **करिष्यसि**। कटमहो **करिष्यसि**। आश्चर्य है कि तू चटाई बनावेगा। मम गेहमहो **एष्यसि**। मम गेहमहो **एष्यसि**। आश्चर्य है कि तू मेरे घर जायेगा। यह निन्दावचन है, पूजावचन नहीं।*

पूजा अर्थ से भिन्न जो निन्दा अर्थ है वह शेष है।

सिद्धि-कटमहो करिष्यसि। *यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, 'अहो' इस पद से परवर्ती तथा इससे संयुक्त 'करिष्यसि' यह तिङन्त पद शेष अर्थात् पूजा अर्थ से भिन्न, निन्दा अर्थ में इस सूत्र से सर्वानुदात्त नहीं होता है विकल्प पक्ष में सर्वानुदात्त है-कटमहो करिष्यसि। ऐसे ही-**मम गेहमहो एष्यसि। मम गेहमहो एष्यसि।***

सर्वानुदात्तविकल्पः--

(२५) पुरा च परीप्सायाम्।४२।

प०वि०-पुरा अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्, परीप्सायाम् ७।१।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, निपातैः, युक्तम्, विभाषेति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदाद् निपातेन पुरा च युक्तं तिङ् पदं परीप्सायां विभाषा सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परं निपातेन पुरा इत्यनेन च युक्तं तिङन्तं पदं परीप्सायामर्थे विकल्पेन सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०–अधीष्व माणवक ! पुरा विद्योतते विद्युत्/विद्योतते। पुरास्तनयति स्तनयित्नुः/स्तनयति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (निपातेन) निपात-संज्ञक (पुरा) पुरा शब्द से (च) भी (युक्तम्) संयुक्त (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (परीप्सायाम्) त्वरा=शीघ्रता अर्थ में (विभाषा) विकल्प से (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**अधीष्व माणवक ! पुरा विद्योतते विद्युत्।** रे बालक ! तू अध्ययन कर क्योंकि शीघ्र ही बिजली चमकनेवाली है। **अधीष्व माणवक ! पुरा स्तनयति स्तनयित्नुः।** हे बालक ! तू अध्ययन कर क्योंकि बादल शीघ्र गर्जनेवाला है। अमावस्या आदि पर्वों के समान विद्युत्-द्योतन आदि में अध्ययन करना वर्जित है।*

*सिद्धि-**अधीष्व माणवक ! पुरा विद्योतते विद्युत्।** यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, 'पुरा' पद से परवर्ती और इससे संयुक्त तिङन्त 'विद्योतते' पद परीप्सा अर्थ में इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है, विकल्प पक्ष में सर्वानुदात्त होता है-विद्योतते। ऐसे ही-पुरा स्तनयति स्तनयित्नुः/स्तनयति।*

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः–

(२६) नन्वित्यनुज्ञैषणायाम्।४३।

प०वि०–ननु अव्ययपदम्, इति अव्ययपदम्, अनुज्ञैषणायाम् ७।१।

स०–एषणा=प्रार्थनेत्यर्थः। अनुज्ञाया एषणेति अनुज्ञैषणा, तस्याम्-अनुज्ञैषणायाम् (षष्ठीतत्पुरुषः)। अनुज्ञा-प्रार्थनेत्यर्थः।

अनु०–पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, निपातैः, युक्तमिति चानुवर्तते।

अन्वयः–अपादादौ पदाद् निपातेन ननु इति युक्तं तिङ् पदम् अनुज्ञैषणायां सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः–अपादादौ वर्तमानं पदात् परं निपातेन ननु इत्यनेन युक्तं तिङन्तं पदम् अनुज्ञैषणायामर्थे सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०–ननु करोमि भोः। ननु गच्छामि भोः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (निपातेन) निपात-संज्ञक (ननु) ननु (इति) इस शब्द से (युक्तम्) संयुक्त (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद को (अनुज्ञैषणायाम्) अनुज्ञा=आज्ञा की प्रार्थना अर्थ में (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

*उदा०-ननु करोमि भोः । अरे ! मुझे करने की आज्ञा दो। **ननु गच्छामि भोः ।** अरे ! मुझे जाने की आज्ञा दो।*

***सिद्धि**-ननु करोमि भोः । यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, 'ननु' पद से परवर्ती तथा इससे संयुक्त तिङन्त 'करोमि' पद को अनुज्ञैषणा अर्थ में इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। अतः पूर्ववत् यथाप्राप्त स्वर होता है। ऐसे ही-ननु गच्छामि भोः ।*

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः-

(२७) किं क्रियाप्रश्नेऽनुपसर्गमप्रतिषिद्धम् ।४४।

प०वि०-किम् अव्ययपदम्, क्रियाप्रश्ने ७।१ अनुपसर्गम् १।१ अप्रतिषिद्धम् १।१।

स०-क्रियायाः प्रश्न इति क्रियाप्रश्नः, तस्मिन्-क्रियाप्रश्ने (षष्ठीतत्पुरुषः)। न विद्यते उपसर्गो यस्य तत्-अनुपसर्गम् (बहुव्रीहिः)। प्रतिषिद्धम्=प्रतिषेधः। **'नपुंसके भावे क्तः'** (३।१।११४) इति भावे क्तः प्रत्ययः। न प्रतिषिद्धं यस्य तत्-अप्रतिषिद्धम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, निपातैः, युक्तमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदात् क्रियाप्रश्ने निपातेन किम् युक्तम् अनुपसर्गम् अप्रतिषिद्धं तिङ् पदम् सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परं क्रियाप्रश्नेऽर्थे वर्तमानेन निपातेन किमित्यनेन युक्तम् उपसर्गवर्जितं प्रतिषेधवर्जितं च तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०-किं देवदत्तः पचति, आहोस्विद् भुङ्क्ते। किं देवदत्तः शेते, आहोस्विद् अधीते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (क्रियाप्रश्ने) क्रिया के पूछने अर्थ में वर्तमान (निपातेन) निपात-संज्ञक (किम्) किम् इस शब्द से (युक्तम्) संयुक्त (अनुपसर्गम्) उपसर्ग से रहित और (अप्रतिषिद्धम्) प्रतिषेध से रहित (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

उदा०-किं देवदत्तः पचति आहोस्विद् भुङ्क्ते। क्या देवदत्त पकाता है अथवा भोजन करता है। किं देवदत्तः शेते आहोस्विद् अधीते। क्या देवदत्त सोता है अथवा पढ़ता है।

सिद्धि-किं देवदत्तः पचति आहोस्विद् भुङ्क्ते। यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, देवदत्त पद से परवर्ती 'किम्' इस निपात से युक्त, उपसर्गरहित और प्रतिषेध वर्जित तिङन्त 'पचति' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। ऐसे ही-किं देवदत्तः शेते आहोस्विद् अधीते।

सर्वानुदात्तविकल्पः-

(२८) लोपे विभाषा।४५।

प०वि०-लोपे ७।१ विभाषा १।१।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, किम्, क्रियाप्रश्ने, अनुपसर्गम्, अप्रतिषिद्धमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदात् क्रियाप्रश्ने निपातस्य किमो लोपे अनुपसर्गम् अप्रतिषिद्धं तिङ् पदं विभाषा सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परं क्रियाप्रश्नेऽर्थे निपातस्य किमो लोपे सति उपसर्गवर्जितं प्रतिषेधवर्जितं च तिङन्तं पदं विकल्पेन सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०-देवदत्तः पचति, आहोस्वित् पठति। देवदत्तः पचति, आहोस्वित् पठति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (क्रियाप्रश्ने) क्रिया के पूछने अर्थ में वर्तमान (निपातस्य) निपात-संज्ञक (किमः) किम् शब्द का (लोपे) लोप हो जाने पर (अनुपसर्गम्) उपसर्ग से रहित और (अप्रतिषिद्धम्) प्रतिषेध से रहित (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

उदा०-देवदत्तः पचति, आहोस्वित् पठति। देवदत्तः पचति, आहोस्वित् पठति। क्या देवदत्त पकाता है अथवा पढ़ता है?

सिद्धि-देवदत्तः पचति, आहोस्वित् पठति। यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, देवदत्त पद से परवर्ती, क्रियाप्रश्न अर्थ में वर्तमान 'किम्' शब्द के लोप में, उपसर्ग और प्रतिषेध से रहित तिङन्त 'पचति' और 'पठति' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। विकल्प-पक्ष में सर्वानुदात्त स्वर है। ऐसे ही-देवदत्तः पचति आहोस्वित् पठति।

सर्वानुदात्तविकल्पः–

(२६) एहिमन्ये प्रहासे लृट्।४६।

प०वि०–एहिमन्ये १।१ प्रहासे ७।१ लृट् १।१।

स०–एहिश्च मन्येश्च एतयोः समाहारः-एहिमन्ये (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, युक्तमिति चानुवर्तते।

अन्वयः–अपादादौ पदात् एहिमन्ये युक्तं लृट् तिङ् पदं प्रहासे सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः–अपादादौ वर्तमानं पदात् परं एहिमन्ये इत्यनेन युक्तं लृडन्तं तिङन्तं पदं प्रहासे गम्यमाने सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०–कश्चित् कञ्चित् प्रहसन् प्राह-एहि त्वं मन्येऽहम् ओदनं भोक्ष्यसे, नहि भोक्ष्यसे, भुक्तः सोऽतिथिभिः। एहि त्वं मन्येऽहं रथेन यास्यसि, नहि यास्यसि यातस्तेन ते पिता।

आर्यभाषाः अर्थ–*(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (एहिमन्ये) एहि-मन्ये शब्दों से (युक्तम्) संयुक्त (लृट्) लृट् प्रत्ययान्त (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (प्रहासे) परिहास अर्थ में (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

*उदा०–कोई किसी का परिहास करता हुआ कहता है-**एहि त्वं मन्येऽहम् ओदनं भोक्ष्यसे, नहि भोक्ष्यसे, भुक्तः सोऽतिथिभिः।** आओ मित्र! तू समझता है कि मैं चावल खाऊंगा, तू चावल नहीं खायेगा, उसे तो अतिथि लोग खा गये। **एहि त्वं मन्येऽहं रथेन यास्यसि, नहि यास्यसि यातस्तेन ते पिता।** आओ मित्र! तू समझता है कि मैं रथ से जाऊंगा, तू रथ से नहीं जायेगा, उससे तो तुम्हारे पिताजी चले गये।*

सिद्धि-एहि त्वं मन्येऽहमोदनं भोक्ष्यसे। *यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, ओदन पद से परवर्ती, 'एहिमन्ये' से संयुक्त लृट्-प्रत्ययान्त, तिङन्त 'भोक्ष्यसे' पद को प्रहास अर्थ में सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। पश्चात् पूर्ववत् यथाप्राप्त स्वर होता है। ऐसे ही-**एहि त्वं मन्येऽहं रथेन यास्यसि, नहि यास्यसि यातस्तेन ते पिता।***

*यहां **'प्रहासे च मन्योपपदे मन्यतेरुत्तम एकवच्च'** (४।१।१०६) से युष्मद्-शब्द उपपद होने पर मन्यति-धातु से उत्तमपुरुष और एकवचन होता है और मन्य-उपपद 'भुज्' धातु से मध्यमपुरुष होता है। मध्यमपुरुष और उत्तमपुरुष की प्राप्ति में प्रहास में उत्तमपुरुष और मध्यमपुरुष किया जाता है।*

सर्वानुदात्तविकल्पः--

(३०) जात्वपूर्वम्।४७।

प०वि०-जातु अव्ययपदम्, अपूर्वम् १।१।

स०-अविद्यमानं पूर्वं यस्मात् तद्-अपूर्वम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, निपातैः, युक्तमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदाद् अविद्यमानपूर्वं जातु निपातेन युक्तं तिङ् पदं सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परमऽविद्यमानपूर्वेण जातु इत्यनेन निपातेन युक्तं तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०-जातु भो॒क्ष्यसे॑। जातु क॒रि॒ष्यामि॑।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (अपूर्वम्) अविद्यमानपूर्वी (जातु) जातु इस (निपातेन) निपात-संज्ञक शब्द से (युक्तम्) संयुक्त (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**जातु भो॒क्ष्यसे॑।** तू कब भोजन करेगा। **जातु क॒रि॒ष्यामि॑।** मैं कब करूंगा।*

सिद्धि-जातु भो॒क्ष्यसे॑। *यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, जातु पद से परवर्ती तथा अपूर्वी जातु निपात से संयुक्त तिङन्त 'भोक्ष्यसे' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। ऐसे ही-**जातु क॒रि॒ष्यामि॑।***

सर्वानुदात्तविकल्पः--

(३१) किंवृत्तं च चिदुत्तरम्।४८।

प०वि०-किंवृत्तम् १।१ च अव्ययपदम्, चिदुत्तरम् १।१।

स०-किमो वृत्तमिति किंवृत्तम् (षष्ठीतत्पुरुषः)।

वृत्तमित्यत्र **'क्तोऽधिकरणे च ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्यः'** (३।४।७६) इति ध्रौव्यलक्षणोऽधिकरणे क्तः प्रत्ययः, तेन **'अधिकरण-वाचिनश्च'** (२।३।६८) इत्यनेन 'किमः' इत्यत्र षष्ठी **'अधिकरणवाचिना च'** (२।२।१३) इत्यनेन समासप्रतिषेधे प्राप्तेऽस्मादेव निपातनात् समासो वेदितव्यः।

चिद् उत्तरं यस्मात् तत्-चिदुत्तरम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, युक्तम्, अपूर्वमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदाद् अपूर्वेण चिदुत्तरेण किंवृत्तेन च युक्तं तिङ् पदं सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परम् अविद्यमानपूर्वेण चिदुत्तरेण किंवृत्तेन शब्देन च युक्तं तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०-कश्चिद् भोजयति। कश्चिदधीते। केनचित् करोति। कस्मैचिद् ददाति। कतरश्चित् करोति। कतमश्चिद् भुङ्क्ते।

"किंवृत्तग्रहणेन तद्विभक्त्यन्तं प्रतीयात् कतरकतमौ च प्रत्ययौ" (काशिका)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (अपूर्वम्) अविद्यमानपूर्वी (चिदुत्तरेण) चित् शब्द जिसके उत्तर में है उस (किंवृत्तेन) किम् शब्द के विभक्त्यन्त तथा डतर-डतम प्रत्ययान्त शब्द से (युक्तम्) संयुक्त (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**कश्चिद् भोजयति**। कोई भोजन कराता है। **कश्चिदधीते**। कोई अध्ययन करता है। **केनचित् करोति**। वह किसी साधन से बनाता है। **कस्मैचिद् ददाति**। वह किसी को देता है। **कतरश्चित् करोति**। दोनों में से कोई करता है। **कतमश्चिद् भुङ्क्ते**। बहुतों में से कोई भोजन करता है।*

'किंवृत्त' शब्द से यहां 'किम्' शब्द के विभक्त्यन्त शब्द और उसके डतर-डतम प्रत्ययान्त शब्दों का ग्रहण किया जाता है (काशिका)।

सिद्धि-कश्चिद् भोजयति। *यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, कश्चित् पद से परवर्ती, चिद्-उत्तरी किंवृत्त 'कश्चित्' शब्द से संयुक्त तिङन्त 'भोजयति' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। पश्चात् पूर्ववत् यथाप्राप्त स्वर होता है। ऐसे ही-**कश्चिदधीते** आदि।*

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः-

(३२) आहो उताहो चानन्तरम्।४६।

प०वि०-आहो अव्ययपदम्, उताहो अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्, अनन्तरम् १।१।

स०-अविद्यमानमन्तरम्=व्यवधानं यस्य तत्-अनन्तरम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, युक्तम्, अपूर्वमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदाद् अपूर्वाभ्याम् आहो-उताहोभ्यां युक्तं च अनन्तरं तिङ् पदं सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परं अविद्यमानपूर्वाभ्याम् आहो-उताहोभ्यां च युक्तम् अनन्तरम्=व्यवधानरहितं तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०-(**आहो**) आहो भुङ्क्ते। आहो पठति। (**उताहो**) उताहो भुङ्क्ते। उताहो पठति।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (आहो-उताहोभ्याम्) आहो, उताहो इन शब्दों से (युक्तम्) संयुक्त (च) भी (अनन्तरम्) व्यवधान से रहित (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(आहो) **आहो भुङ्क्ते**। अथवा वह भोजन करता है। **आहो पठति**। अथवा वह पढ़ता है। (उताहो) उताहो **भुङ्क्ते**। अथवा वह भोजन करता है। **उताहो पठति**। अथवा वह पढ़ता है।*

सिद्धि-आहो भुङ्क्ते। *यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, आहो पद से परवर्ती, अविद्यमानपूर्वी आहो निपात से संयुक्त, अनन्तर=व्यवधानरहित तिङन्त 'भुङ्क्ते' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। ऐसे ही-**आहो पठति** आदि।*

सर्वानुदात्तविकल्पः-

(३३) शेषे विभाषा।५०।

प०वि०-शेषे ७।१ विभाषा १।१।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, युक्तम्, अपूर्वम्, आहो, उताहो, अनन्तरमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदाद् अपूर्वाभ्याम् आहो-उताहोभ्यां युक्तं शेषे तिङ् पदं सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परम् अविद्यमानपूर्वाभ्याम् आहो-उताहोभ्यां युक्तं शेषे विषये तिङन्तं पदं विकल्पेन सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०-(**आहो**) आहो देवदत्तः पचति। आहो देवदत्तः पचति। (**उताहो**) उताहो देवदत्तः पठति। उताहो देवदत्तः पठति।

आर्यभाषाः अर्थ- *(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (अपूर्वाभ्याम्) अविद्यमानपूर्वी (आहो-उताहोभ्याम्) आहो, उताहो शब्दों से (युक्तम्) संयुक्त (शेष) शेष अर्थात् व्यवधान विषय में (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

उदा०-(आहो) आहो देवदत्तः ***पचति।*** *आहो देवदत्तः* ***पचति।*** *अथवा देवदत्त पकाता है। (उताहो) उताहो देवदत्तः* ***पठति।*** *उताहो देवदत्तः* ***पठति।*** *अथवा देवदत्त पढ़ता है।*

सिद्धि-आहो देवदत्तः ***पचति।*** *यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, देवदत्त पद से परवर्ती, अविद्यमानपूर्वी आहो निपात से संयुक्त, देवदत्त शब्द से व्यवहित, तिङन्त 'पचति' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। विकल्प-पक्ष में सर्वानुदात्त होता है-आहो देवदत्तः* ***पचति।*** *ऐसे ही-उताहो देवदत्तः* ***पठति।*** *उताहो देवदत्तः* ***पठति।***

सर्वानुदात्तविकल्पः–

(३४) गत्यर्थलोटा लृण् न चेत् कारकं सर्वान्यत्।५१।

प०वि०-गत्यर्थलोटा ३।१ लृट् १।१ न अव्ययपदम्, चेत् अव्ययपदम्, कारकम् १।१ सर्वान्यत् १।१।

स०-गतिरर्थो येषां ते गत्यर्थाः, गत्यर्थानां लोडिति गत्यर्थलोट्, तेन-गत्यर्थलोटा (बहुव्रीहिगर्भितषष्ठीतत्पुरुषः)। सर्वं च तदन्यच्चेति सर्वान्यत् (कर्मधारयः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, युक्तमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदाद् गत्यर्थलोटा युक्तं लृट् तिङ् पदं सर्वमनुदात्तं न, न चेत् कारकं सर्वान्यत्।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परं गत्यर्थलोटा युक्तं लृडन्तं तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं न भवति, न चेत् कारकं सर्वान्यद् भवति, यस्मिन् कर्तरि कर्मणि वा कारके लोट्, तस्मिन्नेव कारके यदि लृडपि भवतीत्यर्थः।

उदा०-(कर्ता) आगच्छ देवदत्त ! ग्रामं द्रक्ष्यसि एनम्। आगच्छ देवदत्त ! ग्राममोदनं भोक्ष्यसे। **(कर्म)** उह्यन्तां देवदत्तेन शालयः, तेनैव भोक्ष्यन्ते। उह्यन्तां देवदत्तेन शालयः, यज्ञदत्तेन भोक्ष्यन्ते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (गत्यर्थलोटा) गत्यर्थक धातुओं के लोट् प्रत्यय से (युक्तम्) संयुक्त (लृट्) लृट्-प्रत्ययान्त (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है, (चेत्) यदि (कारकम्) कर्ता और कर्म कारक (सर्वान्यत्) सारा अन्य (न) न हो।*

*उदा०-**(कर्ता) आगच्छ देवदत्त ! ग्रामं द्रक्ष्यसि एनम्।** हे देवदत्त ! तू गांव आ, तू इसे देखेगा। **आगच्छ देवदत्त ! ग्राममोदनं भोक्ष्यसे।** हे देवदत्त ! तू गांव आ, तू भात खायेगा। **(कर्म) उह्यन्तां देवदत्तेन शालयः, तेनैव भोक्ष्यन्ते।** देवदत्त के द्वारा शालि (चावल) ढोये जायें, वे उसके द्वारा ही खाये जायेंगे। **उह्यन्तां देवदत्तेन शालयः, यज्ञदत्तेन भोक्ष्यन्ते।** देवदत्त के द्वारा शालि ढोये जायें, वे यज्ञदत्त के द्वारा खाये जायेंगे।*

*सिद्धि-**आगच्छ देवदत्त ! ग्रामं द्रक्ष्यसि एनम्।** यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान,ग्रामम् पद से परवर्ती, गत्यर्थक 'गम्' धातु के लोट् लकार 'आगच्छ' से संयुक्त, लृट्-प्रत्ययान्त तिङन्त 'द्रक्ष्यसि' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। यहां आगच्छ पद कर्ता कारक में है और द्रक्ष्यसि पद भी कर्ता कारक में है अतः कारक सर्व-अन्य (न) नहीं है। ऐसे ही-**आगच्छ देवदत्त ! ग्राममोदनं भोक्ष्यसे।***

***उह्यन्तां देवदत्तेन शालयस्तेनैव भोक्ष्यन्ते** आदि प्रयोग कर्मकारक के हैं। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः-

(३५) लोट् च।५२।

प०वि०-लोट् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, युक्तम्, गत्यर्थलोटा, न चेत्, कारकम्, सर्वान्यदिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदात् गत्यर्थलोटा युक्तं लोट् तिङ् पदं च सर्वमनुदात्तं न, न चेत् कारकं सर्वान्यत्।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परं गत्यर्थलोटा युक्तं लोडन्तं तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं न भवति, न चेत् कारकं सर्वान्यद् भवति, यस्मिन् कर्तरि कर्मणि वा कारके लोट् तस्मिन्नेव कारके यदि लोडपि भवति।

उदा०-(कर्ता) आगच्छ देवदत्त ! ग्रामं पश्य। आगच्छ विष्णुमित्र ! ग्रामं शाधि। **(कर्म)** आगम्यतां देवदत्तेन, ग्रामो दृश्यतां यज्ञदत्तेन।

***आर्यभाषाः* अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (गत्यर्थलोटा) गत्यर्थक धातुओं के लोट् प्रत्यय से (युक्तम्) संयुक्त (लोट्) लृट्-प्रत्ययान्त (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (च) भी (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है, (चेत्) यदि (कारकम्) कर्ता और कर्मकारक (सर्वान्यत्) सारा अन्य (न) न हो।**

उदा०-(कर्ता) आगच्छ देवदत्त ! ग्रामं पश्य। हे देवदत्त ! आ, तू गांव को देख। आगच्छ विष्णुमित्र ! ग्रामं शाधि। हे विष्णुमित्र ! आ, तू गांव को शिक्षा कर।(कर्म) आगम्यतां देवदत्तेन, ग्रामो दृश्यतां यज्ञदत्तेन। देवदत्त के द्वारा आया जाये, यज्ञदत्त के द्वारा गांव देखा जाये।

सिद्धि-आगच्छ देवदत्त ! ग्रामं पश्य। यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, ग्रामम् पद से परवर्ती, गत्यर्थक 'गम्' धातु के लोट् लकार के 'आगच्छ' पद से संयुक्त लोट्-प्रत्ययान्त तिङन्त 'पश्य' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। ऐसे ही-आगच्छ विष्णुमित्र ! ग्रामं शाधि। कर्मकारक में-आगम्यतां देवदत्तेन, ग्रामो दृश्यतां यज्ञदत्तेन। यहां आगच्छ और पश्य पद कर्ताकारक में है और आगम्यताम् और दृश्यताम् पद कर्म कारक में है, अतः कारक सर्व-अन्य नहीं है।

सर्वानुदात्तविकल्पः--

(३६) विभाषितं सोपसर्गमनुत्तमम्।५३।

प०वि०-विभाषितम् १।१ सोपसर्गम् १।१ अनुत्तमम् १।१।

स०-उपसर्गेण सह वर्तते इति सोपसर्गम् (बहुव्रीहिः)। न उत्तममिति अनुत्तमम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, युक्तम्, गत्यर्थलोटा, न चेत्, कारकम्, सर्वान्यत्, लोडिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदात् गत्यर्थलोटा सोपसर्गमऽनुत्तमम् लोट् तिङ् पदं विभाषितं सर्वमनुदात्तं न, न चेत् कारकं सर्वान्यत्।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पदात् परं गत्यर्थलोटा युक्तं सोपसर्गम् उत्तमपुरुषवर्जितं लोडन्तं तिङन्तं पदं विकल्पेन सर्वमनुदात्तं न भवति, न चेत् कारकं सर्वान्यद् भवति, यस्मिन्नेव कर्तरि कर्मणि वा कारके लोट् तस्मिन्नेव कारके यदि लोडपि भवतीत्यर्थः।

उदा०-आगच्छ देवदत्त ! ग्रामं प्रविश। आगच्छ देवदत्त ! ग्रामं प्रविशं। आगच्छ देवदत्त ! ग्रामं प्रशाधि। आगच्छ देवदत्त ! ग्रामं प्रशाधि।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (गत्यर्थलोटा) गत्यर्थक धातुओं के लोट् प्रत्यय से (युक्तम्) संयुक्त (सोपसर्गम्) उपसर्गरहित (अनुत्तमम्) उत्तमपुरुष से भिन्न (लोट्) लृट्-प्रत्ययान्त (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (विभाषितम्) विकल्प से (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है, (चेत्) यदि (कारकम्) कर्ता और कर्म कारक (सर्वान्यत्) सारा अन्य (न) न हो, अर्थात् जिस कर्ता वा कारक में लोट् है, उसी कारक में यदि लोट् हो।

उदा०-__आगच्छ देवदत्त ! ग्रामं प्रविश। आगच्छ देवदत्त ! ग्रामं प्रविशं।__ हे देवदत्त ! आ, तू ग्राम में प्रवेश कर। __आगच्छ देवदत्त ! ग्रामं प्रशाधि। आगच्छ देवदत्त ! ग्रामं प्रशाधि।__ हे देवदत्त ! आ, तू ग्राम पर प्रशासन कर।

__सिद्धि-आगच्छ देवदत्त ! ग्रामं प्रविश।__ यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, ग्रामम् पद से परवर्ती, गत्यर्थक 'गम्' धातु के लोट् लकार के 'आगच्छ' पद से संयुक्त प्र-उपसर्ग सहित तथा उत्तमपुरुष से रहित लोट्-प्रत्ययान्त तिङन्त 'प्रविश' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। अतः 'प्र' को __'तिङि चोदात्तवति'__ (८।१।७१) से सर्वानुदात्त=निघात स्वर और विश् धातु से लोट् लकार में __'तुदादिभ्यः शः'__ (३।१।७७) से 'श' विकरण-प्रत्यय और __'अतो हेः'__ (६।४।१०५) से हि (सिप्) का लोप हो जाने पर 'प्रविश' पद में 'विश' को सर्वानुदात्त होकर __'उपसर्गाश्चाभिवर्जम्'__ (फिट्० ४।१३) से 'प्र' उपसर्ग के उदात्त होने से __'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः'__ (८।४।६६) से स्वरित होता है-__प्रविशं।__ ऐसे ही-__आगच्छ देवदत्त ! ग्रामं प्रशाधि/प्रशाधि।__

सर्वानुदात्तविकल्पः—

(३७) हन्त च।५४।

प०वि०-हन्त अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, युक्तम्, लोट्, विभाषितम्, सोपसर्गम्, अनुत्तममिति चानुवर्तते। गत्यर्थलोटेति च निवृत्तम्।

अन्वयः-अपादादौ पदाद् हन्त युक्तं च सोपसर्गमऽनुत्तमं लोट् तिङ् पदं विभाषितं सर्वमनुदात्तं न।

अर्थ:-अपादादौ वर्तमानं पदात् परं हन्त इत्यनन च युक्त सोपसर्गम् उत्तमपुरुषवर्जितं लोडन्तं तिङन्तं पदं विकल्पेन सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०-हन्त प्रविश। हन्त प्रविश। हन्त प्रशाधि। हन्त प्रशाधि।

***आर्यभाषा:** अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (हन्त) हन्त इस शब्द से (युक्तम्) संयुक्त (च) भी (सोपसर्गम्) उपसर्गसहित (अनुत्तमम्) उत्तमपुरुष से रहित (लोट्) लोट्-प्रत्ययान्त (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (विभाषितम्) विकल्प से (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

*उदा०-हन्त **प्रविश**। हन्त **प्रविश**। हर्ष है, प्रवेश कर। हन्त **प्रशाधि**। हन्त **प्रशाधि**। हर्ष है, प्रशासन कर।*

*सिद्धि-हन्त **प्रविश**। यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, हन्त पद से परवर्ती तथा इससे संयुक्त, प्र-उपसर्गसहित और उत्तमपुरुष से रहित लोट्-प्रत्ययान्त तिङन्त 'प्रविश' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। पश्चात् पूर्वोक्त यथाप्राप्त स्वर होता है। विकल्प-पक्ष में सर्वानुदात्त है-**प्रविश**। ऐसे ही-हन्त **प्रशाधि/प्रशाधि**।*

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः-

(३८) आम एकान्तरमामन्त्रितमनन्तिके।५५।

प०वि०- आम: ५।१ एकान्तरम् १।१ आमन्त्रितम् १।१ अनन्तिके ७।१।

स०-एकम् {पदम्} अन्तरं यस्य तत्-एकान्तरम् (बहुव्रीहि:)। न अन्तिकमिति अनन्तिकम्, तस्मिन्-अनन्तिके (नञ्तत्पुरुष:)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, नेति चानुवर्तते।

अन्वय:-अपादादौ वाऽऽम: पदात् परमेकान्तरमनन्तिके आमन्त्रितं पदं सर्वमनुदात्तं न।

अर्थ:-अपादादौ वर्तमानम् आम: पदात् परमेकपदान्तरमनन्तिके विद्यमानमाऽऽमन्त्रितान्तं पदं सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०-आम् पचसि देवदत्त ! आम् भो देवदत्त !

***आर्यभाषा:** अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (आम:) आम् इस (पदात्) पद से परवर्ती (एकान्तरम्) एक पद के अन्तर=व्यवधानवाला*

(अनन्तिके) अति निकट से भिन्न विषय में (आमन्त्रितम्) आमन्त्रितान्त (पदम्) पद (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।

उदा०-आम् पचसि देवदत्त ! हां ! देवदत्त ! तू पकाता है। आम् भो देवदत्त ! हां रे ! देवदत्त ! तू पकाता है।

सिद्धि-(१) आम् पचसि देवदत्त ! यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, आम् पद से परवर्ती, पचसि इस एक पद के अन्तरवाला, आमन्त्रितान्त 'देवदत्त' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। अतः 'आमन्त्रितस्य च' (६।१।१९२) से आद्युदात्त स्वर होता है।

(२) आम् भो देवदत्त ! यहां 'भोः' और 'देवदत्त' दोनों पद आमन्त्रितान्त है। अतः '**आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत्**' (८।१।७२) से पूर्ववर्ती 'भोः' पद को अविद्यमानवद्भाव होने से उत्तरवर्ती आमन्त्रितान्त 'देवदत्त' शब्द एकपदान्तरित नहीं रहता है। अतः '**नामन्त्रिते समानाधिकरणे सामान्यवचनम्**' (८।१।७३) से अविद्यमानवद्भाव का प्रतिषेध होने से एकपदान्तरितत्व बना रहता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

विशेषः **नैव वा पुनरत्रैकश्रुत्यं प्राप्नोति। किं कारणम् ? अनन्तिक इत्युच्यते। अन्यच्च दूरमन्यदनन्तिकम्। यद्येवं प्लुतोऽपि तर्हि न प्राप्नोति, प्लुतोऽपि 'दूराद्' इत्युच्यते। इष्टमेवैतत् संगृहीतम्-'आम् भो देवदत्त' इत्येव भवितव्यम्।**

(महाभाष्यम् ८।१।५५)।

अर्थ-यहां एकश्रुति स्वर प्राप्त नहीं होता है। क्या कारण है ? सूत्रपाठ में 'अनन्तिके' यह कहा गया है। दूर अन्य होता है और अनन्तिक अन्य होता है। अनन्तिक का अर्थ है-न बहुत निकट न दूर। 'एकश्रुति दूरात् सम्बुद्धौ' (१।२।३३) से दूर से सम्बोधन करने में एकश्रुति स्वर होता है, अनन्तिक से नहीं। यदि ऐसी बात है तो यहां प्लुत भी प्राप्त नहीं होता है क्योंकि प्लुत भी 'दूराद्धूते च' (८।२।८४) से दूर से आहूत करने में प्लुत होता है, अनन्तिक से नहीं। अतः पाणिनि मुनि ने ठीक ही यहां 'अनन्तिके' पद ग्रहण किया है अतः 'आम् भो देवदत्त' यही प्रयोग होना चाहिये।

काशिकावृत्ति में इस महाभाष्य-वचन के विरुद्ध यहां प्लुत उदाहरण दिया है-आम् भो देवदत्त३।

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः--

(३६) यद्धितुपरं छन्दसि।५६।

प०वि०-यत्-हि-तुपरम् १।१ छन्दसि ७।१।

स०-यच्च हिश्च तुश्च ते-यद्धितवः, यद्धितवः परे यस्मात् तत्-यद्धितुपरम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, नेति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि अपादादौ पदाद् यद्धितुपरं तिङ् पदं सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-छन्दसि विषयेऽपादादौ वर्तमानं पदात् परं यत्परं हिपरं तुपरं च तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदा०-(यत्परम्) गवां गोत्रमुदसृजो यदङ्गिरः (ऋ० २।२३।१८)। (हिपरम्) इन्द्रवो वामुशन्ति हि (ऋ० १।२।४)। (तुपरम्) आख्यास्यामि तु ते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (यद्धितुपरम्) यत्परक, हिपरक और तुपरक (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

उदा०-(यत्परक) गवां गोत्रमुदसृजो यदङ्गिरः (ऋ० २।२३।१८)। (हिपरक) इन्द्रवो वामुशन्ति हि (ऋ० १।२।४)। (तुपरक) आख्यास्यामि तु ते।

सिद्धि-(१) गवां गोत्रमुदसृजो यदङ्गिरः। यहां छन्द विषय में ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, उत्-पद से परवर्ती, यत्परक तिङन्त 'असृजः' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। ऐसे ही-हिपरक-इन्द्रवो वामुशन्ति हि। तुपरक-आख्यास्यामि तु ते।

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः-

(४०) चनचिदिवगोत्रादितद्धिताम्रेडितेष्वगतेः।५७।

प०वि०- चन-चित्-इव-गोत्रादि-तद्धित-आम्रेडितेषु ७।३ अगतेः ५।१।

स०-चनश्च चिच्च इवश्च गोत्रादयश्च तद्धितश्च आम्रेडितं च तानि-चन०आम्रेडितानि, तेषु-चन०आम्रेडितेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न गतिरिति अगतिः, तस्य-अगतेः (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, नेति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादावगतेः पदाच्चनचिदिवगोत्रादितद्धिताम्रेडितेषु तिङ् पदं सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं गतिवर्जितात् पदात् परं चनचिदिवगोत्रादितद्धिताम्रेडितेषु परतस्तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं न भवति।

उदाहरणम्-

परतः		उदाहरणम्	भाषार्थः
(१)	चन	देवदत्तः पचति चन	देवदत्त अल्प पकाता है।
(२)	चित्	देवदत्तः पचति चित्	देवदत्त अच्छा पकाता है।
(३)	इव	देवदत्तः पचतीव	देवदत्त पकाता-सा है।
(४)	गोत्रादि	देवदत्तः पचति गोत्रम्	देवदत्त अपने गोत्र को प्रसिद्ध करता है।
	,,	देवदत्तः पचति ब्रुवम्	देवदत्त निन्दित पकाता है।
	,,	देवदत्तः पचति प्रवचनम्	देवदत्त अपने अध्यापन की प्रसिद्धि करता है।
(५)	तद्धितः	देवदत्तः पचति कल्पम्	देवदत्त कुछ कम पकाता है।
	,,	देवदत्तः पचति रूपम्	देवदत्त प्रशस्त पकाता है।
(६)	आम्रेडितम्	देवदत्तः पचति पचति	देवदत्त पुनः-पुनः पकाता है।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (अगतेः) गति-संज्ञक से भिन्न (पदात्) पद से परवर्ती (चन०) चन, चित्, इव, गोत्रादि, तद्धितप्रत्यय और आम्रेडित परे होने पर (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

*सिद्धि-(१) **देवदत्तः पचति चन।** यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, गति-संज्ञक से भिन्न 'देवदत्त' पद से परवर्ती तिङन्त 'पचति' पद को 'चन' शब्द से परे इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। ऐसे ही-**देवदत्तः पचति चित्, देवदत्तः पचतीव।***

*(२) **देवदत्तः पचति गोत्रम्।** यहां **'तिङो गोत्रादीनि कुत्सनाभीक्ष्ण्ययोः'** (८।१।२७) इस परिभाषा से कुत्सन (निन्दा) और आभीक्ष्ण्य (पुनः-पुनर्भाव) अर्थ में ही सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। कोई भोजन आदि की प्राप्ति हेतु अपने गोत्र को पकाता है, उसे प्रसिद्ध करता है, यह उसकी निन्दा है। ऐसे ही-**देवदत्तः पचति ब्रुवम्।** देवदत्त निन्दित पकाता है। **देवदत्तः पचति प्रवचनम्।** देवदत्त अपने प्रवचन=अध्यापन को पकाता है, प्रसिद्ध करता है। अपने अध्यापन कार्य की स्वयं प्रसिद्धि करना निन्दनीय है।*

(३) देवदत्तः पचतिकल्पम्। यहां 'ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः' (५।३।६७) से ईषदसमाप्ति=ईषत्-असम्पूर्णता अर्थ में तद्धित-संज्ञक 'कल्पप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-पचतिरूपम्। यहां 'प्रशंसायां रूपप्' (५।३।६६) से तद्धित-संज्ञक 'रूपप्' प्रत्यय है।

(४) देवदत्तः पचति पचति। यहां 'नित्यवीप्सयोः' (८।१।४) से नित्य-अर्थ में 'पचति' शब्द को द्विर्वचन होता है। 'तस्य परमाम्रेडितम्' (८।१।२) से परवर्ती 'पचति' शब्द की आम्रेडित संज्ञा है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः–

(४१) चादिषु च।५८।

प०वि०–च-आदिषु ७।३ च अव्ययपदम्।

स०–च आदिर्येषां ते चादयः, तेषु-चादिषु (बहुव्रीहिः)।

अनु०–पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, अगतेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–अपादादावगतेः पदाच्चादिषु च तिङ् पदं सर्वमनुदात्तं न।

अर्थः–अपादादौ वर्तमानं गतिवर्जितात् पदात् परं चादिषु शब्देषु परतश्च तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं न भवति। **'न चवाहाहैवयुक्ते'** (८।१।२४) इत्यत्र ये चादयः शब्दा निर्दिष्टास्ते एवात्र गृह्यन्ते।

उदाहरणम्–

परतः	उदाहरणम्	भाषार्थः
(१) च	देवदत्तः पचति च खादति च	देवदत्त पकाता है और खाता है।
(२) वा	देवदत्तः पचति वा खादति वा	देवदत्त पकाता है अथवा खाता है।
(३) ह	देवदत्तः पचति ह खादति ह	देवदत्त निश्चित पकाता है और निश्चित खाता है।
(४) अह	देवदत्तः पचत्यह खादत्यह	आश्चर्य है देवदत्त पकाता है, आश्चर्य है खाता है।
(५) एव	देवदत्तः पचत्येव खादत्येव	देवदत्त पकाता ही है, खाता ही है।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, (अगतेः) गति-संज्ञक से भिन्न (पदात्) पद से परवर्ती, (चादिषु) च-आदि शब्दों के परे होने पर (च) भी (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद को (सर्वमनुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

उदा०–उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

'न चवाहाहैवयुक्ते' (८।१।२४) इस सूत्र में जो च-आदि शब्द निर्दिष्ट हैं वे ही यहां चादि-वचन से ग्रहण किये जाते हैं।

सिद्धि-देवदत्तः पचति च खादति च। *यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, गति-संज्ञक शब्द से भिन्न 'देवदत्त' पद से परवर्ती तिङन्त 'पचति' पद को 'च' शब्द परे होने पर इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। ऐसे ही-**देवदत्तः पचति वा खादति वा** आदि।*

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः–

(४२) चवायोगे प्रथमा।५६।

प०वि०–च-वायोगे ७।१ प्रथमा १।१।

स०–चश्च वाश्च तौ चवौ, ताभ्यां चवाभ्यां योग इति चवायोगः, तस्मिन्–चवायोगे (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भिततृतीयातत्पुरुषः)।

अनु०–पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, नेति चानुवर्तते।

अन्वयः–अपादादौ पदाच्चवायोगे प्रथमा तिङ् सर्वाऽनुदात्ता न।

अर्थः–अपादादौ वर्तमानापदात् परा चवाभ्यां योगे सति प्रथमा तिङ्विभक्तिः सर्वाऽनुदात्ता न भवति।

उदा०–(**चयोगः**) स गर्दभाँश्च कालयति, वीणां च वादयति। (**वायोगः**) स गर्दभान् वा कालयति, वीणां वा वादयति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (चवायोगे) च और वा का योग होने पर (प्रथमा) प्रथमा (तिङ्) तिङ्-विभक्ति (सर्वानुदात्ता) सर्वानुदात्त (न) नहीं होती है।*

*उदा०-(चयोगः) **स गर्दभाँश्च कालयति, वीणां च वादयति।** वह गदहों को गिनता है और वीणा बजाता है। (वायोगः) **स गर्दभान् वा कालयति, वीणां वा वादयति।** वह गदहों को गिनता है अथवा वीणा बजाता है।*

सिद्धि-स गर्दभाँश्च कालयति, वीणां च वादयति। *यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, 'च' पद से परवर्ती और इसके योग में तिङन्त प्रथमा विभक्ति 'कालयति' सर्वानुदात्त नहीं होती है। ऐसे ही 'वा' के योग में-**स गर्दभान् वा कालयति, वीणां वा वादयति।***

यहां प्रथम तिङन्त पद के सर्वानुदात्त का प्रतिषेध है, द्वितीय तिङन्त पद को 'तिङ्ङतिङः' (८।१।२८) से सर्वानुदात्त होता है।

'कालयति' पद में 'कल गतौ संख्याने च' (चु०प०) धातु से चौरादिक 'णिच्' प्रत्यय है। 'सनाद्यन्ता धातवः' (३।१।३२) से णिजन्त 'कालि' शब्द की धातु संज्ञा है अतः यह 'धातोः' (६।१।१६२) से अन्तोदात्त होता है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय है। यह 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' (३।१।४) से अनुदात्त है। 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' (८।४।६६) से इसे स्वरित होता है।

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः–

(४३) हेति क्षियायाम्।६०।

प०वि०–ह अव्ययपदम्, इति अव्ययपदम्, क्षियायाम् ७।१।

अनु०–पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, योगे, प्रथमेति चानुवर्तते।

अन्वयः–अपादादौ पदाद् ह इति योगे क्षियायां प्रथमा तिङ् सर्वानुदात्ता न।

अर्थः–अपादादौ वर्तमाना पदात् परा ह इत्यनेन योगे सति क्षियायां गम्यमानायां प्रथमा तिङ्विभक्तिः सर्वानुदात्ता न भवति।

उदा०–स स्वयं ह रथेन याति३ उपाध्यायं पदातिं गमयति। स स्वयं हौदनं भुङ्क्ते३ उपाध्यायं सक्तून् पाययति।

आर्यभाषाः अर्थ–(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (ह इति) ह इस शब्द के (योगे) संयोग में (क्षिया) निन्दा अर्थ की अभिव्यक्ति में (प्रथमा) प्रथमा (तिङ्) तिङ्–विभक्ति (सर्वानुदात्ता) सर्वानुदात्त (न) नहीं होती है।

*उदा०–**स स्वयं ह रथेन याति३ उपाध्यायं पदातिं गमयति।** वह स्वयं तो रथ से जाता है और उपाध्याय जी को पैदल भेजता है। **स स्वयं हौदनं भुङ्क्ते३ उपाध्यायं सक्तून् पाययति।** वह स्वयं तो चावल खाता है और उपाध्याय जी को सत्तू पिलाता है।*

सिद्धि–स स्वयं ह रथेन याति३ उपाध्यायं पदातिं गमयति। *यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, 'रथेन' पद से परवर्ती, ह-शब्द के योग में तथा क्षिया अर्थात् आचार-उल्लङ्घन स्वरूप निन्दा अर्थ की अभिव्यक्ति में प्रथमा तिङन्त 'याति' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। अतः पूर्वोक्त यथाप्राप्त स्वर होता है। ऐसे ही–**स स्वयं हौदनं भुङ्क्ते३ उपाध्यायं सक्तून् पाययति।***

याति और भुङ्क्ते पदों में 'क्षियाशीःप्रैषेषु तिङाकाङ्क्षम्' (८।२।१०४) से स्वरित प्लुत होता है।

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः–

(४४) अहेति विनियोगे च।६१।

प०वि०- अह अव्ययपदम्, इति अव्ययपदम्, विनियोगे ७।१। च अव्ययपदम्।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, योगे, प्रथमा, क्षियायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदाद् अहेति योगे विनियोगे क्षियायां च प्रथमा तिङ् सर्वानुदात्ता न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमाना पदात् पराऽहेत्यनेन योगे सति विनियोगे क्षियायां च गम्यमानायां प्रथमा तिङ्विभक्तिः सर्वानुदात्ता न भवति। नानाप्रयोजनो योगो विनियोग इति कथ्यते।

उदा०-(विनियोगः) त्वमह ग्रामं गच्छ३ त्वमहारण्यं गच्छ। **(क्षिया)** स स्वयमह रथेन याति३ उपाध्यायं पदातिं गमयति। स स्वयमहौदनं भुङ्क्ते३ उपाध्यायं सक्तून् पाययति।

आर्यभाषाः अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (अह इति) अह इस शब्द का (योगे) संयोग होने पर (क्षियायाम्) निन्दा अर्थ की अभिव्यक्ति में (प्रथमा) प्रथमा (तिङ्) तिङ्-विभक्ति (सर्वानुदात्ता) सर्वानुदात्त (न) नहीं होती है।

*उदा०-(विनियोग) **त्वमह ग्रामं गच्छ३ त्वमहारण्यं गच्छ।** तू तो गांव जा और तू वन में जा। (क्षिया) **स स्वयमह रथेन याति३ उपाध्यायं पदातिं गमयति।** वह स्वयं तो रथ से जाता है और उपाध्याय जी को पैदल भेजता है। **स स्वयमहौदनं भुङ्क्ते३ उपाध्यायं सक्तून् पाययति।** वह स्वयं तो चावल खाता है और उपाध्याय जी को सत्तू पिलाता है।*

सिद्धि-त्वमह ग्रामं गच्छ३ त्वमहारण्यं गच्छ। *यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, 'ग्राम' पद से परवर्ती, अह-शब्द के संयोग में तथा विनियोग अर्थ की अभिव्यक्ति में प्रथमा तिङन्त 'गच्छ' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। अतः पूर्वोक्त यथाप्राप्त स्वर होता है। ऐसे ही क्षिया अर्थ में-**स स्वयमह रथेन याति३ उपाध्यायं पदातिं गमयति,** इत्यादि। यहां याति और भुङ्क्ते पदों को पूर्ववत् (८।२।१०४) से स्वरित प्लुत होता है।*

सर्वानुदात्तप्रतिषेधः–

(४५) चाहलोप एवेत्यवधारणम्।६२।

प०वि०–च–अहलोपे ७।१ एव अव्ययपदम्, इति अव्ययपदम्, अवधारणम् १।१।

स०–चश्च अहश्च तौ चाहौ, तयोश्चाहयोर्लोप इति चाहलोपः, तस्मिन्–चाहलोपे (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितषष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, प्रथमेति चानुवर्तते।

अन्वयः–अपादादौ पदाच्चाहलोपे प्रथमा तिङ् सर्वानुदात्ता न, एवेत्यवधारणम्।

अर्थः–अपादादौ वर्तमाना पदात् परा चलोपेऽहलोपे च सति प्रथमा तिङ्विभक्तिः सर्वानुदात्ता न भवति, एवेत्येतच्चेदवधारणार्थं प्रयुज्यते।

क्व चाऽस्य लोपः ? यत्रार्थो गम्यते न च प्रयुज्यते, तत्राऽस्य लोपो भवति। तत्र च शब्दः समुच्चयार्थः, अहशब्दश्च केवलार्थो भवति। समानकर्तृके चलोपः, नानाकर्तृके चाहलोपो वेदितव्यः।

उदा०–**(चलोपः)** देवदत्त एव ग्रामं गच्छतु, स देवदत्त एवारण्यं गच्छतु। देवदत्तो ग्रामं चारण्यं च गच्छत्वित्यर्थः। **(अहलोपः)** देवदत्त एव ग्रामं गच्छतु, यज्ञदत्त एवारण्यं गच्छतु। ग्रामं केवलम्, अरण्यं केवलं गच्छत्विर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (चाहलोपे) च और अह शब्द का लोप होने पर (प्रथमा) प्रथमा (तिङ्) तिङ्-विभक्ति (सर्वानुदात्ता) सर्वानुदात्त (न) नहीं होती है यदि वहां (एव) एव (इति) यह शब्द (अवधारणम्) निश्चय अर्थ के लिये प्रयोग किया गया हो।*

च और अह शब्द का कहां लोप होता है ? जहां इनका अर्थ समझा जाता है किन्तु इनका वहां प्रयोग नहीं किया जाता वहां इनका लोप होता है। वहां 'च' शब्द समुच्चयार्थक और 'अह' शब्द केवलार्थक होता है। समानकर्तृक वाक्य में 'च' का लोप और नानाकर्तृक वाक्य में 'अह' का लोप होता है।

उदा०-(चलोप) देवदत्त एव ग्रामं गच्छतु, स देवदत्त एवारण्यं गच्छतु। देवदत्त ही गांव जावे और वह देवदत्त ही जङ्गल में जावे। (अहलोप:) देवदत्त एव ग्रामं गच्छतु, यज्ञदत्त एवारण्यं गच्छतु। देवदत्त ही केवल गांव जाये और यज्ञदत्त ही केवल जङ्गल में जाये।

सिद्धि-देवदत्त एव ग्रामं गच्छतु, स देवदत्त एवारण्यं गच्छतु। यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, 'ग्राम' पद से परवर्ती, 'च' का लोप होने पर प्रथमा 'गच्छतु' तिङन्त विभक्ति को अवधारणार्थक 'एव' शब्द के प्रयोग में इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। ऐसे ही 'अह' शब्द के लोप में-देवदत्त एव ग्रामं गच्छतु, यज्ञदत्त एवारण्यं गच्छतु। स्वराङ्कन विधि पूर्ववत् है।

सर्वानुदात्तविकल्पः-

(४६) चादिलोपे विभाषा।६३।

प०वि०-च-आदिलोपे ७।१ विभाषा १।१।

स०-च आदिर्येषां ते चादयः, तेषां चादीनां लोप इति चादिलोपः, तस्मिन्-चादिलोपे (बहुव्रीहिगर्भिततषष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, प्रथमेति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पदाच्चादिलोपे प्रथमा तिङ् विभाषा सर्वानुदात्ता न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमाना पदात् परा चादिलोपे च सति प्रथमा तिङ्विभक्तिर्विकल्पेन सर्वानुदात्ता न भवति।

उदा०-(चलोपः) शुक्ला व्रीहयो भवन्ति/भवन्ति। श्वेता गा आज्याय दुहन्ति/दुहन्ति। (वालोपः) व्रीहिभिर्यजेत/यजेत। यवैर्यजेत/यजेत। एवं शेषेष्वपि यथाप्रयोगदर्शनमुदाहार्यम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती, (चादिलोपे) च, वा, ह, अह, एव इन शब्दों का लोप होने पर (प्रथमा) प्रथमा (तिङ्) तिङ्-विभक्ति (विभाषा) विकल्प से (सर्वानुदात्ता) सर्वानुदात्त (न) नहीं होती है।*

उदा०-(चलोप) शुक्ला व्रीहयो भवन्ति/भवन्ति। और सफेद चावल होते हैं। श्वेता गा आज्याय दुहन्ति/दुहन्ति। और सफेद गौओं को घी के लिये दुहते हैं।

(चालोप) व्रीहिभिर्यजेत/यजेत। अथवा चावलों से यज्ञ करें। यवैर्यजेत/यजेत। अथवा जौओं से यज्ञ करे।

सिद्धि- शुक्ला व्रीहयो भवन्ति। यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, 'व्रीहयः' पद से परवर्ती, 'च' शब्द का लोप होने पर प्रथमा 'भवन्ति' तिङन्त विभक्ति को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। अतः 'तास्यनुदात्तेन्ङिदुपदेशाल्लसार्वधातुकमनुदात्तमन्ह्विङोः' (६।१।१८०) से ल-सार्वधातुक को अनुदात्त करने पर धातु को उदात्त होकर आद्युदात्त होता है। विकल्प-पक्ष में 'तिङ्ङतिङः' (८।१।२८) से 'भवन्ति' पद सर्वानुदात्त होता है। ऐसे ही चालोप में-व्रीहिभिर्यजेत/यजेत।

विशेषः *यहां चलोप और अहलोप के उदाहरण दर्शाये हैं। हलोप अहलोप और एवलोप के उदाहरण यथाप्रयोग समझ लेवें।*

सर्वानुदात्तविकल्पः–

(४७) वैवावेति च च्छन्दसि।६४।

प०वि०–वैवाव १।१ (सु-लुक्) इति अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्, छन्दसि ७।१।

स०–वैश्च वावश्च एतयोः समाहारः-वैवाव। **'सुपां सुलुक्०'** (७।१।३९) इत्यनेन सुलोपः।

अनु०–पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, योगे, प्रथमा, विभाषेति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि अपादादौ पदाद् वैवावेति योगे च प्रथमा तिङ् विभाषा सर्वानुदात्ता न।

अर्थः–छन्दसि विषयेऽपादादौ वर्तमाना पदात् परा वै वावेत्येतयोर्योगे च सति प्रथमा तिङ्विभक्तिर्विकल्पेनाऽनुदात्ता न भवति।

उदा०–**(वैयोगः)** अहर्वै देवानामासीद्रात्रिरसुराणाम् (तै०सं० १।५।९।२)। आसीत्। बृहस्पतिर्वै देवानां पुरोहित आसीत्, शण्डामर्कावसुराणाम् (तै०सं० ६।४।१०।१) (आस्ताम्)। **(वावयोगः)** अयं वाव हस्त आसीत् (काठ०सं० ३६।७)। नेतर आसीत्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (वैवाव) वै, वाव (इति) इन शब्दों का (योगे)*

योग होने पर (प्रथमा) प्रथमा (तिङ्) तिङ्-विभक्ति (विभाषा) विकल्प से (सर्वानुदात्ता) सर्वानुदात्त (न) नहीं होती है।

*उदा०-(**वैयोग**) **अहर्वै देवानामासीद्रात्रिरसुराणाम्** (तै०सं० १।५।९।२)। **आसीत्**। दिन निश्चय से देवताओं का था और रात्रि असुरों की थी। **बृहस्पतिर्वै देवानां पुरोहित आसीत्, शण्डामर्कावसुराणाम्** (तै०सं० ६।४।१०।१)। (**आस्ताम्**)। बृहस्पति निश्चय से देवताओं का पुरोहित था और शण्ड तथा मर्क असुरों के पुरोहित थे। (वावयोग) **अयं वाव हस्त आसीत्** (काठ०सं० ३६।७)। यह प्रसिद्ध हाथ था। **नेतर आसीत्**। दूसरा नहीं था।*

*सिद्धि-**अहर्वै देवानाभासीत्**। यहां छन्द विषय में, ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, देवानाम्' पद से परवर्ती, 'वै' शब्द के योग में प्रथमा 'आसीत्' तिङन्त विभक्ति को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। अतः यथाप्राप्त स्वर होता है। विकल्प-पक्ष में सर्वानुदात्त है-**आसीत्**। ऐसे ही वावयोग में-**अयं वाव हस्त आसीत्**। विकल्प-पक्ष में सर्वानुदात्त है-**नेतर आसीत्**।*

सर्वानुदात्तविकल्पः–

(४८) एकान्याभ्यां समर्थाभ्याम्।६५।

प०वि०-एक-अन्याभ्याम् ५।२ समर्थाभ्याम् ५।२।

स०-एकश्च अन्यश्च तौ एकान्यौ, ताभ्याम्-एकान्याभ्याम् (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)। समोऽर्थो ययोस्तौ समर्थौ, ताभ्याम्-समर्थाभ्याम् (बहुव्रीहिः)। **वा०-'शकन्ध्वादिषु पररूपम्'** (६।१।९१) इत्यनेनाऽकारस्य पररूपत्वम्।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, न, योगे, प्रथमा, विभाषा, छन्दसीति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि अपादादौ पदात् समर्थाभ्यामेकान्याभ्यां योगे च प्रथमा तिङ् विभाषा सर्वानुदात्ता न।

अर्थः-छन्दसि विषयेऽपादादौ वर्तमाना पदात् परा समर्थाभ्यामेका-न्याभ्यां शब्दाभ्यां योगे सति प्रथमा तिङ्विभक्तिर्विकल्पेन सर्वानुदात्ता न भवति।

उदा०-(**एकयोगः**) प्रजामेका जिन्वत्यूर्जमेका राष्ट्रमेका रक्षति देवयूनाम् (शौ०सं० ८।९।१३) जिन्वति। (**अन्ययोगः**) तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति (ऋ० १।१६४।२०) अत्ति।

आर्यभाषाः अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (पदात्) पद से परवर्ती (समर्थाभ्याम्) समानार्थक (एकान्याभ्याम्) एक और अन्य शब्द के (योगे) योग में (प्रथमा) प्रथमा (तिङ्) तिङ्-विभक्ति (विभाषा) विकल्प से (सर्वानुदात्ता) सर्वानुदात्त (न) नहीं होती है।

उदा०-(एकयोग) प्रजामेका जिन्वत्यूर्जमेको राष्ट्रमेको रक्षति देवयूनाम् (शौ०सं० ८।९।१३) **जिन्वति।** देवों के इच्छुक जनों की एकशक्ति प्रजा को और बल-प्राण को तृप्त करती है और एक राष्ट्र की रक्षा करती है। **(अन्ययोग) तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति** (ऋ० १।१६४।२०) **अत्ति।** ईश्वर और जीव इन दोनों में से एक इस जगद्वृक्ष के स्वादु फल को खाता है और एक स्वादु फल न खाता हुआ इसे देखता रहता है।

सिद्धि-प्रजामेका जिन्वति०। यहां छन्द विषय में ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, 'एका' पद से परवर्ती तथा इसके योग में प्रथमा 'जिन्वति' तिङन्त विभक्ति को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। विकल्प-पक्ष में सर्वानुदात्त होता है-**जिन्वति।** ऐसे ही अन्य शब्द के में-**तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति।** विकल्प-पक्ष में सर्वानुदात्त होता है-**अत्ति।**

एक और अन्य शब्द व्यवस्था अर्थ में समानार्थक हैं; अन्य अर्थ में नहीं।

सर्वानुदात्तविकल्पः-

(४६) यद्वृत्तान्नित्यम्।६६।

प०वि०-यद्वृत्तात् ५।१ नित्यम् १।१।

स०-यदो वृत्तमिति यद्वृत्तम्, तस्मात्-यद्वृत्तात् (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, तिङ्, नेति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ यद्वृत्तात् पदात् तिङ् पदं नित्यं सर्वानुदात्तं न।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं यद्वृत्तात् पदात् परं तिङन्तं पदं नित्यं सर्वानुदात्तं न भवति।

"यदो वृत्तमिति यद्वृत्तम्। यत्र पदे यच्छब्दो वर्तते तत्सर्वं यद्वृत्तम्। इह वृत्तग्रहणेन तद्विभक्त्यन्तं प्रतीयात्, डतरडतमौ च प्रत्ययौ इत्येतद् नाश्रीयते" (काशिका)।

उदा०-यो भुङ्क्ते। यं भोजयति। येन भुङ्क्ते। यस्मै ददाति। यत्कामास्ते जुहुमः (ऋ० १०।१५१।१०)। यद्रियङ् वायुर्वाति (तै०सं० ५।५।१।१)। यद्वायुः पवते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, (यद्वृत्तात्) यत् शब्द से निष्पन्न (पदात्) पद से परवर्ती (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद को (नित्यम्) सदा (सर्वानुदात्तम्) सर्वानुदात्त (न) नहीं होता है।*

"जिस पद में 'यत्' शब्द है वह सब यद्वृत्त कहाता है। यहां किंवृत्त शब्द के समान उसके विभक्त्यन्त और 'यत्' के डतर-डतम प्रत्ययान्त शब्दों का ग्रहण नहीं किया जाता है" (काशिका)।

*उदा०-**यो भुङ्क्ते।** जो खाता है। **यं भोजयति।** जिसे खिलाता है। **येन भुङ्क्ते।** जिस साधन से खाता है। **यस्मै ददाति।** जिसके लिये दान करता है। **यत्कामास्ते जुहुमः** (ऋ० १०।१५१।१०)। जिस पदार्थ की कामनावाले हम लोग तेरी स्तुति करते हैं। **यद्रियङ् वायुर्वाति** (तै०सं० ५।५।१।१)। जिस ओर का वायु चलता है। **यद्वायुः पवते।** जिसे वायु पवित्र करता है।*

*सिद्धि-(१) **यो भुङ्क्ते।** यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, यद्वृत्त 'यः' पद से परवर्ती तिङन्त 'भुङ्क्ते' पद को इस सूत्र से सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है। ऐसे ही-**यं भोजयति** आदि।*

*(२) **यत्कामास्ते जुहुमः।** यहां यत् और काम शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है।*

*(३) **यद्रियङ् वयुर्वाति।** यहां यत्-उपपद **'अञ्चु गतिपूजनयोः'** (भ्वा०प०) धातु से **'ऋत्विग्दधृक्०'** (३।२।५९) से क्विन्' प्रत्यय है। **'विष्वग्देवयोश्च टेरद्र्यञ्चतावप्रत्यये'** (६।३।९२) से 'यत्' के टि-भाग (अत्) को अद्रि-आदेश होता है। सूत्रकार्य पूर्ववत् है।*

अनुदात्तम्-

(५०) पूजनात् पूजितमनुदात्तं {काष्ठादिभ्यः}।६७।

प०वि०-पूजनात् ५।१ पूजितम् १।१ अनुदात्तम् १।१ {काष्ठादिभ्यः ५।३}।

स०-काष्ठ आदिर्येषां ते काष्ठादयः, तेभ्यः-काष्ठादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-पदस्य, पदात्, सर्वम्, अपादादाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पूजनेभ्यः काष्ठादिभ्यः पदेभ्यः पूजितं सर्वमनुदात्तम्।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानेभ्यः पूजनवाचिभ्यः काष्ठादिभ्यः पदेभ्यः परं पूजितवाचि पदं सर्वमनुदात्तं भवति।

उदा०-काष्ठाध्यापकः। काष्ठाभिरूपकः। दारुणाध्यापकः, इत्यादिकम्।

काष्ठ। दारुण। अमातापुत्र। अयुत। अद्भुत। अनुक्त। भृश। घोर। परम। सु। अति। इति काष्ठादयः।।

अनुदात्तमित्यनुवर्तमाने पुनरनुदात्तग्रहणं प्रतिषेधनिवृत्त्यर्थं वेदितव्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, (पूजनेभ्यः) पूजनवाची (काष्ठादिभ्यः) काष्ठ-आदि (पदेभ्यः) पदों से परवर्ती (पूजितम्) पूजितवाची (पदम्) पद (सर्वानुदात्तम्) सर्वानुदात्त होता है।*

*उदा०-**काष्ठाध्यापकः।** अद्भुत अध्यापक। **काष्ठाभिरूपकः।** अद्भुत सुन्दर। **दारुणाध्यापकः,।** कठोर अध्यापक, इत्यादि।*

सिद्धि-काष्ठाध्यापकः। *यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, पूजनवाची काष्ठ पद से परवर्ती पूजितवाची अध्यापक पद को इस सूत्र से अनुदात्त होता है। काष्ठ शब्द अद्भुत पर्याय होने से पूजनवाची है। काष्ठबुद्धि छात्र को भी पढ़ानेवाला। ऐसे ही-काष्ठाभिरूपकः, दारुणाध्यापकः आदि।*

विशेषः *महाभाष्य में 'पूजनात् पूजितमनुदात्तम्' यह सूत्रपाठ है। वहां 'काष्ठादिभ्यः' वचन का समर्थन किया गया है। अतः यह पद कोष्ठक में लिखा है।*

अनुदात्तम्-

(५१) सगतिरपि तिङ्।६८।

प०वि०-सगतिः १।१ अपि १।१ तिङ् १।१।

स०-गतिना सह वर्तते इति सगतिः (बहुव्रीहिः)। **'तेन सहेति तुल्ययोगे'** (२।२।२८) इत्यनेन समासः।

अनु०-पदस्य, पदात्, सर्वम्, अनुदात्तम्, अपादादौ, पूजनात्, पूजितम्, काष्ठादिभ्यः इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ पूजनेभ्यः काष्ठादिभ्यः पदेभ्यः परं सगतिरपि तिङ् पदं सर्वमनुदात्तम्।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं पूजनवाचिभ्यः काष्ठादिभ्यः पदेभ्यः परं सगति अगति अपि च तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं भवति।

उदा०-(अगति) यत् काष्ठं पचति। यद् दारुणं पचति। (सगति) यत् काष्ठं प्रपचति। यद् दारुणं प्रपचति, इत्यादिकम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, (पूजनेभ्यः) पूजनवाची (काष्ठादिभ्यः) काष्ठ-आदि (पदेभ्यः) पदों से परवर्ती (सगति) गति=उपसर्गसहित और (अगति) उपसर्गरहित (अपि) भी (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (सर्वानुदात्तम्) सर्वानुदात्त होता है।*

*उदा०-(अगति) **यत् काष्ठं पचति।** जब वह अद्भुत पकाता है। **यद् दारुणं पचति।** जब वह कठोर पकाता है। (सगति) **यत् काष्ठं प्रपचति।** जब वह अद्भुत प्रकृष्ट पकाता है। **यद् दारुणं प्रपचति।** जब वह कठोर प्रकृष्ट पकाता है, इत्यादि।*

सिद्धि-यत् काष्ठं पचति। *यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, पूजनवाची काष्ठ पद से परवर्ती अगति=उपसर्गरहित तिङन्त 'पचति' पद को इस सूत्र से अनुदात्त होता है। ऐसे ही-**यद् दारुणं पचति।***

*यहां प्रथम **'तिङ्ङतिङः'** (८।१।२८) से सर्वानुदात्त प्राप्त था किन्तु **'निपातैर्यद्यदि०'** (८।१।३०) से निपात यत्-शब्द के योग में प्रतिषेध किया गया है, अतः इस सूत्र से पुनः सर्वानुदात्त का विधान किया है।*

*सगति पक्ष में-**यत् काष्ठं प्रपचति। यद् दारुणं प्रपचति,** इत्यादि।*

अनुदात्तम्–

(५२) कुत्सने च सुप्यगोत्रादौ।६६।

प०वि०-कुत्सने ७।१। च अव्ययपदम्, सुपि ७।१ अगोत्रादौ ७।१।

स०-गोत्र आदिर्यस्य स गोत्रादिः, न गोत्रादिरिति अगोत्रादिः, तस्मिन्-अगोत्रादौ (बहुव्रीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ, सगतिः, अपि, तिङ् इत्यनुवर्तते। **'पदात्'** (८।१।४) इति च निवृत्तम्।

अन्वयः-अपादादावगोत्रे कुत्सने सुपि च सगतिरपि तिङ् पदं सर्वमनुदात्तम्।

अर्थः-अपादादौ वर्तमाने गोत्रादिवर्जिते कुत्सनवाचिनि सुबन्ते परतश्च सगति अगति अपि च तिङन्तं पदं सर्वमनुदात्तं भवति।

उदा०-(अगति) पचति पूति। पचति मिथ्या। (सगति) प्रपचति पूति। प्रपचति मिथ्या।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (अगोत्रादौ) गोत्र आदि शब्दों से भिन्न (कुत्सने) निन्दावाची (सुपि) सुबन्त पद परे होने पर (च) भी (सगति) गति=उपसर्गसहित और (अगति) उपसर्गरहित (अपि) भी (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (सर्वानुदात्तम्) सर्वानुदात्त होता है।*

उदा०-(अगति) ***पचति पूति।*** *वह गन्दा पकाता है।* ***पचति मिथ्या।*** *वह व्यर्थ पकाता है। (सगति)* ***प्रपचति पूति।*** *वह गन्दा अधिक पकाता है।* ***प्रपचति मिथ्या।*** *वह व्यर्थ अधिक पकाता है।*

सिद्धि- ***पचति पूति।*** *यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, गोत्रादि शब्दों से भिन्न, कुत्सनवाची, सुबन्त 'पूति' शब्द से परे अगति तिङन्त 'पचति' पद को इस सूत्र से अनुदात्त होता है। ऐसे ही-* ***पचति मिथ्या।*** *'पदात्' (८।१।२४) इस अधिकार की निवृत्ति हो जाने से 'तिङ्ङतिङः' (८।१।२८) से सर्वानुदात्त की प्राप्ति नहीं थी और सगति तिङन्त पद में तिङन्तमात्र को 'तिङ्ङतिङः' (८।१।२८) सर्वानुदात्त प्राप्त था। अतः यह विधान किया गया है। ऐसे ही सगति में-* ***प्रपचति पूति। प्रपचति मिथ्या।***

अनुदात्तम्-

(५३) गतिर्गतौ।७०।

प०वि०-गतिः १।१ गतौ ७।१।

अनु०-पदस्य, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-अपादादौ गतिर्गतौ सर्वमनुदात्तम्।

अर्थः-अपादादौ वर्तमानं गतिः पदं गतौ परतः सर्वमनुदात्तं भवति।

उदा०-अभ्युद्धरति। समुदानयति। अभिसम्पर्याहरति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (गतिः) उपसर्ग (पदम्) पद (गतौ) उपसर्ग परे होने पर (सर्वानुदात्तम्) सर्वानुदात्त होता है।*

उदा०- ***अभ्युद्धरति।*** *वह प्रत्यक्ष उद्धार करता है।* ***समुदानयति।*** *वह मिलकर उत्थान करता है।* ***अभिसम्पर्याहरति।*** *वह प्रत्यक्षतः मिलकर सब ओर से आहरण करता है।*

सिद्धि- ***अभ्युद्धरति।*** *यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, उत् गति (उपसर्ग) परे होने पर अभि गति पद (उपसर्ग) को इस सूत्र से अनुदात्त होता है। 'उपसर्गाश्चाभिवर्जम्' (फिट्० ४।१३) से 'अभि' को छोड़कर सब उपसर्ग आद्युदात्त है*

और 'अभि' उपसर्ग 'फिषोऽन्तोदात्तः' (फिट्० १।१) से अन्तोदात्त है किन्तु इस सूत्र से 'उत्' गति परे होने पर 'अभि' गति अनुदात्त होता है। ऐसे ही-सम्+उत्+आ+नयति= समुदानयति। अभि+सम्+परि+आ+हरति=अभिसम्पर्याहरति।

अनुदात्तम्–

(५४) तिङि चोदात्तवति।७१।

प०वि०–तिङि ७।१ च अव्ययपदम्, उदात्तवति ७।१।

तद्धितवृत्तिः–उदात्तोऽस्मिन्नस्तीति उदात्तवान्, तस्मिन्–उदात्तवति। **'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्'** (५।२।७४) इत्यनेन मतुप् प्रत्ययः।

अनु०–पदस्य, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ गतिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–अपादादावुदात्तवति तिङि च गतिः पदं सर्वमनुदात्तम्।

अर्थः–अपादादौ वर्तमानम् उदात्तवति तिङन्ते पदे परतश्च गतिः पदं सर्वमनुदात्तं भवति।

उदा०–यत् प्रपचति। यत् प्रकरोति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपादादौ) ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान (उदात्तवति) उदात्त गुणवाला (तिङि) तिङन्त पद परे होने पर (च) भी (गतिः) गति-संज्ञक=उपसर्ग (पदम्) पद (सर्वानुदात्तम्) सर्वानुदात्त होता है।*

*उदा०–**यत् प्रपचति।** जब वह प्रकृष्ट पकाता है। **यत् प्रकरोति।** जब वह प्रकृष्ट करता है (बनाता) है।*

*सिद्धि-**यत् प्रपचति।** यहां ऋचा आदि के पाद के आदि में अविद्यमान, उदात्त-गुणवान्, तिङन्त 'पचति' पद परे होने पर 'प्र' गति=उपसर्ग को इस सूत्र से अनुदात्त होता है। ऐसे ही-**यत् प्रकरोति।***

*यहां 'निपातैर्यद्यदि०' (८।१।३०) से 'पचति' और 'करोति' पद उदात्तवान् हैं। अतः इनके परे रहने पर 'प्र' इस गति को अनुदात्त होता है। **'उपसर्गाश्चाभिवर्जम्'** (फिट्० ४।१३) से आद्युदात्त नहीं है।*

।। इति सर्वानुदात्तस्वरप्रकरणम्।।

अविद्यमानवद्भावप्रकरणम्

अविद्यमानवत्–

(१) आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत्।७२।

प०वि०–आमन्त्रितम् १।१ पूर्वम् १।१ अविद्यमानवत् अव्ययपदम्।

स०-न विद्यमानमिति अविद्यमानम्, तेनाऽविद्यमानेन तुल्यं वर्तति इति अविद्यमानवत्। नञ्तत्पुरुषस्ततस्तद्धितवृत्तिः। **'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः'** (५।१।११५) इति तुल्यार्थे वतिः प्रत्ययः।

अनु०-पदस्येत्यनुवर्तते।

अन्वयः-पूर्वमाऽऽमन्त्रितं पदमऽविद्यमानवत्।

अर्थः-पूर्वमाऽऽमन्त्रितं पदमऽविद्यमानवद् भवति। तस्मिन् सति यत् कार्यं प्राप्नोति तन्न भवति, असति च यत् तद् भवति।

कानि पुनरविद्यमानवद्भावे प्रयोजनानि? आमन्त्रिततिङ्निघात-युष्मदस्मदादेशाभावाः प्रयोजनम्। **उदाहरणम्**-

(१) **आमन्त्रितम्**-देवदत्त ! यज्ञदत्त !

(२) **तिङ्निघातः**-देवदत्त ! पचसि।

(३) **युष्मदस्मदादेशाभावः**-देवदत्त ! तव ग्रामः स्वम्। देवदत्त ! मम ग्रामः स्वम्।

(४) **पूजायामनन्तरप्रतिषेधः प्रयोजनम्**-यावद् देवदत्त ! पचसि।

(५) **जात्वपूर्वम्**-देवदत्त ! जातु पचसि।

(६) **आहो उताहो चानन्तरम्**-आहो देवदत्त ! पचसि। उताहो देवदत्त ! पचसि।

(७) **आम एकान्तरमामन्त्रिते**-आम् भोः पचसि देवदत्त !

आर्यभाषाः *अर्थ-(पूर्वम्) किसी पद से पूर्ववर्ती (आमन्त्रितम्) आमन्त्रित-संज्ञक (पदम्) पद (अविद्यमानवत्) अविद्यमान के तुल्य हो जाता है, अर्थात् उसके रहने पर जो कार्य प्राप्त होता है और जो न रहने पर होता है, वह कार्य हो जाता है।*

इस अविद्यमानवद्भाव के क्या प्रयोजन हैं? आमन्त्रित, तिङनिघात और युष्मद्-अस्मद् शब्दों के स्थान में विहित आदेशों का अभाव प्रयोजन है। उदाहरण-

*(१) आमन्त्रित-देवदत्त ! यज्ञदत्त ! हे देवदत्त ! हे यज्ञदत्त ! यहां 'यज्ञदत्त' पूर्ववर्ती 'देवदत्त' आमन्त्रित पद के अविद्यमानवत् होने से **'आमन्त्रितस्य च'** (८।१।१९) से पद से उत्तरवर्ती आमन्त्रित 'यज्ञदत्त' पद को अनुदात्त स्वर नहीं होता है, अपितु षष्ठाध्याय में प्रोक्त **'आमन्त्रितस्य च'** (६।१।१९) से आद्युदात्त स्वर होता है।*

*(२) **तिङ्निघात-देवदत्त ! पचसि ।** हे देवदत्त ! तू पकाता है। यहां 'पचति' से देवदत्त' आमन्त्रित पद के अविद्यमानवत् होने से **'तिङ्ङतिङः'** (८।१।२८) से तिङन्त 'पचति' पद को सर्वानुदात्त=निघात नहीं होता है।*

*(३) **युष्मद-अस्मद्विषयक आदेशाभाव-देवदत्त ! तव ग्रामः स्वम् ।** हे देवदत्त ! ग्राम तेरा धन (सम्पत्ति) है। **देवदत्त ! मम ग्रामः स्वम् ।** हे देवदत्त ! ग्राम मेरा धन है। यहां 'तव' पद से पूर्ववर्ती देवदत्त' आमन्त्रित पद के अविद्यमानवत् होने से **तेमयावेकवचनस्य'** (८।१।२२) से पद से परे युष्मद्-अस्मद् के स्थान में ते, मे आदेश नहीं होते हैं।*

*(४) **यावद् देवदत्त ! पचसि ।** हे देवदत्त ! तू जितना पकाता है। यहां 'पचसि' पद से पूर्ववर्ती देवदत्त' आमन्त्रित पद के अविद्यमानवत् होने से **'पूजायां नानन्तरम्'** (८।१।३७) से अनन्तर=व्यवधानरहित तिङन्त 'पचसि' पद को सर्वानुदात्त स्वर होता है।*

*(५) **देवदत्त ! जातु पचसि ।** हे देवदत्त ! तू जितना पकाता है। यहां 'जातु' पद से पूर्ववर्ती देवदत्त' आमन्त्रित पद के अविद्यमानवत् होने से **'जात्वपूर्वम्'** (१।८।४७) से विहित अपूर्ववर्ती जातु निपात से युक्त तिङन्त 'पचसि' पद को सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है।*

*(६) **आहो देवदत्त ! पचसि ।** हे देवदत्त ! अथवा तू पकाता है। **उताहो देवदत्त ! पचसि ।** हे देवदत्त ! अथवा तू पकाता है। यहां 'पचसि' पद से पूर्ववर्ती देवदत्त' आमन्त्रित पद के अविद्यमानवत् होने से **'आहो उताहो चानन्तरम्'** (८।१।४९) से तिङन्त 'पचसि' पद को सर्वानुदात्त का प्रतिषेध होता है।*

*(७) **आम् भोः पचसि देवदत्त !** रे देवदत्त ! तू पकाता है। यहां 'पचसि' पद से पूर्ववर्ती 'भोः' आमन्त्रित पद के अविद्यमानवत् होने से देवदत्त' आमन्त्रित पद 'पचसि' पद से एकपदान्तरित हो जाता है। अतः **'आम एकान्तरमामन्त्रितमनन्तिके'** (८।१।५५) से सर्वानुदात्त नहीं होता है अपितु **'आमन्त्रितस्य च'** (६।१।१९८) से आद्युदात्त स्वर होता है।*

अविद्यमानवत् प्रतिषेधः--

(२) नामन्त्रिते समानाधिकरणे {सामान्यवचनम्}।७३।

प०वि०-न अव्ययपदम्, आमन्त्रिते ७।१ समानाधिकरणे ७।१ {सामान्यवचनम् १।१}।

स०-समानम् अधिकरणं यस्य तत्-समानाधिकरणम्, तस्मिन्-समानाधिकरणे (बहुव्रीहिः)।

अनु०-पदस्य, आमन्त्रितम्, पूर्वम्, अविद्यमानवदिति चानुवर्तते।

अन्वयः-पूर्वमामन्त्रितं सामान्यवचनं पदं समानाधिकरणे आमन्त्रितेऽविद्यमानवन्न।

अर्थः-पूर्वमामन्त्रितान्तं सामान्यवचनं पदं समानाधिकरणे आमन्त्रितान्ते पदे परतोऽविद्यमानवन्न भवति, विद्यमानवदेव भवतीत्यर्थः।

उदा०-अग्ने गृहपते (तै०सं० २।४।५।२)। माणवक जटिलकाध्यापक।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(पूर्वम्) किसी पद से पूर्ववर्ती (आमन्त्रितम्) आमन्त्रितान्त (सामान्यवचनम्) सामान्यवाची (पदम्) पद (समानाधिकरणे) एक अधिकरणवाला (आमन्त्रिते) आमन्त्रितान्त पद परे होने पर (अविद्यमानवत्) अविद्यमान के तुल्य (न) नहीं होता है, अपितु विद्यमानवत् ही होता है।*

*उदा०-**अग्ने गृहपते** (तै०सं० २।४।५।२)। हे गृहपति अग्ने! **माणवक जटिलकाध्यापक**। हे बालक जटिलक (जटाधारी) अध्यापक।*

***सिद्धि-अग्ने गृहपते!** यहां 'गृहपते' पद से पूर्ववर्ती सामान्यवाची आमन्त्रित 'अग्ने' पद समानाधिकरणवाले आमन्त्रितान्त 'गृहपते' पद के परे होने पर विद्यमानवत् होता है। अतः **'आमन्त्रितस्य च'** (८।१।१९) से 'अग्ने' पद से परवर्ती 'गृहपते' पद को सर्वानुदात्त स्वर होता है। ऐसे ही-**माणवक जटिलकाध्यापक**।*

***विशेषः** महाभाष्य में **'नामन्त्रिते समानाधिकरणे'** (८।१।७३) **'विभाषितं विशेषवचने'** (८।१।७४) ऐसा सूत्रपाठ है। योग विभाग में **'नामन्त्रिते सामनाधिकरणे सामान्यवचनम्'** यह पाठ स्वीकार किया है।*

अविद्यमानद्विकल्पः-

(३) विभाषितं विशेषवचने {बहुवचनम्}।७४।

प०वि०-विभाषितम् १।१ विशेषवचने ७।१ बहुवचनम् १।१।

स०-सामान्यस्य वचनमिति सामान्यवचनम् (षष्ठीतत्पुरुषः)। विशेषस्य वचनमिति विशेषवचनम्, तस्मिन्-विशेषवचने (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, आमन्त्रितम्, पूर्वम्, अविद्यमानवत्, आमन्त्रिते, समानाधिकरणे, सामान्यवचनमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-पूर्वं बहुवचनमाऽऽमन्त्रितं पदं विशेषवचने समानाधिकरणे आमन्त्रिते विभाषितमऽविद्यमानवत्।

अर्थः-पूर्वं बहुवचनमाऽऽमन्त्रितं विशेषवाचिनि समानाधिकरणे आमन्त्रिते पदे परतो विकल्पेनाऽविद्यमानवद् भवति।

उदा०-देवाः शरण्याः। देवाः शरण्याः। ब्राह्मणा वैयाकरणाः। ब्राह्मणा वैयाकरणाः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पूर्वम्) किसी पद से पूर्ववर्ती (बहुवचनम्) बहुवचनान्त (आमन्त्रितम्) आमन्त्रित (पदम्) पद (विशेषवचने) विशेषवाची (समानाधिकरणे) एक अधिकरणवाला (आमन्त्रिते) आमन्त्रितान्त पद परे होने पर (विभाषितम्) विकल्प से (अविद्यमानवत्) अविद्यमान के समान होता है।*

उदा०-देवाः शरण्याः। देवाः शरण्याः। हे शरण के योग्य देवजनो! ब्राह्मणा वैयाकरणाः। ब्राह्मणा वैयाकरणाः। हे वैयाकरण ब्राह्मणो!

*सिद्धि-देवाः शरण्याः। यहां 'शरण्याः' पद से पूर्ववर्ती, बहुवचनान्त, 'देवाः' आमन्त्रितान्त पद विशेषवाची, समानाधिकरणवाले 'शरण्याः' पद के परे होने पर इस सूत्र से अविद्यमान के समान होता है। अतः **'आमन्त्रितस्य च'** (८।१।१९) से पद से परवर्ती आमन्त्रित 'शरण्याः' पद को सर्वानुदात्त नहीं होता है, अपितु **'आमन्त्रितस्य च'** (६।१।१९८) से आद्युदात्त स्वर होता है। विकल्प पक्ष में विद्यमान के समन होता है, अतः **'आमन्त्रितस्य च'** (८।१।१९) से पद से परवर्ती 'शरण्याः' आमन्त्रित पद को सर्वानुदात्त स्वर होता है-देवाः शरण्याः। ऐसे ही-ब्राह्मणा वैयाकरणाः। ब्राह्मणा वैयाकरणाः।*

विशेषः *महाभाष्य में- **'विभाषितं विशेषवचने'** ऐसा सूत्रपाठ है। वहां **'बहुवचने'** पद पठित नहीं है। काशिकावृत्ति में इसका विस्पष्टार्थ पाठ स्वीकार किया है।*

।। इति अविद्यमानवद्भावप्रकरणम्।।

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने अष्टमाध्यायस्य प्रथमः पादः समाप्तः।

अष्टमाध्यायस्य द्वितीयः पादः
{अथ त्रिपादी प्रारभ्यते}
असिद्धप्रकरणम्

असिद्धाधिकारः–

(१) पूर्वत्रासिद्धम्।१।

प०वि०–पूर्वत्र अव्ययपदम्, असिद्धम् १।१।

स०–न सिद्धमिति असिद्धम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अर्थः–पूर्वत्रासिद्धमित्यधिकारोऽयम्, आ अष्टमाध्यायपरिसमाप्तेः। यदितोऽग्रे यद् वक्ष्यति पूर्वत्राऽसिद्धमित्येवं तद् वेदितव्यम्।

अत्र येयं सपादसप्ताध्याय्यनुक्रान्ता, एतस्यामयं पादोनाऽध्यायोऽसिद्धो भवति। इत उत्तरं चोत्तरोत्तरो योगः पूर्वत्र पूर्वत्रासिद्धो भवति, असिद्धवद् भवति, सिद्धकार्यं न करोतीत्यर्थः। तदेतदसिद्धत्ववचनमादेशलक्षण-प्रतिषेधार्थम्, उत्सर्गलक्षणभावार्थं च वेदितव्यम्।

उदा०–अस्मा उद्धर। द्वा अत्र। असा आदित्यः। इत्यत्र व्यलोपस्या-सिद्धत्वाद् '**आद्गुणः**' (६।१।८६) इति गुणरूपैकादेशः, '**अकः सवर्णे दीर्घः**' (६।१।९९) इति च दीर्घरूपैकादेशो न भवति। अमुष्मै, अमुष्मात्, अमुष्मिन् इत्यत्र '**अदसोऽसेर्दादु दो मः**' (८।२।८०) इत्युत्वस्यासिद्धत्वात् स्मै–आदय आदेशा भवन्ति।

आर्यभाषाः *अर्थ–(पूर्वत्रासिद्धम्) 'पूर्वत्रासिद्धम्' यह अधिकारसूत्र है। इसका अष्टम अध्याय की समाप्तिपर्यन्त अधिकार है। पाणिनि मुनि इससे आगे जो कहेंगे वह पूर्वत्र=पूर्वोक्त में असिद्ध जानना चाहिये।*

इस पाणिनीय अष्टाध्यायी में जो ये सवा सात अध्याय पीछे उपदेश किये गये हैं उनमें यह पौण-अध्याय (त्रिपादी) असिद्ध होता है और इससे आगे अगला-अगला सूत्रकार्य पहले-पहले सूत्रकार्य करने में असिद्ध के तुल्य हो जाता है। यह असिद्ध-वचन आदेश-लक्षण कार्य के प्रतिषेध के लिये और उत्सर्ग-लक्षण कार्य की विधि के लिये किया गया है।

*उदा०-**अस्मा उद्धर।** तू इसके लिये निकाल। **द्वा अत्र।** दो यहां हैं। **असा आदित्यः।** वह सूर्य है। **अमुष्मै।** उसके लिये। **अमुष्मात्।** उससे। **अमुष्मिन्।** उसमें।*

*सिद्धि-(१) **अस्मा उद्धर।** अस्मै+उद्धर। अस्माय्+उद्धर। अस्मा०+उद्धर। अस्मा उद्धर।*

*यहां **'एचोऽयवायावः'** (६।१।७६) से ऐकार के स्थान में 'आय्' आदेश है। **'लोपः शाकल्यस्य'** (८।३।१९) से यकार का लोप होता है। 'अस्मा+उद्धर' इस स्थिति में **'आद्गुणः'** (६।१।८४) से गुण रूप एकादेश प्राप्त होता है, वह यलोप के असिद्धवत् होने से नहीं होता है। ऐसे ही-द्वौ+अत्र=द्वा अत्र। असौ+आदित्यः=असा आदित्यः। यहां **'अकः सवर्णे दीर्घः'** (६।१।९८) से प्राप्त दीर्घरूप एकादेश नहीं होता है।*

*(२) **अमुष्मै।** अदस्+ङे। अदस्+ए। अद अ+ए। अद+ए। अमु+ए। अमु+स्मै। अमुस्मै।*

*यहां 'अदस्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'ङे' प्रत्यय है। **'त्यदादीनामः'** (७।२।१०२) से अकार अन्तादेश, **'अतो गुणे'** (६।१।९५) से पररूप एकादेश **और** **'अदसोऽसेर्दादु दो मः'** (८।२।८०) इस त्रिपादीय सूत्र से अकार को उकारादेश और दकार को मकारादेश होता है। इस त्रिपादीय कार्य के असिद्धवत् होने से **'सर्वनाम्नः स्मै'** (७।१।१४) से इसे 'अद+ए' ऐसा अकारान्त ही मानकर 'स्मै' आदेश किया जाता है। ऐसे ही ङसि प्रत्यय में-**अमुष्मात्।** 'ङि' प्रत्यय में-**अमुष्मिन्।** यहां पूर्वोक्त उत्व के असिद्ध होने से **'ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ'** (७।१।१५) से स्मात् और स्मिन् आदेश किये जाते हैं।*

असिद्धत्वम्--

(२) नलोपः सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति।२।

प०वि०-नलोपः १।१ सुप्-स्वर-संज्ञा-तुग्विधिषु ७।३ कृति ७।१।

स०-नस्य लोप इति नलोपः (षष्ठीतत्पुरुषः)। सुप् च स्वरश्च संज्ञा च तुक् च ते सुप्स्वरसंज्ञातुकः, तेषाम्-सुप्स्वरसंज्ञातुकाम्, तेषां विधय इति सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधयः, तेषु-सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु (इतरेतरयोग-द्वन्द्वगर्भितषष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-असिद्धमित्यनुवर्तते।

अन्वयः-सुप्स्वरसंज्ञाविधिषु तुग्विधौ च कृति नलोपोऽसिद्धः।

अर्थः-सुब्विधौ स्वरविधौ संज्ञाविधौ तुग्विधौ च कृति नलोपोऽसिद्धो भवति।

उदा०-**(सुब्विधिः)** राजभिः। तक्षभिः। राजभ्याम्। तक्षभ्याम्। राजसु। तक्षसु। **(स्वरविधिः)** राजवती। पञ्चार्मम्। दशार्मम्। पञ्चदण्डी। **(संज्ञाविधिः)** पञ्च ब्राह्मण्यः। दश ब्राह्मण्यः। **(तुग्विधिः)** वृत्रहभ्याम्, वृत्रहभिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति) सुप्-विधि, स्वर-विधि, संज्ञा-विधि और कृत्-प्रत्यय विषय में तुक्-विधि करने में (नलोपः) नकार का लोप (असिद्धः) असिद्धवत् होता है।*

उदा०-(सुब्विधि) ***राजभिः।*** *राजाओं के द्वारा।* ***तक्षभिः।*** *तक्षाओं के द्वारा। तक्षा=बढ़ई।* ***राजभ्याम्।*** *दो राजाओं के द्वारा।* ***तक्षभ्याम्।*** *दो तक्षाओं के द्वारा।* ***राजसु।*** *सब राजाओं में।* ***तक्षसु।*** *सब तक्षाओं में। (स्वरविधि)* ***राजवती।*** *राजावाली।* ***पञ्चार्मम्।*** *पांच ऊजड़ खेड़े।* ***दशार्मम्।*** *दश ऊजड़ खेड़े।* ***पञ्चदण्डी।*** *पांच दण्डीजनों का संग्रह। (संज्ञाविधि)* ***पञ्च ब्राह्मण्यः।*** *पांच ब्राह्मणियां।* ***दश ब्राह्मण्यः।*** *दश ब्राह्मणियां। (तुग्विधि)* ***वृत्रहभ्याम्।*** *दो इन्द्रों के द्वारा।* ***वृत्रहभिः।*** *सब इन्द्रों के द्वारा।*

सिद्धि-(१) राजभिः। राजन्+भिस्। राज०+भिस्। राजभिस्। रजभिः।

यहां 'राजन्' शब्द से ***'स्वौजस०'*** *(४।१।२) से 'भिस्' प्रत्यय है।* ***'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'*** *(८।२।७) से नकार का लोप होता है। राज+भिस्-इस स्थिति में* ***'अतो भिस ऐस्'*** *(७।१।९) से 'भिस्' को 'ऐस्' आदेश प्राप्त होता है। इस सूत्र से सुप्-विधि में नकार-लोप के असिद्ध होने से उक्त 'ऐस्' आदेश नहीं होता है। ऐसे ही 'तक्षन्' शब्द से-* ***तक्षभिः।***

(२) ***राजभ्याम्।*** *यहां नलोप के असिद्ध होने से* ***'सुपि च'*** *(७।३।१०२) से अङ्ग को दीर्घ नहीं होता है। ऐसे ही-* ***तक्षभ्याम्।***

(३) ***राजसु।*** *यहां नलोप के असिद्ध होने से* ***'बहुवचने झल्येत्'*** *(७।३।१०३) से अङ्ग को एकारादेश नहीं होता है। ऐसे ही-* ***तक्षसु।***

(४) ***राजवती।*** *राजन्+मतुप्। राजन्+वत्। राज०+वत्। राजवत्+ङीप्। राजवत्+ई। राजवती+सु। राजवती।*

यहां 'राजन्' शब्द से 'मतुप्' प्रत्यय है। ***'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'*** *(८।२।७) से नकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में* ***'उगितश्च'*** *(४।१।६) से 'ङीप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से स्वरविधि में उक्त नकार लोप असिद्ध हो जाता है, अतः* ***'अन्तोऽवत्याः'*** *(६।१।२१४) से अन्तोदात्त स्वर नहीं होता है।*

(५) ***पञ्चार्मम्।*** *यहां 'पञ्चन्' और 'अर्म' शब्दों का* ***'दिक्संख्ये संज्ञायाम्'*** *(२।१।५०) से द्विगुतत्पुरुष समास है। पूर्ववत् नकार का लोप होता है। इस सूत्र से*

स्वरविधि में नकार लोप असिद्ध हो जाता है, अतः **'अर्मे चावर्णं द्व्यच् त्र्यच्'** (६।२।९०) से पूर्वपद के अकारान्त न रहने से पूर्वपद को आद्युदात्त स्वर नहीं होता है, अपितु **'समासस्य'** (६।१।१२०) से अन्तोदात्त स्वर होता है-**पञ्चार्मम्।** ऐसे ही-**दशार्मम्।**

(६) **पञ्चदण्डी। पञ्चानां दण्डिनां समाहार इति पञ्चदण्डी।**

यहां 'पञ्चन्' और 'दण्डिन्' शब्दों का **'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च'** (२।१।५१) से समाहार अर्थ में द्विगुतत्पुरुष समास है। 'दण्डिन्' शब्द में **'अत इनिठनौ'** (५।२।११५) से 'इनि' प्रत्यय है। **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से 'दण्डिन्' के नकार का लोप होता है। इस सूत्र से स्वरविधि में यह नकार लोप असिद्ध हो जाता है, अतः **'इगन्तकालकपालभगालशरावेषु द्विगौ'** (६।२।२९) से इगन्तत्व न रहने से पूर्वपद को प्रकृतिस्वर नहीं होता है, अपितु **'समासस्य'** (६।१।१२०) से अन्तोदात्त स्वर होता है-**पञ्चदण्डी।** **'द्विगोः'** (४।१।२१) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय है।

(७) **पञ्च ब्राह्मण्यः।** यहां 'पचन्' शब्द का **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से नकार लोप हो जाने से **'ष्णान्ता षट्'** (१।१।२४) से षट्-संज्ञा प्राप्त नहीं होती है। इस सूत्र से संज्ञाविधि में नकार लोप असिद्ध हो जाता है अतः षट्-संज्ञा हो जाती है और **'न षट्स्वस्रादिभ्यः'** (४।१।१०) से स्त्री-प्रत्यय का प्रतिषेध हो जाता है, **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय प्राप्त होता था। ऐसे ही-**दश ब्राह्मण्यः।**

(८) **वृत्रहभ्याम्।** वृत्रहन्+भ्याम्। वृत्रह०+भ्याम्। वृत्रहभ्याम्।

यहां 'वृत्रहन्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'भ्याम्' प्रत्यय है। **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से नकार का लोप होता है। पुनः **'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्'** (६।१।७०) से तुक् आगम प्राप्त होता है। 'वृत्रहन्' शब्द में **'ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप्'** (३।२।८७) से 'क्विप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से तुग्विधि में नकार लोप असिद्ध हो जाता है, अतः ह्रस्वाभाव से तुक् आगम नहीं होता है। ऐसे ही-**वृत्रहभिः।**

असिद्धत्वप्रतिषेधः-

(३) न मु ने।३।

प०वि०-न अव्ययपदम्, मु १।१ ने ७।१।

स०-मश्च उश्च एतयोः समाहारः मु (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-असिद्धमित्यनुवर्तते।

अन्वयः-ने मु असिद्धं न।

अर्थः-नाऽऽदेशे कर्तव्ये मु-आदेशोऽसिद्धो न भवति, किं तर्हि सिद्ध एव।

उदा०-अमुना।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ने) ना-आदेश करने में (मु) मु-आदेश (असिद्धः) असिद्ध (न) नहीं होता है, किन्तु सिद्ध ही होता है।*

*उदा०-**अमुना।** उसके द्वारा।*

*सिद्धि-**अमुना।** अदस्+टा। अद अ+आ। अद+आ। अमु+आ। अमु+ना। अमुना।*

*यहां 'अदस्' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'टा' (आङ्) प्रत्यय है। '**त्यदादीनामः**' (७।२।१०२) से अकार अन्तादेश, '**अतो गुणे**' (६।१।९६) से पररूप एकादेश और '**अदसोऽसेर्दादु दो मः**' (८।२।८०) से अकार को उकार और दकार को मकार इस प्रकार 'मु' आदेश होता है। '**आङो नाऽस्त्रियाम्**' (७।३।११८) से उकारान्त अङ्ग से परे टा (आङ्) को ना-आदेश करने में 'मु' आदेश इस सूत्र से असिद्ध नहीं होता है। यदि यह मु-आदेश असिद्ध हो जाये तो उकारान्त-अभाव से ना-आदेश नहीं हो सकता है। मु-आदेश के असिद्ध होने पर जो '**सुपि च**' (७।३।१०२) से दीर्घ प्राप्त होता है, वह '**सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्य**' इस परिभाषा से दीर्घ नहीं होता है, अर्थात् ह्रस्व सन्निपात से ही टा (आङ्) को ना-आदेश हुआ है और वह ना-आदेश ही उस ह्रस्वत्व का विघात कर देवे, ऐसा नहीं होता है।*

{आदेशप्रकरणम्}

स्वरितादेशः-

(१) उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य।४।

प०वि०-उदात्त-स्वरितयोः ६।२ यणः ५।१ स्वरितः १।१ अनु-दात्तस्य ६।१।

स०-उदात्तश्च स्वरितश्च तौ-उदात्तस्वरितौ, तयोः-उदात्तस्वरितयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-उदात्तस्वरितयोर्यणोऽनुदात्तस्य स्वरितः।

अर्थः-उदात्तस्य स्वरितस्य च स्थाने यो यण्, ततः परस्यानुदात्तस्य स्थाने स्वरितादेशो भवति।

उदा०-(उदात्तयणः) कुमार्यौ, कुमार्यः। **(स्वरितयणः)** सकुल्ल्वाशा। खलप्वाशा।

आर्यभाषाः अर्थ-(उदात्तस्वरितयोः) उदात्त और स्वरित के स्थान में जो (यणः) यण् आदेश है उससे परवर्ती (अनुदात्तस्य) अनुदात्त के स्थान में (स्वरितः) स्वरित आदेश होता है।

उदा०-(उदात्तयण) **कुमार्यौ**। दो कुमारियां। **कुमार्यः**। सब कुमारियां। (स्वरितयण) **सकृल्ल्वाशा**। एक बार छेदन करनेवाले में, इच्छा। **खलप्वाशा**। खलिहान को शुद्ध करनेवाले में, इच्छा।

सिद्धि-(१) **कुमार्यौ**। कुमार+ङीष्। कुमार्+ई। कुमारी। कुमारी+औ। कुमार्य्+औ। कुमार्यौ।

यहां 'कुमार' शब्द से **'वयसि प्रथमे'** (४।१।२०) से 'ङीप्' प्रत्यय है। यह प्रत्यय पित् होने से **'अनुदात्तौ सुप्पितौ'** (३।१।४) से अनुदात्त है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अङ्ग के अकार का लोप होता है। अतः **'अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः'** (६।१।१५८) इस उदात्तनिवृत्तिस्वर से 'कुमारी' शब्द अन्तोदात्त है। **'इको यणचि'** (६।१।७६) से उदात्त यण्-आदेश होता है। इस सूत्र से उदात्तयण् से परवर्ती 'औ' अनुदात्त प्रत्यय को स्वरित आदेश होता है। **'अनुदात्तौ सुप्पितौ'** (३।१।४) से 'औ' प्रत्यय सुप्-लक्षण अनुदात्त है। ऐसे ही जस् प्रत्यय में-**कुमार्यः**।

(२) **सकृल्ल्वाशा**। यहां सकृत्-उपपद **'लूञ् छेदने'** (क्र्या०उ०) धातु से **'क्विप् च'** (३।२।७६) से 'क्विप्' प्रत्यय है। **'वेरपृक्तस्य'** (६।१।६६) से 'क्विप्' का सर्वहारी लोप होता है। सकृत् और लू शब्दों को **'उपपदमतिङ्'** (२।२।१९) से उपपदतत्पुरुष समास है। अतः 'सकृल्लू' शब्द **'गतिकारकोपदात् कृत्'** (६।।२।१३८) से अन्तोदात्त है। 'सकृल्लू' शब्द से 'ङि' प्रत्यय है-**सकृल्लवि**। 'ङि' प्रत्यय **'अनुदात्तौ सुप्पितौ'** (३।१।४) से सुप्-लक्षण अनुदात्त है। इसे **'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः'** (८।४।६६) से स्वरित होता है। 'आशा' शब्द परे होने पर **'एचोऽयवायावः'** (६।१।७७) से 'यण्' आदेश होता है। इस स्वरित यण् से परवर्ती अनुदात्त को इस सूत्र से स्वरित आदेश होता है। **'आशाया अदिगाख्या चेत्'** (फिट्० १।१८) से दिशा-अर्थ से भिन्न 'आशा' शब्द अन्तोदात्त है, अतः **'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्'** (६।१।१५२) से इसका आदिम आकार अनुदात्त है-**आशा**। ऐसे ही खल-उपपद **'पूञ् पवने'** (क्र्या०उ०) धातु से-**खलप्वाशा**।

उदात्तः (एकादेशः)—

(२) एकादेश उदात्तेनोदात्तः।५।

प०वि०-एकादेशः १।१ उदात्तेन ३।१ उदात्तः १।१।

स०-एकश्चासावादेशश्चेति एकादेशः (कर्मधारयतत्पुरुषः)।

अनु०-अनुदात्तस्येत्यनुवर्तते।

अन्वयः-उदात्तेनाऽनुदात्तस्यैकादेश उदात्तः।

अर्थः-उदात्तेन सहाऽनुदात्तस्य य एकादेश स उदात्तो भवति।

उदा०-अ॒ग्नी। वा॒यू। वृ॒क्षैः। प्ल॒क्षैः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(उदात्तेन) उदात्त के साथ जो (अनुदात्तस्य) अनुदात्त का (एकादेशः) एक-आदेश है, वह (उदात्तः) उदात्त होता है।*

*उदा०-**अ॒ग्नी।** दो अग्नि देवता। **वा॒यू।** दो वायु देवता। **वृ॒क्षैः।** सब वृक्षों से। **प्ल॒क्षैः।** सब पिलखणों से।*

सिद्धि-अ॒ग्नी। *अग्नि+औ। अग्नी+०। अग्नी।*

*यहां 'अग्नि' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'औ' प्रत्यय है। 'अग्नि' शब्द **'फिषोऽन्तोदात्तः'** (फिट्० १।१) से अन्तोदात्त है और 'औ' प्रत्यय **'अनुदात्तौ सुप्पितौ'** (३।१।४) से सुप्-लक्षण अनुदात्त है। इसे **'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः'** (६।१।९८) से पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश (ई) होता है। इस सूत्र से यह उदात्त और अनुदात्त का एकादेश, उदात्त होता है। ऐसे ही 'वायु' शब्द से-**वा॒यू।** 'वृक्ष' शब्द से 'भिस्' प्रत्यय में-**वृ॒क्षैः।** 'प्लक्ष' शब्द से-**प्ल॒क्षैः।***

वा स्वरितः (एकादेशः)-

(३) स्वरितो वाऽनुदात्ते पदादौ।६।

प०वि०-स्वरितः १।१ वा अव्ययपदम्, अनुदात्ते ७।१ पदादौ ७।१।

स०-पदस्याऽऽदिरिति पदादिः, तस्मिन्-पदादौ (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-एकादेशः, उदात्तेन, अनुदात्तस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-उदात्तेनाऽनुदात्तस्यैकादेशः पदादावनुदात्ते वा स्वरितः।

अर्थः-उदात्तेन सहानुदात्तस्य य एकादेशः, स पदादावनुदात्ते परतो विकल्पेन स्वरितो भवति। पक्षे च पूर्वेण प्राप्त उदात्तो भवति।

उदा०-सु+उत्थितः=सूत्थितः, सूत्थितः। वि+ईक्षते=वीक्षते, वीक्षते। वसुकः+असि=वसुकोऽसि, वसुकोऽसि।

आर्यभाषाः अर्थ-*(उदात्तेन) उदात्त के साथ जो (अनुदात्तस्य) अनुदात्त का (एकादेशः) एक-आदेश है, वह (पदादावनुदात्ते) पदादि-अनुदात्त परे होने पर (वा) विकल्प से (स्वरितः) स्वरित होता है। पक्ष में पूर्वसूत्र से प्राप्त उदात्त होता है।*

*उदा०-**सूत्थितः, सूत्थितः।** बहुत उठा हुआ। **वीक्षते, वीक्षते।** वह विशेषतः देखता है। **वसुकोऽसि, वसुकोऽसि।** तू लघु वसु है।*

सिद्धि-(१) सूत्थितः। यहां 'सु' और 'उत्थित' शब्दों का 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है। 'सुः पूजायाम्' (१।४।९३) से 'सु' शब्द की कर्मप्रवचनीय संज्ञा है, 'गतिश्च' (१।४।६०) से प्राप्त गतिसंज्ञा का यह अपवाद है। 'तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्ययद्वितीयाः कृत्याः' (६।२।२) से तत्पुरुष समास में पूर्वपदवर्ती 'सु' को अव्ययलक्षण प्रकृतिस्वर होता है। 'निपाता आद्युदात्ताः' (फिट्० ४।१२) से 'सु' आद्युदात्त है। 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' (६।१।१५३) से शेष पद अनुदात्त होता है-सु-उत्थितः, इस स्थिति में 'अकः सवर्णे दीर्घः' (६।१।९९) से दीर्घरूप एकादेश होता है। इस सूत्र से यह उदात्त और पदादि अनुदात्त का एकादेश स्वरित होता है-सूत्थितः। विकल्प-पक्ष में 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' (८।२।५) से एकादेश उदात्त होता है-सूत्थितः।

(२) वीक्षते। वि+ईक्षते=वीक्षते। यहां 'तिङ्ङतिङः' (८।१।५८) से 'ईक्षते' पद सर्वानुदात्त है-ईक्षते। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-वसुकः+असि=वसुकोऽसि।

नलोपादेशः--

(४) न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य।७।

प०वि०-न ६।१ (लुप्तषष्ठीकं पदम्) लोपः १।१ प्रातिपदिक ६।१ (लुप्तषष्ठीकं पदम्) अन्तस्य ६।१।

अनु०-**'पदस्य'** (८।१।१६) इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-प्रातिपदिकस्य पदस्यान्तस्य नस्य लोपः।

अर्थः-प्रातिपदिकस्य पदस्य योऽन्त्यो नकारस्तस्य लोपो भवति।

उदा०-राजा। राजभ्याम्। राजभिः। राजता। राजतरः। राजतमः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(प्रातिपदिकस्य) प्रातिपदिक (पदस्य) पद का जो (अन्तस्य) अन्त्य (नस्य) नकार है, उसका (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-**राजा**। भूपति। **राजभ्याम्**। दो राजाओं से। **राजभिः**। सब राजाओं से। **राजता**। राजभाव (राजपना) **राजतरः**। दोनों में से अतिशायी राजा। **राजतमः**। बहुतों में से अतिशायी राजा।*

*सिद्धि-**राजा**। राजन्+सु। राजान्+स्। राजान्+०। राजा०। राजा।*

*यहां 'राजन्' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' (६।४।८) से नकारान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ और 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०' (६।१।६७) से 'सु' का लोप होता है। इस सूत्र से 'राजन्' प्रातिपदिक पद के अन्त्य नकार का लोप होता है। 'सुप्तिङन्तं पदम्' (१।४।१४) से पद-संज्ञा है। ऐसे ही 'भ्याम्' प्रत्यय में-**राजभ्याम्**। यहां 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' (१।४।१७) से पद-संज्ञा है। 'भिस्' प्रत्यय में-**राजभिः**। 'तस्य भावस्त्वतलौ' (५।१।११९) से 'तल्' प्रत्यय*

में-राजता। 'तलन्तः' (लिङ्गानुशासन १।१७) से तल्-प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं। 'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ' (५।३।५७) से 'तरप्' प्रत्यय में-राजतरः। 'अतिशायने तमबिष्ठनौ' (५।३।५५) से इष्ठन् प्रत्यय में-राजतमः।

नलोपप्रतिषेधः–

(५) न ङिसम्बुद्ध्योः।८।

प०वि०–न अव्ययपदम्, ङि-सम्बुद्ध्योः ७।२।

स०–ङिश्च सम्बुद्धिश्च ते ङिसम्बुद्धी, तयोः-ङिसम्बुद्ध्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–नस्य, लोपः, प्रातिपदिकस्य, अन्तस्य, पदस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः–प्रातिपदिकस्य पदस्याऽन्तस्य नस्य ङिसम्बुद्ध्योर्लोपो न।

अर्थः–प्रातिपदिकस्य पदस्य योऽन्त्यो नकारस्तस्य ङौ सम्बुद्धौ च परतो लोपो न भवति।

उदा०–**(ङि)** आर्द्रे चर्मन् (तै०सं० ७।५।९।३)। लोहिते चर्मन् (काठ०सं० २४।२)। **'सुपां सुलुक्०'** (७।१।३९) इति ङेर्लुक्। **(सम्बुद्धिः)** हे राजन्! हे तक्षन्!

आर्यभाषाः *अर्थ-(प्रातिपदिकस्य) प्रातिपदिक (पदस्य) पद के (अन्तस्य) अन्त्य (नस्य) नकार का (ङिसम्बुद्ध्योः) ङि और सम्बुद्धि-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोप (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(ङि) **आर्द्रे चर्मन्** (तै०सं० ७।५।९।३)। गीले चर्म पर। यहां 'सुपां सुलुक्०' (७।१।३९) से 'ङि' प्रत्यय का लुक् है। **लोहिते चर्मन्** (काठ०सं० २४।२)। लाल चर्म पर। पूर्ववत् 'ङि' प्रत्यय का लुक् है। **(सम्बुद्धि) हे राजन्!** हे भूपते! **हे तक्षन्!** हे बढ़ई।*

*सिद्धि-(१) **चर्मन्।** चर्मन्+ङि। चर्मन्+०। चर्मन्।*

यहां 'चर्मन्' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'ङि' प्रत्यय है। 'सुपां सुलुक्०' (७।१।३९) से 'ङि' प्रत्यय का लुक् होता है। इस सूत्र से 'ङि' प्रत्यय में 'चर्मन्' प्रातिपदिक पद के नकार लोप का प्रतिषेध होता है।

(२) हे राजन्! राजन्+सु। राजन्+स्। राजन्+०। राजन्।

ये 'राजन्' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०' (६।१।६७) से 'सु' का लोप होता है। 'एकवचनं सम्बुद्धिः' (२।३।४९) से 'सु' की सम्बुद्धि संज्ञा है। इस सूत्र से सम्बुद्धि में 'राजन्' प्रातिपदिक पद के नकार लोप का प्रतिषेध होता है। 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से नकार लोप प्राप्त था।

वकारादेशः-

(६) मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः।६।

प०वि०- मात् ५।१ उपधायाः ५।१ च अव्ययपदम्, मतोः ६।१ वः १।१ अयवादिभ्यः ५।१।

स०-मश्च अश्च एतयोः समाहारो मम्, तस्मात्-मात् (समाहारद्वन्द्वः)। यव आदिर्येषां ते यवादयः, न यवादय इति अयवादयः, तेभ्यः-अयवादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, प्रातिपदिकस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-माद् उपधायाश्च प्रातिपदिकात् पदाद् मतोर्वः, अयवादिभ्यः।

अर्थः-मकारान्ताद् मकारोपधाद् अकारान्ताद् अकारोपधाच्च प्रातिपदिकात् पदात् परस्य मतोः स्थाने वकारादेशो भवति, यवादिभ्यस्तु परस्य न भवति।

उदा०-**(मकारान्तात्)** किंवान्। शंवान्। **(मकारोपधात्)** शमीवान्। दाडिमीवान्। **(अकारान्तात्)** वृक्षवान्। प्लक्षवान्। खट्वावान्। मालावान्। **(अकारोपधात्)** पयस्वान्। यशस्वान्। भास्वान्।

यव। दल्मि। ऊर्मि। भूमि। कृमि। क्रुञ्चा। वशा। द्राक्षा। ध्रजि। सञ्जि। हरित्। ककुत्। गरुत्। इक्षु। मधु। द्रुम। मण्ड। धूम। इति यवादयः। आकृतिगणोऽयम्।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(माद् उपधायाश्च) मकारान्त और मकार-उपधावाले तथा अकारान्त और अकार उपधावाले (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक (पदात्) पद से परे (मतोः) मतुप् प्रत्यय के मकार को (वः) वकारादेश होता है (अयवादिभ्यः) यवादि **शब्दों** से परे तो वकारादेश नहीं होता है।*

*उदा०-(मकारान्त) **किंवान्।** किम्-किम् करनेवाला किङ्कर (नौकर)। **शंवान्।** शान्तिवाला। (मकारोपध) **शमीवान्।** शमी (जांटी) वृक्षवाला। **दाडिमीवान्।** छोटी इलायचीवाला। (अकारान्त) **वृक्षवान्।** वृक्षवाला। **प्लक्षवान्।** पिलखणवाला। **खट्वावान्।** खाटवाला। **मालावान्।** मालावाला। (अकारोपध) **पयस्वान्।** दूधवाला। **यशस्वान्।** यशवाला (यशस्वी)। **भास्वान्।** दीप्तिवाला (सूर्य)।*

*सिद्धि-**किंवान्**। किम्+मतुप्। किम्+मत्। किम्+वत्। किंवत्+सु। किंवनुम्त्+स्। किंवन्त्+स्। किंवन्०+स्। किंवान्+०। किंवान्।*

*यहां 'किम्' शब्द से '**तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्**' (५।२।९४) से 'मतुप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से मकारान्त 'किम्' शब्द से परे 'मतुप्' के मकार को वकारादेश होता है और यह '**आदेः परस्य**' (१।१।५४) के नियम से मतुप् के आदिम मकार को किया जाता है। '**उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः**' (७।१।७०) से 'नुम्' आगम, '**संयोगान्तस्य लोपः**' (८।२।२३) से तकार का लोप, '**सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ**' (६।४।८) से नकारान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ और '**हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०**' (६।१।६७) से 'सु' का लोप होता है। ऐसे ही '**शंवान्**' आदि।*

वकारादेशः-

(७) झयः।१०।

वि०-झयः ५।१।

अनु०-पदस्य, प्रातिपदिकस्य, मतोः, व इति चानुवर्तते।

अन्वयः-झयः प्रातिपदिकस्य पदस्य मतोर्वः।

अर्थः-झयन्तात् प्रातिपदिकात् पदात् परस्य मतोः स्थाने वकारादेशो भवति।

उदा०-अग्निचित्वान् ग्रामः। उदश्वित्वान् घोषः। विद्युत्वान् बलाहकः। इन्द्रो मरुत्वान् (आ०श्रौ० २।११।१०)। दृषद्वान् देशः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(झयः) झय् वर्ण जिसके अन्त में है उस (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक (पदात्) पद से परे (मतोः) मतुप् प्रत्यय के स्थान में (वः) वकारादेश होता है।*

*उदा०-**अग्निचित्वान् ग्रामः**। अग्न्याधान करनेवाला ग्राम। **उदश्वित्वान् घोषः**। लस्सीवाला शब्दविशेष। **विद्युत्वान् बलाहकः**। बिजलीवाला बादल। **इन्द्रो मरुत्वान्** (आ०श्रौ० २।११।१०)। मरुत् देवतावाला इन्द्र। **दृषद्वान् देशः**। पत्थरवाला (पथरीला) देश।*

*सिद्धि-**अग्निचित्वान्**। अग्निचित्+मतुप्। अग्निचित्+वत्। अग्निचित्वत्+सु। अग्निचित्वान्।*

*यहां 'अग्निचित्' शब्द से पूर्ववत् 'मतुप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से झयन्त (त्) अग्निचित् शब्द से परे 'मतुप्' प्रत्यय के मकार को वकारादेश होता है। शेष कार्य '**किंवान्**' (८।२।९) के तुल्य है। ऐसे ही '**उदश्वित्वान्**' आदि।*

वकारादेशः–

(८) संज्ञायाम् ।११।

वि०-संज्ञायाम् ७ ।१ ।

अनु०-पदस्य, प्रातिपदिकस्य, मतोः, व इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-संज्ञायां प्रातिपदिकात् पदाद् मतोर्वः ।

अर्थः-संज्ञायाम् विषये प्रातिपदिकात् पदात् परस्य मतोः स्थाने वकारादेशो भवति ।

उदा०-अहीवती । कपीवती । ऋषीवती । मुनीवती ।

***आर्यभाषाः* अर्थ-(संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक (पदात्) पद से परे (मतोः) मतुप् प्रत्यय के स्थान में (वः) वकारादेश होता है।**

*उदा०-**अहीवती।** सांपोंवाली नदी। **कपीवती।** बन्दरोंवाली नदी। **ऋषीवती।** ऋषियोंवाली नदी। **मुनीवती।** मुनियोंवाली नदी।*

*सिद्धि-**अहीवती।** अहि+मतुप्। अहि+मत्। अहि+मत्। अही+वत्। अहीवत्+ङीप्। अहीवत्+ई। अहीवती+सु। अहीवती।*

*यहां 'अहि' शब्द से **'नद्यां मतुप्'** (४।२।८४) से नदी-अर्थ में 'मतुप्' प्रत्यय है। यहां 'शरादीनां च' (६।२।१२०) से अङ्ग को दीर्घ होता है। इस सूत्र से 'अहि' प्रातिपदिक पद से परे 'मतुप्' के मकार को वकारादेश होता है। **'उगितश्च'** (४।१।६) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय है। यह नदीविशेष की संज्ञा है। ऐसे ही-**कपीवती** आदि।*

निपातनम्–

(६) आसन्दीवदष्ठीवच्चक्रीवत्कक्षीवद्रुमण्वच्चर्मण्वती ।१२।

प०वि०- आसन्दीवत्-अष्ठीवत्-चक्रीवत्-कक्षीवत्-रुमण्वत्-चर्मण्वती १।१।

स०-आसन्दीवच्च अष्ठीवच्च चक्रीवच्च कक्षीवच्च रुमण्वच्च चर्मण्वती च एतेषां समाहार आसन्दीवदष्ठीवच्चक्रीवत्कक्षीवद्रुमण्वच्चर्मण्वती। समाहारे छान्दसमह्रस्वत्वम्। छन्दोवत् सूत्राणि भवन्ति (महाभाष्यम्) ।

अनु०-संज्ञायामित्यनुवर्तते ।

अन्वयः-संज्ञायाम् आसन्दीवदष्ठीवच्चक्रीवत्कक्षीवद्रुमण्वच्चर्मण्वती इति निपातनम् ।

अर्थः-संज्ञायां विषये आसन्दीवदष्ठीवच्चक्रीवत्कक्षीवद्रुमण्वच्चर्मण्वती इति पदानि निपात्यन्ते।

उदा०-आसन्दीवान् ग्रामः। अष्ठीवान् शरीरैकदेशः। चक्रीवान् राजा। कक्षीवान् नाम ऋषिः। रुमण्वती नाम नदी। चर्मण्वती नाम नदी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में (आसन्दीवत्०) आसन्दीवत्, अष्ठीवत्, चक्रीवत्, कक्षीवत्, रुमण्वती, चर्मण्वती ये पद निपातित हैं।*

*उदा०-**आसन्दीवान् ग्रामः**। आसन (कुर्सी) वाला ग्राम। **अष्ठीवान्**। अस्थि=हड्डीवाला शरीरका एक भाग। **चक्रीवान् राजा**। चक्रवाला राजा। **कक्षीवान् नाम ऋषिः**। कक्षीवान् नामक ऋषि। **रुमण्वती नाम नदी**। लवणवाली नदी (लूणी)। **चर्मण्वती नाम नदी**। चर्मण्वती नामक नदी। (लूणी) सांभर झील से निकलनेवाली।*

*सिद्धि-**(१) आसन्दीवान्**। यहां 'आसन' शब्द से **'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्'** (५।२।९४) से 'मतुप्' प्रत्यय है। 'आसन' शब्द के स्थान में 'आसन्दी' आदेश निपातित है। **'संज्ञायाम्'** (८।२।११) से मतुप् को वकारादेश सिद्ध है।*

***(२) अष्ठीवान्**। यहां 'अस्थि' शब्द से पूर्ववत् 'मतुप्' प्रत्यय है। 'अस्थि' शब्द के स्थान में 'अष्ठी' आदेश निपातित है।*

***(३) चक्रीवान्**। यहां 'चक्र' शब्द से पूर्ववत् 'मतुप्' प्रत्यय है। 'चक्र' शब्द के स्थान में 'चक्री' आदेश निपातित है।*

***(४) कक्षीवान्**। यहां 'कक्ष्या' शब्द से पूर्ववत् 'मतुप्' प्रत्यय है। 'कक्ष्या' शब्द को सम्प्रसारण निपातित है। 'हलः' (६।४।२) से दीर्घ होता है।*

***(५) रुमण्वती**। यहां 'लवण' शब्द से पूर्ववत् 'मतुप्' प्रत्यय है। 'लवण' शब्द के स्थान में 'रुमण्' आदेश निपातित है।*

***(६) चर्मण्वती**। यहां 'चर्मन्' शब्द से **'नद्यां मतुप्'** (४।२।८४) से 'मतुप्' प्रत्यय है। यहां **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से प्राप्त नकार लोप का अभाव और **'पदान्तस्य'** (८।४।३६) से प्राप्त णत्वप्रतिषेध का भी अभाव निपातित है। **'उगितश्च'** (४।१।६) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय है।*

निपातनम्-

(१०) उदन्वानुदधौ च।१३।

प०वि०-उदन्वान् १।१ उदधौ ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-संज्ञायामित्यनुवर्तते।

अन्वयः-संज्ञायामुदधौ च उदन्वान् इति निपातनम्।

अर्थः-संज्ञायामुदधौ च विषये उदन्वानिति पदं निपात्यन्ते।

उदा०-(संज्ञा) उदन्वान् नाम ऋषिर्यस्य औदन्वतः पुत्रः। **(उदधिः)** यस्मिन्नुदकं धीयते स उदन्वान् उदधिः (समुद्रः)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संज्ञायाम्) संज्ञा (च) और (उदधौ) समुद्र विषय में (उदन्वान्) उदन्वान् यह शब्द निपातित है।*

*उदा०-**(संज्ञा) उदन्वान् नाम ऋषिर्यस्य औदन्वतः पुत्रः।** उदन्वान् नामक एक ऋषि था, जिसका पुत्र औदन्वत कहलाया। **(उदधि) उदन्वान् उदधिः।** उदन्वान् का अर्थ समुद्र है कि जिसमें उदक रखा जाता है।*

*सिद्धि-(१) **उदन्वान्।** उदक+मतुप्। उदक+मत्। उदन्+मत्। उदन्+वत्। उदन्वत्+सु। उदन्वनुम्त्+स्। उदन्वन्त्+स्। उदन्वान्त्+स्। उदन्वान्त्+०। उदन्वान्०। उदन्वान्।*

यहां 'उदक' शब्द से पूर्ववत् 'मतुप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से संज्ञा और उदधि विषय में उदक शब्द के स्थान में 'उदन्' आदेश निपातित है। शेष कार्य 'किंवान्' (८।२।९) के समान है।

निपातनम्-

(११) राजन्वान् सौराज्ये।१४।

प०वि०-राजन्वान् १।१ सौराज्ये ७।१।

स०-शोभनो राजा यस्मिन् स सुराजा, तस्य भावः-सौराज्यम्। **'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च'** (५।१।१२४) इति भावे ष्यञ् प्रत्ययः, **'नस्तद्धिते'** (६।४।१२४) इत्यनेन टेर्लोपः।

अन्वयः-सौराज्ये राजन्वानिति निपातनम्।

अर्थः-सौराज्ये गम्यमाने राजन्वानिति पदं निपात्यते।

उदा०-शोभनो राजा यस्मिन् स राजन्वान् देशः। राजन्वती पृथ्वी।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(सौराज्ये) श्रेष्ठ राजा होना अर्थ की अभिव्यक्ति में (राजन्वान्) राजन्वान् यह शब्द निपातित है।*

*उदा०-**राजन्वान् देशः।** श्रेष्ठ राजावाला देश। **राजन्वती पृथ्वी।** श्रेष्ठ राजावाली भूमि।*

*सिद्धि-**राजन्वान्।** यहां 'राजन्' शब्द से पूर्ववत् 'मतुप्' प्रत्यय है। **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से जो नकार लोप प्राप्त होता है, इस सूत्र से उसका अभाव निपातित है।*

निपातनम्–

(१२) छन्दसीरः ।१५।

प०वि०–छन्दसि ७ ।१ इरः ५ ।१ ।

स०–इश्च र् च एतयोः समाहार इर्, तस्मात्–इरः (समाहारद्वन्द्वः) ।

अनु०–पदस्य, प्रातिपदिकस्य, मतोः, व इति चानुवर्तते ।

अन्वयः–छन्दसि इरः प्रातिपदिकात् पदाद् मतोर्वः ।

अर्थः–छन्दसि विषये इकारान्ताद् रेफान्ताच्च प्रातिपदिकात् पदात् परस्य मतोः स्थाने वकारादेशो भवति ।

उदा०–**(इकारान्तः)** त्रिवती याज्यानुवाक्या भवति । हरिवो मेदिनं त्वा (तै०सं० ५ ।७ ।१४ ।४) । अधिपतिवती जुहोति । चरुरग्निवाँ इव (ऋ० ७ ।१०४ ।२) । आ रेवानेतु मा विशत् । सरस्वतीवान् भारतीवान् (मै०सं० ३ ।१० ।६) । दधिवाँश्चरुः (शौ०सं० १८ ।४ ।१७) । **(रेफान्तः)** गीर्वान् । धूर्वान् । आशीर्वान् ।

***आर्यभाषाः* अर्थ**–*(छन्दसि) वेदविषय में (इरः) इकारान्त और रेफान्त (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक (पदात्) पद से परे (मतोः) मतुप् प्रत्यय के स्थान में (वः) वकारादेश होता है ।*

*उदा०–**(इकारान्त) त्रिवती याज्यानुवाक्या भवति ।** त्रिवती=तीनवाली । **हरिवो मेदिनं त्वा** (तै०सं० ५ ।७ ।१४ ।४) । हरिवन्=हे हरिवाले ! । **अधिपतिवती जुहोति ।** अधिपतिवती=अधिपतिवाली । **चरुरग्निवाँ इव** (ऋ० ७ ।१०४ ।२) । अग्निवान्=अग्निवाला । **आ रेवानेतु मा विशत् ।** रेवान्=रयि (धनवाला) । **सरस्वतीवान् भारतीवान्** (मै०सं० ३ ।१० ।६) । सरस्वतीवान्=विद्यावाला । भारतीवान्=विद्यावाला । **दधिवाँश्चरुः** (शौ०सं० १८ ।४ ।१७) । दधिवान्=दहीवाला । **(रेफान्त) गीर्वान् ।** वाणीवाला । **धूर्वान् ।** जुएवाला बैल । **आशीर्वान् ।** इच्छावाला ।*

सिद्धि–त्रिवती । *यहां 'त्रि' शब्द से पूर्ववत् 'मतुप्' प्रत्यय है । इस सूत्र से वेदविषय में इकारान्त 'त्रि' शब्द से परे 'मतुप्' को वकारादेश होता है । 'उगितश्च' (४ ।१ ।६) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय है । ऐसे ही हरि शब्द से–**हरिवान् ।** सम्बुद्धि में–**हरिवन् ।** 'मतुवसो रु सम्बुद्धौ छन्दसि' (८ ।३ ।१) से नकार को रुत्व, 'हशि च' (६ ।१ ।११०) से रेफ को उत्व और 'आद्गुणः' (६ ।१ ।१७४) से गुणरूप एकादेश होकर–**हरिवो मेदिनम् ।** अधिपति शब्द से–**अधिपतिवती** (स्त्रीलिङ्ग) । अग्नि शब्द से–**अग्निवान् ।** रयि शब्द से–**रेवान् ।** **वा०– 'रयेर्मतौ बहुलम्'** (६ ।१ ।३६) से 'रयि'*

*शब्द को 'मतुप्' प्रत्यय परे होने पर सम्प्रसारण होता है-रयि+मतुप्। रयि+मत्। र इ इ+वत्। र इ+वत्। रे+वत्। रेवत्+सु। रेवान्। सरस्वती शब्द से-**सरस्वतीवान्।** भारती शब्द से-**भारतीवान्।** रेफान्त 'गिर्' शब्द से-**गीर्वान्।** धुर् शब्द से-**धूर्वान्।** आशिर् शब्द से-**आशीर्वान्।** '**र्वोरुपधाया दीर्घ इकः**' (८।२।७६) से दीर्घ होता है।*

{आगम-विधिः}

नुट्-आगमः

(१) अनो नुट्।१६।

प०वि०-अनः ५।१ नुट् १।१।

अनु०-पदस्य, प्रातिपदिकस्य, मतोः, वः, छन्दसीति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि अनः प्रातिपदिकात् पदाद् मतोर्नुट्।

अर्थः-छन्दसि विषयेऽनन्तात् पदात् परस्य मतोर्नुडागमो भवति।

उदा०-अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायः (ऋ० १०।७१।७)। अस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति (ऋ० १।१६४।४)। अक्षण्वता लाङ्गलेन (पै०सं० ९।८।१)। शीर्षण्वती (शौ०सं० १०।१।२)। मूर्धन्वती (तै०सं० २।६।२।२)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अनः) अन् जिसके अन्त में है उस (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक (पदात्) पद से परे (मतोः) मतुप् प्रत्यय को (नुट्) नुट् आगम होता है।*

*उदा०-**अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायः** (ऋ० १०।७१।७)। **अक्षण्वन्तः।** आंखोंवाले। **अस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति** (ऋ० १।१६४।४)। **अस्थन्वन्तम्।** अस्थि (हड्डी) वाले को। **अक्षण्वता लाङ्गलेन** (पै०सं० ९।८।१)। **अक्षण्वता।** आंखोंवाले से। **शीर्षण्वती** (शौ०सं० १०।१।२)। शिरवाली। **मूर्धन्वती** (तै०सं० २।६।२।२)। मूर्धावाली।*

*सिद्धि-**अक्षण्वन्तः।** अक्षि+मतुप्। अक्षि+मत्। अक्ष् अनङ्+मत्। अक्षन्+नुट्+वत्। अक्ष०+न्+वत्। अक्षण्वत्+जस्। अक्षण्वन्तः।*

*यहां 'अक्षि' शब्द से पूर्ववत् 'मतुप्' प्रत्यय है। '**छन्दस्यपि दृश्यते**' (७।१।७६) से 'अक्षि' को 'अनङ्' आदेश होता है। इस सूत्र से अनन्त 'अक्षन्' शब्द से परे 'मतुप्' को 'नुट्' आगम होता है। '**नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य**' (८।२।७) से नकार का लोप होता है। '**मादुपधायाश्च०**' (८।२।९) से 'मतुप्' को वकारादेश है। ऐसे ही 'अस्थि' शब्द से द्वितीया एकवचन में-**अस्थन्वन्तम्।** 'अक्षि' शब्द से तृतीया एकवचन में-**अक्षण्वता।***

*'शीर्षन्' शब्द से-**शीर्षण्वती**। 'शीर्षँश्छन्दसि' (६।१।५९) से वेद में 'शिरस्' के स्थान में 'शीर्षन्' आदेश होता है। 'मूर्धन्' शब्द से-**मूर्धन्वती**। 'उगितश्च' (४।१।६) से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय है।*

नुट्-आगमः-

(२) नाद्घस्य।१७।

प०वि०-नात् ५।१ घस्य ६।१।

अनु०-पदस्य, प्रातिपदिकस्य, छन्दसि, नुडिति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि नात् प्रातिपदिकात् पदाद् घस्य नुट्।

अर्थः-छन्दसि विषये नकारान्तात् प्रातिपदिकात् पदात् परस्य घ-संज्ञकस्य प्रत्ययस्य नुडागमो भवति।

उदा०-सुपथिन्तरः। दस्युहन्तमः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (नात्) नकारान्त (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक (पदात्) पद से परे (घस्य) घ-संज्ञक प्रत्यय को (नुट्) नुट् आगम होता है।*

*उदा०-**सुपथिन्तरः**। दोनों में से अति उत्तम पथ। **दस्युहन्तमः**। बहुतों में से अतिशायी अनार्यों का हनन करनेवाला।*

सिद्धि-सुपथिन्तरः। *सुपथिन्+तरप्। सुपथिन्+नुट्+तर। सुपथि०+न्+तर। सुपथिन्तर+सु। सुपथिन्तरः।*

*यहां 'सुपथिन्' शब्द से **'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ'** (५।३।५७) से 'तरप्' प्रत्यय है। इसकी 'तरप्तमपौ घः' (१।१।२२) से घ-संज्ञा है। इस सूत्र से नकारान्त 'पथिन्' प्रातिपदिक पद से परे 'तरप्' प्रत्यय को 'नुट्' आगम होता है। **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से 'सुपथिन्' के नकार का लोप होता है। ऐसे ही 'वृत्रहन्' शब्द से **'अतिशायने तमबिष्ठनौ'** (५।३।५५) से 'तमप्' प्रत्यय में-वृत्रहन्तमः।*

{आदेशप्रकरणम्}

ल-आदेशः-

(१) कृपो रो लः।१८।

प०वि०-कृपः ६।१ रः ६।१ लः १।१।

अर्थः-कृपो धातो रेफस्य स्थाने लकारादेशो भवति।

उदा०-कल्प्ता, कल्प्तारौ, कल्प्तारः। चिक्लृप्सति। क्लृप्तः, क्लृप्तवान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कृपः) कृप् धातु के (रः) रेफ के स्थान में (लः) लकारादेश होता है।*

*उदा०-**कल्प्ता।** वह समर्थ होगा। **कल्प्तारौ।** वे दोनों समर्थ होंगे। **कल्प्तारः।** वे सब समर्थ होंगे। **चिक्लृप्सति।** वह समर्थ होना चाहता है। **क्लृप्तः, क्लृप्तवान्।** समर्थ हुआ।*

सिद्धि-(१) कल्प्ता। यहां 'कृपू सामर्थ्ये' (भ्वा०आ०) धातु से 'अनद्यतने लुट्' (३।३।१५) से 'लुट्' प्रत्यय है। 'स्यतासी लृलुटोः' (३।१।३३) से 'तासि' प्रत्यय, 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश और 'लुटः प्रथमस्य डारौरसः' (२।५।८५) से 'तिप्' के स्थान में 'डा' आदेश है। 'लुटि च क्लृपः' (१।३।९३) से परस्मैपद होता है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से लघूपधलक्षण गुण (अर्) होकर इस सूत्र से रेफ के स्थान में लकारादेश होता है। ऐसे ही तस् (रौ) प्रत्यय में-कल्प्तारौ। झि (रस्) प्रत्यय में-कल्प्तारः।

(२) चिक्लृप्सति। यहां 'कृप्' धातु से 'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा' (३।१।७) से इच्छा अर्थ में 'सन्' प्रत्यय है। 'हलन्ताच्च' (१।२।१०) से झलादि सन् के किद्वत् होने से 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से प्राप्त लघूपधलक्षण गुण का 'क्ङिति च' (१।१।५) से प्रतिषेध होता है। अतः इस सूत्र से 'कृप्' धातु से ऋकार में जो रेफश्रुति है, उसे लश्रुति रूप आदेश होता है। ऐसे ही 'क्त' प्रत्यय में-क्लृप्तः। क्तवतु प्रत्यय में-क्लृप्तवान्।

विशेषः *'कृप्' धातु को लघूपधलक्षण गुण होकर जो रेफ उपलब्ध होता है अथवा 'कृप्' धातु के ऋकार में जो रेफश्रुति है, वहां इस सूत्र से रेफ के स्थान में लकारादेश होता है।*

ल-आदेशः-

(२) उपसर्गस्यायतौ।१६।

प०वि०-उपसर्गस्य ६।१ अयतौ ७।१।

अनु०-रः, ल इति चानुवर्तते।

अन्वयः-उपसर्गस्य रोऽयतौ लः।

अर्थः-उपसर्गस्थस्य रेफस्य स्थानेऽयतौ परतो लकारादेशो भवति।

उदा०-(प्र) स प्लायते। **(परा)** स पलायते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(उपसर्गस्य) उपसर्ग में विद्यमान (रः) रेफ के स्थान में (अयतौ) अयति शब्द परे होने पर (लः) लकारादेश होता है।*

उदा०-(प्र) स प्लायते। वह भागता है। (परा) स पलायते। अर्थ पूर्ववत् है।

सिद्धि-प्लायते। यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'अय गतौ' (भ्वा०आ०) धातु से 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'अयते' शब्द परे होने पर 'प्र' उपसर्ग में विद्यमान रेफ के स्थान में लकारादेश होता है। परा-उपसर्गपूर्वक में-पलायते।

ल-आदेशः--

(३) ग्रो यङि।२०।

प०वि०-ग्रः ६।१ यङि ७।१।

अनु०-रः, ल इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ग्रो रो यङि लः।

अर्थः-गृ इत्येतस्य धातो रेफस्य स्थाने यङि प्रत्यये परतो लकारादेशो भवति।

उदा०-स निजेगिल्यते। तौ निजेगिल्येते। ते निजेगिल्यन्ते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ग्रः) गृ इस धातु के (रः) रेफ के स्थान में (यङि) यङ् प्रत्यय परे होने पर (लः) लकारादेश होता है।*

उदा०-स निजेगिल्यते। वह बुरी तरह निगलता है। तौ निजेगिल्येते। वे दोनों बुरी तरह निगलते हैं। ते निजेगिल्यन्ते। वे सब बुरी तरह निगलते हैं।

सिद्धि-निजेगिल्यते। यहां नि-उपसर्गपूर्वक 'गृ निगरणे' (तु०प०) धातु से 'लुपसदचरजपजभदहदशगृभ्यो भावगर्हायाम्' (३।१।२४) से धात्वर्थ निन्दा में 'यङ्' प्रत्यय है। 'ॠत इद्धातोः' (७।१।१००) से 'गृ' के ॠकार को इकार आदेश और इसे 'उरण् रपरः' (१।१।५१) से रपरत्व है। इस सूत्र से इस रेफ को लकारादेश होता है। गृ-गिर्=गिल्। धातु को द्वित्व और अभ्यास कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही द्विवचन में-निजेगिल्येते। बहुवचन में-निजेगिल्यन्ते।

लकारादेशविकल्पः--

(४) अचि विभाषा।२१।

प०वि०-अचि ७।१ विभाषा १।१।

अनु०-रः, लः, ग्र इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ग्रो रोऽचि विभाषा लः।

अर्थः-गॄ इत्येतस्य धातो रेफस्य स्थानेऽजादौ प्रत्यये परतो विकल्पेन लकारादेशो भवति।

उदा०-स निगिरति, निगिलति। निगरणम्, निगलनम्। निगारकः, निगालकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ग्रः) गॄ इस धातु के (रः) रेफ के स्थान में (अचि) अजादि प्रत्यय परे होने पर (विभाषा) विकल्प से (लः) लकारादेश होता है।*

*उदा०-**स निगिरति, निगिलति।** वह निगलता है। **निगरणम्, निगलनम्।** निगलना। **निगारकः, निगालकः।** निगलनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **निगिरति।** नि+गॄ+लट्। नि+गॄ+तिप्। नि+गॄ+श+ति। नि+गिर्+अ+ति। निगिरति।*

*यहां नि-उपसर्गपूर्वक **'गॄ निगरणे'** (तु०प०) धातु से **'वर्तमाने लट्'** (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है। **'तुदादिभ्यः शः'** (३।१।७७) से अजादि 'श' (अ) विकरण-प्रत्यय है। **'ॠत इद्धातोः'** (७।१।१००) से 'ॠ' के स्थान में इकारादेश और यह **'उरण् रपरः'** (१।१।५१) से रपर होता है। विकल्प-पक्ष में रेफ के स्थान में लकारादेश है-**निगिलति।***

*(२) **निगरणम्।** यहां नि-उपसर्गपूर्वक 'गॄ' धातु से **'ल्युट् च'** (३।३।११५) से भाव अर्थ में अजादि 'ल्युट्' (अन) प्रत्यय है। **'सार्वधातुकार्धधातुकयोः'** (७।३।८४) से 'गॄ' धातु को इगन्तलक्षण गुण और पूर्ववत् रपरत्व होता है। विकल्प-पक्ष में रेफ के स्थान में लकारादेश है-**निगलनम्।***

*(३) **निगारकः।** यहां नि-उपसर्गपूर्वक 'गॄ' धातु से **'ण्वुलतृचौ'** (३।१।१३३) से अजादि 'ण्वुल्' (अक) प्रत्यय है। **'अचो ञ्णिति'** (७।२।११५) से 'गॄ' धातु को अजन्तलक्षण वृद्धि और पूर्ववत् रपरत्व होता है। विकल्प पक्ष में रेफ के स्थान में लकारादेश है-**निगालकः।***

लकारादेशविकल्पः-

(५) परेश्च घाङ्कयोः।२२।

प०वि०-परेः ६।१ च अव्ययपदम्, घ-अङ्कयोः ७।२।

स०-घश्च अङ्कश्च तौ घाङ्कौ, तयोः-घाङ्कयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-रः, लः, विभाषेति चानुवर्तते।

अन्वयः-परेश्च रो घाङ्कयोर्विभाषा लः।

अर्थः-परि इत्येतस्य शब्दस्य च रेफस्य स्थाने घशब्देऽङ्कशब्दे च परतो विकल्पेन लकारादेशो भवति।

उदा०-(घः) परिघः, पलिघः। (अङ्कः) पर्यङ्कः, पल्यङ्कः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(परेः) परि इस शब्द के (रः) रेफ के स्थान में (च) भी (घाङ्कयोः) घ और अङ्क शब्द परे होने पर (विभाषा) विकल्प से (लः) लकारादेश होता है।*

*उदा०-(घ) **परिघः, पलिघः।** सब ओर मार करनेवाला शस्त्र (लोहे का मुद्गर)। (अङ्क) **पर्यङ्कः, पल्यङ्कः।** पलंग।*

*सिद्धि--(घ) **परिघः।** यहां परि-उपसर्गपूर्वक 'हन हिंसागत्योः' (तु०प०) धातु से 'परौ घः' (३।३।८४) से 'अप्' प्रत्यय है और 'हन्' के स्थान में 'घ' सर्वादेश है। इस सूत्र से 'घ' शब्द परे होने पर 'परि' शब्द के रेफ को विकल्प से लकारादेश होता है-**पलिघः।** ऐसे ही 'अङ्क' शब्द परे होने पर-**पर्यङ्कः, पल्यङ्कः।***

लोपादेशः--

(६) संयोगान्तस्य लोपः।२३।

प०वि०-संयोगान्तस्य ६।१ लोपः १।१।

स०- संयोगोऽन्ते यस्य तत् संयोगान्तम्, तस्य-संयोगान्तस्य (बहुव्रीहिः)।

अनु०-पदस्येत्यनुवर्तते।

अन्वयः-संयोगान्तस्य पदस्य लोपः।

अर्थः-संयोगान्तस्य पदस्य लोपो भवति।

उदा०-गोमान्। यवमान्। कृतवान्। हतवान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संयोगान्तस्य) संयोग जिसके अन्त में है उस (पदस्य) पद के अन्त्य अक्षर का (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-**गोमान्।** गौओंवाला। **यवमान्।** जौवाला। **कृतवान्।** उसने किया। **हतवान्।** उसने हत्या की (मार डाला)।*

*सिद्धि-**गोमान्।** गो+मतुप्। गो+मत्। गोमत्+सु। गोम नुम्त्+स्। गोमन्त्+स्। गोमान्त्+०। गोमान्०। गोमान्।*

*यहां 'गो' शब्द से 'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्' (५।२।९४) से 'मतुप्' प्रत्यय है। 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' (७।१।७०) से 'नुम्' आगम और '**सर्वनामस्थाने***

*चासम्बुद्धौ' (६।४।८) से नकारान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ होता है। 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०' (६।१।६७) से 'सु' का लोप और इस सूत्र से संयोगान्त तकार का लोप होता है। ऐसे ही 'यव' शब्द से-**यवमान्**। '**मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः**' (८।२।९) से यवादि शब्दों से परे 'मतुप्' को वकारादेश का प्रतिषेध है। 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'निष्ठा' (३।२।१०२) से 'क्तवतु' प्रत्यय में-**कृतवान्**। '**हन हिंसागत्योः**' (अदा०प०) धातु से-**हतवान्**। '**अनुदात्तोपदेश०**' (६।४।३७) से 'हन्' के अनुनासिक (न्) का लोप होता है।*

स-लोपः–

(७) रात् सस्य।२४।

प०वि०-रात् ५।१ सस्य ६।१।

अनु०-पदस्य, संयोगान्तस्य, लोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संयोगान्तस्य पदस्य रात् सस्य लोपः।

अर्थः-संयोगान्तस्य पदस्य रेफात् परस्य सकारस्य लोपो भवति।

उदा०-मातुः। पितुः। गोभिरक्षाः (ऋ० ९।१०७।९)। प्रत्यञ्चमत्साः (ऋ० १०।२८।४)।

'**संयोगान्तस्य लोपः**' (८।२।२३) इत्यनेनैव सिद्धे नियमार्थोऽयमारम्भः, रेफादुत्तरस्य सकारस्यैव लोपो भवति, नान्यस्य।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संयोगान्तस्य) संयोग जिसके अन्त में है उस (पदस्य) पद के (रात्) रेफ से परे (सस्य) सकार का (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-**मातुः**। माता से/का। **पितुः**। पिता से/का। **गोभिरक्षाः** (ऋ० ९।१०७।९)। अक्षाः=तू क्षरित हुआ। **प्रत्यञ्चमत्साः** (ऋ० १०।२८।४)। अत्साः=तू कुटिल चाल चला।*

*सिद्धि-**मातुः**। मातृ+ङसि। मातृ+अस्। मात् उर्+स्। मातुर्+०। मातुः।*

*यहां 'मातृ' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'ङसि' प्रत्यय है। '**ऋत उत्**' (६।१।१०७) से ऋ और अकार के स्थान में उकार एकादेश और इसे '**उरण् रपरः**' (१।१।५१) से रपरत्व होता है। इस सूत्र से इस रेफ से परवर्ती सकार का लोप होता है। '**खरवसानयोर्विसर्जनीयः**' (८।३।१५) से रेफ को अवसानलक्षण विसर्जनीय आदेश है। 'ङस्' (६।१) प्रत्यय में भी-**मातुः**। 'पितृ' शब्द से-**पितुः**।*

*(२) **अक्षाः**। यहां '**क्षर सञ्चलने**' (तु०प०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। '**च्लेः सिच्**' (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश है।*

'अतो ल्रान्तस्य' (७।२।२) से 'क्षर्' को रेफान्तलक्षण वृद्धि होती है। 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०' (६।१।६७) से अपृक्त 'त्' (तिप्) का लोप और इस सूत्र से रेफ से परवर्ती 'सिच्' के सकार का लोप होता है। रेफ को पूर्ववत् विसर्जनीय आदेश है। ऐसे ही 'त्सर छद्मगतौ' (भ्वा०प०) धातु से-अत्सा:।

स-लोपः–

(८) धि च।२५।

प०वि०-धि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-लोपः, सस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-धि च सस्य लोपः।

अर्थः-धकारादौ प्रत्यये परतश्च सकारस्य लोपो भवति।

उदा०-यूयम् अलविध्वम्, अलविढ्वम्। यूयम् अपविध्वम्, अपविढ्वम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(धि) धकारादि प्रत्यय परे होने पर (च) भी (सस्य) सकार का (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-**यूयम् अलविध्वम्, अलविढ्वम्।** तुम सब ने छेदन किया, काटा। **यूयम् अपविध्वम्, अपविढ्वम्।** तुम सब ने पवित्र किया।*

सिद्धि-अलविध्वम्। *लू+लुङ्। अट्+लू+च्लि+ल्। अ+लू+सिच्+ध्वम्। अ+लू+इट्+स्+ध्वम्। अ+लो+इ+०+ध्वम्। अ+लव् इ+ध्वम्। अलविध्वम्।*

*यहां 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में ध्वम् आदेश और 'च्ले: **सिच्**' (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश है। **'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'** (७।२।३५) से 'इट्' आगम होता है। इस सूत्र से धकारादि 'ध्वम्' प्रत्यय परे होने पर 'सिच्' के सकार का लोप होता है। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से इगन्तलक्षण गुण और 'एचोऽयवायावः' (६।१।७७) से 'अव्' आदेश होता है। 'विभाषेटः' (८।३।७९) से विकल्प-पक्ष में 'ध्वम्' को मूर्धन्य होकर-**अलविढ्वम्।** 'पूञ् पवने' (क्र्या०उ०) धातु से-अपविध्वम्, अपविढ्वम्।*

स-लोपः–

(९) झलो झलि।२६।

प०वि०-झलः ५।१ झलि ७।१।

अनु०-लोपः, सस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-झलः सस्य झलि लोपः।

अर्थः-झलः परस्य सकारस्य झलादौ प्रत्यये परतो लोपो भवति।

उदा०-सोऽभित्त। त्वम् अभित्थाः। सोऽछित्त। त्वम् अच्छित्थाः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(झलः) झल् वर्ण से परवर्ती (सस्य) सकार का (झलि) झलादि प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-**सोऽभित्त।** उसने विदारण किया, फाड़ा। **त्वम् अभित्थाः।** तूने विदारण किया। **सोऽछित्त।** उसने छेदन किया, काटा। **त्वम् अच्छित्थाः।** तूने छेदन किया।*

सिद्धि-अभित्त। *भिद्+लुङ्। अट्+भिद+च्लि+ल्। अ+भिद्+सिच्+त। अ+भिद्+०+त। अभित्त।*

*यहां **'भिदिर् विदारणे'** (रुधा०उ०) धातु से **'लुङ्'** (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। **'तिप्तस्झि०'** (३।४।७८) से लकार के स्थान में आत्मनेपद में 'त' आदेश और **'च्लेः सिच्'** (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश है। **इस** सूत्र से झल् वर्ण (द्) से परवर्ती 'सिच्' के सकार का झलादि 'त' प्रत्यय परे होने पर लोप होता है। 'थास्' प्रत्यय में-**अभित्थाः।** **'छिदिर् द्वैधीकरणे'** (रुधा०उ०) धातु से-**अच्छित्त, अच्छित्थाः।***

स-लोपः--

(१०) ह्रस्वादङ्गात्।२७।

प०वि०-ह्रस्वात् ५।१ अङ्गात् ५।१।

अनु०-लोपः, सस्य, झलीति चानुवर्तते।

अन्वयः-ह्रस्वादङ्गात् सस्य झलि लोपः।

अर्थः-ह्रस्वान्ताद् अङ्गात् परस्य सकारस्य झलादौ प्रत्यये परतो लोपो भवति।

उदा०-सोऽकृत। त्वम् अकृथाः। सोऽहृत। त्वम् अहृथाः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ह्रस्वात्) ह्रस्व वर्ण जिसके अन्त में है उस (अङ्गात्) अङ्ग से परवर्ती (सस्य) सकार का (झलि) झलादि प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-**सोऽकृत।** उसने किया। **त्वम् अकृथाः।** तूने किया। **सोऽहृत।** उसने हरण किया। **त्वम् अहृथाः।** तूने हरण किया।*

*सिद्धि-**अकृत**। कृ+लुङ्। अट्+कृ+च्लि+त्। अ+कृ+सिच्+त। अ+कृ+स्+त। अ+कृ+०+त। अकृत।*

यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से लकार के स्थान में आत्मनेपद में 'त' आदेश और 'च्लेः सिच्' (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश है। इस सूत्र से ह्रस्वान्त अङ्ग 'कृ' से परवर्ती सकार का झलादि 'त' प्रत्यय परे होने पर लोप होता है। 'थास्' प्रत्यय में-अकृथाः। 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से-अहृत, अहृथाः।

स-लोपः-

(११) इट ईटि।२८।

प०वि०-इटः ५।१ ईटि ७।१।

अनु०-लोपः, सस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-इटः सस्य ईटि लोपः।

अर्थः-इटः परस्य सकारस्य इडादौ प्रत्यये परतो लोपो भवति।

उदा०-अदेवीत्। असेवीत्। अकोषीत्। अमोषीत्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(इटः) इट् से परवर्ती (सस्य) सकार का (ईटि) इडादि प्रत्यय परे होने पर (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-**अदेवीत्**। उसने क्रीडा आदि की। **असेवीत्**। उसने सिलाई की। **अकोषीत्**। उसने बाहर निकाला। **अमोषीत्**। उसने चोरी की।*

*सिद्धि-(१) **अदेवीत्**। यहां 'दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमद-स्वप्नकान्तिगतिषु' (दि०प०) धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है। 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। 'च्लेः सिच्' (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश, 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (७।२।३५) से इसे इडागम और 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' (७।३।९६) से अपृक्त त् (तिप्) प्रत्यय को ईट् आगम होता है। इस सूत्र से 'इट्' से परवर्ती 'सिच्' के सकार का ईडादि तिप् प्रत्यय परे होने पर लोप होता है।*

*(२) **असेवीत्**। 'षिवु तन्तुसन्ताने' (दि०प०)।*

*(३) **अकोषीत्**। 'कुष निष्कर्षे' (क्रया०प०)।*

*(४) **अमोषीत्**। 'मुष स्तेये' (क्रया०प०)।*

यहां 'वदव्रजहलन्तस्याचः' (७।२।३) सूत्र से प्राप्त वृद्धि का 'नेटि' (७।२।४) से प्रतिषेध होने से 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से लघूपधलक्षण गुण होता है।

सकार-ककारलोपः--

(१२) स्कोः संयोगाद्योरन्ते च।२६।

प०वि०-स्कोः ६।२ संयोगाद्योः ६।२ अन्ते ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-सश्च कश्च तौ स्कौ, तयोः-स्कोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। संयोगस्य आदी इति संयोगादी, तयोः-संयोगाद्योः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, लोपः, झलीति चानुवर्तते।

अन्वयः-पदस्याऽन्ते झलि च संयोगाद्योः स्कोर्लोपः।

अर्थः-पदस्याऽन्ते झलादौ प्रत्यये परतश्च वर्तमानयोः संयोगाद्योः सकारककारयोर्लोपो भवति।

उदा०-**(पदान्ते)** संयोगादिसकारः-साधुलक्। **(झलि)** संयोगादिसकारः-लग्नः, लग्नवान्। **(पदान्ते)** संयोगादिककारः-काष्टतट्। **(झलि)** संयोगादिककारः-तष्टः, तष्टवान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पदस्य) पद के (अन्ते) अन्त में (च) और (झलि) झलादि प्रत्यय परे होने पर विद्यमान (संयोगाद्योः) संयोग के आदिभूत (स्कोः) सकार और ककार वर्ण का (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-(पदान्त) **संयोगादि सकार-साधुलक्।** यथोचित वीड़ा (लज्जा) करनेवाला। **(झलि)** संयोगादि सकार-लग्नः, लग्नवान्। उसने लज्जा की। **(पदान्त) संयोगादि ककार-काष्टतट्।** यथोचित छीलनेवाला तक्षक। (झलि) **संयोगादि ककार-तष्टः, तष्टवान्।** उसने छीला।*

*सिद्धि-(१) **साधुलुक्।** साधु+लस्ज्+क्विप्। साधु+लस्ज+वि। साधु+लस्ज्+०। साधुलस्ज्+सु। साधुलस्ज्+०। साधु+ल०ज्। साधुलग्। साधुलक्।*

*यहां साधु-उपपद **'ओलस्जी व्रीडायाम्'** (तु०आ०) धातु से **'क्विप् च'** (३।२।७६) से 'क्विप्' प्रत्यय है। **'वेरपृक्तस्य'** (६।१।६६) से 'क्विप्' का सर्वहारी लोप होता है। इस सूत्र से पदान्त में संयोग के आदि में विद्यमान 'लस्ज्' के सकार का लोप होता है। **'चोः कुः'** (७।२।३०) से जकार को कवर्ग गकार और **'वाऽवसाने'** (८।४।५६) से गकार को चर् ककार होता है।*

(२) लग्नः। लस्ज्+क्त। लस्ज्+त। ल०ज्+त। लज्+न। लग्+न। लग्नः।

*यहां **'ओलस्जी व्रीडायाम्'** (तु०आ०) धातु से 'निष्ठा' (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से झलादि 'त' प्रत्यय परे होने पर 'लस्ज्' के संयोगादि सकार का लोप*

*होता है। 'ओदितश्च' (८।२।४५) से निष्ठा-तकार को नकार और 'चो: कु:' (८।२।३०) से जकार को कवर्ग गकार होता है 'क्तवतु' प्रत्यय में-**लग्नवान्।***

*(३) **काष्ठतट्।** काष्ठ+तक्ष्+क्विप्। काष्ठ+तक्ष्+वि। काष्ठ+तक्ष्+०। काष्ठ+तक्ष्+सु। काष्ठ+तक्ष्+०। काष्ठ+त०ष्। काष्ठ+त ड्। काष्ठतट्।*

*यहां काष्ठ-उपपद '**तक्षू तनूकरणे**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्विप्' प्रत्यय और इसका सर्वहारी लोप होता है। इस सूत्र से पदान्त में संयोग के आदि में विद्यमान 'तक्ष्' के ककार का लोप होता है। 'झलां जशोऽन्ते' (७।२।३९) से षकार को जश् डकार और 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से डकार को चर् टकार होता है।*

*(४) **तष्ट:।** तक्ष्+क्त। तक्ष्+त। त०ष्+ट। तष्ट+सु। तष्ट:।*

*यहां '**तक्षू तनूकरणे**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'तक्ष्' के संयोगादि ककार का झलादि 'त' प्रत्यय परे होने पर लोप होता है। '**ष्टुना ष्टु:**' (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकार होता है। क्तवतु प्रत्यय में-**तष्टवान्।***

कवर्गादेश:--

(१३) चो: कु:।३०।

प०वि०-चो: ६।१ कु: १।१।

अनु०-पदस्य, झलि, अन्ते इति चानुवर्तते।

अन्वय:-चो: पदस्यान्ते झलि च कु:।

अर्थ:-चवर्गस्य स्थाने पदस्यान्ते झलादौ प्रत्यये परतश्च कवर्गादेशो भवति।

उदा०-(पदान्ते) ओदनपक्। वाक्। **(झलि)** पक्ता, पक्तुम्, पक्तव्यम्। वक्ता, वक्तुम्, वक्तव्यम्।

***आर्यभाषा:** अर्थ-(चो:) चवर्ग के स्थान में (पदस्य) पद के (अन्ते) अन्त में और (झलि) झलादि प्रत्यय परे होने पर (कु:) कवर्गादेश होता है।*

*उदा०-**(पदान्त) ओदनपक्।** चावल पकानेवाला। **वाक्।** वाणी। **(झल्) पक्ता।** पकानेवाला। **पक्तुम्।** पकाने के लिये **पक्तव्यम्।** पकाना चाहिये। **वक्ता।** बोलनेवाला। **वक्तुम्।** बोलने के लिये। **वक्तव्यम्।** बोलना चाहिये।*

*सिद्धि-(१) **ओदनपक्।** यहां ओदन-उपपद '**डुपचष् पाके**' (भ्वा०उ०) धातु से '**क्विप्** च' (३।२।७६) से 'क्विप्' प्रत्यय है। '**वेरपृक्तस्य**' (६।१।६६) से 'क्विप्' का सर्वहारी लोप होता है। इस सूत्र से पदान्त में विद्यमान 'पच्' के चकार को ककार आदेश होता है।*

*(२) **वाक्**। यहां 'वच परिभाषणे' (अदा०प०) धातु से '**क्विब् वचिप्रच्छिश्रिस्रुद्रुप्रुज्वां दीर्घोऽसम्प्रसारणं च**' (उणा० २।५८) से 'क्विप्' प्रत्यय, दीर्घ और '**वचिस्वपियजादीनां किति**' (६।१।१५) से प्राप्त सम्प्रसारण का प्रतिषेध है। इस सूत्र से पदान्त में विद्यमान 'वच्' के चकार को ककार आदेश होता है।*

*(३) **पक्ता**। यहां 'पच्' धातु से '**ण्वुल्तृचौ**' (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से झलादि 'तृच्' प्रत्यय परे होने पर 'पच्' के चकार को ककार आदेश होता है। 'वच परिभाषणे' (अदा०प०) धातु से-**वक्ता**।*

*(४) **पक्तुम्**। यहां 'पच्' धातु से '**तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्**' (३।३।१०) से 'तुमुन्' प्रत्यय है। सूत्रकार्य पूर्ववत् है। 'वच्' धातु से-**वक्तुम्**।*

*(५) **पक्तव्यम्**। यहां 'पच्' धातु से 'तव्यत्तव्यानीयरः' (३।१।९६) से '**तव्यत्**' प्रत्यय है। इस सूत्र से झलादि 'तृच्' प्रत्यय परे होने पर 'पच्' के चकार को ककार आदेश होता है। सूत्रकार्य पूर्ववत् है। 'वच्' धातु से-**वक्तव्यम्**।*

ढ-आदेशः—

(१४) हो ढः।३१।

प०वि०-हः ६।१ ढः १।१।

अनु०-पदस्य, झलि, अन्ते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-हः पदस्यान्ते झलि च ढः।

अर्थः-हकारस्य स्थाने पदस्यान्ते झलादौ च प्रत्यये परतो ढकारादेशो भवति।

उदा०-(पदान्ते) जलाषाट्। प्रष्ठवाट्। दित्यवाट्। **(झलि)** सोढा, सोढुम्, सोढव्यम्। वोढा, वोढुम्, वोढव्यम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(हः) हकार के स्थान में (पदस्य) पद के (अन्ते) अन्त में और (झलि) झलादि प्रत्यय परे होने पर (ढः) ढकारादेश होता है।*

*उदा०-(पदान्त) जलाषाट्। जल=सुख-शान्ति का अनुभव करनेवाला। **प्रष्ठवाट्**। हल में जोतने योग्य बैल। **दित्यवाट्**। गौ। (झलि) **सोढा**। सहन करनेवाला। **सोढुम्**। सहन करने के लिये। **सोढव्यम्**। सहन करना चाहिए। **वोढा**। वहन करनेवाला। **वोढुम्**। वहन करने के लिये। **वोढव्यम्**। वहन करना चाहिये।*

*सिद्धि-(१) **जलाषाट्**। यहां जल-उपपद '**षह मर्षणे**' (भ्वा०आ०) धातु से '**छन्दसि सहः**' (३।२।६३) से 'ण्वि' प्रत्यय है। 'वेरपृक्तस्य' (६।१।६६) से 'ण्वि' का सर्वहारी लोप होता है। इस सूत्र से पदान्त में विद्यमान 'सह्' के हकार को ढकारादेश*

होता है। 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से ढकार को जश् डकार और 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से डकार को चर् टकार होता है। 'अत उपधायाः' (७।२।११६) से 'सह्' को उपधावृद्धि 'सहेः साडः सः' (८।३।५६) से षत्व और 'अन्येषामपि दृश्यते' (६।३।१३५) से दीर्घ होता है।

(२) प्रष्ठवाट्। यहां प्रष्ठ-उपपद 'वह प्रापणे' (भ्वा०प०) धातु से 'वहश्च' ३।२।६४) से 'ण्वि' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही दित्य-उपपद 'वह्' धातु से-दित्यवाट्।

(३) सोढा। यहां 'षह मर्षणे' (भ्वा०आ०) धातु से 'ण्वुल्तृचौ' (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से झलादि 'तृच्' प्रत्यय परे होने पर 'सह्' के हकार को ढकारादेश होता है। 'झषस्तथोर्धोऽधः' (८।२।४०) से तकार को धकार और 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४१) से धकार को टवर्ग ढकार और 'ढो ढे लोपः' (८।३।१३) से पूर्ववर्ती ढकार का लोप हो जाता है। 'सहिवहोरोदवर्णस्य' (६।३।११०) से 'सह' के अवर्ण को ओकारादेश होता है। 'वह प्रापणे' (भ्वा०प०) धातु से-वोढा।

(४) सोढुम्। यहां 'सह्' धातु से पूर्ववत् 'तुमुन्' प्रत्यय है। 'वह्' धातु से-वोढुम्। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(५) सोढव्यम्। यहां 'सह्' धातु से पूर्ववत् 'तव्यत्' प्रत्यय है। 'वह्' धातु से-वोढव्यम्। शेष कार्य पूर्ववत् है।

घ-आदेशः–

(१५) दादेर्धातोर्घः।३२।

प०वि०–दादेः ६।१ धातोः ६।१ घः १।१।

स०–द आदिर्यस्य स दादिः, तस्य-दादेः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–पदस्य, झलि, अन्ते, ह इति चानुवर्तते।

अन्वयः–दादेर्धातोर्हः पदस्यान्ते झलि च घः।

अर्थः–दकारादेर्धातोर्हकारस्य स्थाने पदस्यान्ते झलादौ च प्रत्यये परतो घकारादेशो भवति।

उदा०-(पदान्ते) दह्–काष्ठधक्। दुह्–गोधुक्। (झलि) दह्–दग्धा, दग्धुम्, दग्धव्यम्। दुह्–दोग्धा, दोग्धुम्, दोग्धव्यम्।

आर्यभाषाः अर्थ-(दादेः) दकार जिसके आदि में है उस (धातोः) धातु के (हः) हकार के स्थान में (पदस्य) पद के (अन्ते) अन्त में और (झलि) झलादि प्रत्यय परे होने पर (घः) घकारादेश होता है।

उदा०-(पदान्त) दह्-काष्ठधक्। लक्कड़ जलानेवाला। दुह्-गोधुक्। गौ को दुहनेवाला। (झल्) दह्-दग्धा। जलानेवाला। दग्धुम्। जलाने के लिये। दग्धव्यम्। जलाना चाहिये। दुह्-दोग्धा। दुहनेवाला। दोग्धुम्। दुहने के लिये। दोग्धव्यम्। दुहना चाहिये।

सिद्धि-(१) काष्ठधक्। यहां काष्ठ-उपपद 'दह भस्मीकरणे' (भ्वा०प०) धातु से 'क्विप् च' (३।२।७६) से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'वेरपृक्तस्य' (६।१।६६) से 'क्विप्' का सर्वहारी लोप होता है। इस सूत्र से पदान्त में विद्यमान दकारादि 'दह्' धातु के हकार को घकारादेश होता है। 'एकाचो बशो भष्०' (८।२।३७) से 'दह्' के दकार को भष् धकारादेश होता है। 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से घकार को जश् गकार और 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से गकार को चर् ककार होता है।

(२) गोधुक्। यहां गो-उपपद दकारादि 'दुह प्रपूरणे' (अदा०प०) धातु से पूर्ववत्।

(३) दग्धा। यहां 'दह भस्मीकरणे' (भ्वा०प०) धातु से 'ण्वुल्तृचौ' (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है इस सूत्र से झलादि 'तृच्' प्रत्यय परे होने पर दकारादि 'दह्' धातु के हकार को घकारादेश होता है। 'झषस्तथोर्धोऽधः' (८।२।४०) से तकार को धकारादेश और 'झलां जश् झशि' (८।४।५२) से घकार को जश् गकार होता है। 'दुह प्रपूरणे' (अदा०प०) धातु से-दोग्धा।

(४) दग्धुम्। यहां 'दह्' धातु से पूर्ववत् 'तुमुन्' प्रत्यय है। 'दुह्' धातु से-दोग्धुम्। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(५) दग्धवान्। यहां 'दह्' धातु से पूर्ववत् 'तव्यत्' प्रत्यय है। 'दुह्' धातु से-दोग्धव्यम्। शेष कार्य पूर्ववत् है।

घकारादेश-विकल्पः-

(१६) वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम्।३३।

प०वि०-वा अव्ययपदम्, द्रुह-मुह-ष्णुह-ष्णिहाम् ६।३।

स०-द्रुहश्च मुहश्च ष्णुहश्च ष्णिह् च ते द्रुहमुहष्णुहष्णिहः, तेषाम्-द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-पदस्य, झलि, हः, धातोः, घ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-द्रुहमुहष्णुहष्णिहां धातूनां हः पदस्यान्ते झलि च वा घः।

अर्थः-द्रुहमुहष्णुहष्णिहां धातूनां हकारस्य स्थाने पदस्यान्ते झलादौ प्रत्यये परतश्च विकल्पेन घकारादेशो भवति, पक्षे च यथाप्राप्तं ढकारादेशो भवति।

उदा०-(पदान्ते) द्रुह्-मित्रध्रुक्, मित्रद्रुट्। (झलि) द्रोग्धा, द्रोढा। (पदान्ते) मुह्-उन्मुक्, उन्मुट्। (झलि) उन्मोग्धा, उन्मोढा। (पदान्ते) ष्णुह्-उत्स्नुक्, उत्स्नुट्। (झलि) उत्स्नोग्धा, उत्स्नोढा। (पदान्ते) ष्णिह्-स्निक्, स्निट्। (झलि) स्नेग्धा, स्नेढा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(द्रुह०) द्रुह, मुह, ष्णुह, ष्णिह इन (धातूनाम्) धातुओं के (हः) हकार के स्थान में (पदस्य) पद के (अन्ते) अन्त में और (झलि) झलादि प्रत्यय परे होने पर (वा) विकल्प से (घः) घकारादेश होता है और पक्ष में यथाप्राप्त ढकारादेश होता है।*

*उदा०-(पदान्त) द्रुह्-**मित्रध्रुक्, मित्रद्रुट्।** मित्र से द्रोह करनेवाला। द्रोह= अभिजिघांसा (मारने की इच्छा)। (झल्) **द्रोग्धा, द्रोढा।** द्रोह करनेवाला। (पदान्त) मुह्-**उन्मुक्, उन्मुट्।** उन्मुग्ध करनेवाला। (झल्) **उन्मोग्धा, उन्मोढा।** उन्मुग्ध करनेवाला। (पदान्त) ष्णुह्-**उत्स्नुक्, उत्स्नुट्।** वमन करनेवाला। (झल्) उत्-**उत्स्नोग्धा, उत्स्नोढा।** वमन करनेवाला। (पदान्त) ष्णिह्-**स्निक्, स्निट्।** प्रीति करनेवाला। (झल्) **स्नेग्धा, स्नेढा।** प्रीति करनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **मित्रध्रुक्।** यहां मित्र-उपपद **'द्रुह अभिजिघांसायाम्'** (दि०प०) धातु से **'क्विप् च'** (३।२।७६) से 'क्विप्' प्रत्यय है। **'वेरपृक्तस्य'** (६।१।६६) से 'क्विप्' का सर्वहारी लोप होता है। इस सूत्र से पदान्त में विद्यमान 'द्रुह्' धातु के हकार को घकारादेश होता है। **'झलां जशोऽन्ते'** (८।२।३९) से घकार को जश् गकार और **'वाऽवसाने'** (८।४।५६) से गकार को चर् ककार होता है। **'एकाचो बशो भष्०'** (८।२।३७) से 'द्रुह्' के दकार को धकारादेश होता है। विकल्प-पक्ष में-**मित्रद्रुट्।** यहां **'हो ढः'** (८।२।३१) से हकर को ढकारादेश और पूर्ववत् जश्त्व डकार और चर्त्व टकार होता है।*

*(२) **द्रोग्धा।** यहां 'द्रुह्' धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से झलादि 'तृच्' प्रत्यय परे होने पर 'द्रुह्' के हकार को घकारादेश होता है। **'झषस्तथोर्धोऽधः'** (८।२।४) से तकार को धकार और **'खरि च'** (८।४।५५) से घकार को गकारादेश होता है। विकल्प-पक्ष में 'द्रुह्' धातु के हकार को 'हो ढः' (८।२।३१) से ढकारादेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **उन्मुक्** आदि उत्-उपसर्गपूर्वक **'मुह वैचित्ये'** (दि०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(४) **उत्स्नुक्** आदि उत्-उपसर्गपूर्वक **'ष्णुह उद्गिरणे'** (दि०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(५) **स्निक्** आदि **'ष्णिह प्रीतौ'** (दि०प०) धातु से पूर्ववत्।*

ध-आदेशः–

(१७) नहो धः।३४।

प०वि०–नहः ६।१ धः १।१

अनु०–पदस्य, झलि, अन्ते, हः, धातोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–नहो धातोर्हः पदस्यान्ते झलि च धः।

अर्थः–नहो धातोर्हकारस्य स्थाने पदस्यान्ते झलादौ प्रत्यये परतश्च धकारादेशो भवति।

उदा०–**(पदान्ते)** उपानत्, परीणत्। **(झलि)** नद्धम्, नद्धुम्, नद्धव्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ–(नहः) नह् इस (धातोः) धातु के (हः) हकार के स्थान में (पदस्य) पद के अन्त में और (झलि) झलादि प्रत्यय परे होने पर (धः) धकारादेश होता है।*

*उदा०–(पदान्त) उपानत्। जूता। **परीणत्**। परिबन्धक। (झल्) **नद्धम्**। बंधा हुआ। **नद्धुम्**। बांधने के लिये। **नद्धव्यम्**। बांधना चाहिये।*

*सिद्धि–(१) **उपानत्**। यहां उप-उपसर्गपूर्वक **'णह बन्धने'** (दि०उ०) धातु से वा०- **'सम्पदादिभ्यः क्विप्'** (३।३।९४) से 'क्विप्' प्रत्यय है। **'वेरपृक्तस्य'** (६।१।६६) से क्विप् का सर्वहारी लोप होता है। इस सूत्र से पद के अन्त में विद्यमान 'नह्' के हकार को धकारादेश होता है। **'झलां जशोऽन्ते'** (८।२।३८) से धकार को जश् दकार और **'वाऽवसाने'** (८।४।५५) से दकार को चर् तकार होता है। **'नहिवृतिवृषि०'** (६।३।११६) से दीर्घ होता है।*

*(२) **परीणत्**। यहां परि-उपसर्गपूर्वक 'नह्' धातु से **'अन्येभ्योऽपि दृश्यते'** (३।२।७५) से 'क्विप्' प्रत्यय है। **'उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य'** (८।४।१४) से णत्व होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **नद्धम्**। यहां 'नह्' धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से **'क्त'** प्रत्यय है। इस सूत्र से झलादि 'क्त' प्रत्यय परे होने पर 'नह्' के हकार को धकारादेश होता है। **'झषस्तथोर्धोऽधः'** (८।२।४०) से तकार को धकार और **'झलां जश् झशि'** (८।४।५३) से पूर्ववर्ती धकार को जश् दकार होता है।*

*(४) **नद्धुम्**। यहां 'नह्' धातु से पूर्ववत् 'तुमुन्' प्रत्यय है।*

*(५) **नद्धव्यम्**। यहां 'नह्' धातु से पूर्ववत् 'तव्यत्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

थ-आदेशः–

(१८) आहस्थः ।३५ ।

प०वि०-आहः ६ ।१ थः १ ।१ ।

अनु०-झलि, हः, धातोरिति चानुवर्तते ।

अन्वयः-आहो धातोर्हो झलि थः ।

अर्थः-आहोर्धातोर्हकारस्य स्थाने झलादौ प्रत्यये परतस्थकारादेशो भवति ।

उदा०-त्वं किमात्थ ? त्वमिदमात्थ ।

आर्यभाषाः अर्थ-*(आहः) आह् इस (धातोः) धातु के (हः) हकार के स्थान में (झलि) झलादि प्रत्यय परे होने पर (थः) थकारादेश होता है।*

*उदा०-**त्वं किमात्थ** ? तू क्या कहता है। **त्वमिदमात्थ**। तू यह कहता है।*

*सिद्धि-**आत्थ**। ब्रू+लट्। ब्रू+सिप्। ब्रू+थल्। आह्+थ। आथ्+थ। आत्+थ। आत्थ।*

*यहां 'ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि' (अदा०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है और लकार के स्थान में 'सिप्' आदेश तथा '**ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः**' (३ ।४ ।८४) से 'ब्रू' के स्थान में 'आह' आदेश होता है। 'सिप्' के स्थान में 'थल्' आदेश है। इस सूत्र से 'आह्' के हकार के स्थान में झलादि 'थल्' प्रत्यय परे होने पर थकारादेश होता है। '**खरि च**' (८ ।४ ।५५) से थकार को चर् तकार होता है।*

ष-आदेशः–

(१९) व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः ।३६ ।

प०वि०- व्रश्च-भ्रस्ज-सृज-मृज-यज-राज-भ्राज-छ-शाम् ६ ।३ षः १ ।१ ।

स०-व्रश्चश्च भ्रस्जश्च सृजश्च मृजश्च यजश्च राजश्च भ्राजश्च छश्च श् च ते-व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशः, तेषाम्-व्रश्चभ्रस्ज-सृजमृजयजराजभ्राजच्छशाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) ।

अनु०-पदस्य, झलि, अन्ते, धातोरिति चानुवर्तते ।

अन्वयः- व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां पदस्यान्ते झलि च षः ।

अर्थः-व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजां छकारान्तानां शकारान्तानां च धातूनां पदस्यान्ते झलादौ प्रत्यये च परतः षकारादेशो भवति।

उदाहरणम्—

	धातुः	पदान्ते	झलि	भाषार्थः
१.	व्रश्च्	मूलवृट्	—	मूल को काटनेवाला।
			व्रष्टा	काटनेवाला।
			व्रष्टुम्	काटने के लिये।
			व्रष्टव्यम्	काटना चाहिये।
२.	भ्रस्ज्	धानाभृट्	—	धान को भूननेवाला।
			भ्रष्टा	भूननेवाला।
			भ्रष्टुम्	भूनने के लिये।
			भ्रष्टव्यम्	भूनना चाहिये।
३.	सृज्	रज्जुसृट्	—	रस्सी बनानेवाला।
			स्रष्टा	बनानेवाला।
			स्रष्टुम्	बनाने के लिये।
			स्रष्टव्यम्	बनाना चाहिये।
४.	मृज्	कंसपरिमृट्	—	कांसा का परिमार्जन करनेवाला।
			मार्ष्टा	शुद्धि करनेवाला।
			मार्ष्टुम्	शुद्धि करने के लिये।
			मार्ष्टव्यम्	शुद्धि करनी चाहिये।
५.	यज्	उपयट्	—	देवपूजा, संगतिकरण, दान करनेवाला।
			यष्टा	यज्ञ करनेवाला।
			यष्टुम्	यज्ञ करने के लिये।
			यष्टव्यम्	यज्ञ करना चाहिये।
६.	राज्	सम्राट्	—	राजा।
		स्वराट्	—	स्वप्रकाशस्वरूप (ईश्वर)।
		विराट्	—	विविध जगत् को प्रकाशित करनेवाला (ईश्वर)

धातुः	पदान्ते	झलि	भाषार्थः
७. भ्राज्	विभ्राट्	—	विविध जगत् को प्रकाशित करनेवाला (ईश्वर)
{छकारान्त}			
८. प्रछ्	शब्दप्राट्	—	शब्द पूछनेवाला।
		प्रष्टा	पूछनेवाला।
		प्रष्टुम्	पूछने के लिये।
		प्रष्टव्यम्	पूछना चाहिये।
{शकारान्त}			
९. लिश्	लिट्	—	अल्पभावी।
		लेष्टा	अल्प होनेवाला।
		लेष्टुम्	अल्प होने के लिये।
		लेष्टव्यम्	अल्प होना चाहिये।
१०. विश्	विट्	—	देशदेशान्तर में प्रवेश करनेवाला (वैश्य)
		वेष्टा	प्रवेश करनेवाला।
		वेष्टुम्	प्रवेश करने के लिये।
		वेष्टव्यम्	प्रवेश करना चाहिये।

आर्यभाषाः *अर्थ-(व्रश्च०) व्रश्च, भ्रस्ज, सृज, मृज, यज, राज, भ्राज, छकारान्त और शकारान्त (धातूनाम्) धातुओं को (पदस्य) पद के (अन्ते) अन्त में और (झलि) झलादि प्रत्यय परे होने पर (षः) षकारान्त होता है।*

उदा०-उदाहरण और भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

*सिद्धि-(१) मूलवृट्। यहां मूल-उपपद 'ओव्रश्चू छेदने' (तु०प०) धातु से '**क्विप् च**' (२।२।७६) से 'क्विप्' प्रत्यय है। '**वेरपृक्तस्य**' (६।१।६६) से 'क्विप्' का सर्वहारी लोप होता है। इस सूत्र से पदान्त में विद्यमान 'व्रश्च्' के चकार को षकारादेश है। '**स्कोः संयोगाद्योरन्ते च**' (८।२।२९) से 'व्रश्च्' संयोगादि सकार (श्) का लोप होता है। '**झलां जशोऽन्ते**' (८।२।३९) से षकार को जश् डकार और '**वाऽवसाने**' (८।४।५६) से डकार को चर् टकार होता है। ऐसे ही '**धानाभृट्**' आदि।*

*(२) व्रष्टा। यहां 'व्रश्च्' धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय और '**ष्टुना ष्टुः**' (८।४।४१) से तकार को टकारादेश है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(३) व्रष्टुम्। यहां 'व्रश्च्' धातु से पूर्ववत् 'तुमुन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(४) व्रष्टव्यम्। यहां 'व्रश्च्' धातु से पूर्ववत् 'तव्यत्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत्।

(५) धानाभृट् आदि **'भ्रस्ज पाके'** (तु०प०) धातु से पूर्ववत्।

(६) रज्जसृट् आदि 'सृज विसर्गे' (तु०प०) धातु से पूर्ववत्।

(७) कंसपरिमृट्। कंस और परि-उपसर्गपूर्वक 'मृजूष् शुद्धौ' (अदा०प०) धातु से पूर्ववत्। 'मार्ष्टा' आदि में 'मृजेर्वृद्धिः' (७।२।११४) से 'मृज्' को वृद्धि होती है।

(८) उपयट् आदि उप-उपसर्गपूर्वक यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु' (भ्वा०उ०) धातु से पूर्ववत्।

(९) सम्राट्। सम्-उपसर्गपूर्वक 'राजृ दीप्तौ' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत्। 'मो राजि समः क्वौ' (८।३।२५) से 'सम्' के मकार को मकारादेश होता है। 'मोऽनुस्वारः' (८।३।२३) से अनुस्वारादेश का अपवाद है। ऐसे ही-स्वराट्, विराट्।

(१०) विभ्राट्। यहां वि-उपसर्गपूर्वक 'भ्राजृ दीप्तौ' (भ्वा०आ०) धातु से 'भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपॄजुग्रावस्तुवः क्विप्' (३।२।१७७) से तच्छील आदि अर्थों में 'क्विप्' प्रत्यय है।

राज और भ्राज धातु का सूत्रपाठ में पदान्तार्थ ग्रहण किया गया है, अतः झलादि प्रत्यय का उदाहरण नहीं है।

(११) शब्दप्राट्। यहां शब्द-उपपद 'प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्' (भ्वा०प) छकारान्त धातु से वा०-'क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणं च' (३।२।७८) से 'क्विप्' प्रत्यय, दीर्घ और सम्प्रसारण का अभाव है। 'ग्रहिज्यावयि०' (६।१।१६) से सम्प्रसारण प्राप्त था। 'प्रष्टा' आदि में पूर्ववत् 'तृच्' आदि प्रत्यय हैं।

(१२) लिट्। 'लिश अल्पीभावे' (दि०आ०) शकारान्त धातु से 'अन्येभ्योऽपि दृश्यते' (३।२।१७८) से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'लेष्टा' आदि में पूर्ववत् 'तृच्' आदि प्रत्यय हैं।

(१४) विट्। यहां 'विश प्रवेशने' (तु०प०) शकारान्त धातु से पूर्ववत् (३।२।१७८) 'क्विप्' प्रत्यय है। 'वेष्टा' आदि में पूर्ववत् 'तृच्' आदि प्रत्यय हैं।

भष्-आदेशः–

(२०) एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः।३७

प०वि०– एकाचः ६।१ बशः ६।१ भष् १।१ झषन्तस्य ६।१ स्ध्वोः ७।२।

स०–एकोऽज् यस्मिन् स एकाच्, तस्य-एकाचः (बहुव्रीहिः)। झष् अन्ते यस्य स झषन्तः, तस्य-झषन्तस्य (बहुव्रीहिः)। सश्च ध्वश्च तौ स्ध्वौ, तयोः-स्वध्वोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-पदस्य, झलि, अन्ते, धातोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-धातोरेकाचो झषन्तस्य बशः पदस्यान्ते झलि स्वध्वोश्च भष्।

अर्थः-धातोरवयवो य एकाच् झषन्तस्तदवयवस्य बशः स्थाने पदान्ते झलादौ सकारे ध्वशब्दे च परतो भषादेशो भवति।

उदा०-(**बुध्**) पदान्ते-अर्थभुत्। सकारे-भोत्स्यते। ध्वम्शब्दे-अभुद्ध्वम्। (**गुह्**) पदान्ते-पर्णघुट्। सकारे-निघोक्ष्यते। ध्वम्शब्दे-न्यगूढ्वम्। (**दुह्**) पदान्ते-गोधुक्। सकारे-धोक्ष्यते। ध्वम्शब्दे-अधुग्ध्वम्। अजर्घाः। गर्धप्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(धातोः) धातु का अवयव जो (एकाचः) एक अच् अन्तवाला तथा (झषन्तस्य) झष् अन्तवाला है, उसके अवयव (बशः) बश् के स्थान में (पदस्य) पद के अन्त में, (झलि) झलादि (स्ध्वमोः) सकार और ध्वम् शब्द परे होने पर (भष्) भष् आदेश होता है।*

*उदा०-(बुध्) पदान्त-**अर्थभुत्**। अर्थ को समझनेवाला। सकार-**भोत्स्यते**। वह समझेगा। ध्वम्शब्द-**अभुद्ध्वम्**। तुम सब ने समझा। (गुह्) पदान्त-**पर्णघुट्**। पंखों को ढकनेवाला। सकार-**निघोक्ष्यते**। वह ढकेगा। ध्वम्शब्द-**न्यगूढ्वम्**। तुम सब ने ढका। (दुह्) पदान्त-**गोधुक्**। गौ को दुहनेवाला। सकार-**धोक्ष्यते**। वह दुहेगा। ध्वम्शब्द-**अधुग्ध्वम्**। तुम सब ने दुहा। **अजर्घाः**। तूने पुनः-पुनः आकाङ्क्षा (इच्छा) की। **गर्धप्**। गर्दभ (गधा) बनानेवाला (मूर्ति)।*

सिद्धि-(१) अर्थभुत्। *यहां अर्थ-उपपद '**बुध अवगमने**' (दि०आ०) धातु से 'क्विप् च' (३।२।७६) से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'वेरपृक्तस्य' (६।१।६६) से 'क्विप्' का सर्वहारी लोप होता है। इस सूत्र से पदान्त में विद्यमान एक अच्वाले, झषन्त 'बुध्' धातु के अवयव बश् (ब्) के स्थान में भष् (भ्) आदेश होता है।*

*(२) **भोत्स्यते**। यहां 'बुध्' धातु से 'लृट् शेषे च' (३।३।१५) से 'लृट्' प्रत्यय है। 'स्यतासी लृलुटोः' (३।१।३३) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से 'बुध्' धातु से सकार परे होने पर पूर्ववत् बश् (ब्) को भष् (भ्) आदेश होता है।*

*(२) **भोत्स्यते**। यहां 'बुध्' धातु से 'लृट् शेषे च' (३।३।१५) से 'लृट्' प्रत्यय है। 'स्यतासी लृलुटोः' (३।१।३३) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से 'बुध्' धातु से सकार परे होने पर पूर्ववत् बश् (ब्) को भष् (भ्) आदेश होता है।*

*(३) **अभुद्ध्वम्**। यहां 'बुध्' धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय और लकार के स्थान में आत्मनेपद में 'ध्वम्' आदेश है। 'च्लेः सिच्' (३।१।४४) से 'च्लि'*

के स्थान में 'सिच्' आदेश और यह 'लिङ्सिचावात्मनेपदेषु' (१।२।११) से किद्वत् होने से 'क्ङिति च' (१।१।५) से अङ्ग को गुण का प्रतिषेध होता है। 'धि च' (८।२।२५) से 'सिच्' के सकार का लोप होता है। इस सूत्र से 'ध्वम्' परे होने पर 'बुध्' के (ब्) के स्थान में भष् (भ्) आदेश होता है।

(४) **पर्णघुट्।** यहां पर्ण-उपपद 'गुह संवरणे' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'क्विप्' प्रत्यय और उसका सर्वहारी लोप होता है। इस सूत्र से पदान्त में विद्यमान झषन्त गुढ् के बश् (ग्) को भष् (घ्) आदेश होता है। 'हो ढः' (८।२।३१) से हकार को ढकार, ढकार को जश्त्व डकार और डकार को चर्त्व टकार होता है।

(५) **निघोक्ष्यते।** यहां नि-उपसर्गपूर्वक 'गुह' धातु से पूर्ववत् 'लृट्' प्रत्यय और स्य विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से सकार परे होने पर झषन्त 'गुढ्' के बश् (ग्) को भष् (घ्) आदेश होता है। 'हो ढः' (८।२।३१) से हकार को ढकार, **षढोः कः सि** (८।२।४१) से ढकार को ककार और **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) से षत्व होता है।

(६) **न्यघूढ्ध्वम्।** यहां नि-उपसर्गपूर्वक 'गुह' धातु से 'लुङ्' प्रत्यय और लकार के स्थान में 'ध्वम्' आदेश है। 'धि च' (८।२।२५) से 'सिच्' के सकार का लोप होता है। इस सूत्र से 'ध्वम्' परे होने पर झषन्त 'गुढ्' के बश् (ग्) को भष् (घ्) आदेश होता है। 'हो ढः' (८।२।३१) से 'गुह' के हकार को ढकार और 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४१) से 'ध्वम्' के धकार को ढकार, **'ढो ढे लोपः'** (८।३।१३) से पूर्ववर्ती ढकार का लोप और **'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः'** (६।३।१११) से अण् (उ) को दीर्घ होता है।

(७) **गोधुक्।** यहां गो-उपपद 'दुह प्रपूरणे' (अदा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'क्विप्' प्रत्यय और इसका सर्वहारी लोप होता है। 'दादेर्धातोर्घः' (८।२।३२) से 'दुह' के हकार को घकारादेश होता है। इस सूत्र से झषन्त 'दुघ्' धातु को पदान्त में बश् (द्) के स्थान में भष् (ध्) आदेश होता है। घकार को जश्त्व गकार और गकार को चर्त्व ककार होता है।

(८) **धोक्ष्यते।** यहां 'दुह' धातु से पूर्ववत् लृट् और स्य विकरण-प्रत्यय है। 'दादेर्धातोर्घः' (८।२।३२) से हकार को घकारादेश और इस सूत्र से झषन्त 'दुघ्' को सकार परे होने पर बश् (द्) के स्थान में भष् (ध्) आदेश होता है।

(९) **अधुग्ध्वम्।** यहां 'दुह' धातु से 'लुङ्' प्रत्यय, 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश और 'धि च' (८।२।२५) से सिच् के सकार का लोप होता है। पूर्ववत् 'दुह' के हकार को घकारादेश होकर इस सूत्र से झषन्त 'दुघ्' को 'ध्वम्' परे होने पर बश् (द्) को भष् (ध्) आदेश होता है।

(१०) अजर्घाः ।

गृध्-यङ् ।	अट्+जर्-गृध्+सिप् ।	अ+जर्-घर् रु ।
गृध्-गृध्+य ।	अ+जर्-गृध्+शप्+स् ।	अ+जर्-घर् र् ।
गृ-गृध्+० ।	अ+जर्-गर्ध्+०+स् ।	अ+जर्-घ०र् ।
जर्-गृध्+० ।	अ+जर्-घर्ध्+स् ।	अ+जर्-घार् ।
ज रुक्-गृध्+० ।	अ+जर्+घर ध्+० ।	अ+जर्-घाः ।
जर्-गृध्+लङ् ।	अ+जर्-घर द् ।	अजर्घाः ।

यहां 'गृधु अभिकाङ्क्षायाम्' (दि०प०) धातु से **'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्'** (३।१।२२) से 'यङ्' प्रत्यय है। **'सन्यङोः'** (६।१।९) से धातु को द्वित्व, **'यङोऽचि च'** (२।४।७४) से 'यङ्' का लुक्, **'उरत्'** (७।४।६६) से अभ्यास को अकारादेश, **'कुहोश्चुः'** (७।४।६२) से अभ्यास को चुत्व जकार, 'हलादिः **शेषः'** (७।४।६०) से अभ्यास का आदिहल् शेष, **'रुग्रिकौ च लुकि'** (७।४।९१) से अभ्यास को 'रुक्' आगम होता है। यङ्लुगन्त 'जर्गृध्' धातु से **'अनद्यतने लङ्'** (३।२।१११) से 'लङ्' प्रत्यय, अट्-आगम, लकार के स्थान में सिप्-आदेश, **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से धातु को लघूपधलक्षण गुण होता है। **'चर्करीतं च'** (अदा०गणसूत्र) से यङ्लुगन्त के अदादिगण में परिगणित होने से **'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।७२) से 'शप्' का लुक् होता है। इस सूत्र से धातु के एकाच् अवयव, झषन्त, गर्ध्' को सकार परे होने पर बश् (ग्) को भष् (घ्) आदेश होता है।

'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से धकार को जश् दकार **'दश्च'** (८।२।७५) से दकार को रुत्व, **'रो रि'** (८।३।१४) से पूर्ववर्ती रेफ का लोप, **'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः'** (६।३।१०९) से दीर्घ और **'खरवसानयोर्विसर्जनीयः'** (८।३।१५) से अवसानलक्षण विसर्जनीय आदेश होता है।

'अजर्घाः' की इस क्लिष्ट सिद्धि को ध्यान में रखकर वैयाकरण लोग कहते हैं- **'अजर्घा यो न जानाति तस्मै कन्या न दीयते'** ।

(११) गर्धप् । गर्दभ+णिच् । गर्दभ्+इ+क्विप् । गर्दभ्+०+० । गर्दभ् । गर्धब् । गर्धप् ।

यहां 'गर्दभ' शब्द से **'तत्करोति तदाचष्टे०'** (३।१।२६) से करोति-अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है। **वा०- 'णाविष्ठवत् प्रातिपदिकस्य'** (६।४।१५५) से गर्दभ के टिभाग (अ) का लोप होता है। णिजन्त 'गर्दभि' धातु से **'अन्येभ्योऽपि दृश्यते'** (३।२।१७८) से 'क्विप्' प्रत्यय और इसका सर्वहारी लोप होता है। **'णेरनिटि'** (६।४।५१) से 'णिच्' का भी लोप होता है। 'गर्दभ्' इस स्थिति में इस सूत्र से धातु के एकाच् झषन्त अवयव **(दभ्)** के बश् (द्) के स्थान में भष् (ध्) आदेश होता है। **'झलां जशोऽन्ते'** (८।२।३९) से भकार को जश् बकार और बकार को **'वाऽवसाने'** (८।४।५६) से चर् पकार होता है।

विशेषः *बश्=ब ग ड द के स्थान में क्रमशः भष्=भ घ ढ ध आदेश किये जाते हैं। डकार स्थानी न होने से ढकारादेश नहीं होता है। यहां स्थानकृत आन्तर्य से आदेश व्यवस्था होती है।*

भष-आदेशः--

(२१) दधस्तथोश्च।३८।

प०वि०-दधः ६।१ तथोः ७।२ च अव्ययपदम्।

स०-तश्च थश्च तौ तथौ, तयोः-तथोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-झलि, धातोः, बशः, भष्, झषन्तस्य, स्ध्वोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-झषन्तस्य दधो धातोर्बशस्तथोर्झलि स्ध्वोश्च भष्।

अर्थः-झषन्तस्य दधो धातोर्बशः स्थाने तकारथकारयोर्झलादौ सकारे ध्वशब्दे च परतो भषादेशो भवति।

दध इति दधातिः=डुधाञ् धारणपोषणयोरिति कृतद्विर्वचनो धातुरुपदिश्यते।

उदा०-**(तकारे)** तौ धत्तः। **(थकारे)** युवां धत्थः। **(झलादिसकारे)** त्वं धत्स्व। **(झलादिध्वशब्दे)** यूयं धद्ध्वम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(झषन्तस्य) झष् जिसके अन्त में है उस (दधः) दध् (धातोः) धतु के (बशः) बश् के स्थन में (तथोः) तकार, थकार और (झलि) झलादि (स्ध्वोः) सकार और ध्वशब्द परे होने पर (भष्) भष् आदेश होता है।*

*'दध' यह **'डुधाञ् धारणपोषणयोः'** (जु०उ०) इस कृतद्विर्वचन धातु का उपदेश किया गया है।*

*उदा०-(तकार) **तौ धत्तः।** वे दोनों धारण-पोषण करते हैं। **(थकार) युवां धत्थः।** तुम दोनों धारण-पोषण करते हो। **(झलादि सकार) त्वं धत्स्व।** तू धारण-पोषण कर। **(झलादि ध्वशब्द) यूयं धद्ध्वम्।** तुम सब धारण-पोषण करो।*

सिद्धि-(१) धत्तः। *धा+लट्। धा+तस्। धा+शप्+तस्। धा+०+तस्। धा-धा+तस्। ध-ध्+तस्। द-ध्+तस्। ध-त्+तस्। धत्तस्। धत्तः।*

*यहां **'डुधाञ् धारणपोषणयोः'** (जु०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और लकार के स्थान में 'तस्' आदेश है। **'कर्तरि शप्'** (३।२।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और **'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः'** (४।२।७५) से शप् को श्लु (लोप) होता है। **'श्लौ'** (६।१।१०)*

*से धातु को द्वित्व, 'ह्रस्वः' (७।४।५९) से अभ्यास को ह्रस्व, '**अभ्यासे चर्च**' (८।४।५४) से अभ्यास के धकार को जश् दकारादेश और '**श्नाभ्यस्तयोरातः**' (६।४।११२) से आकार का लोप होता है। इस सूत्र से तकार परे होने पर झषन्त 'दध्' धातु के बश् (द्) के स्थान में भष् (ध्) आदेश होता है।*

*यहां पाणिनि मुनि के वचनसामर्थ्य से '**अचः परस्मिन् पूर्वविधौ**' (१।१।५७) से आकार लोप स्थानिवत् नहीं होता है और भष् आदेश करते समय '**अभ्यासे चर्च**' (८।४।५४) से विहित जश् आदेश असिद्ध नहीं होता है। 'खरि च' (८।४।५५) से धातु-धकार को चर् तकारादेश है।*

*ऐसे ही-'थस्' प्रत्यय में-**धत्थः**। थास् (से) प्रत्यय में-**धत्स्व**। लोट् लकार में '**थासः से**' (३।४।८०) से 'थास्' के स्थान में 'से' आदेश और '**स्वाभ्यां वामौ**' (३।४।९१) से एकार को वकारादेश है। ध्वम् प्रत्यय में-**धद्ध्वम्**।*

जश्-आदेशः—

(२२) झलां जशोऽन्ते।३९।

प०वि०-झलाम् ६।३ जशः १।३ अन्ते ७।१।

अनु०-पदस्येत्यनुवर्तते।

अन्वयः-पदस्याऽन्ते झलां जशः।

अर्थः-पदस्यान्ते वर्तमानानां झलां स्थाने जश आदेशा भवन्ति।

उदा०-जश्=ज, ब, ग, ड, द। **(ज)** अच्+अन्तः=अजन्तः। **(ब)** त्रिष्टुप्+अत्र=त्रिष्टुबत्र। **(ग)** वाक्+अत्र=वागत्र। **(ड)** श्वलिट्+अत्र=श्वलिडत्र। **(द)** अग्निचित्+अत्र=अग्निचिदत्र।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(पदस्य) पद के (अन्ते) अन्त में विद्यमान (झलाम्) झल वर्णों के स्थान में (जशः) जश् वर्ण आदेश होते हैं।*

*उदा०-जश्=ज, ब, ग, ड, द। (ज) **अच्+अन्तः=अजन्तः**। अच् जिसके अन्त में है। (ब) **त्रिष्टुप्+अत्र=त्रिष्टुबत्र**। इस मन्त्र में त्रिष्टुप् छन्द है। (ग) **वाक्+अत्र=वागत्र**। वेदवाणी यहां है। (ड) **श्वलिट्+अत्र=श्वलिडत्र**। कुत्ते चाटनेवाला (घोरी) यहां है। (द) **अग्निचित्+अत्र=अग्निचिदत्र**। अग्न्याधान करनेवाला (अग्निहोत्री) यहां है।*

*सिद्धि-**अजन्तः**। आदि उदाहरणों में झल् वर्णों के स्थान में जश् (ज, ब, ग, ड, द) वर्ण आदेश स्पष्ट हैं। यहां क, च, ट, त, प इन वर्गों के प्रथम वर्णों के स्थान में स्थानकृत आन्तर्य (सादृश्य) से क्रमशः वर्गों के तृतीय वर्ण ग, ज, ड, द, ब आदेश होते हैं।*

ध-आदेशः–

(२३) झषस्तथोर्धोऽधः ।४०।

प०वि०–झषः ५ ।१ तथोः ६ ।२ धः ६ ।१ अधः ५ ।१ ।

स०–तश्च थश्च तौ तथौ, तयोः-तथोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) । न धा इति अधाः, तस्मात्-अधः (नञ्तत्पुरुषः) ।

अन्वयः–झषस्तथोर्धः, अधः ।

अर्थः–झषः परयोस्तकारथकारयोः स्थाने धकारादेशो भवति, अधः=दधाति-परयोस्तु न भवति ।

उदा०–**(लभ्)** तः-लब्धा, लब्धुम्, लब्धव्यम् । अलब्ध । **थः**-अलब्धाः । **(दुह्)** तः-दोग्धा । दोग्धुम् । दोग्धव्यम् । अदुग्ध । **थः**-अदुग्धाः । **(लिह्) तः**-लेढा, लेढुम्, लेढव्यम् । अलीढ । **थः**-अलीढाः । **(बुध्) तः**-बोद्धा । बोद्धुम् । बोद्धव्यम् । अबुद्ध । **थः**-अबुद्धाः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(झषः) झष् वर्ण से परवर्ती (तथोः) तकार और थकार के स्थान में (धः) धकारादेश होता है (अधाः) धा-धातु से परे तो नहीं होता है।*

*उदा०-(लभ्) त-**लब्धा**। प्राप्त करनेवाला। **लब्धुम्**। प्राप्त करने के लिये। **लब्धव्यम्**। प्राप्त करना चाहिये। **अलब्ध**। उसने प्राप्त किया। थ-**अलब्धाः**। तूने प्राप्त किया। (दुह्) त-**दोग्धा**। दुहनेवाला। **दोग्धुम्**। दुहने के लिये। **दोग्धव्यम्**। दुहना चाहिये। **अदुग्ध**। उसने दुहा। थ-**अदुग्धाः**। तूने दुह। (लिह्) त-**लेढा**। चाटनेवाला। **लेढुम्**। चाटने के लिये। **लेढव्यम्**। चाटना चाहिये। **अलीढ**। उसने चाटा। थ-**अलीढाः**। तूने चाटा। (बुध्) त-**बोद्धा**। समझनेवाला। **बोद्धुम्**। समझने के लिये। **बोद्धव्यम्**। समझना चाहिये। **अबुद्ध**। उसने समझा। थ-**अबुद्धाः**। तूने समझा।*

*सिद्धि-(१) **लब्धा**। यहां **'डुलभष् प्राप्तौ'** (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से झषन्त 'लभ्' धातु से परे 'तृच्' के तकार को धकारादेश होता है। पूर्ववत् भकार के जश् बकारादेश है। 'तुमुन्' प्रत्यय में-**लब्धुम्**। 'तव्यत्' प्रत्यय में-**लब्धव्यम्**।*

*(२) **अलब्ध**। यहां 'लभ्' धातु से 'लुङ्' **प्रत्यय है**। **'च्लेः सिच्'** (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश **और 'झलो झलि'** (८।२।२६) से सिच् का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। **'थास्'** प्रत्यय में-**अलब्धाः**।*

*(३) **दोग्धा**। यहां यहां **'दुह प्रपूरणे'** (अदा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। **'दादेर्धातोर्घः'** (८।२।३२) से 'दुह्' के हकार को घकारादेश होता है। इस सूत्र से*

*झषन्त 'दुघ्' **धातु से प्रत्यय** 'तृच्' तकार को धकारादेश होता है। '**झलां जश् झशि**' (८।४।५३) से घकार को गकार जश् आदेश है। 'तुमुन्' प्रत्यय में-**दोग्धुम्।** 'तव्यत्' प्रत्यय में-**दोग्धव्यम्।***

*(४) **अदुग्ध।** यहां 'दुह' धातु से 'लुङ् प्रत्यय है। '**च्लेः सिच्**' (३।१।४४) से 'च्लि' के स्थान में 'सिच्' आदेश और '**झलो झलि**' (८।२।२६) से 'सिच्' का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। 'थास्' प्रत्यय में-**अदुग्धाः।***

*(५) **लेढा।** यहां '**लिह आस्वादने**' (अदा०उ०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। '**हो ढः**' (८।२।३१) से हकार को ढकारादेश होता है। इस सूत्र से झषन्त 'लिढ्' धातु से परे 'तृच्' के तकार को धकारादेश और '**ष्टुना ष्टुः**' (८।४।४१) से धकार को ढकारादेश और '**ढो ढे लोपः**' (८।३।१३) से पूर्ववर्ती ढकार का लोप होता है। 'तुमुन्' प्रत्यय में-**लेढुम्।** 'तव्यत्' प्रत्यय में-**लेढव्यम्।***

*(६) **अलीढ।** यहां 'लिह्' धातु से 'लुङ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् सिच् का लोप, हकार को ढकार, तकार को धकार, धकार को ढकार, पूर्ववर्ती ढकार का लोप और '**ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः**' (६।३।१११) से दीर्घ (ई) होता है। 'थास्' प्रत्यय में-**अलीढाः।** ऐसे ही 'बुध अवगमने' (दि०आ०) धातु से-**बोद्धा, बोद्धुम्, बोद्धव्यम्।** 'लुङ्' लकार में-**अबुद्ध** (त)। **अबुद्धाः** (थास्)।*

क-आदेशः–

(२४) षढोः कः सि।४१।

प०वि०-षढोः ६।२ कः १।१ सि ७।१।

स०-षश्च ढश्च तौ षढौ, तयोः-षढोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-षढोः सि कः।

अर्थः-षकारढकारयोः स्थाने सकारे परतः **ककारादेशो** भवति।

उदा०-**(पिष्) षकारः**-पेक्ष्यति। अपेक्ष्यत्। पिपिक्षति। **(लिह्) ढकारः**-लेक्ष्यति। अलेक्ष्यत्। लिलिक्षति।

***आर्यभाषाः अर्थ**-(षढोः) षकार और ढकार के स्थान में (सि) सकार परे होने पर (कः) ककारादेश होता है।*

*उदा०-**(पिष्) षकार-पेक्ष्यति।** वह पीसेगा। **अपेक्ष्यत्।** यदि वह पीसता। **पिपिक्षति।** वह पीसना चाहता है। **(लिह्) ढकार-लेक्ष्यति।** वह चाटेगा। **अलेक्ष्यत्।** यदि वह चाटता। **लिलिक्षति।** वह चाटना चाहता है।*

*सिद्धि-(१) **पेक्ष्यति।** यहां 'पिष्लृ पेषणे' (रुधा०प०) धातु से 'लृट् शेषे च' (३।३।१३) से 'लृट्' प्रत्यय है। 'स्यतासी लृलुटोः' (३।१।३३) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र के 'पिष्' के षकार को सकारादि 'स्य' प्रत्यय परे होने पर ककारादेश होता है। 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से षत्व होता है।*

*(२) **अपेक्ष्यत्।** यहां 'पिष्' धातु से 'लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ' (३।३।१३९) से 'लृङ्' प्रत्यय और पूर्ववत् 'स्य' विकरण-प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **पिपिक्षति।** यहां 'पिष्' धातु से 'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा' (३।१।७) से इच्छा-अर्थ में 'सन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **लेक्ष्यति।** यहां 'लिह आस्वादने' (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लृट्' और 'स्य' विकरण-प्रत्यय है। 'हो ढः' (८।२।३१) से हकार को ढकारादेश होता है। इस सूत्र से सकारादि 'स्य' प्रत्यय परे होने पर 'लिढ्' के ढकार को ककारादेश होता है। 'लृङ्' लकार में-**अलेक्ष्यत्।** 'सन्' प्रत्यय में-**लिलिक्षति।***

{निष्ठातकारादेशप्रकरणम्}

न-आदेशः–

(१) रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः।४२।

प०वि०–रदाभ्याम् ५।२ निष्ठातः६।१ नः १।१ पूर्वस्य ६।१ च अव्ययपदम्, दः ६।१।

स०–रश्च दश्च तौ रदौ, ताभ्याम्–रदाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। निष्ठायास्तकार इति निष्ठात्, तस्य-निष्ठातः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अन्वयः–रदाभ्यां निष्ठातो नः, पूर्वस्य च दो नः।

अर्थः–रेफदकाराभ्यां परस्य निष्ठा-तकारस्य स्थाने नकारादेशो भवति, पूर्वस्य च दकारस्य स्थाने नकारादेशो भवति।

उदा०-**(रेफात्)** आस्तीर्णम्। विस्तीर्णम्। विशीर्णम्। निगीर्णम्। अवगूर्णम्। **(दकारात्)** भिन्नः, भिन्नवान्। छिन्नः, छिन्नवान्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(रदाभ्याम्) रेफ और दकार से परवर्ती (निष्ठातः) निष्ठा के तकार के स्थान में (नः) नकारादेश होता है (च) और (पूर्वस्य) उससे पूर्ववर्ती (दः) दकार के स्थान में भी (नः) नकारादेश होता है।*

*उदा०-(रेफ) **आस्तीर्णम्।** बिछाना। **विस्तीर्णम्।** फैलाना। **विशीर्णम्।** बिखरना। **निगीर्णम्।** निगलना। **अवगूर्णम्।** निन्दा करना। (दकारात्) **भिन्नः, भिन्नवान्।** उसने फाड़ा। **छिन्नः, छिन्नवान्।** उसने काटा।*

सिद्धि-(१) आस्तीर्णम्। यहां 'स्तृञ् आच्छादने' (क्र्या०उ०) धातु से 'नपुंसके भावे क्तः' (३।३।११४) से 'क्त' प्रत्यय है। 'क्तक्तवतू निष्ठा' (३।२।१०२) से इसकी निष्ठा-संज्ञा है। 'ॠत इद्धातोः' (७।१।१००) से ॠकार को इकारादेश, 'उरण् रपरः' (१।१।५१) से रपरत्व और 'हलि च' (८।२।७७) से दीर्घ होता है। इस सूत्र से रेफ से परवर्ती निष्ठा के तकार को नकारादेश और 'रषाभ्यां नो णः समानपदे' (८।४।१) से णत्व होता है।

(२) विशीर्णम्। वि-उपसर्गपूर्वक 'शॄ हिंसायाम्' (क्र्या०प०) धातु से पूर्ववत्।

(३) निगीर्णम्। नि-उपसर्गपूर्वक 'गॄ निगरणे' (क्र्या०प०) धातु से पूर्ववत्।

(५) अवगूर्णम्। अव्-उपसर्गपूर्वक 'गूरी उद्यमने' (दि०आ०) धातु से पूर्ववत्।

'आस्तीर्णम्' आदि में 'श्र्युकः किति' (७।१।११) से और 'अवगूर्णम्' में 'श्वीदितो निष्ठायाम्' (७।१।१४) से इडागम का प्रतिषेध होता है।

(६) भिन्नः। यहां 'भिदिर् विदारणे' (रुधा०प०) धातु से 'निष्ठा' (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से दकार से परवर्ती निष्ठा-तकार को नकारादेश और 'भिद्' धातु के पूर्ववर्ती दकार को भी नकारादेश होता है। 'क्तवतु' प्रत्यय में-भिन्नवान्। 'छिदिर् द्वैधीकरणे' (रुधा०प०) धातु से-छिन्नः, छिन्नवान्।

न-आदेशः–

(२) संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः।४३।

प०वि०-संयोगादेः ६।१ आतः ६।१ धातोः ६।१ यण्वतः ६।१।

स०-संयोग आदिर्यस्य स संयोगादिः, तस्य-संयोगादेः (बहुव्रीहिः)।

तद्धितवृत्तिः-यण् अस्मिन्नस्तीति यण्वान्, तस्मात्-यण्वतः। **'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्'** (५।२।९४) इति मतुप् प्रत्ययः।

अनु०-निष्ठातः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संयोगादेर्यण्वत आतो धातोर्निष्ठातो नः।

अर्थः-संयोगादेर्यण्वत आकारान्ताद् धातोः परस्य निष्ठातकारस्य स्थाने नकारादेशो भवति।

उदा०-(द्रा) प्रद्राणः, प्रद्राणवान्। **(म्ला)** म्लानः, म्लानवान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संयोगादेः) संयोग जिसके आदि में है और (यण्वत्) जिसमें यण् (य व र ल) वर्ण विद्यमान है उस (आतः) आकारान्त (धातोः) धातु से परवर्ती (निष्ठातः) निष्ठा के तकार के स्थान में (नः) नकारादेश होता है।*

उदा०-(द्रा) प्रद्राणः, प्रदाणवान्। वह भाग गया। (म्ला) म्लानः, म्लानवान्। उसने ग्लानि की।

सिद्धि-प्रद्राणः। यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'द्रा कुत्सायां गतौ' (अदा०प०) से 'निष्ठा' (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से संयोगादि, यण्वान्, आकारान्त 'द्रा' धातु से परवर्ती निष्ठा-तकार को नकारादेश और 'रषाभ्यां नो णः समानपदे' (८।४।१) से णत्व होता है। 'क्तवतु' प्रत्यय में-प्रदाणवान्। 'म्लै हर्षक्षये' (भ्वा०प०) धातु से-म्लानः, म्लानवान्।

न-आदेशः--

(३) ल्वादिभ्यः।४४।

वि०-लू-आदिभ्यः ५।३।

स०-लू आदिर्येषां ते ल्वादयः, तेभ्यः-ल्वादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-निष्ठातः, नः, धातोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-ल्वादिभ्यो धातुभ्यो निष्ठातो नः।

अर्थः-लू-आदिभ्यो धातुभ्यः परस्य निष्ठातकारस्य स्थाने नकारादेशो भवति।

उदा०-(लू) लूनः, लूनवान्। (धू) धूनः, धूनवान् (ज्या=जी) जीनः, जीनवान्।

ल्वादयो धातवः **'लूञ् छेदने'** इत्यस्मात् प्रभृति **'प्ली गतौ'** इति वृत्करणपर्यन्तं पाणिनीयधातुपाठस्य क्र्यादिगणे पठ्यन्ते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(लू-आदिभ्यः) लू-आदि (धातुभ्यः) धातुओं से परवर्ती (निष्ठातः) निष्ठा के तकार के स्थान में (नः) नकारादेश होता है।*

उदा०-(लू) लूनः, लूनवान्। उसने काटा। (धू) धूनः, धूनवान्। उसने कपाया, हिलाया। (ज्या=जी) जीनः, जीनवान्। वह वृद्ध हो गया।

लू-आदि धातु 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) से लेकर 'प्ली गतौ' यहां वृत्करणपर्यन्त पाणिनीय धातुपाठ के क्र्यादिगण में पठित हैं।

सिद्धि-(१) लूनः। यहां 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से 'निष्ठा' (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'लू' से परवर्ती निष्ठा तकार को नकारादेश होता है। 'क्तवतु' प्रत्यय में-लूनवान्। 'धूञ् कम्पने' (क्र्या०उ०) धातु से-धूनः, धूनवान्।

(२) जान: । ज्या+क्त । ज्या+त । जि आ+त । जी+न । जान+सु । जान: ।

*यहां 'ज्या वयोहानौ' (क्र्या०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। **'ग्रहिज्या०'** (६।१।१६) से सम्प्रसारण, 'सम्प्रसारणाच्च' (६।१।१०६) से आकार को पूर्वरूप एकादेश और 'हल:' (६।४।२) से दीर्घ होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। 'क्तवतु' प्रत्यय में-जीनवान् ।*

न-आदेशः–

(४) ओदितश्च।४५।

वि०-ओदित: ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-ओद् इद् यस्य स ओदित्, तस्मात्-ओदित: (बहुव्रीहि:)।

अनु०-निष्ठात:, न:, धातोरिति चानुवर्तते।

अन्वय:-ओदितो धातोश्च निष्ठातो न: ।

अर्थ:-ओकारेतो धातोश्च परस्य निष्ठातकारस्य स्थाने नकारादेशो भवति।

उदा०-**(ओलस्जी)** लग्न:, लग्नवान्। **(ओविजी)** उद्विग्न:, उद्विग्नवान्। **(ओप्यायी)** आपीन:, आपीनवान्।

आर्यभाषा: *अर्थ-(ओदित:) ओकार जिसका इत् है उस (धातो:) धातु से (च) भी परवर्ती (निष्ठात:) निष्ठा के तकार के स्थान में (न:) नकारादेश होता है।*

*उदा०-**(ओलस्जी) लग्न:, लग्नवान्।** उसने व्रीडा (लज्जा) की। **(ओविजी) उद्विग्न:, उद्विग्नवान्।** वह व्याकुल हुआ। **(ओप्यायी) आपीन:, आपीनवान्।** वह बढ़ा (स्थूल हुआ)।*

सिद्धि-लग्न: *। लस्ज्+क्त । लस्ज्+त । ल०ज्+त । लग्+त । लग्+न । लग्न+सु । लग्न: ।*

*यहां **'ओलस्जी व्रीडायाम्'** (तु०आ०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। **'उपदेशेऽजनुनासिक इत्'** (१।३।२) से धातुस्थ ओकार और ईकार की इत् संज्ञा होकर **'तस्य लोप:'** (१।३।९) से लोप होता है। **'स्को: संयोगाद्योरन्ते च'** (८।२।९) से संयोगादि सकार का लोप और **'चो: कु:'** (८।२।३०) से जकार को कवर्ग गकारादेश होता है। इस सूत्र से ओदित् 'ओलस्जी' धातु से परवर्ती निष्ठा तकार को नकारादेश होता है। 'क्तवतु' प्रत्यय में लग्नवान्। उत्-उपसर्गपूर्वक **'ओविजी भयचलनयो:'** (तु०आ०) धातु से-उद्विग्न:, **उद्विग्नवान्। 'ओप्यायी वृद्धौ'** (भ्वा०आ०) धातु से-**आपीन:, आपीनवान्।***

न-आदेशः–

(५) क्षियो दीर्घात् ।४६।

वि०-क्षियः ५ ।१ दीर्घात् ५ ।१।

अनु०-निष्ठातः, नः, धातोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-दीर्घात् क्षियो धातोर्निष्ठातो नः।

अर्थः-दीर्घात् क्षियो धातोः परस्य निष्ठातकारस्य स्थाने नकारादेशो भवति।

उदा०-(क्षी) क्षीणाः क्लेशाः। क्षीणो जाल्मः। क्षीणस्तपस्वी।

आर्यभाषाः अर्थ-(दीर्घात्) दीर्घान्त (क्षियः) क्षी (धातोः) धातु से परवर्ती (निष्ठातः) निष्ठा के तकार के स्थान में (नः) नकारादेश होता है।

उदा०-(क्षी) क्षीणाः क्लेशाः। अविद्या आदि क्लेश क्षय होगये। क्षीणो जाल्मः। यह नीच निर्बल होगया है (आक्रोश)। क्षीणस्तपस्वी। यह बेचारा तपस्वी निर्बल होगया है (दैन्य)।

सिद्धि-क्षीणः। यहां 'क्षि क्षये' (भ्वा०प०) धातु से 'निष्ठा' (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। 'निष्ठायामण्यदर्थे' (६।४।६०) से तथा 'वाऽऽक्रोशदैन्ययोः' (६।४।६१) से 'क्षि' धातु को आक्रोश (भर्त्सना) और दीनता अर्थ में दीर्घ होता है। इस सूत्र से इस दीर्घ 'क्षी' धातु से परवर्ती निष्ठा के तकार को नकारादेश होता है। 'अट्कुप्वाङ्०' (८।४।२) से णत्व होता है।

न-आदेशः–

(६) श्योऽस्पर्शे ।४७।

प०वि०-श्यः ५ ।१ अस्पर्शे ७ ।१।

स०-न स्पर्श इति अस्पर्शः, तस्मिन्-अस्पर्शे (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-निष्ठातः, न, धातोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अस्पर्शे श्यो धातोर्निष्ठातो न।

अर्थः-स्पर्शवर्जितेऽर्थे वर्तमानात् श्यायतेर्धातोः परस्य निष्ठातकारस्य स्थाने नकारादेशो भवति।

उदा०-(श्या) शीनं घृतम्। शीनं मेदः। शीना वसा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अस्पर्शे) स्पर्श अर्थ से भिन्न (श्यः) श्या (धातोः) धातु से परवर्ती (निष्ठातः) निष्ठा के तकार के स्थान में (नः) नकारादेश होता है।*

*उदा०-**(श्या) शीनं घृतम्।** जमा हुआ घी। **शीनं मेदः।** जमी हुई चरबी। **शीना वसा।** अर्थ पूर्ववत् है।*

सिद्धि-शीनम्। *श्या+क्त। श्या+त। श् इ आ+त। शि+न। शी+न। शीन+सु। शीनम्।*

*यहां 'श्यैङ् गतौ' (भ्वा०आ०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। **'द्रवमूर्तिस्पर्शयोः श्यः'** (६।१।२४) से सम्प्रसारण, **'सम्प्रसारणाच्च'** (६।१।१०५) से आकार को पूर्वरूप एकादेश और 'हलः' (६।४।२) से इकार को दीर्घ होता है। इस सूत्र से स्पर्श अर्थ से भिन्न (द्रवमूर्ति) अर्थ में 'श्या' धातु से परवर्ती निष्ठा के तकार को नकारादेश होता है। स्पर्श अर्थ में-**शीतं जलम्।** ठण्डा जल।*

न-आदेशः--

(७) अञ्चोऽनपादाने ।४८।

प०वि०-अञ्चः ५।१ अनपादाने ७।१।

स०-न अपादानमिति अनपादानम्, तस्मिन्-अनपादाने (नञ्-तत्पुरुषः)।

अनु०-निष्ठातः, न, धातोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अञ्चो धातोर्निष्ठातो नः, अनपादाने।

अर्थः-अञ्चतेर्धातोः परस्य निष्ठातकारस्य स्थाने नकारादेशो भवति, न चेत् तत्रापादानं कारकं भवति।

उदा०-**(अञ्च्)** समक्नौ शकुनेः पादौ। सङ्गतावित्यर्थः। तस्मात् पशवो न्यक्नाः। अपादाने इति किम्? उदक्तमुदकं कूपात्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अञ्चः) अञ्च् (धातोः) धातु से परवर्ती (निष्ठातः) निष्ठा के तकार के स्थान में (नः) नकारादेश होता है (अनपादाने) यदि वहां अपादान कारक का विषय न हो।*

*उदा०-**(अञ्च्) समक्नौ शकुनेः पादौ।** पक्षी के पांव परस्पर मिले हुये हैं। **तस्मात् पशवो न्यक्नाः।** उससे पशु अधोमुख हैं। अपादान कारक में-**उदक्तमुदकं कूपात्।** कूए से निकाला हुआ जल।*

सिद्धि-समक्नः । सम्+अञ्च्+क्त । सम्+अञ्च्+त । सम्+अच्+त । सम्+अक्+त । सम्+अक्+न । समक्न+सु । समक्नः ।

यहां सम्-उपसर्गपूर्वक 'अञ्चु गतिपूजनयोः' (भ्वा०प०) धातु से 'निष्ठा' (३ ।२ ।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। 'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति' (६ ।४ ।२४) से अनुनासिक (न्) का लोप होता है। 'चोः कुः' (८ ।२ ।३०) से चकार को कवर्ग गकारादेश है। इस सूत्र से 'अञ्च्' धातु से परवर्ती निष्ठा के तकार को नकारादेश होता है। नि-उपसर्ग से-न्यक्नः । 'उदितो वा' (७ ।२ ।५६) से क्त्वा प्रत्यय को विभाषा इट् कहा है, अतः 'यस्य विभाषा' (७ ।२ ।१५) के नियम से निष्ठा में इडागम का प्रतिषेध होता है।

न-आदेशः–

(८) दिवोऽविजिगीषायाम् ।४६ ।

प०वि०-दिवः ५ ।१ अविजिगीषायाम् ७ ।१ ।

स०-विजेतुमिच्छा विजिगीषा। न विजिगीषेति अविजिगीषा, तस्याम्-अविजिगीषायाम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-निष्ठातः, न, धातोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अविजिगीषायां दिवो धातोर्निष्ठातो नः ।

अर्थः-विजिगीषार्थवर्जिताद् दिवो धातोः परस्य निष्ठातकारस्य स्थाने नकारादेशो भवति ।

उदा०-(**दिव्**) आद्यूनः=औदरिकः । परिद्यूनः=क्षीणः । अविजिगीषायामिति किम् ? द्यूतं वर्तते । द्यूतक्रीडायां विजिगीषयाऽक्षपातनादिकं क्रियते ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अविजिगीषायाम्) विजिगीषा=विजय की इच्छा से भिन्न अर्थ में (दिवः) दिव् (धातोः) धातु से परवर्ती (निष्ठातः) निष्ठा के तकार को (नः) नकारादेश होता है।*

उदा०-(दिव्) आद्यूनः । औदरिक, पेटू। परिद्यूनः । क्षीण (निर्बल)।

सिद्धि-आद्यूनः । आ+दिव्+क्त । आ+दिव+त । आ+दि ऊठ्+त । आ+दि ऊ+त । द्यू+न । द्यून+सु । द्यूनः ।

यहां 'दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु' (दि०प०) धातु से 'निष्ठा' (३ ।२ ।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। 'छ्वोः शूडनुनासिके च' (६ ।४ ।१९) से 'दिव्' के वकार को 'ऊठ्' आदेश और 'इको यणचि' (६ ।१ ।७६) से यणादेश है। इस सूत्र से विजिगीषा अर्थ से अन्यत्र 'दिव्' धातु से परवर्ती निष्ठा के तकार को नकारादेश होता है। विजिगीषा अर्थ में-द्यूतं वर्तते। द्यूतक्रीडा में विजय की इच्छा से पासे डाले जाते हैं।

निपातनम्—

(६) निर्वाणोऽवाते।५०।

प०वि०-निर्वाण: १।१ अवाते ७।१।

स०-न वात इति अवात:, तस्मिन्-अवाते (नञ्तत्पुरुष:)।

अनु०-निष्ठात:, धातोरिति चानुवर्तते।

अन्वय:-अवाते निर्वाणो निपातनम्।

अर्थ:-अवाते=वाताधिकरणवर्जितेऽर्थे निर्वाण इति पदं निपात्यते।

अत्र निस्-पूर्वाद् वाति-धातो: परस्य निष्ठातकारस्य नकारादेशो निपात्यते, न चेद् वात्यर्थो वाताधिकरणो भवति।

उदा०-(वा) निर्वाणोऽग्नि:। निर्वाण: **प्रदीप**:। एष निर्वाणो भिक्षु:। अवाते इति किम्? निर्वातो वात:। वातो निरुद्ध इत्यर्थ:।

आर्यभाषा: *अर्थ-(अवाते) वायु-अधिकरण से भिन्न अर्थ में (निर्वाण:) निर्वाण यह पद निपातित है।*

*यहां निस्-उपसर्गपूर्वक **'वा गतिगन्धनयो:'** (अदा०प०) धातु से परवर्ती निष्ठा के तकार को नकारादेश निपतित है, यदि वह 'वा' धातु का अधिकरण=आधार वात (वायु) न हो।*

*उदा०-(वा) **निर्वाणोऽग्नि:**। अग्नि उपशान्त होगया। **निर्वाण: प्रदीप:**। दीपक बुझ गया। **एष निर्वाणो भिक्षु:**। यह साधु राग आदि से उपरत है। 'अवाते' का कथन इसलिये है कि यहां नकारादेश न हो-**निर्वातो वात:**। वायु बन्द होगया है।*

*सिद्धि-**निर्वाण:**। यह निस्-उपसर्गपूर्वक **'वा गतिगन्धनयो:'** (अदा०प०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से वात से भिन्न अधिकरण में 'वा' धातु से परवर्ती निष्ठा के तकार को नकारादेश निपातित है। **'अट्कुप्वाङ्०'** (८।४।२) से णत्व होता है।*

क-आदेश:—

(१०) शुष: क:।५१।

प०वि०-शुष: ५।१ क: १।१।

अनु०-निष्ठात:, धातोरिति चानुवर्तते।

अन्वय:-शुषो धातोर्निष्ठात: क:।

अर्थः-शुषो धातोः परस्य निष्ठातकारस्य स्थाने ककारादेशो भवति।

उदा०-(शुष्) शुष्कः, शुष्कवान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(शुषः) शुष् इस (धातोः) धातु से परवर्ती (निष्ठातः) निष्ठा के तकार के स्थान में (कः) ककारादेश होता है।*

उदा०-(शुष्) शुष्कः, शुष्कवान्। वह सूख गया।

सिद्धि-शुष्कः। यहां 'शुष शोषणे' (दि०प०) धातु से 'निष्ठा' (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'क्त' के तकार के स्थान में ककारादेश होता है। क्तवतु प्रत्यय में-शुष्कवान्।

व-आदेशः-

(११) पचो वः।५२।

प०वि०-पचः ५।१ वः १।१।

अनु०-निष्ठातः, धातोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-पचो धातोर्निष्ठातः वः।

अर्थः-पचो धातोः परस्य निष्ठातकारस्य स्थाने वकारादेशो भवति।

उदा०-(पच्) पक्वः, पक्ववान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पचः) पच् इस (धातोः) धातु से परवर्ती (निष्ठातः) निष्ठा के तकार के स्थान में (वः) वकारादेश होता है।*

उदा०-(पच्) पक्वः, पक्ववान्। उसने पकाया।

सिद्धि-पक्वः। यहां 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से 'निष्ठा' (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'क्त' के तकार के स्थान में वकारादेश होता है। क्तवतु प्रत्यय में-पक्ववान्।

म-आदेशः-

(१२) क्षायो मः।५३।

प०वि०-क्षायः ५।१ मः १।१।

अनु०-निष्ठातः, धातोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-क्षायो धातोर्निष्ठातः मः।

अर्थः-क्षायो धातोः परस्य निष्ठातकारस्य स्थाने वकारादेशो भवति।

उदा०-(क्षै) क्षामः, क्षामवान्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(क्षायः) क्षै इस (धातोः) धातु से परवर्ती (निष्ठातः) निष्ठा के तकार के स्थान में (मः) मकारादेश होता है।*

*उदा०-**(क्षै) क्षामः, क्षामवान्।** वह क्षीण होगया।*

*सिद्धि-**क्षामः।** यहां **'क्षै क्षये'** (भ्वा०प०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। 'आदेच उपदेशेऽशिति' (६।१।४४) से धातुस्थ एच् (ऐ) को आकारादेश होता है। इस सूत्र से 'क्त' के तकार के स्थान में मकारादेश होता है। क्तवतु प्रत्यय में-**क्षामवान्।***

मादेश-विकल्पः–

(१३) प्रस्त्योऽन्यतरस्याम्।५४।

प०वि०-प्रस्त्यः ५।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-प्रपूर्वः स्त्या इति प्रस्त्याः, तस्मात्-प्रस्त्यः (प्रादितत्पुरुषः)।

अनु०-निष्ठातः, धातोः, म इति चानुवर्तते।

अन्वयः-प्रस्त्यो धातोर्निष्ठातोऽन्यतरस्यां मः।

अर्थः-प्रपूर्वात् स्त्यायतेर्धातोः परस्य निष्ठातकारस्य स्थाने विकल्पेन मकारादेशो भवति।

उदा०-**(प्रस्त्या)** प्रस्तीमः, प्रस्तीमवान्। प्रस्तीतः, प्रस्तीतवान्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(प्रस्त्या) प्र-उपसर्गपूर्वक स्त्या इस (धातोः) धातु से परवर्ती (निष्ठातः) निष्ठा के तकार के स्थान में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (मः) मकारादेश होता है।*

*उदा०-**(प्रस्त्या) प्रस्तीमः, प्रस्तीमवान्।** उसने शब्द किया/सङ्घात बनाया। **प्रस्तीतः, प्रस्तीतवान्।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-**प्रस्तीमः।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'ष्ट्यै शब्दसंघातयोः'** (भ्वा०प०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। **'आदेच उपदेशेऽशिति'** (६।१।४४) से धातुस्थ एच् (ऐ) को आकारादेश होता है। **स्त्यः प्रपूर्वस्य'** (६।१।२३) से प्र-उपसर्गपूर्वक 'स्त्या' धातु को सम्प्रसारण, **'सम्प्रसारणाच्च'** (६।१।१०६) से आकार को पूर्वरूप एकादेश और **'हलः'** (६।४।२) से दीर्घ होता है। 'क्तवतु' प्रत्यय में-**प्रस्तीमवान्।** विकल्प-पक्ष में मकारादेश नहीं है-**प्रस्तीतः, प्रस्तीवान्।** यहां प्रथम **'स्त्यः प्रपूर्वस्य'** (६।१।२३) से सम्प्रसारण होने पर यह धातु आकारान्त नहीं रहती है। क्तवतु प्रत्यय में-**प्रस्तीतवान्।***

निपातनम्–

(१४) अनुपसर्गात् फुल्लक्षीबकृशोल्लाघाः।५५।

प०वि०–अनुपसर्गात् ५ ।१ फुल्ल–क्षीब–कृश–उल्लाघाः १ ।३ ।

स०–न उपसर्ग इति अनुपसर्गः, तस्मात्–अनुपसर्गात् (नञ्तत्पुरुषः)। फुल्लश्च क्षीबश्च कृशश्च उल्लाघश्च ते–फुल्लक्षीबकृशोल्लाघाः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अन्वयः–फुल्लक्षीबकृशोल्लाघा अनुपसर्गान्निपातनम्।

अर्थः–फुल्लक्षीबकृशोल्लाघाः शब्दा निपात्यन्ते, न चेदेते उपसर्गाद् उत्तरा भवन्ति।

उदा०–फुल्लः, फुल्लवान्। क्षीबः। कृशः। उल्लाघः।

आर्यभाषाः *अर्थ–(फुल्ल०) फुल्ल, क्षीब, कृश, उल्लाघ ये शब्द निपातित हैं (अनुपसर्गात्) यदि ये शब्द उपसर्ग से परवर्ती न हों।*

*उदा०–**फुल्लः,** **फुल्लवान्।** उसने तोड़ा। **क्षीबः।** वह मस्त हुआ। **कृशः।** वह पतला हुआ। **उल्लाघः।** वह समर्थ हुआ।*

*सिद्धि–(१) **फुल्लः।** फला+क्त। फल्+त। फुल्+ल। फुल्ल+सु। फुल्लः।*

*यहां 'ञिफला विशरणे' (भ्वा०प०) धातु से 'निष्ठा' (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। 'आतो लोप इटि च' (६।४।६४) से धातुस्थ आकार का लोप होता है। 'आदितश्च' (७।२।१६) से इडागम का प्रतिषेध और 'उत्परस्यातः' (७।४।८८) से धातुस्थ अकार को उकारादेश होता है। इस सूत्र से निष्ठा के तकार को लकारादेश निपातित है। क्तवतु प्रत्यय में भी लकारादेश अभीष्ट है–**फुल्लवान्।***

*(२) **क्षीबः।** क्षीबृ+क्त। क्षीब्+त। क्षीब्+०अ। क्षीब+सु। क्षीबः।*

यहां 'क्षीबृ मदे' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'क्त' प्रत्यय के तकार (त्) का लोप निपातित है। तकार लोप को असिद्ध मानकर 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' (७।२।३५) से इडागम प्राप्त होता है, अतः इट् का अभाव भी निपातित है।

*(३) **कृशः।** 'कृश तनूकरणे' (दि०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(४) **उल्लाघः।** उत्-उपसर्गपूर्वक 'लाघृ सामर्थ्ये' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत्।*

नादेश-विकल्पः–

(१५) नुदविदोन्दत्राघ्राह्रीभ्योऽन्यतरस्याम्।५६।

प०वि०–नुद-विद-उन्द-त्रा-घ्रा-ह्रीभ्यः ५ ।३ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-नुदश्च विदश्च उन्दश्च त्राश्च घ्राश्च ह्रीश्च ते नुदविदोन्दत्राघ्राह्रियः, तेभ्यः-नुदविदोन्दत्राघ्राह्रीभ्यः।

अनु०-निष्ठातः, नः, धातोरिति चानुवर्तनीयम्।

अन्वयः-नुदविदोन्दत्राघ्राह्रीभ्यो धातुभ्यो निष्ठातोऽन्यतरस्यां नः।

अर्थः-नुदविदोन्दत्राघ्राह्रीभ्यो धातुभ्यः परस्य निष्ठातकारस्य स्थाने विकल्पेन नकारादेशो भवति।

उदा०-(**नुद**) नुन्नः, नुत्तः। (**विद्**) विन्नः, वित्तः। (**उन्द**) समुन्नः, समुत्तः। (**त्रा**) त्राणः, त्रातः। (**घ्रा**) घ्राणः, घ्रातः। (**ह्री**) ह्रीणः, ह्रीतः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(नुद०) नुद, विद, विन्द, त्रा, घ्रा, ह्री इन (धातुभ्यः) धातुओं से परवर्ती (निष्ठातः) निष्ठा के तकार के स्थान में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (नः) नकारादेश होता है।*

*उदा०-(**नुद**) **नुन्नः, नुत्तः।** प्रेरित किया गया। (**विद्**) **विन्नः, वित्तः।** विचार किया गया। (**उन्द**) **समुन्नः, समुत्तः।** गीला किया गया। (**त्रा**) **त्राणः, त्रातः।** पालन किया गया। (**घ्रा**) **घ्राणः, घ्रातः।** सूंघा गया। (**ह्री**) **ह्रीणः, ह्रीतः।** लज्जित हुआ।*

सिद्धि-(१) नुन्नः। *यहां 'णुद प्रेक्षणे' (तु०उ०) धातु से 'निष्ठा' (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'क्त' के तकार को और **'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः'** (८।२।४२) से पूर्ववर्ती धातुस्थ दकार को भी नकारादेश होता है। विकल्प-पक्ष में-**नुत्तः।***

*(२) **विन्नः।** 'विद विचारणे' (रुधा०आ०) धातु से-**विन्नः।** विकल्प-पक्ष में-**वित्तः।***

*(३) **समुन्नः।** सम्-उपसर्गपूर्वक **'उन्दी क्लेदने'** (रु०प०) धातु से-**समुन्नः।** विकल्प-पक्ष में-**समुत्तः।** **'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति'** (६।४।२४) से धातुस्थ अनुनासिक (न्) का लोप होता है।*

*(४) **त्राणः।** 'त्रैङ् पालने' (भ्वा०आ०) धातु से-**त्राणः।** **'रषाभ्यां नो णः समानपदे'** (८।४।१) से णत्व होता है। विकल्प-पक्ष में-**त्रातः।***

*(५) **घ्राणः।** 'घ्रा गन्धोपादाने' (भ्वा०प०) धातु से-**घ्राणः।** पूर्ववत् णत्व होता है। विकल्प-पक्ष में-**घ्रातः।***

*(६) **ह्रीणः।** 'ह्री लज्जायाम्' (जु०प०) धातु से-**ह्रीणः।** पूर्ववत् णत्व होता है। विकल्प-पक्ष में-**ह्रीतः।***

विशेषः *वेत्तेस्तु विदितो निष्ठा विद्यतेर्विन्न इष्यते।*
विन्तेर्विन्नश्च वित्तश्च वित्तो भोगेषु विन्दतेः।।

अर्थः- 'विद ज्ञाने' (अ०प०) धातु से निष्ठा में-वित्तः, 'विद सत्तायाम्' (दि०आ०) धातु से-विन्नः, 'विद विचारणे' (रुधा०आ०) धातु से-विन्नः और वित्तः, 'विद्लृ लाभे' (तु०उ०) धातु से भोग और प्रत्यय (प्रसिद्धि) अर्थ में-वित्तः, यह रूप बनता है। यहां 'विद विचारणे' (रुधा०आ०) धातु का ग्रहण किया जाता है।

नकारादेश-विकल्पः--

(१६) न ध्याख्यापॄमूर्च्छिमदाम्।५७।

प०वि०- न अव्ययपदम्, ध्या-ख्या-पॄ-मूर्च्छि-मदाम् ६।३ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-ध्याश्च ख्याश्च पॄश्च मूर्च्छिश्च मद् च ते-ध्याख्यापॄमूर्च्छिमदः, तेषाम्-ध्याख्यापॄमूर्च्छिमदाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-निष्ठातः, नः, धातोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-ध्याख्यापॄमूर्च्छिमदिभ्यो धातुभ्यो निष्ठातो नो न।

अर्थः-ध्याख्यापॄमूर्च्छिमदिभ्यो धातुभ्यः परस्य निष्ठातकारस्य स्थाने नकारादेशो न भवति।

उदा०-(ध्या) ध्यातः, ध्यातवान्। **(ख्या)** ख्यातः, ख्यातवान्। **(पॄ)** पूर्तः, पूर्तवान्। **(मूर्छा)** मूर्तः, मूर्तवान्। **(मद)** मत्तः, मत्तवान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ध्या०) ध्या, ख्या, पॄ, मूर्च्छि, मद इन (धातुभ्यः) धातुओं से परवर्ती (निष्ठातः) निष्ठा के तकार के स्थान में (नः) नकारादेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(ध्या) **ध्यातः, ध्यातवान्।** उसने चिन्तन किया। (ख्या) **ख्यातः, ख्यातवान्।** उसने प्रकथन किया। (पॄ) **पूर्तः, पूर्तवान्।** उसने पालन-पूरण किया। (मूर्छा) **मूर्तः, मूर्तवान्।** वह मूर्च्छित हुआ। (मद) **मत्तः, मत्तवान्।** वह हर्षित हुआ।*

*सिद्धि-(१) **ध्यातः।** यहां **'ध्यै चिन्तायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। **'संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः'** (८।२।४३) से निष्ठा-तकार को नकारादेश प्राप्त है। अतः इस सूत्र से नकारादेश का प्रतिषेध किया गया है। 'क्तवतु' प्रत्यय में-**ध्यातवान्।***

*(२) **ख्यातः।** यहां **'ख्या प्रकथने'** (अदा०प०) धातु से पूर्ववत्। 'क्तवतु' प्रत्यय में-**ख्यातवान्।***

*(३) पूर्तः। यहां 'पॄ पालनपूरणयोः' (जु०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। '**श्र्युकः किति**' (७।२।११) से इडागम का प्रतिषेध है। '**उदोष्ठ्यपूर्वस्य**' (७।१।१०२) से ॠकार के स्थान में उकारादेश, 'उरण् रपरः' (१।१।५१) से इसे रपरत्व और '**हलि च**' (८।२।७७) से दीर्घ होता है। '**रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः**' (८।२।४२) से नकारादेश प्राप्त था, अतः इस सूत्र से उसका प्रतिषेध किया गया है। 'क्तवतु' प्रत्यय में-पूर्तवान्।*

*(४) मूर्तः। यहां '**मूर्छा मोहसमुच्छ्राययोः**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। 'राल्लोपः' (६।४।२१) से च्छकार का लोप और '**आदितश्च**' (७।२।१६) से इडागम का प्रतिषेध है। '**रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः**' (८।२।४२) से नकारादेश प्राप्त था, अतः इस सूत्र से उसका प्रतिषेध किया गया है। 'क्तवतु' प्रत्यय में-मूर्तवान्।*

*(५) मत्तः। यहां '**मदी हर्षे**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। '**श्वीदितो निष्ठायाम्**' (७।२।१४) से इडागम का प्रतिषेध है। '**रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः**' (८।२।४२) से नकारादेश प्राप्त था, अतः इस सूत्र से उसका प्रतिषेध किया गया है। 'क्तवतु' प्रत्यय में-मत्तवान्।*

निपातनम्—

(१७) वित्तो भोगप्रत्यययोः।५८।

प०वि०-वित्तः १।१ भोग-प्रत्यययोः ७।२।

स०-भोगश्च प्रत्ययश्च तौ भोगप्रत्ययौ, तयोः-भोगप्रत्यययोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-निष्ठातः, नः, धातोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-भोगप्रत्यययोर्वित्त इति निपातनम्।

अर्थः-भोगे प्रत्यये चाभिधेये वित्त इति पदं निपात्यते।

उदा०-(**भोगः**) वित्तमस्य बहु। अस्य धनं बह्वित्यर्थः। धनं हि भुज्यतेऽतस्तद् भोग इत्यभिधीयते। (**प्रत्ययः**) वित्तोऽयं मनुष्यः। प्रतीतः=प्रसिद्ध इत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(भोगप्रत्यययोः) भोग और प्रत्यय अर्थ अभिधेय में (वित्तः) वित्त यह पद निपातित है।*

उदा०-(भोग) वित्तमस्य बहु। इसके पास बहुत धन है। धन का ही भोग किया जाता है, अतः वह भोग कहलाता है। (प्रत्यय) वित्तोऽयं मनुष्यः। यह मनुष्य प्रतीत=प्रसिद्ध है।

सिद्धि-(१) वित्तः। यहां 'विद्लृ लाभे' (तु०उ०) धातु से 'निष्ठा' (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। 'रदाभ्यां निष्ठातो०' (८।२।४२) से निष्ठा के तकार को नकारादेश प्राप्त है, अतः इस सूत्र से भोग और प्रत्यय अर्थ में 'वित्त' शब्द में नत्व का अभाव निपातित किया गया है।

निपातनम्--

(१८) भित्तं शकलम्।५६।

प०वि०-भित्तम् १।१ शकलम् १।१।

अन्वयः-भित्तमिति निपातनम्, शकलं चेत्।

अर्थः-भित्तमिति पदं निपात्यते, शकलं चेत् तद् भवति।

उदा०-भित्तं तिष्ठति। भित्तं प्रपतति।

आर्यभाषाः अर्थ-*(भित्तम्) भित्त यह पद निपातित है (शकलम्) यदि वह शकलवाची है। शकल=खण्ड (टुकड़ा)।*

*उदा०-**भित्तं तिष्ठति।** टुकड़ा है। **भित्तं प्रपतति।** टुकड़ा गिरता है।*

*सिद्धि-**भित्तम्।** यहां 'भिदिर् विदारणे' (रुधा०प०) धातु से 'निष्ठा' (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। 'रदाभ्यां निष्ठातो०' (९८।२।४२) से नकारादेश प्राप्त था, अतः इस सूत्र से शकल अर्थ में उसका प्रतिषेध निपातित किया गया है।*

निपातनम्--

(१९) ऋणमाधमर्ण्ये।६०।

प०वि०-ऋणम् १।१ आधमर्ण्ये ७।१।

स०-ऋणेऽधम इति अधमर्णः, अधमर्णस्य भाव इति आधमर्ण्यम्, तस्मिन्-आधमर्ण्ये सप्तमीतत्पुरुषस्ततः **'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च'** (।१।१२४) इति भावेऽर्थे **ष्यञ्** प्रत्ययः।

'अधमर्णः' इत्यत्र **'सप्तमी शौण्डैः'** (२।१।४०) इत्यत्र योगविभागात् सप्तमीतत्पुरुषः समासः। **अस्मादेव** वचनादधमशब्दस्य पूर्वनिपातो वेदितव्यः।

अन्वयः-आधमर्ण्ये ऋणमिति निपातनम्।

अर्थः-आधमर्ण्ये विषये ऋणमिति पदं निपात्यते।

उदा०-ऋणं ददाति। ऋणं धारयति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अधमर्ण्ये) अधमर्ण=कर्जदार विषय में (ऋणम्) **ऋण** यह पद निपातित है।*

*उदा०-**ऋणं ददाति।** साहूकार कर्जा देता है। **ऋणं धारयति।** कर्जदार कर्ज को धारण करता है।*

अधमर्ण के द्वारा कालान्तर में देय और उत्तमर्ण के द्वारा कालन्तर में प्राप्य द्रव्य 'ऋण' कहलाता है।

***सिद्धि-ऋणम्।** यहां **'ऋ गतौ'** (जु०प०) अथवा **'ऋ गतिप्रापणयोः'** (भ्वा०प०) धातु से **'नपुंसके भावे क्तः'** (३।३।११४) से 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से आधमर्ण्य अर्थ में निष्ठा के तकार को नकारादेश निपातित है। वा०- **'ऋवर्णाच्चेति वक्तव्यम्'** (८।४।१) से णत्व होता है।*

निपातनम्-

(२०) नसत्तनिषत्तानुत्तप्रतूर्तसूर्तगूर्तानि छन्दसि।६१।

प०वि०-नसत्त-निषत्त-अनुत्त-प्रतूर्त-सूर्त-गूर्तानि १।३ छन्दसि ७।१।

स०-नसत्तं च निषत्तं च अनुत्तं च प्रतूर्तं च सूर्तं च गूर्तं च तानि-नसत्तनिषत्तानुत्तप्रतूर्तसूर्तगूर्तानि (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-छन्दसि नसत्तनिषत्तानुत्तप्रतूर्तसूर्तगूर्तानीति निपातनम्।

अर्थः-छन्दसि विषये नसत्तनिषत्तानुत्तप्रतूर्तसूर्तगूर्तानीत्येतानि पदानि निपात्यन्ते।

उदा०-**(नसत्तम्)** नसत्तमञ्जसा। **(निषत्तम्)** निषत्तः (ऋ० १।५८।३)। **(अनुत्तम्)** उनुत्तमा ते मघवन् (ऋ० १।१६५।९)। **(प्रतूर्तम्)** प्रतूर्त वाजिन् (तै०सं० ४।१।२।१)। **(सूर्तम्)** सूर्ता गावः। **(गूर्तम्)** गूर्ता अमृतस्य (यजु० ६।३४)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (नसत्त०) नसत्त, निषत्त, अनुत्त, प्रतूर्त, सूर्त, गूर्त ये पद निपातित हैं।*

*उदा०-(नसत्तम्) **नसत्तमञ्जसा।** नसत्तम्=पृथक् न हुआ। भाषा में-**नसन्नम्।** (निषत्त) **निषत्तः** (ऋ० १।५८।३)। निषत्तः=बैठा हुआ। भाषा में-**निषण्णः।** (अनुत्त) **उनुत्तमा ते मघवन्** (ऋ० १।१६५।९)। अनुत्तम्=आर्द्र कोमल। भाषा में-**अनुन्नम्।***

*(प्रतूर्त) प्रतूर्त वाजिन् (तै०सं० ४।१।२।१)। प्रतूर्त=अत्यन्त गतिशील। भाषा में-**प्रतूर्णम्।** (सूर्त) सूर्ता गावः। सूर्त=गतिशील। भाषा में-सृतम्। (गूर्त) गूर्ता अमृतस्य (यजु० ६।३४)। गूर्ता=उठे हुये। भाषा में-गूर्णम्।*

*सिद्धि-(१) **नसत्तम्।** यह नञ्-पूर्वक 'षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। **'रदाभ्यां निष्ठातो०'** (८।२।४२) से निष्ठा के तकार को नकारादेश और पूर्ववर्ती धातुस्थ दकार के भी नकारादेश प्राप्त है। इस सूत्र से वेदविषय में नकारादेश का अभाव निपातित है।*

*(२) **निषत्तम्।** नि-उपसर्गपूर्वक 'सद्' धातु से पूर्ववत्। 'सदिरप्रतेः' (८।३।६६) से षत्व होता है।*

*(३) **अनुत्तम्।** यहां नञ्-पूर्वक 'उन्दी क्लेदने' (रुधा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। 'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति' (६।४।२४) से धातुस्थ अनुनासिक (न्) का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **प्रतूर्तम्।** प्र-उपसर्गपूर्वक 'त्वरा सम्भ्रमे' (भ्वा०आ०) अथवा 'तुर्वी गत्यर्थः' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। पूर्ववत् नत्वाभाव निपातित है।*

*(५) **सूर्तम्।** यहां 'सृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय और धातुस्थ ऋकार को उकारादेश और नत्वाभाव निपातित है। इसे 'उरण् रपरः' (१।१।५१) से रपरत्व और 'हलि च' (८।२।७७) से दीर्घ होता है।*

*(६) **गूर्तम्।** यहां 'गूरी उद्यमने' (दि०आ०) धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। 'रदाभ्यां निष्ठातो०' (८।४।४२) से नकारादेश प्राप्त है, अतः इस सूत्र से नकारादेश का अभाव निपातित है।*

।। इति निष्ठातकारादेशप्रकरणम्।।

आदेशप्रकरणम्

कु-आदेशः–

(१) क्विन्प्रत्ययस्य कुः।६२।

प०वि०-क्विन्प्रत्ययस्य ६।१ कुः १।१।

स०-क्विन् प्रत्ययो यस्माद् धातोः स क्विन्प्रत्ययः, तस्य-क्विन्-प्रत्ययस्य (बहुव्रीहिः)।

अनु०-पदस्य, धातोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-क्विन्प्रत्ययस्य धातोः पदस्य कुः।

अर्थः-क्विन्प्रत्ययस्य धातोः पदस्यान्ते कवर्गादेशो भवति।

उदा०-'स्पृशोऽनुदके क्विन्' (३।२।५८) घृतस्पृक्। हलस्पृक्। मन्त्रस्पृक्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(क्विन्प्रत्ययस्य) जिससे क्विन् प्रत्यय किया गया है उस धातु को (पदस्य) पद के अन्त में (कुः) कवर्गादेश होता है।*

*उदा०-'स्पृशोऽनुदके **क्विन्**' (३।२।५८) **घृतस्पृक्।** घृत का स्पर्शमात्र करनेवाला (अल्पमात्रा में सेवन करनेवाला)। हलस्पृक्। हल का स्पर्श करनेवाला। **मन्त्रस्पृक्।** मन्त्रपूर्वक अङ्गस्पर्श करनेवाला (उपासक)।*

सिद्धि-घृतस्पृक्। *यहां घृत-उपपद 'स्पृश संस्पर्शने' (तु०प०) धातु से **'स्पृशोऽनुदके क्विन्'** (३।२।५८) से 'क्विन्' प्रत्यय है। 'क्विन्' का सर्वहारी लोप होता है। इस सूत्र से 'क्विन्' प्रत्ययान्त 'स्पृश्' धातु को पद के अन्त में कवर्गादेश होता है। विवृतकरण, श्वासानुप्रदान, अघोष शकार को तादृश ही कवर्ग खकारादेश किया जाता है। **'झलां जशोऽन्ते'** (८।२।३९) से खकार को जश् गकार और 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से गकार को चर् ककार होता है। ऐसे ही-हलस्पृक्, **मन्त्रस्पृक्।***

कु-आदेशविकल्पः--

(२) नशेर्वा।६३।

प०वि०-नशेः ६।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०-पदस्य, धातोः कुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-नशेर्धातोः पदस्य वा कुः।

अर्थः-नशेर्धातोः पदस्यान्ते विकल्पेन कवर्गादेशो भवति।

उदा०-सा वै जीवनगाहुतिः। सा वै जीवनडाहुतिः (मै०सं० १।४।१३)।

आर्यभाषाः अर्थ-(नशेः) *नश् इस (धातोः) धातु को (पदस्य) पद के अन्त में (वा) विकल्प से (कुः) कवर्गादेश होता है।*

*उदा०-सा वै जीवनगाहुतिः। सा वै **जीवनडाहुतिः** (मै०सं० १।४।१३)। वह आहुति तो जीव का नाश करनेवाली है।*

सिद्धि-(१) जीवनक्। *यहां जीव-उपपद **'णश अदर्शने'** (दि०प०) धातु से वा०-**'सम्पदादिभ्यः क्विप्'** (३।३।९४) से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'क्विप्' प्रत्यय का सर्वहारी लोप होता है। इस सूत्र से 'नश्' धातु को पद के अन्त में कवर्गादेश होता है। पूर्ववत् शकार को कवर्ग खकार, खकार को जश् गकार और गकार को चर् ककार **होता***

है। विकल्प-पक्ष में-जीवनट्। यहां 'व्रश्चभ्रस्ज०' (८।२।३६) से नश् धातु के शकार को षकार, 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से षकार को जश् डकार और 'वाऽवसाने' (८।४।५५) से डकार को चर् टकार होता है।

न-आदेशः-

(३) मो नो धातोः।६४।

प०वि०-मः ६।१ नः १।१ धातोः ६।१।

अनु०-पदस्येत्यनुवर्तते।

अन्वयः-मो धातोः पदस्य नः।

अर्थः-मकारान्तस्य धातोः पदस्य नकारादेशो भवति।

उदा०-(शम्) प्रशान्। (तम्) प्रतान्। (दम्) प्रदान्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(मः) मकार जिसके अन्त में है उस (धातोः) धातु के (पदस्य) पद के अन्त में (न) नकारादेश होता है।*

*उदा०-(शम्) **प्रशान्**। शान्त करनेवाला। (तम्) **प्रतान्**। तमन्ना (इच्छा) करनेवाला। (दम्) **प्रदान्**। दमन करनेवाला।*

*सिद्धि-**प्रशान्**। यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'शमु उपशमे'** (दि०प०) धातु से **'क्विप् च'** (३।२।७६) से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'क्विप्' प्रत्यय का सर्वहारी लोप होता है। इस सूत्र से 'शम्' धातु के मकार को पद के अन्त में नकारादेश होता है। **'अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति'** (६।४।१५) से नकारान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ होता है। नकारादेश के असिद्ध होने से **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से नकार का लोप होता है।*

न-आदेशः-

(४) म्वोश्च।६५।

प०वि०-म्वोः ७।२ च अव्ययपदम्।

स०-मश्च वश्च तौ म्वौ, तयोः-म्वोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-मः, नः, धातोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-मो धातो म्वोश्च नः।

अर्थः-मकारान्तस्य धातोर्मकारे वकारे च परतश्च नकारादेशो भवति।

उदा०-(मः) अगन्म तमसः पारम् (यजु० १२।७३)। (वः) अगन्व। जगन्वान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(मः) मकार जिसके अन्त में है उस (धातोः) धातु को (म्वोः) मकार और वकार परे होने पर (च) भी (नः) नकारादेश होता है।*

*उदा०-(म) **अगन्म तमसः पारम्** (यजु० १२।७३)। हम सब अन्धकार से पार चले गये। (व) **अगन्व**। हम दोनों गये। **जगन्वान्**। वह गया।*

__सिद्धि-(१) अगन्म__। गम्+लङ्। अट्+गम्+ल्। अ+गम्+शप्+मस्। अ+गम्+०+म०। अ+गन्+म। अगन्म।

*यहां 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से **'अनद्यतने लङ्'** (३।२।१११) से 'लङ्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'मस्' आदेश, **कर्तरि शप्** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और 'बहुलं छन्दसि' (२।४।७३) से इसका लुक् होता है। इस सूत्र से 'गम्' धातु के मकार को मकार परे होने पर नकारादेश होता है। 'वस्' प्रत्यय में-**अगन्व**।*

*(२) **जगन्वान्**। गम्+लिट्। गम्+क्वसु। गम्+वस्। गम्-गम्+वस्। ग-गम्+वस्। ज-गन्+वस्। जगान्वस्+सु। जगन्व नुम् स्+स्। जन्वान् स्+०। जगान्वान्०। जगन्वान्।*

*यहां 'गम्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से **'परोक्षे लिट्'** (३।२।११५) से 'लिट्' प्रत्यय है। **'क्वसुश्च'** (३।२।१०७) से 'लिट्' के स्थान में 'क्वसु' आदेश, **'विभाषा गमहनविदविशाम्'** (७।२।६८) से पक्ष में 'वसु' को इडागम का अभाव, 'हल्ङ्याब्भ्यो **दीर्घात्०'** (६।१।६७) से 'सु' का लोप, **'संयोगान्तस्य लोपः'** (८।२।२३) से संयोगान्त सकार का लोप और **'सान्तमहतः संयोगस्य'** (६।४।१०) से दीर्घ होता है।*

{रु-आदेशप्रकरणम्}

रु-आदेशः-

(१) ससजुषो रुः।६६।

प०वि०-स-सजुषोः ६।१ रुः १।१।

स०-सश्च सजुष् च एतयोः समाहारः ससजुष्, तस्य-ससजुषः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-पदस्येत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ससजुषः पदस्य रुः।

अर्थः-सकारान्तस्य सजुष् इत्येतस्य च पदस्य रुरादेशो भवति।

उदा०-(**सकारान्तः**) अग्निरत्र। वायुरत्र। (**सजुष्**) सजूर्ऋषिभिः (ऋ०मै०सं० २।८।१)। सजूर्देवेभिः (ऋ० ७।३४।१५)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ससजुषः) सकारान्त और सजुष् (पदस्य) पद के अन्त्य वर्ण को (रुः) रु आदेश होता है।*

*उदा०-(सकारान्त) **अग्निरत्र**। यहां अग्नि है। **वायुरत्र**। यहां वायु है। (**सजुष्**) **सजूर्ऋषिभिः** (ऋ०मै०सं० २।८।१)। ऋषियों के साथ। **सजूर्देवेभिः** (ऋ० ७।३४।१५)। देवों के साथ। देव=विद्वान्।*

सिद्धि-(१) अग्निरत्र। *अग्नि+सु। अग्नि+स्। अग्निस्+अत्र। अग्निरु+अत्र। अग्निर्+अत्र। अग्निरत्र।*

*यहां 'अग्नि' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। '**उपदेशेऽजनुनासिक इत्**' (१।३।२) से उकार की इत्संज्ञा होकर '**तस्य लोपः**' (१।३।९) उसका लोप होता है। इस सूत्र से सकारान्त 'अग्निस्' शब्द के अन्त्य सकार के स्थान में 'रु' आदेश होता है। पूर्ववत् उकार की इत्संज्ञा होकर उसका लोप होता है। ऐसे ही-**वायुस्+अत्र=वायुरत्र**।*

*(२) **सजूर्ऋषिभिः**। 'सजुष्' शब्द में सह-उपपद '**जुषी प्रीतिसेवनयोः**' (तु०आ०) धातु से वा०-'**सम्पदादिभ्यः क्विप्**' (३।३।९४) से भाव अर्थ में 'क्विप्' प्रत्यय है। इसका सर्वहारी लोप होता है। 'सह जुषते इति सजूः। वा०- '**उपपदमतिङ्**' (२।२।१९) से उपपदतत्पुरुष है। '**सहस्य सः संज्ञायाम्**' (६।३।७८) से 'सह' को 'स' आदेश होता है। यह सह-अर्थ का वाचक है। इस सूत्र से सजुष् इस पद के अन्त्य षकार के स्थान में रु-आदेश होता है। यह सूत्र '**झलां जशोऽन्ते**' (८।२।३९) का अपवाद है।*

निपातनम्—

(२) अवयाः श्वेतवाः पुरोडाश्च।६७।

प०वि०- अवयाः १।१ (सम्बुद्धिः)। श्वेतवाः १।१ (सम्बुद्धिः)। पुरोडाः १।१ (सम्बुद्धिः)। च अव्ययपदम्।

अन्वयः-अवयाः श्वेतवाः पुरोडाश्चेति निपातनम्।

अर्थः-अवयाः, श्वेतवाः, पुरोडा इत्येते **शब्दाश्च** निपात्यन्ते।

उदा०-हे अवयाः ! (मा०सं० ३।४६)। हे श्वेतवाः ! हे पुरोडाः ! (ऋ० ३।२८।२)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(अवयाः०) अवयाः, श्वेतवाः, पुरोडाः ये **शब्द (च)** भी निपातित हैं।*

*उदा०-हे **अवयाः** ! (मा०सं० ३।४६)। अवयाः=विरुद्ध कर्म न करनेवाला ईश्वर। हे **श्वेतवाः** ! श्वेतवाः=श्वेत घोड़े जिसके वाहन हैं वह इन्द्र=राजा। हे **पुरोडाः** ! (ऋ० ३।२८।२)। विधिपूर्वक संस्कृत अन्नविशेष जिसकी पहले आहुति दी जाती है और पश्चात् उसका भक्षण किया जाता है।*

*सिद्धि-**अवयाः** ! अव-उपसर्गपूर्वक '**यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु**' (भ्वा०उ०) धातु से '**अवे यजः**' (३।२।७२) से 'ण्विन्' प्रत्यय है। वा०-'**श्वेतावहादीनां डस् पदस्य च**' (३।२।७१) से 'ण्विन्' के स्थान में 'डस्' आदेश होता है। प्रत्यय के डित् होने से वा०-'**डित्यभस्यापि टेर्लोपः**' (६।४।४३) से 'यज्' के टि-भाग (अज्) का लोप होता है। अवयजस्+सु। इस स्थिति में '**अत्वसन्तस्य चाधातोः**' (६।४।१४) से दीर्घ होता है। '**हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्**०' (६।१।६६) से 'सु' का लोप होता है। इस सूत्र से 'अवयास्' को '**ससजुषो रुः**' (८।२।६६) से रुत्व और '**खरवसानयोर्विसर्जनीयः**' (८।३।१५) से रेफ को अवसानलक्षण विसर्जनीय आदेश होता है। '**अत्वसन्तस्य चाधातोः**' (६।४।१४) में 'असम्बुद्धि' की अनुवृत्ति है। इसका सम्बुद्धि में भी दीर्घत्व के लिये निपातन किया गया है।*

*(२) **श्वेतवाः**। यहां श्वेत-उपपद '**वह प्रापणे**' (भ्वा०प०) धातु से '**मन्त्रे श्वेतवहो**०' (३।२।७१) से 'ण्विन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **पुरोडाः**। यहां पुरस्-उपपद '**दाशृ दाने**' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'ण्विन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

रु-आदेशः-

(३) अहन्।६८।

वि०-अहन् ६।१ (लुप्तषष्ठीकं पदम्)।

अनु०-पदस्य, रुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अहन् इति पदस्य रुः।

अर्थः-अहन् इत्येतस्य पदस्य रुरादेशो भवति।

उदा०-(अहन्) अहोभ्याम्। अहोभिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अहन्) अहन् इस (पदस्य) पद के अन्त्य वर्ण को (रुः) रु आदेश होता है।*

*उदा०-(अहन्) **अहोभ्याम्**। दो दिनों से। **अहोभिः**। सब दिनों से।*

*सिद्धि-**अहोभ्याम्**। अहन्+भ्याम्। अहरु+भ्याम्। अहर्+भ्याम्। अह उ+भ्याम्। अहो+भ्याम्। अहोभ्याम्।*

यहां 'अहन्' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'भ्याम्' प्रत्यय है। 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' (१।४।१७) की 'अहन्' की पद संज्ञा है। इस सूत्र से 'अहन्' पद के अन्त्य वर्ण नकार के स्थान में रु आदेश होता है। 'हशि च' (६।१।१११) से रु के रेफ को उकारादेश और 'आद्गुणः' (६।१।८५) से गुणरूप (अ+उ=ओ) एकादेश है। भिस्-प्रत्यय में-अहोभिः।

यहां 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से नकार का लोप प्राप्त था, अतः यह रु-आदेश का विधान किया गया है।

र-आदेशः–

(४) रोऽसुपि।६६।

प०वि०-रः १।१ असुपि ७।१।

स०-न सुप् इति असुप्, तस्मिन्-असुपि (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, अहनिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अहनिति पदस्यासुपि रः।

अर्थः-अहनित्येतस्य पदस्याऽसुपि परतो रेफादेशो भवति।

उदा०-(अहन्) अहर्ददाति। अहर्भुङ्क्ते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अहन्) अहन् इस (पदस्य) पद के अन्त्य वर्ण के स्थान पर (रः) रेफादेश होता है।*

*उदा०-(अहन्) **अहर्ददाति**। वह दिन भर दान करता है। **अहर्भुङ्क्ते**। वह दिन भर खाता-पीता है।*

सिद्धि-अहर्ददाति। *अहन्+अम्। अहन्+०। अहर्+ददाति=अहर्ददाति।*

यहां 'अहन्' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'अम्' प्रत्यय है। 'स्वमोर्नपुंसकात्' (७।२।२३) से 'अम्' का लुक् होता है। 'सुप्तिङन्तं पदम्' (१।४।१४) से इसकी पद संज्ञा है। इस सूत्र से 'अहन्' पद को 'सुप्' प्रत्यय परे न होने पर रेफादेश होता है। 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' (२।३।५) से अत्यन्त संयोग में द्वितीया विभक्ति है।

उभयथा (रुः+रः)–

(५) अम्नरूधरवरित्युभयथा छन्दसि।७०।

प०वि०-अम्नर्-ऊधर्-अवः ६।१ (लुप्तषष्ठीकं पदम्), **इति** अव्ययपदम्, उभयथा अव्ययपदम्, छन्दसि ७।१।

स०-अम्नश्च ऊधश्च अवश्च एतेषां समाहारः-अम्नरूधरवः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-पदस्य, रुः, रेफ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि अम्नरूधरवरिति पदानां रू रेफो वा उभयथा।

अर्थः-छन्दसि विषयेऽम्नस्, ऊधस्, अवस् इत्येतेषां पदानां रुर्वा रेफो वेत्युभयथा भवति।

उदा०-(**अम्नस्**) अम्न एव (मै०सं० १।६।१०)। अम्नरेव। (**ऊधस्**) ऊध एव (काठ० ७।५)। ऊधरेव। (**अवस्**) अव एव (शौ०सं० २०।२५।२)। अवरेव।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अम्न०) अम्नस्, ऊधस्, अवस् (इति) इन (पदानाम्) पदों को (रुः, रेफः) रु-आदेश और रेफादेश (उभयथा) दोनों प्रकार होते हैं।*

उदा०-(अम्नस्) अम्न एव (मै०सं० १।६।१०) ***अम्नरेव।*** *अम्नः। (ऊधस्) ऊध एव (काठ० ७।५)* ***ऊधरेव।*** *ऊधः=रात्रि-नाम (निघण्टु १।७)। (अवस्) अव एव (शौ०सं० २०।२५।२)* ***अवरेव।*** *अवः=अन्न-नाम (निघण्टु २।७)।*

सिद्धि-अम्न एव। *अम्नस्+एव। अम्नरु+एव। अम्नर्+एव। अम्नय्+एव। अम्न०+एव। अम्न एव।*

यहां 'अम्नस्' पद के अन्त्य सकार को इस सूत्र से 'रु' आदेश है। ***'भो भगो अघो अपूर्वपूर्वस्य योऽशि'*** *(८।३।१७) से 'रु' के रेफ को यकारादेश और* ***'लोपः शाकल्यस्य'*** *(८।३।१९) से यकार का लोप होता है। द्वितीय प्रकार में रेफादेश है-**अम्नरेव।** ऐसे ही-उध एव, ऊधरेव। अव एव, अवरेव।*

उभयथा (रुः+रः)-

(६) भुवश्च महाव्याहृते।७१।

प०वि०-भुवः अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्, महाव्याहृतेः ६।१।

अनु०-पदस्य, रुः, रः, उभयथा, छन्दसीति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि महाव्याहृतेर्भुवरिति रू रेफो वा उभयथा।

अर्थः-छन्दसि विषये महाव्याहृतेर्भुवरित्येतस्य पदस्य च रुर्वा रेफो वेत्युभयथा भवति।

उदा०-(**भुवस्**) भुव इत्यन्तरिक्षम्, भुवरित्यन्तरिक्षम्।

'भुवः' इत्येतदव्ययमन्तरिक्षवाचि महाव्याहृतिः कथ्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (महाव्याहृतेः) महाव्याहृतिसंज्ञक (भुवः) भुवस् इस (पदस्य) पद के अन्त्य वर्ण को (च) भी (रुः, रः) रु-आदेश और रेफादेश (उभयथा) दोनों प्रकार के होते हैं।*

*उदा०-(भुवस्) **भुव इत्यन्तरिक्षम्, भुवरित्यन्तरिक्षम्।** 'भुवः' यह अन्तरिक्षवाची अव्यय महाव्याहृति कहलाता है।*

सिद्धि-भुव इति। *यहां इस सूत्र से 'भुवस्' के अन्त्य सकार को 'रु' आदेश है। पूर्ववत् 'रु' के रेफ को यकारादेश और उसका लोप होता है। द्वितीय प्रकार में रेफादेश है-**भुवरित्यन्तरिक्षम्।***

द-आदेशः--

(७) वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः।७२।

प०वि०-वसु-स्रंसु-ध्वंसु-अनडुहाम् ६।३ दः १।१।

स०-वसुश्च स्रंसुश्च ध्वंसुश्च अनड्वाँश्च ते वसुस्रंसुध्वंस्वनड्वाहः, तेषाम्-वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-पदस्येत्यनुवर्तते। **'ससजुषो रुः'** (८।२।६६) इत्यस्माच्च 'सः' इति मण्डूकोत्प्लुत्याऽनुवर्तनीयम्।

अन्वयः-सो वसोर्वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां पदानां च दः।

अर्थः-सकारान्तस्य वस्वन्तस्य स्रंसुध्वंस्वनडुहां च पदानां दकारादेशो भवति।

उदा०-(**वसुः**) विद्वद्भ्याम्, विद्वद्भिः। (**स्रंसु**) उखास्रद्भ्याम्, उखास्रद्भिः। (**ध्वंसु**) पर्णध्वद्भ्याम्, पर्णध्वद्भिः। (**अनडुह्**) अनडुद्भ्याम्, अनडुद्भिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सः) सकारान्त (वसु) वसु-अन्त (स्रंसुध्वस्वनडुहाम्) स्रंसु, ध्वंसु, अनडुह् इन (पदानाम्) पदों के अन्त्य वर्ण को (दः) दकारादेश होता है।*

*उदा०-(वसु) **विद्वद्भ्याम्।** दो विद्वानों से। **विद्वद्भिः।** सब विद्वानों से। **(स्रंसु) उखास्रद्भ्याम्।** उखा (हण्डिया) से गिरनेवाले दो पदार्थों से। **उखास्रद्भिः।** उखा से गिरनेवाले सब पदार्थों से। **(ध्वंसु) पर्णध्वद्भ्याम्।** पत्तों को गिरानेवाले दो पुरुषों से। **पर्णध्वद्भिः।** पत्तों को गिरानेवाले सब पुरुषों से। **(अनडुह्) अनडुद्भ्याम्।** दो बैलों से। **अनडुद्भिः।** सब बैलों से।*

सिद्धि-(१) विद्वद्भ्याम्। विद्वस्+भ्याम्। विद्वद्+भ्याम्। विद्वद्भ्याम्।

यहां 'विद ज्ञाने' (अदा०प०) धातु से 'शतृ' प्रत्यय और 'विदेः शतुर्वसुः' (७।१।३६) से 'शतृ' को 'वसु' आदेश होता है। 'विद्वस्' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'भ्याम्' प्रत्यय है। 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' (१।४।१७) से 'विद्वस्' की पद-संज्ञा है। इस सूत्र से सकारान्त 'विद्वस्' पद के अन्त्य सकार को दकारादेश होता है। 'भिस्' प्रत्यय में-विद्वद्भिः।

यहां 'ससजुषो रुः' (८।२।६६) से 'स' पद की अनुवृत्ति की जाती है उसका सम्बन्ध केवल 'वसु' के साथ है, अर्थात् सकारान्त वसु-प्रत्ययान्त पद को दकारादेश होता है। अतः यहां दकारादेश नहीं है-विद्वान्।

(२) उखास्रद्भ्याम्। यहां उखा-उपपद 'स्रंसु अवस्रंसने' (भ्वा०आ०) धातु से 'क्विप् च' (३।२।७६) से 'क्विप्' प्रत्यय है। इसका सर्वहारी लोप होता है। 'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति' (६।४।२४) से 'स्रंसु' के अनुनासिक (न्) का लोप होता है। उखास्रस्+भ्याम्-इस स्थिति में इस सूत्र से 'स्रस्' के अन्त्य सकार को दकारादेश होता है। 'भिस्' प्रत्यय में-उखास्रद्भिः।

(३) पर्णध्वद्भ्याम्। यहां पर्ण-उपपद 'ध्वसु अवस्रंसने' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत्। 'भिस्' प्रत्यय में-पर्णध्वद्भिः।

(४) अनडुद्भ्याम्। 'अनडुह्' शब्द से पूर्ववत्। 'भिस्' प्रत्यय में-अनडुद्भिः।

द-आदेशः--

(८) तिप्यनस्तेः।७३।

प०वि०-तिपि ७।१ अनस्तेः ६।१।

स०-न अस्तिरिति अनस्तिः, तस्य-अनस्तेः (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, सः, द इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अनस्तेः सः पदस्य तिपि दः।

अर्थः-अस्तिवर्जितस्य सकारान्तस्य पदस्य तिपि प्रत्यये परतो दकारादेशो भवति।

उदा०-(**चकास्**) अचकाद् भवान्। (**शास्**) अन्वशाद् भवान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अनस्तेः) अस्ति से भिन्न (सः) सकारान्त (पदस्य) पद के अन्त्य वर्ण को (तिपि) तिप् प्रत्यय परे होने पर (दः) दकारादेश होता है।*

उदा०-(चकास्) अचकाद् भवान्। आप प्रकाशित हुये, चमके। (शास्) अन्वशाद् भवान्। आपने शिक्षा की।

*सिद्धि-**अचकात्।** यहां 'चकासृ दीप्तौ' (अदा०प०) धातु से '**अनद्यतने लङ्**' (३।२।१११) से 'लङ्' प्रत्यय है। '**तिप्तस्झि०**' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। '**कर्तरि शप्**' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और इसका '**अदिप्रभृतिभ्यः** शपः' (२।४।७२) से लुक् होता है। '**हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०**' (६।१।६७) से **अपृक्त** त् (तिप्) का लोप होता है। अट्+चकास्-इस स्थिति में इस सूत्र से सकारान्त '**चकास्**' के अन्त्य सकार को दकारादेश होता है। 'वाऽवसाने' (८।४।५६) से दकार को चर् तकार होता है। अनु-उपसर्गपूर्वक '**शासु अनुशिष्टौ**' (अदा०प०) धातु से-**अन्वशात्।***

रु-आदेशविकल्पः–

(६) सिपि धातो रुर्वा।७४।

प०वि०-सिपि ७।१ धातोः ६।१ रुः १।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०-पदस्य, स इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सः पदस्य धातोः सिपि वा रुः।

अर्थः-सकारान्तस्य पदस्य धातोः सिपि प्रत्यये परतो विकल्पेन रुरादेशो भवति, पक्षे च दकारादेशो भवति।

उदा०-**(चकास्)** अचकास्त्वम्, अचकात् त्वम्। **(शास्)** अन्वशास्त्वम्, अन्वशात् त्वम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(सः) सकारान्त (पदस्य) पद के (धातोः) धातु के अन्त्य वर्ण को (सिपि) सिप् प्रत्यय परे होने पर (वा) विकल्प से (रुः) रु आदेश होता है और पक्ष में दकारादेश होता है।*

*उदा०-**(चकास्) अचकास्त्वम्, अचकात् त्वम्।** तू प्रकाशित हुआ, चमका। **(शास्) अन्वशास्त्वम्, अन्वशात् त्वम्।** तूने शिक्षा की।*

*सिद्धि-**अचकाः।** यहां '**चकासृ दीप्तौ**' (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लङ्' प्रत्यय है। 'तिप्तस्झि०' (३।४।७८) से लकार के स्थान में 'सिप्' आदेश है। पूर्ववत् 'शप्' विकरण-प्रत्यय और उसका लुक् होता है। '**हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०**' (६।१।६७) से अपृक्त स् (सिप्) का लोप होता है। अट्-चकास्+०। इस स्थिति में इस सूत्र से सकारान्त पद चकास् धातु के पद को 'सिप्' प्रत्यय परे हेने पर 'रु' आदेश होता है। '**सुप्तिङन्तं पदम्**' (१।४।१४) से पद संज्ञा है। '**खरवसानयोर्विसर्जनीयः**' (८।३।१५) से 'रु' के रेफ को अवसानलक्षण विसर्जनीय आदेश होता है। 'अचकास्त्वम्' यहां '**विसर्जनीयस्य सः**' (८।३।३४) से विसर्जनीय को सकारादेश होता है। विकल्प-पक्ष में दकारादेश है-**अचकात् त्वम्।** अनु-उपसर्गपूर्वक 'शासु अनुशिष्टौ' (अदा०प०) धातु से-**अन्वशास्त्वम्, अन्वशात् त्वम्।***

रु-आदेशविकल्पः—

(१०) दश्च ।७५।

प०वि०—दः ६ ।१ च अव्ययपदम्।

अनु०—पदस्य, सिपि, धातोः, रुः, वा, द इति चानुवर्तते।

अन्वयः—दः पदस्य धातोश्च सिपि वा रुः।

अर्थः—दकारान्तस्य पदस्य धातोश्च सिपि प्रत्यये परतो विकल्पेन रुरादेशो भवति, पक्षे च दकारादेशो भवति।

उदा०—**(भिद्)** अभिनस्त्वम्, अभिनत् त्वम्। **(छिद्)** अच्छिनस्त्वम्, अच्छिनत् त्वम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दः) दकारान्त (पदस्य) पद के (धातोः) धातु को (च) भी (सिपि) सिप् प्रत्यय परे होने पर (वा) विकल्प से (रुः) रु आदेश होता है। पक्ष में दकारादेश होता है।*

*उदा०-**(भिद्) अभिनस्त्वम्, अभिनत् त्वम्।** तूने भेदन किया, फाड़ा। **(छिद्) अच्छिनस्त्वम्, अच्छिनत् त्वम्।** तूने छेदन किया, काटा।*

*सिद्धि-**अभिनः।** यहां 'भिदिर् विदारणे' (रुधा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लङ्' प्रत्यय है और लकार के स्थान में 'सिप्' आदेश है। '**रुधादिभ्यः श्नम्**' (३।१।७८) से 'श्नम्' विकरण-प्रत्यय होता है। '**हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०**' (६।१।६७) से अपृक्त, स् (सिप्) प्रत्यय का लोप होता है। इस सूत्र से 'भिद्' धातु के दकार को रु आदेश होता है। '**खरवसानयोर्विसर्जनीयः**' (८।३।१५) से 'रु' के रेफ को अवसानलक्षण विसर्जनीय आदेश है। **अभिनस्त्वम्**-यहां '**विसर्जनीयस्य सः**' (८।३।३४) से विसर्जनीय को सकारादेश होता है। विकल्प-पक्ष में दकरादेश है-**अभिनत् त्वम्।** '**खरि च**' (८।४।५५) से दकार को चर् तकारादेश है। '**छिदिर् द्वैधीकरणे**' (रुधा०प०) धातु से-**अच्छिनस्त्वम्, अच्छिनत् त्वम्।***

।। इति रु-आदेशप्रकरणम्।।

आदेशप्रकरणम्

दीर्घादेशः—

(१) र्वोरुपधाया दीर्घ इकः ।७६।

प०वि०—र्वोः ६ ।२ उपधायाः ६ ।१ दीर्घः १ ।१ इकः ६ ।१।

स०—रश्च वश्च तौ र्वौ, तयोः-र्वोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–पदस्य, धातोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–र्वः पदस्य धातोरुपधाया इको दीर्घः।

अर्थः–रेफान्तस्य वकारान्तस्य च पदस्य धातोरुपधाया इको दीर्घो भवति।

उदा०–**(रेफान्तः)** गीः, धूः, पूः, आशीः। **(वकारान्तः)** वकारग्रहणमुत्तरार्थम्, अतस्तत्रैवोदाहरिष्यते।

आर्यभाषाः अर्थ–*(र्वः) रेफान्त और वकारान्त (पदस्य) पद के (धातोः) धातु के (उपधायाः) उपधाभूत (इकः) इक् वर्ण को (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०–**(रेफान्त)** **गीः।** वाणी। **धूः।** जूआ। **पूः।** नगरी। **आशीः।** इच्छा। **(वकारान्त)** वकार का ग्रहण उत्तरार्थ है, अतः इसका उदाहरण आगे लिखा जायेगा।*

***सिद्धि**–(१) **गीः।** गॄ+क्विप्। गॄ+वि। गॄ+०। गिर्–सु। गिर्+०। गीर्। गीः।*

*यहां '**गॄ शब्दे**' (क्र्या०प०) धातु से '**क्विप् च**' (३।२।७६) से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'क्विप्' का सर्वहारी लोप होता है। '**ॠत इद्धातोः**' (७।१।१००) से ॠकार को इकारादेश और इसे '**उरण् रपरः**' (१।१।५१) से रपरत्व होता है। '**हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०**' (६।१।६७) से 'सु' का लोप होता है। इस सूत्र से रेफान्त 'गिर्' पद के धातु के उपधाभूत इकार को दीर्घ होता है।*

*(२) **पूः।** '**पॄ पालनपूरणयोः**' (क्र्या०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्विप्' प्रत्यय है। '**उदोष्ठ्यपूर्वस्य**' (७।१।१०२) से ॠकार को उकरादेश और इसे पूर्ववत् रपरत्व होता है। इस सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **आशीः।** यहां आङ्-उपसर्गपूर्वक '**आङः शासु इच्छायाम्**' (अ०आ०) धातु से पूर्ववत् 'क्विप्' प्रत्यय है। **वा०**–'**शास इत्त्व आशासः क्वावुपसंख्यानम्**' (महाभाष्य ६।४।३४) से 'आशास्' को इकारादेश होता है–**आशिस्।** '**ससजुषो रुः**' (८।२।६६) से रुत्व होकर इस सूत्र से रेफान्त पद के धातु के उपधाभूत इवर्ण को दीर्घ होता है।*

दीर्घादेशः–

(२) हलि च।७७।

प०वि०–हलि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–धातोः, र्वोः, उपधायाः, दीर्घः, इक इति चानुवर्तते।

अन्वयः–र्वो धातोरुपधाया इको हलि च दीर्घः।

अर्थः–रेफान्तस्य वकारान्तस्य च धातोरुपधाया इको हलि परतश्च दीर्घो भवति।

उदा०-(रेफान्तः) आस्तीर्णम्। विस्तीर्णम्। विशीर्णम्। अवगूर्णम्। **(वकारान्तः)** स दीव्यति। स सीव्यति।

आर्यभाषाः अर्थ-(र्वोः) रेफान्त और वकारान्त (धातोः) धातु के (उपधायाः) उपधाभूत (इकः) इक् वर्ण को (हलि) हल् वर्ण परे होने पर (च) भी (दीर्घः) दीर्घ होता है।

*उदा०-(रेफान्त) **आस्तीर्णम्।** बिछाना। **विस्तीर्णम्।** फैलाना। **विशीर्णम्।** तोड़ना। **अवगूर्णम्।** निन्दा करना। **(वकारान्त) स दीव्यति।** वह क्रीडा आदि करता है। **स सीव्यति।** वह सिलाई करता है।*

*सिद्धि-(१) **आस्तीर्णम्।** यहां आङ्-उपसर्गपूर्वक **'स्तॄञ् आच्छादने'** (क्र्या०उ०) धातु से **'नपुंसके भावे क्तः'** (३।३।११४) से 'क्त' प्रत्यय है। **'ॠत इद् धातोः'** (७।१।१००) से ॠकार को इकारादेश और इसे **'उरण् रपरः'** (१।१।५१) से रपरत्व होता है। इस सूत्र से रेफान्त 'आस्तिर्' धातु को हल् वर्ण (ण) परे होने पर दीर्घ होता है। **'रदाभ्यां निष्ठातो०'** (८।२।४२) से निष्ठा तकार को नकारादेश और **'रषाभ्यां नो णः समानपदे'** (८।४।१) से णत्व होता है। वि-उपसर्गपूर्वक 'स्तॄ' धातु से-**विस्तीर्णम्।***

*(२) **विशीर्णम्।** वि-उपसर्गपूर्वक **'शॄ हिंसायाम्'** (क्र्या०प०)।*

*(३) **निगीर्णम्।** नि-उपसर्गपूर्वक **'गूरी उद्यमने'** (दि०आ०)।*

*(४) **दीव्यति।** यहां **'दिवु क्रीडायाम्'** (दि०प०) धातु से लट् प्रत्यय और लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। **'दिवादिभ्यः श्यन्'** (३।१।६९) से श्यन् विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से वकारान्त 'दिव्' धातु के उपधाभूत इकार को हल् वर्ण (य) परे होने पर दीर्घ होता है। **'षिवु तन्तुसन्ताने'** (दि०प०) धातु से-**सीव्यति।***

दीर्घादेशः-

(३) उपधायां च।७८।

प०वि०-उपधायाम् ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-धातोः, र्वोः, उपधायाः, दीर्घः, इकः, हलीति चानुवर्तते।

अन्वयः-धातोरुपधायां च र्वोर्हलि उपधाया इको दीर्घः।

अर्थः-धातोरुपधायां च वर्तमानौ यौ रेफवकारौ हल्परौ तयोरुपधाया इको दीर्घो भवति।

उदा०-**(हुर्छा)** हूर्छिता। **(मुर्छा)** मूर्च्छिता। **(उर्वी)** ऊर्विता। **(धुर्वी)** धूर्विता।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(धातोः) धातु की (उपधायाम्) उपधा में (च) भी विद्यमान (र्वोः) रेफ और वकार (हलि) हल्परक हैं, उनके (उपधायाः) उपधाभूत (इकः) इक् वर्ण को (दीर्घः) दीर्घ होता है।*

*उदा०-(हुर्छा) **हूर्छिता।** कुटिलता करनेवाला। (मुर्छा) **मूर्च्छिता।** मूर्च्छित होनेवाला। (उर्वी) **ऊर्विता।** हिंसा करनेवाला। (धुर्वी) **धूर्विता।** हिंसा करनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **हूर्छिता।** यहां 'हुर्छा कौटिल्ये' (भ्वा०प०) धातु से 'ण्वुल्तृचौ' (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'हुर्छ्' धातु की उपधा में विद्यमान रेफ के उपधाभूत इक् वर्ण (उ) को हल्वर्ण (छ्) परे होने पर दीर्घ होता है।*

*(२) **मूर्छिता।** 'मुर्छा मोहसमुच्छ्राययोः' (भ्वा०प०)।*

*(३) **ऊर्विता।** 'उर्वी हिंसार्थः' (भ्वा०प०)।*

*(३) **धूर्विता।** 'धुर्वी हिंसार्थः' (भ्वा०प०)।*

दीर्घादेशप्रतिषेधः-

(४) न भकुर्छुराम्।७६।

प०वि०-न अव्ययपदम्, भ-कुर्-छुराम् ६।३।

स०-भं च कुर् च छुर् च ते-भकुर्छुरः, तेषाम्-भकुर्छुराम् (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-धातोः, र्वोः, उपधायाः, दीर्घः, इकः इति चानुवर्तते।

अन्वयः-र्वोर्भकुर्छुरामुपधाया दीर्घो न।

अर्थः-रेफान्तस्य वकारान्तस्य च भस्य, कुर् छुर् इत्येतयोश्च धात्वोरुपधाया इको दीर्घो न भवति।

उदा०-(भम्) धुरं वहतीति धुर्यः। धुरि साधुरिति धुर्यः। **(कुर्)** कुर्यात्। **(छुर्)** छुर्यात्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(र्वः) रेफान्त और वकारान्त (भ-कुर्-छुराम्) भ-संज्ञक और कुर् तथा छुर् इन (धात्वोः) धातुओं के (उपधायाः) उपधाभूत (इकः) इक् वर्ण को (दीर्घः) दीर्घ (न) होता है।*

*उदा०-(भम्) **धुर्यः।** धुर् (जुआ) को वहने करनेवाला अथवा जुआ में जोतने के लिये समुचित बैल। (कुर्) **कुर्यात्।** वह करे। (छुर्) **छुर्यात्।** वह छेदन करे, कतरे।*

*सिद्धि-(१) **धुर्यः।** यहां 'धुर्' शब्द से '**धुरो यड्ढकौ**' (४।४।७७) से वहति अर्थ में 'यत्' प्रत्यय है। 'यचि भम्' (४।१।१८) से धुर् शब्द की 'भ' संज्ञा है। इस सूत्र से रेफान्त तथा भ-संज्ञक 'धुर्' शब्द की उपधा को दीर्घत्व का प्रतिषेध होता है।*

(२) कुर्यात्। यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से लिङ् प्रत्यय और लकार के स्थान में 'तिपप्' आदेश है। 'तनादिकृञ्भ्य उः' (३।१।७९) से 'उ' विकरण-प्रत्यय, 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से धातु को गुण, 'उरण् रपरः' (१।१।५१) से रपरत्व, 'अत उत् सार्वधातुके' से उकारादेश है। 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च' (३।३।१०३) से यासुट् आगम है। 'ये च' (६।४।१०९) से उकार का लोप होता है। इस सूत्र से रेफान्त 'कुर्' शब्द के उपधाभूत इक् (उ) वर्ण को दीर्घत्व का प्रतिषेध होता है। 'छुर छेदने' (तु०प०) धातु से-छुर्यात्।

उकार-मकारादेशौ-

(५) अदसोऽसेर्दादु दो मः।८०।

प०वि०-अदसः ६।१ असेः ६।१ दात् ५।१ उ १।१ (सु-लुक्) दः ६।१ मः १।१।

स०-अविद्यमानः **सिः=सकारो यस्य** सोऽसिः, तस्य-असेः (बहुव्रीहिः)। असिरित्यत्रेकार उच्चारणार्थः।

अन्वयः-असेरदसो दाद् उः, दो मः।

अर्थः-असेः=असकारान्तस्यादसो दकारात्परस्य वर्णस्य स्थाने उकारादेशो भवति, दकारस्य स्थाने च मकारादेशो भवति।

उदा०-(अदस्) अमुम्, अमू, अमून्। अमुना, अमुभ्याम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(असेः) असकारान्त (अदसः) अदस् शब्दों के (दात्) दकार से परवर्ती वर्ण के स्थान में (उः) उकारादेश होता है और (दः) दकार के स्थान में (मः) मकारादेश होता है।*

उदा०-(अदस्) ***अमुम्।*** *उसको।* ***अमू।*** *उन दोनों को।* ***अमून्।*** *उन सबको।* ***अमुना।*** *उससे।* ***अमुभ्याम्।*** *उन दोनों से।*

सिद्धि-(१) ***अमुम्।*** *अदस्+अम्। अद अ+अम्। अद+अम्। अदु+अम्। अमु+म्। अमुम्।*

यहां 'अदस्' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'अम्' प्रत्यय है। 'त्यदादीनामः' (७।२।१०२) से अन्त्य सकार को अकारादेश, 'अतो गुणे' (६।१।९६) से पररूप एकादेश होता है। इस सूत्र से इस असकारान्त 'अद' शब्द के दकार से परवर्ती अकार को उकारादेश और दकार को मकारादेश होता है। 'अमि पूर्वः' (६।१।१०५) से पूर्वरूप

*एकादेश होता है। 'औट्' प्रत्यय में-**अमू**। दीर्घ औकार को दीर्घ ऊकारादेश होता है। 'शस्' प्रत्यय में-**अमून्**। 'तस्माच्छसो नः पुंसि' (६।१।१०१) से सकार को नकारादेश है। 'टा' प्रत्यय में-**अमुना**। 'शेषो घ्यसखि' (१।४।७) से घि-संज्ञा होकर 'आङो नाऽस्त्रियाम्' (७।३।१२०) से टा (आङ्) के 'ना' आदेश होता है। 'न मु ने' (८।२।३) से ना-आदेश करते समय इस सूत्र से विहित 'मु' आदेश असिद्ध नहीं होता है, अपितु सिद्ध ही रहता है। 'भ्याम्' प्रत्यय में-**अमूभ्याम्**। 'सुपि च' (७।३।१०२) से दीर्घ होता है।*

ईत्-आदेशः--

(६) एत ईद् बहुवचने।८१।

प०वि०-एतः ६।१ ईत् १।१ बहुवचने ७।१।

अनु०-अदसः, असेः, दात्, उः, दः, म इति चानुवर्तते।

अन्वयः-असेरदसो दाद् एतो बहुवचने ईत्, दो मः।

अर्थः-असेः=असकारान्तस्यादसो दकारात् परस्यैकारस्य स्थाने बहुवचने ईकारादेशो भवति, दकारस्य स्थाने च मकारादेशो भवति।

उदा०-(अदस्) अमी। अमीभिः। अमीभ्यः। अमीषाम्। अमीषु।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(असेः) असकारान्त (अदसः) अदस् शब्द के (दात्) दकार से परवर्ती (एतः) एकार के स्थान में (बहुवचने) बहुवचन में (ईत्) ईकारादेश होता है और (दः) दकार के स्थान में (मः) मकारादेश होता है।*

*उदा०-(अदस्) **अमी**। वे सब। **अमीभिः**। उन सबसे। **अमीभ्यः**। उन सबके लिये/से। **अमीषाम्**। उन सबका। **अमीषु**। उन सब में।*

*सिद्धि-(१) **अमी**। अदस्+जस्। अद अ+शी। अद+ई। अद्+ए। अद्+ई। अम्+ई। अमी।*

*यहां 'अदस्' शब्द से पूर्ववत् 'जस्' प्रत्यय है। 'त्यदादीनामः' (७।२।१०२) से अदस् के सकार को अकारादेश और 'अतो गुणे' (६।१।९६) से पररूप एकादेश है। 'जसः शी' (७।१।१७) से 'जस्' को 'शी' आदेश और 'आद्गुणः' (६।१।८६) से गुणरूप एकादेश एकार होता है। इस सूत्र से एकार को ईकारादेश और दकार को मकारादेश होता है। ऐसे ही 'भिस्' प्रत्यय में-**अमीभिः**। 'बहुवचने झल्येत्' (७।३।१०३) से अकार को एकारादेश होता है। 'भ्यस्' प्रत्यय में-**अमीभ्यः**। 'आम्' प्रत्यय में-**अमीषाम्**। 'आमि सर्वनाम्नः सुट्' (७।१।५२) से 'सुट्' आगम होता है। 'सुप्' प्रत्यय में-**अमीषु**।*

{प्लुतादेशप्रकरणम्}

अधिकारः–

(१) वाक्यस्य टेः प्लुत उदत्तः।८२।

प०वि०–वाक्यस्य ६।१ टेः ६।१ प्लुतः १।१ उदात्तः १।१।

अर्थः–वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्त इत्यधिकारोऽयम्, आ पादपरिसमाप्तेः। यदितोऽग्रे वक्ष्यति–'**वाक्यस्य टेः प्लुदात्त उदात्तः**' इत्येवं तद् वेदितव्यम्। यथा वक्ष्यति–'**प्रत्यभिवादेऽशूद्रे**' (८।२।८२) इति। अभिवादये देवदत्तोऽहम्, भो आयुष्मानेधि देवदत्त३।

आर्यभाषाः *अर्थ–(वाक्यस्य०) 'वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः' यह अधिकार सूत्र है। इसका इस पाद की समाप्ति पर्यन्त अधिकार है। पणिनि मुनि इससे आगे जो कहेंगे–वह (वाक्यस्य) वाक्य के (टेः) टि–भाग को (प्लुतः) प्लुत (उदात्तः) उदात्त होता है, ऐसा जानें। जैसे कि पाणिनि मुनि कहेंगे–'**प्रत्यभिवादेऽशूद्रे**' (८।२।८२) अर्थात् गुरु प्रत्यभिवादन में जब आशीर्वाद देता है तब शूद्र–विषय को छोड़कर उस वाक्य के टि–भाग को प्लुत उदात्त होता है। जैसे–अभिवादये देवदत्तोऽहम, भो आयुष्मानेधि देवदत्त३। हे गुरुवर ! मैं देवदत्त आपको अभिवादन करता हूं, हे देवदत्त३ तू आयुष्मान् हो।*

प्लुतः (उदात्तः)–

(२) प्रत्यभिवादेऽशूद्रे।८३।

प०वि०–प्रत्यभिवादे ७।१ अशूद्रे ७।१।

स०–न शूद्र इति अशूद्रः, तस्मिन्–अशूद्रे (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–वाक्यस्य, टेः, प्लुतः, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अशूद्रे प्रत्यभिवादे वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः।

अर्थः–शूद्रविषयवर्जिते प्रत्यभिवादे यद् वाक्यं वर्तते, तस्य टेः प्लुतो भवति, स चोदात्तो भवति।

उदा०–अभिवादये देवदत्तोऽहम्, आयुष्मानेधि भो देवदत्त३।

आर्यभाषाः *अर्थ–(अशूद्रे) शूद्र विषय से भिन्न (प्रत्यभिवादे) गुरु और शिष्य को प्रत्यभिवादन में अपने शिष्य को जिस वाक्य से आशीर्वाद देता है उस (वाक्यस्य) वाक्य के (टेः) टि–भाग को (प्लुतः) प्लुत होता है और वह (उदात्तः) उदात्त होता है।*

उदा०–अभिवादये देवदत्तोऽहम्, आयुष्मानेधि भो देवदत्त३। हे गुरुवर ! मैं देवदत्त आपको अभिवादन करता हूं, हे देवदत्त३ तू आयुष्मान् हो।

प्लुतः (उदात्तः)–

(३) दूरद्धूते च।८४।

प०वि०–दूरात् ५।१ हूते ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–वाक्यस्य, टेः, प्लुतः, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः–दूराद् धूते च वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः।

अर्थः–दूराद् हूते=आह्वाने च यद् वाक्यं वर्तते, तस्य टेः प्लुतो भवति, स चोदात्तो भवति।

उदा०–आगच्छ भो माणवक देवदत्त३। आगच्छ भो माणवक यज्ञदत्त३।

आर्यभाषाः अर्थ-*(दूरात्) दूर से (हूते) आह्वान करने में (च) भी जो (वाक्यस्य) वाक्य है, उसके (टेः) टि-भाग को (प्लुतः) प्लुत होता है और वह (उदात्तः) उदात्त होता है।*

*उदा०–**आगच्छ भो माणवक देवदत्त३।** हे बालक देवदत्त तू आ जा। **आगच्छ भो माणवक यज्ञदत्त३।** हे बालक यज्ञदत्त तू आ जा।*

प्लुतः (उदात्तः)–

(४) हैहेप्रयोगे हैहयोः।८५।

प०वि०–है-हेप्रयोगे ७।१ है-हयोः ६।२।

स०–हैश्च हेश्च तौ हैहयौ, तयोः प्रयोग इति हैहेप्रयोगः, तस्मिन्-हैहेप्रयोगे (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितषष्ठीतत्पुरुषः)। हैश्च हेश्च तौ हैहयौ, तयोः हैहयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–वाक्यस्य, प्लुतः, उदात्तः, दूरात्, हूते इति चानुवर्तते।

अन्वयः–दूराद्धूते हैहेप्रयोगे वाक्यस्य हैहयोः प्लुत उदात्तः।

अर्थः–दूराद्धूते=आह्वाने हैहेप्रयोगे यद् वाक्यं वर्तते, तत्र हैहयोरेव प्लुतो भवति, स चोदात्तो भवति।

उदा०–**(है)** है३ देवदत्त! देवदत्त है३। **(हे)** हे३ देवदत्त! देवदत्त हे३।

आर्यभाषाः अर्थ- *(दूरात्) दूर से (हूते) आह्वान करने में (हैहेप्रयोगे) है और हे शब्दों के प्रयोग में जो (वाक्यस्य) वाक्य है, वहां (हैहयोः) है औ हे शब्दों को ही (प्लुतः) प्लुत होता है और वह (उदात्तः) उदात्त होता है।*

उदा०-(है) है३ देवदत्त ! देवदत्त है३। हे देवदत्त ! (हे) हे३ देवदत्त ! देवदत्त है३। हे देवदत्त !

प्लुतः (उदात्तः)–

(५) गुरोरनृतोऽनन्त्यस्याप्येकैकस्य प्राचाम्।८६।

प०वि०–गुरोः ६।१ अनृतः ६।१ अनन्त्यस्य ६।१ अपि अव्ययपदम्, एकैकस्य ६।१ प्रचाम् ६।३।

स०–न ऋद् इति अनृत्, तस्य–अनृतः (नञ्तत्पुरुषः)। अन्ते भव इति अन्त्यः, न अन्त्य इति अनन्त्यः तस्य–अनन्त्यस्य (नञ्तत्पुरुषः)। एकम् एकमिति एकैकम्, तस्य–एकैकस्य। **'एकं बहुव्रीहिवत्'** (८।१।९) इत्यनेन वीप्सायां द्विर्वचनं बहुव्रीहिभावश्च।

अनु०–वाक्यस्य, टेः, प्लुतः, उदात्तः इति चानुवर्तते।

अन्वयः–वाक्यस्यानृतोरनन्त्यस्यैकैकस्य गुरोः, अपिवचनादन्त्यस्यापि टेः प्राचां प्लुत उदात्तः।

अर्थः–वाक्यस्य ऋकारवर्जितस्यैकैकस्य गुरुवर्णस्य, अपिवचना-दन्त्यस्यापि टेः प्राचामाचार्याणां मतेन प्लुतो भवति, स चोदात्तो भवति।

उदा०–आयुष्मानेधि दे३वदत्त ! देवद३त्त ! देवदत्त३ ! आयुष्मानेधि य३ज्ञदत्त ! यज्ञद३त्त ! यज्ञदत्त३ !

'प्रत्यभिवादेऽशूद्रे' (८।२।८३) इत्येवमादिना यः प्लुतो विहितस्त-स्यायं स्थानविशेष उपदिश्यते।

आर्यभाषाः अर्थ- *(वाक्यस्य) वाक्य के (अनृतः) ऋवर्ण से भिन्न (अन्त्यस्य) अन्त में अविद्यमान (एकैकस्य) एक-एक (गुरोः) गुरु वर्ण को और (अपि) अपि-वचन से अन्त्य (टेः) टि-भाग को भी (प्राचाम्) प्राच्य भारत के आचार्यों के मत में (प्लुतः) प्लुत होता है और वह (उदात्तः) उदात्त होता है।*

उदा०-आयुष्मानेधि दे३वदत्त ! देवद३त्त ! देवदत्त३ ! हे देवदत्त ! तू दीर्घायु हो। आयुष्मानेधि य३ज्ञदत्त ! यज्ञद३त्त ! यज्ञदत्त३ ! हे यज्ञदत्त ! तू दीर्घायु हो।

'प्रत्यभिवादेऽशूद्रे' (८।२।८३) इत्यादि से जो प्लुत विधान किया गया है उसका यह स्थानविशेष का उपदेश है।

प्लुतः (उदात्तः)-

(६) ओमभ्यादाने।८७।

प०वि०-ओम् अव्ययपदम्, अभ्यादाने ७।१।

अनु०-पदस्य, प्लुतः, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अभ्यादाने ओम् प्लुत उदात्तः।

अर्थः-अभ्यादाने वर्तमानस्य ओमित्येतस्य पदस्य प्लुतो भवति, स चोदात्तो भवति।

अभ्यादानम्=प्रारम्भः। स च वेदस्वाध्यायादेः प्रारम्भो वेदितव्यः।

उदाहरणम्-

ओ३म् अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम् (ऋ० १।१।१)

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अभ्यादाने) वेद-स्वाध्याय आदि के प्रारम्भ में (ओम्) ओम् इस (पदस्य) पद को (प्लुतः) प्लुत होता है और वह (उदात्तः) उदात्त होता है।*

उदाहरण-

ओ३म् अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम् (ऋ० १।१।१)

प्लुतः (उदात्तः)-

(७) ये यज्ञकर्मणि।८८।

प०वि०-ये ६।१ (लुप्तषष्ठीकं पदम्) यज्ञकर्मणि ७।१।

स०-यज्ञस्य कर्मेति यज्ञकर्म, तस्मिन्-यज्ञकर्मणि (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, प्लुतः, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यज्ञकर्मणि ये पदस्य प्लुत उदात्तः।

अर्थः-यज्ञकर्मणि ये इत्येतस्य पदस्य प्लुतो भवति, स चोदात्तो भवति।

उदा०–(**ये**) ये३यजामहे। समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन (ऋ० ८।४४।१)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(यज्ञकर्मणि) यज्ञ-कर्म में (ये) इस (पदस्य) पद को (प्लुतः) प्लुत होता है और वह (उदात्तः) उदात्त होता है।*

*उदा०-(ये) **ये३यजामहे। समिधाग्निं दुवस्यत घृतैबोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या** जुहोतन (ऋ० ८।४४।१)।*

विशेषः *श्रौत यज्ञ-कर्म में याज्या अर्थात् जिस मन्त्र से आहुति दी जाती है, उस**के प्रारम्भ** में 'ये३यजामहे' उच्चारण किया जाता है।*

प्लुतः (उदात्तः)–

(८) प्रणवष्टेः।८९।

प०वि०–प्रणवः १।१ टेः ६।१।

अनु०–पदस्य, वाक्यस्य, प्लुतः, उदात्तः, यज्ञकर्मणीति चानुवर्तते।

अन्वयः–यज्ञकर्मणि वाक्यस्य पदस्य टेः प्रणवः।

अर्थः–यज्ञकर्मणि वाक्यस्य पदस्य टेः प्रणवादेशो भवति, स च प्लुत उदात्तश्च भवति।

उदा०–अपां रेतांसि जिन्वतो३म् (ऋ० ८।४४।१६)। देवान् जिगाति सुम्नयो३म् (ऋ० ३।२७।१)।

"क एष प्रणवो नाम ? पादस्य वाऽर्धर्चस्य वाऽन्त्यमक्षरमुपसंगृह्य तदाद्यक्षरशेषस्य स्थाने त्रिमात्रमोकारम् ओङ्कारं वा विदधति तं प्रणवमित्याचक्षते" (काशिका)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(यज्ञकर्मणि) यज्ञ-कर्म में (वाक्यस्य) वाक्य विशेष के (**पदस्य**) पद के (टेः) टि-भाग को (प्रणवः) ओङ्कार आदेश होता है।*

*उदा०-**अपां रेतांसि जिन्वतो३म्** (ऋ० ८।४४।१६)। **देवान् जिगाति सुम्नयो३म्** (ऋ० ३।२७।१)।*

"यह प्रणव क्या है ? पाद के अथवा अर्धर्च के अन्त्य स्वर को लेकर तदादि शेष व्यञ्जन के स्थान में त्रैमात्रिक ओकार अथवा ओङ्कार आदेश करते हैं, उसे प्रणव कहते हैं" (काशिका)।

विशेषः *सामिधेनी आदि ऋचाविशेषों में ही टि को प्रणव (ओङ्कार) यज्ञकर्म में होता है, सभी मन्त्रों में नहीं। अतः सभी मन्त्रों के अन्त में 'टि' को ओ३म् करके यज्ञकर्म में बोलना, अवैदिक क्रिया है, ऐसा समझना चाहिये। यह ओ३म् आदेश वहीं होता है, जहां ऋक्समूह का पाठमात्र होता है, वौषट् वा स्वाहा शब्द का प्रयोग नहीं होता। यह श्रौतकर्म का नियम है (अष्टाध्यायीप्रथमावृत्ति पृ० ५४५)।*

प्लुतः (उदात्तः)–

(६) याज्यान्तः ।६०।

प०वि०–याज्याऽन्तः १।१।

स०–याज्यानामन्त इति याज्यान्तः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–वाक्यस्य, टेः, प्लुतः, उदात्तः, यज्ञकर्मणीति चानुवर्तते।

अन्वयः–यज्ञकर्मणि याज्यानामन्तष्टिः प्लुत उदात्तः।

अर्थः–यज्ञकर्मणि ये याज्याः=याज्यानुवाक्याकाण्डे ये मन्त्राः पठ्यन्ते तेषामन्त्यष्टिः प्लुतो भवति, स चोदात्तो भवति।

उदा०–स्तोमैर्विधेमाग्नये३। जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाह३म्।

"याज्या नाम ऋचः काश्चिद् वाक्यसमुदायरूपाः, तत्र यावन्ति वाक्यानि तेषां सर्वेषां टेः प्लुतः प्राप्नोति। सर्वान्तस्यैवेष्यते। तदर्थमन्त-ग्रहणम्" (काशिका)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(यज्ञकर्मणि) यज्ञ-कर्म में जो (याज्यान्तः) याज्या अनुवाक्या काण्ड में मन्त्र पढ़े हैं उनके अन्तिम मन्त्र के (टेः) टि-भाग को (प्लुतः) प्लुत होता है और वह (उदात्तः) उदात्त होता है।*

*उदा०–**स्तोमैर्विधेमाग्नये३। जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाह३म्।***

"याज्या नामक कुछ ऋचायें वाक्यसमुदाय आत्मक हैं। उनमें सब वाक्यों के टि-भाग को प्लुत प्राप्त होता है। सबसे अन्तिम वाक्य को ही प्लुत अभीष्ट है, अतः यहां अन्त पद का ग्रहण किया गया है" (काशिका)।

विशेषः *(१) अन्य संहिताओं में याज्यानुवाक्या मन्त्र बिखरे हुये हैं, परन्तु मैत्रायणी संहिता (४।१०-१४) में सब मन्त्र एक स्थान पर पठित हैं, यह याज्यानुवाक्य काण्ड ही कहाता है। (२) याज्या वे मन्त्र कहाते हैं जिनसे श्रौतकर्म में यजन=आहुति प्रदान किया जाता है (अष्टाध्यायीप्रथमावृत्ति पाद टिप्पणी पृ० ५४५)।*

प्लुतः (उदात्तः)–

(१०) ब्रूहिप्रेष्यश्रौषड्वौषडावहानामादेः ।६१।

प०वि०–ब्रूहि-प्रेष्य-श्रौषट्-वौषट्-आवहानाम् ६ ।३ आदेः ६ ।१ ।

स०–ब्रूहिश्च प्रेष्यश्च श्रौषट् च वौषट् च आवहश्च ते ब्रूहिप्रेष्यश्रौषड्वौषडावहाः, तेषाम्-ब्रूहिप्रेष्यश्रौषड्वौषडावहानाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) ।

अनु०–पदस्य, प्लुतः, उदात्तः, यज्ञकर्मणीति चानुवर्तते ।

अन्वयः–यज्ञकर्मणि ब्रूहिप्रेष्यश्रौषड्वौषडावहानां पदानामादेः प्लुत उदात्तः ।

अर्थः–यज्ञकर्मणि ब्रूहिप्रेष्यश्रौषड्वौषडावहानां पदानामादेः प्लुतो भवति, स चोदात्तो भवति ।

उदा०–**(ब्रूहि)** अग्नयेऽनुब्रू३हि (श०ब्रा० २ ।५ ।३ ।१२) । **(प्रेष्य)** अग्नये गोमयान् प्रे३ष्य । **(श्रौषट्)** अस्तु श्रौ३षट् (तै०सं० १ ।६ ।११ ।१) । **(वौषट्)** सोमस्याग्ने वीही३ वौ३षट् (ऐ०ब्रा० ३ ।५ ।६) । **(आवह)** अग्निमा३ वह (तै०ब्रा० ३ ।५ ।३ ।२) ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(यज्ञकर्मणि) यज्ञ-कर्म में (ब्रूहि०) ब्रूहि, प्रेष्य, श्रौषट्, वौषट्, आवह इन (पदानाम्) पदों के (आदेः) आदिम अच् को (प्लुतः) प्लुत होता है और वह (उदात्तः) उदात्त होता है।*

*उदा०–**(ब्रूहि) अग्नयेऽनुब्रू३हि** (श०ब्रा० २ ।५ ।३ ।१२)। अनुब्रूहि यह लोट् लकार मध्यम पुरुष का एकवचन है। **(प्रेष्य) अग्नये गोमयान् प्रे३ष्य।** प्रेष्य यह प्र-उपसर्गपूर्वक **'इषु गतौ'** (दि०प०) धातु का लोट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन है। **'दिवादिभ्यः श्यन्'** (३ ।१ ।६९) से श्यन् विकरण प्रत्यय है। प्रेष्य=प्रदान कर। **(श्रौषट्) अस्तु श्रौ३षट्** (तै०सं० १ ।६ ।११ ।१)। श्रौषट् यह स्वाहावाची निपात है। **(वौषट्) सोमस्याग्ने वीही३ वौ३षट्** (ऐ०ब्रा० ३ ।५ ।६)। वौषट् यह स्वाहावाची निपात है। **(आवह) अग्निमा३ वह** (तै०ब्रा० ३ ।५ ।३ ।२)। यह आङ्-उपसर्गपूर्वक **'वह प्रापणे'** (भ्वा०प०) धातु का लोट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन है। आवह=प्राप्त कर।*

प्लुतः (उदात्तः)–

(११) अग्नीत्प्रेषणे परस्य च ।६२।

प०वि०–अग्नीत्प्रेषणे ७ ।१ परस्य ६ ।१ च अव्ययपदम् ।

स०-अग्निमीन्धे इति अग्नीत्=ऋत्विग्विशेषः। अग्नीधः प्रेषणमिति अग्नीत्प्रेषणम्, तस्मिन्-अग्नीत्प्रेषणे (षष्ठीतत्पुरुषः)। प्रेषणम्=नियोजनम्।

अनु०-पदस्य, प्लुतः, उदात्तः, यज्ञकर्मणि, आदेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-यज्ञकर्मणि अग्नीत्प्रेषणे पदस्यादेः परस्य च प्लुत उदात्तः।

अर्थः-यज्ञकर्मणि अग्नीत्प्रेषणेऽर्थे वर्तमानस्य पदस्यादेस्तत्परस्य चाऽचः प्लुतो भवति, स चोदात्तो भवति।

उदा०-आ३श्रा३वय। ओ३श्रा३वय।

आर्यभाषाः अर्थ-*(यज्ञकर्मणि) यज्ञ-कर्म में (अग्नीत्प्रेषणे) अग्नीत् नामक ऋत्विक् के यज्ञ-कर्म में नियुक्त करने अर्थ में वर्तमान (पदस्य) पद के (आदेः) आदिम अच् को (च) और उससे (परस्य) परवर्ती अच् को (प्लुतः) प्लुत होता है और वह (उदात्तः) उदात्त होता है।*

उदा०-आ३श्रा३वय। ओ३श्रावय।

विशेषः *अग्नीध् (ऋत्विक्) कचरे के स्थान या उत्कर के समीप स्फ्य नामक तलवार लेकर बैठता था। उसे अध्वर्यु द्वारा जो आज्ञा दी जाती उसे अग्नीत्प्रेषण या आश्रवण कहते थे। उसका यह रूप था-आ३श्रा३वय, कुछ शाखाओं में इसे ओ३श्रा३वय कहा गया है। इस प्रैष का अभिप्राय था-कृपा करके देवता तक यज्ञ की सूचना पहुंचा दें कि सब ठीक-ठाक है (पाणिनि कालीन भारतवर्ष पृ० ३६८)।*

अग्नीत् ऋत्विक् ब्रह्मा का सहायक होता है और असुरों से यज्ञ की रक्षा करता है।

प्लुतः (उदात्तः)-

(१२) विभाषा पृष्टप्रतिवचने हेः।६३।

प०वि०-विभाषा १।१ पृष्टप्रतिवचने ७।१ हेः ६।१।

स०-पृष्टस्य प्रतिवचनमिति पृष्टप्रतिवचनम्, तस्मिन्-पृष्टप्रतिवचने (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, प्लुतः, उदात्तः इति चानुवर्तते।

अन्वयः-पृष्टप्रतिवचने हेः पदस्य विभाषा प्लुत उदात्तः।

अर्थः-पृष्टस्य प्रतिवचने=प्रत्युत्तरेऽर्थे वर्तमानस्य हि-पदस्य विकल्पेन प्लुतो भवति, स चोदात्तो भवति।

उदा०-अकार्षीः कटं देवदत्त ? अकार्षं हि३, अकार्षं हि। अलावीः केदारं देवदत्त ? अलाविषं हि३, अलाविषं हि।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पृष्टप्रतिवचने) प्रश्न का उत्तर देने अर्थ में विद्यमान (हि:) हि इस (पदस्य) पद को (विभाषा) विकल्प से (प्लुत:) प्लुत होता है और वह (उदात्त:) उदात्त होता है।*

*उदा०-अकार्षी: कटं देवदत्त ? **अकार्षं हि३, अकार्षं हि।** हे देवदत्त ! क्या तूने चटाई बना ली है ? हां बना ली है। **अलावी: केदारं देवदत्त ?** अलाविषं हि३, अलाविषं हि। हे देवदत्त ! क्या तूने खेत काट लिया है ? हां काट लिया है।*

प्लुतः (उदात्तः)–

(१३) निगृह्यानुयोगे च।६४।

प०वि०-निगृह्य अव्ययपदम् (ल्यप्प्रत्ययान्तमेतत्) अनुयोगे ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-वाक्यस्य, टे:, प्लुत:, उदात्त: विभाषेति चानुवर्तते।

अन्वय:-निगृह्यानुयोगे च वाक्यस्य टे: प्लुत उदात्त:।

अर्थ:-निगृह्यानुयोगेऽर्थे च यद् वाक्यं वर्तते तस्य टे: प्लुतो भवति, स चोदात्तो भवति। स्वमतात् प्रच्यावनम्=निग्रह:। अनुयोग:=तस्य मतस्याविष्करणम्।

उदा०-अनित्य: शब्द इति केनचित् प्रतिज्ञातम्, तं युक्तिभिर्निगृह्योपालिप्सु: प्रतिवादी सासूयमनुयुङ्क्ते-अनित्य: शब्द इत्यात्थ३, अनित्य: शब्द इत्यात्थ। अद्य श्राद्धमित्यात्थ३, अद्य श्राद्धमित्यात्थ। अद्यामावास्येत्यात्थ३, अद्यामावस्येत्यात्थ। अद्य अमावस्येत्येवं वादी युक्त्या स्वमतात् प्रचाव्यैवमनुयुज्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(निगृह्यानुयोगे) किसी वादी को उसके मत से प्रच्युत करनेवाले प्रतिवादी के द्वारा असूयापूर्वक उसके मत को प्रकाशित करने अर्थ में विद्यमान (च) भी (वाक्यस्य) वाक्य के (टे:) टि-भाग को (प्लुत:) प्लुत होता है और वह (उदात्त:) उदात्त होता है।*

*उदा०-'शब्द अनित्य है' ऐसी किसी ने प्रतिज्ञा की। प्रतिवादी युक्तियों से उसके अपने मिथ्या मत से प्रच्युत करके असूयापूर्वक उसके मत को प्रकाशित करता है-**अनित्य: शब्द इत्यात्थ३, अनित्य: शब्द इत्यात्थ।** शब्द अनित्य है ऐसा तू कहता है ? **अद्य श्राद्धमित्यात्थ३, अद्य श्राद्धमित्याथ।** आज श्राद्ध है ऐसा तू कहता है ? **अद्यामावास्येत्यात्थ३, अद्यामावास्येत्यात्थ।** आज अमावस्या है ऐसा तू कहता है ?*

प्लुतः (उदात्तः)–

(१४) आम्रेडितं भर्त्सने।६५।

प०वि०–आम्रेडितम् १।१ भर्त्सने ७।१।

अनु०–पदस्य, प्लुतः, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः–भर्त्सने आम्रेडितं पदं प्लुत उदात्तः।

अर्थः–भर्त्सनेऽर्थे यदाऽऽम्रेडितं पदं तस्य प्लुतो भवति, स चोदात्तो भवति।

उदा०–चौर चौर३, वृषल वृषल३, दस्यो दस्यो३ घातयिष्यामि त्वा, बन्धयिष्यामि त्वा।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(भर्त्सने) भर्त्सन=धमकाने अर्थ में विद्यमान जो (आम्रेडितम्) आम्रेडित (पदम्) पद है उसको (प्लुतः) प्लुत होता है और वह (उदात्तः) उदात्त होता है।*

*उदा०–**चौर चौर३, वृषल वृषल३, दस्यो दस्यो३ घातयिष्यामि त्वा, बन्धयिष्यामि त्वा।** हे चौर चौर, वृषल वृषल, दस्यो दस्यो मैं तुझे मरवाऊंगा, मैं तुझे बन्धवाऊंगा।*

*यहां **'वाक्यादेरामन्त्रितस्याऽसूयासम्मतिकोपकुत्सनभर्त्सनेषु'** (८।१।८) से वाक्य के आदि में विद्यमान आमन्त्रित चौर आदि पदों को द्वित्व होता है, **'तस्य परमाम्रेडितम्'** (८।१।२) से परवर्ती आमन्त्रित पद की आम्रेडित संज्ञा है। इस सूत्र से यह प्लुत और उदात्त होता है।*

प्लुतः (उदात्तः)–

(१५) अङ्गयुक्तं तिङाकाङ्क्षम्।६६।

प०वि०–अङ्गयुक्तम् १।१ तिङ् १।१ आकाङ्क्षम् १।१।

स०–अङ्ग इत्यनेन युक्तमिति अङ्गयुक्तम् (तृतीयातत्पुरुषः)।

अनु०–पदस्य, प्लुतः, उदात्तः, भर्त्सने इति चानुवर्तते।

अन्वयः–भर्त्सनेऽङ्गयुक्तम् आकाङ्क्षं तिङ् पदं प्लुत उदात्तः।

अर्थः–भर्त्सनेऽर्थे वर्तमानमङ्गयुक्तं साकाङ्क्षं यत् तिङन्तं पदं तस्य प्लुतो भवति, स चोदात्तो भवति।

उदा०–अङ्ग कूज३, अङ्ग व्याहर३ इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म।

आर्यभाषाः *अर्थ-(भर्त्सने) धमकाना अर्थ में विद्यमान (अङ्गयुक्तम्) 'अङ्ग' शब्द से युक्त (आकाङ्क्षम्) साकाङ्क्ष जो (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद है, उसको (प्लुतः) प्लुत होता है और वह (उदात्तः) उदात्त होता है।*

*उदा०-**अङ्ग कूज३, अङ्ग व्याहर३ इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म।** अङ्ग=प्रिय ! तू चहचा ले, बक ले, इसका फल तुझे अब ज्ञात होगा। यहां अङ्ग शब्द अमर्ष (भर्त्सन) का द्योतक है।*

प्लुतः (उदात्तः)-

(१६) विचार्यमाणानाम् ।६७।

प०वि०-विचार्यमाणानाम् ६।३।

अनु०-वाक्यस्य, टेः, प्लुतः, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-विचार्यमाणानां वाक्यानां टेः प्लुत उदात्तः।

अर्थः-विचार्यमाणानां वाक्यानां टेः प्लुतो भवति, स चोदात्तो भवति।

उदा०-होतव्यं दीक्षितस्य गृहा३इ। तिष्ठेद् यूपा३इ। अनुहरेद् यूपा३इ।

प्रमाणेन वस्तुपरीक्षणं विचार इति कथ्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(विचार्यमाणानाम्) प्रमाण से वस्तु की परीक्षा करने विषयक (वाक्यानाम्) वाक्यों के (टेः) टि-भाग को (प्लुतः) प्लुत होता है और वह (उदात्तः) उदात्त होता है।*

*उदा०-**होतव्यं दीक्षितस्य गृहा३इ।** यह विचारणीय है कि दीक्षित के घर में हवन करना चाहिये वा नहीं। **तिष्ठेद् यूपा३इ।** वह यज्ञीय स्तम्भ पर ठहरे वा नहीं। **अनुहरेद् यूपा३इ।** वह यूप पर अनुहरण करे वा नहीं।*

गृहे आदि पदों में इस सूत्र से एच् वर्ण को प्लुत-विधान किया गया है। अतः 'एचोऽप्रगृह्यस्यादूराद्धूते पूर्वस्यार्धस्यादुत्तरस्येदुतौ' (८।२।१०७) से एच् अर्थात् एकार के पूर्वांश आकार को प्लुत होता है और शेष उत्तरांश को इकारादेश होता है।

प्लुतः (उदात्तः)-

(१७) पूर्वं तु भाषायाम् ।६८।

प०वि०-पूर्वम् १।१ तु अव्ययपदम्, भाषायाम् ७।१।

अनु०-वाक्यस्य, टेः, प्लुतः, उदात्तः, विचार्यमाणानामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-भाषायां विचार्यमाणानां वाक्यानां पूर्वं तु प्लुत उदात्तः।

अर्थः-भाषायां विषये विचार्यमाणानां वाक्यानां यत् पूर्वं वाक्यं तस्य टेः प्लुतो भवति, स चोदात्तो भवति।

उदा०-अहिर्नु३ रज्जुर्नु ? लोष्टो नु३ कपोतो नु ? प्रयोगापेक्षं वाक्यस्य पूर्वत्वं बोद्ध्यम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(भाषायाम्) लौकिक भाषा के विषय में (विचार्यमाणानाम्) प्रमाण से वस्तु की परीक्षा करने विषयक (वाक्यानाम्) वाक्यों में से (तु) तो जो (पूर्वम्) पूर्वोक्त वाक्य है उसके (टेः) टि-भाग को (प्लुतः) प्लुत होता है और वह (उदात्तः) उदात्त होता है।*

*उदा०-**अहिर्नु३ रज्जुर्नु** ? यह सर्प है वा रस्सी है ? **लोष्टो नु३ कपोतो नु** ? यह ढेला है वा कबूतर है ?*

प्रयोग=उच्चारण की अपेक्षा से वाक्य का पूर्वत्व समझें।

प्लुतः (उदात्तः)-

(१८) प्रतिश्रवणे च।९९।

प०वि०-प्रतिश्रवणे ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-वाक्यस्य, टेः, प्लुतः, उदात्त इति चानुवर्तते।

अन्वयः-प्रतिश्रवणे च वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः।

अर्थः-प्रतिश्रवणेऽर्थे च यद् वाक्यं वर्तते तस्य टेः प्लुतो भवति, स चोदात्तो भवति।

उदा०-(अभ्युपगमः) गां मे देहि भोः, अहं ते ददामि३। **(श्रवणाभिमुख्यम्)** नित्यः शब्दो भवितुमर्हति, देवदत्त भोः किमात्थ३ ?

प्रतिश्रवणम्=अभ्युपगमः, प्रतिज्ञानम्, श्रवणाभिमुख्यं चोच्यते। अत्र यथासम्भवं सर्वेऽर्था गृह्यन्ते।

आर्यभाषाः अर्थ-*(प्रतिश्रवणे) अभ्युपगमः=स्वीकार करना, प्रतिज्ञा करना और श्रवणाभिमुख होने अर्थ में जो (वाक्यस्य) वाक्य है उसके (टेः) टि-भाग को (प्लुतः) प्लुत होता है और वह (उदात्तः) उदात्त होता है।*

*उदा०-**(अभ्युपगम) गां मे देहि भोः, अहं ते ददामि३**। आप मुझे गोदान करें, मैं तुझे गोदान करता हूं। **(श्रवणाभिमुख) नित्यः शब्दो भवितुमर्हति, देवदत्त भोः किमात्थ३** ? शब्द नित्य हो सकता है, हे देवदत्त ! तू इस विषय में क्या कहता है ?*

प्लुतः (अनुदात्तः)–

(१६) अनुदात्तं प्रश्नान्ताभिपूजितयोः।१००।

प०वि०–अनुदात्तम् १।१ प्रश्नान्त–अभिपूजितयोः ७।२।

स०–अत्र प्रश्नार्थे वाक्ये प्रश्नशब्दो वर्तते। प्रश्नस्य अन्त इति प्रश्नान्तः, प्रश्नान्तश्च अभिपूजितश्च तौ प्रश्नान्ताभिपूजितौ, तयोः–प्रश्नान्ताभिपूजितयोः (षष्ठीगर्भितइतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–वाक्यस्य, टेः, प्लुत इति चानुवर्तते।

अन्वयः–प्रश्नान्ताभिपूजितयोर्वाक्यस्य टेः प्लुतोऽनुदात्तः।

अर्थः–प्रश्नान्तेऽभिपूजिते चार्थे वर्तमानस्य वाक्यस्य टेः प्लुतो भवति, स चानुदात्तो भवति।

उदा०–**(प्रश्नान्ते)** अगम३ः पूर्वा३न् ग्रामा३न्, अग्निभूता३इ/पटा३उ।

अग्निभूते, पटो इत्येतयोः पदयोः प्रश्नान्ते वर्तमानयोरनुदात्तः प्लुतो भवति, 'अगमः' इत्येवमादीनां पदानां तु **'अनन्त्यस्य प्रश्नाख्यानयोः'** (८।२।१०५) इत्यनेन स्वरितः प्लुतो विधीयते।

अभिपूजिते–शोभनः खल्वसि माणवक३।

आर्यभाषाः अर्थ–*(प्रश्नान्ताभिपूजितयोः) प्रश्नार्थक वाक्य के अन्तिम पद के तथा अभिपूजित अर्थ में (वाक्यस्य) वाक्य के (टेः) टि-भाग को (प्लुतः) प्लुत होता है और वह (अनुदात्तः) अनुदात्त होता है।*

*उदा०–**(प्रश्नान्त) अगम३ः पूर्वा३न् ग्रामा३न्, अग्निभूता३इ/पटा३उ।** हे अग्निभूते/पटो ! क्या तू पूर्वदिशा के ग्रामों में गया था ?*

*यहां अग्निभूते और पटो इन प्रश्नान्त में विद्यमान पदों को इस सूत्र से अनुदात्त प्लुत होता है और 'अगमः' इत्यादि पदों को **'अनन्त्यस्यापि प्रश्नाख्यानयोः'** (८।२।१०५) से स्वरित प्लुत होता है।*

*अभिपूजित–**शोभनः खल्वसि माणवक३।** हे बालक तू वस्तुतः अच्छा है।*

विशेषः *'अनन्त्यस्यापि प्रश्नाख्यानयोः' (८।२।१०५) से वाक्य के अन्त्य और अनन्त्य सभी पदों के टि-भाग को स्वरित प्लुत कहा गया है किन्तु इस वचनप्रमाण से प्रश्नवाक्य के अन्तिम पद को प्लुत अनुदात्त और पक्ष में प्लुत स्वरित भी होता है–**अगम३ः पूर्वा३न् ग्रामा३न्, अग्निभूता३इ/पटा३उ।***

अभिपूजित अर्थ में 'दूराद्धूते च' (८।२।८४) से उदात्त प्लुत प्राप्त था। इस सूत्र से अनुदात्त प्लुत का विधान किया गया है।

'एचोऽप्रगृह्यस्यादूराद्धूते पूर्वस्यार्धस्यादुत्तरस्येदुतौ' (८।२।१०७) से एच् (ए-ओ) के पूर्वांश अकार को आकारादेश होकर इस सूत्र से इसे अनुदात्त प्लुत होता है और उत्तरांश इकार-उकार उदात्त रहते हैं।

प्लुतः (अनुदात्तः)-

(२०) चिदिति चोपमार्थे प्रयुज्यमाने।१०१।

प०वि०-चित् अव्ययपदम्, इति अव्ययपदम्, उपमार्थे ७।१ प्रयुज्यमाने ७।१।

स०-उपमाऽर्थो यस्य स उपमार्थः, तस्मिन्-उपमार्थे (बहुव्रीहिः)।

अनु०-वाक्यस्य, टेः, प्लुतः, अनुदात्तमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-चिदिति चोपमार्थे प्रयुज्यमाने वाक्यस्य टेः प्लुतोऽनुदात्तः।

अर्थः-चिदित्येतस्मिन् निपाते उपमार्थे प्रयुज्यमाने सति वाक्यस्य टेः प्लुतो भवति, स चानुदात्तो भवति।

उदा०-अग्निचिद् भाया३त्। राजचिद् भाया३त्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(चित्) चित् (इति) इस निपात का (च) भी (उपमार्थे) उपमा अर्थ में (प्रयुज्यमाने) प्रयोग होने पर (वाक्यस्य) वाक्य के (टेः) टि-भाग को (प्लुतः) प्लुत होता है और वह (अनुदात्तः) अनुदात्त होता है।*

*उदा०-**अग्निचिद् भाया३त्।** वह अग्नि के समान प्रकाशित होवे। **राजचिद् भाया३त्।** वह राजा के समान प्रकाशित होवे। यहां चित् निपात उपमा अर्थ में प्रयुक्त है।*

प्लुतः (अनुदात्तः)-

(२१) उपरि स्विदासीदिति च।१०२।

प०वि०-उपरि अव्ययपदम्, स्वित् अव्ययपदम्, आसीत् क्रियापदम्, इति अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्।

अनु०-वाक्यस्य, टेः, प्लुतः, अनुदात्तमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-उपरि स्विदासीदिति वाक्यस्य च टेः प्लुतोऽनुदात्तः।

अर्थः-उपरि स्विदासीदित्येतस्य च टेः प्लुतो भवति, स चानुदात्तो भवति।

उदा०-अधःस्विदासी३त्, उपरि स्विदासी३त् (ऋ० १० ।१२९ ।५)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(उपरि०) उपरि स्विदासीत् (इति) इस (वाक्यस्य) वाक्य के (च) भी (टेः) टि-भाग को (प्लुतः) प्लुत होता है और वह (अनुदात्तः) अनुदात्त होता है।*

*उदा०-**अधःस्विदासी३त्, उपरि स्विदासी३त्** (ऋ० १० ।१२९ ।५)। इस जगत् उत्पन्न होने से पूर्व जो तमस् (प्रकृति) था, क्या वह उस जगत्स्रष्टा से नीचे था अथवा ऊपर था अर्थात् कम था अथवा अधिक था, यह विचार किया जारहा है।*

*यहां '**उपरि स्विदासी३त्**' इस वाक्य में इस सूत्र से टि-भाग को अनुदात्त प्लुत होता है और '**अधःस्विदासी३त्**' इस वाक्य में 'विचार्यमाणानाम्' (८ ।२ ।९७) से वाक्य के टि-भाग को उदात्त प्लुत होता है। यहां 'स्वित्' शब्द वितर्कवाची है।*

प्लुतः (स्वरितः)-

(२२) स्वरितमाम्रेडितेऽसूयासम्मतिकोपकुत्सनेषु।१०३।

प०वि०-स्वरितम् १ ।१ आम्रेडिते ७ ।१ असूया-सम्मति-कोप-कुत्सनेषु ७ ।३।

स०-असूया च सम्मतिश्च कोपश्च कुत्सनं च तानि-असूयासम्मति-कोपकुत्सनानि, तेषु-असूयासम्मतिकोपकुत्सनेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-वाक्यस्य, टेः, प्लुत इति चानुवर्तते।

अन्वयः-असूयासम्मतिकोपकुत्सनेषु आम्रेडिते वाक्यस्य टेः प्लुतः स्वरितः।

अर्थः-असूयासम्मतिकोपकुत्सनेषु आम्रेडिते परतः प्लुतो भवति, स च स्वरितो भवति।

'वाक्यादेरामन्त्रितस्यासूयासम्मतिकोपकुत्सनभर्त्सनेषु' (८ ।१ ।८) इत्यनेन यत्र द्विर्वचनमुक्तं तत्रायं प्लुतो विधीयते। **उदाहरणम्**-

(१) **असूयायाम्**-माणवक३ माणवक, अभिरूपक३ अभिरूपक रिक्तं ते आभिरूप्यम्।

(२) **सम्मतौ**–माणवक३ माणवक, अभिरूपक३ अभिरूपक शोभनः खल्वसि।

(३) **कोपे**–माणवक३ माणवक, अविनीतक३ अविनीतक इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म।

(४) **कुत्सने**–शाक्तीक३ शाक्तीक, याष्टीक३ याष्टीक रिक्ता ते शक्तिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(असूया०) असूया, सम्मति, कोप, कुत्सन इन अर्थों में (आम्रेडिते) आम्रेडित-संज्ञक शब्द परे होने पर पूर्ववर्ती शब्द को (प्लुतः) प्लुत होता है और वह (स्वरितः) स्वरित होता है।*

'वाक्यादेरामन्त्रितस्यासूयासम्मतिकोपकुत्सनभर्त्सनेषु' (८।१।८) इस सूत्र से जहां द्विर्वचन का कथन किया गया है, वहां यह प्लुत विधान है। उदाहरण–

*(१) असूया (निन्दा)–**माणवक३ माणवक, अभिरूपक३ अभिरूपक रिक्तं ते आभिरूप्यम्।** हे बालक ! अभिरूपक तेरा रूप खाली है।*

*(२) सम्मति (पूजा)–**माणवक३ माणवक, अभिरूपक३ अभिरूपक शोभनः खल्वसि।** हे बालक ! अभिरूपक तू निश्चय से सुन्दर है।*

*(३) कोप (क्रोध)–**माणवक३ माणवक, अविनीतक३ अविनीतक इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म।** हे बालक ! अविनीतक (ढीठ) नीच तुझे अब पता चलेगा।*

*(४) कुत्सन (निन्दा)–**शाक्तीक३ शाक्तीक, याष्टीक३ याष्टीक रिक्ता ते शक्तिः।** हे शक्ति शस्त्रधारिन्, यष्टि शस्त्रधारिन् तेरी शक्ति खाली है।*

प्लुतः (स्वरितः)–

(२३) क्षियाशीःप्रैषेषु तिङाकाङ्क्षम्।१०४।

प०वि०–क्षिया-आशीः-प्रैषेषु ७।३ तिङ् १।१ आकाङ्क्षम् १।१।

स०–क्षिया च आशीश्च प्रैषश्च ते क्षियाशीःप्रैषाः, तेषु-क्षियाशीःप्रैषेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। आकाङ्क्षतीति आकाङ्क्षम् (प्रादितत्पुरुषः)।

अनु०–पदस्य, प्लुतः, स्वरितमिति चानुवर्तते।

अन्वयः–क्षियाशीःप्रैषेषु अकाङ्क्षं तिङ् पदं प्लुतः स्वरितः।

अर्थः–क्षियाशीःप्रैषेषु गम्यमानेषु साकाङ्क्षं तिङन्तं पदं प्लुतो भवति, स च स्वरितो भवति। **उदाहरणम्**–

(१) **क्षिया (आचारभेद:)**-स्वयं ह रथेन याति३ उपध्यायं पदातिं गमयति। स्वयं ह ओदनं भुङ्क्ते३ उपध्यायं सक्तून् पाययति। अत्र पूर्वं तिङन्तं (याति) उत्तरं तिङन्तम् (गमयति) अकाङ्क्षति।

(२) **आशी: (प्रार्थनाविशेष:)**-सुताँश्च लप्सीष्ट३ धनं च तात! छन्दोऽध्येषीष्ट३ व्याकरणं च भद्र!

(३) **प्रैष: (शब्देन व्यापारणम्)**-कटं कुरु३ ग्रामं च गच्छ। यवान् लुनीहि३ सक्तूँश्च पिब।

***आर्यभाषा:* अर्थ**-*(क्षिया०) क्षिया, आशी:, प्रैष इन अर्थों की अभिव्यक्ति में (आकाङ्क्षम्) आकाङ्क्ष से युक्त (तिङ्) तिङन्त (पदम्) पद (प्लुत:) प्लुत होता है और वह (स्वरित:) स्वरित होता है। उदाहरण--*

*(१) क्षिया (शिष्टाचार का उल्लङ्घन)-**स्वयं ह रथेन याति३ उपध्यायं पदातिं गमयति।** स्वयं तो रथ से जाता है और उपाध्याय जी को पैदल भेजता है। **स्वयं ह ओदनं भुङ्क्ते३ उपध्यायं सक्तून् पाययति।** स्वयं तो चावल खाता है और उपाध्याय जी को सत्तू पिलाता है। यहां पूर्व तिङन्त (याति) उत्तर तिङन्त (गमयति) की अकाङ्क्षा रखता है।*

*(२) आशी: (आशीर्वाद)-**सुताँश्च लप्सीष्ट३ धनं च तात!** हे प्रिय! तू पुत्रों को और धन को प्राप्त कर। **छन्दोऽध्येषीष्ट३ व्याकरणं च भद्र!** हे भद्र! तू छन्द:शास्त्र और व्याकरणशास्त्र का अध्ययन कर।*

*(३) **प्रैष:** (आज्ञा देना)-**कटं कुरु३ ग्रामं च गच्छ।** तू चटाई बना और गांव जा। **यवान् लुनीहि३ सक्तूँश्च पिब।** तू जौ काट और सत्तू पी।*

प्लुत: (स्वरित:)--

(२४) अनन्त्यस्यापि प्रश्नाख्यानयो:।१०५।

प०वि०-अनन्त्यस्य ६।१ अपि अव्ययपदम्, प्रश्न-आख्यानयो: ७।२।

स०-अन्ते भवमिति अन्त्यम्, न अन्त्यमिति अनन्त्यम्, तस्य-अनन्त्यस्य (नञ्तत्पुरुष:)। प्रश्नश्च आख्यानं च ते प्रश्नाख्याने, तयो:-प्रश्नाख्यानयो: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-पदस्य, वाक्यस्य, टे:, प्लुत:, स्वरितमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-प्रश्नाख्यानयोर्वाक्यस्यानन्त्यस्यान्त्यस्यापि च पदस्य टेः प्लुतः स्वरितः।

अर्थः-प्रश्ने आख्याने चार्थे वर्तमानस्य वाक्यस्यानन्त्यस्यान्त्यस्यापि च पदस्य टेः प्लुतो भवति, स च स्वरितो भवति।

उदा०-(प्रश्नः) अगम३ः पूर्वा३न् ग्रामा३न् अग्निभूता३इ/पटा३उ। **(आख्यानम्)** अगम३म् पूर्वा३न् ग्रामा३न् **भोः**।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(प्रश्नाख्यानयोः) प्रश्न और आख्यान=उत्तर अर्थ में विद्यमान (अनन्त्यस्य) अनन्त्य और अन्त्य (पदस्य) पद के (टेः) टि-भाग को (अपि) भी (प्लुतः) प्लुत होता है और वह (स्वरितः) स्वरित होता है।*

*उदा०-**(प्रश्न) अगम३ः पूर्वा३न् ग्रामा३न् अग्निभूता३इ/पटा३उ।** हे अग्निभूते/पटो क्या तू पूर्वदिशा के ग्रामों में गया था? **(आख्यानम्)** उत्तर-**अगम३म् पूर्वा३न् ग्रामा३न् भोः।** भाई! मैं पूर्वदिशा के ग्रामों में गया था।*

*यहां प्रश्नवाक्य में अन्तिम पद के टि-भाग को पक्ष में 'अनुदात्तं प्रश्नान्ताभिपूजितयोः' (८।२।१००) से अनुदात्त प्लुत भी होता है-**अगम३ः पूर्वा३न् ग्रामा३न् अग्निभूता३इ/पटा३उ।***

प्लुतविधिमाह--

(२५) प्लुतावैच इदुतौ।१०६।

प०वि०-प्लुतौ १।१ ऐचः ६।१ इदुतौ १।२।

स०-इच्च उच्च तौ-इदुतौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अर्थः-**'दूराद्धूते च'** (८।२।८४) इत्येवमादिषु यः प्लुतो विहितस्तत्रैचः प्लुतप्रसङ्गे इकारोकारौ प्लुतौ भवतः।

उदा०-(ऐ) ऐ३तिकानयन! **(औ)** औ३पमन्यव!

***आर्यभाषाः** अर्थ-'दूराद्धूते च' (८।२।८४) इत्यादि सूत्रों से जो प्लुत-विधान किया गया है वहां (ऐचः) ऐच् (ऐ-औ) वर्ण को प्लुत के प्रसङ्ग में (इदुतौ) इकार और उकार को (प्लुतौ) प्लुत होता है।*

*उदा०-**(ऐ) ऐ३तिकायन! (औ) औ३पमन्यव!** हे ऐतिकायन! हे औपमन्यव!*

विशेषः *ऐच् अर्थात् ऐ और औ ये सन्ध्यक्षर हैं। अ+इ=ए। अ+ए=ऐ। अ+उ=ओ। अ+ओ=औ। 'दूराद्धूते च' (८।२।८४) इत्यादि सूत्रों से जो प्लुत-विधान किया गया है वहां ऐच् (ए-औ) वर्ण को प्लुत-विधान के प्रसङ्ग में ऐच् वर्ण के अवयवभूत इकार और उकारवर्ण को प्लुत होता है, अवयवभूत अकार वर्ण को नहीं। ऐ, औ वर्ण द्वैमात्रिक हैं वे प्लुत अर्थात् त्रैमात्रिक नहीं हो सकते अतः एकमात्रिक इकार और उकार को प्लुत होता है।*

ऐ३तिकायन !, औ३पमन्यव ! *इन पदों में* ***'गुरोरनृतोऽनन्त्यस्याप्येकैकस्य प्राचाम्'*** *(८।२।८६) से प्लुत-विधान किया गया है। इस सूत्र में उक्त प्लुतविधि का उपदेश है।*

प्लुतविधिमाह–

(२६) एचोऽप्रगृह्यस्यादूराद्धूते पूर्वस्यार्धस्यादुत्तरस्येदुतौ ।१०७।

प०वि०-एचः ६।१ अप्रगृह्यस्य ६।१ अदूराद्धूते ७।१ पूर्वस्य ६।१ अर्धस्य ६।१ आत् १।१ उत्तरस्य ६।१ इदुतौ १।२।

स०-न प्रगृह्यमिति अप्रगृह्यम्, तस्य अप्रगृह्यस्य (नञ्तत्पुरुषः)। न दूरमिति अदूरम्, तस्मात्-अदूरात्। न दूराद्धूते इति अदूराद्धूते (नञ्तत्पुरुषः)। इच्च उच्च तौ-इदुतौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-प्लुत इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अप्रगृह्यस्याऽदूराद्धूते प्लुतस्यैचः पूर्वस्यार्धस्यात् प्लुतः, उत्तरस्येदुतौ।

अन्वयः-अप्रगृह्यवर्जितस्याऽदूराद्धूते च विषये वर्तमानस्य प्लुतविषयस्यैचो पूर्वस्यार्धस्य स्थाने आकारादेशो भवति, स च प्लुतो भवति, उत्तरस्य चेदुतावादेशौ भवतः। **उदाहरणम्**–

(१) **प्रश्नान्ते**-अगमः३ पूर्वा३न् ग्रामा३न् अग्निभूता३इ, पटा३उ।

(२) **अभिपूजिते**-भद्रं करोषि माणवक३ अग्निभूता३इ, पटा३उ।

(३) **विचार्यमाणे**-होतव्यं दीक्षितस्य गृहा३इ (तै०सं० ६।१।४।५)।

(४) **प्रत्यभिवादे**-आयुष्मानेधि अग्निभूता३इ, पटा३इ।

(५) **याज्यान्ते**-उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे। स्तोमैर्विधेमाग्नया३इ (ऋ० ८।४३।११)।

सोऽयं प्लुतेऽकारो यथाविषयमुदात्तोऽनुदात्तः स्वरितश्च वेदितव्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अप्रगृह्यस्य) प्रगृह्य संज्ञा से भिन्न और (अदुराद्धूते) दूराद्धूते विषय को छोड़कर प्लुतविषयक (एचः) एच् वर्ण के (पूर्वस्य) पूर्ववर्ती (अर्धस्य) अर्धांश को (आत्) आकारादेश होता है और वह (प्लुतः) प्लुत होता है और (उत्तरस्य) उत्तरवर्ती अर्धांश को (इदुतौ) इकार और उकार आदेश होते हैं। उदाहरण-*

*(१) **प्रश्नान्त-अगमः३ पूर्वा३न् ग्रामा३न् अग्निभूता३इ/पटा३उ।** हे अग्निभूते/पटो क्या तू पूर्व दिशा के ग्रामों को गया था? यहां 'अनुदात्तं प्रश्नान्ताभिपूजितयोः' (८।२।१००) प्लुत अनुदात्त होता है।*

*(२) **अभिपूजित-भद्रं करोषि माणवक३ अग्निभूता३इ/पटा३उ।** हे अग्निभूते/पटो बालक तू सुखदायक कर्म करता है। यहां भी पूर्ववत् प्लुत अनुदात्त होता है।*

(३) विचार्यमाण-होतव्यं दीक्षितस्य गृहा३इ (तै०सं० ६।१।४।५)। दीक्षित के घर में हवन करना चाहिये अथवा नहीं यह विचारणीय है। यहां 'विचार्यमाणानाम्' (८।२।९७) प्लुत उदात्त होता है।

*(४) **प्रत्यभिवाद-आयुष्मानेधि अग्निभूता३इ, पटा३इ।** हे अग्निभूते/पटो! तू दीर्घायु हो। यहां 'प्रत्यभिवादेऽशूद्रे' (८।२।८३) से प्लुत उदात्त होता है।*

*(५) **याज्यान्त-उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे। स्तोमैर्विधेमाग्नया३इ** (ऋ० ८।४३।११)। यहां 'याज्यान्तः' (८।२।९०) से प्लुत उदात्त होता है।*

यवावादेशौ--

(२७) तयोर्य्वावचि संहितायाम्।१०८।

प०वि०-तयोः ६।२ य्वौ १।२ अचि ७।१ संहितायाम् ७।१।

स०-यश्च वश्च तौ य्वौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-संहितायां तयोरिदुतोरचि य्वौ।

अर्थः-संहितायां विषये तयोरिदुतोः स्थानेऽचि परतो यथासंख्यं यकारवकारावादेशौ भवतः।

उदा०-(इ) अग्ना३इ+आशा=अग्ना३याशा। अग्ना३इ+इन्द्रम्=अग्ना३यिन्द्रम्। (उ) पटा३उ+आशा=पटा३वाशा। पटा३उ+उदकम्=पटा३वुदकम्।

'संहितायाम्' इत्यधिकारोऽयम् आ अध्यायपरिसमाप्तेः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (तयोः) उन पूर्वोक्त इकार और उकार के स्थान में (अचि) अच् वर्ण परे होने पर यथासंख्य (य्वौ) यकार और वकार आदेश होते हैं।*

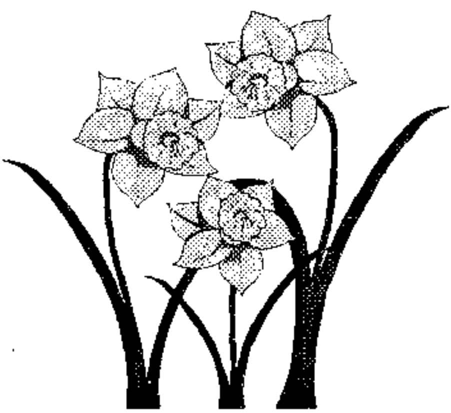
उदा०-उदाहरण संस्कृत-भाग में लिखे हैं।

*अग्ना३याश आदि उदाहरणों में **'इको यणचि'** (६।१।७६) से विहित यणादेश के असिद्ध होने से यह अकारादेश का विधान किया गया है। अग्ना३यिन्द्रम् आदि में **'अकः सवर्णे दीर्घः'** (६।१।९७) से प्राप्त दीर्घरूप एकादेश के असिद्ध होने से इस सूत्र से विहित यकारादेश ही होता है। ऐसे ही-**पटा३ वाशा, पटा३वुदकम्।***

***'संहितायाम्'** इस पद का अष्टम अध्याय की समाप्ति पर्यन्त अधिकार है। पाणिनि मुनि इससे आगे जो कहेंगे वह संहिता (सन्धि) विषय में जानना चाहिये।*

।। इति प्लुतादेशप्रकरणम्।।

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने अष्टमाध्यायस्य द्वितीयः पादः समाप्तः।



अष्टमाध्यायस्य तृतीयः पादः

पूर्वसंहिताप्रकरणम्

{रु-आदेशप्रकरणम्}

रु-आदेशः-

(१) मतुवसो रु सम्बुद्धौ छन्दसि।१।

प०वि०-मतुवसोः ६।१ रु १।१ (सु-लुक्) सम्बुद्धौ ७।१ छन्दसि ७।१

स०-मतुश्च वसुश्च एतयोः **समाहारः**-मतुवसु, तस्य-मतुवसोः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-पदस्य, संहितायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां छन्दसि मतुवसोः पदस्य सम्बुद्धौ रुः।

अर्थः-संहितायां छन्दसि च विषये मत्वन्तस्य वस्वन्तय च पदस्य सम्बुद्धौ परतो रुरादेशो भवति।

उदा०-**(मत्वन्तम्)** इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमम् (तै०सं० १।४।१८।१)। हरिवो मेदिनं त्वा (तै०सं० ४।७।१४।४)। **(वस्वन्तम्)** मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृळ (ऋ० २।३३।१४)। इन्द्र साह्वः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (छन्दसि) वेदविषय में (मतुवसोः) मतुबन्त और वस्वन्त (पदस्य) पद को (सम्बुद्धौ) सम्बुद्धि-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (रुः) रु-आदेश होता है।*

*उदा०-**(मत्वन्त) इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमम्** (तै०सं० १।४।१८।१)। **मरुत्व**=हे मरुतोंवाले इन्द्र! **हरिवो मेदिनं त्वा** (तै०सं० ४।७।१४।४)। हरिवः=हे हरियोंवाले। हरि=किरण। **(वस्वन्त) मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृळ** (ऋ० २।३३।१४)। मीढ्वः=हे सेचन करनेवाले। **इन्द्र साह्वः**। साह्वः=हे मर्षण करनेवाले इन्द्र।*

*सिद्धि-(१) **मरुत्वः**। मरुत्+मतुप्। मरुत्+वत्। मरुत्व नुम्त्+सु। मरुत्वन्त्+०। मरुत्वन्०। मरुत्वरु। मरुत्वर्। मरुत्वः।*

*यहां 'मरुत्' शब्द से 'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्' (५।२।९४) से 'मतुप्' प्रत्यय है। 'झयः' (८।२।१०) से मतुप् के मकार को वकारादेश, '**उगिदचां सर्वनाम-स्थानेऽधातोः**' (७।१।७०) से नुम् आगम, '**हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०**' (६।१।६७) से 'सु' का लोप और '**संयोगान्तस्य लोपः**' (८।२।२३) से संयोगान्त तकार का लोप होता है। इस सूत्र से वेदविषय में सुबुद्धिसंज्ञक 'सु' प्रत्यय परे होने पर 'मरुत्वन्' पद के नकार को रु-आदेश होता है। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' (८।३।१५) से अवसानलक्षण विसर्जनीय आदेश होता है।*

*(२) **हरिवः।** यहां 'हरि' शब्द से पूर्ववत् 'मतुप्' प्रत्यय है। 'छन्दसीरः' (८।२।१५) से मतुप् के मकार को वकारादेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **मीढ्वः।** यहां '**मिह सेचने**' (भ्वा०प०) धातु से 'लिट्' प्रत्यय और '**क्वसुश्च**' (३।२।१०७) से 'लिट्' के स्थान में 'क्वसु' आदेश है। '**दाश्वान् साह्वान् मीढ्वाँश्च**' (६।१।१२) से द्वित्व का अभाव, इडागम का अभाव और उपधा को दीर्घत्व और हकार को ढकारादेश निपातित है। शेष कार्य पूर्ववत् है। 'मीढ्वन्' इस स्थिति में इस सूत्र से नकार को रुत्व और पूर्ववत् विसर्जनीय आदेश होता है।*

*(३) **साह्वः।** यहां '**षह मर्षणे**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'लिट्' प्रत्यय और उसके स्थान में 'क्वसु' आदेश है। शेष कार्य पूर्ववत् है। 'साह्वन्' इस स्थिति में इस सूत्र से नकार को रुत्व और पूर्ववत् विसर्जनीय आदेश होता है।*

अनुनासिकादेशाधिकारः–

(२) अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा।२।

प०वि०–अत्र अव्ययपदम्, अनुनासिकः १।१ पूर्वस्य ६।१ तु अव्यय-पदम्, वा अव्ययपदम्।

अनु०–संहितायाम्, रुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायामत्र पूर्वस्य तु वाऽनुनासिकः।

अर्थः–संहितायां विषयेऽत्र अस्मिन् रुविधौ यस्य स्थाने रुरादेशो विधीयते, ततः पूर्वस्य तु वर्णस्य विकल्पेनाऽनुनासिकादेशो भवति, इत्यधिकारोऽयम्। यथा वक्ष्यति–'**समः सुटि**' (८।३।५) इति। सँस्कर्ता, सँस्कर्तुम्, सँस्कर्तव्यम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अत्र) इस रु-विधि में जिसके स्थान में रु-आदेश का विधान किया जाता है, उससे (पूर्वस्य) पूर्ववर्ती वर्ण को (तु)*

*तो (वा) विकल्प से (अनुनासिकः) अनुनासिक आदेश होता है। जैसे पाणिनि मुनि कहेंगे **'समः सुटि'** (८।३।५) अर्थात् 'सम्' के मकार को 'सुट्' परे होने पर रु-आदेश होता है। **सँस्कर्ता।** संस्कार करनेवाला। **सँस्कर्तुम्।** संस्कार करने के लिये। **सँस्कर्तव्यम्।** संस्कार करना चाहिये।*

***सिद्धि-सँस्कर्ता** आदि पदों की सिद्धि आगे यथास्थान लिखी जायेगी।*

नित्यमनुनासिकः-

(३) आतोऽटि नित्यम्।३।

प०वि०-आतः ६।१ अटि ७।१ नित्यम् १।१।

अनु०-संहितायाम्, रुः, अत्र, अनुनासिक इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां विषयेऽत्र रोः पूर्वस्यातोऽटि नित्यमनुनासिकः।

अर्थः-संहितायां विषयेऽत्र रुविधौ रोः पूर्वस्याकारस्याऽटि परतो नित्यमनुनासिक आदेशो भवति, इत्यधिकारोऽयम्।

उदा०-महाँ असि (ऋ० ३।४६।१)। महाँ इन्द्रो य ओजसा (ऋ० ८।६।१)। देवाँ अच्छा दीद्यत् (ऋ० ३।१।१)।

***आर्यभाषाः अर्थ-**(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अत्र) इस रुविधि में (रोः) रु से (पूर्वस्य) पूर्ववर्ती (आतः) आकार को (अटि) अट् वर्ण परे होने पर (नित्यम्) सदा (अनुनासिकः) अनुनासिक आदेश होता है, यह अधिकार सूत्र है।*

*उदा०-**महाँ असि** (ऋ० ३।४६।१)। तू महान् है। **महाँ इन्द्रो य ओजसा** (ऋ० ८।६।१)। जो ओज से महान् है वह इन्द्र है। **देवाँ अच्छा दीद्यत्** (ऋ० ३।१।१)।*

***सिद्धि-महाँ असि।** महान्+असि। महाँ रु+असि। महाँर्+असि। महाँय्+असि। महाँ०+असि। महाँ असि।*

*यहां 'महान्' शब्द के नकार को **'दीर्घादटि समानपादे'** (८।३।९) से 'रु' आदेश है। इस सूत्र से 'रु' से पूर्ववर्ती आकार को अनुनासिक आदेश होता है। **'भो भगो०'** (८।३।१७) से रेफ को यकारादेश और **'लोपः शाकल्यस्य'** (८।३।१९) से यकार का लोप होता है। ऐसे ही-**महाँ इन्द्रो य ओजसा, देवाँ अच्छा दीद्यत्।***

अनुस्वारादेशः-

(४) अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः।४।

प०वि०-अनुनासिकात् ५।१ परः १।१ अनुस्वारः १।१।

अनु०-संहितायाम्, रुः, अत्रेति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायामत्र रुविधावनुनासिकात् परोऽनुस्वारः।

अर्थः-संहितायां विषयेऽत्र रुविधावनुनासिकात् परोऽन्यो यो वर्णो यस्यानुनासिको न विहितस्तस्यानुस्वारादेशो भवति, इत्यधिकारोऽयम्।

'अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा' (८।३।२) इत्यनेन विकल्पेनानुनासिकादेशो विहितः। यस्मिन् पक्षेऽनुनसिकादेशो न भवति, तस्मिन् पक्षेऽनेन सूत्रेणाऽनुस्वारादेशो विधीयते।

यथा वक्ष्यति-**'समः सुटि'** (८।३।५) इति। संस्कर्ता, संस्कर्तुम्, संस्कर्तव्यम्। **'पुमः खय्यम्परे'** (८।३।६) इति। पुंस्कामा। **'नश्छव्यप्रशान्'** (८।३।७) इति। भवांश्चिनोति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अत्र) इस रुविधि में (अनुनासिकात्) अनुनासिक आदेश से (परः) अन्य जो वर्ण है जिसे अनुनासिक नहीं किया गया है उसको (अनुस्वारः) अनुस्वार आदेश होता है, यह अधिकार सूत्र है।*

'अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा' (८।३।२) इस सूत्र से विकल्प से अनुनासिक आदेश विधान किया गया है। जिस पक्ष में अनुनासिक आदेश नहीं होता है, उस पक्ष में इस सूत्र से अनुस्वार आदेश का विधान किया गया है।

*जैसे कि पाणिनि मुनि कहेंगे-**'समः सुटि'** (८।३।५) अर्थात् 'सुट्' परे होने पर 'सम्' को 'रु' आदेश होता है। **संस्कर्ता।** संस्कार करनेवाला। **संस्कर्तुम्।** संस्कार करने के लिये। **संस्कर्तव्यम्।** संस्कार करना चाहिये। **'पुमः खय्यम्परे'** (८।३।६) अर्थात् अम्परक खय् वर्ण परे होने पर 'पुम्' को 'रु' आदेश होता है। **पुंस्कामा।** पुरुष की कामना करनेवाली नारी। **'नश्छव्यप्रशान्'** (८।३।७) प्रशान् से भिन्न नकारान्त शब्द को छव् वर्ण परे होने पर 'रु' आदेश होता है। **भवांश्चिनोति।** आप चुनते हैं।*

सिद्धि-संस्कर्ता *आदि पदों की सिद्धि आगे यथास्थान लिखी जायेगी।*

रु-आदेशः-

(५) समः सुटि।५।

प०वि०-समः ६।१ सुटि ७।१।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, रुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां समः पदस्य सुटि रुः।

अर्थः-संहितायां विषये समः पदस्य सुटि परतो रुरादेशो भवति।

उदा०-सँस्कर्ता, सँस्कर्तुम्, सँस्कर्तव्यम्। **अनुस्वारपक्षे**-संस्कर्ता, संस्कर्तुम्, संस्कर्तव्यम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (समः) सम् इस (पदस्य) पद को (सुटि) सुट् आगम परे होने पर (रुः) रु-आदेश होता है, यह अधिकार सूत्र है।*

*उदा०-**सँस्कर्ता**। संस्कार करनेवाला। **सँस्कर्तुम्**। संस्कार करने के लिये। **सँस्कर्तव्यम्**। संस्कार करना चाहिये। **अनुस्वार पक्ष में-संस्कर्ता, संस्कर्तुम्, संस्कर्तव्यम्**। अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-**सँस्कर्ता**। सम्+सुट्+कर्ता। सम्+स्+कर्ता। स रु+स्+कर्ता। सँर्+स्कर्ता। सँः+स्+कर्ता। सँस्+स्+कर्ता। सँ०+स्+कर्ता। सँस्कर्ता।*

*यहां सम्-उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु से 'तृच्' प्रत्यय है। '**सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे**' (६।१।१३५) से 'सुट्' आगम है। इस सूत्र से 'सुट्' परे होने पर 'सम्' के मकार को 'रु' आदेश होता है। '**खरवसानयोर्विसर्जनीयः**' (८।३।१५) से रेफ को विसर्जनीय और '**वा शरि**' (८।३।३६) में व्यवस्थित विभा**षा मानकर** विसर्जनीय को सकार ही आदेश होता है। वा०-'**अयोगवाहानामट्सु**' (हयवरट्) इस भाष्य वार्तिक से अयोगवाह (अँ) का 'अट्' में उपदेश होने से उसे हल् मानकर '**झरो झरि सवर्णे**' (८।४।६४) से सकार का लोप होता है। 'तुमुन्' प्रत्यय में-**सँस्कर्तुम्**। 'तव्यत्' प्रत्यय में-**सँस्कर्तव्यम्**। अनुस्वार-पक्ष में-**संस्कर्ता, संस्कर्तुम्, संस्कर्तव्यम्**।*

रु-आदेशः–

(६) पुमः खय्यम्परे।६।

प०वि०-पुमः ६।१ खयि ७।१ अम्परे ७।१।

स०-अम् {प्रत्याहारः} परो यस्मात् सः-अम्परः, तस्मिन्-अम्परे (बहुव्रीहिः)।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, रुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां समः पदस्याम्परे खयि रुः।

अर्थः-संहितायां विषये पुमः पदस्याम्परके खयि वर्णे परतो रुरादेशो भवति।

उदा०-पुँस्कामा, पुंस्कामा। पुँस्पुत्रः, पुंस्पुत्रः। पुँस्फलम्, पुंस्फलम्। पुँश्चली, पुंश्चली।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पुमः) पुम् इस (पदस्य) पद को (अम्परे) अम्-प्रत्याहार परक (खयि) खय् वर्ण परे होने पर (रुः) रु-आदेश होता है।*

*उदा०-**पुँस्कामा, पुंस्कामा**। पुरुष की कामना रखनेवाली नारी। **पुँस्पुत्रः, पुंस्पुत्रः**। पुरुष के नाम से प्रसिद्ध पुत्र। **पुँस्फलम्, पुंस्फलम्**। पुरुषभाव का फल। **पुँश्चली, पुंश्चली**। कुलटा नारी (चालू)।*

***सिद्धि-पुँस्कामा**। पुम्+कामा। पुरु+कामा। पुर्+कामा। पुँः+कामा। पुँस्+कामा। पुँस्कामा।*

*यहां 'पुम्' और 'कामा' शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से अम्परक (आ) खय् वर्ण (का) वर्ण परे होने पर 'पुम्' के मकार को 'रु' आदेश होता है। **'खरवसानयोर्विसर्जनीयः'** (८।३।१५) से रु के रेफ को खर्लक्षण विसर्जनीय और **'वा शरि'** (८।३।३६) में व्यवस्थित विभाषा मानकर विसर्जनीय को सकारादेश ही होता है। **'कुप्वोः ≍क ≍पौ च'** (८।३।३७) से प्राप्त ≍ जिह्वामूलीय आदेश नहीं होता है। 'रु' से पूर्ववर्ती वर्ण को पूर्ववत् अनुनासिक आदेश होता है। अनुस्वार पक्ष में-**पुंस्कामा**। ऐसे ही-**पुँस्पुत्रः** आदि।*

***वा०-'अयोगवाहानामट्सु'** (हयवरट्) इस भाष्यवार्तिक से अयोगवाह (अँ) को अचों में परिगणित करके **'अनचि च'** (८।४।४६) से सकार को द्वित्व होता है-**पुँस्स्कामा**। और पूर्वोक्त वार्तिक से ही अयोगवाह को हल् में परिगणित करके **'झरो झरि सवर्णे'** (८।४।६४) से सकार का लोप होता है-**पुँस्कामा**। ऐसे ही-**पुंस्स्पुत्रः, पुँस्पुत्रः** आदि।*

रु-आदेशः--

(७) नश्छव्यप्रशान्।७।

प०वि०-नः ६।१ छवि ७।१ अप्रशान् १।१ (षष्ठ्यर्थे)।

स०-न प्रशानिति अप्रशान् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, रुः, अम्परे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् अप्रशान् नः पदस्याम्परे छवि रुः।

अर्थः-संहितायां विषयेऽप्रशान्=प्रशान्वर्जितस्य नकारान्तस्य पदस्याम्परके छवि परतो रुरादेशो भवति।

उदा०-भवाँश्छादयति, भवांश्छादयति। भवाँश्चिनोति, भवांश्चिनोति। भवाँष्टीकते, भवांष्टीकते। भवाँस्तरति, भवांस्तरति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अप्रशान्) प्रशान् शब्द से भिन्न (नः) नकारान्त (पदस्य) पद को (अम्परे) अम्-प्रत्याहार परक (छवि) छव् वर्ण परे होने पर (रुः) रु-आदेश होता है।*

उदा०- ***भवाँश्छादयति, भवांश्छादयति।*** *आप ढकते हैं।* ***भवाँश्चिनोति, भवांश्चिनोति।*** *आप चुनते हैं।* ***भवाँष्टीकते, भवांष्टीकते।*** *आप जाते हैं।* ***भवाँस्तरति, भवांस्तरति।*** *आप तैरते हैं।*

सिद्धि- ***भवाँश्छादयति।*** *भवान्+छादयति। भवारु+छादयति। भवाँर्+छादयति। भवाँः+छादयति। भवाँस्+छादयति। भवाँश्+छादयति। भवाँश्छादयति।*

यहां नकारान्त भवान् पद से अम्परक (आ) छव् वर्ण (छ्) है। अतः इस सूत्र से नकार को 'रु' आदेश होता है। 'रु' के रेफ को पूर्ववत् खर्लक्षण विसर्जनीय, ***'विसर्जनीयस्य सः'*** *(८।३।३४) से विसर्जनीय को सकारादेश और* ***'स्तोः श्चुनाश्चुः'*** *(८।४।४०) से सकार को शकारादेश होता है। पूर्ववत् 'रु' से पूर्ववर्ती अच् को अनुनासिक आदेश होता है। अनुस्वार पक्ष में-* ***भवांश्छादयति।*** *ऐसे ही-* ***भवाँश्चिनोति, भवांश्चिनोति। भवाँष्टीकते, भवांष्टीकते।*** *यहां* ***'ष्टुना ष्टुः'*** *(८।४।४१) से सकार को षकारादेश है।* ***भवाँस्तरति, भवांस्तरति।*** *प्रशान्=प्रशान्त रहनेवाला।*

ऋक्षु उभयथा (रु+न्)-

(८) उभयथर्क्षु।८।

प०वि०- उभयथा अव्ययपदम्, ऋक्षु ७।३।

अनु०- पदस्य, संहितायाम्, रुः, अम्परे, छवि, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः- संहितायाम् ऋक्षु नः पदस्याम्परे छवि उभयथा (रुः, नः)।

अर्थः- संहितायाम् ऋचि च विषये नकारान्तस्य पदस्याम्परके छवि परत उभयथा भवति, रुर्वा नकारो वा भवतीत्यर्थः।

उदा०- तस्मिँस्त्वा दधाति, तस्मिंस्त्वा दधाति, तस्मिन्त्वा दधाति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (ऋक्षु) ऋक् विषय में (नः) नकारान्त (पदस्य) पद को (अम्परे) अम्-परक (छवि) छव् वर्ण परे होने पर (उभयथा) दोनों प्रकार से कार्य होता है अर्थात् रु-आदेश भी होता है।*

उदा०- ***तस्मिँस्त्वा दधाति, तस्मिंस्त्वा दधाति, तस्मिन्त्वा दधाति।*** *उसमें तुझे रखता है।*

विशेषः *ऋक् शब्द से पादबद्ध मन्त्रों का ग्रहण होता है, केवल ऋग्वेद का ही नहीं। ऋक् का लक्षण जैमिनि ने-* ***'यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था सा ऋक्'*** *(मी०द० २।१।३५) अर्थात् जिन मन्त्रों में अर्थानुकूल पादव्यवस्था होती है, वे ऋक् शब्द वाच्य होते हैं; किया है (अष्टाध्यायी-प्रथमावृत्तिः पृ० ५५९)।*

रु-आदेशः–

(९) दीर्घादटि समानपादे।९।

प०वि०–दीर्घात् ५।१ अटि ७।१ समानपादे ७।१।

स०–समानश्चासौ पादश्चेति समानपादः, तस्मिन् समानपादे (कर्मधारयतत्पुरुषः)।

अनु०–पदस्य, संहितायाम्, रुः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् ऋक्षु दीर्घात् पदस्य नोऽटि रुः, समानपादे।

अर्थः–संहितायाम् ऋचि च विषये दीर्घात्परस्य पदान्तस्य नकारस्याटि परतो रुरादेशो भवति, तौ चेत्, निमित्तनिमित्तिनौ समानपादे भवतः।

उदा०–परिधींरति (ऋ० ९।१०७।१९)। देवाँ अच्छा दीद्यत् (ऋ० ३।१।१) महाँ इन्द्रो य ओजसा (ऋ० ८।६।१)।

अत्र ऋक्षु इति प्रकृतत्वात् पादशब्देन ऋक्पाद एव गृह्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (ऋक्षु) ऋक् विषय में (दीर्घात्) दीर्घ वर्ण से परवर्ती (पदस्य) पदान्त (नः) नकार को (अटि) अट् वर्ण परे होने पर (रुः) रु-आदेश होता है (समानपादे) यदि वे सूत्रोक्त कारण और कार्य एक पाद में ही विद्यमान हों।*

*उदा०–**परिधींरति** (ऋ० ९।१०७।१९)। परिधियों का अतिक्रमण करके। **देवाँ अच्छा दीद्यत्** (ऋ० ३।१।१)। देवों को अच्छे प्रकार प्रकाशित करता हुआ अग्नि। **महाँ इन्द्रो य ओजसा** (ऋ० ८।६।१)। जो ओज से महान् है वह इन्द्र है।*

यहां ऋक् का प्रकरण होने से पाद शब्द से ऋक् पाद का ही ग्रहण किया जाता है।

__सिद्धि–परिधींरति__। यहां परिधीन्+अति। इस स्थिति में इस सूत्र से दीर्घ ईकार से परवर्ती नकार को 'रु' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

__देवाँ अच्छा दीद्यत्__ और __महाँ इन्द्रो य ओजसा__ में 'आतोऽटि नित्यम्' (८।३।३) से नित्य अनुनासिक आदेश होता है; अनुस्वार नहीं।

रु-आदेशः–

(१०) नॄन् पे।१०।

प०वि०–नॄन् २।३ पे ७।१।

अनु०–पदस्य, संहितायाम्, रुः, **न इति** चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां नृन् पदस्य नः पे रुः।

अर्थः-संहितायां विषये नृन् इत्येतस्य पदस्य नकारस्य पकारे परतो रुरादेशो भवति।

उदा०-नॄँः पाहि, नॄंः पाहि। नॄँ ᳵ पाहि, नॄं ᳵ पाहि। नॄँः प्रीणीहि, नॄंः प्रीणीहि। नॄँ ᳵ प्रीणीहि, नॄं ᳵ प्रीणीहि।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (नृन्) नृन् इस (पदस्य) पद के (नः) नकार को (पे) पकार वर्ण परे होने पर (रुः) रु-आदेश होता है।*

*उदा०-**नॄँः पाहि** (ऋ० ८।८४।३), **नॄंः पाहि। नॄँ ᳵ पाहि, नॄं ᳵ पाहि।** तू नरों की रक्षा कर। **नॄँः प्रीणीहि, नॄंः प्रीणीहि। नॄँ ᳵ प्रीणीहि, नॄं ᳵ प्रीणीहि।** तू नरों को तृप्त कर, प्रसन्न कर।*

***सिद्धि-नॄँः पाहि।** नृन्+पहि। नृरु+पाहि। नॄँर्+पाहि। नॄँः+पाहि। नॄँः पाहि।*

*यहां 'नृन्' इस पद के नकार को पकार परे होने पर इस सूत्र से 'रु' आदेश होता है। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' (८।३।१५) से 'रु' के रेफ को खर्लक्षण विसर्जनीय आदेश होता है। 'अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा' (८।३।२) से 'रु' से पूर्ववर्ती अच् को अनुनासिक आदेश है। विकल्प पक्ष में 'अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः' (८।३।४) से अनुस्वार आदेश है-**नॄंः पाहि।** 'कुप्वोः ᳵ क ᳵ पौ च' (८।३।३७) से विसर्जनीय को ᳵ उपध्मानीय भी होता है-**नॄँ ᳵ पाहि। नॄं ᳵ पाहि।** ऐसे ही-**नॄँः प्रीणीहि** आदि।*

रु-आदेशः--

(११) स्वतवान् पायौ।११।

प०वि०-स्वतवान् १।१ पायौ ७।१।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, रुः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां स्वतवान् पदस्य नः पायौ रुः।

अर्थः-संहितायां विषये स्वतवान् इत्येतस्य पदस्य नकारस्य पायुशब्दे परतो रुरादेशो भवति।

उदा०-स्वतवाँः पायुरग्ने (ऋ० ४।२।६)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (स्वतवान्) स्वतवान् इस **(पदस्य)** पद के नकार को (पायौ) पायु शब्द परे होने पर (रुः) रु-आदेश होता है।*

*उदा०-**स्वतवाँः पायुरग्ने** (ऋ० ४।२।६)। स्वतवान्=अपने गुणों से वृद्ध राजा।*

***सिद्धि-स्वतवाँः पायुः।** यहां इस सूत्र से स्वतवान् पद के नकार को पायु शब्द परे होने पर 'रु' आदेश होता है। पूर्ववत् 'रु' के रेफ को विसर्जनीय और अनुनासिक आदेश है।*

रु-आदेशः–

(१२) कानाम्रेडिते।१२।

प०वि०–कान् २।३ आम्रेडिते ७।१।

अनु०–पदस्य, संहितायाम्, रुः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां कान् पदस्य न आम्रेडिते रुः।

अर्थः–संहितायां विषये कान् इत्येतस्य पदस्य नकारस्याऽऽम्रेडिते परतो रुरादेशो भवति।

उदा०–काँस्कान् आमन्त्रयति, कांस्कान् आमन्त्रयति। काँस्कान् भोजयति, कांस्कान् भोजयति।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (कान्) कान् इस (पदस्य) पद के (नः) नकार को (आम्रेडिते) आम्रेडित पद परे होने पर (रुः) रु-आदेश होता है।*

*उदा०–**काँस्कान् आमन्त्रयति, कांस्कान् आमन्त्रयति।** वह किन-किन को आमन्त्रित करता है। **काँस्कान् भोजयति, कांस्कान् भोजयति।** वह किन-किन को भोजन कराता है।*

सिद्धि–काँस्कान्।** यहां 'कान्' शब्द को **'नित्यवीप्सयोः'** (८।१।४) से वीप्सा-अर्थ में द्वित्व है और 'तस्य परमाम्रेडितम्' (८।१।२) से परवर्ती 'कान्' शब्द की आम्रेडित संज्ञा है। इस सूत्र से नकारान्त 'कान्' पद के नकार को आम्रेडित पद परे होने पर 'रु' आदेश होता है। पूर्ववत् 'रु' के रेफ को विसर्जनीय और अनुनासिक आदेश है। **'विसर्जनीयस्य सः'** (८।३।३४) से विसर्जनीय को सकारादेश होता है। इसका कस्कादिगण (८।३।४८) में पाठ मानकर कुप्वोः ≍क ≍पौ च' (८।३।३७) से विसर्जनीय को जिह्वामूलीय आदेश नहीं होता है। विकल्प पक्ष में अनुस्वार आदेश है–**कांस्कान्।

।। इति रु-आदेशप्रकरणम्।।

आदेशप्रकरणम्

लोपादेशः–

(१) ढो ढे लोपः।१३।

प०वि०–ढः ६।१ ढे ७।१ लोपः १।१।

नु०–संहितायामित्यनुवर्तते।

यः–संहितायां ढो ढे लोपः।

अर्थ:-संहितायां विषये ढकारस्य ढकारे परतो लोपो भवति।

उदा०-लीढम्। उपगूढम्।

"सत्यपि पदाधिकारे तस्यासम्भवादपदान्तस्य ढकारस्यायं लोपो विज्ञायते" (काशिका)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (ढः) ढकार का (ढि) ढकार वर्ण परे होने पर (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-**लीढम्।** चाटना। **उपगूढम्।** आच्छादित करना, छुपाना।*

"पद का अधिकार होते हुये भी पदान्त में ढकार के सम्भव न होने से यह अपदान्त ढकार का ही लोप समझा जाता है (काशिका)।

सिद्धि-लीढम्। *लिह्+क्त। लिह्+त। लिढ्+त। लिढ्+ध। लिढ्+ढ। लि०+ढ। ली+ढ। लीढ+सु। लीढम्।*

*यहां **'लिह आस्वादने'** (अदा०उ०) धातु से **'नपुंसके भावे क्तः'** (३।३।११४) से भाव अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। **'हो ढः'** (८।२।३१) से हकार को ढकार, **'झषस्तथोर्धोऽधः'** (८।२।४०) से तकार को धकार और **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से धकार को टवर्ग ढकार होता है। इस सूत्र से ढकार परे होने पर पूर्ववर्ती ढकार का लोप होता है। यह ढकार का लोप ष्टुत्व पर आश्रित है अतः **'ढो ढे लोपः'** (८।३।१३) से ढकार का लोप करते समय **'पूर्वत्रासिद्धम्'** (८।२।१) से ष्टुत्व असिद्ध नहीं होता है। **'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः'** (६।३।१११) से दीर्घ (ई) होता है। ऐसे ही उप-उपसर्गपूर्वक **'गुहू संवरणे'** (भ्वा०आ०) धातु से-**उपगूढम्।***

लोपादेशः-

(२) रो रि।१४।

प०वि०-रः ६।१ रि ७।१।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, लोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः-पदस्य रो रि लोपः।

अर्थः-संहितायां विषये पदस्य रेफस्य रेफे परतो लोपो भवति।

उदा०-नीरक्तम्। दूरक्तम्। अग्नी रथः। इन्दू रथः। पुना रक्तं वासः। प्राता राजक्रयः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदस्य) पद के (रः) रेफ का (रि) रेफ परे होने पर (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-**नीरक्तम्।** निश्चित रंगा हुआ। **दूरक्तम्।** खराब रंगा हुआ। **अग्नी रथः।** अग्नि, रथ। **इन्दू रथः।** इन्दु=चन्द्र, रथ। **पुना रक्तं वासः।** दूसरी बार रंगा हुआ कपड़ा। **प्राता राजक्रयः।** प्रातः, राजक्रय।*

सिद्धि-नीरक्तम्। *यहां निर्-उपसर्गपूर्वक **'रञ्ज रागे'** (भ्वा०उ०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। **'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति'** (६।४।२४) से धातुस्थ नकार का लोप होता है। इस सूत्र से रेफ परे होने पर 'निर्' पद के रेफ का लोप होता है। **'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः'** (६।३।१११) से दीर्घ होता है। ऐसे ही दुर्+रक्तम्=दूरक्तम्। अग्निर्+रथः=अग्नी रथः। इन्दुर्+रथः=इन्दू रथः। यहां **'ससजुषो रुः'** (८।२।६६) से सकार को रुत्व है। पुनर्+रक्तम्=पुना रक्तम्। प्रातर्+राजक्रयः=प्राता राजक्रयः।*

विसर्जनीयादेशः–

(३) खरवसानयोर्विसर्जनीयः।१५।

प०वि०-खर्-अवसानयोः ७।२ विसर्जनीयः १।१।

स०-खर् च अवसानं च ते खरवसाने, तयोः-खरवसानयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, पदस्य, र इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां रः पदस्य खरवसानयोर्विसर्जनीयः।

अर्थः-संहितायां विषये रेफान्तस्य पदस्य खरि परतोऽवसाने च विसर्जनीयादेशो भवति।

उदा०-**(खरि)** वृक्षश्छादयति, प्लक्षश्छादयति। वृक्षस्तरति, प्लक्षस्तरति। **(अवसाने)** वृक्षः, प्लक्षः।

आर्यभाषाः अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (रः) रेफान्त (पदस्य) पद को (खरवसानयोः) खर् वर्ण परे होने पर तथा अवसान में (विसर्जनीयः) विसर्जनीय आदेश होता है।

*उदा०- (खर्) **वृक्षश्छादयति।** पेड़ ढकता है। **प्लक्षश्छादयति।** पिलखण ढकता है। **वृक्षस्तरति।** पेड़ तैरता है। **प्लक्षस्तरति।** पिलखण तैरता है। **(अवसाने) वृक्षः।** पेड़। **प्लक्षः।** पिलखण।*

सिद्धि-वृक्षश्छादयति। *वृक्ष+सु। वृक्ष+स्। वृक्ष+रु। वृक्ष्+र्। वृक्षर्+छादयति। वृक्षः+छादयति। वृक्षस्+छादयति। वृक्षश्+छादयति। वृक्षश्छादयति।*

*यहां 'वृक्ष' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। **'ससजुषो रुः'** (८।२।६६) से 'स्' को 'रु' आदेश होता है। इस सूत्र से खर् वर्ण (छ) परे होने पर*

*रेफ को विसर्जनीय आदेश होता है। **'विसर्जनीयस्य सः'** (८।३।३४) से विसर्जनीय को सकारादेश और **'स्तोः श्चुना श्चुः'** (८।४।४०) से सकार को शकारादेश होता है। ऐसे ही-**प्लक्षश्छादयति। वृक्षस्तरति, प्लक्षस्तरति। वृक्षः। प्लक्षः।** यहां रेफ को अवसानलक्षण विसर्जनीय आदेश है।*

विसर्जनीयादेशः-

(४) रोः सुपि।१६।

प०वि०-रोः ६।१ सुपि ७।१।

अनु०-संहितायाम्, रः, विसर्जनीय इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां रो रः सुपि विसर्जनीयः।

अर्थः-संहितायां विषये रु इत्येतस्य रेफास्य सुपि प्रत्यये परतो विसर्जनीयादेशो भवति।

उदा०-पयःसु। यशःसु। सर्पिःषु। धनुःषु।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (रोः) रु इसके (रः) रेफ को (सुप्) सुप् {७।३} प्रत्यय परे होने पर (विसर्जनीयः) विसर्जनीय आदेश होता है।*

*उदा०-**पयःसु।** नाना दूधों में। **यशःसु।** नाना यशों में। **सर्पिःषु।** नाना घृतों में। **धनुःषु।** नान धनुषों में।*

***सिद्धि-पयःसु।** यहां 'पयस्' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'सुप्' प्रत्यय है। **'ससजुषो रुः'** (८।२।६६) से सकार को 'रु' आदेश है। इस सूत्र से सुप् {७।३} प्रत्यय परे होने पर 'रु' के रेफ को विसर्जनीय आदेश होता है।*

*यहां **'खरवसानयोर्विसर्जनीयः'** (८।३।१५) से खर्-लक्षण विसर्जनीय आदेश सिद्ध था। इसका यह पुनर्वचन नियमार्थ है कि 'सुप्' प्रत्यय परे होने पर 'रु' के रेफ को ही विसर्जनीय आदेश होता है, अन्यत्र नहीं, जैसे-**गीर्षु, धूर्षु।***

*'**सर्पिःषु**' आदि में **'नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि'** (८।३।५८) से विसर्जनीय व्यवाय-लक्षण षत्व होता है।*

***विशेषः** यहां 'सुपि' से सप्तमी बहुवचन का ही ग्रहण किया जाता है; सुप्-संज्ञक २१ प्रत्ययों का नहीं।*

य-आदेशः-

(५) भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि।१७।

प०वि०-भोभगोअघोअपूर्वस्य ६।१ यः १।१ अशि ७।१।

स०-भोश्च भगोश्च अघोश्च अश्च ते-भोभगोअघोआ:, एते पूर्वा यस्य स:-भोभगोअघोअपूर्व:, तस्य-भोभगोअघोअपूर्वस्य (इतरेतरयोगद्वन्द्व-गर्भितबहुव्रीहि:)। भो:, भगो:, अघो:, इत्येते विभक्तिरूपका निपाता:।

अनु०-संहितायाम्, र:, रोरिति चानुवर्तते।

अन्वय:-संहितायां भोभगोअघोअपूर्वस्य रो रोऽशि य:।

अर्थ:-संहितायां विषये भोपूर्वस्य, भगोपूर्वस्य, अघोपूर्वस्य अवर्णपूर्वस्य च रो रेफस्याऽशि परतो यकारादेशो भवति।

उदा०-**(भो:)** भो अत्र। भो ददाति। **(भगो:)** भगो अत्र। भगो ददाति। **(अघो:)** अघो अत्र। अघो ददाति। **(अपूर्व:)** क आस्ते। ब्राह्मणा ददति। पुरुषा ददति।

आर्यभाषा: *अर्थ-(भो०) भो:, भगो:, अघो: और अवर्ण जिसके पूर्व है उस (रो:) रु के (र:) रेफ के स्थान में (अशि) अश् वर्ण परे होने पर (य:) यकारादेश होता है।*

*उदा०-**(भो:) भो अत्र।** हे ! यहां। **भो ददाति।** हे ! वह दान करता है। **(भगो:) भगो अत्र।** हे ! यहां। **भगो ददाति।** हे ! वह दान करता है। **(अघो:) अघो अत्र।** हे ! यहां। **अघो ददाति।** हे ! वह दान करता है। **(अवर्णपूर्व) क आस्ते।** कौन बैठता है। **ब्राह्मणा ददति।** ब्राह्मण दान करते हैं। **पुरुषा ददति।** पुरुष दान करते हैं।*

सिद्धि-(१) भो अत्र। *भोस्+अत्र। भोरु+अत्र। भोर्+अत्र। भो य्+अत्र। भो०+अत्र। भो अत्र।*

*यहां 'भोस्' शब्द के सकार को **'ससजुषो रु:'** (८।२।६६) से 'रु' आदेश है। इस सूत्र से इस 'रु' के रेफ को अश् वर्ण (अ) परे होने पर यकारादेश होता है। **'ओतो गार्ग्यस्य'** (८।३।२०) से यकार का लोप होता है। ऐसे ही-**भगो अत्र, अघो अत्र। भो** ददाति और **ब्राह्मणा** ददति आदि में **'हलि सर्वेषाम्'** (८।३।२२) से यकार का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(२) क आस्ते। *यहां इस सूत्र से रेफ का यकारादेश होता है। **'लोप: शाकल्यस्य'** (८।३।१९) से शाकल्य आचार्य के मत में यकार का लोप होता है-**क आस्ते।***

विशेष: *कात्यायन के मत में-वा०-**'भवद्भगवदघवतामोच्चावस्य'** (८।३।१) से भवत्, भगवत्, अघवत् शब्दों को 'रु' आदेश और इनके 'अव्' को ओकारादेश होकर भो:, भगो, अघो: शब्द सिद्ध होते हैं। पतञ्जलि के मत में ये विभक्ति प्रतिरूपक निपात **(अव्यय) हैं** (महाभाष्य ८।३।१)।*

लघुप्रयत्नतरादेशः-

(६) व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य।१८।

प०वि०-व्योः ६।२ लघुप्रयत्नतरः १।१ शाकटायनस्य ६।१।

स०-वश्च यश्च तौ व्यौ, तयोः-व्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। लघुः प्रयत्नो यस्य सः-लघुप्रयत्नः, अतिशयेन लघुप्रयत्न इति लघुप्रयत्नतरः (बहुव्रीहिः, ततस्तद्धितस्तरप्प्रत्ययः)।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, भोभगोअघोअपूर्वस्य, अशीति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां भोभगोअघोअपूर्वयोः पदयोर्व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य।

अर्थः-संहितायां विषये भोभगोअघोअपूर्वयोः पदान्तयोर्वकारयकारयोः स्थाने लघुप्रयत्नतर आदेशो भवति, शाकटायनस्याचार्यस्य मतेन।

उदा०-(भोः) भोयुत्र (शाकटयनः)। भो अत्र (गार्ग्यः)। **(भगोः)** भगोयुत्र। भगो अत्र। **(अघोः)** अघोयुत्र। अघो अत्र। **(अपूर्वः)** कयुास्ते (शाकटायनः)। क आस्ते (शाकल्यः)। अस्मायुुद्धर। अस्मा उद्धर। आसावुादित्यः। असा आदित्यः। द्वावुत्र (शा०)। द्वा अत्र। द्वावुानय। द्वा आनय।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (भो०) भोः, भगोः, अघोः और अवर्ण जिनके पूर्व हैं, उन (पदयोः) पदान्त में विद्यमान (व्योः) वकार और यकार के स्थान में (लघुप्रयत्नतरः) अतिशय लघुप्रयत्नवाला वकार और यकार आदेश होता है, (शाकटायनस्य) शाकटायन आचार्य के मत में।

*उदा०-**(भोः) भोयुत्र** (शाकटयन)। **भो अत्र** (गार्ग्य)। हे ! यहां। **(भगोः) भगोयुत्र। भगो अत्र।** हे ! यहां। **(अघोः) अघोयुत्र। अघो अत्र।** हे ! यहां। **(अवर्णपूर्व) कयुास्ते** (शाकटायनः)। **क आस्ते** (शाकल्यः)। कौन बैठता है। **अस्मायुुद्धर। अस्मा उद्धर।** इसके लिये उद्धृत कर, निकाल। **आसावुादित्यः। असा आदित्यः।** वह सूर्य। **द्वावुत्र (शा०)। द्वा अत्र।** दोनों यहां। **द्वावुानय। द्वा आनय।** दोनों को ला।*

*__सिद्धि-भोयुत्र।__ यहां भोपूर्व 'रु' के स्थान में **'भो भगो०' (८।३।१७)** से **यकारादेश है। शाकटायन आचार्य के मत में इस यकार के स्थान में अतिशय लघुप्रयत्नवाला***

*यकार आदेश होता है। 'ओतो गार्ग्यस्य' (८।३।२०) से इस यकार का लोप होता है- **भो अत्र**। ऐसे ही-**भगोयुत्र, भगो अत्र** आदि। ऐसे ही सर्वत्र समझें।*

***विशेषः** ईषत्स्पृष्टकरणा अन्तस्था: (पा०शि०) के अनुसार अन्तस्थ वर्णों का ईषत्स्पृष्ट प्रयत्न है। वर्णों के उच्चारण में तालु आदि स्थान और जिह्वामूल आदि करणों की शिथिलता को लघुप्रयत्नतर कहते हैं।*

लोपादेशः–

(७) लोपः शाकल्यस्य।१६।

प०वि०–लोप: १।१ शाकल्यस्य ६।१।

अनु०–पदस्य, संहितायाम्, अपूर्वस्य, अशि, व्योरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायामपूर्वयो: पदयोर्व्योरशि लोप:, शाकल्यस्य।

अर्थः–संहितायां विषयेऽवर्णपूर्वयो: पदान्तयोर्वकारयकारयोरशि परतो लोपो भवति, शाकल्यस्याचार्यस्य मतेन।

उदा०–कयास्ते (पाणिनि:)। क आस्ते (शाकल्य:)। काकयास्ते। काक आस्ते। अस्मायुद्धर। अस्मा उद्धर। द्वावत्र। द्वा अत्र। असावादित्य:, असा आदित्य:।

***आर्यभाषाः अर्थ**-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अपूर्वयो:) जिनके पूर्व में अवर्ण है उन (पदयो:) पदान्त में विद्यमान (व्यो:) वकार और यकारों का (लोप:) लोप होता है (**शाकल्यस्य**) **शाकल्य** आचार्य के मत में।*

*उदा०-**कयास्ते** (पाणिनि)। **क आस्ते** (शाकल्य)। कौन बैठता है। **काकयास्ते। काक आस्ते।** कौवा बैठता है। **अस्मायुद्धर। अस्मा उद्धर।** इसके लिये उद्धृत कर, निकाल। **द्वावत्र। द्वा अत्र।** दोनों यहां हैं। **असावादित्य:, असा आदित्य:।** वह सूर्य है।*

*सिद्धि-**कयास्ते।** क+सु। क+स्। क+रु। क+र्। क+य्+आस्ते। कयास्ते।*

*यहां अवर्णपूर्वी 'रु' के रेफ को पाणिनि मुनि के मत में-'**भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि**' (८।३।१७) से यकारादेश होता है। इस सूत्र से शाकल्य आचार्य के मत में इस यकार का लोप होता है-**क आस्ते।** ऐसे ही-**काकयास्ते, काक आस्ते** इत्यादि।*

लोपादेशः–

(८) ओतो गार्ग्यस्य।२०।

प०वि०–ओत: ५।१ गार्ग्यस्य ६।१।

अनु०–पदस्य, संहितायाम्, अशि, व्यो:, लोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पदस्योतो व्योरशि लोपो गार्ग्यस्य।

अर्थः-संहितायां विषये पदस्य ओकारात् परयोर्वकारयकारयोरशि परतो लोपो भवति, गार्ग्यस्याचार्यस्य मतेन।

उदा०-(भोः) भो अत्र। भोयत्र। **(भगोः)** भगो अत्र, भगोयत्र। **(अघोः)** अघो अत्र, अघोयत्र। ओकारात्परो वकारो न सम्भवति, अतस्तस्य नास्त्युदाहरणम्।

अत्र गार्ग्यग्रहणं पूजार्थं वेदितव्यम्। **'लोपः शाकल्यस्य'** (८।३।१९) इत्यनेनालघुप्रयत्नतरस्य यकारस्य विकल्पेन लोपो विधीयते सोऽनेन निवर्त्यते। नित्यार्थोऽयमारम्भः। लघुप्रयत्नतरस्तु भवत्येव यकारः-भगोयत्र।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदस्य) पद के (ओतः) ओकार से परवर्ती (व्योः) वकार और यकार का (अशि) अश् वर्ण परे होने पर (लोपः) लोप होता है (गार्ग्यस्य) गार्ग्य आचार्य के मत में।*

उदा०-(भोः) ***भो अत्र। भोयत्र।*** *(भगोः)* ***भगो अत्र, भगोयत्र।*** *(अघोः)* ***अघो अत्र, अघोयत्र।*** *अर्थ पूर्ववत् है।*

यहां गार्ग्य का ग्रहण पूजा के लिये किया गया है अर्थात् पाणिनि मुनि का भी यही मत है। ***'लोपः शाकल्यस्य'*** *(८।३।१९) से अलघुप्रयत्नतर यकार का शाकल्य के मत से विकल्प से लोप विधान किया गया है, वह इस सूत्र से निवृत्त हो जाता है। अतः यह सूत्र नित्य यकार लोप के लिये आरम्भ किया गया है।* ***'व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य'*** *(८।३।१८) से जो यकार को लघुप्रयत्नतर यकारादेश कहा है वह तो बना ही रहता है-* ***भोयत्र।***

सार यह है कि पाणिनि मुनि और गार्ग्य आचार्य के मत में- ***भो अत्र*** *और शाकटायन आचार्य के मत में-* ***भोयत्र*** *प्रयोग होता है।*

भोः आदि में ओकार से परवर्ती वकार सम्भव नहीं है, अतः उसका उदाहरण नहीं दिया गया है।

लोपादेशः-

(६) उञि च पदे।२१।

प०वि०-उञि ७।१ च अव्ययपदम्, पदे ७।१।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, अपूर्वस्य, व्योः, लोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायामपूर्वयोः पदयोर्व्योरुञि पदे च लोपः।

अर्थः-संहितायां विषयेऽवर्णपूर्वयोः पदान्तयोर्वकारयकारयोरुञि पदे च परतो लोपो भवति।

उदा०-स उ एकविंशवर्तनिः (मै०सं० २।७।२०)। स उ एकाग्निः। वकारस्य नास्त्युदाहरणम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अपूर्वयोः) जिनके पूर्व में अवर्ण है उन (पदयोः) पदान्त में विद्यमान (व्योः) वकार और यकार वर्णों का (उञि) उञ् यह (पदे) पद परे होने पर (च) भी (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-स उ **एकविंशवर्तनिः** (मै०सं० २।७।२०)। स उ **एकाग्निः**। वकार का उदाहरण नहीं है।*

***सिद्धि**-स उ। यहां 'सः' के 'रु' के रेफ को **'भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि'** (८।३।१७) से यकारादेश होता है। इस सूत्र से इस यकार का उञ् पद परे होने पर लोप होता है। **'लोपः शाकल्यस्य'** (८।३।१९) से विकल्प से लोप प्राप्त था, इस सूत्र से नित्य यकार का लोप होता है।*

लोपादेशः-

(१०) हलि सर्वेषाम्।२२।

प०वि०-हलि ७।१ सर्वेषाम् ६।३।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, भोभगोअघोअपूर्वस्य, यः, लोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां भोभगोअघोअपूर्वस्य पदस्य यो हलि लोपः, सर्वेषाम्।

अर्थः-संहितायां विषये भोभगोअघोअपूर्वस्याऽवर्णपूर्वस्य च पदान्तस्य हलि परतो लोपो भवति, सर्वेषामाचार्याणां मतेन।

उदा०-**(भोः)** भो हसति, भो याति। **(भगोः)** भगो हसति, भगो याति। **(अघोः)** अघो हसति, अघो याति। **(अपूर्वः)** बाला हसन्ति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (भो०) भोः, भगोः, अघो और अवर्ण जिसके पूर्व में है उस (पदस्य) पदान्त (यः) यकार का (हलि) हल् वर्ण परे होने पर (लोपः) लोप होता है (सर्वेषाम्) सब आचार्यों के मत में।*

*उदा०-(भोः) **भो हसति**। अरे ! वह हंसता है। **भो याति**। अरे ! वह जाता है। (भगोः) भगो हसति, **भगो याति**। (अघोः) **अघो हसति, अघो याति**। अर्थ पूर्ववत् है। **(अवर्णपूर्वः) बाला हसन्ति**। बालक हंसते हैं।*

*सिद्धि-**भो हसति।** यहां 'भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि' (८।३।१७) से 'रु' के रेफ को यकारादेश होता है और इस सूत्र से इसका हल् वर्ण परे होने पर सब आचार्यों के मत में लोप हो जाता है। ऐसे ही-**भो याति** आदि।*

अनुस्वारादेशः-

(११) मोऽनुस्वारः।२३।

प०वि०-मः ६।१ अनुस्वारः १।१।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, हलीति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पदस्य मो हलि अनुस्वारः।

अर्थः-संहितायां विषये पदान्तस्य मकारस्य हलि परतोऽनुस्वारादेशो भवति।

उदा०-कुण्डं हरति। वनं हरति। कुण्डं याति। वनं याति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदस्य) पदान्त में विद्यमान (मः) मकार को (हलि) हल् वर्ण परे होने पर (अनुस्वारः) अनुस्वार आदेश होता है।*

*उदा०-**कुण्डं हरति।** वह कुण्ड को हरण करता है। **वनं हरति।** वह वन (लकड़ी आदि) हरण करता है। **कुण्डं याति।** वह कुण्ड को प्राप्त करता है। **वनं याति।** वह वन को प्राप्त करता है।*

*सिद्धि-**कुण्डं हरति।** यहां इस सूत्र से 'कुण्डम्' के मकार को हल्वर्ण (ह) परे होने पर अनुस्वार आदेश होता है। ऐसे ही-**वनं हरति** आदि।*

अनुस्वारादेशः-

(१२) नश्चापदान्तस्य झलि।२४।

प०वि०-नः ६।१ च अव्ययपदम्, अपदान्तस्य ६।१ झलि ७।१।

अनु०-संहितायाम्, मः, अनुस्वार इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् अपदान्तस्य नो मश्च झलि अनुस्वारः।

अर्थः-संहितायां विषयेऽपदान्तस्य नकारस्य मकारस्य च झलि परतोऽनुस्वारादेशो भवति।

उदा०-(नकारः) पयांसि। यशांसि। सर्पींषि। धनूंषि। **(मकारः)** **आक्रंस्यते।** आचिक्रंसते। अधिजिगांसते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अपदान्तस्य) पदान्त में अविद्यमान (नः) नकार (च) और (मः) मकार को (झलि) झल् वर्ण परे होने पर (अनुस्वारः) अनुस्वार आदेश होता है।*

उदा०-(नकार) ***पयांसि।*** *नाना दूध।* ***यशांसि।*** *नाना यश।* ***सर्पींषि।*** *नाना घृत।* ***धनूंषि।*** *बहुत धनुष।* ***(मकार) आक्रंस्यते।*** *वह उदय होगा।* ***आचिक्रंसते।*** *वह उदय होना चाहता है।* ***अधिजिगांसते।*** *वह अध्ययन करना चाहता है।*

सिद्धि-(१) पयांसि। *पयस्+जस्। पयस्+शि। पयस्+इ। पय नुम् स्+इ। पयन् स्+इ। पयान्स्+इ। पया ं स्+इ। पयांसि।*

यहां 'पयस्' शब्द से 'जस्' प्रत्यय है। ***'जश्शसोः शिः'*** *(७।१।२०) से जस् को 'शि' आदेश होता है।* ***'नपुंसकस्य झलचः'*** *(७।१।७२) से 'नुम्' आगम है।* ***'सान्तमहतः संयोगस्य'*** *(६।४।१०) से दीर्घ होता है। इस सूत्र से झल् वर्ण (स) परे होने पर नकार को अनुस्वारादेश होता है। ऐसे ही-**यशांसि** आदि।*

(२) आक्रंस्यति। *यहां आङ्-उपसर्गपूर्वक* ***'क्रमु पादविक्षेपे'*** *(भ्वा०प०) धातु से* ***'लृट् शेषे च'*** *(३।३।१३) से 'लृट्' प्रत्यय है।* ***'स्यतासी लृलुटोः'*** *(३।१।३३) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से 'क्रम्' के मकार को झलादि (स) वर्ण परे होने पर अनुस्वार आदेश होता है।* ***'आङ उद्गमने'*** *(१।३।४०) से आत्मनेपद होता है।*

(३) आचिक्रंसते। *यहां आङ्-उपसर्गपूर्वक* ***'क्रमु पादविक्षेपे'*** *(भ्वा०प०) धातु से* ***'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'*** *(३।१।७) से इच्छा-अर्थ में 'सन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'क्रम्' के मकार को झल् वर्ण (स) परे होने पर अनुस्वार आदेश होता है। अभ्यास-कार्य पूर्ववत् है।*

(४) अधिजिगांसते। *यहां अधि-उपसर्गपूर्वक* ***'इङ् अध्ययने'*** *(अदा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय है।* ***'इङश्च'*** *(२।४।४८) से 'इङ्' के स्थान में 'गम्' आदेश है।* ***'अज्झनगमां सनि'*** *(६।४।१६) से दीर्घ होता है। इस सूत्र से 'गम्' के मकार को झल् वर्ण (स) परे होने पर अनुस्वार आदेश होता है।*

म-आदेशः--

(१३) मो राजि समः क्वौ।२५।

प०वि०-मः १।१ राजि ७।१ समः ६।१ क्वौ ७।१।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, म इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां समः पदस्य मः, क्वौ राजि मः।

अर्थः-संहितायां विषये समः पदस्य मकारस्य, क्विप्प्रत्ययान्ते राजतौ परतो मकारादेशो भवति।

उदा०-सम्राट्। साम्राज्यम्।

मकारस्य स्थाने मकारादेशवचनमनुस्वारादेशनिवृत्त्यर्थं वेदितव्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (समः) सम् इस (पदस्य) पद के (मः) मकार को (क्वौ) क्विप्-प्रत्ययान्त (राजि) राज् धातु परे होने पर (मः) मकारादेश होता है।*

*उदा०-**सम्राट्।** राजा। **साम्राज्यम्।** सम्राट् का राज्य।*

***सिद्धि**-(१) **सम्राट्।** यहां सम्-उपसर्गपूर्वक **'राजृ दीप्तौ'** (भ्वा०आ०) धातु से **'सत्सूद्विष०'** (३।२।६१) से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'क्विप्' प्रत्यय का सर्वहारी लोप होता है। इस सूत्र से क्विप्-प्रत्ययान्त 'राज्' परे होने पर 'सम्' के मकार को मकारादेश होता है। मकार को मकारादेश का कथन **'मोऽनुस्वारः'** (८।३।२१) से प्राप्त अनुस्वारादेश की निवृत्ति के लिये है। **'व्रश्चभ्रस्ज०'** (८।२।३६) से 'राज्' के जकार को षकार, **'झलां जशोऽन्ते'** (८।२।३९) से षकार को जश् डकार और **'वाऽवसाने'** (८।४।५६) से डकार को चर् टकारादेश होता है।*

*(२) **साम्राज्यम्।** यहां 'सम्राज्' शब्द से **'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च'** (५।१।१२४) से भाव अर्थ में ब्राह्मणादि-लक्षण 'ष्यञ्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से आदिवृद्धि होती है। सूत्र कार्य पूर्ववत् है।*

मकारादेशविकल्पः–

(१४) हे मपरे वा।२६।

प०वि०-हे ७।१ मपरे ७।१ वा अव्ययपदम्।

स०-मः परो यस्मात् स मपरः, तस्मिन्-मपरे (बहुव्रीहिः)।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, मः, म इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पदस्य मो, मपरे हे वा मः।

अर्थः-संहितायां विषये पदान्तस्य मकारस्य स्थाने, मकारपरके हकारे परतो विकल्पेन मकारादेशो भवति।

उदा०-किम् ह्मलयति, किं ह्मलयति। कथम् ह्मलयति, कथं ह्मलयति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदस्य) पदान्त में विद्यमान (मः) मकार के स्थान में (मपरे) मकारपरक (हि) हकार परे होने पर (वा) विकल्प से (मः) मकारादेश होता है।*

*उदा०-**किम् ह्मलयति, किं ह्मलयति।** वह क्या संचालित करता है। **कथम् ह्मलयति, कथं ह्मलयति।** वह कैसे संचालित करता है।*

सिद्धि-किं ह्मलयति। यहां इस सूत्र से 'किम्' के पदान्त मकार को मकरपरक हकार वर्ण परे होने पर मकारादेश होता है। विकल्प पक्ष में 'मोऽनुस्वारः' (८।३।२३) से मकार को अनुस्वारादेश होता है। ऐसे ही कथम् ह्मलयति, कथं ह्मलयति।

'ह्मलयति' पद में 'ह्मल सञ्चलने' (भ्वा०प०) धातु से 'हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। 'ज्वलह्वलह्मलनमामनुपसर्गाद् वा' (भ्वा० गणसूत्र) से 'ह्मल' की मित्संज्ञा होकर 'मितां ह्रस्वः' (८।४।९२) से ह्रस्वादेश होता है।

नकारादेशविकल्पः--

(१५) नपरे नः।२७।

प०वि०-नपरे ७।१ नः १।१।

स०-नः परो यस्मात् स नपरः, तस्मिन्-नपरे (बहुव्रीहिः)।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, मः, हे, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पदस्य मो नपरे हे वा नः।

अर्थः-संहितायां विषये पदान्तस्य मकारस्य नकारपरके हकारे परतो विकल्पेन नकारादेशो भवति।

उदा०-किन् ह्नुते, किं ह्नुते। कथन् ह्नुते, कथं ह्नुते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदस्य) पदान्त में विद्यमान (मः) मकार के स्थान में (नपरे) नकारपरक (हि) हवर्ण परे होने पर (वा) विकल्प से (नः) नकारादेश होता है।*

*उदा०-**किन् ह्नुते, किं ह्नुते।** वह क्या हटाता है? **कथन् ह्नुते, कथं ह्नुते।** वह कैसे हटाता है?*

*सिद्धि-**किन् ह्नुते।** यहां इस सूत्र से 'किम्' के पदान्त मकार को नकारपरक हवर्ण परे होने पर नकारादेश होता है। विकल्प-पक्ष में 'मोऽनुस्वारः' (८।३।२३) से अनुस्वारादेश होता है। ऐसे ही-**कथन् ह्नुते, कथं ह्नुते।***

'ह्नुते' पद मे 'ह्नुङ् अपनयने' (अदा०आ०) धातु से 'वर्तमाने लट्' (३।२।१२३) से 'लट्' प्रत्यय है।

{आगमप्रकरणम्}

कुक्टुगागमविकल्पः-

(१) ङ्णोः कुक्टुक् शरि।२८।

प०वि०-ङ्णोः ६।२ कुक्टुक् १।१ शरि ७।१।

स०-ङश्च णश्च तौ ङ्णौ, तयोः-ङ्णोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। कुक् च टुक् च एतयोः समाहारः-कुक्टुक् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् पदस्य ङ्णोः शरि वा कुक्टुक्।

अर्थः-संहितायां विषये पदान्तयोर्ङकारणकारयोः शरि परतो विकल्पेन यथासंख्यं कुक्टुकावागमौ भवतः।

उदा०-(ङकारः) कुक्-प्राङ्क् शेते, प्राङ् शेते। प्राङ्क् षष्ठः, प्राङ् षष्ठः। प्राङ्क् साये, प्राङ् साये। **(णकारः)** टुक्-वण्ट् शेते। वण् शेते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदस्य) पदान्त में विद्यमान (ङ्णोः) ङकार और णकार को (शरि) शर् वर्ण परे होने पर (वा) विकल्प से यथासंख्य (कुक्टुक्) कुक् और टुक् आगम होते हैं।*

*उदा०-(ङकार) कुक्-**प्राङ्क् शेते, प्राङ् शेते।** वह पहले सोता है। **प्राङ्क् षष्ठः, प्राङ् षष्ठः।** पहला छठा। **प्राङ्क् साये, प्राङ् साये।** पहले समाप्त होने पर। **(णकार)** टुक्-**वण्ट् शेते। वण् शेते।** कोलाहल करनेवाला सोता है।*

*सिद्धि-(१) **प्राङ्क् शेते।** यहां इस सूत्र से 'प्राङ्' के पदान्त ङकार को शर् वर्ण (श्) परे होने पर 'कुक्' (क्) आगम होता है। विकल्प पक्ष में कुक् आगम नहीं है-**प्राङ् शेते।** ऐसे ही-**प्राङ्क् षष्ठः, प्राङ्ग् षष्ठः। प्राङ्क् साये, प्राङ्ग् साये।** 'साये' पद में **'षोऽन्तकर्मणि'** (दि०प०) धातु से **'भावे'** (३।३।१८) से घञ् प्रत्यय है।*

*(२) **वण्ट् शेते।** यहां इस सूत्र से 'वण्' के पदान्त णकार को शर् वर्ण (श्) परे होने पर 'टुक्' आगम होता है। विकल्प पक्ष में 'टुक्' आगम नहीं है-**वण् शेते।** 'वण्' पद में **'वण शब्दार्थः'** (भ्वा०प०) धातु से **'अन्येभ्योऽपि दृश्यते'** (३।२।१७८) से 'क्विप्' प्रत्यय है।*

धुडागमविकल्पः-

(२) डः सि धुट्।२६।

प०वि०-डः ५।१ सि ७।१ धुट् १।१।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां डः पदात् सः पदस्य वा धुट्।

अर्थः-संहितायां विषये डकारान्तात् पदात् परस्य सकारादेः पदस्य विकल्पेन धुडागमो भवति।

उदा०-श्वलिट्त्साये, श्वलिट् साये। मधुलिट्त्साये, मधुलिट् साये।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (डः) डकारान्त (पदात्) पद से परवर्ती (सः) सकारादि (पदस्य) पद को (वा) विकल्प से (धुट्) धुट् आगम होता है।*

*उदा०-**श्वलिट्त्साये, श्वलिट् साये।** श्वलिट् अन्त में। श्वलिट्=कुत्तों को चाटनेवाला (घोरी)। **मधुलिट्त्साये, मधुलिट् साये।** मधुलिट् अन्त में। मधुलिट्=मधु (शहद) चाटनेवाला।*

*सिद्धि-**श्वलिट्त्साये।** यहां इस सूत्र से 'श्वलिड्' के पदान्त डकार को सकारादि 'साये' पद परे होने पर 'धुट्' आगम होता है। **'खरि च'** (८।४।५५) से धकार को चर् तकार और डकार को भी चर् टकार होता है। विकल्प-पक्ष में 'धुट्' आगम नहीं है-**श्वलिट् साये।** ऐसे ही-**मधुलिट्त्साये, मधुलिट् साये।***

धुडागमविकल्पः-

(३) नश्च।३०।

प०वि०-नः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, वा, सि, धुडिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां नः पदाच्च सः पदस्य वा धुट्।

अर्थः-संहितायां विषये नकारान्तात् पदात् परस्य च सकारादेः पदस्य विकल्पेन धुडागमो भवति।

उदा०-भवान्त्साये, भवान् साये। महान्त्साये, महान् साये।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (नः) नकारान्त (पदात्) पद से (च) भी परवर्ती (सः) सकारादि (पदस्य) पद को (वा) विकल्प से (धुट्) धुट् आगम होता है।*

*उदा०-**भवान्त्साये, भवान् साये।** आप अन्त में। **महान्त्साये, महान् साये।** महान् अन्त में।*

*सिद्धि-**भवान्त्साये।** यहां इस सूत्र से 'भवान्' के पदान्त नकार से परे सकारादि 'साये' पद परे होने पर 'धुट्' आगम होता है। **'खरि च'** (८।४।५५) से धकार को चर् तकारादेश होता है। विकल्प-पक्ष में 'धुट्' आगम नहीं है-**भवान् साये।** ऐसे ही-**महान्त्साये, महान् साये।***

तुक्-आगमः–

(४) शि तुक्।३१।

प०वि०–शि ७।१ तुक् १।१।

अनु०–पदस्य, संहितायाम्, वा, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां नः पदस्य शि वा तुक्।

अर्थः–संहितायां विषये नकारान्तस्य पदस्य शकारे परतो विकल्पेन तुगागमो भवति।

उदा०–भवाञ्च्छेते, भवाञ् छेते। भवाञ्च्शेते, भवाञ् शेते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (नः) नकारान्त (पदस्य) पद को (शि) श वर्ण परे होने पर (वा) **विकल्प** से (तुक्) तुक् आगम होता है।*

*उदा०-**भवाञ्च्छेते, भवाञ् छेते। भवाञ्च्शेते, भवाञ् शेते।** आप सोते हैं।*

*सिद्धि-**भवाञ्च्छेते।** भवान्+शेते। भवान्+छेते। भवान्+तुक्+छेते। भवान्+त्+छेते। भवान्+च्+छेते। भवाञ्+च्+छेते। भवाञ्च्छेते।*

*यहां प्रथम 'भवान्' नकारान्त पद से परवर्ती शकार को **'शश्छोऽटि'** (८।४।६२) से छकारादेश होता है। **'पूर्वत्रासिद्धम्'** (८।२।१) से उसे असिद्ध मानकर इस सूत्र से नकारान्त 'भवान्' पद को **तुक् आगम** होता है। **'स्तोः श्चुना श्चुः'** (८।४।४०) से तकार को चकार और नकार को ञकार भी होता है। विकल्प पक्ष में तुक्-आगम नहीं है-**भवाञ् शेते।** पूर्ववत् नकार को चवर्ग ञकार आदेश होता है।*

*'शश्छोटि' (८।४।६३) से शकार को विकल्प से छकारादेश होता है। विकल्प पक्ष में छकारादेश नहीं है-**भवाञ्च् शेते** (तुक्)। **भवाञ् शेते** (तुक नहीं)।*

ङमुट्-आगमः–

(५) ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम्।३२।

प०वि०– ङमः ५।१ ह्रस्वात् ५।१ अचि ७।१ ङमुट् १।१ नित्यम् १।१।

अनु०–पदस्य, संहितायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां ह्रस्वाद् ङमः पदादचो नित्यं ङमुट्।

अर्थः–संहितायां विषये ह्रस्वात् परो यो ङम्, तदन्तात् पदात् परस्याऽचो नित्यं ङमुडागमो भवति। ङणनेभ्यः परा यथासंख्यं ङणना भवन्तीत्यर्थः।

उदा०-ङकारान्ताद् ङुट्-प्रत्यङ्ङास्ते। णकारान्ताद् णुट्-वण्णास्ते। वण्णवोचत्। नकारान्ताद् नुट्-कुर्वन्नास्ते, कुर्वन्नवोचत्। कृषन्नास्ते, कृषन्नवोचत्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (ह्रस्वात्) ह्रस्व वर्ण से परे जो (ङम्) ङम् वर्ण है तदन्त (पदात्) पद से परवर्ती (अचः) अच् वर्ण को (नित्यम्) सदा (ङमुट्) ङमुट् आगम होता है। अर्थात् ङम्=ङ, ण्, न् आगम होते हैं।*

*उदा०-(ङकारान्त) **ङुट्-प्रत्यङ्ङास्ते।** वह पीछे बैठता है। (णकारान्त) **णुट्-वण्णास्ते।** शब्द करनेवाला बैठता है। **वण्णवोचत्।** शब्द करनेवाले ने कहा। (नकारान्त) **नुट्-कुर्वन्नास्ते।** कार्य करता हुआ बैठता है। **कुर्वन्नवोचत्।** कार्य करते हुये न कहा। **कृषन्नास्ते।** हल चलाता हुआ बैठता है। **कृषन्नवोचत्।** हल चलाते हुये ने कहा।*

सिद्धि-प्रत्यङ्ङास्ते। *यहां इस सूत्र से ह्रस्व अकार से परे जो ङकार है तदन्त पद से परवर्ती अच् (आ) को ङुट् (ङ्) आगम होता है। ऐसे ही **वण्णास्ते** में णुट् (ण्) आगम है। 'वण्' पद में 'वण शब्दार्थः' (भ्वा०प०) धातु से 'अन्येभ्योऽपि दृश्यते' (३।२।१७८) से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'क्विप्' का सर्वहारी लोप होता है। **कुर्वन्नास्ते** आदि में नुट् (न्) आगम है।*

{आदेशप्रकरणम्}

वकारादेशविकल्पः-

(१) मय उञो वो वा।३३।

प०वि०-मयः ५।१ उञः ६।१ वः १।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, अचीति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पदस्य मय उञो वा वः।

अर्थः-संहितायां विषये पदस्य मयः परस्य उञः स्थाने विकल्पेन वकारादेशो भवति।

उदा०-शम्वस्तु वेदिः (ऋ०-ऋ० ७।३५।७) शमु अस्तु वेदिः। तद्वस्य परेतः, तदु अस्य परेतः। किम्वावपनम् (यजु० २३।९) किमु आवपनम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदस्य) पद के (मयः) मय् वर्ण से परे (उञः) उञ् को (वा) विकल्प से (वः) वकारादेश होता है।*

उदा०-शम्वस्तु वेदिः (द्र०-ऋ० ७।३५।७) शमु अस्तु वेदिः। यज्ञकुण्डादि हमारे लिए सुख ही हों। तद्वस्य परेतः। तदु अस्य परेतः। क्या वह इससे दूर है। किम्वावपनम्, किमु आवपनम् (यजु० २३।९)। आवपन (बोना) का आधार क्या है?

सिद्धि-शम्वस्तु। शम्+उ+अस्तु। यहां इस सूत्र से मय् वर्ण (म्) से परवर्ती उञ् के उकार को अच् वर्ण परे होने पर वकारादेश होता है। विकल्प-पक्ष में वकारादेश नहीं है-शमु अस्तु वेदिः।

'उञः ऊँ' (१।१।१७) से 'उञ्' के प्रगृह्य संज्ञा होने से 'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्' (६।१।१२१) से प्रकृतिभाव प्राप्त था, अतः यह वकारादेश क विधान किया गया है। 'पूर्वत्रासिद्धम्' (८।२।१) से वकारादेश के पूर्वत्र कार्य में असिद्ध होने से 'मोऽनुस्वारः' (८।३।२३) से हल् (व्) परे होने पर मकार के अनुस्वार आदेश नहीं होता है। ऐसे ही-तद्वस्य परेतः, किम्वावपनम्।

स-आदेशः-

(२) विसर्जनीयस्य सः।३४।

प०वि०-विसर्जनीयस्य ६।१ सः १।१।

अनु०-पदस्य, संहितायामिति चानुवर्तते। **'खरवसानयोर्विसर्जनीयः'** (८।३।१५) इत्यस्मान्मण्डूकोत्प्लुत्या 'खरि' इत्यनुवर्तनीयम्।

अन्वयः-संहितायां पदस्य विसर्जनीयस्य खरि सः।

अर्थः-संहितायां विषये पदस्य विसर्जनीयस्य खरि परतः सकारादेशो भवति।

उदा०-देवश्छादयति। देवष्ठक्कुरः। देवस्थुडति। देवश्चिनोति। देवष्टीकते। देवस्तरति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदस्य) पद के (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय को (खरि) खर् वर्ण परे होने पर (सः) सकारादेश होता है।*

उदा०-देवश्छादयति। देव आच्छादित करता है, ढकता है। देवष्ठक्कुरः। देव ठाकुर है। देवस्थुडति। देव ढकता है। देवश्चिनोति। देव चुनता है। देवष्टीकते। देव जाता है। देवस्तरति। देव तैरता है।

सिद्धि-देवश्छादयति। यहां 'देव' शब्द से 'सु' प्रत्यय है। 'ससजुषो रुः' (८।२।६६) से सकार को 'रु' आदेश और 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' (८।३।१५) से 'रु' के रेफ को विसर्जनीय आदेश होता है। इस विसर्जनीय को इस सूत्र से खर् वर्ण (छ्) परे होने पर सकारादेश होता है और इसे 'स्तोः श्चुना श्चुः' (८।४।४०) से शकारादेश

हो जाता है। ऐसे ही-देवष्ठक्कुरः। यहां 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४१) से सकार को षकारादेश है। देवस्थुडतिः। देवश्चिनोति। पूर्ववत् शकारादेश है। देवष्टीकते। पूर्ववत् षकारादेश है-देवस्तरति।

विसर्जनीयादेशः--

(३) शर्परे विसर्जनीयः।३५।

प०वि०-शर्परि ७।१ विसर्जनीयः १।१।

स०-शर् परो यस्मात् स शर्परः, तस्मिन्-शर्परि (बहुव्रीहि)।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, खरि, विसर्जनीयस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पदस्य विसर्जनीयस्य शर्परि खरि विसर्जनीयः।

अर्थः-संहितायां विषये पदस्य विसर्जनीयस्य स्थाने शर्परके खरि परतो विसर्जनीयादेशो भवति।

उदा०-पयः क्षरति। अद्भिः प्सातम्। वासः क्षौमम्। दृढः त्सरुः। घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् (ऋ० १०।१०३।१)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदस्य) पद के (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (शर्परि) शर् वर्णपरक (खरि) खर् वर्ण परे होने पर (विसर्जनीयः) विसर्जनीय आदेश होता है।*

*उदा०-**पयः क्षरति**। दूध झरता है। **अद्भिः प्सातम्**। उसने जल के साथ भक्षण किया। **वासः क्षौमम्**। रेशमी वस्त्र। **दृढः त्सरुः**। तलवार की मूठ दृढ़ है। **घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्** (ऋ० १०।१०३।१)। इन्द्र दुष्टजनों को क्षुब्ध एवं नष्ट करनेवाला है।*

सिद्धि-पयः क्षरति। *यहां इस सूत्र से शर्वर्णपरक (ष) शर् वर्ण (क्) होने पर 'पयः' पद के विसर्जनीय को विसर्जनीय आदेश होता है। ऐसे ही-**अद्भिः प्सातम्**। यहां शर्परक (स) खर् प् वर्ण है। **वासः क्षौमम्**। यहां शर्परक (ष) खर् क् वर्ण है। **दृढः त्सरुः**। यह शर्परक (स) खर् त् वर्ण है। **घनाघनः क्षोभणः**। यहां शर्परक (स) खर् क् वर्ण है।*

विसर्जनीयादेशविकल्पः--

(४) वा शरि।३६।

प०वि०-वा अव्ययपदम्, शरि ७।१।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, विसर्जनीयस्य, विसर्जनीय इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पदस्य विसर्जनीयस्य शरि वा विसर्जनीयः।

अर्थः-संहितायां विषये पदस्य विसर्जनीयस्य स्थाने शरि परतो विकल्पेन विसर्जनीयादेशो भवति।

उदा०-पुरुषः शेते, पुरुषश्शेते। रसाः षट्, रसाष्षट्। सर्पः सरति, सर्पस्सरति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदस्य) पद के (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (शरि) शर् वर्ण परे होने पर (वा) विकल्प से (विसर्जनीयः) विसर्जनीय आदेश होता है।*

*उदा०-**पुरुषः शेते, पुरुषश्शेते।** पुरुष सोता है। **रसाः षट्, रसाष्षट्।** रस छः हैं। सर्पः सरति, **सर्पस्सरति।** सांप सरकता है, पेट के बल चलता है।*

सिद्धि-पुरुषः शेते। *यहां 'पुरुषः' पद के विसर्जनीय को शर् वर्ण (श) परे होने पर विसर्जनीय आदेश है। विकल्प पक्ष में **'विसर्जनीयस्य सः'** (८।३।३४) से विसर्जनीय को सकारादेश और इसे **'स्तोः श्चुना श्चुः'** (८।४।४०) से शकारादेश होता है। ऐसे ही-रसाः षट्, **रसाष्षट्।** यहां **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से सकार को षकारादेश होता है। सर्पः सरति, **सर्पस्सरति।***

ᳵकᳵ पावादेशौ-

(५) कुप्वोःᳵकᳵपौ च।३७।

प०वि०-कुप्वोः ७।२ ᳵकᳵपौ १।२ च अव्ययपदम्।

स०-कुश्च पुश्च तौ कुपू, तयोः-कुप्वोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।ᳵकश्च ᳵपश्च तौ-ᳵकᳵपौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, विसर्जनीयस्य, विसर्जनीय इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पदस्य विसर्जनीयस्य कुप्वोःᳵकᳵपौ विसर्जनीयश्च।

अर्थः-संहितायां विषये पदस्य विसर्जनीयस्य स्थाने कवर्गे पवर्गे च परतो यथासंख्यंᳵकᳵपौ जिह्वामूलीयोपध्मानीयौ विसर्जनीयश्चादेशो भवति।

उदा०-**(कुः)** पुरुषᳵकरोति, पुरुषः करोति। पुरुषᳵखनति, पुरुषः खनति। **(पुः)** पुरुषᳵपचति, पुरुषः पचति। वृक्षᳵफलति, वृक्षः फलति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदस्य) पद के (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (कुप्वोः) कवर्ग और पवर्ग परे होने पर (ᳵकᳵपौ) जिह्वामूलीय वर्ण और उपध्मानीय (च) और (विसर्जनीयः) विसर्जनीय आदेश होता है।*

उदा०-(कु) पुरुष ᳵकरोति, पुरुषः करोति। पुरुष करता है। पुरुष ᳵखनति, पुरुषः खनति। पुरुष खोदता है। (पु) पुरुष ᳶपचति, पुरुषः पचति। पुरुष पकाता है। वृक्ष ᳶफलति, वृक्षः फलति। वृक्ष फलता है, फल देता है।

सिद्धि-(१) पुरुष ᳵकरोति। यहां इस सूत्र से 'पुरुषः' पद के विसर्जनीय को कवर्ग (क) परे होने पर ᳵक जिह्वामूलीय आदेश होता है। दूसरे पक्ष में विसर्जनीय आदेश भी होता है-पुरुषः करोति। ऐसे ही-पुरुष ᳵखनति, पुरुषः खनति।

(२) पुरुष ᳶपचति। यहां इस सूत्र से 'पुरुषः' पद के विसर्जनीय को पवर्ग (प) परे होने पर ᳶप उपध्मानीय आदेश होता है। दूसरे पक्ष में विसर्जनीय आदेश भी होता है-पुरुषः पचति। ऐसे ही-वृक्ष ᳶफलति, वृक्षः फलति।

स-आदेशः-

(६) सोऽपदादौ।३८।

प०वि०-सः १।१ अपदादौ ७।१।

स०-पदस्य आदिरिति पदादिः, तस्मिन्-अपदादौ (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, विसर्जनीयस्य, कुप्वोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पदस्य विसर्जनीयस्याऽपदाद्योः कुप्वोः सः।

अर्थः-संहितायां विषये पदस्य विसर्जनीयस्य स्थानेऽपदाद्योः कुप्वोः परतः सकारादेशो भवति।

उदा०-(कु) पयस्कल्पम्, यशस्कल्पम्। पयस्कम्, यशस्कम्। पयस्काम्यति, यशस्काम्यति। **(पु)** पयस्पाशम्, यशस्पाशम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदस्य)पद के (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (अपदाद्योः) अपदादि (कुप्वोः) कवर्ग और पवर्ग वर्ण परे होने पर (सः) सकारादेश होता है।*

*उदा०-(कु) **पयस्कल्पम्**। दूध के सदृश। **यशस्कल्पम्**। यश के सदृश। **पयस्कम्**। थोड़ा दूध। **यशस्कम्**। थोड़ा यश। **पयस्काम्यति**। वह दूध की इच्छा करता है। **यशस्काम्यति**। वह यश की इच्छा करता है। (पु) **पयस्पाशम्**। निन्दित दूध। **यशस्पाशम्**। निन्दित यश, अपयश।*

*सिद्धि-(१) **पयस्कल्पम्**। यहां 'पयस्' शब्द से **'ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः'** (५।३।६७) से ईषदसमाप्ति=थोड़ी अपूर्णता अर्थ में 'कल्पप्' प्रत्यय है। 'पयस्' के सकार को **'ससजुषो रुः'** (८।२।६६) से 'रु' आदेश और इसे **'खरवसानयोर्विसर्जनीयः'** (८।३।१५) से विसर्जनीय होता है। इस सूत्र से कल्पप् प्रत्यय का अपदादि कवर्ग (क) परे होने पर विसर्जनीय को सकारादेश होता है। ऐसे ही-**यशस्कल्पम्**।*

(२) **पयस्कम्।** यहां 'पयस्' शब्द से **'अल्पे'** (५।३।८५) से अल्प-अर्थ में 'क' प्रत्यय है। ऐसे ही-**यशस्कम्।**

(३) **पयस्काम्यति** यहां 'पयस्' शब्द से **'काम्यच्च'** (३।१।९) से 'काम्यच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**यशस्काम्यति।**

(४) **पयस्पाशम्।** यहां 'पयस्' शब्द से **'याप्ये पाशप्'** (५।३।४७) से कुत्सित-अर्थ में 'पाशप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**यशस्पाशम्।**

स-आदेशः-

(७) इणः षः।३६।

प०वि०-इणः ५।१ षः १।१।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, विसर्जनीयस्य, कुप्वोः, अपदादाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पदस्येणो विसर्जनीयस्याऽपदाद्योः कुप्वोः षः।

अर्थः-संहितायां विषये पदस्येणः परस्य विसर्जनीयस्य स्थानेऽपदाद्योः कुप्वोः परतः षकारादेशो भवति।

उदा०-(कुः) सर्पिष्कल्पम्, यजुष्कल्पम्। सर्पिष्कम्, यजुष्कम्। सर्पिष्काम्यति, यजुष्काम्यति। **(पुः)** सर्पिष्पाशम्, यजुष्पाशम्।

***आर्यभाषाः* अर्थ-**(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदस्य) पद के (इणः) इण् वर्ण से परवर्ती (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (अपदाद्योः) अपदादि (कुप्वोः) कवर्ग और पवर्ग वर्ण परे होने पर (षः) सकारादेश होता है।

उदा०-(कु) **सर्पिष्कल्पम्।** घृत के सदृश। **यजुष्कल्पम्।** याजुष मन्त्र के सदृश। **सर्पिष्कम्।** थोड़ा घृत। **यजुष्कम्।** थोड़ा याजुष मन्त्र। **सर्पिष्काम्यति।** वह घृत की इच्छा करता है। **यजुष्काम्यति।** वह याजुष मन्त्रों के उच्चारण की इच्छा करता है। **(पु) सर्पिष्पाशम्।** निन्दित घृत। **यजुष्पाशम्।** निन्दित याजुष मन्त्र (अशुद्ध उच्चारित)।

सिद्धि-(१) **सर्पिष्कल्पम्।** यहां 'सर्पिस्' शब्द से **'ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः'** (५।३।६७) से ईषदसमाप्ति (थोड़ी अपूर्णता) अर्थ में 'कल्पप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'सर्पिस्' पद के इण् से परवर्ती विसर्जनीय को अपदादि 'कल्पप्' (प्रत्यय) का कवर्ग (क) परे होने पर विसर्जनीय आदेश होता है। ऐसे ही-**यजुष्कल्पम्।**

(२) **सर्पिष्कम्।** यहां 'सर्पिस्' शब्द से **'अल्पे'** (५।३।८५) से अल्प-अर्थ में 'क' प्रत्यय है। ऐसे ही-**यजुष्कम्।**

*(३) **सर्पिष्काम्यति** यहां 'सर्पिस्' शब्द से '**काम्यच्च**' (३।१।९) से इच्छा-अर्थ में 'काम्यच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**यजुष्काम्यति**।*

*(४) **सर्पिष्पाशम्।** यहां 'सर्पिस्' शब्द से '**याप्ये पाशप्**' (५।३।४७) से याप्य=कुत्सित-अर्थ में 'पाशप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**यजुष्पाशम्**।*

स-आदेशः--

(८) नमस्पुरसोर्गत्योः।४०।

प०वि०-नमस्-पुरसोः ६।२ गत्योः ६।२।

स०-नमश्च पुरश्च तौ नमस्पुरसौ, तयोः-नमस्पुरसोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, विसर्जनीयस्य, सः, कुप्वोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां गत्योर्नमस्पुरसोः पदयोर्विसर्जनीयस्य कुप्वोः सः।

अर्थः-संहितायां विषये गतिसंज्ञकयोर्नमस्पुरसोः पदयोर्विसर्जनीयस्य स्थाने, कुप्वोः परतः सकारादेशो भवति।

उदा०-(**नमः**) नमस्कर्ता, नमस्कर्तुम्, नमस्कर्तव्यम्। (**पुरः**) पुरस्कर्ता, पुरस्कर्तुम्, पुरस्कर्तव्यम्। पवर्गे नास्त्युदाहरणम्।

***आर्यभाषाः अर्थ**-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (गत्योः) गति-संज्ञक (नमस्पुरसोः) नमस्, पुरस् इन (पदयोः) पदों के (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (कुप्वोः) कवर्ग और पवर्ग वर्ण परे होने पर (सः) सकारादेश होता है।*

*उदा०-(नमः) **नमस्कर्ता**। नमस्कार करनेवाला। **नमस्कर्तुम्**। नमस्कार करने के लिये। **नमस्कर्तव्यम्**। नमस्कार करना चाहिये। (पुरः) **पुरस्कर्ता**। पुरस्कृत करनेवाला। **पुरस्कर्तुम्**। पुरस्कृत करने के लिये। **पुरस्कर्तव्यम्**। पुरस्कृत करना चाहिये। पवर्ग का उदाहरण नहीं है।*

***सिद्धि-नमस्कर्ता**। यहां नमस्-उपपद 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से '**ण्वुल्तृचौ**' (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से गतिसंज्ञक 'नमस्' पद के विसर्जनीय को कवर्ग (क) परे होने पर सकारादेश होता है। ऐसे ही 'तुमुन्' प्रत्यय में-**नमस्कर्तुम्**। 'तव्यत्' प्रत्यय में-**नमस्कर्तव्यम्**। **पुरः** शब्द से 'तृच्' प्रत्यय में-**पुरस्कर्ता**। 'तुमुन्' प्रत्यय में-**पुरस्कर्तुम्**। 'तव्यत्' प्रत्यय में-**पुरस्कर्तव्यम्**।*

*'नमस्' पद की '**साक्षात्प्रभृतीनि च**' (१।४।७३) से और 'पुरस्' पद की '**पुरोऽव्ययम्**' (१।४।६६) से गतिसंज्ञा है।*

ष-आदेशः–

(६) इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य।४१।

प०वि०–इदुदुपधस्य ६।१ च अव्ययपदम्, अप्रत्ययस्य ६।१।

स०–इच्च उच्च तौ इदुतौ, तावुपधे यस्य स इदुदुपधः, तस्य-इदुदुपधस्य (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)। न प्रत्यय इति अप्रत्ययः, तस्य-अप्रत्ययस्य (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–पदस्य, संहितायाम्, विसर्जनीयस्य, षः, कुप्वोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायामप्रत्ययस्य इदुदुपधस्य च पदस्य विसर्जनीयस्य कुप्वोः षः।

अर्थः–संहितायां विषये प्रत्ययवर्जितस्य इदुपधस्य उदुपधस्य च पदस्य विसर्जनीयस्य स्थाने च कुप्वोः परतः षकारादेशो भवति।

उदा०–(इदुपधः) **निस्**–निष्कृतम्, निष्पीतम्। **बहिस्**–बहिष्कृतम्, बहिष्पीतम्। **आविस्**–आविष्कृतम्, आविष्पीतम्। (उदुपधः) **दुस्**–दुष्कृतम्, दुष्पीतम्। **चतुर्**–चतुष्कृतम्, चतुष्कपालम्। चतुष्कण्टकम्। चतुष्कलम्। **प्रादुस्**–प्रादुष्कृतम्, प्रादुष्पीतम्।

***आर्यभाषाः* अर्थ**-*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अप्रत्ययस्य) प्रत्यय से भिन्न (इदुदुपधस्य) इकार उपधा और उकार उपधावाले (पदस्य) पद के (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (च) भी (कुप्वोः) कवर्ग और पवर्ग वर्ण परे होने पर (षः) षकारादेश होता है।*

*उदा०–(इकारोपध) निस्–**निष्कृतम्**। बदला चुकाना। **निष्पीतम्**। निश्चित पान। बहिस्–**बहिष्कृतम्**। बाहर करना, निकालना। **बहिष्पीतम्**। पीत पदार्थ को बाहर निकालना, वमन करना। आविस्–**आविष्कृतम्**। प्रकट करना। **आविष्पीतम्**। प्रकट रूप में पीना। (उकारोपध) दुस्–**दुष्कृतम्**। बुरा करना। **दुष्पीतम्**। सुरादि निकृष्ट पान करना। चतुर्–**चतुष्कृतम्**। चार बार करना। **चतुष्कपालम्**। चार कपालों में संस्कृत अन्न। **चतुष्कण्टकम्**। चार कण्टकों (शत्रु) वाला। **चतुष्कलम्**। चार कलाओंवाला। प्रादुस्–**प्रादुष्कृतम्**। प्रकट करना। **प्रादुष्पीतम्**। प्रकट रूप में पान करना।*

*सिद्धि–**निष्कृतम्**। यहां निस्-उपपद **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से **'नपुंसके भावे क्तः'** (३।३।११४) से भाव-अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से इकार उपधावाले 'निस्' पद के विसर्जनीय को कवर्ग (क) वर्ण परे होने पर षकारादेश होता है। ऐसे ही–**निष्पीतम्** आदि।*

स-आदेशविकल्पः–

(१०) तिरसोऽन्यतरस्याम्।४२।

प०वि०–तिरसः ६।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०–पदस्य, संहितायाम्, विसर्जनीयस्य, सः, कुप्वोरिति चानुवर्तते। **'नमस्पुरसोर्गत्योः'** (८।३।४०) इत्यस्माच्च मण्डूकोत्प्लुत्या गतिरिति चानुवर्तनीयम्।

अन्वयः–संहितायां गतेस्तिरसः पदस्य विसर्जनीयस्य कुप्वोरन्यतरस्यां सः।

अर्थः–संहितायां विषये गतिसंज्ञकस्य तिरसः पदस्य विसर्जनीयस्य स्थाने च कुप्वोः परतो विकल्पेन सकारादेशो भवति।

उदा०–तिरस्कर्ता, तिरस्कर्तुम्, तिरस्कर्तव्यम्। **पक्षे**–तिरःकर्ता, तिरःकर्तुम्, तिरःकर्तव्यम्। पवर्गे नास्त्युदाहरणम्।

***आर्यभाषाः* अर्थ**–*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (गतेः) गति-संज्ञक (तिरसः) तिरस् इस (पदस्य) पद के (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (च) भी (कुप्वोः) कवर्ग और पवर्ग वर्ण परे होने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (सः) सकारादेश होता है।*

उदा०–***तिरस्कर्ता।*** *छुपानेवाला।* ***तिरस्कर्तुम्।*** *छुपाने के लिये।* ***तिरस्कर्तव्यम्।*** *छुपाने चाहिये। विकल्प पक्ष में*–***तिरःकर्ता, तिरःकर्तुम्, तिरःकर्तव्यम्।*** *अर्थ पूर्ववत् है। पवर्गपरक का उदाहरण नहीं है।*

सिद्धि*–*तिरस्कर्ता। *यहां तिरस्-उपपद* ***'डुकृञ् करणे'*** *(तना०उ०) धातु से* ***'ण्वुल्तृचौ'*** *(३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से गति-संज्ञक 'तिरस्' पद के विसर्जनीय को कवर्ग (क्) वर्ण परे होने सकारादेश होता है। विकल्प पक्ष में सकारादेश नहीं है*–***तिरःकर्ता।***

'तुमुन्' प्रत्यय में–***तिरस्कर्तुम्, तिरःकर्तुम्।*** *'तव्यत्' प्रत्यय में*–***तिरस्कर्तव्यम्, तिरःकर्तव्यम्।*** *'तिरस्' शब्द की* ***'विभाषा कृञि'*** *(१।४।७१) से गति-संज्ञा है। यहां* ***'कुप्वोः ≍क≍पौ च'*** *(८।३।३७) से ≍क जिह्वामूलीय आदेश प्राप्त था।*

स-आदेशविकल्पः–

(११) द्विस्त्रिश्चतुरिति कृत्वोऽर्थे।४३।

प०वि०–द्विस्त्रिश्चतुः १।१ इति अव्ययपदम्, कृत्वोऽर्थे ७।१।

स०–द्विश्च त्रिश्च चतुश्च एतेषां समाहारः–द्विस्त्रिश्चतुः (समाहारद्वन्द्वः)। कृत्वसुचोऽर्थ इति कृत्वोऽर्थः, तस्मिन्–कृत्वोऽर्थे (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, विसर्जनीयस्य, कुप्वोः, षः, अन्यतरस्याम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां कृत्वोऽर्थे द्विस्त्रिश्चतुरिति पदानां विसर्जनीयस्य कुप्वोरन्यतरस्यां षः।

अर्थः-संहितायां विषये कृत्वोऽर्थे वर्तमानानां द्विस्त्रिश्चतुरित्येतेषां पदानां विसर्जनीयस्य स्थाने कुप्वोः परतो विकल्पेन षकारादेशो भवति।

उदा०-**(द्विः) कुः**-द्विष्करोति, द्विः करोति। **पुः**-द्विष्पचति, द्विः पचति। **(त्रि) कुः**-त्रिष्करोति, त्रिः करोति। **पुः**-द्विष्पचति, त्रिः पचति। **(चतुर्) कुः**-चतुष्करोति, चतुः करोति। **पुः**-चतुष्पचति, चतुः पचति।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (कृत्वोऽर्थे) कृत्सुच् प्रत्यय के अर्थ में विद्यमान (द्विस्त्रिश्चतुः) द्विः, त्रिः, चतुर् इन (पदानाम्) पदों के (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (कुप्वोः) कवर्ग और पवर्ग वर्ण परे होने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (षः) षकारादेश होता है।*

*उदा०-(द्विः) कु-**द्विष्करोति, द्विः करोति**। वह दो बार करता है। पु-**द्विष्पचति, द्विः पचति**। वह दो बार पकाता है। (त्रिः) कु-**त्रिष्करोति, त्रिः करोति**। वह तीन बार करता है। पु-**द्विष्पचति, त्रिः पचति**। वह तीन बार पकाता है। (चतुर्) कु-**चतुष्करोति, चतुः करोति**। वह चार बार करता है। पु-**चतुष्पचति, चतुः पचति**। वह चार बार पकाता है।*

सिद्धि-द्विष्करोति। *यहां 'द्वि' शब्द से '**द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्**' (५।४।१८) से कृत्वसुच् प्रत्यय के अर्थ (क्रिया की अभ्यावृत्ति की गणना) में 'सुच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'द्विः' पद के विसर्जनीय को कवर्ग (क) वर्ण परे होने पर षकारादेश होता है। विकल्प-पक्ष में षकारादेश नहीं है-**द्विः करोति**। पवर्गपरक में-**द्विष्पचति, द्विः पचति**।*

*'त्रिः' पद में-**त्रिष्करोति, त्रिः करोति**। पवर्गपरक में-**त्रिष्पचति, चतुःपचति**। यहां '**रात्सस्य**' (८।२।२४) से 'सुच्' के सकार का लोप होता है और 'चतुर्' के रेफ को '**खरवसानयोर्विसर्जनीयः**' (८।३।१५) से खर्लक्षण विसर्जनीय आदेश होता है।*

ष-आदेशविकल्पः—

(१२) इसुसोः सामर्थ्ये।४४।

प०वि०-इससोः ६।२ सामर्थ्ये ७।१।

स०-इस् च उस् च तौ इसुसौ, तयोः-इसुसोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

तद्धितवृत्ति:-समर्थस्य भाव: सामर्थ्यम्, तस्मिन्-सामर्थ्ये **'गुणवचन-ब्राह्मणादिभ्य: कर्मणि च'** (५।१।१२४) इति ब्राह्मणादिलक्षण: ष्यञ् प्रत्यय:।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, विसर्जनीयस्य, कुप्वो:, ष:, अन्यतरस्यामिति चानुवर्तते।

अन्वय:-संहितायां पदयोरिसुसोर्विसर्जनीयस्य सामर्थ्ये कुप्वोरन्यतरस्यां ष:।

अर्थ:-संहितायां विषये पदान्तयोरिसुसोर्विसर्जनीयस्य स्थाने सामर्थ्ये सति कुप्वो: परतो विकल्पेन षकारादेशो भवति।

उदा०-(इस्) कु:-सर्पिष्करोति, सर्पि: करोति। (उस्) कु:-यजुष्करोति, यजु: करोति। पवर्गे नास्त्युदाहरणम्।

आर्यभाषा: *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदयो:) पदान्त में विद्यमान (इसुसो:) इस् और उस् के (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (सामर्थ्ये) परस्पर एकार्थी-भाव होने तथा (कुप्वो:) कवर्ग और पवर्ग वर्ण परे होने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (ष:) सकारादेश होता है।*

*उदा०-(इस्) कु-**सर्पिष्करोति, सर्पि: करोति।** वह घृत बनाता है। (उस्) कु-**यजुष्करोति, यजु: करोति।** वह याजुष मन्त्रों का उच्चारण करता है।*

__सिद्धि-सर्पिष्करोति।__ यहां इस सूत्र से इसन्त 'सर्पिस्' पद के विसर्जनीय को कवर्ग (क) वर्ण परे होने पर परस्पर एकार्थी-भाव में षकारादेश होता है। सामर्थ्य का तात्पर्य यह है कि दोनों पदों का परस्पर अर्थ संगत होना चाहिये। विकल्प-पक्ष में षकारादेश नहीं है-सर्पि: करोति। ऐसे ही-__यजुष्करोति, यजु: करोति।__

नित्यं षकारादेश:-

(१३) नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य।४५।

प०वि०-नित्यम् १।१ समासे ७।१ अनुत्तरपदस्थस्य ६।१।

स०-उत्तरपदे तिष्ठतीति उत्तरपदस्थ:, न उत्तरपदस्थ इति अनुत्तरपदस्थ:, तस्य-अनुत्तरपदस्थस्य (उपपदगर्भितनञ्तत्पुरुष:)।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, विसर्जनीयस्य, कुप्वो:, ष:, इसुसोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां समासे पदयोरिसुसोरनुत्तरपदस्थस्य विसर्जनीयस्य कुप्वोर्नित्यं षः।

अर्थः-संहितायां विषये समासे वर्तमानयोः पदान्तयोरिसुसोरनुत्तर-पदस्थस्य विसर्जनीयस्य स्थाने, कुप्वोः परतो नित्यं षकारादेशो भवति।

उदा०-**(इस्) कुः**-सर्पिषः कुण्डिकेति सर्पिष्कुण्डिका। **(उस्) कुः**-धनुषः कपालमिति धनुष्कपालम्। **(इस्) पुः**-सर्पिषः पानमिति सर्पिष्पानम्। **(उस्) पुः**-धनुषः फलमिति धनुष्फलम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (समासे) समास में तथा (पदयोः) पदान्त में विद्यमान (इसुसोः) इस् और उस् के (अनुत्तरपदस्थस्य) उत्तरपद में अनवस्थित (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (कुप्वोः) कवर्ग और पवर्ग वर्ण परे होने पर (नित्यम्) सदा (षः) षकारादेश होता है।*

*उदा०-(इस्) कु-**सर्पिष्कुण्डिका।** घृत की कुण्डी। (उस्) कु- **धनुष्कपालम्।** धनुष रखने का पात्रविशेष। (इस्) पु-**सर्पिष्पानम्।** घृत का पान। (उस्) पु-**धनुष्फलम्।** धनुष की सिद्धि।*

*सिद्धि-(१)**सर्पिष्कुण्डिका।** यहां 'सर्पिस्' और 'कुण्डिका' शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से 'सर्पिस्' पद के उत्तरपद में अनवस्थित विसर्जनीय को कवर्ग (क) परे होने पर नित्य षकारादेश होता है। ऐसे ही-**धनुष्कपालम्।** पवर्ग में-**सर्पिष्पानम्, धनुष्फलम्।***

नित्यं सकारादेशः-

(१४) अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य।४६।

प०वि०-अतः ५।१ कृ-कमि-कुम्भ-पात्र-कुशा-कर्णीषु ७।३ अनव्ययस्य ६।१।

स०-कृश्च कमिश्च कंसश्च कुम्भश्च पात्रं च कुशा च कर्णी च ताः कृ०कर्ण्यः, तासु-कृ०कर्णीषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न अव्ययमिति अनव्ययम्, तस्य अनव्ययस्य (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, विसर्जनीयस्य, सः, नित्यम्, समासे, अनुत्तरपदस्थस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पदस्यातः समासेऽनुत्तरपदस्थस्यानव्ययस्य विसर्जनीयस्य कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीषु नित्यं सः।

अर्थः-संहितायां विषये पदस्याऽकारात्परस्य समासे वर्तमानस्याऽनुत्तरपदस्थस्याऽनव्ययस्य विसर्जनीयस्य स्थाने कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीषु परतो नित्यं सकारादेशो भवति।

उदा०-(**कृः**) अयस्कारः, पयस्कारः। (**कमिः**) अयस्कामः, पयस्कामः। (**कंसः**) अयस्कंसः, पयस्कंसः। (**कुम्भः**) अयस्कुम्भः, पयस्कुम्भः। (**पात्रम्**) अयस्पात्रम्, पयस्पात्रम्। (**कुशा**) अयस्कुशा, पयस्कुशा। (**कर्णी**) अयस्कर्णी, पयस्कर्णी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदस्य) पद के (अतः) अकार से परवर्ती (समासे) समास में विद्यमान (अनुत्तरपदस्थस्य) उत्तरपद में अनवस्थित (अनव्ययस्य) अव्यय से भिन्न शब्द के (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (कृ०) कृ, कमि, कंस, कुम्भपात्र, कुशा, कर्णी इन शब्दों के परे होने पर (नित्यम्) सदा (सः) सकारादेश होता है।*

*उदा०-(कृ) **अयस्कारः**। सुवर्णकार/लोहार। **पयस्कारः**। **दुग्धकार/जलकार**। (कमि) **अयस्काम**। सुवर्ण/लोह की कामना करनेवाला। **पयस्कामः**। दुग्ध/जल की कामना करनेवाला। (कंस) **अयस्कंसः**। सोना/लोहे का गिलास। **पयस्कंसः**। दूध/जल का गिलास। (कुम्भ) **अयस्कुम्भः**। सुवर्ण/लोहे का कलश (घड़ा)। **पयस्कुम्भः**। दूध/जल का कलश। (पात्र) **अयस्पात्रम्**। सुवर्ण/लोहा का पात्र। **पयस्पात्रम्**। दूध/जल का पात्र। (कुशा) **अयस्कुशा**। सुनहरी दर्भ। **पयस्कुशा**। जलसेचनी कुशा (दर्भ)। (कर्ण) **अयस्कर्णी**। सुनहरे कानोंवाली। **पयस्कर्णी**। श्वेत कानोंवाली।*

सिद्धि-अयस्कारः आदि समस्त पदों में विसर्जनीय के स्थान में सकारादेश स्पष्ट है। यहां 'कुप्वोः ≍क≍पौ च' (८।३।३७) से क जिह्वामूलीय आदेश प्राप्त था। यही उसका अपवाद है।

स-आदेशः-

(१५) अधःशिरसी पदे।४७।

प०वि०-अधःशिरसी १।२ (षष्ठ्यर्थे) पदे ७।१।

स०-अधश्च शिरश्च ते अधःशिरसी (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, विसर्जनीयस्य, सः, समासे, अनुत्तरपदस्थस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां अधःशिरसी इति पदयोः समासेऽनुत्तरपदस्थस्य विसर्जनीयस्य पदे सः।

अर्थः-संहितायां विषये अधःशिरसी इत्येतयोः पदयोः समासेऽनुत्तर-पदस्थस्य विसर्जनीयस्य स्थाने, पदे उत्तरपदे परतः सकारादेशो भवति।

उदा०-(**अधः**) अधस्पदम्, अधस्पदी। (**शिरः**) शिरस्पदम्, शिरस्पदी।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अधःशिरसी) अधस्, शिरस् इन (पदयोः) पदों के (समासे) समास में (अनुत्तरपदस्थस्य) उत्तरपद में अनवस्थित (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (पदे) पद शब्द उत्तरपद में होने पर (**सः**) सकारादेश होता है।*

*उदा०-(अधः) **अधस्पदम्**। नीच पद (स्थान)। **अधस्पदी**। नीचे पदवाली। (शिरः) **शिरस्पदम्**। ऊंचा पद। **शिरस्पदी**। ऊंचे पदवाली।*

***सिद्धि**-अधस्पदम् आदि समस्त पदों में विसर्जनीय के स्थान में सकारादेश स्पष्ट है। यहां 'कुप्वोः ≍क≍पौ च' (८।३।३७) से ≍प उपध्मानीय आदेश प्राप्त था। यह उसका अपवाद है।*

सकारः षकारो वाऽऽदेशः-

(१६) कस्कादिषु च।४८।

प०वि०-कस्कादिषु ७।३ च अव्ययपदम्।

स०-कस्क आदिर्येषां ते **कस्कादयः**, तेषु-कस्कादिषु (बहुव्रीहिः)।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, विसर्जनीयस्य, सः, समासे, कुप्वोः, ष इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां कस्कादिषु पदेषु विसर्जनीयस्य कुप्वोः सः षो वा।

अर्थः-संहितायां विषये कस्कादिषु पदेषु विसर्जनीयस्य स्थाने कुप्वोः परतो यथायोगं सकारः षकारो वाऽऽदेशो भवति।

उदा०-कस्कः, कौतस्कुतः, भ्रातुष्पुत्र इत्यादिकम्।

कस्कः। कौतस्कुतः। भ्रातुष्पुत्रः। शुनस्कर्णः। सद्यस्कालः। सद्यस्क्रीः। सद्यस्कः। काँस्कान्। सर्पिष्कुण्डिका। धनुष्कपालम्। बर्हिष्पूलम्। यजुष्पात्रम्। अयस्काण्डः। मेदस्पिण्डः। इति कस्कादयः। आकृतिगणोऽयम्।।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (कस्कादिषु) कष्कः इत्यादि* ***(पदेषु)*** *पदों में (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (कुप्वोः) कवर्ग और पवर्ग वर्ण परे होने पर यथायोग (सः) सकार अथवा (षः) षकारादेश होता है।*

उदा०-कस्कः। कौन-कौन। ***कौतस्कुतः।*** *कहां-कहां से आया हुआ।* ***भ्रातुष्पुत्रः।*** *भाई का पुत्र (भतीजा)।*

सिद्धि-(१) ***कस्क***-*आदि गण में पठित शब्दों में विसर्जनीय के स्थान में सकार वा षकार आदेश स्पष्ट है।* ***'नित्यवीप्सयोः'*** *(८।१।४) से वीप्सा अर्थ में द्विर्वचन है।*

(२) कौतस्कुतः। *'कुतस्कुतः' शब्द से* ***'तत आगतः'*** *(४।३।७४) से आगत-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् द्विर्वचन है।*

(३) भ्रातुष्पुत्रः। *यहां भातृ और पुत्र शब्दों का षष्ठीतत्पुरुष समास है।* ***'ऋतो विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः'*** *(६।३।२१) से षष्ठी का अलुक् होता है। इस सूत्र से षत्व होता है।*

यहां ***'कुप्वोः ≍क ≍पौ च'*** *(८।३।३७) से ≍क जिह्वामूलीय अथवा ≍प उपध्मानीय आदेश प्राप्त था। यह उसका अपवाद है।*

सकारादेशविकल्पः–

(१७) छन्दसि वाऽप्राम्रेडितयोः।४६।

प०वि०-छन्दसि ७।१ वा अव्ययपदम्, अप्राम्रेडितयोः ७।२।

स०-प्रश्च आम्रेडितं च ते प्राम्रेडिते, न प्राम्रेडिते इति अप्राम्रेडिते, तयोः-अप्राम्रेडितयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, विसर्जनीयस्य, सः, कुप्वोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां छन्दसि पदस्य विसर्जनीयस्याऽप्राम्रेडितयोः कुप्वोर्वा सः।

अर्थः-संहितायां छन्दसि च विषये पदस्य विसर्जनीयस्य स्थाने प्र-आम्रेडितवर्जितयोः कुप्वोः परतो विकल्पेन सकारादेशो भवति।

उदा०-अयःपात्रम्, अयस्पात्रम् (शौ०सं० ८।१३।२)। विश्वतःपात्रम्, विश्वतस्पात्रम्। उरुणःकारः, उरुणस्कारः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संहितायाम्) सन्धि और (छन्दसि) वेदविषय में* ***(पदस्य)*** *पद के (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (अप्राम्रेडितयोः) प्र और* ***आम्रेडित पद से*** *भिन्न (कुप्वोः) कवर्ग और पवर्ग वर्ण परे होने पर (वा) विकल्प से (सः)* ***सकारादेश होता है।***

*उदा०-अयःपात्रम्, अयस्पात्रम् (शौ०सं० ८।१३।२)। सुवर्ण/लोह का पात्र। **विश्वतःपात्रम्, विश्वतस्पात्रम्।** सब ओर से पात्र (योग्य)। उरुणःकारः, **उरुणस्कारः।** उरु बहुनाम (निघण्टु ३।१)। बहुत कार्य करनेवाला।*

*सिद्धि-(१) **अयःपात्रम्।** यहां अयस् और पात्र शब्दों का षष्ठीतत्पुरुष समास है। **'अतः कृकमि०'** (८।३।४६) से विसर्जनीय के स्थान में नित्य सकारादेश प्राप्त था। इस सूत्र से छन्द में विकल्प विधान किया गया है। विकल्प-पक्ष में सकारादेश है-**अयस्पात्रम्।***

*(२) उरुणःकारः। यहां उरु पद से परे 'अस्मद्' शब्द के स्थान में **'बहुवचनस्य वस्नसौ'** (८।१।११) से नस् (नः) आदेश है। **'नश्च धातुस्थोरुषुभ्यः'** (८।४।२६) से णत्व होता है। इस सूत्र से विसर्जनीय के स्थान में विसर्जनीय आदेश है। विकल्प-पक्ष में सकारादेश है-उरुणस्कारः।*

सकारादेशः--

(१८) कःकरत्करतिकृधिकृतेष्वनदितेः।५०।

प०वि०-कः-करत्-करति-कृधि-कृतेषु ७।३ अनदितेः ६।१।

स०-कश्च करच्च करतिश्च कृधिश्च कृतं च तानि कः०कृतानि, तेषु-कः०कृतेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न अदितिरिति अनदितिः, तस्याः-अनदितेः (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, विसर्जनीयस्य, सः, छन्दसीति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां छन्दसि अनदितेः पदस्य विसर्जनीयस्य कःकरत्-करतिकृधिकृतेषु सः।

अर्थः-संहितायां छन्दसि च विषयेऽदितिवर्जितस्य पदस्य विसर्जनीयस्य स्थाने, कःकरत्करतिकृधिकृतेषु परतः सकारादेशो भवति।

उदा०-(कः) विश्वतस्कः। **(करत्)** विश्वतस्करत्। **(करति)** पयस्करति। **(कृधि)** उरु णस्कृधि (ऋ० ८।७५।११)। **(कृतम्)** सदस्कृतम्। अनदितेरिति किम्? यथा नो अदितिः करत् (ऋ० १।४३।२)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (छन्दसि) वेदविषय में (अनदितेः) अदिति से भिन्न (पदस्य) पद के (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (कः०) कः, करत्, करति, कृधि, कृत इन शब्दों के परे होने पर (सः) सकारादेश होता है।*

उदा०-(कः) विश्वतस्कः। उसने सर्वतः किया। (करत्) विश्वतस्करत्। उसने सर्वतः किया। (करति) पयस्करति। वह दूध/जल बनाता है। (कृधि) उरु णस्कृधि (ऋ० ८।७५।११)। (कृतम्) सदस्कृतम्। सभा में किया हुआ निर्णय आदि।

सिद्धि-विश्वतस्कः। यहां 'कः' शब्द में 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'लुङ्' प्रत्यय है। 'च्लि लुङि' (३।१।४३) से 'च्लि' प्रत्यय और इसका 'मन्त्रे घस०' (२।४।८०) से लुक् हो जाता है। लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश, 'कृ' धातु को गुण और इसे 'उरण् रपरः' (१।१।५१) से रपरत्व (कर्) 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०' (६।१।६६) से अपृक्त त् (तिप्) का लोप और रेफ को विसर्जनीय आदेश है। 'बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि' (६।४।७५) से अट् आगम का अभाव है। इस 'कः' शब्द के परे होने पर 'विश्वतः' के विसर्जनीय को सकारादेश होता है।

(२) करत्। यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से 'लङ्' प्रत्यय है। 'कृमृदृरुहिभ्यश्छन्दसि' (३।१।५९) से 'अङ्' विकरण-प्रत्यय और 'ऋदृशोऽङि गुणः' (७।४।१६) से गुण होता है। पूर्ववत् 'अट्' आगम का अभाव है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।

(३) करति। यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से 'लट्' प्रत्यय है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से छन्द में 'शप्' विकरण-प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।

(४) कृधि। यहां पूर्वोक्त 'कृ' धातु से 'लोट्' प्रत्यय है। 'सेर्ह्यपिच्च' (३।४।८७) से 'सिप्' के स्थान में 'हि' आदेश और इसे 'श्रुशृणुपॄकृवृभ्यश्छन्दसि' (६।४।१०२) से 'धि' आदेश और 'बहुलं छन्दसि' (२।४।७३) से विकरण-प्रत्यय का लुक् होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।

(५) सदस्कृतम्। यहां 'सप्तमी शौण्डैः' (२।१।४०) में 'सप्तमी' इस योगविभाग से सप्तमीतत्पुरुष समास है-सदसि कृतमिति सदस्कृतम्। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।

सकारादेशः-

(१६) पञ्चम्याः परावध्यर्थे।५१।

प०वि०-पञ्चम्याः ६।१ परौ ७।१ अध्यर्थे ७।१।

स०-अधेरर्थ इति अध्यर्थः, तस्मिन्-अध्यर्थे (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, विसर्जनीयस्य, सः, छन्दसीति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां छन्दसि पञ्चम्याः पदस्य विसर्जनीयस्याऽध्यर्थे परौ सः।

अर्थः-संहितायां छन्दसि च विषये पञ्चम्यन्तस्य पदस्य विसर्जनीयस्य स्थानेऽध्यर्थके परिशब्दे परतः सकारादेशो भवति।

उदा०-दिवस्परि प्रथमं जज्ञे (ऋ० १० ।४५ ।१)। अग्निर्हिमवतस्परि (शौ०सं० ४ ।९ ।९)। दिवस्परि (ऋ० १ ।१२१ ।१०)। महस्परि।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (छन्दसि) वेदविषय में (पञ्चम्याः) पञ्चम्यन्त (पदस्य) पद के (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (अध्यर्थे) अधि-अर्थक (परौ) परि शब्द परे होने पर (सः) सकारादेश होता है।*

*उदा०-**दिवस्परि प्रथमं जज्ञे** (ऋ० १० ।४५ ।१)। द्युलोक से ऊपर। **अग्निर्हिमवतस्परि** (शौ०सं० ४ ।९ ।९)। हिमवान् के ऊपर। **दिवस्परि** (ऋ० १ ।१२१ ।१०)। द्युलोक से ऊपर। **महस्परि**। महः नामक लोक से ऊपर।*

*__सिद्धि-दिवस्परि__ आदि शब्दों में अधि-अर्थक 'परि' शब्द परे होने पर पञ्चम्यन्त 'दिवः' के विसर्जनीय को सकारादेश स्पष्ट है। ऐसे ही-**हिमवतस्परि, महस्परि।***

बहुलं सकारादेशः-

(२०) पातौ च बहुलम्।५२।

प०वि०-पातौ ७ ।१ च अव्ययपदम्, बहुलम् १ ।१।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, विसर्जनीयस्य, सः, छन्दसि, पञ्चम्या इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां छन्दसि पञ्चम्याः पदस्य विसर्जनीयस्य पातौ च बहुलं सः।

अर्थः-संहितायां छन्दसि च विषये पञ्चम्यन्तस्य पदस्य विसर्जनीयस्य स्थाने, पातौ परतश्च बहुलं सकारादेशो भवति।

उदा०-दिवस्पातु (ऋ० १० ।१५८ ।९)। राज्ञस्पातु। बहुलवचनान्न च भवति-परिषदः पातु।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (छन्दसि) वेदविषय में (पञ्चम्याः) पञ्चम्यन्त (पदस्य) पद के (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (पातौ) पातु शब्द परे होने पर (सः) सकारादेश होता है।*

*उदा०-**दिवस्पातु** (ऋ० १० ।१५८ ।९)। सूर्य हमारी द्युलोक से रक्षा करे। **राज्ञस्पातु**। वह राजा से रक्षा करे। बहुलवचन से कहीं सकारादेश नहीं भी होता है-**परिषदः पातु**। वह परिषद् से रक्षा करे।*

__सिद्धि-दिवस्पातु__ आदि में पञ्चम्यन्त 'दिवः' आदि के विसर्जनीय के स्थान में सकारादेश स्पष्ट है।

सकारादेशः–

(२१) षष्ठ्याः पतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषेषु ।५३।

प०वि०–षष्ठ्याः ६ ।१ पति–पुत्र–पृष्ठ–पार–पद–पयस्–पोषेषु ७ ।३।

स०–पतिश्च पुत्रश्च पृष्ठं च पारं च पदं च पयश्च पोषश्च ते–पति०पोषाः, तेषु–पति०पोषेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–पदस्य, संहितायाम्, विसर्जनीयस्य, सः, छन्दसीति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां छन्दसि षष्ठ्याः पदस्य विसर्जनीयस्य पतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषेषु सः।

अर्थः–संहितायां छन्दसि च विषये षष्ठ्यन्तस्य पदस्य विसर्जनीयस्य स्थाने, पतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषेषु परतः सकारादेशो भवति।

उदा०–**(पतिः)** वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये (ऋ० १० ।८१ ।७)। **(पुत्रः)** दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत (ऋ० १० ।३७ ।१)। **(पृष्ठम्)** दिवस्पृष्ठे धावमानं सुपर्णम् (शौ०सं० १३ ।२ ।३७)। **(पारम्)** अगन्म तमसस्पारमस्य (यजु० १२ ।७३)। **(पदम्)** इडस्पदे समिध्यसे (ऋ० १० ।१९१ ।१)। **(पयः)** सूर्यं चक्षुर्दिवस्पयः। **(पोषम्)** रायस्पोषं यजमानेषु धारय (ऋ० १० ।१२२ ।८)।

आर्यभाषाः *अर्थ–(संहितायाम्) सन्धि और (छन्दसि) वेदविषय में (षष्ठ्याः) षष्ठ्यन्त (पदस्य) पद के (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (पति०) पति, पुत्र, पृष्ठ, पार, पद, पयस्, पोष शब्द परे होने पर (सः) सकारादेश होता है।*

*उदा०–(पति) **वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये** (ऋ० १० ।८१ ।७)। हम लोग वेदविद्या के पति विश्वकर्मा को रक्षा के लिये पुकारें। (पुत्र) **दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत** (ऋ० १० ।३७ ।१)। हे मनुष्यो! तुम द्युलोक के पुत्र सूर्य की स्तुति करो। (पृष्ठ) **दिवस्पृष्ठे धावमानं सुपर्णम्** (शौ०सं० १३ ।२ ।३७)। द्युलोक की पीठ पर दौड़ते हुये सुपर्ण (सूर्य) को। (पार) **अगन्म तमसस्पारमस्य** (यजु० १२ ।७३)। हम इस अन्धकार के पार चले गये हैं। (पद) **इडस्पदे समिध्यसे** (ऋ० १० ।१९१ ।१)। हे अग्ने! तू संसार के मध्य में प्रकाशित है। (पयः) **सूर्यं चक्षुर्दिवस्पयः**। दिवस्पयः=द्युलोक का जल। (पोष) **रायस्पोषं यजमानेषु धारय** (ऋ० १० ।१२२ ।८)। हे अग्ने! तू धन की पुष्टि को यजमानों में स्थापित कर।*

*सिद्धि-**वाचस्पतिम्**। यहां षष्ठ्यन्त 'वाचः' पद के विसर्जनीय को पति शब्द परे होने पर सकारादेश स्पष्ट है। ऐसे ही-**दिवस्पुत्राय, दिवस्पृष्ठे, तमस्पारम्, इडस्पदे,** इडः शब्द 'इट्' शब्द का षष्ठ्यन्त रूप है। **दिवस्पयः, रायस्पोषम्।** 'रायः' रै शब्द का षष्ठी-एकवचन है।*

सकारादेशविकल्पः–

(२२) इडाया वा।५४।

प०वि०-इडायाः ६।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०-पदस्य, संहितायाम्, विसर्जनीयस्य, सः, छन्दसि, षष्ठ्याः, पतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषेषु इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां छन्दसि षष्ठ्या इडायाः पदस्य विसर्जनीयस्य पतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषेषु वा सः।

अर्थः-संहितायां छन्दसि च विषये षष्ठ्यन्तस्य इडायाः पदस्य विसर्जनीयस्य स्थाने पतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषेषु परतो विकल्पेन सकारादेशो भवति।

उदा०-**(पतिः)** इडायास्पतिः, इडायाः पतिः। **(पुत्रः)** इडायास्पुत्रः, इडायाः पुत्रः। **(पृष्ठम्)** इडायास्पृष्ठम्, इडायाः पृष्ठम्। **(पारम्)** इडायास्पारम्, इडायाः पारम्। **(पदम्)** इडायास्पदम्। इडायाः पदम्। **(पयः)** इडायास्पयः, इडायाः पयः। **(पोषम्)** इडायास्पोषम्, इडायाः पोषम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (छन्दसि) वेदविषय में (षष्ठ्याः) षष्ठ्यन्त (इडायाः) इडा इस (पदस्य) पद के (विसर्जनीयस्य) विसर्जनीय के स्थान में (पति०) पति, पुत्र, पृष्ठ, पार, पद, पयस्, पोष शब्द परे होने पर (वा) विकल्प से (सः) सकारादेश होता है।*

*उदा०-(पति) **इडायास्पतिः, इडायाः पतिः।** वेदवाणी/पृथिवी का पति। (पुत्र) **इडायास्पुत्रः, इडायाः पुत्रः।** पृथिवी का पुत्र, देशभक्त। (पृष्ठम्) **इडायास्पृष्ठम्, इडायाः पृष्ठम्।** पृथिवी की पीठ। (पार) **इडायास्पारम्, इडायाः पारम्।** पृथिवी के पार। (पद) **इडायास्पदम्। इडायाः पदम्।** पृथिवी का पद (स्थानविशेष)। (पयः) **इडायास्पयः, इडायाः पयः।** पृथिवी का जल। (पोष) **इडायास्पोषम्, इडायाः पोषम्।** पृथिवी का पोषण।*

'इडा' शब्द निघण्टु (१।१) में पृथिवी नामों में (१।११) में, वाङ्नामों में (२।७) में अन्न नामों में (२।१) और (५।५) पद नामों में पठित है। अतः यथा प्रकरण अर्थ की संगति करें।

***सिद्धि-इडायास्पतिः**, इडायाः पतिः आदि उदाहरणों में 'इडायाः' इस षष्ठ्यन्त पद के विसर्जनीय को सकारादेश और विकल्प पक्ष में विसर्जनीय आदेश स्पष्ट है।*

।। इति पदाधिकारः समाप्तः ।।

मूर्धन्यादेशप्रकरणम्

अधिकारः-

(१) अपदान्तस्य मूर्धन्यः।५५।

प०वि०-अपदान्तस्य ६।१ मूर्धन्यः ६।१।

स०-पदस्य अन्त इति पदान्तः, न पदान्त इति अपदान्तः, तस्य-अपदान्तस्य (षष्ठीगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

तद्धितवृत्तिः-मूर्धनि भव इति मूर्धन्यः **'शरीरावयवाच्च'** (४।३।५५) इति मूर्धशब्दाद् भवार्थे यत् प्रत्ययः।

अर्थः-अपदान्तस्य मूर्धन्य इत्यधिकारोऽयम्, आपादपरिसमाप्तेः। वक्ष्यति-**'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) इति। सिषेव। सुष्वाप। अग्निषु। वायुषु।

***आर्यभाषाः अर्थ-**(अपदान्तस्य) अपदान्त वर्ण को (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है, यह अधिकार सूत्र है। जैसे कि पणिनि मुनि कहेंगे- **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) अर्थात् आदेश और **प्रत्यय** के अपदान्त सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-**सिषेव**। उसने सिलाई की। **सुष्वाप**। वह सोया। **अग्निषु**। अग्नि देवताओं में। **वायुषु**। वायु देवताओं में।*

***सिद्धि-सिषेव** आदि पदों की सिद्धि आगे यथास्थान लिखी जायेगी।*

मूर्धन्यादेशः-

(२) सहेः साडः सः।५६।

प०वि०-सहेः ६।१ साडः ६।१ सः ६।१।

अनु०-संहितायाम्, अपदान्तस्य, मूर्धन्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां सहेः साडोऽपदान्तस्य सो मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये सहिधातोः साड्रूपस्याऽपदान्तस्य मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-जलाषाट्। तुराषाट्। पृतनाषाट्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (सहेः) सह् धातु के (साडः) साड्-रूप के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार को (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-**जलाषाट्**। जल अर्थात् सुख-शान्ति का अनुभव करनेवाला। **तुराषाट्**। तुर=शीघ्रकारी शत्रुओं का विनाश करनेवाला-इन्द्र। **पृतनाषाट्**। पृतना=सेना को नष्ट करनेवाला शूरवीर योद्धा।*

*सिद्धि-**जलाषाट्**। यहां जल-उपपद **'षह मर्षणे'** (भ्वा०आ०) धातु से **'छन्दसि सहः'** (३।२।६३) से 'ण्वि' प्रत्यय है। 'ण्वि' प्रत्यय का सर्वहारी लोप होता है। **'हो ढः'** (८।२।३१) से हकार को ढकार, **'झलां जशोऽन्ते'** (८।२।३९) से ढकार को जश् डकार और **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से उपधावृद्धि होती है। इस सूत्र से सह् धातु के इस 'साड्' रूप के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। **'अन्येषामपि दृश्यते'** (६।३।१३५) से दीर्घ होता है। ऐसे ही तुर-उपपद होने पर-**तुराषाट्**। पृतना-उपपद होने पर-**पृतनाषाट्**।*

अधिकारः--

(३) इण्कोः।५७।

वि०-इण्कोः ५।१।

स०-इण् च कुश्च एतयोः समाहारः-इण्कु, तस्मात्-इण्कोः (समाहारद्वन्द्वः)।

अर्थः-इण्कोरित्यधिकारोऽयम्, आपादपरिसमाप्तेः। इतोऽग्रे यद् वक्ष्यति इणः कवर्गाच्च परं तद् भवतीति वेदितव्यम्। यथा वक्ष्यति-**'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) इति।

उदा०-सिषेव। सुष्वाप। अग्निषु। वायुषु। कर्तृषु। गीर्षु। धूर्षु। वाक्षु। त्वक्षु।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इण्कोः) 'इण्कोः' यह अधिकार सूत्र है, इस पाद की समाप्ति पर्यन्त। पाणिनि मुनि इससे आगे जो कहेंगे वह इण् और कवर्ग से परे होता है, ऐसा जानें। जैसे कि पाणिनि मुनि कहेंगे-**'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) अर्थात् इण् और कवर्ग से परे आदेश और प्रत्यय के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-**सिषेव**। उसने सिलाई की। **सुष्वाप**। वह सोया। **अग्निषु**। अग्नि देवताओं में। **वायुषु**। वायु देवताओं में। **कर्तृषु**। कर्ताओं में। **गीर्षु**। वाणियों में। **धूर्षु**। जुओं में। **वाक्षु**। वाणियों में। **त्वक्षु**। त्वचाओं में।*

*सिद्धि-**सिषेव** आदि पदों की सिद्धि आगे यथास्थान लिखी जायेगी।*

***विशेषः** 'इण्' में परवर्ती 'लण्' के णकार से प्रत्याहार ग्रहण किया जाता है। इण्=इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, य, व, र, ल। 'कु' का अर्थ कवर्ग है-क, ख, ग, घ, ङ।*

मूर्धन्यादेशः--

(४) नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि।५८।

प०वि०-नुम्-विसर्जनीय-शर्व्यवाये ७।१ अपि अव्ययपदम्।

स०-नुम् च विसर्जनीयश्च शर् च ते नुम्विसर्जनीयशरः, तैः-नुम्-विसर्जनीयशर्भिः, तैर्व्यवाय इति नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायः, तस्मिन्-नुम्-विसर्जनीयशर्व्यवाये (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भिततृतीयातत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, सः, इण्कोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इणकोरपदान्तस्य सो नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये इण्कोरुत्तरस्याऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने नुम्विसर्जनीयशरव्यवायेऽपि मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-**(नुम्)** सर्पींषि। हवींषि। यजूंषि। **(विसर्जनीयः)** सर्पिःषु। हविःषु। यजुःषु। **(शर्)** सर्पिष्षु। हविष्षु। यजुष्षु।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इण्कोः) इण् और कवर्ग से परवर्ती (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (नुम्बिसर्जनीयशर्व्यवाये) नुम्, विसर्जनीय और शर्वर्ण के व्यवधान में (अपि) भी (मूर्धन्यः) मूर्धन्यादेश होता है।*

*उदा०-(नुम्) **सर्पींषि**। बहुत घृत। **हवींषि**। बहुत आहुतियां। **यजूंषि**। बहुत याजुष मन्त्र। (विसर्जनीय) **सर्पिःषु**। नाना घृतों में। **हविःषु**। नाना आहुतियों में। **यजुःषु**। याजुष मन्त्रों में। (शर्) **सर्पिष्षु**। नाना घृतों में। **हविष्षु**। नाना आहुतियों में। **यजुष्षु**। याजुष मन्त्रों में।*

*सिद्धि-(१) **सर्पींषि**। यहां 'सर्पिस्' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'जस्' प्रत्यय है। 'जश्शसोः' (७।१।२०) से 'जस्' को 'शि' आदेश और '**नपुंसकस्य झलचः**' (७।१।७२) से 'नुम्' आगम होता है। इस सूत्र से इण् से उत्तरवर्ती तथा 'नुम्' से*

*व्यवहित सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। 'सान्तमहतः संयोगस्य' (६।४।१०) से दीर्घ और 'नश्चापदान्तस्य झलि' (८।३।२४) से नकार को अनुस्वार आदेश होता है। ऐसे ही 'हविस्' शब्द से-**हवींषि**। 'यजुस्' शब्द से-**यजूंषि**।*

*(२) **सर्पिःषु**। यहां 'सर्पिस्' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'सुप्' प्रत्यय है। '**ससजुषो रुः**' (८।२।६६) से सकार को रुत्व और '**खरवसानयोर्विसर्जनीयः**' (८।३।१५) से 'रु' के रेफ को विसर्जनीय आदेश है। इस सूत्र से इण् से उत्तरवर्ती तथा विसर्जनीय से व्यवहित 'सुप्' के सकार को मूर्धन्यादेश होता है। ऐसे ही-**हविःषु**। **यजुःषु**।*

*(३) **सर्पिष्षु**। यहां 'वा शरि' (८।३।३६) से विसर्जनीय के स्थान में सकारादेश होता है। इस सूत्र से इण् से उत्तरवर्ती तथा शर् (स्) से व्यवहित 'सुप्' के सकार को मूर्धन्यादेश होता है। '**ष्टुना ष्टुः**' (८।४।४१) से पूर्ववर्ती सकार को षकारादेश है। ऐसे ही-**हविष्षु**। **यजुष्षु**।*

मूर्धन्यादेशः-

(५) आदेशप्रत्यययोः।५६।

प०वि०-आदेश-प्रत्यययोः ६।२।

स०-आदेशश्च प्रत्ययश्च तौ आदेशप्रत्ययौ, तयोः-आदेशप्रत्यययोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इण्कोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इणकोरादेशप्रत्यययोरपदान्तस्य सो मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये इण्कोरुत्तरस्य आदेशो यः सकारः, प्रत्ययस्य च यः सकारस्तस्यापदान्तस्य मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-(**आदेशः**) सिषेव। सुष्वाप। (**प्रत्ययः**) अग्निषु। वायुषु। कर्तृषु। हर्तृषु।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इण्कोः) इण् और कवर्ग से परवर्ती (आदेशप्रत्यययोः) आदेश रूप और प्रत्यय के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार को (मूर्धन्यः) मूर्धन्यादेश होता है।*

*उदा०-(आदेश) **सिषेव**। उसने सिलाई। **सुष्वाप**। वह सोया। (प्रत्यय) **अग्निषु**। अग्नि देवताओं में। **वायुषु**। वायु देवताओं में। **कर्तृषु**। कर्ताओं में। **हर्तृषु**। हरण करनेवालों में।*

***सिद्धि-(१) सिषेव**। यहां '**षिवु तन्तुसन्ताने**' (दि०प०) धातु से 'लिट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश और '**परस्मैपदानां णल०**' (३।४।८२) से 'तिप्'*

के स्थान में 'णल्' आदेश है। 'धात्वादेः षः सः' (६।१।६४) से धातुस्थ षकार को सकारादेश है। 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' (६।१।८) से 'सिव्' धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से इण् से परवर्ती 'सिव्' के आदेश रूप सकार को मूर्धन्यादेश होता है। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (७।३।८६) से लघूपधलक्षण गुण होता है। 'ञिष्वप् शये' (अदा०प०) धातु से-सुष्वाप।

(२) अग्निषु। यहां 'अग्नि' शब्द से 'स्वौजस०' (४।१।२) से 'सुप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इण् वर्ण से परवर्ती प्रत्ययस्थ सकार को मूर्धन्यादेश होता है। ऐसे ही-वायुषु। कर्तृषु। हर्तृषु।

मूर्धन्यादेशः–

(६) शासिवसिघसीनां च।६०।

प०वि०-शासि-वसि-घसीनाम् ६।३ च अव्ययपदम्।

स०-शासिश्च वसिश्च घसिश्च ते शासिवसिघसयः, तेषाम्-शासिवसिघसीनाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इण्कोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां शासिवसिघसीनां च इण्कोरपदान्तस्य सो मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये शासिवसिघसीनां धातूनां च इण्कोरुत्तरस्याऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-(शासि) अन्वशिषत्, अन्वशिषताम्, अन्वशिषन्। शिष्टः, शिष्टवान्। **(वसि)** उषितः, उषितवान्, उषित्वा। **(घसि)** जक्षतुः, जक्षुः। अक्षन्नमीमदन्त पितरः।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (शासिवसिघसीनाम्) शासि, वसि, घसि इन धातुओं के (इण्को) इण् और कवर्ग से परवर्ती (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्यादेश होता है।*

*उदा०-(शासि) **अन्वशिषत्**। उसने शिक्षा दी। **अन्वशिषताम्**। उन दोनों ने शिक्षा दी। **अन्वशिषन्**। उन सब ने शिक्षा दी। **शिष्टः, शिष्टवान्**। उसने शिक्षा दी। (वसि) **उषितः, उषितवान्, उषित्वा**। उसने निवास किया। (घसि) **जक्षतुः**। उन दोनों ने खाया। **जक्षुः**। उन सबने खाया। **अक्षन्नमीमदन्त पितरः**। **अक्षन्**। उन्होंने खाया।*

*सिद्धि-(१) **अन्वशिषत्**। यहां अनु-उपसर्गपूर्वक 'शासु अनुशिष्टौ' (अदा०प०) धातु से 'लुङ्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। 'सर्तिशास्त्यर्तिभ्यश्च'*

*(३।१।५६) से 'च्लि' के स्थान में 'अङ्' आदेश है। 'शास इदङ्हलोः' (६।४।३४) से इकारादेश है। इस सूत्र से इण् (इ) से परवर्ती 'शास्' के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। तस् (ताम्) प्रत्यय में-**अन्वशिषताम्**। झि (अन्) प्रत्यय में-**अन्वशिषन्**।*

*(२) **शिष्टः**। यहां पूर्वोक्त 'शास्' धातु से '**निष्ठा**' (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'शास्' को इकारादेश है। इस सूत्र से इण् (इ) से परवर्ती 'शास्' के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। '**ष्टुना ष्टुः**' (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकार होता है। 'क्तवतु' प्रत्यय में-**शिष्टवान्**।*

*(३) **उषितः**। यहां '**वस निवासे**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्वोक्त 'क्त' प्रत्यय है। '**वसतिक्षुधोरिट्**' (७।२।५२) से प्रत्यय को इडागम है। '**वचिस्वपियजादीनां किति**' (६।१।१०६) से पूर्वरूप एकादेश है। इस सूत्र से इण् (उ) से परवर्ती 'वस्' के षकार को मूर्धन्य अदेश होता है। 'क्तवतु' प्रत्यय में-**उषितवान्**। 'क्त्वा' प्रत्यय में-**उषित्वा**।*

*(४) **जक्षतुः**। यहां 'अद भक्षणे' (अदा०प०) धातु से 'लिट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तस्' आदेश और इसके स्थान में '**परस्मैपदानां णल०**' (३।४।) से 'अतुस्' आदेश है। '**लिट्यन्तरस्याम्**' (२।४।४०) से 'अद्' के स्थान में 'घस्लृ' आदेश होता है। '**गमहन०**' (६।४।९८) से 'घस्' की उपधा का लोप, '**द्विर्वचनेऽचि**' (१।१।५९) से इस लोपादेश को स्थानिवत् मानकर '**लिटि धातोरनभ्यासस्य**' (६।१।८) से 'घस्' को द्विर्वचन, '**कुहोश्चुः**' (७।४।६२) से अभ्यास घकार को चुत्व झकार और '**अभ्यासे चर्च**' (८।४।५४) से झकार को जश् जकार होता है। घकार को '**खरि च**' (८।४।५५) से चर् ककार होकर इस सूत्र से कवर्ग (क्) से परवर्ती 'क्स' के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। झि (उस्) प्रत्यय में-**जक्षुः**। यहां 'घसि' से '**घस्लृ अदने**' (भ्वा०प०) धातु का भी ग्रहण किया जाता है।*

*(५) **अक्षन्**। यहां 'अद भक्षणे' (अदा०प०) धातु से लुङ्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में झि (अन्ति) आदेश है। '**बहुलं छन्दसि**' (२।४।३९) से 'अद्' के स्थान में 'घस्लृ' आदेश होता है। '**मन्त्रे घसह्वरणश०**' (२।४।८०) से 'च्लि' का लुक्, '**घसिभसोर्हलि च**' (६।४।१००) से उपधा का लोप '**खरि च**' (८।४।५५) से घकार को 'चर्' ककार होता है। इस सूत्र से कवर्ग (क्) से परवर्ती सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। '**संयोगान्तस्य लोपः**' (८।२।२३) से संयोगान्त सकार का लोप होता है।*

मूर्धन्यादेशः--

(७) स्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासात्।६१।

प०वि०- स्तौति-ण्योः ६।२ एव अव्ययपदम्, षणि ७।१ अभ्यासात् ५।१।

स०-स्तौतिश्च णिश्च तौ स्तौतिणी, तयो:-स्तौतिण्यो: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-संहितायाम्, स:, अपदान्तस्य, मूर्धन्य:, इण्कोरिति चानुवर्तते।

अन्वय:-संहितायां स्तौतिण्योरेवाभ्यासादिणोऽपदान्तस्य स: षणि मूर्धन्य:।

अर्थ:-संहितायां विषये स्तौतेर्ण्यन्तानामेव च धातूनामभ्यासाद् इण उत्तरस्याऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, षण्भूते सनि परतो मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-**(स्तौति:)** स तुष्टूषति। **(ष्यन्त:)** सिषेवयिषति। सिषञ्जयिषति। सुष्वापयिषति।

सिद्धे सति सूत्रारम्भो नियमार्थो वेदितव्य:। स्तौतेर्ण्यन्तानामेव चाभ्यासादिण उत्तरस्य सकारस्य मूर्धन्यादेशो यथा स्यात्, अन्यस्य मा भूत्-सिसिक्षति। सुसूषति।

आर्यभाषा: *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (स्तौतिण्यो:) स्तौति और णिजन्त धातुओं के (एव) ही (अभ्यासात्) अभ्यास के (इण:) इण् से परवर्ती (अपदान्तस्य) अपदान्त (स:) सकार के स्थान में (षणि) षण् रूप 'सन्' प्रत्यय परे होने पर (मूर्धन्य:) मूर्धन्यादेश होता है।*

*उदा०-**(स्तौति)** स्तु-स **तुष्टूषति।** वह स्तुति करना चाहता है। **(ण्यन्त) सिषेवयिषति।** वह सिलाई कराना चाहता है। **सिषञ्जयिषति।** वह आलिङ्गन कराना चाहता है। **सुष्वापयिषति।** वह सुलाना चाहता है।*

*'आदेशप्रत्यययो:' (८।३।५९) से आदेश सकार को मूर्धन्य आदेश सिद्ध था फिर इस सूत्र का आरम्भ इस नियम के लिये किया गया है कि केवल 'स्तु' धातु और णिजन्त धातुओं के ही अभ्यास के इण् से परवर्ती सकार को मूर्धन्य आदेश हो; अन्यत्र न हो जैसे-**सिसिक्षति।** वह सींचना चाहता है। **सुसूषति।** वह प्रेरणा करना चाहता है (षू प्रेरणे)।*

*सिद्धि-(१) **तुष्टूषति।** यहां 'ष्टुञ् स्तुतौ' (अदा०उ०) धातु से '**धातो: कर्मण: समानकर्तृकादिच्छायां वा**' (३।१।७) से 'सन्' प्रत्यय है। 'सन्यङो:' (६।१।९) से 'स्तु' धातु को द्विर्वचन होता है। इस सूत्र से 'स्तु' धातु के अभ्यास के इण् (उ) से परवर्ती आदेश सकार को षण् (सन्) परे होने पर मूर्धन्य आदेश होता है। 'ष्टुना ष्टु:' (८।४।४१) से तकार को टकार आदेश है। '**अज्झनगमां सनि**' (६।४।१६) से दीर्घ होता है।*

(२) सिषेवयिषति। यहां प्रथम 'षिवु तन्तुसन्ताने' (दि०प०) धातु से 'हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् णिजन्त 'सेवि' धातु से पूर्ववत् इच्छार्थ में 'सन्' प्रत्यय है। सूत्र कार्य पूर्ववत् है।

*'षिञ्ज सङ्गे' (भ्वा०प०) इस णिजन्त धातु से-**सिषञ्जयिषति**। 'ञिष्वप् शये' (अदा०प०) इस णिजन्त धातु से-**सुष्वापयिषति**।*

सकारादेशः--

(८) सः स्विदिस्वदिसहीनां च।६२।

प०वि०-सः १।१ स्विदि-स्वदि-सहीनाम् ६।३ च अव्ययपदम्।

स०-स्विदिश्च स्वदिश्च सहिश्च ते स्विदिस्वदिसहयः, तेषाम्-स्विदिस्वदिसहीनाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इण्कोः, णेः, षणि, अभ्यासादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां स्विदिस्वदिसहीनां ण्यन्तानां चाभ्यासाद् इणोऽपदान्तस्य सः षणि मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये स्विदिस्वदिसहीनां ण्यन्तानां धातूनां चाभ्यासाद् इण उत्तरस्याऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, षण्भूते सनि परतः सकारादेशो भवति।

उदा०-**(स्विदि)** सिस्वेदयिषति। **(स्वदि)** सिस्वादयिषति। **(सहि)** सिसाहयिषति।

सकारस्य स्थाने सकारादेशवचनं मूर्धन्यादेशनिवृत्त्यर्थं वेदितव्यम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (स्विदिस्वदिसहीनाम्) स्विदि, स्वदि, सहि इन (ण्यन्तानाम्) णिजन्त के धातुओं के (च) भी (अभ्यासात्) अभ्यास के (इणः) इण् से परवर्ती (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (षणि) षण् रूप 'सन्' प्रत्यय परे होने पर (सः) सकारादेश होता है।*

*उदा०-(स्विदि) **सिस्वेदयिषति**। वह पसीना दिलाना चाहता है। **(स्वदि) सिस्वादयिषति**। वह आस्वादन (चखाना) कराना चाहता है। **(सहि) सिसाहयिषति**। वह मर्षण (सहन) कराना चाहता है।*

***सिद्धि-सिस्वेदयिषति**। यहां प्रथम 'ञिष्विदा गात्रप्रक्षरणे' (भ्वा०प०) धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् णिजन्त 'स्वेदि' धातु से **'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'** (३।१।७) से इच्छा अर्थ में 'सन्' प्रत्यय है।*

*'सन्यङोः' (६।१।९) से धातु को द्विर्वचन होता है। इस सूत्र से इस धातु के अभ्यास के इण् (इ) से परवर्ती सकार को षण् (सन्) परे होने पर सकारादेश होता है। **'स्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासात्'** (८।३।६१) से षकारादेश प्राप्त था, अतः यह सकार के स्थान में सकारादेश का विधान किया गया है। ऐसे ही-'स्वद आस्वादने' (भ्वा०आ०) धातु से-**सिस्वादयिषति**। 'षह मर्षणे' (भ्वा०आ०) धातु से-**सिसाहयिषति**।*

अधिकारः-

(६) प्राक्सितादड्व्यवायेऽपि।६३।

प०वि०-प्राक् १।१ सितात् ५।१ अड्व्यवाये ७।१ अपि अव्ययपदम्।

स०-अटा व्यवाय इति अड्व्यवायः, तस्मिन्-अड्व्यवाये (तृतीया-तत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इण् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इणः सः सितात् प्राग् (८।३।७०) अड्व्यवायेऽपि मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये इण उत्तरस्य सकारस्य स्थाने, सितात् प्राग् अड्व्यवायेऽनड्व्यवायेऽपि मूर्धन्यादेशो भवतीत्यधिकारोऽयम्। यथा वक्ष्यति-**'उपसर्गात् सुनोतिसुवति०'** (८।३।६५) इति।

उदा०-अभिषुणोति, परिषुणोति, विषुणोति, निषुणोति। **अड्व्यवाये-**अभ्यषुणोत्, पर्यषुणोत्, व्यषुणोत्, न्यषुणोत्।

आर्यभाषाः अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इणः) इण् से परवर्ती (सः) सकार के स्थान में (सितात्) सित शब्द (८।३।७०) से (प्राक्) पहले-पहले (अड्व्यवायेऽपि) अट्-आगम के व्यवधान और अट्-आगम के अव्यवधान में भी (मूर्धन्यः) मूर्धन्यादेश होता है। यह अधिकार सूत्र है। जैसे पाणिनि मुनि कहेंगे- **'उपसर्गात् सुनोति-सुवति०'** (८।३।६५) अर्थात् उपसर्गस्थ निमित्त से परे सुनोति आदि धातुओं के सकार को मूर्धन्यादेश होता है।*

*उदा०-अट् आगम के अव्यवधान में-**अभिषुणोति**। वह रस निचोड़ता है। **परिषुणोति**। वह सर्वतः रस निचोड़ता है। **विषुणोति**। वह विशेषतः रस निचोड़ता है। **निषुणोति**। वह निकृष्टतः रस निचोड़ता है। अट्-आगम के व्यवधान में-**अभ्यषुणोत्**। उसने रस निचोड़ा। **पर्यषुणोत्**। उसने सर्वतः रस निचोड़ा। **व्यषुणोत्**। उसने विशेषतः रस निचोड़ा। **न्यषुणोत्**। उसने निकृष्टतः रस निचोड़ा।*

सिद्धि-अभिषुणोति *आदि पदों की सिद्धि आगे यथास्थान लिखी जायेगी।*

अधिकारः–

(१०) स्थादिष्वभ्यासेन चाभ्यासस्य।६४।

प०वि०– स्था-अदिषु ७।३ अभ्यासेन ३।१ च अव्ययपदम्, अभ्यासस्य ६।१।

स०–स्था आदिर्येषां ते स्थादयः, तेषु-स्थादिषु (बहुव्रीहिः)।

अनु०–संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, प्राक्, सितात्, व्यवाये इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां स्थादिषु प्राक् सिताद् इणः सोऽभ्यासेन व्यवाये मूर्धन्यः, अभ्यासस्य च मूर्धन्यः।

अर्थः–संहितायां विषये स्थादिषु धातुषु प्राक् सिताद् इण उत्तरस्य सकारस्य स्थानेऽभ्यासेन व्यवाये सति मूर्धन्यादेशो भवति, अभ्यासस्य चापि मूर्धन्यः, इत्यधिकारोऽयम्।

अभ्यासेन व्यवाये, अषोपदेशार्थम्, अवर्णान्ताभ्यासार्थम्, षणि प्रतिषेधार्थं चेदं वचनं वेदितव्यम्।

उदा०–अभ्यासेन व्यवाये-परितष्ठौ। अषोपदेशार्थम्–अभिषिषेणयिषति। परिषिषेणयिषति। अवर्णान्ताभ्यासार्थम्–अभितष्ठौ। षणि प्रतिषेधार्थम्–अभिषिषिक्षति। परिषिषिक्षति।

***आर्यभाषाः* अर्थ–**(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (स्थादिषु) स्था आदि धातुओं में (सितात्) सित शब्द से (प्राक्) पहले-पहले (इणः) इण् **वर्ण** से परवर्ती (सः) सकार के स्थान में (अभ्यासेन) अभ्यास के (व्यवाये) व्यवधान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है (च) और (अभ्यासस्य) को भी मूर्धन्य आदेश होता है, यह अधिकार सूत्र है।

अभ्यास के व्यवधान, अषोपदेश, अवर्णान्त अभ्यास और षण्-प्रतिषेध में भी मूर्धन्यादेश के विधान के लिये यह कथन किया गया है।

*उदा०–अभ्यास-व्यवाय–**परितष्ठौ।** वह परितः स्थित हुआ। अषोपदेश–**अभिषिषेणयिषति।** वह अभितः सेना से जाना चाहता है। **परिषिषेणयिषति।** वह परितः सेना से जाना चाहता है। अवर्णान्त अभ्यास–**अभितष्ठौ।** वह अभितः स्थित हुआ। **षण्-प्रतिषेध–अभिषिषिक्षति।** वह अभितः सींचना चाहता है। **परिषिषिक्षति।** वह परितः सींचना चाहता है।*

सिद्धि- 'परितष्ठौ' आदि पदों की सिद्धि आगे यथास्थान लिखी जायेगी।

*'स्था' आदि धातु 'उपसर्गात् सुनोति०' (८।३।६५) सूत्र में पठित हैं। यहां **'अभ्यासस्य'** पद का ग्रहण नियमार्थ किया गया है कि स्था-आदि धातुओं में ही अभ्यास-सकार को मूर्धन्य आदेश होता है, अन्यत्र नहीं।*

मूर्धन्यादेशः-

(११) उपसर्गात् सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभतिस्था-सेनयसेधसिचसञ्जस्वञ्जाम्।६५।

प०वि०-उपसर्गात् ५।१ सुनोति-सुवति-स्यति-स्तौति-स्तोभति-स्था-सेनय-सेध-सिच-सञ्ज-स्वञ्जाम् ६।३।

स०-सुनोतिश्च सुवतिश्च स्यतिश्च स्तौतिश्च स्तोभतिश्च स्थाश्च सेनयश्च सेधश्च सिचश्च सञ्जश्च स्वञ्ज् च ते-सुनोति०स्वञ्जः, तेषाम्-सुनोति०स्वञ्जाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, अड्व्यवाये, अपि, स्थादिषु, अभ्यासेन, च, अभ्यासस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इणः उपसर्गात् सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौति-स्तोभतिस्थासेनयसेधसिचसञ्जस्वञ्जामपदान्तस्य सोऽड्व्यवायेऽपि स्थादिषु चाभ्यासेन व्यवायेऽभ्यासस्य च मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये इणन्ताद् उपसर्गात् परेषां सुनोतिसुवति-स्यतिस्तौतिस्तोभतिस्थासेनयसेधसिचसञ्जस्वञ्जां धातूनामपदान्तस्य सकारस्य स्थानेऽड्व्यवायेऽनड्व्यवायेऽपि, स्थादिषु धातुषु चाभ्यासेन व्यवायेऽभ्यासस्य च मूर्धन्यादेशो भवति। **उदाहरणम्**-

	धातुः	उपसर्गः/ व्यवायः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
(१)	सुनोति	अभि	अभिषुणोति	वह रस निचोड़ता है।
		परि	परिषुणोति	वह परितः रस निचोड़ता है।
		अड्व्यवायः	अभ्यषुणोत्	उसने रस निचोड़ा।
		परि ,,	पर्यषुणोत्	उसने परितः रस निचोड़ा।

धातुः	उपसर्गः/ व्यवायः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
(२) सुवति	अभि	अभिषुवति	वह अभितः प्रेरणा करता है।
	परि	परिषुवति	वह परितः प्रेरणा करता है।
	अड्व्यवायः	अभ्यषुवत्	उसने अभितः प्रेरणा की।
	परि ,,	पर्यषुवत्	उसने परितः प्रेरणा की।
(३) स्यति	अभि	अभिष्यति	वह अभितः समाप्त करता है।
	परि	परिष्यति	वह परितः समाप्त करता है।
	अड्व्यवायः	अभ्यष्यत्	उसने अभितः समाप्त किया।
	परि ,,	पर्यष्यत्	उसने परितः समाप्त किया।
(४) स्तौति	अभि	अभिष्टौति	वह अभितः स्तुति करता है।
	परि	परिष्टौति	वह परितः स्तुति करता है।
	अड्व्यवायः	अभ्यष्टौत्	उसने अभितः स्तुति की।
	परि ,,	पर्यष्टौत्	उसने परितः स्तुति की।
(५) स्तोभति	अभि	अभिष्टोभते	वह अभितः थामता है।
	परि	परिष्टोभते	वह परितः थामता है।
	अड्व्यवायः	अभ्यष्टोभत	उसने अभितः थामा।
	परि ,,	पर्यष्टोभत	उसने परितः थामा।
(६) स्था	अभि	अभिष्ठास्यति	वह अभितः ठहरेगा।
	परि	परिष्ठास्यति	वह परितः ठहरेगा।
	अड्व्यवायः	अभ्यष्ठात्	उसने अभितः ठहरा।
	परि ,,	पर्यष्ठात्	उसने परितः ठहरा।
	अभ्यासव्यवायः		
	अभि	अभितष्ठौ	वह अभितः ठहरा।
	परि	परितष्ठौ	वह परितः ठहरा।
(७) सेनय	अभि	अभिषेणयति	वह अभितः सेना से जाता है।
	परि	परिषेणयति	वह परितः सेना से जाता है।

	धातुः	उपसर्गः/ व्यवायः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
		अड्व्यवायः	अभ्यषेणयत्	उसने अभितः सेना से गया।
		परि ,,	पर्यषेणत्	उसने परितः सेना से गया।
		षण्भूतः(सन्)	अभिषिषेणयिषति	वह अभितः सेना से जाना चाहता है।
		,,	परिषिषेणयिषति	वह परितः सेना से जाना चाहता है।
(८)	सेध	अभि	अभिषेधति	वह अभितः शासन करता है।
		परि	परिषेधति	वह परितः शासन करता है।
		अड्व्यवायः	अभ्यषेधत्	उसने अभितः शासन किया।
		परि ,,	पर्यषेधत्	उसने परितः शासन किया।
(९)	सिचं	अभि	अभिषिञ्चति	वह अभितः सेचन करता है।
		परि	परिषिञ्चति	वह परितः सेचन करता है।
		अड्व्यवायः	अभ्यषिञ्चत्	उसने अभितः सेचन किया।
		परि ,,	पर्यषिञ्चत्	उसने परितः सेचन किया।
		षण्भूतः(सन्)	अभिषिषिक्षति	वह अभितः सेचन करना चाहता है।
		,,	परिषिषिक्षति	वह परितः सेचन करना चाहता है।
(१०)	सञ्ज	अभि	अभिषजति	वह अभितः आलिङ्गन करता है।
		परि	परिषजति	वह परितः आलिङ्गन करता है।
		अड्व्यवायः	अभ्यषजत्	उसने अभितः आलिङ्गन किया।
		परि ,,	पर्यषजत्	उसने परितः आलिङ्गन किया।
		षण्भूतः(सन्)	अभिषिषङ्क्षति	वह अभितः आलिङ्गन करना चाहता है।
		,,	परिषिषङ्क्षति	वह परितः आलिङ्गन करना चाहता है।
(११)	स्वञ्ज	अभि	अभिष्वजते	वह अभितः आलिङ्गन करता है।
		परि	परिष्वजते	वह परितः आलिङ्गन करता है।
		अड्व्यवायः	अभ्यष्वजत	उसने अभितः आलिङ्गन किया।
		परि ,,	पर्यष्वजत	उसने परितः आलिङ्गन किया।
		षण्भूतः(सन्)	अभिषिष्वङ्क्षते	वह अभितः आलिङ्गन करना चाहता है।
		,,	परिषिष्वङ्क्षते	वह परितः आलिङ्गन करना चाहता है।

आर्यभाषाः अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इणः) इण् वर्ण जिसके अन्त में है उस (उपसर्गात्) उपसर्ग से परे (सुनोति०) सुनोति, सुवति, स्यति, स्तौति, स्तोभति, स्था, सेनय, सेध, सिच, सञ्ज, स्वञ्ज इन धातुओं के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (अड्व्यवायेऽपि) अट्-आगम के व्यवधान में और अट्-आगम के अव्यवधान में भी (च) और (स्था) स्था आदि धातुओं में (अभ्यासेन व्यवाये) अभ्यास के व्यवधान में (च) और (अभ्यासस्य) अभ्यास को भी (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-(१) अभिषुणोति। यहां अभि-उपसर्गपूर्वक **'षुञ् अभिषवे'** (स्वा०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश और **'स्वादिभ्यः श्नुः'** (३।१।७३) से 'श्नु' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से इणन्त अभि उपसर्ग से परे 'सु' धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। परि-उपसर्गपूर्वक से-**परिषुणोति।**

(२) **अभ्यषुणोत्।** यहां अभि-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'सु' धातु से 'लङ्' प्रत्यय है। **'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः'** (६।४।७१) से अडागम होता है। इस सूत्र से इणन्त अभि-उपसर्ग से परे अडागम के व्यवधान में भी 'सु' धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। परि-उपसर्गपूर्वक से-**पर्यषुणोत्।**

(३) **अभिषुवति।** **'षु प्रेरणे'** (तु०प०) धातु से पूर्ववत्।

(४) **अभिष्यति।** **'षो अन्तकर्मणि'** (दि०प०) धातु से पूर्ववत्। **'ओतः श्यनि'** (७।३।७१) से ओकार का लोप होता है।

(५) **अभिष्टौति।** **'ष्टुञ् स्तुतौ'** (अदा०उ०) धातु से पूर्ववत्। **'उतो वृद्धिर्लुकि हलि'** (७।३।८९) से वृद्धि होती है।

(६) **अभिष्ठास्यति।** यहां अभि-उपसर्गपूर्वक **'ष्ठा गतिनिवृत्तौ'** (भ्वा०प०) धातु से 'लृट्' प्रत्यय है। **'स्यतासी लृलुटोः'** (३।१।३३) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। परि-उपसर्गपूर्वक से-**परिष्ठास्यति।** अड्व्यवाय में-**अभ्यष्ठात्, पर्यष्ठात्।** अभ्यास व्यवाय में-**अभितष्ठौ।** **'लिटि धातोरनभ्यासस्य'** (६।१।८) से 'स्था' धातु को द्वित्व होता है। **'आत औ णलः'** (७।१।३४) से णल् के स्थान में 'औ' आदेश है। परि-उपसर्गपूर्वक से-**परितष्ठौ।**

(७) **अभिषेणयति।** यहां अभि-उपसर्गपूर्वक 'सेना' शब्द से **'सत्यापपाश०'** (३।१।२५) से **'सेनयाऽभियाति'** अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है। **'वा०-'णाविष्ठवत् प्रातिपदिकस्य०'** (६।४।१५५) से 'सेना' के टि-भाग (आ) का लोप होता है। तत्पश्चात् अभि+सेनि धातु से 'लट्' प्रत्यय है। इस सूत्र से सकार को मूर्धन्य होता है। 'सेना' में आदेश-सकार न होने से षत्व प्राप्त नहीं था, अतः यह कथन किया गया है। अड्व्यवाय में-**अभ्यषेणयत्, पर्यषेणयत्।** षणभूत सन् में-**अभिषिषेणयिषति, परिषिषेणयिषति।**

'स्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासात्' (८।३।६१) से षण्भूत सन् में अभ्यासस्थ इण् से परवर्ती सकार को मूर्धन्य आदेश प्राप्त था, अतः यह कथन किया गया है।

*(८) **अभिषेधति।** 'षिधू शास्त्रे माङ्गल्ये च' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।*

*(९) **अभिषिञ्चति।** 'षिच क्षरणे' (तु०प०) धातु से पूर्ववत्। 'शे मुञ्चादीनाम्' (७।१।५९) से 'नुम्' आगम होता है।*

*(१०) **अभिषजति।** 'षञ्ज सङ्गे' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्। 'दंशसञ्जस्वञ्जां शपि' (६।४।२५) से नकार का लोप होता है।*

*(११) **अभिस्वजते।** 'ष्वञ्ज परिष्वङ्गे' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत्।*

मूर्धन्यादेशः—

(१२) सदिरप्रतेः।६६।

प०वि०–सदिः १।१ अप्रतेः ५।१।

स०–न प्रतिरिति अप्रतिः, तस्मात्–अप्रतेः (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, अड्भ्यासव्यवाये, अपि, स्थादिषु, अभ्यासेन, च अभ्यासस्य, उपसर्गादिति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् अप्रतेरिण उपसर्गात् सदेरपदान्तस्य सोऽड्व्यवायेऽपि स्थादिषु चाभ्यासेन व्यवायेऽभ्यासस्य च मूर्धन्यः।

अर्थः–संहितायां विषये प्रतिवर्जिताद् इणन्ताद् उपसर्गात् परस्य सदेर्धातिरपदान्तस्य सकारस्य स्थानेऽड्व्यवायेऽनड्व्यवायेऽपि, स्थादिषु धातुषु चाभ्यासेन व्यवायेऽभ्यासस्य च मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०–**(सदिः)** निषीदति, विषीदति। **अड्व्यवाये**–न्यषीदत्, व्यषीदत्। निषसाद, विषसाद।

आर्यभाषाः *अर्थ–(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अप्रतेः) प्रति से भिन्न (इणः) इणन्त (उपसर्गात्) उपसर्ग से परवर्ती (सदेः) सद् धातु के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (अड्व्यवायेऽपि) अट्-आगम के व्यवधान में और अव्यवधान में भी तथा (स्थादिषु) स्था आदि धातुओं में (अभ्यासेन) अभ्यास के (व्यवाये) व्यवधान में (च) और (अभ्यासस्य) अभ्यास को (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०–(सदि) **निषीदति।** वह बैठता है। **विषीदति।** वह खिन्न होता है। **अड्व्यवाये–न्यषीदत्।** वह बैठ गया। **व्यषीदत्।** वह खिन्न हुआ। **निषसाद।** वह बैठा था। **विषसाद।** वह खिन्न हुआ था।*

*सिद्धि-(१) **निषीदति।** यहां नि-उपसर्गपूर्वक 'षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु' (भ्वा०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश और 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय है। 'पाघ्राध्मा०' (७।३।७८) से 'सद्' को 'सीद' आदेश होता है। इस सूत्र से इणन्त 'नि' उपसर्ग से परवर्ती सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। 'सात्पदाद्योः' (८।३।१११) से पदादिलक्षण प्रतिषेध प्राप्त था, यह उसका पुरस्ताद् अपवाद है। वि-उपसर्गपूर्वक से-**विषीदति।** अड्व्यवाय में-**न्यषीदत्, व्यषीदत्।***

*(२) **निषसाद।** यहां नि-उपसर्गपूर्वक 'सद्' धातु से 'लिट्' प्रत्यय है। 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' (६।१।८) से धातु को द्विर्वचन होता है। 'सदेः परस्य लिटि' (८।३।११८) से अभ्यास से परवर्ती सकार को मूर्धन्य आदेश का प्रतिषेध प्राप्त था। इस सूत्र से मूर्धन्य आदेश होता है।*

*'अप्रतेः' का कथन इसलिये है कि यहां आदेश न हो-**प्रतिसीदति।***

मूर्धन्यादेशः-

(१३) स्तम्भेः।६७।

वि०-स्तम्भेः ६।१।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, अडभ्यासव्यवाये, अपि, स्थादिषु, अभ्यासेन, च अभ्यासस्य, उपसर्गादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इण उपसर्गात् स्तम्भेरपदान्तस्य सोऽड्व्यवायेऽपि, स्थादिष्वभ्यासेन चाभ्यासस्य च मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये इणन्ताद् उपसर्गात् परस्य स्तम्भेरपदान्तस्य सकारस्य स्थानेऽड्व्यवायेऽनड्व्यवायेऽपि, स्थादिषु चाभ्यासेन व्यवायेऽभ्यासस्य च मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-(स्तभिः) अभिष्टभ्नाति, परिष्टभ्नाति। **अड्व्यवाये-** अभ्यष्टभ्नात्, पर्यष्टभ्नात्। **अभ्यासव्यवाये**-अभितष्टम्भ, परितष्टम्भ।

***आर्यभाषाः** **अर्थ**-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इणः) इणन्त (उपसर्गात्) उपसर्ग से परवर्ती (स्तम्भेः) स्तम्भ धातु के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (अड्व्यवायेऽपि) अट्-आगम के व्यवधान में और अव्यवधान में भी तथा (स्थादिषु) स्था आदि धातुओं में (अभ्यासेन) अभ्यास के (व्यवाये) व्यवधान में (च) और (अभ्यासस्य) अभ्यास को (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-**(स्तभिः) अभिष्टभ्नाति।** वह अभितः रोकता है। **परिष्टभ्नाति।** वह परितः रोकता है। **अड्व्यवाये-अभ्यष्टभ्नात्।** उसने अभितः रोका। **परिष्टभ्नात्।** उसने*

*परितः रोका। **अभ्यासव्यवाये-अभितष्टम्भ।** उसने अभितः रोका था। **परितष्टम्भ।** उसने परितः रोका था।*

*सिद्धि-(१) **अभिष्टभ्नाति।** यहां अभि-उपसर्गपूर्वक **'स्तम्भु प्रतिबन्धे'** (प०सौत्रधातु) से 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। **'स्तम्भुस्तुम्भु०'** (३।१।८२) से 'श्ना' विकरण-प्रत्यय है। **'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति'** (६।४।२४) से अनुनासिक का लोप होता है। इस सूत्र से इणन्त अभि-उपसर्ग से परवर्ती धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकारादेश है। परि-उपसर्गपूर्वक से-**परिष्टभ्नाति।** अड्व्यवाय में-**अभ्यष्टभ्नात्, पर्यष्टभ्नात्।** अभ्यास-व्यवाय में-**अतिष्टम्भ, परितष्टम्भ।***

मूर्धन्यादेशः-

(१४) अवाच्चालम्बनाविदूर्ययोः।६८।

प०वि०-अवात् ५।१ च अव्ययपदम्, आलम्बन-आविदूर्ययोः ७।२।

स०-आलम्बनम्=आश्रयणम्। विदूरम्=विप्रकृष्टम्। न विदूरमिति अविदूरम्। अविदूरस्य भाव इति आविदूर्यम्। **'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च'** (५।१।१२४) इति ब्राह्मणादिलक्षणः ष्यञ् प्रत्ययः। आलम्बनं च आविदूर्यं च ते आलम्बनाविदूर्ये, तयोः-आलम्बनाविदूर्ययोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, उपसर्गात्, स्तम्भेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां विषयेऽवाद् उपसर्गात् स्तम्भेरपदान्तस्य स आलम्बनाविदूर्ययोर्मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषयेऽवाद् उपसर्गात् परस्य स्तम्भेरपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, आलम्बनाविदूर्ययोरर्थयोर्मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-(**आलम्बनम्**) अवष्टभ्यास्ते, अवष्टभ्य तिष्ठति। (**आविदूर्यम्**) अवष्टब्धा सेना, अवष्टब्धा शरत्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अवात्) अव इस (उपसर्गात्) उपसर्ग से परवर्ती (स्तम्भेः) स्तम्भ धातु के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (आलम्बनाविदूर्ययोः) आलम्बन=आश्रयण और आविदूर्य=समीप्य अर्थ में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-(आलम्बन) **अवष्टभ्यास्ते।** वह पकड़कर बैठता है। **अवष्टभ्य तिष्ठति।** वह आश्रय लेकर ठहरता है। (आविदूर्य) **अवष्टब्धा सेना।** सेना समीप है। **अवष्टब्धा शरत्।** शरदृतु समीप है।*

*सिद्धि-(१) **अवष्टभ्यास्ते।** यहां अव-उपसर्गपूर्वक **'स्तम्भु प्रतिबन्धे'** (प०सौत्रधातु) से **'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले'** (३।४।२१) से 'क्त्वा' प्रत्यय है। **'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्'** (७।१।३७) से 'क्त्वा' को 'ल्यप्' आदेश है। इस सूत्र से अव-उपसर्ग से परवर्ती 'स्तम्भ' के सकार को आलम्बन और आविदूर्य अर्थ में मूर्धन्य आदेश होता है। **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकारादेश होता है।*

*(२) **अवष्टब्धा।** यहां अव-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'स्तम्भ्' धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। **'झषस्तथोर्धोऽधः'** (८।२।४०) से तकार को धकार आदेश और **'झलां जश् झशि'** (८।४।५२) से भकार को जश् बकार आदेश है। **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से स्त्रीत्व-विवक्षा में 'टाप्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

मूर्धन्यादेशः-

(१५) वेश्च स्वनो भोजने।६६।

प०वि०-वेः ५।१ च अव्ययपदम्, स्वनः ६।१ भोजने ७।१।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, अड्भ्यासव्यवाये, अपि, स्थादिषु, अभ्यासेन, च, अभ्यासस्य, उपसर्गात्, अवादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इणो वेरवाच्च उपसर्गाद् भोजने स्वनोऽपदान्तस्य सोऽड्व्यवायेऽपि, स्थादिष्वभ्यासेन चाभ्यासस्य च मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये इणन्ताद् वेरवाच्चोपसर्गात् परस्य भोजनेऽर्थे स्वनोऽपदान्तस्य सकारस्य स्थानेऽड्व्यवायेऽनड्व्यवायेऽपि, स्थादिषु चाभ्यासेन व्यवायेऽभ्यासस्य च, मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-(स्वन्) **वि-**विष्वणति। **अड्व्यवाये-**व्यष्वणत्। **अभ्यास-व्यवाये-**विषष्वाण। **अव-**अवष्वणति। **अड्व्यवाये-**अवाष्वणत्। **अभ्यास-व्यवाये-**अवषष्वाण।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इणः) इणन्त (वेः) वि-उपसर्ग (च) और (अवात्) अव इस (उपसर्गात्) उपसर्ग से परवर्ती, (भोजने) खाना-पीना अर्थ में विद्यमान (स्वनः) स्वन् धातु के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (अड्व्यवायेऽपि) अट्-आगम के व्यवधान और अव्यवधान में तथा (स्थादिषु) स्था आदि

धातुओं में (अभ्यासेन) अभ्यास के (व्यवाये) व्यवधान में (च) और (अभ्यासस्य) अभ्यास को (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।

*उदा०-(स्वन्) वि-**विष्वणति**। वह सशब्द खाता-पीता है। अड्व्यवाय में-**व्यष्वणत्**। उसने सशब्द खाया-पीया। अभ्यासव्यवाय में-**विषष्वाण**। उसने सशब्द खाया-पीया था। अव-**अवष्वणति**। वह सशब्द खाता-पीता है। अड्व्यवाय में-**अवाष्वणत्**। उसने सशब्द खाया-पीया। अभ्यासव्यवाय में-**अवषष्वाण**। उसने सशब्द खाया-पीया था।*

*सिद्धि-**विष्वणति**। यहां वि-उपसर्गपूर्वक 'स्वन शब्दे' (भ्वा०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। इस सूत्र से इणन्त 'वि' उपसर्ग से परवर्ती 'स्वन' धातु के सकार को भोजन अर्थ में मूर्धन्य आदेश होता है। 'अट्कुप्वाङ्०' (८।४।२) से णत्व होता है। अड्व्यवाय में-**व्यष्वणत्** (लङ्)। अभ्यासव्यवाय में-**विषष्वाण** (लिट्)। अव-उपसर्गपूर्वक में-**अवष्वणति**। अड्व्यवाय में-**अवाष्वणत्**। अभ्यासव्यवाय में-**अवषष्वाण**।*

***विशेषः** 'स्वन' धातु शब्दार्थक है। इसमें भोजन अर्थ के मिश्रण से यह अर्थ होता है कि वह मुख चलाने का शब्द करता हुआ खाता-पीता है।*

मूर्धन्यादेशः-

(१६) परिनिविभ्यः सेवसितसयसिवुसहसुट्स्तुस्वञ्जाम्।७०।

प०वि०-परि-नि-विभ्यः ५।३ सेव-सित-सय-सिवु-सह-सुट्-स्तु-स्वञ्जाम् ६।३।

स०-परिश्च निश्च विश्च ते परिनिवयः, तेभ्यः-परिनिविभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। सेवश्च सितश्च सयश्च सिवुश्च सहश्च सुट् च स्तुश्च स्वञ्ज् च ते-सेव०स्वञ्जः, तेषाम्- सेव०स्वञ्जाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, प्राक्, सितात्, अड्व्यवाये, अपि, स्थादिषु, अभ्यासेन, च, अभ्यासस्य, उपसर्गादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इण्भ्यः परिनिविभ्य उपसर्गेभ्यः सेवसितसय-सिवुसहसुट्स्तुस्वञ्जामपदान्तस्य सोऽड्व्यवायेऽपि, स्थादिषु चाभ्यासेन चाभ्यासस्य मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये इणन्तेभ्यः परिनिविभ्य उपसर्गेभ्यः परेषां सेवसितसयसिवुसहसुट्स्तुस्वञ्जामपदान्तस्य सकारस्य स्थानेऽड्व्यवायेऽनड्व्यवायेऽपि, स्थादिषु चाभ्यासेन व्यवायेऽभ्यासस्य च मूर्धन्यादेशो भवति।

उदाहरणम्-

धातुः	उपसर्गः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
(१) सेव	परि	परिषेवते।	वह परितः सेवा करता है।
	नि	निषेवते।	वह निम्नतः सेवा करता है।
	वि	विषेवते।	वह विशेषतः सेवा करता है।
	अड्व्यवायः		अट्-व्यवधान
	परि	पर्यषेवत।	वह परितः सेवा की।
	नि	न्यषेवत।	वह निम्नतः सेवा की।
	वि	व्यषेवत।	वह विशेषतः सेवा की।
	षण्भूतः(सन्)		षण्भूत (सन्)
	परि	परिषिषेविषते	वह परितः सेवा करना चाहता है।
	नि	निषिषेविषते	वह निम्नतः सेवा करना चाहता है।
	वि	विषिषेविषते	वह विशेषतः सेवा करना चाहता है।
(२) सितः	परि	परिषितः	परितः बंधा हुआ।
{क्तान्तः}	नि	निषितः	निम्नतः बंधा हुआ।
	वि	विषितः	विशेषतः बंधा हुआ।
(३) सयः	परि	परिषयः	परितः बंधन।
	नि	निषयः	निम्नतः बंधन।
	वि	विषयः	विशेषतः बंधन।
(४) सिवु	परि	परिषीव्यति	वह परितः सिलाई करता है।
	नि	निषीव्यति	वह निम्नतः सिलाई करता है।
	वि	विषीव्यति	वह विशेषतः सिलाई करता है।
	अड्व्यवायः		अट्-व्यवधान
	परि	पर्यषीव्यत्	उसने परितः सिलाई की।
	नि	न्यषीव्यत्	उसने निम्नतः सिलाई की।
	वि	व्यषीव्यत्	उसने विशेषतः सिलाई की।
(५) सह	परि	परिषहते	वह परितः सहन करता है।
	नि	निषहते	वह निम्नतः सहन करता है।
	वि	विषहते	वह विशेषतः सहन करता है।

धातुः	उपसर्गः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
	अड्व्यवायः		अट्-व्यवधान
	परि	पर्यषहत	उसने परितः सहन किया।
	नि	न्यषहत	उसने निम्नतः सहन किया।
	वि	व्यषहत	उसने विशेषतः सहन किया।
(६) सुट्	परि	परिष्करोति	वह परिष्कार करता है।
	अड्व्यवायः		अट्-व्यवधान
	परि	पर्यष्करोत्	उसने परिष्कार किया।
(७) स्तु	परि	परिष्टौति	वह परितः स्तुति करता है।
	नि	निष्टौति	वह निम्नतः स्तुति करता है।
	वि	विष्टौति	वह विशेषतः स्तुति करता है।
	अड्व्यवायः		अट्-व्यवधान
	परि	पर्यष्टौत्	उसने परितः स्तुति की।
	नि	न्यष्टौत्	उसने निम्नतः स्तुति की।
	वि	व्यष्टौत्	उसने विशेषतः स्तुति की।
(८) स्वञ्ज	परि	परिष्वजते	वह परितः आलिङ्गन करता है।
	नि	निष्वजते	वह निम्नतः आलिङ्गन करता है।
	वि	विष्वजते	वह विशेषतः आलिङ्गन करता है।
	अड्व्यवायः		अट्-व्यवधान
	परि	पर्यष्वजत	उसने परितः आलिङ्गन किया।
	नि	न्यष्वजत	उसने निम्नतः आलिङ्गन किया।
	वि	व्यष्वजत	उसने विशेषतः आलिङ्गन किया।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इणभ्यः) इणन्त (परिनिविभ्यः) परि, नि, वि इन (उपसर्गेभ्यः) उपसर्गों से परवर्ती (सेव०) सेव, सित, सय, वु, सह, सुट्, स्तु, स्वञ्ज् इनके (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (अड्व्यवायेऽपि) अट्-आगम के व्यवधान में और अव्यवधान में भी तथा (स्थादिषु) स्था आदि धातुओं में (अभ्यासेन) अभ्यास के (व्यवाये) व्यवधान में (च) और (अभ्यासस्य) अभ्यास को (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-(१) **परिषेवते।** यहां परि-उपसर्गपूर्वक **'सेवृ सेवने'** (भ्वा०आ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'त' आदेश है। इस सूत्र से इणन्त 'परि' उपसर्ग से परवर्ती 'सेव' धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। नि-उपसर्गपूर्वक से-**निषेवते।** वि-उपसर्गपूर्वक से-**विषेवते।** अड्व्यवाय में-**पर्यषेवत, न्यषेवत, व्यषेवत।** णिजन्त से षण्भूत सन् में-**परिषिषेविषते, निषिषेविषते, विषिषेविषते।** **'स्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासात्'** (८।३।६१) से मूर्धन्य आदेश का प्रतिषेध प्राप्त था, अतः यह कथन किया गया है।

(२) **परिषितः।** यहां परि-उपसर्गपूर्वक **'षिञ् बन्धने'** (स्वा०उ०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। नि-उपसर्गपूर्वक से-**निषितः।** वि-उपसर्गपूर्वक से-**विषितः।**

विशेषः **'प्राक् सितादड्व्यवायेऽपि'** (८।३।६३) से इस 'सित' शब्द से पहले-पहले की धातुओं को अड्व्यवाय में भी मूर्धन्य आदेश होता है और **'स्थादिष्वभ्यासेन चाभ्यासस्य'** (८।३।६४) से स्था आदि धातुओं में अभ्यासव्यवाय में भी मूर्धन्य आदेश होता है। 'उपसर्गात् सुनोति०' (८।३।६५) में पठित 'स्था' धातु से लेकर इस 'सित' शब्द पर्यन्त के धातु स्थादि कहलाते हैं।

(३) **परिषयः।** यहां परि-उपसर्गपूर्वक **'षिञ् बन्धने'** (स्वा०उ०) धातु से **'एरच्'** (३।३।५६) से 'अच्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। नि-उपसर्गपूर्वक से-**निषयः।** वि-उपसर्गपूर्वक से-**विषयः।**

(४) **परिषीव्यति।** यहां परि-उपसर्गपूर्वक **'षिवु तन्तुसन्ताने'** (दि०प०) धातु से पूर्ववत्।

(५) **परिषहते।** यहां परि-उपसर्गपूर्वक **'षह मर्षणे'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।

(६) **परिष्करोति।** यहां परि-उपसर्गपूर्वक **'डुकृञ् करणे'** (तना०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। **'सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे'** (६।१।१३२) से 'सुट्' आगम होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। परि-उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु को 'सुट्' आगम होता है, अतः नि और वि उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु के उदाहरण नहीं हैं।

(७) **परिष्टौति।** यहां परि-उपसर्गपूर्वक **'ष्टुञ् स्तुतौ'** (अदा०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। 'उतो वृद्धिर्लुकि हलि' (७।३।८९) से वृद्धि होती है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकारादेश होता है।

(८) परिष्वजते। *परि-उपसर्गपूर्वक **'ष्वञ्ज परिसङ्गे'** (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत्। **'दंशसञ्जस्वञ्जां शपि'** (६।४।२५) से अनुनासिक का लोप होता है।*

विशेषः *स्तु और स्वञ्ज धातु को **'उपसर्गात् सुनोति०'** (८।३।६५) से ही मूर्धन्य आदेश सिद्ध है। पुनः इनको यहां आगामी सूत्र **'सिवादीनां वाऽड्व्यवायेऽपि'** (८।३।७१) से विकल्प से मूर्धन्य विधान के लिये ग्रहण किया गया है।*

मूर्धन्यादेशविकल्पः–

(१७) सिवादीनां वाऽड्व्यवायेऽपि।७१।

प०वि०–सिवादीनाम् ६।३ वा अव्ययपदम्, अड्व्यवाये ७।१ अपि अव्ययपदम्।

स०–सिव् आदिर्येषां ते सिवादयः, तेषाम्-सिवादीनाम् (बहुव्रीहिः)। अटा व्यवाय इति अड्व्यवायः, तस्मिन्–अड्व्यवाये (तृतीयातत्पुरुषः)।

अनु०–संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, उपसर्गात्, परिनिविभ्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् इण्भ्यः परिनिविभ्य उपसर्गेभ्य सिवादीनामपदान्तस्य सोऽड्व्यवायेऽपि वा मूर्धन्यः।

अर्थः–संहितायां विषये इणन्तेभ्यः परिनिविभ्य उपसर्गेभ्यः परेषां सिवादीनां धातूनामपदान्तस्य सकारस्य स्थानेऽड्व्यवायेऽपि विकल्पेन मूर्धन्यादेशो भवति।

अत्र **'सिवुसहसुट्स्तुस्वञ्जाम्'** इत्यत्र पूर्वसूत्रे सन्निविष्टाः सिवादयो धातवो गृह्यन्ते, न तु धातुपाठे पठिताः। **उदाहरणम्**–

धातुः	उपसर्गः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
(१) सिवु	परि	पर्यषीव्यत्/पर्यसीव्यत्	उसने परितः सिलाई की।
	नि	न्यषीव्यत्/न्यसीव्यत्	उसने निम्नतः सिलाई की।
	वि	व्यषीव्यत्/व्यसीव्यत्	उसने विशेषतः सिलाई की।
(२) सह	परि	पर्यषहत/पर्यसहत	उसने परितः सहन किया।
	नि	न्यषहत/न्यसहत	उसने निम्नतः सहन किया।
	वि	व्यषहत/व्यसहत	उसने विशेषतः सहन किया।

धातुः	उपसर्गः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
(३) स्तु	परि	पर्यष्टौत्/पर्यस्तौत्	उसने परितः स्तुति की।
	नि	न्यष्टौत्/न्यस्तौत्	उसने निम्नतः स्तुति की।
	वि	व्यष्टौत्/व्यस्तौत्	उसने विशेषतः स्तुति की।
(४) स्वञ्ज	परि	पर्यष्वजत/पर्यस्वजत	उसने परितः आलिङ्गन किया।
	नि	न्यष्वजत/न्यस्वजत	उसने निम्नतः आलिङ्गन किया।
	वि	व्यष्वजत/व्यस्वजत	उसने विशेषतः आलिङ्गन किया।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इण्भ्यः) इणन्त (परिनिविभ्यः) परि, नि, वि इन (उपसर्गेभ्यः) उपसर्गों से परवर्ती (सिवादीनाम्) सिव् आदि धातुओं के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (अड्व्यवाये) अट्-आगम के व्यवधान में (अपि) भी (वा) विकल्प से (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-पर्यषीव्यत्/पर्यसीव्यत् आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् है। मूर्धन्य आदेश-विकल्प विशेष है।

मूर्धन्यादेशविकल्पः-

(१८) अनुविपर्यभिनिभ्यः स्यन्दतेरप्राणिषु।७२।

प०वि०- अनु-वि-परि-अभि-निभ्यः ५।३ स्यन्दतेः ६।१ अप्राणिषु ७।३।

स०-अनुश्च विश्च परिश्च अभिश्च निश्च ते-अनुविपर्यभिनयः, तेभ्यः-अनुविपर्यभिनिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न प्राणिन इति अप्राणिनः, तेषु-अप्राणिषु (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, उपसर्गात्, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इण्भ्योऽनुविपर्यभिनिभ्य उपसर्गेभ्योऽप्राणिषु स्यन्दतेरपदान्तस्य सो वा मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये इणन्तेभ्योऽनुविपर्यभिनिभ्य उपसर्गेभ्यः परस्या-ऽप्राणिषु वर्तमानस्य स्यन्दतेरपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, विकल्पेन मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-(स्यन्द्) **अनु**-अनुष्यन्दते, अनुस्यन्दते। **वि**-विष्यन्दते, विस्यन्दते। **परि**-परिष्यन्दते, परिस्यन्दते। **अभि**-अभिष्यन्दते, अभिस्यन्दते। **नि**-निष्यन्दते, निस्यन्दते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इण्भ्यः) इणन्त (अनुविपर्यभिनिभ्यः) अनु, वि, परि, अभि, नि इन (उपसर्गेभ्यः) उपसर्गों से परवर्ती (स्यन्दतेः) स्यन्द् धातु के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (वा) विकल्प से (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-(स्यन्द्) **अनु-अनुष्यन्दते, अनुस्यन्दते।** अनुकूल बहता है। **वि-विष्यन्दते, विस्यन्दते।** विशेषतः बहता है। **परि-परिष्यन्दते, परिस्यन्दते।** परितः बहता है। **अभि-अभिष्यन्दते, अभिस्यन्दते।** अभितः बहता है। **नि-निष्यन्दते, निस्यन्दते।** निम्नतः बहता है।*

*सिद्धि-**अनुष्यन्दते।** यहां अनु-उपसर्गपूर्वक **'स्यन्दू प्रस्रवणे'** (भ्वा०आ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'त' आदेश है। इस सूत्र से इणन्त 'अनु' उपसर्ग से परवर्ती 'स्यन्द्' धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में मूर्धन्य आदेश नहीं है-**अनुस्यन्दते।** ऐसे ही-**विष्यन्दते, विस्यंन्दते** आदि।*

मूर्धन्यादेशविकल्पः—

(१६) वेः स्कन्देरनिष्ठायाम्।७३।

प०वि० -वेः ५।१ स्कन्देः ५।१ अनिष्ठायाम् ७।१।

स०-न निष्ठा इति अनिष्ठा, तस्याम्-अनिष्ठायाम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, उपसर्गात्, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इणो वेरुपसर्गात् स्कन्देरपदान्तस्य सोऽनिष्ठायां वा मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये इणन्ताद् वेरुपसर्गात् परस्य स्कन्देरपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, निष्ठावर्जिते प्रत्यये परतो विकल्पेन मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-(स्कन्द्) **वि**-विष्कन्ता, विस्कन्ता। विष्कन्तुम्, विस्कन्तुम्। विष्कन्तव्यम्, विस्कन्तव्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इणः) इणन्त (वेः) वि इस (उपसर्गात्) उपसर्ग से परवर्ती (स्कन्देः) स्कन्द् धातु के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः)*

सकार के स्थान में (अनिष्ठायाम्) निष्ठा-संज्ञक प्रत्यय से भिन्न कोई प्रत्यय परे होने पर (वा) विकल्प से (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।

*उदा०-(स्कन्द्) वि-**विष्कन्ता, विस्कन्ता**। विशेषतः गमन/शोषणकर्ता। **विष्कन्तुम्, विस्कन्तुम्**। विशेषतः गमन/शोषण केलिये। **विष्कन्तव्यम्, विस्कन्तव्यम्**। विशेषतः गमन/शोषण करना चाहिये।*

*सिद्धि-**विष्कन्ता**। यहां वि-उपसर्गपूर्वक **'स्कन्दिर् गतिशोषणयोः'** (भ्वा०आ०) धातु से **'ण्वुलतृचौ'** (३।१।) से 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इणन्त वि-उपसर्ग से परवर्ती 'स्कन्द्' धातु के सकार को निष्ठा से भिन्न 'तृच्' प्रत्यय परे होने पर मूर्धन्य आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में मूर्धन्य आदेश नहीं है-**विस्कन्ता**। यहां **'खरि च'** (८।४।५५) से दकार को चर् तकार होकर उसका **'झरो झरि सवर्णे'** (८।४।६४) से लोप हो जाता है। तुमुन् प्रत्यय में-**विष्कन्तुम्, विस्कन्तुम्**। तव्यत् प्रत्यय में-**विष्कन्तव्यम्, विस्कन्तव्यम्**।*

मूर्धन्यादेशविकल्पः-

(२०) परेश्च।७४।

प०वि०-परेः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, उपसर्गात्, वा, स्कन्देरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इणः परेरुपसर्गाच्च स्कन्देरपदान्तस्य सो वा मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये इणन्तात् परेरुपसर्गाच्च परस्य स्कन्देर-पदान्तस्य सकारस्य स्थाने, विकल्पेन मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-(स्कन्द्) परि-परिष्कन्ता, परिस्कन्ता। परिष्कन्तुम्, परिस्कन्तुम्। परिष्कन्तव्यम्, परिस्कन्तव्यम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इणः) इणन्त (परेः) परि इस (उपसर्गात्) उपसर्ग से (च) भी परवर्ती (स्कन्देः) स्कन्द् धातु के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (वा) विकल्प से (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-(स्कन्द्) परि-**परिष्कन्ता, परिस्कन्ता**। परितः गमन/शोषणकर्ता। **परिष्कन्तुम्, परिस्कन्तुम्**। परितः गमन/शोषण केलिये। **परिष्कन्तव्यम्, परिस्कन्तव्यम्**। परितः गमन/शोषण करना चाहिये।*

*सिद्धि-**परिष्कन्ता**। यहां परि-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'स्कन्द्' धातु से 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इणन्त परि-उपसर्ग से परवर्ती 'स्कन्द्' धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में मूर्धन्य आदेश नहीं है-**परिस्कन्ता**। तुमुन् प्रत्यय में-**परिष्कन्तुम्, परिस्कन्तुम्**। तव्यत् प्रत्यय में-**परिष्कन्तव्यम्, परिस्कन्तव्यम्**।*

***विशेषः** पृथक् सूत्र रचना से यहां '**अनिष्ठायाम्**' की अनुवृत्ति नहीं है। अतः निष्ठा में भी विकल्प से मूर्धन्य आदेश होता है-**परिष्कण्णः, परिस्कन्नः**। परितः गत/शोषित।*

निपातनम्-

(२१) परिस्कन्दः प्राच्यभरतेषु।७५।

प०वि०-परिस्कन्दः १।१ प्राच्यभरतेषु ७।३।

स०- प्राच्याश्च ते भरताश्चेति प्राच्यभरताः, तेषु-प्राच्यभरतेषु (कर्मधारयः)।

अन्वयः-प्राच्यभरतेषु परिस्कन्दो निपातनम्।

अर्थः-प्राच्यभरतेषु प्रयोगविषयेषु परिस्कन्द इत्यत्र मूर्धन्याभावो निपात्यते।

उदा०-परिस्कन्दः। अन्यत्र परिष्कन्दः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(प्राच्यभरतेषु) प्राच्य देश अन्तर्गत भरत देश के प्रयोग विषय में (परिस्कन्दः) परिस्कन्द इस पद में सकार को मूर्धन्य आदेश का अभाव निपातित है।*

*उदा०-**परिस्कन्दः**। सर्वतः गमन/शोषणकर्ता।*

*सिद्धि-**परिस्कन्दः**। यहां परि-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'स्कन्द्' धातु से '**नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः**' (३।१।१३४) से पचादिलक्षण 'अच्' प्रत्यय है। '**परेश्च**' (८।३।७४) से सकार को मूर्धन्य आदेश प्राप्त था, अतः इस सूत्र से प्राच्य-भरतदेशीय प्रयोग विषय में मूर्धन्याभाव निपातित किया गया है।*

***विशेषः** (१) परिस्कन्द उन दो सैनिकों को कहते थे जो रथ के दोनों ओर पहियों के साथ रहकर दोनों ओर के हमले से रथी का बचाव करते थे (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० १५५)।*

(२) दक्षिण-पूर्वी पंजाब में थानेश्वर-कैथल-करनाल-पानीपत का भूभाग भरत जनपद था। इसी का दूसरा नाम प्राच्य भरत भी था क्योंकि यहीं से देश के उदीच्य और प्राच्य इन दो खण्डों में सीमायें बंटती थी (पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० १५५)।

(३) इस उक्त प्राच्य भरत देश में आज भी षकार के स्थान में सकार का उच्चारण प्रचलित है।

मूर्धन्यादेशविकल्पः-

(२२) स्फुरतिस्फुलत्योर्निर्निविभ्यः ।७६।

प०वि०-स्फरति-स्फुलत्योः ६ ।२ निर्-नि-विभ्यः ५ ।३ ।

स०-स्फुरतिश्च स्फुलतिश्च तौ स्फुरतिस्फुलती, तयोः-स्फुरति-स्फुलत्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) । निर् च निश्च विश्च ते निर्निवयः, तेभ्यः निर्निविभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) ।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, उपसर्गात्, वा इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-संहितायाम् इण्भ्यो निर्निविभ्य उपसर्गेभ्यः स्फुरतिस्फुलत्योरपदान्तस्य सो वा मूर्धन्यः ।

अर्थः-संहितायां विषये इणन्तेभ्यः निर्निविभ्य उपसर्गेभ्यः परयोः स्फुरतिस्फुलत्योरपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, विकल्पेन मूर्धन्यादेशो भवति ।

उदा०-(**स्फुर**) **निर्**-निष्ष्फुरति, निस्स्फुरति । **नि**-निष्फुरति, निस्फुरति । **वि**-विष्फुरति, विस्फुरति । (**स्फुल**) **निर्**-निष्ष्फुलति, निस्स्फुलति । **नि**-निष्फुलति, निस्फुलति । **वि**-विष्फुलति, विस्फुलति ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इण्भ्यः) इणन्त (**निर्निविभ्यः**) निर्, नि, वि इन (उपसर्गेभ्यः) उपसर्गों से परवर्ती (स्फुरतिस्फुलत्योः) स्फुर, स्फुल इन धातुओं के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (वा) विकल्प से (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है ।*

*उदा०-(स्फुर) निर्-**निष्ष्फुरति, निस्स्फुरति** । निश्चय से सूझता है । **नि-निष्फुरति, निस्फुरति** । निम्नतः सूझता है । वि-**विष्फुरति, विस्फुरति** । विशेषतः सूझता है । (स्फुल) निर्-**निष्ष्फुलति, निस्स्फुलति** । वह निश्चय से कांपता है । नि-**निष्फुलति, निस्फुलति** । वह निम्नतः कांपता है । वि-**विष्फुलति, विस्फुलति** । वह विशेषतः कांपता है ।*

*सिद्धि-(१) **निष्ष्फुरति** । यहां निर्-उपसर्गपूर्वक **'स्फुर स्फुरणे'** (तु०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है । लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश और 'तुदादिभ्यः श' (३ ।१ ।७७) से 'श' विकरण-प्रत्यय है । इस सूत्र से इणन्त 'निर्' उपसर्ग से परवर्ती 'स्फुरति' के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है । 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' (८ ।३ ।१५) से 'निर्' के रेफ को विसर्जनीय, 'विसर्जनीयस्य सः' (८ ।३ ।३४) से विसर्जनीय को सकारादेश और **'ष्टुना ष्टुः'***

*(८।४।४१) से सकार को षकारादेश है। विकल्प-पक्ष में-**निस्स्फुरति**। नि-उपसर्गपूर्वक से-**निष्फुरति, निस्फुलति**। वि-उपसर्गपूर्वक से-**विस्फुलति, विस्फुलति**।*

*(२) **निष्फुलति**। निर्-उपसर्गपूर्वक 'स्फुल संचलने' (तु०प०) धातु से पूर्ववत्।*

नित्यं मूर्धन्यादेशः–

(२३) वेः स्कभ्नातेर्नित्यम्।७७।

प०वि०–वेः ५।१ स्कभ्नातेः ६।१ नित्यम् १।१।

अनु०–संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, उपसर्गादिति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् इणो वेः स्कभ्नातेरपदान्तस्य सो नित्यं मूर्धन्यः।

अर्थः–संहितायां विषये इणन्ताद् वेरुपसर्गात् परस्य स्कभ्नातेरपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, नित्यं मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०–**(स्कम्भ्) वि**–विष्कभ्नाति। विष्कम्भिता, विष्कम्भितुम्, विष्कम्भितव्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इणः) इणन्त (वेः) वि इस (उपसर्गात्) उपसर्ग से परवर्ती (स्कभ्नातेः) स्कम्भ् धातु के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (नित्यम्) सदा (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-(स्कम्भ्) वि-**विष्कभ्नाति**। वह विशेषतः रोकता। **विष्कम्भिता**। विशेषतः रोकनेवाले। **विष्कम्भितुम्**। विशेषतः रोकने के लिये। **विष्कम्भितव्यम्**। विशेषतः रोकना चाहिये।*

***सिद्धि-विष्कभ्नाति**। यहां 'स्कम्भ् प्रतिबन्धे' (सौत्रधातु ३।१।८२) से 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। 'स्तम्भुस्तुम्भु०' (३।१।८२) से 'श्ना' विकरण-प्रत्यय है। 'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति' (६।४।२४) से अनुनासिक (न्) का लोप होता है। तृच् प्रत्यय में-**विष्कम्भिता**। तुमुन् प्रत्यय में-**विष्कम्भितुम्**। तव्यत् प्रत्यय में-**विष्कम्भितव्यम्**।*

मूर्धन्यादेशः–

(२४) इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात्।७८।

प०वि०–इणः षीध्वम्-लुङ्-लिटाम् ६।३ धः ६।१ अङ्गात् ५।१।

स०–षीध्वं च लुङ् च लिट् च ते-षीध्वंलिङ्लिटः, तेषाम्-षीध्वं-लुङ्लिटाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, अपदान्तस्य, मूर्धन्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इणोऽङ्गात् षीध्वंलुङ्लिटां धो मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये इणन्ताद् अङ्गात् परेषां धीष्वंलुङ्लिटां यो धकारस्तस्याऽपदान्तस्य स्थाने, मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-(षीध्वम्) यूयं च्योषीढ्वम्। यूयं प्लोषीढ्ध्वम्। **(लुङ्)** यूयम् अच्योढ्वम्, यूयम् अप्लोढ्वम्। **(लिट्)** यूयं चकृढ्वे। यूयं ववृढ्वे।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इणः) इणन्त (अङ्गात्) अङ्ग से परवर्ती (षीध्वंलुङ्लिटाम्) षीध्वम्, लुङ् और लिट् का जो (धः) धकार है उस (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) धकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

उदा०-(षीध्वम्) ***यूयं च्योषीढ्वम्।*** *तुम सब गिरो।* ***यूयं प्लोषीढ्वम्।*** *तुम सब कूदो। (लुङ्)* ***यूयम् अच्योढ्वम्।*** *तुम सब गिरे।* ***यूयम् अप्लोढ्वम्।*** *तुम सब कूदे। (लिट्)* ***यूयं चकृढ्वे।*** *तुम सबने किया था।* ***यूयं ववृढ्ध्वे।*** *तुम सब ने वरण किया था।*

सिद्धि-(१) ***च्योषीढ्वम्।*** *यहां 'च्युङ् गतौ' (भ्वा०आ०) धातु से आशीर्वाद में 'लिङ्' प्रत्यय है। 'लिङः सीयुट्' (३।४।१०२) से लिङ् को सीयुट् आगम है। लकार के स्थान में 'ध्वम्' आदेश है। 'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्' (७।२।१०) से इडागम का प्रतिषेध है। 'लोपो व्योर्वलि' (६।४।६४) से 'सीयुट्' के यकार का लोप, 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (७।३।८४) से अङ्ग को गुण और 'आदेशप्रत्यययोः' (८।३।५९) से षत्व होकर इस सूत्र से 'षीध्वम्' के धकार को ढकार मूर्धन्य आदेश होता है। 'प्लुङ् गतौ' (भ्वा०आ०) धातु से-प्लोषीढ्वम्। लुङ् लकार में-अच्योढ्वम्, अप्लोढ्वम्। लिट् लकार में 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से-चकृढ्वे। 'वृञ् वरणे' (स्वा०उ०) धातु से-ववृढ्वे। 'कृसृभृवृ०' (७।२।१३) से इडागम का प्रतिषेध है।*

मूर्धन्यादेशविकल्पः-

(२५) विभाषेटः।७६।

प०वि०-विभाषा १।१ इटः ५।१।

अनु०-संहितायाम्, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, षीध्वंलुङ्लिटाम्, धः, अङ्गादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इणोऽङ्गात् इटः षीध्वंलुङ्लिटां धो विभाषा मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये इणन्ताद् अङ्गाद् उत्तरस्माद् इटः परेषां षीध्वंलुङ्लिटां यो धकारस्तस्याऽपदान्तस्य स्थाने, विकल्पेन मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-(षीध्वम्) यूयं लविषीढ्वम्, लविषीध्वम्। यूयं पविषीढ्वम्, पविषीध्वम्। **(लुङ्)** यूयम् अलविढ्वम्, अलविध्वम्। **(लिट्)** यूयं लुलुविढ्वे, लुलुविध्वे।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इणः) इणन्त (अङ्गात्) अङ्ग से परे जो (इटः) इट् है उससे परवर्ती (षीध्वंलुङ्लिटाम्) षीध्वम्, लुङ् और लिट् इनका जो (धः) धकार है उसके स्थान में (विभाषा) विकल्प से (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-(षीध्वम्) **यूयं लविषीढ्वम्, लविषीध्वम्।** तुम सब काटो। **यूयं पविषीढ्वम्, पविषीध्वम्।** तुम सब पवित्र करो। (लुङ्) **यूयम् अलविढ्वम्, अलविध्वम्।** तुम सबने काटा। (लिट्) **यूयं लुलुविढ्वे, लुलुविध्वे।** तुम सबने काटा था।*

***सिद्धि-(१) लविषीढ्वम्।** यहां 'लूञ् छेदने' (क्र्या०उ०) धातु से आशीर्वाद में 'लिङ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् सीयुट् आगम और लकार के स्थान में 'ध्वम्' आदेश है। **'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'** (७।२।३५) से 'सीयुट्' को 'इट्' आगम है। इस सूत्र से इणन्त (लो) अङ्ग से उत्तर इट् से परवर्ती 'षीध्वम्' के धकार को ढकार मूर्धन्य आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में मूर्धन्य आदेश नहीं है-**लविषीध्वम्।** लुङ् में-**अलविढ्वम्, अलविध्वम्।** लिट् में-**लुलुविढ्वे, लुलुविध्वे।** 'अचि श्नुधातुभ्रुवां०' (६।४।७७) से उवङ् आदेश है।*

मूर्धन्यादेशः-

(२६) समासेऽङ्गुलेः सङ्गः।८०।

प०वि०-समासे ७।१ अङ्गुलेः ५।१ सङ्गः १।१ (षष्ठ्यर्थे)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इण इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् समासे इणोऽङ्गुलेः सङ्गोऽपदान्तस्य सो मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां समासे च विषये इणन्ताद् अङ्गुलेः शब्दात् परस्य सङ्ग इत्येतस्याऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, विकल्पेन मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-अङ्गुलेः सङ्ग इति अङ्गुलिषङ्गः। अङ्गुलिषङ्गा यवागूः। अङ्गुलिषङ्गो गाः सादयति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (समासे) समास विषय में (इणः) इणन्त (अङ्गुलेः) अङ्गुलि शब्द से परवर्ती (सङ्गः) सङ्ग इस शब्द को (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-**अङ्गुलिषङ्गः।** अङ्गुलि का सङ्ग। **अङ्गुलिषङ्गा यवागूः।** अङ्गुलि को लग जानेवाली यवागू (लापसी)। **अङ्गुलिषङ्गो गाः सादयति।** अङ्गुलि के सङ्ग शस्त्रविशेष रखनेवाला पुरुष बैलों को चलाता है, हांकता है।*

*सिद्धि-(१) **अङ्गुलिषङ्गः।** यहां अङ्गुलि और सङ्ग शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष अथवा **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से इणन्त अङ्गुलि शब्द से परवर्ती सङ्ग के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।*

मूर्धन्यादेशः-

(२७) भीरोः स्थानम्।८१।

प०वि०-भीरोः ५।१ स्थानम् १।१ (षष्ठ्यर्थे)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, समासे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां समासे इणो भीरोः स्थानमपदान्तस्य सो मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां समासे च विषये इणन्ताद् भीरोः शब्दात् परस्य स्थानमित्येतस्याऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-भीरोः स्थानमिति भीरुष्ठानम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (समासे) समास विषय में (इणः) इणन्त (भीरोः) भीरु इस शब्द से परवर्ती (स्थानम्) इस स्थान शब्द के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-**भीरुष्ठानम्।** भीरु (डरपोक) पुरुष का स्थान (आवास)।*

*सिद्धि-**भीरुष्ठानम्।** यहां भीरु और स्थान शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से इणन्त 'भीरु' शब्द से परवर्ती 'स्थान' शब्द के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। पश्चात् 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४१) से थकार को टवर्ग ठकारादेश होता है।*

मूर्धन्यादेशः-

(२८) अग्नेः स्तुत्स्तोमसोमाः।८२।

प०वि०-अग्नेः ५।१ स्तुत्-स्तोम-सोमाः १।३ (षष्ठ्यर्थे)।

स०-स्तुश्च स्तोमश्च सोमश्च ते-स्तुत्स्तोमसोमाः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, समासे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां समासे इणोऽग्नेः स्तुत्स्तोमसोमा अपदान्तस्य सो मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां समासे च विषये इणन्ताद् अग्निशब्दात् परेषां स्तुत्स्तोमसोमा इत्येतेषामपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-**(स्तुत्)** अग्निं स्तौतीति अग्निष्टुत्। **(स्तोमः)** अग्नेः स्तोम इति अग्निष्टोमः। **(सोमः)** अग्निश्च सोमश्च तौ अग्नीषोमौ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (समासे) समास विषय में (इणः) इणन्त (अग्नेः) अग्नि शब्द से परवर्ती (स्तुत्स्तोमसोमाः) स्तुत्, स्तोम, सोम इन शब्दों के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-(स्तुत्) **अग्निष्टुत्।** अग्नि देवता की स्तुति करनेवाला। (स्तोम) **अग्निष्टोमः।** यज्ञविशेष। इस में तीन सवन और द्वादश स्तोत्र होते हैं। (सोम) **अग्नीषोमौ।** अग्नि और सोम देवता, दोनों।*

*सिद्धि-(१) **अग्निष्टुत्।** यहां अग्नि उपपद 'ष्टुञ् स्तुतौ' (अदा०उ०) धातु से **'क्विप् च'** (३।२।७६) से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'क्विप्' का सर्वहारी लोप होता है। **'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्'** (६।१।७०) से 'तुक्' आगम है। इस सूत्र से इणन्त अग्नि शब्द से परवर्ती 'स्तुत्' शब्द के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। **'ष्टुना ष्टुः'** (८।३।४१) से तकार को टवर्ग टकार आदेश है। **'उपपदमतिङ्'** (२।२।१९) से उपपद समास है।*

*(२) **अग्निष्टोमः।** यहां अग्नि और स्तोम शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **अग्नीषोमौ।** यहां अग्नि और सोम शब्दों का **चार्थे द्वन्द्वः'** (२।२।२९) से द्वन्द्वसमास है। **'ईदग्नेः सोमवरुणयोः'** (६।३।२७) से ईकारादेश होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*यहां **'सात्पदाद्योः'** (८।३।१११) से पदादिलक्षण प्रतिषेध प्राप्त था, अतः यह **मूर्धन्य** आदेश विधान किया गया है।*

मूर्धन्यादेशः–

(२९) ज्योतिरायुषः स्तोमः।८३।

प०वि०–ज्योतिरायुषः ५।१ स्तोमः १।१ (षष्ठ्यर्थे)।

स०–ज्योतिश्च आयुश्च एतयोः समाहारो ज्योतिरायुः, तस्मात्–ज्योतिरायुषः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, समासे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां समासे च इण्भ्यां ज्योतिरायुर्भ्यां स्तोमोऽपदान्तस्य सो मूर्धन्यः।

अर्थः–संहितायां समासे च विषये इणन्ताभ्यां ज्योतिरायुर्भ्यां शब्दाभ्यां परस्य स्तोम इत्येतस्याऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०–**(ज्योतिर्)** ज्योतिषः स्तोम इति ज्योतिष्टोमः। **(आयुर्)** आयुषः स्तोम इति आयुष्टोमः।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(संहितायाम्) सन्धि और (समासे) समास विषय में (इणभ्याम्) इणन्त (ज्योतिरायुर्भ्याम्) ज्योतिर् और आयुर् इन शब्दों से परवर्ती (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०–**(ज्योतिर्) ज्योतिष्टोमः।** यज्ञविशेष। **(आयुर्) आयुष्टोमः।** यज्ञविशेष।*

सिद्धि–ज्योतिष्टोमः।** यहां ज्योतिर् और स्तोम शब्दों का पूर्ववत् षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से इणन्त ज्योतिर् से परवर्ती 'स्तोम' शब्द के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकारादेश है। ऐसे ही–**आयुष्टोमः।

मूर्धन्यादेशः–

(३०) मातृपितृभ्यां स्वसा।८४।

प०वि०–मातृ–पितृभ्याम् २।२ स्वसा १।१ (षष्ठ्यर्थे)।

स०–माता च पिता च तौ मातृपितरौ, ताभ्याम्–मातृपितृभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, समासे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां समासे च इण्भ्यां मातृपितृभ्यां स्वसाऽपदान्तस्य सो मूर्धन्यः ।

अर्थः-संहितायां समासे च विषये इणन्ताभ्यां मातृपितृभ्यां परस्य स्वसा इत्येतस्याऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, मूर्धन्यादेशो भवति ।

उदा०-**(मातृ)** मातुः स्वसेति मातृष्वसा। **(पितृ)** पितुः स्वसेति पितृष्वसा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (समासे) समास विषय में (इणभ्याम्) इणन्त (मातृपितृभ्याम्) मातृ, पितृ इन शब्दों से परवर्ती (स्वसा) स्वसा इस शब्द के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-(मातृ) **मातृष्वसा।** माता की बहिन-मां-सी। (पितृ) **पितृष्वसा।** पिता की बहिन-बुआ।*

__सिद्धि-मातृष्वसा।__ यहां मातृ और स्वसा शब्दों का पूर्ववत् षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से इणन्त मातृ-शब्द से 'स्वसा' शब्द के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। ऐसे ही-__पितृष्वसा।__

मूर्धन्यादेशविकल्पः-

(३१) मातुःपितुर्भ्यामन्यतरस्याम्।८५।

प०वि०-मातुः-पितुर्भ्याम् ५।२ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-मातुश्च च पितुश्च च तौ मातुःपितरौ, ताभ्याम्-मातुपितुर्भ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, समासे, स्वसा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां समासे च इण्भ्यां मातुःपितुर्भ्यां स्वसाऽपदान्तस्य सोऽन्यतरस्यां मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां समासे च विषये इणन्ताभ्यां मातुःपितुर्भ्यां शब्दाभ्यां परस्य स्वसा इत्येतस्य शब्दस्यापदान्तस्य सकारस्य स्थाने, विकल्पेन मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-(**मातुः**) मातुः स्वसेति मातुःष्वसा, मातुःस्वसा। (**पितुः**) पितुः स्वसेति पितुःष्वसा, पितुःस्वसा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (समासे) समास विषय में (इणभ्याम्) इणन्त (मातुःपितुर्भ्याम्) मातुर्, पितुर् इन शब्दों से परवर्ती (स्वसा) स्वसा इस शब्द के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-(**मातुः**) **मातुःष्वसा, मातुःस्वसा।** माता की बहिन-मां-सी। (**पितुः**) **पितुःष्वसा, पितुःस्वसा।** पिता की बहिन-बुआ।*

*सिद्धि-**मातुःष्वसा।** यहां मातुः और स्वसा शब्दों का पूर्ववत् षष्ठीतत्पुरुष समास है। 'विभाषा स्वसृपत्योः' (६।३।२२) से षष्ठीविभक्ति का अलुक् होता है। इस सूत्र से इणन्त 'मातुर्' शब्द से परवर्ती स्वसा शब्द के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' (८।३।१५) से रेफ को खर्लक्षण विसर्जनीय आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में मूर्धन्य आदेश नहीं है-**मातुःस्वसा।** ऐसे ही-**पितुःष्वसा, पितुःस्वसा।***

मूर्धन्यादेशविकल्पः-

(३२) अभिनिसः स्तनः शब्दसंज्ञायाम्।८६।

प०वि०- अभिनिसः ५।१ स्तनः ६।१ शब्द-संज्ञायाम् ७।१।

स०-अभिश्च निस् च एतयोः समाहारः-अभिनिस्, तस्मात्-अभिनिसः (समाहारद्वन्द्वः)। शब्दस्य संज्ञा इति शब्दसंज्ञा, तस्याम्-शब्दसंज्ञायाम् (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, अन्यतरस्याम् इति चानुवर्तते। समासे इति च निवृत्तम्।

अन्वयः-संहितायाम् इण्भ्याम् अभिनिर्भ्यां स्तनोऽपदान्तस्य सोऽन्यतरस्यां मूर्धन्यः, शब्दसंज्ञायाम्।

अर्थः-संहितायां विषये इणन्ताभ्याम् अभिनिर्भ्यां परस्य स्तनोऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, विकल्पेन मूर्धन्यादेशो भवति, शब्दसंज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-अभिनिष्टानो वर्णः (विसर्जनीयः)। अभिनिष्तानो वर्णः (**विसर्जनीयः**)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में इन (इणः) इणन्त (अभिनिसः) अभि, निर् इनसे परवर्ती (स्तनः) स्तन् धातु के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है (शब्दसंज्ञायाम्) यदि वहां व्याकरणशास्त्र की किसी संज्ञा की प्रतीति हो।*

*उदा०-**अभिनिष्टानो वर्णः। अभिनिष्तानो वर्णः।** यह व्याकरणशास्त्र के एक वर्ण विसर्जनीय की संज्ञा है।*

सिद्धि-अभिनिष्टानः।** यहां अभि और निर् उपसर्गपूर्वक 'ष्टन शब्दे' (भ्वा०प०) धातु से **'अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्'** (३।३।१९) से 'घञ्' प्रत्यय है। **'अत उपधायाः'** (७।२।११६) से उपधावृद्धि होती है। इस सूत्र से समुदित इणन्त अभिनिर् से परवर्ती 'स्तन्' धातु के सकार को शब्दसंज्ञा की अभिव्यक्ति में मूर्धन्य आदेश होता है। **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकारादेश है। विकल्प-पक्ष में मूर्धन्यादेश नहीं है-**अभिस्तानो वर्णः।

***विशेषः** 'घोषवदाद्यन्तरन्तस्थमभिनिष्टानान्तं द्व्यक्षरम्' (आश्व० १।१५।५) अर्थात् बालक का नाम ऐसा रखे कि जिसके आदि में घोष (वर्गों के तीसरे-चाथे-पांचवें) वर्ण हों और मध्य में अन्तःस्थ (य र ल व) वर्ण हों और अन्त में अभिनिष्ठान=विसर्जनीय हो। जैसे-भद्रसेनः, देवदत्तः आदि यहां अभिनिष्टान शब्द विसर्जनीयवाची है।*

मूर्धन्यादेशः-

(३३) उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः।८७।

प०वि०- उपसर्ग-प्रादुर्भ्याम् ५।२ अस्तिः १।१ (षष्ठ्यर्थे) यच्परः १।१ (षष्ठ्यर्थे)।

स०-उपसर्गश्च प्रादुश्च तौ उपसर्गप्रादुसौ, ताभ्याम्-उपसर्गप्रादुर्भ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। यश्च अच् च तौ यचौ, तौ परौ यस्मात् सः-यच्परः।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इण इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इण्भ्याम् उपसर्गप्रादुर्भ्यां यच्परस्यास्तेरपदान्तस्य सो मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये इणन्ताभ्याम् उपसर्गप्रादुभ्याम् उत्तरस्य यकार-परस्याच्परस्य चास्तेरपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-**(उपसर्गः) यकारपरः-**अभिष्यात्, निष्यात्, विष्यात्। **(प्रादुर्)** प्रादुःष्यात्। **(उपसर्गः) अच्परः-**अभिषन्ति, निषन्ति, विषन्ति। **(प्रादुर्)** प्रादुःषन्ति।

आर्यभाषाः अर्थ-(*संहितायाम्*) *सन्धि-विषय में* (*इण्भ्याम्*) *इणन्त* (*उपसर्ग-प्रादुर्भ्याम्*) *उपसर्ग और प्रादुर् शब्दों से परवर्ती* (*यच्परः*) *यकारपरक और अच्परक* (*अस्तेः*) *अस्ति इस शब्द के* (*अपदान्तस्य*) *अपदान्त* (*सः*) *सकार के स्थान में* (*मूर्धन्यः*) *मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-(उपसर्ग) यकारपरक-**अभिष्यात्।** वह अभितः होवे। **निष्यात्।** वह निम्नतः होवे। **विष्यात्।** वह विशेषतः होवे। (प्रादुर्) **प्रादुःष्यात्।** वह प्रकट होवे। (उपसर्ग) अच्परक-**अभिषन्ति।** वे अभितः होते हैं। **निषन्ति।** वे निम्नतः होते हैं। **विषन्ति।** वे विशेषतः होते हैं। (प्रादुर्) **प्रादुःषन्ति।** वह प्रकट होते हैं।*

सिद्धि-अभिष्यात्। *यहां अभि-उपसर्गपूर्वक 'अस् भुवि' (अदा०प०) धातु से 'लिङ्' प्रत्यय है। 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च' (३।४।१०३) से 'यासुट्' आगम है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय और उसका 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' (२।४।७२) से लुक् होता है। 'श्नसोरल्लोपः' (६।४।१११) से 'अस्' के अकार का लोप होता है। इस सूत्र से इणन्त 'अभि' उपसर्ग से उत्तरवर्ती तथा यकारपरक 'अस्' धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। ऐसे ही-**निष्यात्, विष्यात्।** लट् लकार में-**अभिषन्ति, निषन्ति, विशन्ति।***

मूर्धन्यादेशः--

(३४) सुविनिर्दुर्भ्यः सुपिसूतिसमाः।८८।

प०वि०-सु-वि-निर्-दुर्भ्यः ५।३ सुपि-सूति-समाः १।३ (षष्ठ्यर्थे)।

स०-सुश्च विश्च निस् च दुस् च ते-सुविनिर्दुसः, तेभ्यः-सुविनिर्दुभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। सुपिश्च सूतिश्च समश्च ते-सुपिसूतिसमाः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इण इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इण्भ्यः सुविनिर्दुर्भ्यः सुपिसूतिसमा अपदान्तस्य सो मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये इणन्तेभ्यः सुविनिर्दुर्भ्यः परेषां सुपिसूतिसमा इत्येतेषामपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-(सुपिः) सु-सुषुप्तः। **वि-**विषुप्तः। **निर्-**निःषुप्तः। **दुर्-**दुःषुप्तः। **(सूतिः) सु-**सुषूतिः। **वि-**विषूतिः। **निर्-**निःषूतिः।

दुर्-दुःषूतिः। (समः) सु-सुषमम्। वि-विषमम्। निर्-निःषमम्। दुर्-दुःषमम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इण्भ्यः) इणन्त (सुविनिर्दुर्भ्यः) सु, वि, निर्, दुर् इनसे परवर्ती (सुपिसूतिसमाः) सुपि, सूति, सम इन शब्दों के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-(सुपिः) सु-**सुषुप्तः**। सुख से सोया हुआ। वि-**विषुप्तः**। विशेषतः सोया हुआ। निर्-**निःषुप्तः**। निश्चय से सोया हुआ। दुर्-**दुःषुप्तः**। दुःख से सोया हुआ। (सूतिः) सु-**सुषूतिः**। सुख से प्रसव होना। वि-**विषूतिः**। विशेषतः प्रसव होना। निर्-**निःषूतिः**। निश्चित प्रसव होना। दुर्-**दुःषूतिः**। दुःख से प्रसव होना। (समः) सु-**सुषमम्**। सर्वथा समान। वि-**विषमम्**। विगत समान। निर्-**निःषमम्**। निश्चित समान। दुर्-**दुःषमम्**। कठिनता से समान।*

*सिद्धि-(१) **सुषुप्तः**। यहां सु-उपसर्गपूर्वक '**ञिष्वप् शये**' (अदा०प०) धातु से '**निष्ठा**' (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। '**वचिस्वपियजादीनां किति**' (६।१।१५) से 'स्वप्' को सम्प्रसारण और '**एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्**' (७।२।१०) से इडागम का प्रतिषेध है। इस सूत्र से इणन्त 'सु' से परवर्ती 'सुप्' के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। ऐसे ही-**विषुप्तः**, **निःषुप्तः**, **दुःषुप्तः**।*

*(२) **सुषूतिः**। यहां सु-उपसर्गपूर्वक '**षूङ् प्राणिगर्भविमोचने**' (अदा०आ०) धातु से '**स्त्रियां क्तिन्**' (३।३।९४) से 'क्तिन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इणन्त 'सु' से परवर्ती 'सूति' के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। ऐसे ही-**विषूतिः**। **निःषूतिः**। **दुःषूति**।*

*(३) **सुषमः**। यहां सु-उपसर्गपूर्वक '**षम अवैक्लव्ये**' (भ्वा०प०) धातु से '**नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः**' (३।१।१३४) से पचादिलक्षण 'अच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इणन्त 'सु' से परवर्ती 'सम' के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। ऐसे ही-**विषमम्**, **निःषमम्**, **दुःषमम्**।*

मूर्धन्यादेशः-

(३५) निनदीभ्यां स्नातेः कौशले।८६।

प०वि०-नि-नदीभ्याम् ५।२ स्नातेः ६।१ कौशले ७।१।

स०-निश्च नदी च ते निनद्यौ, ताभ्याम्-निनदीभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

तद्धितवृत्तिः-कुशलस्य भाव इति कौशलम्, तस्मिन्-कौशले। '**हायनान्तयुवादिभ्योऽण्**' (५।१।१३०) इति भावेऽर्थेऽण् प्रत्ययः।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इण इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इण्भ्यां निनदीभ्यां स्नातेरपदान्तस्य सो मूर्धन्यः, कौशले।

अर्थः-संहितायां विषये इणन्ताभ्यां निनदीभ्यां परस्य स्नातेरपदान्तस्य सकारस्य स्थाने मूर्धन्यादेशो भवति, कौशले गम्यमाने।

उदा०-**(स्नातिः) नि**-निष्णातः कटकरणे। निष्णातो रज्जुवर्तने। **नदी**-नद्यां स्नातीति नदीष्णः। नदीस्नाने कुशल इत्यर्थः। कवयस्तु कुशलमात्रे प्रयुञ्जते-विद्यानदीष्ण इति।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इण्भ्याम्) इणन्त (निनदीभ्याम्) नि, नदी इनसे परवर्ती (स्नातेः) स्ना धातु के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है (कौशले) यदि वहां कुशलता अर्थ की प्रतीति हो।*

*उदा०-**(स्नातिः) नि-निष्णातः कटकरणे।** चटाई बनाने में कुशल। **निष्णातो रज्जुवर्तने।** रस्सी बांटने में कुशल। **नदी-नदीष्णः।** नदी-स्नान में कुशल। कविजन कुशलमात्र अर्थ में इसका प्रयोग करते हैं-**विद्यानदीष्णः।** विद्या में कुशल।*

सिद्धि-निष्णातः। *यहां नि-उपसर्गपूर्वक **'ष्णा शौचे'** (अदा०प०) धातु से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। इस सूत्र से इणन्त 'नि' से परवर्ती 'स्ना' धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से नकार को टवर्ग णकार आदेश है। नदी-उपपद में-**नदीष्णः।** यहां **'सुपि स्थः'** (३।२।४) में योगविभाग से 'स्ना' धातु से 'क' प्रत्यय है।*

निपातनम्-

(३६) सूत्रं प्रतिष्णातम्।६०।

प०वि०-सूत्रम् १।१ प्रतिष्णातम् १।१।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इण इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां प्रतिष्णातं सूत्रमिति निपातनम्।

अर्थः-संहितायां विषये प्रतिष्णातमित्यत्रापदान्तस्य सकारस्य मूर्धन्यादेशो निपात्यते, सूत्रं चेत् तद् भवति।

उदा०-प्रतिष्णातं सूत्रम्। शुद्धं सूत्रमित्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (प्रतिष्णातम्) प्रतिष्णात इस पद में (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश निपातित है (सूत्रम्) जो प्रतिष्णात है यदि वह सूत हो।*

*उदा०-**प्रतिष्णातं सूत्रम्।** शुद्ध सूत।*

*सिद्धि-**प्रतिष्णातम्।** यहां प्रति-उपसर्गपूर्वक '**ष्णा शौचे**' (अदा०प०) धातु से '**निष्ठा**' (३।२।१०२) से '**क्त**' प्रत्यय है। इस सूत्र से इणन्त प्रति-उपसर्ग से परवर्ती 'स्ना' धातु के सकार को सूत्र अर्थ अभिधेय में मूर्धन्य आदेश निपातित है। '**ष्टुना ष्टुः**' (८।४।४१) से नकार को टवर्ग णकार आदेश होता है।*

निपातनम्–

(३७) कपिष्ठलो गोत्रे।६१।

प०वि०-कपिष्ठलः १।१ गोत्रे ७।१।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां गोत्रे च कपिष्ठलो निपातनम्।

अर्थः-संहितायां गोत्रे च विषये कपिष्ठल इत्यत्रापदान्तस्य सकारस्य मूर्धन्यादेशो निपात्यते।

उदा०-कपिष्ठलो नाम ऋषिः। तस्यापत्यम्-कापिष्ठलिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (गोत्रे) गोत्र विषय में (कपिष्ठलः) कपिष्ठल इस पद में (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश निपातित है।*

उदा०-कपिष्ठल नामक ऋषि की सन्तान कापिष्ठलि कहलाती है।

*सिद्धि-**कपिष्ठलः।** यहां कपि और स्थल शब्दों का 'उपमितं व्याघ्रादिभिर-सामान्यप्रयोगे' (२।१।५६) से कर्मधारय समास है-**कपिरिव स्थल इति कपिष्ठलः।** यह शब्द की व्युत्पत्तिमात्र है। अवयवार्थ नहीं है। इस सूत्र से इणन्त 'कपि' शब्द से परवर्ती 'स्थल' शब्द के सकार को गोत्र विषय में मूर्धन्य आदेश निपातित है। '**ष्टुना ष्टुः**' (८।४।४१) से थकार को टवर्ग ठकार आदेश है।*

*यहां लोकप्रसिद्ध गोत्र का ग्रहण किया जाता है, '**अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्**' (४।१।१६२) इस परिभाषिक गोत्रक नहीं। लोक में अपत्य-सन्तति के प्रवर्तक पुरुष '**गोत्र**' नाम से कहे जाते हैं।*

निपातनम्–

(३८) प्रष्ठोऽग्रगामिनि।६२।

प०वि०-प्रष्ठः १।१ अग्रगामिनि ७।१।

स०-अग्रे गन्तुं शीलं यस्य सः-अग्रगामी (उपपदतत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां प्रष्ठोऽग्रगामिनि निपातनम्।

अर्थः-संहितायां विषये प्रष्ठ इत्यत्राग्रगामिनि वाच्येऽपदान्तस्य सकारस्य मूर्धन्यादेशो निपात्यते।

उदा०-प्रतिष्ठते इति प्रष्ठोऽश्वः। अग्रतो गच्छतीत्यर्थः।

आर्यभाषाः अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (प्रष्ठः) प्रष्ठ इस पद में (अग्रगामिनि) अग्रगामी अर्थ अभिधेय में (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश निपातित है।

उदा०-प्रष्ठोऽश्वः। आगे चलनेवाला घोड़ा।

सिद्धि-प्रष्ठोऽश्वः। यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' (भ्वा०प०) धातु से 'सुपि स्थः' (३।२।४) से 'क' प्रत्यय है। 'आतो लोप इटि च' (६।४।६४) से धातु के आकार का लोप होता है। इस सूत्र से अनिणन्त प्र-उपसर्ग से परवर्ती 'स्था' धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश निपातित है। 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४१) से थकार को टवर्ग ठकार आदेश होता है।

निपातनम्–

(३९) वृक्षासनयोर्विष्टरः।६३।

प०वि०-वृक्ष-आसनयोः ७।२ विष्टरः १।१।

स०-वृक्षश्च आसनं च ते वृक्षासने, तयोः-वृक्षासनयोः (इतरेयोग-द्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां विष्टरो वृक्षासनयोर्निपातनम्।

अर्थः-संहितायां विषये विष्टर इत्यत्र वृक्षासनयोरभिधेययोरपदान्तस्य सकारस्य मूर्धन्यादेशो निपात्यते।

उदा०-विष्टरो वृक्षः। विष्टरम् आसनम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (विष्टरः) विष्टर इस पद में (वृक्षासनयोः) वृक्ष और आसन अर्थ अभिधेय में (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश निपातित है।*

*उदा०-**विष्टरः**। वृक्ष, आसन।*

*सिद्धि-**विष्टरः**। यहां वि-उपसर्गपूर्वक **स्तृञ् आच्छादने** (क्र्या०उ०) धातु से '**ऋदोरप्**' (३।३।५७) से 'अप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से इणन्त वि-उपसर्ग से परवर्ती 'स्तृ' धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश निपातित है। '**ष्टुना ष्टुः**' (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकार आदेश होता है।*

विशेषः *विष्टर शब्द वृक्ष और आसन अर्थ में रूढ है। इसकी यथासम्भव व्युत्पत्ति की जाती है। '**ओं विष्टरो विष्टरो विष्टरः प्रतिगृह्यताम्**' (पार०गृह्य० १।३।४)। यह उत्तम आसन है, आप ग्रहण कीजिये।*

निपातनम्-

(४०) छन्दोनाम्नि च।६४।

प०वि०-छन्दोनाम्नि ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-छन्दसो नाम इति छन्दोनाम, तस्मिन्-छन्दोनाम्नि (षष्ठी-तत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, विष्टर इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां छन्दोनाम्नि च विष्टरः=विष्टार इति निपातनम्।

अर्थः-संहितायां छन्दोनाम्नि च विषये विष्टरः=विष्टार इत्यत्रा-पदान्तस्य सकारस्य मूर्धन्यादेशो निपात्यते।

उदा०-विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः। विष्टारबृहती छन्दः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (छन्दोनाम्नि) छन्दोनाम विषय में (च) भी (विष्टरः) विष्टर=विष्टार इस पद में (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश निपातित है।*

*उदा०-**विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः**। विष्टार पंक्ति नामक एक वैदिक छन्द है। **विष्टारबृहती छन्दः**। विष्टार बृहती नामक एक वैदिक छन्द है।*

*सिद्धि-**विष्टारः**। यहां वि-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'स्तृ' धातु से '**छन्दोनाम्नि च**' (३।३।३४) से 'घञ्' प्रत्यय है। '**अचो ञ्णिति**' (७।२।११५) से 'स्तृ' धातु को वृद्धि होती है। इस सूत्र से इणन्त वि-उपसर्ग से परवर्ती 'स्तृ' धातु के सकार को छन्दोनाम*

विषय में मूर्धन्य आदेश निपातित है। 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकार आदेश होता है।

विशेषः *यहां 'विष्टर' शब्द की अनुवृत्ति में 'विष्टर' शब्द से 'विष्टार' शब्द का ग्रहण किया जाता है क्योंकि छन्दोनाम पूर्वोक्त घञ्-प्रत्ययान्त 'विष्टार' है; विष्टर नहीं। 'विष्टारपङ्क्तिरन्तः' (छन्दःशास्त्र ३।३)।*

मूर्धन्यादेशः–

(४१) गवियुधिभ्यां स्थिरः।६५।

प०वि०–गवि-युधिभ्याम् ५।२ स्थिरः १।१ (षष्ठ्यर्थे)।

स०–गविश्च युधिश्च तौ गवियुधी, ताभ्याम्-गवियुधिभ्याम् (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०–संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इण इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् इण्भ्यां गवियुधिभ्यां स्थिरोऽपदान्तस्य सो मूर्धन्यः।

अर्थः–संहितायां विषये इणन्ताभ्यां गवियुधिभ्यां परस्य स्थिर इत्येत-स्याऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०–**(गवि)** गविष्ठिरः। **(युधि)** युधिष्ठिरः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इण्भ्याम्) इणन्त (गवि-युधिभ्याम्) गवि, युधि इन शब्दों से परवर्ती (स्थिरः) स्थिर इस शब्द के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

उदा०–(गवि) गविष्ठिरः। संज्ञाविशेष है। (युधि) युधिष्ठिरः। संज्ञाविशेष है।

*सिद्धि-**गविष्ठिरः। गवि तिष्ठतीति गविष्ठिरः।** यहां गो और स्थिर शब्दों का सप्तमीतत्पुरुष समास है। 'हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम्' (६।३।८) में हलन्त शब्द से सप्तमी का अलुक् कहा गया है; गो शब्द अजन्त है। अतः यहां इस सूत्रोक्त निपातन से सप्तमी का अलुक् समझना चाहिये। 'युधि' शब्द से-**युधिष्ठिरः।** यहां 'हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम्' (६।३।८) से संज्ञाविषय में सप्तमी का अलुक् है।*

यहां 'सात्पदाद्योः' (८।३।१११) से पदादिलक्षण प्रतिषेध प्राप्त था, अतः मूर्धन्यादेश का विधान किया गया है।

मूर्धन्यादेशः–

(४२) विकुशमिपरिभ्यः स्थलम्।६६।

प०वि०–वि-कु-शमि-परिभ्यः ५।३ स्थलम् १।१ (षष्ठ्यर्थे)।

स०-विश्च कुश्च शमिश्च परिश्च ते विकुशमिपरय:, तेभ्य:-विकुशमिपरिभ्य: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-संहितायाम्, स:, अपदान्तस्य, मूर्धन्य:, इण इति चानुवर्तते।

अन्वय:-संहितायाम् इण्भ्यो विकुशमिपरिभ्य: स्थलमपदान्तस्य सो मूर्धन्य:।

अर्थ:-संहितायां विषये इणन्तेभ्यो विकुशमिपरिभ्य: परस्य स्थलमित्येतस्याऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-(स्थलम्) वि-विष्ठलम्। **कु**-कुष्ठलम्। **शमि**-शमिष्ठलम्। **परि**-परिष्ठलम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इण्भ्य:) इणन्त (विकुशमिपरिभ्य:) वि, कु, शमि, परि इन शब्दों से परवर्ती (स्थलम्) स्थल इस शब्द के (अपदान्तस्य) अपदान्त (स:) सकार के स्थान में (मूर्धन्य:) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-**(स्थलम्) वि-विष्ठलम्।** विशेष स्थल। कु-**कुष्ठलम्।** कुत्सित स्थल। **शमि-शमिष्ठलम्।** शमी वृक्षों का स्थल। **परि-परिष्ठलम्।** सर्वत: प्रसृत स्थल।*

*सिद्धि-(१) **विष्ठलम्।** यहां वि और स्थल शब्दों का '**कुगतिप्रादय:**' (२।२।१८) से प्रादि-तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से इणन्त वि-उपसर्ग से परवर्ती 'स्थल' शब्द के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। '**ष्टुना ष्टु:**' (८।४।४१) से थकार को टवर्ग ठकारादेश होता है। ऐसे ही-**कुष्ठलम्, परिष्ठलम्।***

*(२) **शमिष्ठलम्।** यहां शमी और स्थल शब्दों का '**षष्ठी**' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। '**ङ्यापो: संज्ञाछन्दसोर्बहुलम्**' (६।३।६१) से 'शमी' शब्द को संज्ञाविषय में ह्रस्व होता है। सूत्रपाठ में 'शमी' शब्द को ह्रस्व इसलिये पढ़ा है कि जहां 'शमी' शब्द को ह्रस्व हो वहीं मूर्धन्य आदेश होता है, अन्यत्र नहीं। बहुलवचन से दीर्घान्त में षत्व नहीं होता है।*

मूर्धन्यादेशः-

(४३) अम्बाम्बगोभूमिसव्यापद्वित्रिकुशेकुशङ्क्वङ्गुमञ्जिपुञ्जिपरमेबर्हिर्दिव्यग्निभ्यः स्थः।६७।

प०वि०-अम्बा-आम्ब-गो-भूमि-सव्य-अप-द्वि-त्रि-कु-शङ्कु- अङ्गु-मञ्जि-पुञ्जि-परमे-बर्हि:-दिवि-अग्निभ्य: ५।३ स्थ: १।१ (षष्ठ्यर्थे)।

स०-अम्बश्च आम्बश्च गौश्च भूमिश्च सव्यश्च अपश्च द्विश्च त्रिश्च कुश्च शेकुश्च शङ्कुश्च अङ्गुश्च मञ्जिश्च पुञ्जिश्च परमेश्च

बर्हिश्च दिविश्च अग्निश्च ते अम्ब०अग्नयः, तेभ्यः-अम्ब०अग्निभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् अम्बा०अग्निभ्यः स्थोऽपदान्तस्य सो मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषयेऽम्बाम्बगोभूमिसव्यापद्वित्रिकुशेङ्कुङ्गुमञ्जि-पुञ्जिपरमेबर्हिर्दिव्यग्निभ्य इणन्तेभ्यो विकुशमिपरिभ्यः परस्य स्थ इत्येतस्याऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, मूर्धन्यादेशो भवति। **उदाहरणम्**–

पूर्वपदम्	उत्तरपदम्	शब्दरूपम्	भाषार्थः
(१) अम्बा	स्थः	अम्बष्ठः	महावत।
(२) आम्बः	,,	आम्बष्ठः	लाहौर और उसके आस-पास का प्रदेश।
(३) गौः	,,	गोष्ठः	गोशाला।
(४) भूमिः	,,	भूमिष्ठः	भूमि पर रहनेवाला।
(५) सव्यः	,,	सव्येष्ठः	रथ पर बांई ओर बैठनेवाला सारथि।
(६) अपः	,,	अपष्ठः	दूर रहनेवाला।
(७) द्विः	,,	द्विष्ठः	दो पर आश्रित।
(८) त्रिः	,,	त्रिष्ठः	तीन पर आश्रित।
(९) कुः	,,	कुष्ठः	पापरोग (कोढ़)।
(१०) शेकुः	,,	शेकुष्ठः	समर्थ पर आश्रित।
(११) शङ्कुः	,,	शङ्कुष्ठः	खूंटे पर रहनेवाला (पशु)।
(१२) अङ्गुः	,,	अङ्गुष्ठः	अंगूठा।
(१३) मञ्जिः	,,	मञ्जिष्ठः	मजीठ।
(१४) पुञ्जिः	,,	पुञ्जिष्ठः	राशि पर अवस्थित।
(१५) परमे	,,	परमेष्ठः	परमधाम में अवस्थित (ईश्वर)।
(१६) बर्हिः	,,	बर्हिष्ठः	यज्ञ में बैठनेवाला।
(१७) दिवि	,,	दिविष्ठः	द्युलोक में अवस्थित।
(१८) अग्निः	,,	अग्निष्ठः	अग्नि देवता पर आश्रित।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अम्ब०अग्निभ्यः) अम्ब, आम्ब, गो, भूमि, सव्य, अप, द्वि, त्रि, कु, शेकु, शङ्कु, अङ्गु, मञ्जि, पुञ्जि, परमे, बर्हिः, दिवि, अग्नि इन शब्दों से परवर्ती (स्थः) स्थः इस शब्द के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

*सिद्धि-(१) **अम्बष्ठः।** यहां अम्ब सुबन्त उपपद 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' (भ्वा०प०) धातु से **'सुपि स्थः'** (३।१।४) से 'क' प्रत्यय है। **'आतो लोप इटि च'** (६।४।६४) से धातु के आकार का लोप होता है। इस सूत्र से अम्ब से परवर्ती 'स्थः' के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से थकार को टवर्ग ठकार आदेश है। ऐसे ही-**आम्बष्ठः** आदि।*

*(२) **गोष्ठः।** यहां गो-उपपद 'स्था' धातु से वा०- **'घञर्थे कविधानम्'** (३।३।५८) से 'क' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **सव्येष्ठः।** यहां सव्य-उपपद 'स्था' धातु से **'सुपि स्थः'** (३।२।४) से 'क' प्रत्यय है। **'हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम्'** (६।३।७) से सप्तमी का अलुक् होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**परमेष्ठः, दिविष्ठः, अग्निष्ठः।***

मूर्धन्यादेशः-

(४४) सुषामादिषु च।६८।

प०वि०-सुषामा-आदिषु ७।३ च अव्ययपदम्।

स०-सुषामा आदिर्येषां ते सुषामादयः, तेषु-सुषामादिषु (बहुव्रीहिः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां सुषामादिषु चापदान्तस्य सो मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये सुषामादिषु शब्देषु चाऽपदान्तस्य सकारस्य मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-शोभनं साम यस्य स सुषामा ब्राह्मणः। दुष्षामा। निष्षामा, इत्यादिकम्।

सुषामा। दुष्षामा। निष्षामा। निष्षेधः। दुष्षेधः। सुषन्धि। दुषन्धि। निषन्धि। सुष्ठु। दुष्ठु। गौरिषक्थः संज्ञायाम्। प्रतिष्णिका। जलाषाहम्। नौषेवणम्। दुदुभिषेवणम्। इति सुषामादयः।। अविहितलक्षणो मूर्धन्यः सुषामादिषु द्रष्टव्यः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (सुषामादिषु) सुषामा आदि शब्दों में (च) भी (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-**सुषामा ब्राह्मणः।** सामवेद के उत्तम-गान का ज्ञाता ब्राह्मण। **दुष्षामा।** सामवेद का निकृष्ट गान करनेवाला। **निष्षामा।** सामगान से अनभिज्ञ, इत्यादि।*

*सिद्धि-**सुषामा।** यहां सु और सामन् शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से 'सु' शब्द से 'सामन्' शब्द के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। दुर्-पूर्वपद में-**दुष्षामा।** यहां **'खरवसानयोर्विसर्जनीयः'** (८।३।१५) से रेफ को विसर्जनीय आदेश, **'वा शरि'** (८।३।१५) से इसे सकारादेश और **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से इसे षकारादेश है। निर्-पूर्वपद में-**निष्षामा।***

मूर्धन्यादेशविकल्पः--

(४५) एति संज्ञायामगात्।६६।

प०वि०-एति ७।१ संज्ञायाम् ७।१ अगात् ५।१।

स०-न ग इति अगः, तस्मात्-अगात् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इण्कोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां संज्ञायां चाऽगाद् इण्कोरपदान्तस्य स एति मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां संज्ञायां च विषये गकारवर्जिताद् इण्कोरुत्तरस्याऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, एकारे परतो मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-हरयः सेना यस्य सः-हरिषेणः। वारिषेणः। जानुषेणः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (संज्ञायाम्) संज्ञा-विषय में (अगात्) गकार से भिन्न (इण्कोः) इण् और कवर्ग से परवर्ती शब्द से (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (एति) एकार परे होने पर (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-**हरिषेणः।** हरि=वानरों की सेनावाला। **वारिषेणः।** जल-सेनावाला। **जानुषेणी।** घुटने के बल चलनेवाली सेनावाला। ये संज्ञाविशेष हैं।*

*सिद्धि-**हरिषेणः।** यहां हरि और सेना शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से गकार से भिन्न कवर्ग एवं इणन्त 'हरि' शब्द से परवर्ती तथा एकारपरक 'सेना' शब्द के सकार को संज्ञाविषय में मूर्धन्य आदेश होता है। **'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य'** (१।२।४८) से उपसर्जन 'सेना' शब्द को ह्रस्वादेश होता है। ऐसे ही-**वारिषेणः, जानुषेणी।***

मूर्धन्यादेशविकल्पः–

(४६) नक्षत्राद् वा।१००।

प०वि०–नक्षत्रात् ५।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०–संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इण्कोः, एति, संज्ञायाम्, अगादिति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां संज्ञायां चाऽगाद् इण्कोर्नक्षत्रादपदान्तस्य स एति मूर्धन्यः।

अर्थः–संहितायां संज्ञायां च विषये गकारवर्जिताद् इण्कोर्नक्षत्रवाचिनः शब्दात् परस्याऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, एकारे परतो विकल्पेन मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०–रोहिणीषेणः, रोहिणीसेनः। भरणीषेणः, भरणीसेनः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (संज्ञायाम्) संज्ञा-विषय में (अगात्) गकार से भिन्न (इण्कोः) इणन्त और कवर्गान्त (नक्षत्रात्) नक्षत्रवाची शब्द से उत्तरवर्ती (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (एति) एकार परे होने पर (वा) विकल्प से (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०–**रोहिणीषेणः**, रोहिणीसेनः। **भरणीषेणः**, **भरणीसेनः**। ये संज्ञाविशेष हैं।*

*सिद्धि–**रोहिणीषेणः**। यहां रोहिणी और सेना शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है–**रोहिणीव सेना यस्य स रोहिणीषेणः**। इस सूत्र से इणन्त नक्षत्रवाची 'रोहिणी' शब्द से उत्तरवर्ती सेना शब्द के एकारपरक सकार के स्थान में संज्ञाविषय में मूर्धन्य आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में मूर्धन्य आदेश नहीं है–**रोहिणीसेनः**। ऐसे ही–**भरणीषेणः**, **भरणीसेनः**।*

विशेषः *'एति संज्ञायामगात्' और 'नक्षत्राद् वा' ये दोनों काशिकावृत्ति में 'सुषामादिषु च' (८।३।९८) की वृत्ति में सुषामादिगण में गणसूत्र के रूप में पठित हैं। अष्टाध्यायी सूत्रपाठ में इनका सूत्र के रूप में पाठ मिलता है। अतः इनका तदनुरूप ही प्रवचन किया गया है।*

मूर्धन्यादेशः–

(४७) ह्रस्वात्तादौ तद्धिते।१०१।

प०वि०–ह्रस्वात् ५।१ तादौ ७।१ तद्धिते ७।१।

स०–तकार आदिर्यस्य स तादिः, तस्मिन्–तादौ (बहुव्रीहिः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, मूर्धन्यः, इण इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां ह्रस्वाद् इणः सस्तादौ तद्धिते मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये ह्रस्वाद् इणः परस्य सकारस्य स्थाने, तकारादौ तद्धिते परतो मूर्धन्यादेशो भवति। तरप्-तमप्-तय-तल्-तस्-त्यप्प्रत्ययाः प्रयोजयन्ति। उदाहरणम्-

शब्दः	प्रत्ययः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
सर्पिस्	तरप्	सर्पिष्टरम्	दोनों में अतिशायी सर्पि (घृत)।
यजुस्	,,	यजुष्टरम्	दोनों में अतिशायी यजुःपाठ।
सर्पिस्	,,	सर्पिष्टमम्	बहुतों में अतिशायी सर्पि (घृत)।
यजुस्	,,	यजुष्टमम्	बहुतों में अतिशायी यजुःपाठ।
चतुस्	तयप्	चतुष्टयम्	चार प्रकार का।
सर्पिस्	त्व	सर्पिष्ट्वम्	सर्पिभाव (घृतपन)।
यजुस्	,,	यजुष्ट्वम्	यजुर्भाव (यजुःपन)।
सर्पिस्	तल्	सर्पिष्टा	घृतता।
यजुस्	,,	यजुष्टा	यजुर्भाव।
सर्पिस्	तस्	सर्पिष्टः	घृत से।
यजुस्	,,	यजुष्टः	यजुः से।
आविस्	त्यप्	आविष्ट्यः	अभिव्यक्त होनेवाला।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (ह्रस्वात्) ह्रस्व (इणः) इण् वर्ण से परवर्ती (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (तादौ) तकारादि (तद्धिते) तद्धित-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है। तरप्, तमप्, तय, तल्, तस्, त्यप् प्रत्यय परे होने पर मूर्धन्य आदेश करना प्रयोजन है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-(१) ***सर्पिष्टरम्।*** *यहां 'सर्पिस्' शब्द से* ***'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ'*** *(५।३।५७) से 'तरप्' प्रत्यय है। इस सूत्र से ह्रस्व इण् वर्ण (इ) से परवर्ती 'सर्पिस्' शब्द के सकार को तकारादि तद्धित 'तरप्' प्रत्यय परे होने पर मूर्धन्य आदेश होता है। 'यजुस्' शब्द से-* ***यजुष्टरम्।***

'अपदान्तस्य मूर्धन्यः' (८।३।५५) से विहित अपदान्त के अधिकार में यहां पदान्त सकार को मूर्धन्य आदेश का विधान किया गया है।

*(२) **सर्पिष्टमम्।** यहां 'सर्पिस्' शब्द से **'अतिशायने तमबिष्ठनौ'** (५।३।५५) से 'तमप्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। 'यजुस्' शब्द से-**यजुष्टमम्।***

*(३) **चतुष्टयम्।** यहां 'चतुस्' शब्द से **'संख्याया अवयवे तयप्'** (५।२।४२) से 'तयप्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **सर्पिष्ट्वम्।** यहां 'सर्पिस्' शब्द से **'तस्य भावस्त्वतलौ'** (५।१।११९) से 'त्व' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। 'यजुस्' शब्द से-**यजुष्ट्वम्।***

*(५) **सर्पिष्टा।** यहां 'सर्पिस्' शब्द से पूर्ववत् 'तल्' प्रत्यय है। 'तलन्तः' (लिङ्गानुशासन १।१७) से तल् प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं। अतः **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय है। 'यजुस्' शब्द से-**यजुष्टा।***

*(६) **सर्पिष्टः।** यहां 'सर्पिस्' शब्द से **'अपादाने चाहीयरुहोः'** (५।४।४५) से 'तसि' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। 'यजुस्' शब्द से-**यजुष्टः।***

*(७) **आविष्ट्यः।** यहां 'आविस्' शब्द से **'अव्ययात् त्यप्'** (५।१।१०४) सूत्र पर पठित **'आविसश्छन्दसि'** इस वार्तिक से 'त्यप्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

मूर्धन्यादेशः—

(४८) निसस्तपतावनासेवने।१०२।

प०वि०-निसः ६।१ तपतौ ७।१ अनासेवने ७।१।

स०-आसेवनम्=पुनः पुनः करणम्। न आसेवनमिति अनासेवनम्, तस्मिन्-अनासेवने (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, मूर्धन्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां निसः सोऽनासेवने तपतौ मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये निसः सकारस्य स्थानेऽनासेवनेऽर्थे तपतौ परतो मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-निष्टपति सुवर्णं सुवर्णकारः। सकृदग्निं स्पर्शयतीत्यर्थः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (निसः) निस् इसके (सः) सकार के स्थान में (अनासेवने) बार-बार न तपाने अर्थ में (तपतौ) तप धातु के परे होने पर (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-(तप) **निष्टपति सुवर्णं सुवर्णकारः।** सुनार एक बार सुवर्ण को अग्नि-स्पर्श देता है।*

सिद्धि-निष्टपति। यहां निस्-उपसर्गपूर्वक 'तप सन्तापे' (भ्वा०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। इस सूत्र से अनासेवन-अर्थक 'तप' धातु के परे होने पर 'निस्' के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकारादेश है।

विशेषः 'अपदान्तस्य मूर्धन्यः' (८।३।५५) से विहित अपदान्त के अधिकार में यहां पदान्त सकार को मूर्धन्य आदेश का विधान किया गया है।

मूर्धन्यादेशः–

(४६) युष्मत्तत्ततक्षुःष्वन्तःपादम्।१०३।

प०वि०-युष्मत्-तत्-ततक्षुःषु ७।३ अन्तःपादम् अव्ययपदम्।

स०-युष्मच्च तच्च ततक्षुश्च ते युष्मत्तत्ततक्षुषः, तेषु-युष्मत्तत्ततक्षुःषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। पादस्य अन्त इति अन्तःपादम्। **'अव्ययं विभक्ति०'** (२।१।६) इत्यनेन विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावसमासः।

अनु०-संहितायाम्, सः, मूर्धन्यः, इण इत्यनुवर्तते। **'ह्रस्वात्तादौ तद्धिते'** (८।३।९९) इत्यस्मात् 'तादौ' इति चानुवर्तनीयम्।

अन्वयः-संहितायाम् इणः सस्तादिषु युष्मत्तत्ततक्षुःषु मूर्धन्यः, अन्तःपादम्।

अर्थः-संहितायां विषये इणः परस्य सकारस्य स्थाने, तकारादिषु युष्मत् तत्ततक्षुःषु परतो मूर्धन्यादेशो भवति, स चेत् सकारोऽन्तःपादं भवति।

उदा०-युष्मदादेशाः-त्वम्, त्वाम्, ते, तव। **(त्वम्)** अग्निष्ट्वं नामासीत्। **(त्वा)** अग्निष्ट्वा वर्धयामसि। **(ते)** अग्निष्टे विश्वमानय। **(तव)** अप्स्वग्ने सधिष्टव (ऋ०८।४३।९)। **(तत्)** अग्निष्टद्विश्वमापृणाति (ऋ० १०।२।४)। **(ततक्षुः)** द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः (ऋ० १०।३१।७)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इणः) इण् से परवर्ती (सः) सकार के स्थान में (तादिषु) तकारादि (युष्मत्तत्ततक्षुःषु) युष्मत्, तत्, ततक्षुः ये शब्द परे होने पर (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है (अन्तःपादम्) यदि वह सकार मन्त्र के-चरण के मध्य में हो।*

*उदा०-युष्मद्-आदेश-त्वम्, त्वाम्, ते, तव। (त्वम्) **अग्निष्ट्वं नामासीत्।** तू अग्नि नामक था। (त्वा) **अग्निष्ट्वा वर्धयामसि।** तुझ अग्नि को हम बढ़ाते हैं। (ते) **अग्निष्टे विश्वमानय।** अग्नि तेरे लिये सब सुख पहुंचाता है। (तव) **अप्स्वग्ने सधिष्टव** (ऋ०८।४३।९)। सधिः+तव=तेरे साथ। (तत्) **अग्निष्टद्विश्वमापृणाति** (ऋ० १०।२।४)। विद्वान् अग्नि उस समस्त व्रत को पूरा करता है। (ततक्षुः) **द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः** (ऋ० १०।३१।७)। वह कौन-सा वन वा वृक्ष है जिससे द्युलोक पृथिवीलोक को बनाया गया है।*

*सिद्धि-**अग्निष्ट्वं नामासीत्** आदि प्रयोगों में युष्मद्-आदेश त्व, त्वा, ते, तव और तत् तथा ततक्षुः शब्द परे होने पर इण् से परवर्ती सकार को मूर्धन्य आदेश स्पष्ट है। **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकारादेश है।*

मूर्धन्यादेशविकल्पः-

(५०) यजुष्येकेषाम्।१०४।

प०वि०-यजुषि ७।१ एकेषाम् ६।३।

अनु०-संहितायाम्, सः, मूर्धन्यः, इणः, तादौ, युष्मत्तत्ततक्षुःषु इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् यजुषि च इणः सस्तादिषु युष्मत्तत्ततक्षुःषु एकेषां मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां यजुषि च विषये इणः परस्य सकारस्य स्थाने, तकारादिषु युष्मत्तत्ततक्षुःषु परत एकेषामाचार्याणां मतेन मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-युष्मदादेशाः-(त्वम्) अर्चिभिष्ट्वम् (यजु० १२।३२)। अर्चिभिस्त्वम्। **(ते)** अग्निष्टेऽग्रम्, अग्निस्तेऽग्रम् (तै०सं० ३।५।६।२)। **(तत्)** अग्निष्टत् (तै०सं० १।१।१४।५)। अग्निस्तत् (तै०सं० ३।२।५।४)। **(ततक्षुः)** अर्चिभिष्टतक्षुः। अर्चिभिस्ततक्षुः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (यजुषि) यजुर्वेद विषय में (इणः) इण् वर्ण से परवर्ती (सः) सकार के स्थान में (तादिषु) तकारादि (युष्मत्तत्ततक्षुःषु) युष्मत्, तत्, ततक्षुः इन शब्दों के परे होने पर (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-युष्मद्-आदेश-(त्वम्) **अर्चिभिष्ट्वम्** (यजु० १२।३२)। **अर्चिभिस्त्वम्।** तू किरणों के द्वारा। (ते) **अग्निष्टेऽग्रम्, अग्निस्तेऽग्रम्** (तै०सं० ३।५।६।२)। अग्नि तेरे आगे है। (तत्) **अग्निष्टत्** (तै०सं० १।१।१४।५)। **अग्निस्तत्** (तै०सं० ३।२।५।४)।*

अग्नि, वह। (ततक्षुः) अर्चिभिष्टतक्षुः। अर्चिभिस्ततक्षुः। उन्होंने किरणों के द्वारा सूक्ष्म किया (छीला)।

सिद्धि-अर्चिभिष्ट्वम्, अर्चिभिस्त्वम् *इत्यादि पदों में इण् वर्ण से परवर्ती सकार को पाणिनि मुनि के मत में मूर्धन्य आदेश है और अन्य आचार्यों के मत में मूर्धन्य आदेश नहीं है।*

मूर्धन्यादेशविकल्पः-

(५१) स्तुतस्तोमयोश्छन्दसि।१०५।

प०वि०-स्तुत-स्तोमयोः ६।२ छन्दसि ७।१।

स०-स्तुतं च स्तोमश्च तौ स्तुतस्तोमौ, तयोः-स्तुतस्तोमयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, एकेषामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां छन्दसि च इणः स्तुतस्तोमयोरपदान्तस्य स एकेषां मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां छन्दसि च विषये इणः परयोः स्तुतस्तोमयोरपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, एकेषामाचार्याणां मतेन मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-युष्मदादेशाः-(स्तुतम्) त्रिभिष्टुतस्य, त्रिभिस्तुतस्य (मै०सं० १।३।३९)। नृभिष्टुतस्य, नृभिस्तुतस्य। **(स्तोमः)** गोष्टोमं षोडशिनम् (द्र०-तै०सं० ७।४।११।१), गोस्तोमं षोडशिनम् (तु०-आ०श्रौ० ९।५।९)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संहितायाम्) सन्धि और (छन्दसि) वेद विषय में (इणः) इण् वर्ण से परवर्ती (स्तुतस्तोमयोः) स्तुत, स्तोम इन शब्दों के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (एकेषाम्) कुछ एक अचार्यों के मत में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-**युष्मद्-आदेश-(स्तुतम्) त्रिभिष्टुतस्य, त्रिभिस्तुतस्य** (मै०सं० १।३।३९)। तीन पुरुषों के द्वारा स्तुति किये गये का। **नृभिष्टुतस्य, नृभिस्तुतस्य**। नरों के द्वारा स्तुति किये गये का। **(स्तोमः) गोष्टोमं षोडशिनम्** (द्र०-तै०सं० ७।४।११।१), **गोस्तोमं षोडशिनम्** (तु०-आ०श्रौ० ९।५।९)। गोस्तोमम्=गौओं के समूह को।*

सिद्धि-त्रिभिष्टुतस्य, त्रिभिस्तुतस्य *आदि प्रयोगों में इण् से परवर्ती सकार को पाणिनि मुनि के मत में मूर्धन्य आदेश है और अन्य आचार्यों के मत में मूर्धन्य आदेश नहीं है।*

मूर्धन्यादेशविकल्पः–

(५२) पूर्वपदात्।१०६।

वि०–पूर्वपदात् ५।१।

स०–पूर्वं च तत् पदं चेति पूर्वपदम्, तस्मात्-पूर्वपदात् (कर्मधारय-तत्पुरुषः)।

अनु०–संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, एकेषाम्, छन्दसीति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां छन्दसि च पूर्वपदाद् इणोऽपदान्तस्य स एकेषां मूर्धन्यः।

अर्थः–संहितायां छन्दसि च विषये पूर्वपदस्थादिणः परस्याऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, एकेषामाचार्याणां मतेन मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०–द्विषन्धिः, द्विसन्धिः। त्रिषन्धिः (मै०सं० ३।८।२)। त्रिसन्धिः। मधुष्ठालम् (मै०सं० १।११।७) मधुस्थालम्। मधुष्ठानम्, मधुस्थानम्। द्विषाहस्रं चिन्वीत (तै०सं० ५।६।८।२) द्विसाहस्रं चिन्वीत।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (छन्दसि) वेद विषय में (पूर्वपदात्) पूर्वपद में अवस्थित (इणः) इण् वर्ण से परवर्ती (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (एकेषाम्) कुछ एक अचार्यों के मत में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०–**द्विषन्धिः, द्विसन्धिः।** दो जनों की सन्धि (मेल)। **त्रिषन्धिः** (मै०सं० ३।८।२)। **त्रिसन्धिः।** तीन जनों की सन्धि। **मधुष्ठालम्** (मै०सं० १।११।७) **मधुस्थालम्।** मिठाई का थाल। **मधुष्ठानम्, मधुस्थानम्।** मिष्टान्न भण्डार। **द्विषाहस्रं चिन्वीत** (तै०सं० ५।६।८।२) **द्विसाहस्रं चिन्वीत।** दो सहस्र कार्षापणों में होनेवाले कार्य का चयन करे।*

*सिद्धि-(१) **द्विषन्धिः, द्विसन्धिः** आदि पदों में पूर्वपद में विद्यमान इण् वर्ण से परवर्ती सकार को पाणिनि मुनि के मत में मूर्धन्य आदेश है, अन्य आचार्यों के मत में मूर्धन्य आदेश नहीं है।*

*(२) **द्विषाहस्रम्।** '**द्वयोः सहस्रयोर्भवं द्विसाहस्रम्।** यहां 'तत्र भवः' (४।३।५३) से भव-अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है और '**तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च**' (२।१।५१) से तद्धितार्थ में द्विगुतत्पुरुष समास है। '**संख्यायाः संवत्सरसंख्यस्य च**' (७।३।१५) से उत्तरपद को वृद्धि होती है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

मूर्धन्यादेशः–

(५३) सुञः ।१०७।

वि०–सुञः ६ ।१ ।

अनु०–संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, छन्दसि, पूर्वपदादिति चानुवर्तते ।

अन्वयः–संहितायां छन्दसि च पूर्वपदाद् इणोऽपदान्तस्य सुञः सो मूर्धन्यः ।

अर्थः–संहितायां छन्दसि च विषये पूर्वपदस्थादिणः परस्य सुञोऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, मूर्धन्यादेशो भवति ।

उदा०–(**सुञ्**) अभी षु णः सखीनाम् (ऋ० ४ ।३१ ।३) । ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये (ऋ० १ ।३६ ।१३) ।

आर्यभाषाः *अर्थ–(संहितायाम्) सन्धि और (छन्दसि) वेद विषय में (पूर्वपदात्) पूर्वपद में अवस्थित (इणः) इण् वर्ण से परवर्ती (सुञः) सुञ् शब्द के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है ।*

*उदा०–(सुञ्) **अभी षु णः सखीनाम्** (ऋ० ४ ।३१ ।३) । इन्द्र हमारे मित्रों का प्रत्यक्षतः उत्तम रक्षक है । **ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये** (ऋ० १ ।३६ ।१३) । अग्नि हमारी रक्षा के लिये ऊर्ध्व दिशा में अवस्थित है ।*

सिद्धि–अभी षु णः सखीनाम् । *यहां 'अभि' शब्द के इण् वर्ण से परवर्ती 'सु' निपात के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है । 'इकः सुञि' (६ ।३ ।१३४) से 'अभि' के इकार को दीर्घ और '**नश्च धातुस्थोरुषुभ्यः**' (८ ।४ ।२७) से 'नः' को णत्व होता है । ऐसे ही–**ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये** (उ सु नः) ।*

मूर्धन्यादेशः–

(५४) सनोतेरनः ।१०८।

प०वि०–सनोतेः ६ ।१ अनः ६ ।१ ।

स०–अविद्यमानो नकारो यस्य सः–अन्, तस्य–अनः (बहुव्रीहिः) ।

अनु०–संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, छन्दसि, पूर्वपदादिति चानुवर्तते ।

अन्वयः-संहितायां छन्दसि च पूर्वपदादिणोऽनः सनोतेरपदान्तस्य सो मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां छन्दसि च विषये पूर्वपदस्थादिणः परस्याऽनकारान्तस्य सनोतेरपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-**(सनोतिः)** गोषाः (ऋ० ९।२।१०)। नृषाः (ऋ० ९।२।१०)।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संहितायाम्) सन्धि और (छन्दसि) वेद विषय में (पूर्वपदात्) पूर्वपद में अवस्थित (इणः) इण् वर्ण से परवर्ती (अनः) अनकारान्त (सनोतेः) सन् धातु के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-(सनोतिः) **गोषाः** (ऋ० ९।२।१०)। गोदान करनेवाला पवमान सोम। **नृषाः** (ऋ० ९।२।१०)। नरदान करनेवाला पवमान सोम।*

सिद्धि-गोषाः। *यहां गो-उपपद **'षणु दाने'** (त०उ०) धातु से **'जनसनखनक्रमगमो विट्'** (३।२।६७) से 'विट्' प्रत्यय है। 'विट्' का सर्वहारी लोप होता है। **'विड्वनोरनुनासिकस्यात्'** (६।४।४१) से 'सन्' धातु के नकार को आकारादेश होता है। इस सूत्र से पूर्वपद 'गो' शब्द के इण् (ओ) वर्ण से परवर्ती अनकारान्त 'सन्' धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। नृ-उपपद में-**नृषाः।***

मूर्धन्यादेशः-

(५५) सहेः पृतनर्ताभ्यां च।१०६।

प०वि०-सहेः ६।१ पृतना-ऋताभ्याम् ५।२ च अव्ययपदम्।

स०-पृतना च ऋतं च ते पृतनार्ते, ताभ्याम्-पृतनर्ताभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, छन्दसि, पूर्वपदादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां छन्दसि च विषये पूर्वपदाभ्यां पृतनार्ताभ्यां च सहेरपदान्तस्य सो मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां छन्दसि च विषये पूर्वपदाभ्यां पृतनार्ताभ्यां परस्य च सहेरपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, मूर्धन्यादेशो भवति।

उदा०-**(पृतना)** पृतनाषाहम् (६।७२।२)। **(ऋतम्)** ऋताषाहम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (छन्दसि) वेद विषय में (पूर्वपदाभ्याम्) पूर्वपद रूप (पृतनार्ताभ्याम्) पृतना, ऋत इन शब्दों से परवर्ती (सहेः) सह धातु के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश होता है।*

*उदा०-**(पृतना) पृतनाषाहम्** (६।७२।२)। पृतना=सेना को सहन करनेवाले बल को। **(ऋत) ऋताषाहम्।** सत्य व्यवहार को सहन करनेवाले राजा को।*

सिद्धि-पृतनाषाहम्। *यहां पृतना-उपपद '**षह मर्षणे**' (भ्वा०आ०) धातु से 'छन्दसि सहः' (३।२।६३) से 'ण्वि' प्रत्यय है। 'ण्वि' का सर्वहारी लोप होता है। '**अत उपधायाः**' (७।२।११६) से उपधावृद्धि है। इस सूत्र से पृतना-पूर्वपद से परवर्ती 'सह' धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। ऋत-पूर्वपद में-**ऋताषाहम्।** '**अन्येषामपि दृश्यते**' (६।३।१३७) से पूर्वपद को दीर्घ होता है।*

मूर्धन्यादेशः-

(५६) न रपरसृपिसृजिस्पृशिस्पृहिसवनादीनाम्।११०।

प०वि०- न अव्ययपदम्, रपर-सृपि-सृजि-स्पृशि-स्पृहि-सवना-दीनाम् ६।३।

स०-रः परो यस्मात् स रपरः। सवनमादिर्येषां ते सवनादयः। रपरश्च सृपिश्च सृजिश्च स्पृशिश्च स्पृहिश्च सवनादयश्च ते रपरसृपिसृजि-स्पृशिस्पृहिसवनादयः, तेषाम्-रपरसृपिसृजिस्पृशिस्पृहिसवनादीनाम् (बहुव्रीहि-गर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इण इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इणो रपरसृपिसृजिस्पृशिस्पृहिसवनादीनाम-पदान्तस्य सो मूर्धन्यः।

अर्थः-संहितायां विषये इण उत्तरस्य रेफपरस्य सकारस्य रपरसृपि-सृजिस्पृशिस्पृहिसवनादीनां चाऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने मूर्धन्यादेशो भवति।

उदाहरणम्-

शब्दः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
(१) रपरः	विस्रंसिकायाः काण्डाभ्यां जुहोति (मै०सं० २।६।१)।	विस्रंसिका के काण्डों से हवन करता है।
	विस्रब्धः कथयति।	वह विश्वासपूर्वक कहता है।

शब्द:	शब्दरूपम्	भाषार्थ:
(२) सृपि:	पुरा क्रूरस्य विसृप:। (यजु० १।२८)।	क्रूर के विसर्पण से पूर्व।
(३) सृजि:	वाचो विसर्जनात्।	वाणी के विसर्जन से।
(४) स्पृशि:	दिविस्पृशम् (ऋ० १।१४२।८)	द्युलोक में स्पर्श करनेवाले को।
(५) स्पृहि:	निस्पृहं कथयति।	निष्कामभाव से कहता है।
(६) सवनादय:	सवने सवने।	प्रत्येक सदन में।
	सूते सूते।	प्रत्येक प्रसव में।
	सामे सामे।	प्रत्येक साम में।

सवने सवने। सूते सूते। सोमे सोमे। सवनमुखे सवनमुखे। किंस्यतीति किंसंकिंसम्। अनुसवनमनुसवनम्। गोसनिंगोसनिम्। अश्वसनिमश्वसनिम्।

क्वचिदेवं गणपाठ:-सवने सवने। अनुसवनेऽनुसवने। संज्ञायां बृहस्पतिसव:। शकुनिसवनम्। सोमे सोमे। सूते सूते। संवत्सरे संवत्सरे। किंसंकिंसम्। बिसंबिसम्। मुसलंमुसलम्। गोसनिमश्वसनिम्। सवनादि:।। (काशिका)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इण:) इण् वर्ण से उत्तर (रपर०) रेफ जिससे परे है उस सकार के स्थान में तथा सृपि, सृजि, स्पृशि, स्पृहि और सवनादिगण में पठित शब्दों के (स:) सकार के स्थान में (मूर्धन्य:) मूर्धन्य आदेश (न) नहीं होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

*(१) **विस्रंसिका।** यहां वि-उपसर्गपूर्वक **'स्रंसु अध:पतने'** (भ्वा०आ०) धातु से **'संज्ञायाम्'** (३।३।१०९) से 'ण्वुल्' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय और **'प्रत्ययस्थात्कात्०'** (७।३।४४) से इकारादेश है। इस सूत्र से 'वि' के 'इण्' वर्ण से परवर्ती रेफपरक 'स्रंसिका' के अपदान्त (पदादि) सकार को मूर्धन्य आदेश का प्रतिषेध होता है।*

*(२) **विस्रब्ध:।** यहां वि-उपसर्गपूर्वक **'स्रम्भु विश्वासे'** (भ्वा०आ०) से **'निष्ठा'** (३।२।१०२) से 'क्त' प्रत्यय है। **'अनिदितां हल उपधाया: क्ङिति'** (६।४।२४) से अनुनासिक का लोप, **'झषस्तथोर्धोऽध:'** (८।२।४०) से तकार को धकार, **'झलां जश्***

झशि' (८।४।५३) से भकार को जश् बकार आदेश है। 'यस्य विभाषा' (७।२।१५) से इडागम का प्रतिषेध है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।

*(३) **विसृपः।** यहां वि-उपसर्गपूर्वक 'सृप्लृ गतौ' (भ्वा०प०) धातु से 'सृपितृदोः कसुन्' (३।४।१७) से 'कसुन्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **विसर्जनम्।** यहां वि-उपसर्गपूर्वक 'सृज विसर्गे' (तु०प०) धातु से 'ल्युट् च' (३।३।११५) से भाव अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*(५) **दिविस्पृशम्।** यहां 'स्पृश संस्पर्शे' (तु०प०) धातु से 'स्पृशोऽनुदके क्विन्' (३।२।५८) से 'क्विन्' प्रत्यय है। 'क्विन्' प्रत्यय का सर्वहारी लोप होता है। स्पृश्+अम्=स्पृशम्। 'दिविस्पृशम्' यहां 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' (६।३।१२) से सप्तमी-विभक्ति का अलुक् होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*(६) **निस्पृहम्।** यहां नि-उपसर्गपूर्वक 'स्पृह ईप्सायाम्' (चु०प०) धातु से प्रथम 'सत्यापपाश०' (३।१।२५) से चौरादिक 'णिच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् 'णिजन्त स्पृहि' धातु से 'एरच्' (३।३।५६) से 'अच्' प्रत्यय और 'णेरनिटि' (६।४।५१) से 'णिच्' का लोप होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*(७) **सवने सवने।** यहां 'षुञ् अभिषवे' (स्वा०उ०) धातु से 'ल्युट् च' (३।३।११५) से भाव अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय है। सप्तमी विभक्ति में-**सवने।** 'नित्यवीप्सयोः' (८।१।४) से वीप्सा अर्थ में द्वित्व होकर-**सवने सवने।** सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*(८) **सूते सूते।** यहां 'षूङ् प्राणिगर्भविमोचने' (अदा०आ०) धातु से 'क्त' प्रत्यय है। पूर्ववत् सप्तमी विभक्ति और वीप्सा अर्थ में द्विर्वचन है।*

*(९) **सोमे सोमे।** यहां 'षुञ् अभिषवे' (स्वा०उ०) धातु से 'अर्तिस्तुसु०नीभ्यो मन्' (उणा० १।१४०) से 'मन्' प्रत्यय है। पूर्ववत् सप्तमी विभक्ति और वीप्सा अर्थ में द्विर्वचन है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

मूर्धन्यादेशप्रतिषेधः-

(५७) सात्पदाद्योः।१११।

प०वि०-सात्-पदाद्योः ६।२।

स०-पदस्यादिरिति पदादिः। साच्च पदादिश्च तौ सात्पदादी, तयोः-सात्पदाद्योः (षष्ठीगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, मूर्धन्यः, इणः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इणः सात्पदाद्योः सो मूर्धन्यो न।

अर्थः-संहितायाम् विषये इणः परस्य साद् इत्येतस्य पदादेश्च सकारस्य स्थाने, मूर्धन्यादेशो न भवति।

उदा०-(**सात्**) अग्निसात्, दधिसात्, मधुसात्। (**पदादिः**) दधि सिञ्चति। मधु सिञ्चति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) संहिता विषय में (इणः) इण् वर्ण से परवर्ती (सात्पदाद्योः) सात् और पद के आदिम सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश (न) नहीं होता है।*

उदा०-(सात्) ***अग्निसाद् भवति शस्त्रम्।*** *शस्त्र अग्निरूप होता है।* ***दधिसात्।*** *दधिरूप।* ***मधुसात्।*** *मधुरूप। (पदादि)* ***दधि सिञ्चति।*** *वह ओदन आदि में दधि (दही) को सींचता है।* ***मधु सिञ्चति।*** *वह औषध आदि में मधु (शहद) को सींचता है।*

सिद्धि-(१) ***अग्निसात्।*** *यहां 'अग्नि' शब्द से* ***'विभाषा साति कार्त्स्न्ये'*** *(५।४।५२) से 'साति' प्रत्यय है।* ***'आदेशप्रत्यययोः'*** *(८।३।५९) से प्रत्ययलक्षण मूर्धन्य आदेश प्राप्त था। अतः इस सूत्र से उसका प्रतिषेध किया गया है। ऐसे ही-* ***दधिसात्, मधुसात्।***

(२) ***दधि सिञ्चति।*** *यहां* ***'षिच क्षरणे'*** *(तु०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है।* ***'शे मुचादीनाम्'*** *(७।१।५९) से 'नुम्' आगम होता है।* ***'धात्वादेः षः सः'*** *(६।१।६३) से धातु के आदिम षकार को सकारादेश है। अतः* ***'आदेशप्रत्यययोः'*** *(५।४।५९) से सकार को आदेशलक्षण मूर्धन्य आदेश प्राप्त था। अतः इस सूत्र से उसका प्रतिषेध किया गया है। ऐसे ही-* ***मधु सिञ्चति।***

मूर्धन्यादेशप्रतिषेधः-

(५८) सिचो यङि।११२।

प०वि०-सिचः ६।१ यङि ७।१।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इणः सिचोऽपदान्तस्य सो यङि मूर्धन्यो न।

अर्थः-संहितायां विषये इणः परस्य सिचोऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, यङि परतो मूर्धन्यादेशो न भवति।

उदा०-(**सिच्**) स परिसेसिच्यते। सोऽभिसेसिच्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इणः) इण् वर्ण से परवर्ती (सिचः) सिच् धातु के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (यङि) यङ् प्रत्यय परे होने पर (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(सिच्) स **परिसेसिच्यते**। वह पुनः-पुनः परितः सींचता है। **सोऽभिसेसिच्यते**। वह पुनः-पुनः अभितः सींचता है।*

***सिद्धि-परिसेसिच्यते**। यहां परि-उपसर्गपूर्वक **'षिच क्षरणे'** (तु०प०) धातु से **'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्'** (३।१।२२) से पौनःपुन्य अर्थ में 'यङ्' प्रत्यय है। **'सन्यङोः'** (६।१।९) से धातु को द्वित्व और **'गुणो यङ्लुकोः'** (७।४।८२) से अभ्यास को गुण होता है। परि-उपसर्ग से परवर्ती 'सिच्' धातु के सकार को **'उपसर्गात् सुनोति०'** (८।३।६५) से मूर्धन्य आदेश प्राप्त था, अतः इस सूत्र से उसका प्रतिषेध किया गया है। अभि-उपसर्गपूर्वक से-**अभिसेसिच्यते**। **'सेसिच्यते'** पद में **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) से आदेशलक्षण मूर्धन्य आदेश प्राप्त था। इस सूत्र से उसका प्रतिषेध होता है।*

मूर्धन्यादेशप्रतिषेधः-

(५६) सेधतेर्गतौ।११३।

प०वि०-सेधतेः ६।१ गतौ ७।१।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इणो गतौ सेधतेरपदान्तस्य सो यङि मूर्धन्यो न।

अर्थः-संहितायां विषये इणः परस्य गत्यर्थे वर्तमानस्य सेधतेरपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, मूर्धन्यादेशो न भवति।

उदा०-स परिसेधयति गाः। सोऽभिसेधयति गाः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इणः) इण् वर्ण से परवर्ती (गतौ) गति-अर्थ में विद्यमान (सेधतेः) सिध् धातु के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-स **परिसेधयति** गाः। वह गौओं को परितः चलाता है, घुमाता है। **सोऽभिसेधयति** गाः। वह गौओं को अभितः चलाता है।*

***सिद्धि-परिसेधयति**। यहां परि-उपसर्गपूर्वक **'षिधु गत्याम्'** (भ्वा०प०) धातु से प्रथम **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् णिजन्त 'सेधि' धातु से 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। इस सूत्र से 'परि' के इण् वर्ण से परवर्ती 'सेधति' धातु के अपदान्त (पदादि) सकार को मूर्धन्य आदेश का प्रतिषेध होता है। ऐसे ही अभि-उपसर्ग में-**अभिसेधयति**।*

***विशेषः** यहां गत्यर्थक सेधति धातु के कथन से **'षिधू शास्त्रे माङ्गल्ये च'** (भ्वा०प०) धातु का ग्रहण नहीं होता है।*

निपातनम्–

(६०) प्रतिस्तब्धनिस्तब्धौ च।११४।

प०वि०–प्रतिस्तब्ध-निस्तब्धौ १।२ च अव्ययपदम्।

स०–प्रतिस्तब्धश्च निस्तब्धश्च तौ प्रतिस्तब्धनिस्तब्धौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः– प्रतिस्तब्धनिस्तब्धौ च निपातनम्।

अर्थः–संहितायां विषये प्रतिस्तब्धनिस्तब्धौ इत्यत्र मूर्धन्याभावो निपात्यते। इणः परस्याऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, मूर्धन्यादेशो न भवतीत्यर्थः।

उदा०–प्रतिस्तब्धः। निस्तब्धः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (प्रतिस्तब्धनिस्तब्धौ) प्रतिस्तब्ध और निस्तब्ध इन शब्दों में भी (च) मूर्धन्य आदेश का अभाव निपातित है, अर्थात् (इणः) इण् वर्ण से परवर्ती (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश (न) नहीं होता है।*

उदा०– ***प्रतिस्तब्धः।*** *प्रतिबन्धित किया हुआ।* ***निस्तब्धः।*** *निबन्धित किया हुआ।*

*सिद्धि–**प्रतिस्तब्धः।** यहां प्रति-उपसर्गपूर्वक **'स्तम्भु प्रतिबन्धे:'** (प०सौत्रधातु०) से 'क्त' प्रत्यय है। **'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति'** (६।४।२४) से अनुनासिक का लोप, **'झषस्तथोर्धोऽधः'** (८।२।४०) से तकार को धकार आदेश और **'झलां जश् झशि'** ८।४।५३) से भकार को जश् बकारादेश होता है। **'स्तम्भेः'** (८।३।६७) से सकार को मूर्धन्य आदेश प्राप्त था। अतः इस सूत्र में निपातन किया गया है। नि-उपसर्ग में-**निस्तब्धः।***

मूर्धन्यादेशप्रतिषेधः–

(६१) सोढः।११५।

वि०–सोढः ६।१।

अनु०–संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् इणः सोढोऽपदान्तस्य सो मूर्धन्यो न।

अर्थः–संहितायां विषये इणः परस्य सोढोऽपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, मूर्धन्यादेशो न भवति।

उदा०-(**सोढ्**) परिसोढः। परिसोढुम्। परिसोढव्यम्।

अत्र सोढ इति वचनेन सहधातोः सोढ्रूपं गृह्यते।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इणः) इण् वर्ण से परवर्ती (सोढः) 'सह' धातु के 'सोढ्' रूप के (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**(सोढ्) परिसोढः।** सर्वतः सहन किया हुआ। **परिसोढुम्।** सर्वतः सहन करने केलिये। **परिसोढव्यम्।** सर्वतः सहन करना चाहिये।*

*सिद्धि-**(सोढ्) परिसोढः।** यहां परि-उपसर्गपूर्वक **'षह मर्षणे'** (भ्वा०आ०) **धातु** से 'क्त' प्रत्यय है। 'हो ढः' (८।२।३१) से हकार को ढकार, **'झषस्तथोर्धोऽधः'** (८।२।४०) से तकार को धकार, **'ष्टुना ष्टुः'** ८।४।४१) से धकार को टवर्ग ढकार और 'ढो ढे लोपः' (८।३।१३) से पूर्ववर्ती ढकार का लोप होता है। **'सहिवहोरोदवर्णस्य'** (६।३।१२) से 'सह' के 'अ' वर्ण को ओकार आदेश होता है। इस सूत्र से 'परि' के इण् वर्ण से परवर्ती 'सह्' धातु के 'सोढ्' रूपस्थ सकार को मूर्धन्य आदेश का प्रतिषेध होता है। **'परिनिविभ्यः सेवसित०'** (८।३।७०) से **मूर्धन्य** आदेश प्राप्त था। अतः इस सूत्र से उसका प्रतिषेध किया गया है। तुमुन् **प्रत्यय** में-**परिसोढुम्।** तव्यत् प्रत्यय में-**परिसोढव्यम्।***

मूर्धन्यादेशप्रतिषेधः-

(६२) स्तम्भुसिवुसहां चङि।११६।

वि०-स्तम्भु-सिवु-सहाम् ६।३ चङि ७।१।

स०-स्तम्भुश्च सिवुश्च सह् च ते स्तम्भुसिवुसहः, तेषाम्-स्तम्भुसिवुसहाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इणः स्तम्भुसिवुसहामपदान्तस्य सश्चङि मूर्धन्यो न।

अर्थः-संहितायां विषये इणः परेषां स्तम्भुसिवुसहां धातूनामपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, चङि परतो मूर्धन्यादेशो न भवति।

उदा०-(**स्तम्भु**) स पर्यतस्तम्भत्। सोऽभ्यतस्तम्भत्। (**सिवु**) स पर्यसीषिवत्। स न्यसीषिवत्। (**सह**) स पर्यसीषहत्। स व्यसीषहत्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इणः) इण् वर्ण से परवर्ती (स्तम्भुसिवुसहाम्) स्तम्भु, सिवु, सह इन धातुओं (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (चङि) चङ् प्रत्यय परे होने पर (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश (न) नहीं होता है।*

उदा०-(स्तम्भु) **स पर्यतस्तम्भत्।** *उसने सर्वतः प्रतिबन्धित कराया।* **सोऽभ्यतस्तम्भत्।** *उसने अभितः प्रतिबन्धित कराया। (सिवु)* **स पर्यसीषिवत्।** *उसने सर्वतः सिलाई कराई।* **स न्यसीषिवत्।** *उसने निम्नतः सिलाई कराई। (सह)* **स पर्यसीषहत्।** *उसने सर्वतः मर्षण कराया।* **स व्यसीषहत्।** *उसने विशेषतः मर्षण कराया। मर्षण=तितिक्षा-सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों को सहन करना।*

सिद्धि-(१) **पर्यतस्तम्भत्।** *यहां परि-उपसर्गपूर्वक* **'स्तम्भु प्रतिबन्धे'** *(प०सौत्रधातु) से प्रथम* **'हेतुमति च'** *(३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् णिजन्त 'स्तम्भि' धातु से 'लुङ्' (३।२।११०) से 'लुङ्' प्रत्यय है।* **'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्'** *(३।१।४८) से 'च्लि' के स्थान में 'चङ्' आदेश है। 'चङि' (६।१।११) से धातु को द्विर्वचन होता है। इस सूत्र से 'परि' के इण् वर्ण से परवर्ती 'स्तम्भ' धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश का प्रतिषेध होता है। यहां* **'स्तम्भेः'** *(८।३।६७) से मूर्धन्य आदेश प्राप्त था। उपसर्ग से उत्तर अभ्यास के सकार को* **'स्थादिष्वभ्यासेन चाभ्यासस्य'** *(८।३।६४) से और 'सवादीनां वाऽड्व्यवायेऽपि' (८।३।७१) से अट् के व्यवधान में भी मूर्धन्य आदेश प्राप्त था। अतः इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है।* **'आदेशप्रत्यययोः'** *(८।३।५९) से मूर्धन्य होता ही है। अभि-उपसर्गपूर्वक में-* **अभ्यतस्तम्भत्।**

(२) **पर्यसीषिवत्।** *यहां परि-उपसर्गपूर्वक* **'षिवु तन्तुसन्ताने'** *(दि०प०) धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय और तत्पश्चात् 'लुङ्' प्रत्यय है। यहां* **'परिनिविभ्यः सेवसित०'** *(८।३।७०) से मूर्धन्य आदेश प्राप्त था। अतः इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है। 'णिच्' प्रत्यय परे होने पर* **'पुगन्तलघूपधस्य च'** *(७।३।८६) से धातु को लघूपधलक्षण गुण होकर* **'णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः'** *(७।४।१) से ह्रस्वादेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। नि-उपसर्ग में-* **न्यसीषिवत्।**

(३) **पर्यसीषहत्।** *यहां परि-उपसर्गपूर्वक* **'षह मर्षणे'** *(भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'णिच्' प्रत्यय और तत्पश्चात् 'लुङ्' प्रत्यय है। यहां* **'परिनिविभ्यः सेवसित०'** *(८।३।७०) से मूर्धन्य आदेश प्राप्त था अतः इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है।* **'सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे'** *(७।४।९३) से सन्वद्भाव होकर* **'सन्यतः'** *(७।४।७९) से 'सह' धातु के अभ्यास को इकारादेश और उसे* **'दीर्घो लघोः'** *(७।४।९४) से दीर्घ होता है। वि-उपसर्ग में-* **व्यसीषहत्।**

मूर्धन्यादेशप्रतिषेधः–

(६३) सुनोतेः स्यसनोः ।११७।

वि०-सुनोतेः ६।१ स्य-सनोः ७।२।

स०-स्यश्च सँश्च तौ स्यसनौ, तयोः-स्यसनोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् इणः सुनोतेरपदान्तस्य सः स्यसनोर्मूर्धन्यो न।

अर्थः-संहितायां विषये इणः परस्य सुनोतेर्धातोरपदान्तस्य सकारस्य स्थाने, स्यसनोः परतो मूर्धन्यादेशो न भवति।

उदा०-(सुनोतिः) स्यः-सोऽभिसोष्यति। स परिसोष्यति (लृट्)। सोऽभ्यसोष्यत् स पर्यसोष्यत् (लृङ्)। **सन्**-अभिसुसूः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इणः) इण् वर्ण से परवर्ती (सुनोतेः) सुञ् धातु (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (स्यसनोः) स्य और सन् प्रत्यय परे होने पर (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(सुञ्) स्य-**सोऽभिसोष्यति।** वह निचोड़कर रस निकालेगा। **स परिसोष्यति।** वह सर्वतः निचोड़कर रस निकालेगा (लृट्)। **सोऽभ्यसोष्यत्।** यदि वह निचोड़कर रस निकालता। **स पर्यसोष्यत्।** (लृङ्)। यदि वह सर्वतः निचोड़कर रस निकालता। **सन्-अभिसुसूः।** निचोड़कर रस निकालने का इच्छुक।*

सिद्धि-(१) सोऽभिसोष्यति। *यहां अभि-उपसर्गपूर्वक **'षुञ् अभिषवे'** (स्वा०उ०) धातु से 'लृट् शेषे च' (३।३।१३) से 'लृट्' प्रत्यय है। **'स्यतासी लृलुटोः'** (३।१।३३) से 'स्य' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से 'अभि' के इण् वर्ण से परवर्ती 'सुञ्' धातु के सकार को 'स्य' प्रत्यय परे होने पर मूर्धन्य आदेश का प्रतिषेध होता है। यहां **'उपसर्गात् सुनोति०'** (८।३।८५) से मूर्धन्य आदेश प्राप्त था। अतः इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है। परि-उपसर्ग में-**परिसोष्यति।** लृङ् लकार में-**अभ्यसोष्यत्, पर्यसोष्यत्।***

*(२) **अभिसुसूः।** अभि+सू+सन्। अभि+सू+स। अभि+सू-सू+स। अभि+सू+सू+ष। अभि+सुसूष+क्विप्। अभिसुसूष+०। अभिसुषूस्। अभिसुसूर्। अभिसुसूः।*

*यहां अभि-उपसर्गपूर्वक 'षुञ् अभिषवे' (स्वा०उ०) धातु से **'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'** (३।१।७) से 'सन्' प्रत्यय **है। 'सन्यङोः'** (६।१।९) से धातु को द्विर्वचन होता है। तत्पश्चात् सनन्त 'अभिसुसूष' **धातु से 'क्विप् च'** (३।२।७६) से 'क्विप्' प्रत्यय है। **'अतो लोपः'** (६।४।४८) से **'सन्' के अकार** का लोप और*

'क्विप्' का सर्वहारी लोप होता है। 'ससजुषो रुः' (८।३।६६) से रुत्व करते समय 'सन्' के षकार को असिद्ध मानकर रुत्व और 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' (८।३।१५) से अवसानलक्षण रेफ को विसर्जनीय आदेश होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।

विशेषः *'अभिसुसूषति' इस सनन्त पद में* ***'स्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासात्'*** *(८।३।६१) के नियम से मूर्धन्य आदेश का प्रतिषेध सिद्ध है, अतः* ***'अभिसुसूः'*** *यह क्विबन्त उदाहरण दिया गया है।*

मूर्धन्यादेशप्रतिषेधः–

(६४) सदेः परस्य लिटि।११८।

प०वि०–सदेः ६।१ परस्य ६।१ लिटि ७।१।

अनु०–संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् इणः सदेरपदान्तस्य परस्य सो लिटि मूर्धन्यो न।

अर्थः–संहितायां विषये इण उत्तरस्य सदेरपदान्तस्य परस्य सकारस्य स्थाने, लिटि परतो मूर्धन्यादेशो न भवति।

उदा०–(सद्) **अभि**–अभिषसाद। **परि**–परिषसाद। **नि**–निषसाद। **वि**–विषसाद।

आर्यभाषाः अर्थ–*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (इणः) इण् वर्ण से उत्तरवर्ती (सदेः) सद् धातु के (अपदान्तस्य) अपदान्त (परस्य) परवर्ती (सः) सकार के स्थान में (लिटि) लिट् प्रत्यय परे होने पर (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश (न) नहीं होता है।*

उदा०–(सद्) ***अभि–अभिषसाद।*** *वह अभितः गया।* ***परि–परिषसाद।*** *वह सर्वतः गया।* ***नि–निषसाद।*** *वह बैठ गया।* ***वि–विषसाद।*** *वह खिन्न हुआ।*

सिद्धि–अभिषसाद। *यहां अभि-उपसर्गपूर्वक* ***'षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु'*** *(भ्वा०प०) धातु से 'लिट्' प्रत्यय है।* ***'लिटि धातोरनभ्यासस्य'*** *(६।१।८) से 'सद्' धातु को द्विर्वचन होता है। इस सूत्र से 'सद्' धातु के अभ्यास से परवर्ती सकार को मूर्धन्य आदेश का प्रतिषेध होता है।* ***'स्थादिष्वभ्यासेन चाभ्यासस्य'*** *(८।३।६४) के वचन से अभ्यास के व्यवधान में भी* ***'सदिरप्रतेः'*** *(८।३।६६) से परवर्ती सकार को मूर्धन्य आदेश प्राप्त था। अतः यह प्रतिषेध किया गया है। 'सद्' धातु के पूर्ववर्ती सकार को* ***'सदिरप्रतेः'*** *(८।३।६६) से मूर्धन्य होता है क्योंकि पर-सकार का प्रतिषेध किया है। परि-उपसर्ग में–**परिषसाद।*** *नि-उपसर्ग में–**निषसाद।*** *वि-उपसर्ग में–**विषसाद।***

विशेषः *इस सूत्र पर 'सदो लिटि प्रतिषेधे चाञ्जेरुपसङ्ख्यानम्' यह वार्तिक पाठ है। काशिकावृत्ति में सूत्रपाठ में वार्तिक का मिश्रण करके* ***'सदिस्वञ्ज्योः परस्य लिटि'*** *यह सूत्रपाठ स्वीकार किया है।* ***'सदेः परस्य लिटि'*** *यह महाभाष्य-पाठ है।*

मूर्धन्यादेशप्रतिषेधः-

(६५) निव्यभिभ्योऽड्व्यवाये वा छन्दसि।११६।

प०वि०-नि-वि-अभिभ्यः ५।३ अड्व्यवाये ७।१ वा अव्ययपदम्, छन्दसि ७।१।

स०-निश्च विश्व अभिश्च ते निव्यभयः, तेभ्यः-निव्यभिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। अटा व्यवाय इति अड्व्यवायः, तस्मिन्-अड्व्यवाये (तृतीयातत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, सः, अपदान्तस्य, मूर्धन्यः, इणः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् छन्दसि च इणभ्यो निव्यभिभ्योऽपदान्तस्य सोऽड्व्यवाये वा मूर्धन्यो न।

अर्थः-संहितायां छन्दसि च विषये इणन्तेभ्यो निव्यभिभ्य उपसर्गेभ्यः परस्यापदान्तस्य सकारस्य स्थानेऽड्व्यवाये विकल्पेन मूर्धन्यादेशो न भवति।

उदा०-(नि) न्यषीदत् पिता नः, न्यसीदत्। न्यष्टौत्, न्यस्तौत्। **(वि)** व्यषीदत् पिता नः, व्यसीदत्। **(अभि)** अभ्यषीदत् पिता नः, अभ्यसीदत्। अभ्यष्टौत्, अभ्यस्तौत्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (छन्दसि) वेद विषय में (इणभ्यः) इणन्त (निव्यभिभ्यः) नि, वि, अभि इन उपसर्गों से परवर्ती (अपदान्तस्य) अपदान्त (सः) सकार के स्थान में (अडव्यवाये) अट्-आगम के व्यवधान में (वा) विकल्प से (मूर्धन्यः) मूर्धन्य आदेश (न) नहीं होता है।*

उदा०-(नि) ***न्यषीदत् पिता नः, न्यसीदत्।*** *हमारे पिताजी बैठ गये।* ***न्यष्टौत्, न्यस्तौत्।*** *उसने निम्न स्तुति की। (वि)* ***व्यषीदत् पिता नः, व्यसीदत्।*** *हमारे पिताजी खिन्न (उदास) हो गये। (अभि)* ***अभ्यषीदत् पिता नः, अभ्यसीदत्।*** *हमारे पिताजी अभितः चले गये।* ***अभ्यष्टौत्, अभ्यस्तौत्।*** *उसने अभितः (सम्मुख) स्तुति की।*

*सिद्धि-**न्यषीदत्**। यहां नि-उपसर्गपूर्वक 'षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु' (भ्वा०प०) धातु से 'लङ्' प्रत्यय है। 'कर्तरि शप्' (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय है। 'पाघ्राध्मा०' (७।३।७८) से 'सद्' के स्थान में 'सीद' आदेश होता है। इस सूत्र से नि-उपसर्ग के इण् वर्ण से परवर्ती तथा अट्-आगम के व्यवधान में सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। यहां 'सदिरप्रतेः' (८।३।६६) से नित्य मूर्धन्य आदेश प्राप्त था। अतः इस सूत्र से यह विकल्प विधान किया गया है। विकल्प-पक्ष में-**न्यसीदत्**।*

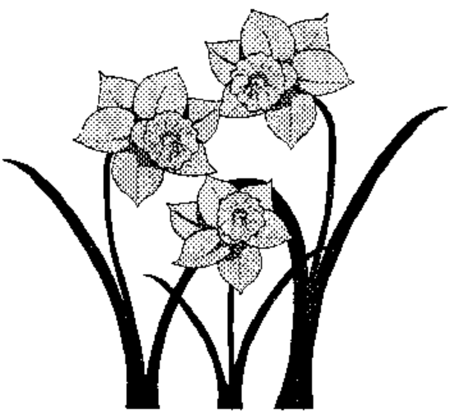
*वि-उपसर्ग में-**व्यषीदत्, व्यसीदत्**। अभि-उपसर्ग में-**अभ्यषीदत्, अभ्यसीदत्**। 'ष्टुञ् स्तुतौ' (अदा०उ०) धातु से-**न्यष्टौत्, न्यस्तौत्**। यहां 'उपसर्गात् सुनोति०' (८।३।६५) से नित्य मूर्धन्य आदेश प्राप्त था। अतः इस सूत्र से यह विकल्प-विधान किया गया है।*

*अभि-उपसर्ग में-**अभ्यष्टौत्, अभ्यस्तौत्**। यहां 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' (२।४।७२) से 'शप्' का लुक् और 'उतो वृद्धिर्लुकि हलि' (७।३।८९) से वृद्धि होती है।*

{इति मूर्धन्यादेशप्रकरणम्}

।। इति पूर्वसंहिताप्रकरणं समाप्तम्।।

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने अष्टमाध्यायस्य तृतीयः पादः समाप्तः।।



अष्टमाध्यायस्य चतुर्थः पादः

उत्तरसंहिताप्रकरणम्

तत्र

{णकारादेशप्रकरणम्}

णकारादेशः–

(१) रषाभ्यां नो णः समानपदे।१।

प०वि०–रषाभ्याम् ५।२ नः ६।१ णः १।१ समानपदे ७।१।

स०–रश्च षश्च तौ रषौ, ताभ्याम्-रषाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। समानं च तत् पदं चेति समानपदम्, तस्मिन्-समानपदे (कर्मधारयतत्पुरुषः)।

अनु०–संहितायामित्यनुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् समानपदे रषाभ्यां नो णः।

अर्थः–संहितायां विषये समानपदे वर्तमानाभ्यां रेफषकाराभ्यां परस्य नकारस्य स्थाने णकारादेशो भवति।

उदा०–(**रेफः**) आस्तीर्णम्, विस्तीर्णम्। (**षकारः**) कुष्णाति, पुष्णाति, मुष्णाति।

वा०–रषाभ्यां णत्व ऋकारग्रहणम्-तिसृणाम्। चतसृणाम्। मातृणाम्। पितृणाम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (समानपदे) एक ही पद में विद्यमान (रषाभ्याम्) रेफ और सकार से परवर्ती (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-(रेफ) **आस्तीर्णम्।** ढकना। **विस्तीर्णम्।** फैलाना। (षकार) **कुष्णाति।** वह बाहर निकलता है। **पुष्णाति।** वह पुष्टि करता है। **मुष्णाति।** वह चोरी करता है।*

*वा०-**रषाभ्यां णत्व ऋकारग्रहणम्**-इस वार्तिक से ऋ-वर्ण से परवर्ती नकार को भी णकार आदेश होता है। जैसे-**तिसृणाम्।** तीन स्त्रियों का। **चतसृणाम्।** चार स्त्रियों का। **मातृणाम्।** माताओं का। **पितृणाम्।** पितरों का।*

*सिद्धि-(१) **आस्तीर्णम्।** यहां आङ्-उपसर्गपूर्वक 'स्तॄञ् आच्छादने' (क्र्या०उ०) धातु से **'नपुंसके भावे क्तः'** (३।३।११४) स भाव अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। **'ॠत इद्धातोः'** (७।१।१००) से 'ॠकार' को ईकार आदेश और इसे 'उरण् रपरः' (१।१।५१) से रपरत्व तथा 'हलि च' (८।२।७७) से दीर्घ होता है। **'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः'** (८।२।४२) से निष्ठा-तकार को नकार आदेश होता है। इस सूत्र से रेफ से परवर्ती नकार को णकार आदेश होता है। वि-उपसर्ग में-**विस्तीर्णम्।***

*(२) **कुष्णाति।** यहां 'कुश निष्कर्षे' (क्र्या०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। **'क्र्यादिभ्यः श्ना'** (३।१।८१) से 'श्ना' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से धातुस्थ षकार से परवर्ती 'श्ना' के नकार को णकार आदेश होता है। **'पुष पुष्टौ'** (क्र्या०प०) धातु से-**पुष्णाति।** **'मुष स्तेये'** (क्र्या०प०) धातु से-**मुष्णाति।***

*(३) **तिसृणाम्।** यहां 'तिसृ' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'आम्' प्रत्यय है। **'ह्रस्वनद्यापो नुट्'** (७।१।५४) से ह्रस्वलक्षण 'नुट्' आगम है। इस सूत्र से 'तिसृ' के ऋकार से परवर्ती 'नाम्' के नकार को **'वा०-रषाभ्यां णत्व ऋकारग्रहणम्'** से णकार आदेश होता है। 'चतसृ' शब्द से-**चतसृणाम्।** मातृ शब्द से-**मातॄणाम्।** **'नामि'** (६।४।३) से अङ्ग को दीर्घ होता है। 'पितृ' शब्द से-**पितॄणाम्।***

विशेषः *कई आचार्य ऋकार में रेफश्रुति मानकर नकार को णकार आदेश करते हैं।*

णकारादेशः-

(२) अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि।२।

प०वि०-अट्-कु-पु-आङ्-नुम्व्यवाये ७।१ अपि अव्ययपदम्।

स०-अट् च कुश्च पुश्च आङ् च नुम् च ते-अट्कुप्वाङ्नुमः, तैः-अट्कुप्वाङ्नुम्भिः, तैर्व्यवाय इति अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायः, तस्मिन्-अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवाये (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भिततृतीयातत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, समानपदे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां समानपदे रषाभ्यां नोऽट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि णः।

अर्थः-संहितायां विषये समानपदे वर्तमानाभ्यां रेफषकाराभ्यां परस्य नकारस्य स्थानेऽट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि णकारादेशो भवति।

उदा०-अड्व्यवायः-करणम्, हरणम्, किरिणा, गिरिणा, कुरुणा, गुरुणा। **कवर्गव्यवायः-**अर्केण, मूर्खेण, गर्गेण, अर्घेण। **पवर्गव्यवायः-**दर्पेण,

रेफेण, गर्भेण, चर्मणा, वर्मणा। **आङ्व्यवायः**-पर्याणद्धम्, निराणद्धम्। **नुम्व्यवायः**-बृंहणम्, बृंहणीयम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (समानपदे) एक ही पद में विद्यमान (रषाभ्याम्) रेफ और सकार से परवर्ती (नः) नकार के स्थान में (अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवाये) अट्, कवर्ग, पवर्ग, आङ्, नुम् इनके व्यवधान में (अपि) भी (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-अट्-**व्यवाय-करणम्।** करना। **हरणम्।** चोरी करना। **किरिणा।** बाण से। **गिरिणा।** पहाड़ से। **कुरुणा।** कुरु से। **गुरुणा।** गुरु से। **कवर्ग-व्यवाय-अर्केण।** सूर्य से। **मूर्खेण।** मूर्ख से। **गर्गेण।** गर्ग से। **अर्घेण।** मुख-प्रक्षालन के जल से। **पवर्ग-व्यवाय-दर्पेण।** अभिमान से। **रेफेण।** रेफ से। **गर्भेण।** गर्भ से। **चर्मणा।** चाम से। **वर्मणा।** कवच से। **आङ्-व्यवाय-पर्याणद्धम्।** सर्वत आबद्ध करना। **निराणद्धम्।** बन्धन से रहित। **नुम्व्यवाय-बृंहणम्।** वीर्यवर्धक। **बृंहणीयम्।** बढ़ाने योग्य।*

*अट्-अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र। **कु**-क, ख, ग, घ, ङ। **पु**-प, फ, ब, भ, म। **आङ्**-आ। **नुम्**- ं।*

सिद्धि-(१) करणम्। *यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'ल्युट् च' (३।३।११५) से भाव अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय है। '**युवोरनाकौ**' (७।१।१) से 'यु' को 'अन' आदेश है। '**सार्वधातुकार्धधातुकयोः**' (७।३।८४) से 'कृ' धातु को गुण (अर्) होता है। इस सूत्र से रेफ से परवर्ती अट्-व्यवायी (अ) नकार को णकार आदेश होता है। 'हृञ् हरणे' (भ्वा०उ०) धातु से-**हरणम्।***

*(२) **किरिणा।** यहां 'किरि' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'टा' प्रत्यय है। '**आङो नाऽस्त्रियाम्**' (७।३।१२०) से 'टा' को 'ना' आदेश है। इस सूत्र से रेफ से परवर्ती अट्-व्यवायी (इ) नकार को णकार आदेश होता है। गिरि शब्द से-**गिरिणा।** कुरु शब्द से-**कुरुणा।** गुरु शब्द से-**गुरुणा।***

*(३) **अर्केण।** यहां 'अर्क' शब्द से पूर्ववत् 'टा' प्रत्यय है। '**टाङसिङसामिनात्स्याः**' (७।१।१२) से 'टा' को 'इन' आदेश है। इस सूत्र से रेफ से परवर्ती कवर्ग-व्यवायी (क) और अट्-व्यवायी (ए) नकार को णकार आदेश होता है। मूर्ख शब्द से-**मूर्खेण।** गर्ग शब्द से-**गर्गेण।** अर्घ शब्द से-**अर्घेण।***

*पगवर्ग और अट्-व्यवाय में दर्प शब्द से-**दर्पेण।** रेफ शब्द से-**रेफेण।** गर्भ शब्द से-**गर्भेण।** चर्मन् शब्द से-**चर्मणा।** वर्मन् शब्द से-**वर्मणा।***

*(४) **पर्याणद्धम्।** यहां परि और आङ् उपसर्गपूर्वक '**णह बन्धने**' (दि०उ०) धातु से '**नपुंसके भावे क्तः**' (३।३।११४) से भाव अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। '**नहो धः**' (८।२।३४) से हकार को धकार, '**झषस्तथोर्धोऽधः**' (८।२।४०) से तकार को धकार*

*और 'झलां जश् झशि' (८।४।५३) से पूर्ववर्ती धकार को जश् दकार आदेश है। इस सूत्र से परि के रेफ से परवर्ती अट्-व्यवायी (इ) और आङ्व्यवायी 'नह्' के नकार को णकार आदेश होता है। निर् और आङ् उपसर्ग में-**निराणद्धम्**।*

*(५) **बृंहणम्।** यहां **'बृहि वृद्धौ'** (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'ल्युट्' प्रत्यय और 'यु' को 'अन' आदेश है। **'इदितो नुम् धातोः'** (७।१।५८) से धातु को 'नुम्' आगम है। **'नश्चापदान्तस्य झलि'** (८।३।२४) से नकार को अनुस्वार आदेश है। इस सूत्र से ऋकार में रेफश्रुति को मानकर नुम् (अनुस्वार) व्यवाय तथा अट्-व्यवाय (ह्+अ) में 'अन' के नकार को णकार आदेश होता है। अनीयर् प्रत्यय में-**बृंहणीयम्**।*

णकारादेशः—

(३) पूर्वपदात् संज्ञायामगः।३।

प०वि०-पूर्वपदात् ५।१ संज्ञायाम् ७।१ अगः ५।१।

स०-पूर्वं च तत् पदं चेति पूर्वपदम्, तस्मात्-पूर्वपदात् (कर्मधारय-तत्पुरुषः)। न विद्यते गकारो यस्मिन् सः-अग्, तस्मात्-अगः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, ण इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां संज्ञायां चाऽगः पूर्वपदाद् रेफात् षकाराच्च नो णः।

अर्थः-संहितायां संज्ञायां च विषये गकारवर्जितं यत् पूर्वपदं तत्स्थाद् रेफात् षकाराच्च परस्य नकारस्य स्थाने णकारादेशो भवति।

उदा०-द्रुणसः। वार्ध्रीणसः। खरणसः। शूर्पणखा। अग इति किम्-ऋगयनम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में (अगः) गकार से रहित (पूर्वपदात्) जो पूर्वपद है उसके (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-द्रुणसः। **द्रुरिव दीर्घा नासिका यस्य स द्रुणसः।** द्रु अर्थात् वृक्ष की शाखा के समान लम्बी नासिकावाला पुरुष। **वार्ध्रीणसः। वार्ध्रीव नासिका यस्य स वार्ध्रीणसः।** वह बधिया बकरा जिसका रंग सफेद हो और कान इतने लम्बे हों कि पानी पीते समय पानी से छू जायें। एक पक्षी का नाम। गैंडा (शब्दार्थकौस्तुभ)। **खरणसः। खर इव नासिका यस्य स खरणसः।** गधे के समान नासिकावाला पुरुष। **शूर्पणखा। शूर्पमिव नखानि यस्याः सा शूर्पणखा।** छाज के समान बड़े नाखूनों वाली नारी। रामायण में वर्णित रावण की बहिन।*

*सिद्धि-(१) **द्रुणसः** । यहां द्रु और नासिका शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। **'अञ्नासिकायाः संज्ञायां नसं चास्थूलात्'** (५।४।११८) से समासान्त 'अच्' प्रत्यय और 'नासिका' के स्थान में 'नस' आदेश है। इस सूत्र से 'द्रु' पूर्वपद में अवस्थित रेफ से परवर्ती तथा अट्-व्यवायी (उ) 'नस' उत्तरपद के नकार को णकार आदेश होता है। ऐसे ही-**वार्ध्रीणसः, खरणसः** ।*

*(२) **शूर्पणखा** । यहां शूर्प और नख शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। **'नखमुखात् संज्ञायाम्'** (४।१।५८) से संज्ञा विषय में 'ङीष्' प्रत्यय का प्रतिषेध है। अतः स्त्रीलिङ्ग में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। इस सूत्र से 'शूर्प' पद में अवस्थित रेफ से परवर्ती तथा पवर्ग और अट्व्यवायी (अ) 'नख' उत्तरपद के नकार को णकार आदेश होता है।*

*यहां 'अगः' से गकारवान् पूर्वपद का इसलिये प्रतिषेध किया गया है कि यहां णकार आदेश न हो-**ऋगयनम्** ।*

***'रषाभ्यां नो णः समानपदे'** (८।४।१) तथा **'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि'** (८।४।२) से समानपद=एक पद में ही णकारादेश प्राप्त था। अतः इस सूत्र से पूर्वपद से परवर्ती उत्तरपद के नकार को णकार आदेश विधान किया गया है।*

णकारादेशः—

(४) वनं पुरगामिश्रकासिध्रकाशारिकाकोटराग्रेभ्यः ।४।

प०वि०-वनम् १।१ (षष्ठ्यर्थे), पुरगा-मिश्रका-सिध्रका-शारिका-कोटरा-अग्रेभ्यः ५।३।

स०-पुरगाश्च मिश्रकाश्च सिध्रकाश्च शारिकाश्च कोटराश्च अग्रे च ते-पुरगामिश्रकासिध्रकाशारिकाकोटराग्रयः, तेभ्यः-पुरगामिश्रकासिध्रकाशारिकाकोटराग्रेभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, पूर्वपदात्, संज्ञायामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां संज्ञायां च पुरगामिश्रकासिध्रकाशारिकाकोटराग्रेभ्यो वनं नो णः।

अर्थः-संहितायां संज्ञायां च विषये पुरगामिश्रकासिध्रकाशारिकाकोटराग्रेभ्यः पूर्वपदेभ्यः परस्य वनमित्येतस्य नकारस्य स्थाने णकारादेशो भवति।

उदा०-(**पुरगा**) पुरगावणम्। (**मिश्रका**) मिश्रकावणम्। (**सिध्रका**) सिध्रकावणम्। (**शारिका**) शारिकावणम्। (**कोटरा**) कोटरावणम्। (**अग्रे**) अग्रेवणम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में (पुरगा०) पुरगा, मिश्रका, सिध्रका, शारिका, कोटरा, अग्रे इन (पूर्वपदेभ्यः) पूर्वपदों से उत्तरवर्ती (वनम्) वन शब्द के (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है।*

उदा०-(पुरगा) ***पुरगावणम्।*** *(मिश्रका)* ***मिश्रकावणम्।*** *(सिध्रका)* ***सिध्रकावणम्।*** *(शारिका)* ***शारिकावणम्।*** *(कोटरा)* ***कोटरावणम्।*** *(अग्रे)* ***अग्रेवणम्।*** *ये वनविशेषों की संज्ञायें। इनकी व्याख्या अष्टाध्यायी-प्रवचन के तृतीय भाग की अनुभूमिका (पृ० ११) में लिखी हैं, वहां देख लेवें।*

सिद्धि-(१) पुरगावणम्। *यहां पुरग और वन शब्दों का षष्ठीतत्पुरुष समास है। 'वनगिर्योः संज्ञायां कोटरकिंशुलकादीनाम्' (६।३।११६) से पूर्वपद को दीर्घ होता है। इस सूत्र से 'पुरग' पूर्वपद में अवस्थित रेफ से परवर्ती तथा अट्-व्यवायी (अ-ग्-आ-व्-अ) 'वन' शब्द के नकार को णकार आदेश होता है। ऐसे ही-* ***मिश्रकावणम्, सिध्रकावणम्, शारिकावणम्, कोटरावणम्।***

(२) ***अग्रेवणम्।*** *यहां वन और अग्रे शब्दों का षष्ठीतत्पुरुष समास है। वनस्याऽग्रे इति* ***अग्रवणम्।*** *'राजदन्तादिषु परम्' (२।२।३१) से समास में 'वन' शब्द का पर निपात होता है और 'हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम्' (६।३।९) से सप्तमी विभक्ति का अलुक् है।*

यहां 'अट्कुप्वाङ्‌नुम्व्यवायेऽपि' (८।३।२) से णकार आदेश प्राप्त था, पुनः इस सूत्र से आरम्भ इस नियम के लिये किया गया है कि इन पुरगा आदि शब्दों से परवर्ती 'वन' शब्द के नकार को णकार आदेश हो; अन्यत्र नहीं जैसे- ***कुबेरवनम्*** *आदि।*

णकारादेशः-

(५) प्रनिरन्तःशरेक्षुप्लक्षाम्रकार्ष्यखदिरपीयूक्षाभ्योऽसंज्ञायामपि।५।

प०वि०- प्र-निर्-अन्तर्-शर-ईषु-प्लक्ष-आम्र-कार्ष्य-खदिर-पीयूक्षाभ्यः ५।३ असंज्ञायाम् ७।१ अपि अव्ययपदम्।

स०-प्रश्च निश्च अन्तश्च शरश्च इक्षुश्च प्लक्षश्च आम्रं च कार्ष्यं **च खदिरश्च पीयूक्षा च** ताः-प्रनिरन्तःशरेक्षुप्लक्षाम्रकार्ष्यखदिरपीयूक्षाः,

ताभ्यः-प्रनिरन्तःशरेक्षुप्लक्षाम्रकार्ष्यखदिरपीयूक्षाभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न संज्ञा इति असंज्ञा, तस्याम्-असंज्ञायाम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, पूर्वपदात्, वनमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् असंज्ञायां संज्ञायामपि प्रनिरन्तःशरेक्षुप्लक्षाम्रकार्ष्यखदिरपीयूक्षाभ्यः पूर्वपदेभ्यो वनं नो णः।

अर्थः-संहितायां संज्ञायामसंज्ञायामपि च विषये प्रनिरन्तःशरेक्षुप्लक्षाम्रकार्ष्यखदिरपीयूक्षाभ्यः पूर्वपदेभ्यः परस्य वनमित्येतस्य नकारस्य स्थाने णकारादेशो भवति।

उदा०-**(प्र)** प्रवणे यष्टव्यम्। **(निर्)** निर्वणे प्रतिधीयते। **(अन्तर्)** अन्तर्वणे। **(शरः)** शरवणम्। **(इक्षुः)** इक्षुवणम्। **(प्लक्ष)** प्लक्षवणम्। **(आम्रम्)** आम्रवणम्। **(कार्ष्यम्)** कार्ष्यवणम्। **(पीयूक्षा)** पीयूक्षावणम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (संज्ञायाम् अपि) संज्ञा और असंज्ञा-विषय में भी (प्र०) प्र, निर्, अन्तर्, शर, इक्षु, प्लक्ष, आम्र, कार्ष्य, खदिर, पीयूक्षा इन (पूर्वपदेभ्यः) पूर्वपदों से परवर्ती (वनम्) वन शब्द के (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-**(प्र) प्रवणे यष्टव्यम्।** प्रकृष्ट वन में यज्ञ करना चाहिये। **(निर्) निर्वणे प्रतिधीयते।** वनरहित प्रदेश में परस्पर धारण-पोषण रूप व्यवहार किया जाता है। **(अन्तः) अन्तर्वणे।** वन के मध्य में (शर) **शरवणम्।** सरकण्डों का वन। **(इक्षुः) इक्षुवणम्।** ईख का वन। **(प्लक्ष) प्लक्षवणम्।** पिलखण का वन। **(आम्र) आम्रवणम्।** आम का वन। **(कार्ष्य) कार्ष्यवणम्।** कृषि योग्य वन। **(पीयूक्षा) पीयूक्षावणम्।** पीयूक्षा का वन। पीयूक्षा=पिलखण (पाकर) का भेद।*

सिद्धि-(१) प्रवणम्। *यहां प्र और वन शब्दों का **'कुगतिप्रादयः'** (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है। इस सूत्र से 'प्र' पूर्वपद के रेफ से परवर्ती अट्व्यवायी (अ-व्) 'वन' के नकार को णकार आदेश होता है।*

*निर्-पूर्वपद में-**निर्वणम्।** अन्तर्-पूर्वपद में-**अन्तर्वणम्।** यहां **'अव्ययं विभक्ति०'** (२।१।६) से विभक्ति-अर्थ में अव्ययीभाव समास है। शर-पूर्वपद में-**शरवणम्।** इक्षु-पूर्वपद में-**इक्षुवणम्।** यहां 'इक्षु' पूर्वपद के षकार से परवर्ती तथा अट्-व्यवायी (उ-व्) 'वन' के नकार को णकार आदेश है। प्लक्ष-पूर्वपद में-**प्लक्षवणम्।** पीयूक्षा-पूर्वपद में-**पीयूक्षावणम्।***

णकारादेशः—

(६) विभाषौषधिवनस्पतिभ्यः।६।

प०वि०-विभाषा १।१ ओषधि-वनस्पतिभ्यः ५।३।

स०-ओषधयश्च वनस्पतयश्च ते ओषधिवनस्पतयः, तेभ्यः-ओषधिवनस्पतिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, पूर्वपदात्, वनमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् ओषधिवनस्पतीनां रषाभ्यां नो विभाषा णः।

अर्थः-संहितायां विषये ओषधिवाचिनां वनस्पवाचिनां च पूर्वपदानां रेफषकाराभ्यां परस्य नकारस्य स्थाने विकल्पेन णकारादेशो भवति।

उदा०-(ओषधिः) दूर्वावणम्, दूर्वावनम्। मूर्वावणम्, मूर्वावनम्। **(वनस्पतिः)** शिरीषवणम्, शिरीषवनम्। बदरीवणम्, बदरीवनम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (ओषधिवनस्पतीनाम्) ओषधिवाची और वनस्पतिवाची (पूर्वपदानाम्) पूर्वपदों के (रषाभ्याम्) रेफ आर षकार से परवर्ती (नः) नकार के स्थान में (विभाषा) विकल्प से (णः) णकार आदेश होता है।*

उदा०-(ओषधि) ***दूर्वावणम्, दूर्वावनम्।*** *दूब नामक घास का जङ्गल।* ***मूर्वावणम्, मूर्वावनम्।*** *मरोड़फली नामक लताओं का वन।* ***(वनस्पति) शिरीषवणम्, शिरीषवनम्।*** *सिरस नामक वनस्पतियों का वन।* ***बदरीवणम्, बदरीवनम्।*** *बड़बेरी नामक वनस्पतियों का वन।*

सिद्धि- ***दूर्वावणम्।*** *यहां दूर्वा और वन शब्दों का षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से ओषधिवाची दूर्वा पूर्वपद के रेफ से परवर्ती तथा अट्-व्यवायी (व्-आ-व्) 'वन' के नकार को णकार आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में णकार आदेश नहीं है-* ***दूर्वावनम्।*** *मूर्वा-पूर्वपद में-* ***मूर्वावणम्। मूर्वावनम्।*** *शिरीष-पूर्वपद में-* ***शिरीषवणम्।*** *यहां वनस्पतिवाची शिरीष पूर्वपद के षकार से परवर्ती तथा अट्-व्यवायी (ऊ-व्) 'वन' के नकार को णकार आदेश है। विकल्प-पक्ष में-* ***शिरीषवनम्।*** *बदरी-पूर्वपद में-* ***बदरीवणम्, बदरीवनम्।***

विशेषः *फली वनस्पतिर्ज्ञेयो वृक्षाः पुष्पफलोपगाः।*
ओषध्यः फलपाकान्ता लतागुल्माश्च वीरुधः।।

अर्थः-फलवाला पेड़ वनस्पति, पुष्प और फलवाले पेड़ वृक्ष कहलाते हैं। फल के पकने के पश्चात् नष्ट हो जानेवाली ओषधि कहलाती है। लता और झाड़ियों को वीरुध् कहते हैं।

वनस्पति और वृक्ष में उपरिलिखित भेद है किन्तु यहां वनस्पति और वृक्ष दोनों का अभेदभाव से ग्रहण किया जाता है।

णकारादेशः–

(७) अह्नोऽदन्तात्।७।

प०वि०–अह्नः १।१ (षष्ठ्यर्थे) अदन्तात् ५।१।

स०–अद् अन्ते यस्य सः–अदन्तः, तस्मात्–अदन्तात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०–संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, पूर्वपदादिति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् अदन्तस्य पूर्वपदस्य रषाभ्याम् अह्नो नः णः।

अर्थः–संहितायां विषयेऽदन्तस्य पूर्वपदस्य रेफषकाराभ्यां परस्याह्नो नकारस्य स्थाने णकारादेशो भवति।

उदा०–अह्नः पूर्वमिति पूर्वाह्णः। अह्नोऽपरमिति अपराह्णः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अदन्तस्य) अकारान्त (पूर्वपदस्य) पूर्वपद के (रषाभ्याम्) रेफ आर षकार से परवर्ती (अह्नः) शब्द के (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-**पूर्वाह्णः।** दिन का पूर्व-भाग। **अपराह्णः।** दिन का पश्चिम-भाग।*

*सिद्धि-**पूर्वाह्णः।** यहां पूर्व और अहन् शब्दों का **'पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे'** (२।२।१) से एकदेशी तत्पुरुष समास है। **'राजाहःसखिभ्यष्टच्'** (५।४।९१) से समासान्त 'टच्' प्रत्यय और **'अह्नोऽह्न एतेभ्यः'** (५।४।८८) से 'अहन्' के स्थान में 'अह्न' आदेश है। इस सूत्र से अकारान्त 'पूर्व' पूर्वपद से परवर्ती तथा अट्-व्यवायी (व्-अ-अ) 'अह्न' शब्द के नकार को णकार आदेश होता है। अपर-पूर्वपद में-**अपराह्णः***

णकारादेशः–

(८) वाहनमाहितात्।८।

प०वि०–वाहनम् १।१ (षष्ठ्यर्थे), आहितात् ५।१।

अनु०–संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, पूर्वपदादिति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् आहितस्य पूर्वपदस्य रषाभ्यां वाहनं नो णः।

अर्थः–संहितायां विषये आहितवाचिनः पूर्वपदस्य रेफषकाराभ्यां परस्य वाहनमित्येतस्य नकारस्य स्थाने णकारादेशो भवति।

उदा०–इक्षुवाहणम्। शरवाहणम्। दर्भवाहणम्।

वाहने यदाऽऽरोपितमुह्यते तदाहितमिति कथ्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (आहितस्य) आहितवाची (पूर्वपदस्य) पूर्वपद के (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-**इक्षुवाहणम्।** ईख की गाड़ी। **शरवाहणम्।** सरकण्डों की गाड़ी। **दर्भवाहणम्।** डाभ की गाड़ी।*

गाड़ी में जो पदार्थ डालकर ढोया जाता है वह इक्षु आदि 'आहित' कहलाता है।

सिद्धि-इक्षुवाहणम्। *यहां इक्षु और वाहन शब्दों का षष्ठीतत्पुरुष समास है। इस सूत्र से आहितवाची 'इक्षु' पूर्वपद से परवर्ती तथा अट्-व्यवायी (उ-व्-आ-ह्) 'वाहन' के नकार को णकार आदेश होता है। शर-पूर्वपद में-**शरवाहणम्।** दर्भ-पूर्वपद में-**दर्भवाहणम्।***

णकारादेशः—

(६) पानं देशे।६।

प०वि०-पानम् १।१ देशे ७।१।

अनु०-संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, पूर्वपदादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पूर्वपदस्य रषाभ्यां पानं नो देशे णः।

अर्थः-संहितायां विषये पूर्वपदस्य रेफषकाराभ्यां परस्य पानमित्येतस्य नकारस्य स्थाने देशेऽभिधेये णकारादेशो भवति।

उदा०-पीयते इति पानम्। क्षीरं पानं येषां ते क्षीरपाणा उशीनराः। सुरापाणा प्राच्याः। सौवीरपाणा बाह्लीकाः। कषायपाणा गन्धाराः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पूर्वपदस्य) पूर्वपद के (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती (पानम्) पान शब्द के (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-**क्षीरपाणा उशीनराः।** उशीनर प्रदेश के लोग दुग्धपान के शौकीन हैं। **सुरापाणा प्राच्याः।** प्राच्य भारत के लोग सुरापान के शौकीन हैं। **सौवीरपाणा बाह्लीकाः।** बाह्लीक प्रदेश के लोग सौवीर (खट्टी कांजी) पीने के शौकीन हैं। **कषायपाणा गन्धाराः।** गन्धार प्रदेश के लोग कषाय (कसैला) पान के शौकीन हैं।*

सिद्धि-क्षीरपाणाः। *यहां क्षीर और पान शब्दों का षष्ठीतत्पुरुष समास है-**क्षीरं पानं येषां ते क्षीरपाणाः।** 'पानम्' शब्द में **'पा पाने'** (भ्वा०प०) धातु से **'कृत्यल्युटो बहुलम्'** (३।३।११३) से कर्म कारक में 'ल्युट्' प्रत्यय है-**पीयते यत् तत्-पानम्।** इस सूत्र से क्षीर पूर्वपद के रेफ से परवर्ती तथा अट् और पवर्ग व्यवायी (अ-प्-आ) 'पान' के नकार को देश अभिधेय में णकार आदेश होता है।*

*सुरा-पूर्वपद में-**सुरापाणाः**। सौवीर पूर्वपद में-**सौवीरपाणाः**। कषाय-पूर्वपद में-**कषायपाणाः**।*

विशेषः *उशीनर-पंजाब देश का एक जनपद। **बाह्लीक**-कंबोज के पश्चिम, वंक्षु के दक्षिण और हिन्दूकुश के उत्तर-पश्चिम का प्रदेश। **गन्धार**-काश्कर (कुनड़) नदी से तक्षशिला तक फैला हुआ प्रदेश।*

णकारादेशविकल्पः–

(१०) वा भावकरणयोः ।१०।

प०वि०-वा अव्ययपदम्, भाव-करणयोः ७।२।

स०-भावश्च करणं च ते भावकरणे, तयोः-भावकरणयोः (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, पूर्वपदात्, पानमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पूर्वपदस्य रषाभ्यां भावकरणयोः पानं नो वा णः।

अर्थः-संहितायां विषये पूर्वपदस्य रेफषकाराभ्यां परस्य भावे करणे चार्थे वर्तमानस्य पानमित्येतस्य नकारस्य स्थाने विकल्पेन णकारादेशो भवति।

उदा०-**(भावः)** क्षीरपाणम्, क्षीरपानं वर्तते। कषायपाणम्, कषाय-पानं वर्तते। सुरापाणम्, सुरापानं वर्तते। **(करणम्)** क्षीरपाणः कंसः, क्षीरपानः कंसः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पूर्वपदस्य) पूर्वपद के (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती (भावकरणयोः) भाव और करण अर्थ में विद्यमान (पानम्) पान शब्द के (नः) नकार के स्थान में (वा) विकल्प से (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-(भाव) **क्षीरपाणम्, क्षीरपानं वर्तते**। दुग्धपान चल रहा है। **कषायपाणम्, कषायपानं वर्तते**। कसैलापान चल रहा है। **सुरापाणम्, सुरापानं वर्तते**। मदिरापान चल रहा है। (करण) **क्षीरपाणः कंसः, क्षीरपानः कंसः**। दूध पीने का गिलास।*

*सिद्धि-(१) **क्षीरपाणम्**। यहां क्षीर और पान शब्दों का षष्ठीतत्पुरुष समास है। 'पान' शब्द में **'पा पाने'** (भ्वा०प०) धातु से 'ल्युट् च' (३।३।११५) से भाव-अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'यु' को 'अन' आदेश है। इस सूत्र से क्षीर पूर्वपद के रेफ से परवर्ती तथा अट् और पवर्गव्यवायी (अ-प्-आ) 'पान' के नकार को*

*णकार आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में णकार आदेश नहीं है-**क्षीरपानं वर्तते**। ऐसे ही-**कषायपाणम्, कषायपानम्। सुरापाणम्, सुरापानम्।***

*(२) **क्षीरपाणः कंसः।** यह क्षीर पूर्वपद 'पा पाने' (भ्वा०प०) धातु से 'करणाधिकरणयोश्च' (३।३।११७) से करण-कारक में 'ल्युट्' प्रत्यय है-**क्षीरं पीयते येन सः-क्षीरपाणः।** सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। विकल्प-पक्ष में णकार आदेश नहीं है-**क्षीरपानः कंसः।***

णकारादेशविकल्पः-

(११) प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु च।११।

प०वि०-प्रातिपदिकान्त-नुम्-विभक्तिषु ६।३ च अव्ययपदम्।

स०-प्रातिपदिकस्य अन्त इति प्रातिपदिकान्तः। प्रातिपदिकान्तश्च नुम् च विभक्तिश्च ताः प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तयः, तासु-प्रातिपदिकान्त-नुम्विभक्तिषु (षष्ठीगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, पूर्वपदात्, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पूर्वपदस्य रषाभ्यां प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु च नो वा णः।

अर्थः-संहितायां विषये पूर्वपदस्य रेफषकाराभ्यां परस्य प्रातिपदिकान्त-नुम्विभक्तिषु वर्तमानस्य च नकारस्य स्थाने विकल्पेन णकारादेशो भवति।

उदा०-(प्रातिपदिकान्तः) माषवापिणौ, माषवापिनौ। **(नुम्)** माषवापाणि, माषवापानि कुलानि। व्रीहिवापाणि, व्रीहिवापानि कुलानि। **(विभक्तिः)** माषवापेण, माषवापेन। व्रीहिवापेण, व्रीहिवापेन।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पूर्वपदस्य) पूर्वपद के (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती (प्रातिपदिकान्त०) प्रातिपदिक के अन्त में, नुम् और विभक्ति में विद्यमान (च) भी (नः) नकार के स्थान में (वा) विकल्प से (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-(प्रातिपदिकान्तः) **माषवापिणौ, माषवापिनौ।** उड़द बोनेवाले दो पुरुष। (नुम्) **माषवापाणि, माषवापानि कुलानि।** उड़द बोनेवाले कुल। **व्रीहिवापाणि, व्रीहिवापानि कुलानि।** धान बोनेवाले कुल। (विभक्ति) **माषवापेण, माषवापेन।** उड़द बोनेवाले से। **व्रीहिवापेण, व्रीहिवापेन।** धान बोनेवाले से।*

*सिद्धि-(१) **माषवापिणौ**। यहां माष-उपपद '**डुवप बीजसन्ताने छेदने च**' (भ्वा०प०) धातु से '**बहुलमाभीक्ष्ण्ये**' (३।२।८१) से -णिनि' प्रत्यय है। माषवापिन्+औ इस स्थिति में प्रातिपदिक के अन्त में नकार है अतः इस सूत्र से माष पूर्वपद के षकार से परवर्ती तथा अट् और पवर्गव्यवायी (अ-व्-आ-प्-इ) 'वापिन्' को नकार को णकार आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में णकार आदेश नहीं है-**माषवापिनौ**।*

*(२) **माषवापाणि**। यहां माष-उपपद पूर्वोक्त 'वप्' धातु से '**कर्मण्यण्**' (३।२।१) से 'अण्' प्रत्यय है-**माषान् वपन्तीति माषवापाणि कुलानि**। 'जश्शसोः' (७।१।२०) से 'जस्' के स्थान में नपुंसक में 'शि' आदेश, '**नपुंसकस्य झलचः**' (७।१।७२) से 'नुम्' आगम और '**सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ**' (६।४।८) से दीर्घ है। इस सूत्र से 'नुम्' के नकार को णकार आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में णकार आदेश नहीं है-**माषवापानि**। ऐसे ही-व्रीहिवापाणि, व्रीहिवापानि।*

*(३) **माषवापेण**। यहां 'माषवाप' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'टा' प्रत्यय है। '**टाङसिङसामिनात्स्याः**' (७।१।१२) से 'टा' के स्थान में 'इन' आदेश है। इस सूत्र से 'इन' विभक्ति के नकार को णकार आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में णकार आदेश नहीं है-**माषवापेन**। ऐसे ही-व्रीहिवापेण, व्रीहिवापेन।*

णकारादेशः--

(१२) एकाजुत्तरपदे णः।१२।

प०वि०-एकाजुत्तरपदे ७।१ णः १।१।

स०-एकोऽच् यस्मिन् स एकाच्। एकाज् उत्तरपदं यस्य स एकाजुत्तरपदः, तस्मिन्-एकाजुत्तरपदे (बहुव्रीहिः)।

अनु०-संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, पूर्वपदात्, प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पूर्वपदस्य रषाभ्यां एकाजुत्तरपदे प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु नो णः।

अर्थः-संहितायां विषये पूर्वपदस्य रेफषकाराभ्यां परस्य, एकाजुत्तरपदे प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु वर्तमानस्य नकारस्य स्थाने णकारादेशो भवति।

उदा०-(**प्रातिपदिकान्तः**) वृत्रहणौ, वृत्रहणः। (**नुम्**) क्षीरपाणि कुलानि, सुरापाणि कुलानि। (**विभक्तिः**) क्षीरपेण, सुरापेण।

ण इत्यनुवर्तमाने पुनरत्र णग्रहणं विकल्पनिवारणार्थं वेदितव्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पूर्वपदस्य) पूर्वपद के (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती, (एकाजुत्तरपदे) एकाच् उत्तरपदवाले समास में (प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु) प्रातिपदिक के अन्त, नुम् और विभक्ति में विद्यमान (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-**(प्रातिपदिकान्त) वृत्रहणौ।** वृत्र को मारनेवाले दो इन्द्र। **वृत्रहणः।** वृत्र को मारनेवाले सब इन्द्र। **(नुम्) क्षीरपाणि कुलानि।** दूध पीनेवाले कुल। **सुरापाणि कुलानि।** शराब पीनेवाले कुल। **(विभक्ति) क्षीरपेण।** दूध पीनेवाले से। **सुरापेण।** शराब पीनेवाले से।*

यहां 'णः' की अनुवृत्ति होने पर भी पुनः 'णः' का ग्रहण विकल्प की अनुवृत्ति के निवारण के लिये किया गया है।

*सिद्धि-(१) **वृत्रहणौ।** यहां वृत्र-उपपद **'हन हिंसागत्योः'** (अदा०प०) धातु से **'ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप्'** (३।२।८७) से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'क्विप्' प्रत्यय का सर्वहारी लोप होता है। वृत्रहन्+औ इस स्थिति में इस सूत्र से वृत्र पूर्वपद के रेफ से परवर्ती तथा अट्-व्यवायी (अ-ह्-अ) प्रातिपदिक के अन्त में विद्यमान एकाच् हन्' के नकार को णकार आदेश होता है। 'जस्' प्रत्यय में-**वृत्रहणः।***

*(२) **क्षीरपाणि।** यहां क्षीर-उपपद **'पा पाने'** (भ्वा०प०) धातु से **'आतोऽनुपसर्गे कः'** (३।२।३) से 'क' प्रत्यय है। **'आतो लोप इटि च'** (६।४।६४) से आकार का लोप होता है। क्षीरप+जस्। क्षीरप+शि। क्षरप नुम्+इ।, इस स्थिति में इस सूत्र से क्षीर पूर्वपद के रेफ से परवर्ती तथा अट् और पवर्ग व्यवायी (अ-प्-आ) एकाच् 'प' के नुम् के नकार को णकार आदेश होता है। **'नपुंसकस्य झलचः'** (७।१।७२) से नुम् आगम और **'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ'** (६।४।८) से दीर्घ होता है। सुरा-पूर्वपद में-**सुरापाणि।***

*(३) **क्षीरपेण।** यहां 'क्षीरप' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'टा' प्रत्यय है। **'टाङसिङसामिनात्स्याः'** (७।१।१२) से 'टा' को 'इन' आदेश है। इस सूत्र से क्षीर पूर्वपद के रेफ से परवर्ती तथा अट् और पवर्ग के व्यवायी (अ-प-अ-इ) एकाच् 'प' की 'इन' विभक्ति के नकार को णकार आदेश होता है। सुरा-पूर्वपद में-**सुरापेण।***

णकारादेशः-

(१३) कुमति च।१३।

प०वि०-कुमति ७।१ च अव्ययपदम्।

तद्धितवृत्तिः-कुरस्मिन्नस्तीति कुमान्, तस्मिन्-कुमति। **'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्'** (५।२।९४) इति मतुप् प्रत्ययः।

अनु०-संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, पूर्वपदात्, प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु, उत्तरपदे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पूर्वपदस्य रषाभ्यां कुमत्युत्तरपदे च प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु नो णः।

अर्थः-संहितायां विषये पूर्वपदस्य रेफषकाराभ्यां परस्य, कुमति=कवर्गवत्युत्तरपदे च प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु वर्तमानस्य नकारस्य स्थाने णकारादेशो भवति।

उदा०-**(प्रातिपदिकान्तः)** वस्त्रयुगिणौ, वस्त्रयुगिणः। स्वर्गकामिणौ, वृषगामिणौ। **(नुम्)** वस्त्रयुगाणि, खरयुगाणि **(विभक्तिः)** वस्त्रयुगेण, उष्ट्रयुगेण।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पूर्वपदस्य) पूर्वपद के (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती, (कुमति) कवर्गवान् उत्तरपदवाले समास में (प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु) प्रातिपदिक के अन्त, नुम् और विभक्ति में विद्यमान (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है।*

उदा०-(प्रातिपदिकान्त) ***वस्त्रयुगिणौ।*** *वस्त्र के जोड़ेवाले (धोती-कुर्ता) दो पुरुष।* ***वस्त्रयुगिणः।*** *वस्त्र के जोड़ेवाले सब पुरुष।* ***(नुम्) वस्त्रयुगाणि।*** *वस्त्रों के जोड़े।* ***खरयुगाणि।*** *गधों के जोड़े।* ***(विभक्ति) वस्त्रयुगेण।*** *वस्त्र के जोड़े से।* ***उष्ट्रयुगेण।*** *ऊंटों के जोड़े से।*

सिद्धि-(१) ***वस्त्रयुगिणौ।*** *यहां प्रथम वस्त्र और युग शब्दों का षष्ठीतत्पुरुष समास है। तत्पश्चात् 'वस्त्रयुग' शब्द से 'अत इनिठनौ' (५।२।११५) से मतुप् अर्थ में 'इनि' प्रत्यय है। वस्त्रयुगिन्+औ, इस स्थिति में 'वस्त्र' पूर्वपद रेफ से परवर्ती तथा अट् और कवर्ग-व्यवायी (अ-य्-उ-ग्-इ) तथा कवर्गवान् उत्तरपद, प्रातिपदिकान्त 'युगिन्' के नकार को इस सूत्र से णकार आदेश होता है। जस्-प्रत्यय में-* ***वस्त्रयुगिणः।***

(२) ***वस्त्रयुगाणि।*** *यहां 'वस्त्रयुग' शब्द से पूर्ववत् जस् प्रत्यय, जस् को शि आदेश, नुम् आगम और दीर्घ है। इस सूत्र से वस्त्र पूर्वपद के रेफ से परवर्ती, कवर्गवान् उत्तरपद 'युग' के 'नुम्' को णकार आदेश होता है। खर-पूर्वपद में-* ***खरयुगाणि।***

(३) ***वस्त्रयुगेण।*** *यहां 'वस्त्रयुग' शब्द से पूर्ववत् 'टा' प्रत्यय और इसके स्थान में 'इन' आदेश है। इस सूत्र से 'वस्त्र' पूर्वपद के रेफ से परवर्ती, कवर्गवान् उत्तरपद 'युग' की 'इन' विभक्ति के नकार को णकार आदेश होता है। उष्ट्र-पूर्वपद में-* ***उष्ट्रयुगेण।***

णकारादेशः–

(१४) उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य।१४।

प०वि०–उपसर्गात् ५।१ असमासे ७।१ अपि अव्ययपदम्, णोपदेशस्य ६।१।

स०–न समास इति असमासः, तस्मिन्–असमासे (नञ्तत्पुरुषः)। णकार उपदेशे यस्य स णोपदेशः, तस्य-णोपदेशस्य (बहुव्रीहिः)।

अनु०–संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, ण इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् उपसर्गस्य रषाभ्यां णोपदेशस्य नोऽसमासेऽपि णः।

अर्थः–संहितायां विषये उपसर्गस्य रेफषकाराभ्यां परस्य णोपदेशस्य धातोर्नकारस्य स्थानेऽसमासे समासेऽपि च णकारादेशो भवति।

उदा०–(प्र) असमासे–स प्रणमति। स परिणमति। **समासे**–प्रणायकः, परिणायकः।

आर्यभाषाः *अर्थ–(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उपसर्गस्य) उपसर्ग के (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती (णोपदेशस्य) उपदेश में णकार वाले धातु के (नः) नकार के स्थान में (असमासेऽपि) असमास में और समास में भी (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०–(प्र) असमास में–**स प्रणमति।** वह प्रणाम (नमस्ते) करता है। **स परिणमति।** वह बदलता है। समास में–**प्रणायकः।** प्रणेता, प्रथमकर्ता। **परिणायकः।** विवाह करनेवाला।*

सिद्धि–(१) प्रणमति। *यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'णम प्रह्वत्वे शब्दे च'** (भ्वा०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश और 'शप्' विकरण-प्रत्यय है। 'णम्' धातु उपदेश में णकारवान् है। **'णो नः'** (६।१।६४) से इसके णकार को नकार आदेश होता है। इस सूत्र से 'प्र' उपसर्ग के रेफ से परवर्ती णोपदेश 'नम्' धातु के नकार को असमास में णकार आदेश होता है। यहां 'प्र' और नमति का क्रियायोग है, समास नहीं है अतः **'उपसर्गाः क्रियायोगे'** (१।४।५९) से 'प्र' की उपसर्ग संज्ञा है। परि-उपसर्ग में–**परिणमति।***

(२) प्रणायकः। *यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'णीञ् प्रापणे'** (भ्वा०उ०) धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से 'ण्वुल्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'वु' को 'अक' आदेश है। 'णीञ्' धातु उपदेश में णकारवान् है। इसके णकार को पूर्ववत् नकार आदेश होता है। इस*

*सूत्र से प्र-उपसर्ग के रेफ से परवर्ती णोपदेश 'नी' धातु के नकार को समास में णकार आदेश होता है। यहां 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है।-**प्रगतो नायक इति प्रणायकः।** परि-उपसर्ग में-**परिणायकः।***

णकारादेशः-

(१५) हिनुमीना।१५।

प०वि०-हिनुमीना १।१ (षष्ठ्यर्थे)।

स०-हिनुश्च मीनाश्च एतयोः समाहारः-हिनुमीना (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, उपसर्गादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां उपसर्गस्य रषाभ्यां हिनुमीना नो णः।

अर्थः-संहितायां विषये उपसर्गस्य रेफषकाराभ्यां परयोर्हिनु, मीना इत्येतयोर्नकारस्य स्थाने णकारादेशो भवति।

उदा०-(हिनु) प्र-प्रहिणोति, प्रहिणुतः। **(मीना)** प्र-प्रमीणाति, प्रमीणीतः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उपसर्गस्य) उपसर्ग के (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती (हिनुमीना) हिनु और मीना शब्दों के (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-(हिनु) प्र-**प्रहिणोति।** वह भेजता है। **प्रहिणुतः।** वे दोनों भेजते हैं। **(मीना) प्र-प्रमीणाति।** वह हिंसा करता है। **प्रमीणीतः।** वे दोनों हिंसा करते हैं।*

*सिद्धि-(१) **प्रहिणोति।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'हि गतौ' (स्वा०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। **'स्वादिभ्यः श्नुः'** (३।१।७३) से 'श्नु' विकरण-प्रत्यय है। प्र+हि+नु+ति, इस स्थिति में इस सूत्र से प्र-उपसर्ग के रेफ से परवर्ती 'हिनु' के नकार को णकार आदेश होता है। तस्-प्रत्यय में-**प्रहिणुतः।***

*(२) **प्रमीणाति।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'मीञ् हिंसायाम्'** (क्र्या०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। **'क्र्यादिभ्यः श्ना'** (३।१।८१) से 'श्ना' विकरण-प्रत्यय है। प्र+मी+ना+ति, इस स्थिति में इस सूत्र से प्र-उपसर्ग के रेफ से परवर्ती 'मीना' के नकार को णकार आदेश होता है। तस्-प्रत्यय में-**प्रमीणीतः।** **'ई हल्यघोः'** (६।४।११३) से ईकार आदेश है।*

णकारादेशः-

(१६) आनि लोट्।१६।

प०वि०-आनि १।१ (षष्ठ्यर्थे), लोट् १।१ (षष्ठ्यर्थे)।

अनु०-संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, उपसर्गादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् उपसर्गस्य रषाभ्यां लोट आनि नो णः।

अर्थः-संहितायां विषये उपसर्गस्य रेफषकाराभ्यां परस्य लोडादेशस्य आनि-इत्येतस्य नकारस्य स्थाने णकारादेशो भवति।

उदा०-(**आनि**) अहं प्रवपाणि, परिवपाणि। अहं प्रयाणि, परियाणि।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उपसर्गस्य) उपसर्ग के (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती (लोटः) लोट् के (आनि) आनि इस आदेश के (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-(आनि) **अहं प्रवपाणि।** मैं बीज बोऊं/काटूं। **परिवपाणि।** अर्थ पूर्ववत् है। **अहं प्रयाणि।** मैं प्रस्थान करूं। **परियाणि।** सर्वतः गमन करूं।*

*सिद्धि-(१) **प्रवपाणि।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'डुवप **बीजसन्ताने छेदने च**' (भ्वा०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'मिप्' आदेश और '**मेर्निः**' (३।४।८९) से 'मिप्' के स्थान में 'नि' आदेश है। '**आडुत्तमस्य पिच्च**' (३।४।९२) से इसे 'आट्' आगम होता है। प्र+वप+आ+नि, इस स्थिति में इस सूत्र से प्र-उपसर्ग के रेफ से परवर्ती तथा अट् और पवर्ग-व्यवायी (अ-व्-अ-प्-अ-आ) 'आनि' के नकार को णकार आदेश होता है। परि-उपसर्ग में-**परिवपाणि।***

*(२) **प्रयाणि।** प्र-उपगर्सपूर्वक '**या प्रापणे**' (अदा०प०) धातु से पूर्ववत्। परि-उपसर्ग में-**परियाणि।***

णकारादेशः-

(१७) नेर्गदनदपतपदघुमास्थास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धिषु च।१७।

प०वि०-नेः ६।१ गद-नद-पत-घु-मा-स्था-स्यति-हन्ति-याति-वाति-द्राति-प्साति-वपति-वहति-शाम्यति-चिनोति-देग्धिषु ७।३ च अव्ययपदम्।

स०-गदश्च नदश्च पतश्च घुश्च माश्च स्यतिश्च हन्तिश्च यातिश्च वातिश्च द्रातिश्च प्सातिश्च वपतिश्च वहतिश्च शाम्यतिश्च चिनोतिश्च देग्धिश्च ते गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहति-शाम्यतिचिनोतिदेग्धयः, तेषु-गदनदपतपदघुमास्थतिहन्तियातिवातिद्रातिप्साति-वपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धिषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)

अनु०-संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, उपसर्गादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् उपसर्गस्य रषाभ्यां ने नो गद०देग्धिषु च णः।

अर्थः-संहितायां विषये उपसर्गस्य रेफषकाराभ्यां परस्य नेर्नकारस्य स्थाने गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहतिशाम्यति-चिनोतिदेग्धिषु परतश्च णकारादेशो भवति। **उदाहरणम्**-

उपसर्गः		निः	परतः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
१.	प्र	नि	गद	प्रणिगदति	बोलता है।
२.	परि	,,	गद	परिणिगदति	,,
३.	प्र	,,	नद	प्रणिनदति	बजता है।
४.	परि	,,	नद	परिणिनदति	,,
५.	प्र	,,	पत	प्रणिपतति	गिरता है।
६.	परि	,,	पत	परिणिपतति	,,
७.	प्र	,,	पद	प्रणिपद्यते	प्राप्त होता है।
८.	परि	,,	पद	परिणिपद्यते	,,
९.	प्र	,, (घु)	दा	प्रणिददाति	देता है।
१०.	परि	,, ,,	दा	परिणिददाति	,,
११.	प्र	,, ,,	धा	प्रणिदधाति	समर्पण करता है।
१२.	परि	,, ,,	धा	परिणिदधाति	,,
१३.	प्र	,,(माङ्)	मा	प्रणिमीमिते	मांपता है।
१४.	परि	,, ,,	मा	परिणिमीमिते	,,
१५.	प्र	,,(मेङ्)	मा	प्रणिमयते	प्रदान करता है।
१६.	परि	,, ,,	मा	परिणिमयते	,,
१७.	प्र	,,	स्यति	प्रणिष्यति	अन्त करता है।
१८.	परि	,,	स्यति	परिणिष्यति	,,
१९.	प्र	,,	हन्ति	प्रणिहन्ति	मारता है।
२०.	परि	,,	हन्ति	परिणिहन्ति	,,
२१.	प्र	,,	याति	प्रणियाति	जाता है।
२२.	परि	,,	याति	परिणियाति	,,

उपसर्गः	निः	परतः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
२३. प्र	,,	वाति	प्रणिवाति	बहता है।
२४. परि	,,	वाति	परिणिवाति	,,
२५. प्र	,,	द्राति	प्रणिद्राति	निन्दित चलता है।
२६. परि	,,	द्राति	परिणिद्राति	,,
२७. प्र	,,	प्साति	प्रणिप्साति	खाता है।
२८. परि	,,	प्साति	परिणिप्साति	,,
२९. प्र	,,	वपति	प्रणिवपति	बोता है/काटता है।
३०. परि	,,	वपति	परिणिवपति	,,
३१. प्र	,,	वहति	प्रणिवहति	ढोता है।
३२. परि	,,	वहति	परिणिहपति	,,
३३. प्र	,,	शाम्यति	प्रणिशाम्यति	शान्त होता है।
३४. परि	,,	शाम्यति	परिणिशाम्यति	,,
३५. प्र	,,	चिनोति	प्रणिचिनोति	चुनता है।
३६. परि	,,	चिनोति	परिणिचिनोति	,,
३७. प्र	,,	देग्धि	प्रणिदेग्धि	बढ़ता है।
३८. परि	,,	देग्धि	परिणिदेग्धि	,,

*यहां **प्रणिगदति** आदि का धातुलभ्य अर्थ किया गया है। प्र, परि और नि उपसर्ग के योग में अन्य अर्थ भी सम्भव है-**उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।***

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उपसर्गस्य) उपसर्ग के (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती (निः) नि शब्द को (गद०) गद, नद, पत, पद, घु {दा, धा आदि} मा, स्यति, हन्ति, याति, वाति, द्राति, प्साति, वपति, वहति, शाम्यति, चिनोति, देग्धि इन धातुओं के परे होने पर (च) भी (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-(१) प्रणिगदति।** यहां प्र और नि-उपसर्गपूर्वक 'गद व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। इस सूत्र से प्र-उपसर्ग के रेफ से परवर्ती 'नि' के नकार को णकार आदेश होता है। परि-उपसर्ग में-**परिणिगदति।

(२) प्रणिनदति। णद अव्यक्ते शब्दे (भ्वा०प०)।

(३) प्रणिपतति। पत्लृ गतौ (भ्वा०प०)।

(४) प्रणिपद्यते। पद गतौ (दि०प०)।

(५) प्रणिददाति। डुदाञ् दाने (जु०उ०) 'दाधा घ्वदाप्' (१।१।२०) से 'दा' धातु की 'घु' संज्ञा है।

(६) प्रणिदधाति। डुधाञ् धारणपोषणयोः (जु०उ०)। 'धा' धातु की पूर्ववत् 'घु' संज्ञा है।

(७) प्रणिमिमीते। 'माङ् माने शब्दे च' (जु०आ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' (२।४।७५) से 'शप्' को श्लु, 'श्लौ' (६।१।१०) से धातु को द्विर्वचन, 'भृञामित्' (७।४।७६) से अभ्यास को इकार अदेश और 'ई हल्यघोः' (६।४।११३) से ईकार आदेश है।

(८) प्रणिमयते। 'मेङ् प्रणिदाने' (भ्वा०आ०)।

(९) प्रणिष्यति। 'षो अन्तकर्मणि' (दि०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय, लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश और 'दिवादिभ्यः श्यन्' (३।१।६९) से श्यन् विकरण-प्रत्यय है। 'ओतः श्यनि' (७।३।७१) से धातुस्थ ओकार का लोप और 'उपसर्गात् सुनोति०' (८।३।६५) से षत्व होता है।

(१०) प्रणिहन्ति। हन हिंसागत्योः (अदा०प०)।

(११) प्रणियाति। या प्रापणे (अदा०प०)।

(१२) प्रणिद्राति। द्रा कुत्सायां गतौ च (अदा०प०)।

(१३) प्रणिप्साति। प्सा भक्षणे (अदा०प०)।

(१४) प्रणिवपति। डुवप बीजसन्ताने छेदने च (भ्वा०प०)।

(१५) प्रणिवहति। वह प्रापणे (भ्वा०प०)।

(१६) प्रणिशाम्यति। शमु उपशमे (दि०प०) 'शमामष्टानां दीर्घः श्यनि' (७।३।७४) से दीर्घ है।

(१७) प्रणिचिनोति। चिञ् चयने (स्वा०उ०)।

(१८) प्रणिदेग्धि। दिह उपचये (अदा०उ०) धातु से 'लट्' लकार, लकार के स्थान 'तिप्' आदेश और 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' (२।४।७२) से 'शप्' का लुक् है। 'दादेर्धातोर्घः' (८।२।३२) से हकार को घकार अदेश, 'झषस्तथोर्धोऽधः' (८।२।४०) से तकार को धकार आदेश ओर 'झलां जश् झशि' (८।४।५३) से घकार को जश् गकार आदेश होता है।

णकारादेशविकल्पः–

(१८) शेषे विभाषाऽकखादावषान्त उपदेशे।१८।

प०वि०-शेषे ७।१ विभाषा १।१ अकखादौ ७।१ अषान्ते ७।१ उपदेशे ७।१।

स०-कश्च खश्च तौ कखौ, कखावादी यस्य कखादिः, न कखादिरिति अकखादिः, तस्मिन्-अकखादौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वबहुव्रीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः)। षोऽन्ते यस्य स षान्तः, न षान्त इति अषान्तः, तस्मिन्-अषान्ते (बहुव्रीहि-गर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, उपसर्गात्, नेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् उपसर्गस्य रषाभ्यां नेर्न उपदेशेऽकखादावषन्ते शेषे विभाषा णः।

अर्थः-संहितायां विषये उपसर्गस्य रेफषकाराभ्यां परस्य नेर्नकारस्य स्थाने, उपदेशे ककारखकारादिवर्जिते षकारान्तवर्जिते च शेषे धातौ परतो विकल्पेन णकारादेशो भवति।

उदा०-**(पच्) प्र**-प्रणिपचति, प्रनिपचति। **(भिद्)** प्रणिभिनत्ति, प्रनिभिनत्ति।

अकखादाविति किम् ? प्रनिकरोति, प्रनिखनति। अषान्ते इति किम् ? प्रनिपिनष्टि।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उपसर्गस्य) उपसर्ग के (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती (नेः) नि के (नः) नकार के स्थान में, (उपदेश) पाणिनि मुनि के धातुपाठ रूप उपदेश में (अकखादौ) ककारादि और खकारादि धातु से भी भिन्न धातु परे होने पर (विभाषा) विकल्प से (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-(पच्) प्र-**प्रणिपचति, प्रनिपचति**। वह अति निकृष्ट पकाता है। (भिद्) **प्रणिभिनत्ति, प्रनिभिनत्ति**। वह अति निकृष्ट फाड़ता है।*

***सिद्धि-प्रणिपचति**। यहां प्र और नि-उपसर्गपूर्वक 'डुपचष् पाके' (भ्वा०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। इस सूत्र से 'प्र' उपसर्ग के रेफ से परवर्ती 'नि' के नकार को, ककारादि, खकारादि और षकारान्त धातु से भिन्न 'पच्' धातु परे होने पर णकार आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में णकार आदेश नहीं है-**प्रनिपचति**। 'भिदिर् विदारणे' (रुधा०प०) धातु से-**प्रणिभिनत्ति, प्रनिभिनत्ति**।*

णकारादेशः–

(१६) अनितेरन्तः ।१६।

प०वि०–अनितेः ६ ।१ अन्तः १ ।१ (सप्तम्यर्थे)।

अनु०–संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, उपसर्गादिति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् उपसर्गस्य रषाभ्याम् अन्तोऽनितेर्नो णः।

अर्थः–संहितायां विषये उपसर्गस्य रेफषकाराभ्यां परस्य पदान्ते वर्तमानस्याऽनितेर्नकारस्य स्थाने णकारादेशो भवति।

उदा०–**(अन्)** **प्र**–हे प्राण्! **परा**–हे पराण्!

आर्यभाषाः *अर्थ*–*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उपसर्गस्य) उपसर्ग के (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती (अन्तः) पद के अन्त में विद्यमान (अनितेः) अनिति=अन् धातु के (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०–**(अन्) प्र**–हे **प्राण्**! हे जीव! **परा**–हे **पराण्**! हे निर्जीव!*

सिद्धि–प्राण! *यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'अन प्राणने'** (अदा०प०) धातु से **'क्विप् च'** (३।२।७६) से 'क्विप्' प्रत्यय है। 'क्विप्' प्रत्यय का सर्वहारी लोप होता है। इस सूत्र से प्र-उपसर्ग के रेफ से परवर्ती तथा अट्-व्यवायी (अ-अ) 'अन्' धातु के नकार को णकार आदेश होता है। **'न ङिसम्बुद्ध्योः'** (८।२।८) से सम्बुद्धि में प्रातिपदिकान्त नकार का लोप नहीं होता है। **'पदान्तस्य'** (८।४।३६) से पदान्त नकार को णकार आदेश का प्रतिषेध है। यह उसका पुरस्ताद् अपवाद है। परा-उपसर्ग में–**पराण्**।*

विशेषः *काशिकावृत्ति में–**अनितेः**।। **अन्तः**।। इस प्रकार योगविभाग करके सूत्रव्याख्या की है। **अनितेः**।। उपसर्ग के रेफ से परवर्ती अनिति धातु के नकार को णकार आदेश होता है। पश्चात्–**अन्तः**।। इसकी व्याख्या पूर्वोक्त है। महाभाष्य के अनुसार **'अनितेरन्तः'** यह सूत्रपाठ है।*

*उदा०–**प्राणिति**। वह श्वास लेता है। **पराणिति**। वह श्वास से दूर होता है।*

णकारादेशः–

(२०) उभौ साभ्यासस्य ।२०।

प०वि०–उभौ १।२ (षष्ठ्यर्थे), साभ्यासस्य ६।१।

स०– अभ्यासेन सह वर्तते इति साभ्यासः, तस्य–साभ्यासस्य (बहुव्रीहिः)।

अनु०-संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, उपसर्गात्, अनितेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् उपसर्गस्य रषाभ्यां साभ्यासस्यानितेरुभयोर्नयोर्णः।

अर्थः-संहितायां विषये उपसर्गस्य रेफषकाराभ्यां परस्य साभ्यासस्याऽनितेरुभयोर्नकारयोः स्थाने णकारादेशो भवति।

उदा०-(अन्) **प्र**-स प्राणिणिषति। स प्राणिणत्। **परा**-स पराणिणिषति। स पराणिणत्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उपसर्गस्य) उपसर्ग के (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती (साभ्यासस्य) अभ्यास से युक्त (अनितेः) अनिति धातु के (उभयोः) दोनों (नयोः) नकारों के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-(अन्) प्र-स **प्राणिणिषति**। वह श्वास लेना चाहता है। स **प्राणिणत्**। उसने श्वास दिलाया। परा-स **पराणिणिषति**। वह श्वास को दूर करना चाहता है। **स पराणिणत्**। उसने श्वास को दूर कराया, मरवाया।*

सिद्धि-(१) प्राणिणिषति। *यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'अन प्राणने'** (अदा०प०) धातु से **'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'** (३।१।७) से 'सन्' प्रत्यय है। **'आर्धधातुकस्येड्वलादेः'** (७।२।३५) से 'सन्' को इडागम है। **'अजादेर्द्वितीयस्य'** (६।१।२) के नियम **'सन्यङोः'** (६।१।९) से 'नि' शब्द को द्विर्वचन होता है। प्र+नि-नि+ष, इस स्थिति में इस सूत्र से प्र-उपसर्ग के रेफ से परवर्ती साभ्यास अन् धातु के दोनों नकारों को णकार आदेश होता है। परा-उपसर्ग में-**पराणिणिषति**।*

सिद्धि-(२) प्राणिणत्। *यहां प्र-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'अन्' धातु से **'हेतुमति च'** (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् णिजन्त 'आनि' धातु से 'लुङ्' प्रत्यय है। **'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्'** (३।१।४८) से 'च्लि' के स्थान में 'चङ्' आदेश है। **'णेरनिटि'** (६।४।५१) से 'णि' का लोप होता है। **'चङि'** (६।१।११) से धातु को द्विर्वचन करते समय, उसे **'द्विर्वचनेऽचि'** (१।१।५९) से स्थानिवत् मानकर पूर्वोक्त नियम से अजादि धातु के द्वितीय एकाच् अवयव को द्विर्वचन करने में 'नि' शब्द को द्विर्वचन होता है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। परा-उपसर्ग में-**पराणिणत्**।*

णकारादेशः-

(२१) हन्तेरत्पूर्वस्य।२१।

प०वि०-हन्तेः ६।१ अत्पूर्वस्य ६।१।

स०-अत् पूर्वो यस्मात् सः-अत्पूर्वः, तस्य-अत्पूर्वस्य (बहुव्रीहिः)।

अनु०-संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, उपसर्गादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् उपसर्गस्य रषाभ्याम् अतत्पूर्वस्य हन्तेर्नो णः।

अर्थः-संहितायां विषये उपसर्गस्य रेफषकाराभ्यां परस्याऽकारपूर्वस्य हन्तेर्नकारस्य स्थाने णकारादेशो भवति।

उदा०-(हन्) **प्र**-प्रहण्यते। **परि**-परिहण्यते। **प्र**-प्रहणनम्। **परि**-परिहणनम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उपसर्गस्य) उपसर्ग के (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती (अत्पूर्वस्य) अकार पूर्ववाले (हन्तेः) हन् धातु के (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-(हन्) प्र-**प्रहण्यते**। प्रहार किया जाता है। परि-**परिहण्यते**। परिहार किया जाता है। प्र-**प्रहणनम्**। प्रहार करना। परि-**परिहणनम्**। परिहार करना।*

*सिद्धि-(१) **प्रहण्यते**। यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'हन हिंसागत्योः' (अदा०प०) धातु से कर्मवाच्य में 'लट्' प्रत्यय है। '**भावकर्मणोः**' (१।३।१३) से लकार के स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश और '**सार्वधातुके यक्**' (३।१।६७) से 'यक्' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से प्र-उपसर्ग के रेफ से परवर्ती 'हन्' धातु के अकारपूर्वी नकार को णकार आदेश होता है।*

*(२) **प्रहणनम्**। यहां प्र-उपसर्गपूर्वक पूर्वोक्त 'हन्' धातु से '**ल्युट् च**' (३।३।११५) से भाव अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय है। '**युवोरनाकौ**' (७।१।१) से 'यु' को 'अन' आदेश है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। परा-उपसर्ग में-**पराहणनम्**।*

णकारादेशविकल्पः-

(२२) वमोर्वा।२२।

प०वि०-वमोः ७।२ वा अव्ययपदम्।

स०-वश्च मश्च तौ वमौ, तयोः-वमोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, उपसर्गात्, हन्तेः, अत्पूर्वस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् उपसर्गस्य रषाभ्याम् अत्पूर्वस्य हन्तेर्नो वमोर्वा णः।

अर्थः-संहितायां विषये उपसर्गस्य रेफषकाराभ्यां परस्यात्पूर्वस्य हन्तेर्नकारस्य स्थाने वकारमकारयोः परतो विकल्पेन णकारादेशो भवति।

उदा०-(हन्) **प्र (व:)**-आवां प्रहण्वः, प्रहन्वः । **परि**-आवां परिहण्वः, परिहन्वः । **प्र (म:)**-वयं प्रहण्मः, प्रहन्मः । **परि**-वयं परिहण्मः, परिहन्मः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उपसर्गस्य) उपसर्ग के (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती (अत्पूर्वस्य) अकार पूर्ववाले (हन्तेः) हन् धातु के (नः) नकार के स्थान में (वमोः) वकार और मकार परे रहने पर (वा) विकल्प से (णः) णकार आदेश होता है।*

उदा०-(हन्) प्र (व)-आवां प्रहण्वः, प्रहन्वः । हम दोनों प्रहार करते हैं। ***परि-आवां परिहण्वः, परिहन्वः।*** *हम दोनों परिहार करते हैं।* ***प्र (म)-वयं प्रहण्मः, प्रहन्मः।*** *हम सब प्रहार करते हैं।* ***परि-वयं परिहण्मः, परिहन्मः।*** *हम सब परिहार करते हैं।*

*सिद्धि-**प्रहण्वः।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'हन हिंसागत्योः'** (अदा०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'वस्' आदेश है। **'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'** (२।४।७२) से 'शप्' का लुक् है। इस सूत्र से प्र-उपसर्ग के रेफ से परवर्ती 'हन्' धातु के अकारपूर्वी नकार के स्थान में वकार परे रहते णकार आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में णकार आदेश नहीं है-**प्रहन्वः।** परि-उपसर्ग में-**परिहण्वः, परिहन्वः।** मस्-प्रत्यय में-**प्रहण्मः, प्रहन्मः। परिहण्मः, परिहन्मः।***

णकारादेशः-

(२३) अन्तरदेशे।२३।

प०वि०-अन्तः अव्ययपदम्, अदेशे ७।१।

स०-न देश इति अदेशः, तस्मिन्-अदेशे (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, हन्तेः, अत्पूर्वस्येति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् अन्तर्-राद् अत्पूर्वस्य हन्तेर्नो णः, अदेशे।

अर्थः-संहितायां विषयेऽन्तःशब्दस्य रेफात् परस्याऽत्पूर्वस्य हन्तेर्नकारस्य स्थाने णकारादेशो भवति, अदेशेऽभिधेये।

उदा०-(हन्) **अन्तः**-अन्तर्हण्यते। अन्तर्हणनं वर्तते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अन्तः) अन्तर् शब्द के (रात्) रेफ परवर्ती (अत्पूर्वस्य) अकार पूर्ववाले (हन्तेः) हन् धातु के (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है (अदेशे) यदि वहां देश का कथन न हो।*

*उदा०-**(हन्) अन्तर्-अन्तर्हण्यते।** वह मध्य में बाधित किया जाता है। **अन्तर्हणनं वर्तते।** बीच में बाधा है।*

*सिद्धि-(१) **अन्तर्हण्यते।** यहां अन्तर्-पूर्वक 'हन्' धातु से कर्मवाच्य में 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश है। **'भावकर्मणोः'** (१।३।१३) से आत्मनेपद है। **'सार्वधातुके यक्'** (३।१।६७) से यक् आगम है। इस सूत्र से अन्तर् शब्द के रेफ से परवर्ती तथा अकारपूर्वी 'हन्' धातु के नकार को अदेश अर्थ में णकार आदेश होता है।*

*(२) **अन्तर्हणनम्।** यहां अन्तर्-उपपद 'हन्' धातु से **'ल्युट् च'** (३।३।११५) से भाव अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'यु' को 'अन' आदेश है। **'अन्तरपरिग्रहे'** (१।४।६५) से अन्तर् शब्द की गति-संज्ञा होकर **'कुगतिप्रादयः'** (२।२।१८) से गतितत्पुरुष समास है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है।*

*देश अभिधेय में **'अन्तर्घनो देशे'** (३।३।७८) से **'अन्तर्घनः'** प्रयोग होता है।*

णकारादेशः–

(२४) अयनं च।२४।

प०वि०–अयनम् १।१ (षष्ठ्यर्थे), च अव्ययपदम्।

अनु०–संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, अन्तः, अदेशे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् अन्तर्-राद् अयनं च नो णः, अदेशे।

अर्थः–संहितायां विषयेऽन्तःशब्दस्य रेफात् परस्य अयनमित्येतस्य च नकारस्य स्थाने णकारादेशो भवति, अदेशेऽभिधेये।

उदा०–(अयनम्) अन्तः–अन्तरयणं वर्तते। अन्तरयनं शोभनम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अन्तः) अन्तर् शब्द के (रात्) रेफ से परवर्ती (अयनम्) अयन शब्द के (च) भी (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है (अदेशे) यदि वहां देश का कथन न हो।*

*उदा०–**(अयनम्) अन्तः–अन्तरयणं वर्तते।** मध्य-मार्ग है। **अन्तरयनं शोभनम्।** मध्य-मार्ग अच्छा है।*

*सिद्धि–**अन्तरयणम्।** यहां अन्तर् और अयन शब्दों का **'कुगतिप्रादयः'** (२।२।१८) से गतितत्पुरुष समास है। **'अन्तरपरिग्रहे'** (१।४।६५) से अन्तर् शब्द की गति-संज्ञा है। इस सूत्र से अन्तर् शब्द के रेफ से परवर्ती अयन शब्द के नकार को णकार आदेश होता है।*

यहां 'कृत्यचः' (८।४।२८) से णकार आदेश सिद्ध है। देश के प्रतिषेध के लिये यह कथन किया गया है।

णकारादेशः–

(२५) छन्दस्यृदवग्रहात्।२५।

प०वि०–छन्दसि ७।१ ऋत्-अवग्रहात् ५।१।

स०–ऋच्चासावग्रहश्चेति ऋदवग्रहः, तस्मात्–ऋदवग्रहात् (कर्मधारयतत्पुरुषः)। अवगृह्यते=विच्छिद्य पठ्यते इति अवग्रहः।

अनु०–संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, ण इति चानुवर्तते। **'पूर्वपदात् संज्ञायामगः'** (८।४।३) इत्यस्माद् मण्डूकोत्प्लुत्या 'पूर्वपदात्' इत्यनुवर्तनीयम्।

अन्वयः–संहितायां छन्दसि च ऋदवग्रहात् पूर्वपदाद् नो णः।

अर्थः–संहितायां छन्दसि च विषये ऋदवग्रहात् पूर्वपदाद् परस्य नकारस्य स्थाने णकारादेशो भवति।

उदा०–नृमणाः (यजु० १२।२०)। **अवग्रहः**–नृ मना इति नृऽमनाः। पितृयाणम्। **अवग्रहः**–पितृयानमिति पितृऽयानम्।

आर्यभाषाः *अर्थ–(संहितायाम्) सन्धि और (छन्दसि) वेदविषय में (ऋदवग्रहात्) ऋकारान्त अवगृह्यमाण (पूर्वपदात्) पूर्वपद से परवर्ती (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है (अदेशे) यदि वहां देश का कथन न हो।*

*उदा०–**नृमणाः** (यजु० १२।२०)। अवग्रह–**नृ मना इति नृऽमनाः**। नर=प्रजा में मन रखनेवाला श्रेष्ठ राजा। **पितृयाणम्**। अवग्रह–**पितृयानमिति पितृऽयानम्**। पितरजनों का मार्ग।*

सिद्धि–नृमणाः। *यहां नृ और मनस् शब्दों का बहुव्रीहि समास है। नृषु=प्रजाजनेषु मनो यस्य सः–नृमणाः। इस सूत्र से पदपाठ में अवगृह्यमाण ऋकरान्त 'नृ' पूर्वपद से परवर्ती 'मनस्' शब्द के नकार को णकार आदेश होता है। ऐसे ही–**पितृयाणम्**।*

यहां अवग्रह का अभिप्राय यह है कि जिस पूर्वपद में ऋकार वर्ण पर, अवग्रह (पदच्छेद) किया जाता है उस ऋकारान्त पूर्वपद से उत्तरवर्ती पद के नकार को णकार आदेश होता है, अवग्रह अवस्था में नहीं।

णकारादेशः–

(२६) नश्च धातुस्थोरुषुभ्यः।२६।

प०वि०–नस् १।१ (षष्ठ्यर्थे), च अव्ययपदम्, धातुस्थ-उरु-षुभ्यः ५।३।

स०-धातौ तिष्ठतीति धातुस्थः। धातुस्थश्च उरुश्च षुश्च ते धातुस्थोरुषवः, तेभ्यः-धातुस्थोरुषुभ्यः (उपपदगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, छन्दसीति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां छन्दसि च धातुस्थोरुषूणां रषाभ्यां नश्च नो णः।

अर्थः-संहितायां छन्दसि च विषये धातुस्थस्य उरु-शब्दस्य षु-शब्दस्य च रेफषकाराभ्यां परस्य नस् इत्येतस्य च नकारस्य स्थाने णकारादेशो भवति।

उदा०-**(धातुस्थः)** अग्ने रक्षा णः (ऋ० ७।१५।३)। शिक्षा णोऽस्मिन् (ऋ० ७।३२।२६)। **(उरु)** उरु णस्कृधि (ऋ० ८।७५।११)। **(षु)** अभी षु णः सखीनाम् (ऋ० ४।३१।३)। ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये (ऋ० १।३६।१३)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि और (छन्दसि) वेदविषय में (धातुस्थोरुषूणाम्) धातु में अवस्थित, उरु और षु शब्दों के (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती (नः) नस् इस शब्द के (च) भी (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-**(धातुस्थ) अग्ने रक्षा णः** (ऋ० ७।१५।३)। हे अग्ने (ईश्वर)! तू हमारी रक्षा कर। **शिक्षा णोऽस्मिन्** (ऋ० ७।३२।२६)। हे इन्द्र! तू इस संसार मार्ग में हमें शिक्षा कर। (उरु) **उरु णस्कृधि** (ऋ० ८।७५।११)। हे अग्ने! तू हमें बहुत धनी बना। (षु) **अभी षु णः सखीनाम्** (ऋ० ४।३१।३)। **ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये** (ऋ० १।३६।१३)। हे अग्ने! तू हमारी रक्षा के लिये सदा अवस्थित रह।*

*सिद्धि-(१) **रक्षा णः।** यहां 'रक्ष्' धातुस्थ षकार से परवर्ती 'नस्' के नकार को णकार आदेश है। **'बहुवचनस्य वस्नसौ'** (८।१।२१) से अस्मद् के षष्ठी-चतुर्थी-द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में नस् आदेश होता है। ऐसे ही-**शिक्षा णः। 'द्व्यचोऽतस्तिङः'** (६।३।१३३) से तिङन्त रक्ष, शिक्ष पदों को दीर्घ होता है-रक्षा, **शिक्षा।** उरु-शब्द के रेफ से परवर्ती-उरु **णः।** उरु शब्द यास्कीय निघण्टु (३।१) में बहु-नामों में पठित है। षु-शब्द के षकार से परवर्ती-षु **णः।** 'सु' यह निपात है। 'सुञः' (८।३।१०७) से षत्व होता है।*

णकारादेशः-

(२७) उपसर्गादनोत्परः।२७।

प०वि०-उपसर्गात् ५।१ अनोत्परः १।१ (षष्ठ्यर्थे)।

स०-ओकारात् पर इति ओत्परः, न ओत्पर इति अनोत्परः (पञ्चमीगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, रात्, नः, णः, नस् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां विषये उपसर्गस्य राद् अनोत्परस्य नसो नो णः।

अर्थः-संहितायां विषये उपसर्गस्य रेफाद् उत्तरस्य ओकारपरवर्जितस्य नस् इत्येतस्य च नकारस्य स्थाने णकारादेशो भवति।

उदा०-(नस्) प्रणः शूद्रः। प्रणसः पुरुषः। प्रणो राजा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उपसर्गस्य) उपसर्ग के (रात्) रेफ से परवर्ती (अनोत्परस्य) ओकारपरक से रहित (नस्) नस् इस शब्द के (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-(नस्) **प्रणः** शूद्रः। हम प्रकृष्ट जनों का सेवक। **प्रणसः** पुरुषः। लम्बी नासिकावाला पुरुष। **प्रणो** राजा। हम प्रकृष्ट जनों का राजा।*

***सिद्धि**-(१) **प्रणः**। यहां प्र और अस्मद् शब्दों का '**कुगतिप्रादयः**' (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है। '**बहुवचनस्य वस्नसौ**' (८।१।२१) से 'अस्मत्' के स्थान में 'नस्' आदेश है। इस सूत्र से प्र-उपसर्ग से परवर्ती ओकारपरक से भिन्न 'नस्' (नो) के नकार को णकार आदेश होता है।*

*प्र-आदि शब्दों की '**उपसर्गाः क्रियायोगे**' (१।४।५९) से क्रिया के योग में उपसर्ग संज्ञा है, किन्तु यहां अस्मद् के योग में व्यपदेशिवद्भाव से 'प्र' को उपसर्ग कहा गया है। **अमुख्ये मुख्यवद् व्यवहारो व्यपदेशिवद्भावः**।*

*(२) **प्रणसः**। यहां प्र और नासिका शब्दों का '**अनेकमन्यपदार्थे**' (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। **प्रगता नासिका यस्य स प्रणसः**। '**उपसर्गाच्च**' (५।४।११८) से 'नासिका' शब्द से समासान्त 'अच्' प्रत्यय और 'नासिका' के स्थान में 'नस' आदेश है। इस सूत्र से 'प्र' उपसर्ग के रेफ से परवर्ती 'नस्' के नकार को णकार आदेश होता है।*

***विशेषः** (१) महाभाष्य में '**उपसर्गादनोत्परः**' ऐसा सूत्रपाठ है। पतञ्जलि मुनि ने इस सूत्रपाठ में दोष दिखलाकर '**उपसर्गाद् बहुलम्**' यह सूत्रपाठ स्वीकार किया है। अतः काशिकावृत्ति में '**उपसर्गाद् बहुलम्**' यह सूत्र मानकर व्याख्या की गई है।*

(२) यहां सम्भव प्रमाण से 'रषाभ्याम्' पद से रेफ की अनुवृत्ति की जाती है, षकार का नहीं।

णकारादेशः–

(२८) कृत्यचः ।२८।

प०वि०–कृति ७।१ अचः ५।१।

अनु०–संहितायाम्, रात्, नः, णः, उपसर्गादिति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् उपसर्गस्य राद् अचः कृति नो णः।

अर्थः–संहितायां विषये उपसर्गस्य रेफात् परस्य, अच उत्तरस्य कृत्स्थस्य नकारस्य स्थाने, णकारादेशो भवति। अन-मान-अनीय-अनि-इनि-निष्ठादेशाः प्रयोजयन्ति।

उदा०–**(अन)** प्रयाणम्, परियाणम्। प्रमाणम्, परिमाणम्। **(मान)** प्रयायमाणम्, परियायमाणम्। **(अनीय)** प्रयाणीयम्, परियाणीयम्। **(अनि)** अप्रयाणिः, अपरियाणिः। **(इनि)** प्रयायिणौ, परियायिणौ। **(निष्ठादेशः)** प्रहीणः, परिहीणः। प्रहीणवान्, परिहीणवान्।

आर्यभाषाः अर्थ–*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उपसर्गस्य) उपसर्ग के (रात्) रेफ और {षकार} से परवर्ती (अचः) अच् से उत्तरवर्ती (कृति) कृत् प्रत्यय के (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश होता है। यहां अन, मान, अनीय, अनि, इनि और निष्ठादेश के नकार को णकार आदेश करना प्रयोजन है।*

उदा०–(अन) ***प्रयाणम्।*** *प्रस्थान करना।* ***परियाणम्।*** *सर्वतः गमन करना।* ***प्रमाणम्।*** *लम्बाई मांपना।* ***परिमाणम्।*** *तोलना। (मान)* ***प्रयायमाणम्।*** *प्रस्थान करता हुआ कुल।* ***परियायमाणम्।*** *सर्वतः गमन करता हुआ कुल। (अनीय)* ***प्रयाणीयम्।*** *प्रस्थान करना चाहिये।* ***परियाणीयम्।*** *सर्वतः गमन करना चाहिये। (अनि)* ***अप्रयाणिः।*** *प्रस्थान न हो (आक्रोश)।* ***अपरियाणिः।*** *सर्वतः गमन न हो (आक्रोश)। (इनि)* ***प्रयायिणौ।*** *प्रस्थानशील दो पुरुष।* ***परियायिणौ।*** *सर्वतः गमनशील दो पुरुष। (निष्ठादेश)* ***प्रहीणः।*** *अति हीन।* ***परिहीणः।*** *सर्वतः हीन।* ***प्रहीणवान्, परिहीणवान्।*** *अर्थ पूर्ववत् है।*

सिद्धि–(१) प्रयाणम्। *यहां प्र-उपसर्गपूर्वक* ***'या प्रापणे'*** *(अदा०प०) धातु से* ***'ल्युट् च'*** *(३।३।११५) से भाव अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय है।* ***'युवोरनाकौ'*** *(७।१।१) से 'यु' को 'अन' आदेश है। इस सूत्र से प्र-उपसर्ग के रेफ से परवर्ती और अच् उत्तरवर्ती कृत्-प्रत्यय 'अन' के नकार को णकार आदेश होता है। परि-उपसर्ग में–**परियाणम्।***

(२) ***प्रमाणम्।*** *प्र-उपसर्गपूर्वक* ***'मा माने'*** *(अदा०प०) धातु से* ***'करणाधिकरणयोश्च'*** *(३।३।११७) से करण कारक में 'ल्युट्' प्रत्यय है। परि-उपसर्ग में–**परियाणम्।***

*(३) **प्रयायमाणम्।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'या प्रापणे'** (अदा०प०) धातु कर्मवाच्य में 'शानच्' प्रत्यय है। **'भावकर्मणोः'** (१।३।१३) से आत्मनेपद और **'सार्वधातुके यक्'** (३।१।६७) से 'यक्' विकरण-प्रत्यय है। **'आने मुक्'** (७।२।८२) से मुक् आगम है। परि-उपसर्ग में-**परियायमाणम्।***

*(४) **प्रयाणीयम्।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'या' धातु से **'तव्यत्तव्यानीयरः'** (३।१।९६) से अनीयर् प्रत्यय है। परि-उपसर्गपूर्वक में-**परियाणीयम्।***

*(५) **अप्रयाणिः।** यहां नञ्-उपपद तथा प्र-उपसर्गपूर्वक 'या' धातु से **'आक्रोशे नञ्यनिः'** (३।३।११२) से आक्रोश (कोसना) अर्थ में अनि प्रत्यय है। जैसे कि-**अकरणिस्ते वृषल भूयात्।** हे नीच ! तेरी अणहोणी हो। परि-उपसर्ग में-**अपरियाणिः।***

*(६) **प्रयायिणौ।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'या' धातु से **'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये'** (३।२।७८) से णिनि (इनि) प्रत्यय है। परि-उपसर्ग में-**परियायिणौ।***

*(७) **प्रहीणः।** प्र-उपसर्गपूर्वक **'ओहाक् त्यागे'** (जु०प०) धातु से निष्ठा-संज्ञक 'क्त' प्रत्यय है। **'ओदितश्च'** (८।२।४५) से निष्ठा के तकार को नकार आदेश और **'घुमास्था०'** (६।४।६६) से ईकार आदेश है। परि-उपसर्ग में-**परिहीणः।** क्तवतु-प्रत्यय में-**प्रहीणवान्, परिहीणवान्।***

णकारादेशविकल्पः–

(२६) णेर्विभाषा।२६।

प०वि०-णेः ५।१ विभाषा १।१।

अनु०-संहितायाम्, रात्, नः, णः, उपसर्गात्, कृति, अच इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् उपसर्गस्य राद् णेरचः कृति नो विभाषा णः।

अर्थः-संहितायां विषये उपसर्गस्य रेफात् परस्य ण्यन्ताद् धातोर्विहितस्य, अच उत्तरस्य कृत्प्रत्ययस्य नकारस्य स्थाने, विकल्पेन णकारादेशो भवति।

उदा०-(अन) प्रयापणम्, प्रयापनम्। **(मान)** प्रयाप्यमाणम्, प्रयाप्यमानम्। **(अनीय)** प्रयापणीयम्, प्रयापनीयम्। **(अनि)** अप्रयापणिः, अप्रयापनिः। **(इनि)** प्रयापिणौ, प्रयापिनौ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उपसर्गस्य) उपसर्ग के (रात्) रेफ से परवर्ती (णेः) णिजन्त धातु से विहित, (अचः) अच् से उत्तरवर्ती (कृतिः) कृत्-प्रत्यय के (नः) नकार के स्थान में (विभाषा) विकल्प से (णः) णकार आदेश होता है।*

उदा०-(अन) प्रयापणम्, प्रयापनम्। बिताना। (मान) प्रयाप्यमाणम्, प्रयाप्यमानम्। बिताया जाता हुआ। (अनीय) प्रयापणीयम्, प्रयापनीयम्। बिताना चाहिये। (अनि) अप्रयापणिः, अप्रयापनिः। तेरा समय यापन आदि न हो (आक्रोश)। (इनि) प्रयापिणौ, प्रयापिनौ। समय आदि यापनशील दो पुरुष।

सिद्धि-प्रयापणम्। यहां प्रथम प्र-उपसर्गपूर्वक 'या प्रापणे' (अदा०प०) धातु से 'हेतुमति च' (३।१।२६) से 'णिच्' प्रत्यय है। 'अर्तिह्री०' (७।३।३६) से 'या' को पुक् आगम है। तत्पश्चात् णिजन्त 'यापि' धातु से 'ल्युट् च' (३।३।११५) से भाव अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'यु' को 'अन' आदेश है। 'णेरनिटि' (६।४।५१) से णिच् का लोप होता है। इस सूत्र से प्र-उपसर्ग से परवर्ती णिजन्त प्र+यापि धातु से विहित कृत्-संज्ञक 'अन' प्रत्यय के नकार को णकार आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में णकार आदेश नहीं है।

'प्रयाप्यमाणम्' आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् है। केवल 'या' धातु से णिच् प्रत्यय और पुक् आगम विशेष है।

णकारादेशविकल्पः-

(३०) हलश्चेजुपधात्।३०।

प०वि०-हलः ५।१ च अव्ययपदम्, इजुपधात् ५।१।

स०-इज् उपधा यस्य स इजुपधः, तस्मात्-इजुपधात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-संहितायाम्, रात्, नः, णः, उपसर्गात्, कृति, अचः, विभाषा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् उपसर्गस्य राद् इजुपधात् हलोऽचः कृति नो विभाषा णः।

अर्थः-संहितायां विषये उपसर्गस्य रेफात् परस्माद्, इजुपधद् हलदेर्धातोर्विहितस्याचः परस्य कृत्प्रत्ययस्य नकारस्य स्थाने, विकल्पेन णकारादेशो भवति।

उदा०-प्रकोपणम्, प्रकोपनम्। परिकोपणम्, परिकोपनम्।

आर्यभाषाः* *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उपसर्गस्य) उपसर्ग के (रात्) रेफ से परवर्ती (इजुपधात्) इच् उपधावाले (हलादेः) हलादि धातु से भी उत्तरवर्ती (अचः) अच्-परक से (कृतिः) कृत्-प्रत्यय के (नः) नकार के स्थान में (विभाषा) विकल्प से (णः) णकार आदेश होता है।

*उदा०-**प्रकोपणम्, प्रकोपनम्।** अति क्रोध करना। **परिकोपणम्, परिकोपनम्।** सर्वतः क्रोध करना।*

*सिद्धि-**प्रकोपणम्।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'कुप क्रोधे'** (दि०प०) धातु से **'ल्युट् च'** (३।३।११५) से भाव अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'यु' को 'अन' आदेश है। **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से 'कुप्' धातु को लघूपधलक्षण गुण होता है। इस सूत्र से प्र-उपसर्ग के रेफ से परवर्ती, इच् (ओ) उपधावाले हलादि 'कुप्' धातु से भी उत्तरवर्ती, अच् पूर्ववाले 'अन' कृत्-प्रत्यय के नकार को णकार आदेश होता है। विकल्प-पक्ष में णकार आदेश नहीं है-**प्रकोपनम्।** परि-उपसर्ग में-**परिकोपणम्, परिकोपनम्।***

'कृत्यचः' (८।४।२८) से नित्य णकार आदेश प्राप्त था, अतः यह विकल्प-विधान किया गया है।

णकारादेशः-

(३१) इजादेः सनुमः।३१।

प०वि०-इजादेः ५।१ सनुमः ५।१।

स०-इज् आदिर्यस्य स इजादिः, तस्मात्-इजादेः (बहुव्रीहिः)। नुमा सह वर्तते इति सनुम्, तस्मात्-सनुमः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-संहितायाम्, रात्, नः, णः, उपसर्गात्, कृति, अचः, हल इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् उपसर्गस्य राद् सनुम इजादेर्हलोऽचः कृति नो णः।

अर्थः-संहितायां विषये उपसर्गस्य रेफात् परस्य, सनुम इजादेर्हलन्ताद् धातोर्विहितस्याचः परस्य कृत्प्रत्ययस्य नकारस्य स्थाने, विकल्पेन णकारादेशो भवति।

उदा०-प्रेङ्खणम्, परेङ्खणम्। प्रेङ्गणम्, परेङ्गणम्। प्रोम्भणम्, परोम्भणम्।

***आर्यभाषाः** **अर्थ-**(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उपसर्गस्य) उपसर्ग के (रात्) रेफ से परवर्ती (सनुमः) नुम्-सहित (इजादेः) इजादि (हलः) हलन्त धातु से विहित (अचः) अच् से उत्तरवर्ती (कृति) कृत्-प्रत्यय के (नः) नकार के स्थान में (विभाषा) विकल्प से (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-**प्रेङ्खणम्।** प्रगति करना। **परेङ्खणम्।** दूर हटना। **प्रेङ्गणम्।** प्रगति करना। **परेङ्गणम्।** दूर हटना। **प्रोम्भणम्।** पूरा भरना। **परोम्भणम्।** खाली करना।*

*सिद्धि-**प्रेङ्खणम्।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'इखि गतौ' (भ्वा०प०) धातु से 'ल्युट् च' (३।३।११५) से भाव अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय है। 'इदितो नुम् धातोः' (७।१।५८) से धातु को 'नुम्' आगम है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'यु' को 'अन' आदेश है। इस सूत्र से प्र-उपसर्ग के रेफ से परवर्ती, नुम्-आगम वाले, इजादि और हलन्त 'ईङ्ख्' धातु से विहित 'अन' इस कृत्-प्रत्यय के नकार को णकार आदेश होता है। परा-उपसर्ग में-**परेङ्खणम्।***

*(२) **प्रेङ्गणम्।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'इगि गतौ' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'ल्युट्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। परा-उपसर्ग में-**परेङ्गणम्।***

*(३) **प्रोम्भणम्।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक 'उम्भ पूरणे' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'ल्युट्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। परा-उपसर्ग में-**परोम्भणम्।** 'उम्भ' धातु पाणिनीय धातुपाठ में 'सनुम्' ही पठित है।*

णकारादेशविकल्पः-

(३२) वा निंसनिक्षनिन्दाम्।३२।

प०वि०-वा अव्ययपदम्, निंस-निक्ष-निन्दाम् ६।३।

स०-निंसश्च निक्षश्च निन्द् च ते निंसनिक्षनिन्दः, तेषाम्-निंसनिक्षनिन्दाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, रात्, नः, णः, उपसर्गादिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् उपसर्गस्य राद् निंसनिक्षनिन्दां नो वा णः।

अर्थः-संहितायां विषये उपसर्गस्य रेफात् परेषां, निंसनिक्षनिन्दां धातूनां विकल्पेन णकारादेशो भवति।

उदा०-(निंस्) प्रणिंसनम्, प्रनिंसनम्। **(निक्ष्)** प्रणिक्षणम्, प्रनिक्षणम्। **(निन्द्)** प्रणिन्दनम्, प्रनिन्दनम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उपसर्गस्य) उपसर्ग के (रात्) रेफ से परबर्ती (निंसनिक्षनिन्दाम्) निंस, निक्ष, निन्द इन धातुओं के (नः) नकार के स्थान में (विभाषा) विकल्प से (णः) णकार आदेश होता है।*

*उदा०-(निंस्) **प्रणिंसनम्, प्रनिंसनम्।** अति चुम्बन करना। (निक्ष्) **प्रणिक्षणम्, प्रनिक्षणम्।** अति चुम्बन करना। (निन्द्) **प्रणिन्दनम्, प्रनिन्दनम्।** अति निन्दा करना।*

*सिद्धि-(१) **प्रणिंसणम्।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'णिसि चुम्बने'** (अदा०आ०) धातु से 'ल्युट् च' (३।३।११५) से भाव अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय है। **'इदितो नुम् धातोः'** (७।१।५८) से धातु को 'नुम्' आगम है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'यु' को 'अन' आदेश है। इस सूत्र से प्र-उपसर्ग के रेफ से परवर्ती, धातु के नकार को णकार आदेश होता है। विकल्प पक्ष में णकार आदेश नहीं है-**प्रनिंसनम्।***

*(२) **प्रणिक्षणम्।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'णिक्ष चुम्बने'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्। विकल्प पक्ष में-**प्रनिक्षणम्।***

*(३) **प्रणिन्दनम्।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **णिदि कुत्सायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्। विकल्प पक्ष में-**प्रनिन्दनम्।***

णकारादेशप्रतिषेधः–

(३३) न भाभूपूकमिगमिप्यायीवेपाम्।३३।

प०वि०-न अव्ययपदम्, भा-भू-पू-कमि-गमि-प्यायी-वेपाम् ६।३।

स०-भाश्च भूश्च पूश्च कमिश्च गमिश्च प्यायीश्च वेप् च ते भाभूपूकमिगमिप्यायीवेपः, तेषाम्-भाभूपूकमिगमिप्यायीवेपाम् (इतरेतर-योगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, रात्, नः, णः, उपसर्गात्, कृति, अच इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् उपसर्गस्य रेफाद् भाभूपूकमिगमिप्यायीवेपिभ्योऽचः कृति नो णो न।

अर्थः-संहितायां विषये उपसर्गस्य रेफात् परेभ्यो भाभूपूकमिगमि-प्यायीवेपिभ्यो धातुभ्यो विहितस्याच उत्तरस्य कृत्प्रत्ययस्य नकारस्य स्थाने णकारादेशो भवति। **उदाहरणम्–**

धातुः	उपसर्गः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
१. भा	प्र	प्रभानम्	अति चमकना।
	परि	परिभानम्	सर्वतः चमकना।
२. भू	प्र	प्रभवनम्	उत्पन्न होना।
	परि	परिभवनम्	सर्वत्र होना।

धातुः		उपसर्गः	शब्दरूपम्	भाषार्थः
३.	पू	प्र	प्रपवनम्	अति पवित्र करना।
		परि	परिपवनम्	सर्वतः पवित्र करना।
४.	कमि	प्र	प्रकमनम्	अति कामना करना।
		परि	परिकमनम्	सर्वतः कामना करना।
५.	गमि	प्र	प्रगमनम्	प्रस्थान करना।
		परि	परिगमनम्	सर्वत्र गमन करना।
६.	प्यायी	प्र	प्रप्यायनम्	अति बढ़ना।
		परि	परिप्यायनम्	सर्वतः बढ़ना।
७.	वेप	प्र	प्रवेपनम्	अति कांपना।
		परि	परिवेपनम्	सर्वतः कांपना।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उपसर्गस्य) उपसर्ग के (रात्) रेफ से परवर्ती (भा०) भा, भू, पू, कमि, गमि, प्यायी, वेप् इन धातुओं से विहित (अचः) अच् से उत्तरवर्ती (कृति) कृत्-प्रत्यय के (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश (न) नहीं होता है।*

उदा०-उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में लिखा है।

सिद्धि-(१) प्रभानम्। *यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'भा दीप्तौ'** (अदा०प०) धातु से 'ल्युट् च' (३।३।११५) से भाव अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।१) से 'यु' को 'अन' आदेश है। इस सूत्र से प्र-उपसर्ग के रेफ से परवर्ती, 'अन' कृत्-प्रत्यय के नकार को णकार आदेश का प्रतिषेध होता है। परि-उपसर्ग में-**परिभानम्।***

*(२) **प्रभवनम्।** प्र-उपसर्गपूर्वक **'भू सत्तायाम्'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्। परि-उपसर्ग में-**परिभवनम्।***

*(३) **प्रपवनम्।** प्र-उपसर्गपूर्वक **'पूञ् पवने'** (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत्। परि-उपसर्ग में-**परिपवनम्।***

*(४) **प्रकमनम्।** प्र-उपसर्गपूर्वक **'कमु कान्तौ'** (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत्। परि-उपसर्ग में-**परिकमनम्।***

*(५) **प्रगमनम्।** प्र-उपसर्गपूर्वक **'गम्लृ गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्। परि-उपसर्ग में-**परिकमनम्।***

*(६) **प्रप्यायनम्।** प्र-उपसर्गपूर्वक **'ओप्यायी वृद्धौ'** (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत्। परि-उपसर्ग में-**परिप्यायनम्।***

*(७) **प्रवेपनम्।** प्र-उपसर्गपूर्वक '**टुवेपृ कम्पने**' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत्। परि-उपसर्ग में-**परिवेपनम्।***

यहां सर्वत्र 'कृत्यचः' (८।४।२८) से णकार आदेश प्राप्त था। अतः इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है।

णकारादेशप्रतिषेधः--

(३४) षात् पदान्तात्।३४।

प०वि०-षात् ५।१ पदान्तात् ५।१।

स०-पदेऽन्त इति पदान्तः, तस्मात्-पदान्तात् (सप्तमीतत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, नः, णः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पदान्तात् षाद् नो णो न।

अर्थः-संहितायां विषये पदान्तात् षकारात् परस्य, नकारस्य स्थाने णकारादेशो न भवति।

उदा०-निष्पानम्, दुष्पानम्, सर्पिष्पानम्, यजुष्पानम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदान्तात्) पद परे होने पर जो अन्तिम (षात्) षकार है उससे परवर्ती (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**निष्पानम्।** निर्धारित पानविशेष। **दुष्पानम्।** सुरा आदि निन्दित पान। **सर्पिष्पानम्।** घृत पान। **यजुष्पानम्।** याजुष मन्त्रों से सोमपान।*

सिद्धि-निष्पानम्।** यहां निस्-उपसर्गपूर्वक '**पा पाने**' (भ्वा०प०) धातु से 'ल्युट् च' (३।३।११५) से भाव अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय है। 'निस्' के सकार को '**ससजुषो रुः**' (८।२।६६) से 'रु' आदेश, 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' (८।३।१५) से रेफ को विसर्जनीय और '**इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य**' (८।३।४१) से विसर्जनीय को षकार आदेश है। इस 'निष्' के पदान्त से परवर्ती 'पान' के नकार को इस सूत्र से णकार आदेश का प्रतिषेध होता है। 'पानम्' पद के परे होने पर 'निष्' का षकार पदान्त है-**पदेऽन्तः पदान्तः।** '**कृत्यचः**' (८।४।२८) से णकार आदेश प्राप्त था। अतः इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है। दुस्-उपसर्ग में-**दुष्पानम्।

*(२) **सर्पिष्पानम्।** यहां सर्पिस् और पान शब्दों का षष्ठीतत्पुरुष समास है-**सर्पिषः पानमिति सर्पिष्पानम्।** '**नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य**' (८।३।४५) से 'सर्पिः' के विसर्जनीय को नित्य षकार आदेश है। '**वा भावकरणयोः**' (८।४।१०) से भावलक्षण में णकार आदेश की प्राप्ति थी। अतः इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है।*

*(२) **सर्पिष्पानम्।** यहां यजुष् और पान शब्दों का **'कर्तृकरणे कृता बहुलम्'** (२।१।३१) तृतीयातत्पुरुष समास है। **'वा भावकरणयोः'** (८।४।१०) से करणलक्षण में णकार आदेश प्राप्त था। अतः इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है।*

विशेषः *यहां **'पदेऽन्त इति पदान्तः'** ऐसे सप्तमी तत्पुरुष करने से सर्पिष्केण, सुयजुष्केण आदि प्रयोगों में णकार आदेश का प्रतिषेध नहीं होता है। यहां **'शेषाद्विभाषा'** (५।४।१५४) से समासान्त 'कप्' प्रत्यय है। षष्ठीसमास से सर्पिष्केण आदि में णत्व-प्रतिषेध प्राप्त नहीं होता है।*

णकारादेशप्रतिषेधः–

(३५) नशेः षान्तस्य।३५।

प०वि०-नशेः ६।१ षान्तस्य ६।१।

स०-षोऽन्ते यस्य स षान्तः, तस्य-षान्तस्य (बहुव्रीहिः)।

अनु०-संहितायाम्, रात्, नः, णः, उपसर्गात्, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् उपसर्गस्य रात् षान्तस्य नशेर्नो णो न।

अर्थः-संहितायां विषये उपसर्गस्य रेफात् परस्य, षकारान्तस्य नशेर्धातोर्नकारस्य स्थाने णकारादेशो न भवति।

उदा०–प्रनष्टः, परिनष्टः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उपसर्गस्य) उपसर्ग के (रात्) रेफ से परवर्ती (षान्तस्य) षकारान्त (नशे) नश् धातु के (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०–**प्रनष्टः।** अति नष्ट हुआ। **परिनष्टः।** सर्वतः नष्ट हुआ।*

*सिद्धि-**प्रनष्टः।** यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'णश अदर्शने'** (दि०प०) धातु से 'क्त' प्रत्यय है। **'मस्जिनशोर्झलि'** (७।१।६०) से नुम् आगम, **'व्रश्चभ्रस्ज०'** (८।२।३६) से शकार को षकार, **'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति'** (६।४।२४) से अनुनासिक का लोप और **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) से तकार को टवर्ग टकार आदेश है। इस सूत्र से प्र-उपसर्ग के रेफ से परवर्ती, षकारान्त नश् (नष्) धातु के नकार को णकार आदेश का प्रतिषेध होता है। परि-उपसर्ग में-**परिनष्टः।***

*यहां **'उपसर्गादसमासेऽपि'** (८।४।१४) से णकार आदेश प्राप्त था। अतः इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है।*

णकारादेशप्रतिषेधः–

(३६) पदान्तस्य।३६।

वि०–पदान्तस्य ६।१।

स०–पदस्य अन्त इति पदान्तः, तस्य-पदान्तस्य (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां रषाभ्यां पदान्तस्य नो णो न।

अर्थः–संहितायां विषये रेफषकाराभ्यां परस्य पदान्तस्य नकारस्य स्थाने णकारादेशो न भवति।

उदा०–वृक्षान्, प्लक्षान्, अरीन्, गिरीन्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती (पदान्तस्य) पद के अन्त में विद्यमान (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**वृक्षान्।** वृक्षों को। **प्लक्षान्।** पिलखणों को। **अरीन्।** शत्रुओं को। **गिरीन्।** पर्वतों को।*

*सिद्धि-**वृक्षान्।** यहां 'वृक्ष' शब्द से '**स्वौजस०**' (४।१।२) से 'शस्' प्रत्यय है। '**प्रथमयोः पूर्वसवर्णः**' (६।१।१०२) से पूर्वसवर्ण दीर्घ होकर '**तस्माच्छसो नः पुंसि**' (६।१।१०३) से 'शस्' के सकार को नकार आदेश है। इस सूत्र से 'वृक्षान्' पद में षकार से परवर्ती पदान्त षकार को णकार आदेश का प्रतिषेध होता है। 'प्लक्ष' शब्द से-**प्लक्षान्।** अरि-शब्द से-**अरीन्।** गिरि-शब्द से-**गिरीन्।***

*यहां '**अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि**' (८।४।२) से णकार आदेश प्राप्त था। अतः उसका प्रतिषेध किया गया है।*

णकारादेशप्रतिषेधः–

(३७) पदव्यवायेऽपि।३७।

प०वि०–पदव्यवाये ७।१ अपि अव्ययपदम्।

स०–पदेन व्यवाय इति पदव्यवायः, तस्मिन्-पदव्यवाये (तृतीया-तत्पुरुषः)।

अनु०–संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् रषाभ्यां नः पदव्यवायेऽपि णो न।

अर्थः–संहितायां विषये रेफषकाराभ्यां परस्य नकारस्य स्थाने पदव्यवायेऽपि सति णकारादेशो न भवति।

उदा०–माषकुम्भवापेन, चतुरङ्गयोगेन, प्रावनद्धम्, पर्यवनद्धम्, प्र गां नयामः, परि गां नयामः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती (नः) नकार के स्थान में (पदव्यवाये) पद का व्यवधान होने पर (अपि) भी (णः) णकार आदेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०–**माषकुम्भवापेन।** उड़द का कुम्भ-परिमाण बोनेवाले से। **चतुरङ्गयोगेन।** चार अङ्गोंवाले योग से (यम, नियम, आसन, प्राणायाम)। **प्रावनद्धम्।** अत्यन्त बंधा हुआ। **पर्यवनद्धम्।** सर्वथा बंधा हुआ। **प्र गां नयामः।** हम गौ को यथावत् ले जाते हैं। **परि गां नयामः।** हम गौ को सर्वथा पहुंचाते हैं।*

*सिद्धि-**(१) माषकुम्भवापेन।** यहां माषकुम्भ उपपद **'डुवप बीजसन्ताने छेदने च'** (भ्वा०प०) धातु से **'कर्मण्यण्'** (३।१।१) से 'अण्' प्रत्यय है। इस सूत्र 'माष' के षकार से परवर्ती 'कुम्भ' पद के व्यवधान में 'वापेन' के नकार को णकार आदेश का प्रतिषेध होता है। यहां **'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि'** (८।४।२) से णकार आदेश प्राप्त था। अतः उसका प्रतिषेध किया गया है।*

*(२) **चतुरङ्गयोगेन।** चत्वारि अङ्गानि यस्य स चतुरङ्गः, तेन योग इति चतुरङ्गयोगः, तेन-**चतुरङ्गयोगेन।** 'चतुर्' के रेफ से परवर्ती, अङ्ग पद के व्यवधान में 'योगेन' के नकार को णकार आदेश नहीं होता है। यहां **'कुमति च'** (८।४।१३) से णकार आदेश प्राप्त था। अतः उसका प्रतिषेध किया गया है।*

*(३) **प्रावनद्धम्।** यहां प्र और अव उपसर्गपूर्वक **'णह बन्धने'** (दि०प०) धातु से **'क्त'** प्रत्यय है। इस सूत्र से प्र-उपसर्ग के रेफ से परवर्ती, 'अव' पद के व्यवधान में 'नद्धम्' के नकार को णकार का प्रतिषेध होता है। **'उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य'** (८।४।१४) से णकार आदेश प्राप्त था। अतः उसका प्रतिषेध किया गया है। परि-उपसर्ग में-**पर्यवनद्धम्।***

*(४) **प्र गां नयामः** यहां प्र-उपसर्ग के रेफ से परवर्ती, गाम् पद के व्यवधान में 'नयामः' के नकार को णकार आदेश का प्रतिषेध होता है। परि-उपसर्ग में-**परि गां नयामः।** यह छान्दस प्रयोग है।*

णकारादेशप्रतिषेधः–

(३८) क्षुभ्नादिषु च।३८।

प०वि०–क्षुभ्ना-आदिषु ७।३ च अव्ययपदम्।

स०–क्षुभ्ना आदिर्येषां ते क्षुभ्नादयः, तेषु-क्षुभ्नादिषु (बहुव्रीहिः)।

अनु०–संहितायाम्, रषाभ्याम्, नः, णः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां रषाभ्यां क्षुभ्ना-आदिषु नो णो न।

अर्थः-संहितायां विषये रेफषकाराभ्यां परेषु क्षुभ्नादिषु शब्देषु नकारस्य स्थाने णकारादेशो न भवति।

उदा०-स क्षुभ्नाति। तौ क्षुभ्नीतः। ते क्षुभ्नन्ति। नॄन् (मनुष्यान्) नमयतीति नृनमन इत्यादिकम्।

क्षुभ्नाति। क्षुभ्नीतः। क्षुभ्नन्ति। नृनमन। नन्दिन्। नगर। नरीनृत्यते। तृप्नु। नर्तन। गहन। नन्दन। निवेश। निवास। अग्नि। अनूप। आचार्यादणत्वं च। आचार्यानी। हायन। इरिकादिभ्यो वनोत्तरपदेभ्यः संज्ञायाम्। इरिका। तिमिर। समीर। कुबेर। हरि। कर्मार। इति क्षुभ्नादिराकृतिगणः। अविहितलक्षणो णत्वप्रतिषेधः क्षुभ्नादिषु द्रष्टव्यः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (रषाभ्याम्) रेफ और षकार से परवर्ती (क्षुभ्नादिषु) क्षुभ्ना आदि शब्दों में विद्यमान (नः) नकार के स्थान में (णः) णकार आदेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-स **क्षुभ्नाति**। वह क्रोध करता है। तौ **क्षुभ्नीतः**। वे दोनों क्रोध करते हैं। **ते क्षुभ्नन्ति**। वे सब क्रोध करते हैं। **नृनमन**। नर=नेता जनों का सत्कार करनेवाला, इत्यादि।*

*सिद्धि-(१) **क्षुभ्नाति**। यहां 'क्षुभ सञ्चलने' (क्र्या०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। '**क्र्यादिभ्यः श्ना**' (३।१।८१) से 'श्ना' विकरण-प्रत्यय है। इस सूत्र से 'क्षुभ्' के षकार से परवर्ती 'ना' प्रत्यय के नकार को णकार आदेश का प्रतिषेध होता है। तस्-प्रत्यय में-**क्षुभ्नीतः**। '**ई हल्यघोः**' (६।४।११३) से ईकार आदेश है-**क्षुभ्नन्ति**। '**श्नाभ्यस्तयोरातः**' (६।४।११२) से आकार का लोप है।*

*यहां '**अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि**' (८।४।२) से णकार आदेश प्राप्त था। अतः इस सूत्र स प्रतिषेध किया गया है।*

*(२) **नृनमनः**। यहां नृ उपपद '**णम प्रह्वत्वे शब्दे च**' (भ्वा०प०) इस णिजन्त धातु से '**नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः**' (३।१।१३४) से नन्द्यादिलक्षण 'ल्यु' प्रत्यय और '**युवोरनाकौ**' (७।१।१) से 'यु' को 'अन' आदेश है। ऋकार में रेफश्रुति मानकर '**रषाभ्यां नो णः समानपदे**' (८।४।१) से अथवा वा०-'**ऋवर्णाच्चेति वक्तव्यम्**' (८।४।१) से णकार आदेश प्राप्त था। अतः उसका प्रतिषेध किया गया है।*

विशेषः *क्षुभ्नाति आकृतिगण है। सूत्र से अविहित णकारादेश का प्रतिषेध क्षुभ्नादि गण में समझना चाहिये।*

।। इति णकारादेशप्रकरणम् ।।

{आदेशप्रकरणम्}

शकारचवर्गौ–

(१) स्तोः श्चुना श्चुः।३६।

प०वि०–स्तोः ६।१ श्चुना ३।१ श्चुः १।१।

स०–सश्च तुश्च एतयोः समाहारः स्तुः, तस्य–स्तोः (समाहारद्वन्द्वः)। शश्च चुश्च एतयोः समाहारः श्चुः, तेन–श्चुना (समाहारद्वन्द्वः)। शश्च चुश्च एतयोः समाहारः श्चुः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–संहितायामित्यनुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां स्तोः श्चुना श्चुः।

अर्थः–संहितायां विषये सकारतवर्गयोः स्थाने, शकारचवर्गाभ्यां सह योगे सति, शकारचवर्गावादेशौ भवतः।

'स्तोः श्चुना' इत्यत्र यथासंख्यं योगो नेष्यते। सकारस्य शकारेण चवर्गेण च सह योगे सति शकारादेशो भवति। तवर्गस्यापि शकारेण चवर्गेण च सह योगे सति चवर्गादेशो भवति। आदेशे तु यथासंख्यं विधिरिष्यते–सकारस्य शकारः, तवर्गस्य च चवर्ग आदेशो भवति।

उदा०–(१) **सकारस्य शकारेण सह योगे**–रामश्शेते, देवश्शेते।

(२) **सकारस्य चवर्गेण**–रामश्चिनोति, देवश्चिनोति। रामश्छादयति, देवश्छादयति।

(३) **तवर्गस्य शकारेण**–अग्निचिच्छेते, सोमसुच्छेते।

(४) **तवर्गस्य चवर्गेण**–अग्निचिच्चिनोति, सोमसुच्चिनोति। अग्निचिच्छादयति, सोमसुच्छादयति। अग्निचिज्जयति, सोमसुज्जयति। अग्निचिज्झटिति, सोमसुज्झटिति। अग्निचिञ्ञमङ्गणनम्। सोमसुञ्ञमङ्गणनम्।

(५) **मस्जेः**–मज्जति। **भ्रस्जेः**–भृज्जति। **व्रश्चेः**–वृश्चति। **यजेः**–यज्ञः। **याचेः**–याच्ञा।

आर्यभाषाः *अर्थ–(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (स्तोः) सकार और तवर्ग के स्थान में (श्चुना) शकार और चवर्ग के साथ योग होने पर (श्चुः) शकार और चवर्ग आदेश होता है।*

यहां सकार-तवर्ग का शकार-चवर्ग के साथ यथासंख्य योग अभीष्ट नहीं है। सकार का शकार और चवर्ग के साथ योग होने पर शकार आदेश होता है। तवर्ग का भी शकार और चवर्ग के साथ योग होने पर चवर्ग आदेश होता है। आदेश में तो यथासंख्य विधि अभीष्ट है। सकार के स्थान में शकार और तवर्ग के स्थान में चवर्ग आदेश होता है।

उदा०-(१) **सकार का शकार के साथ योग में-रामस्+शेते=रामश्शेते।** राम सोता है। **देवस्+शेते=देवश्शेते।** देव सोता है।

(२) **शकार का चवर्ग के साथ-रामस्+चिनोति=रामश्चिनोति।** राम चुनता है। **देवस्+चिनोति=देवश्चिनोति।** देव चुनता है। **रामस्+छादयति=रामश्छादयति।** राम आच्छादित करता है। **देवस्+छादयति=देवश्छादयति।** देव आच्छादित करता है।

(३) **तवर्ग का शकार के साथ-अग्निचित्+शेते=अग्निचिच्छेते।** अग्निचित् सोता है। **सोमसुत्+शेते=सोमसुच्छेते।** सोमसुत् सोता है।

(४) **तवर्ग का चवर्ग के साथ-अग्निचित्+चिनोति=अग्निचिच्चिनोति।** अग्निचित् चुनता है। **सोमसुत्+चिनोति=सोमसुच्चिनोति।** सोमसुत् चुनता है। **अग्निचित्+छादयति=अग्निचिच्छादयति।** अग्निचित् आच्छादित करता है। **सोमसुत्+छादयति=सोमसुच्छादयति।** सोमसुत् आच्छादित करता है। **अग्निचित्+जयति=अग्निचिज्जयति।** अग्निचित् जीतता है। **सोमसुत्+जयति=सोमसुज्जयति।** सोमसुत् जीतता है। **अग्निचित्+झटिति=अग्निचिज्झटिति।** अग्निचित् जल्दी (आ)। **सोमसुत्+झटिति=सोमसुज्झटिति।** सोमसुत् जल्दी (आ)। **अग्निचित्+ञमङ्णनम्=अग्निचिञ्ञमङ्णनम्।** अग्निचित् ञमङ्णनम् (पढ़ता है)। **सोमसुत्+ञमङ्णनम्=सोमसुञ्ञमङ्णनम्।** सोमसुत् ञमङ्णनम् (पढ़ता है)।

(५) **मस्जि-मज्जति।** शुद्ध होता है, स्नान करता है। **भ्रस्जि-भृज्जति।** पकाता है। **व्रश्चि-वृश्चति।** काटता है। **यजि-यज्ञः।** देवपूजा, संगतिकरण और दान करना। **याचि-याच्ञा।** मांगना।

सिद्धि-(१) **रामश्शेते।** यहां 'राम' शब्द से **'स्वौजस०'** (४।१।२) से 'सु' प्रत्यय है। **'ससजुषो रुः'** (८।२।६६) से सकार को 'रु' आदेश, **'खरवसानयोर्विसर्जनीयः'** (८।३।१५) से रेफ को खर्लक्षण विसर्जनीय आदेश और **'विसर्जनीयस्य सः'** (८।३।३४) से विसर्जनीय को सकार आदेश है। इस सूत्र से सकार के स्थान में शकार के साथ योग में शकार आदेश होता है। ऐसे ही-**देवश्शेते।** चवर्ग के योग में-**रामश्चिनोति, देवश्चिनोति। रामश्छादयति, देवश्छादयति।**

(२) **अग्निचिच्छेते।** अग्निचित्+शेते। अग्निचित्+छेते। अग्निचिच्+छेते। अग्निचिच्छेते।

यहां **'शश्छोऽटि'** (८।४।६३) से शकार को छकार आदेश होकर इस सूत्र से तकार को चवर्ग चकार आदेश होता है। ऐसे ही-**सोमसुच्छेते।**

*(३) **अग्निचिज्जयति।** यहां **'झलां जशोऽन्ते'** (८।२।३९) से तकार को जश् दकार होकर इस सूत्र से दकार को चवर्ग जकार आदेश होता है।*

*(४) **अग्निचिञ्ञमङ्गनम्।** यहां **'झलां जशोऽन्ते'** (८।२।३९) से तकार को दकार आदेश होकर इस सूत्र से दकार को चवर्ग अनुनासिक ञकार आदेश होता है।*

*(५) **मज्जति।** यहां **'टुमस्जो शुद्धौ'** (तु०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय और लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश है। मस्ज्+अ+ति, इस स्थिति में **'झलां जश् झशि'** (८।४।५२) से सकार को जश् दकार और इस सूत्र से दकार को चवर्ग जकार आदेश होता है। ऐसे ही **'भ्रस्ज पाके'** (तु०उ०) धातु से-**भृज्जति। 'ग्रहिज्यावयि०'** (६।१।१६) से रेफ को ऋ-सम्प्रसारण है। **'ओव्रश्चू छेदने'** (तु०प०) धातु से-**व्रश्चति।***

*(६) **यज्ञः।** यहां यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु च' (भ्वा०उ०) धातु से **'यज-याचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्'** (३।३।९०) से 'नङ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से प्रत्यय के नकार को चवर्ग ञकार आदेश होता है-यज्+ञ+सु=यज्ञः। **'टुयाचृ याच्ञायाम्'** (भ्वा०उ०) धातु से-**याच्ञा। 'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय है। **'याच्ञा स्त्रियाम्'** (लिङ्गानुशासन २।६) से 'याच्ञा' शब्द स्त्रीलिङ्ग है।*

षकारटवर्गौ–

(२) ष्टुना ष्टुः।४०।

प०वि०–ष्टुना ३।१ ष्टुः १।१।

स०–षश्च टुश्च एतयोः समाहारः ष्टुः, तेन-ष्टुना (समाहारद्वन्द्वः)। षश्च टुश्च एतयोः समाहारः ष्टुः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–संहितायाम्, स्तोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां स्तोः ष्टुना ष्टुः।

अर्थः–संहितायां विषये सकारतवर्गयोः स्थाने, षकारटवर्गाभ्यां सह योगे सति, षकारटवर्गावादेशौ भवतः।

'स्तोः ष्टुना' इत्यत्र यथासंख्यं योगो नेष्यते। सकारस्य षकारेण टवर्गेण च सह योगे सति षकारादेशो भवति। तवर्गस्यापि षकारेण टवर्गेण च सह योगे सति टवर्गादेशो भवति। आदेशे तु यथासंख्यं विधिरिष्यते-सकारस्य षकारः, तवर्गस्य च टवर्ग आदेशो भवति।

उदा०–(१) सकारस्य षकारेण सह योगे–वृक्षाष्षट्, प्लक्षाष्षट्।

(२) **सकारस्य टवर्गेण**-रामष्टीकते, देवष्टीकते। रामष्ठक्कुरः, देवष्ठक्कुरः।

(३) **तवर्गस्य षकारेण**-पेष्टा, पेष्टुम्, पेष्टव्यम्। स कृषीष्ट। त्वं कृषीष्ठाः।

(४) **तवर्गस्य टवर्गेण**-अग्निचिट्टीकते, सोमसुट्टीकते। अग्निचिट्ठक्कुरः, सोमसुट्ठक्कुरः। अग्निचिड्डयते, सोमसुड्डयते। अग्निचिड्ढौकते, सोमसुड्ढौकते। अग्निचिण्णकारः, सोमुसुण्णकारः।

(५) अट्टते। अड्डति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) संधि-विषय में (स्तोः) सकार और तवर्ग के स्थान में (ष्टुना) षकार और टवर्ग के साथ योग होने पर (ष्टुः) षकार और टवर्ग आदेश होता है।*

यहां सकार-टवर्ग का षकार-टवर्ग के साथ यथासंख्य योग अभीष्ट नहीं है। सकार का षकार और टवर्ग के साथ योग होने पर षकार आदेश होता है। तवर्ग का भी षकार और टवर्ग के साथ योग होने पर टवर्ग आदेश होता है। आदेश में तो यथासंख्य विधि अभीष्ट है। सकार के स्थान में षकार और तवर्ग के स्थान में टवर्ग आदेश होता है।

*उदा०-(१) **सकार का षकार के साथ योग में-वृक्षाष्षट्।** छः वृक्ष हैं। **प्लक्षाष्षट्।** छः पिलखण हैं।*

*(२) **सकार का टवर्ग के साथ-रामष्टीकते।** राम जाता है। **देवष्टीकते।** देव जाता है। **रामष्ठक्कुरः।** राम देवता-प्रतिमा रूप है। **देवष्ठक्कुरः।** देव प्रतिमा रूप है।*

*(३) **तवर्ग का षकार के साथ-पेष्टा।** पीसनेवाला। **पेष्टुम्।** पीसने के लिये। **पेष्टव्यम्।** पीसना चाहिये। **स कृषीष्ट।** वह करे। **त्वं कृषीष्ठाः।** तू कर।*

*(४) **तवर्ग का टवर्ग के साथ-अग्निचिट्टीकते।** अग्निचित् जाता है। **सोमसुट्टीकते।** सोमसुत् जाता है। **अग्निचिट्ठक्कुरः।** अग्निचित् ठाकुर है। **सोमसुट्ठक्कुरः।** सोमसुत् ठाकुर है। **अग्निचिड्डयते।** अग्निचित् विमान से उड़ता है। **सोमसुड्डयते।** सोमसुत् विमान से उड़ता है। **अग्निचिड्ढौकते।** अग्निचित् जाता है। **सोमसुड्ढौकते।** सोमसुत् जाता है, ढुका करता है। **अग्निचिण्णकारः।** अग्निचित् कल्याणकारी है। **सोमुसुण्णकारः।** सोमसुत् कल्याणकारी है। णः=शिवः।*

*(५) **अट्टते।** वह अतिक्रमण करता है। **अड्डति।** वह संयोजन करता है।*

*सिद्धि-(१) **वृक्षाष्षट्।** वृक्षास्+षट्, इस स्थिति में 'ससजुषो रुः' (८।२।६६) से सकार को 'रु' आदेश और **'खरवसानयोर्विसर्जनीयः'** (८।३।१५) से खर्लक्षण*

*विसर्जनीय आदेश होकर 'विसर्जनीयस्य सः' (८।३।३४) से विसर्जनीय को सकार आदेश होता है। इस सूत्र से षकार के योग में सकार को षकार आदेश होता है। ऐसे ही-**प्लक्षाष्षट्।***

*(२) **रामष्टीकते।** रामस्+टीकते, इस स्थिति में इस सूत्र से सकार को टवर्ग के योग में षकार आदेश होता है। ऐसे ही-**देवष्टीकते। रामष्ठक्कुरः, देवष्ठक्कुरः।***

*(३) **पेष्टा।** यहां **'पिष्लृ पेषणे'** धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से षकार के योग में तकार को टकार आदेश होता है। तुमुन्-प्रत्यय में-**पेष्टुम्।** तव्यत्-प्रत्यय में-**पेष्टव्यम्।***

*(४) **कृषीष्ट।** यहां 'डुकृञ् करणे' (तना०उ०) धातु से 'लिङ्' प्रत्यय, लकार के स्थान में आत्मनेपद 'त' आदेश, **'लिङः सीयुट्'** (३।४।१०२) से सीयुट् और **'सुट् तिथोः'** (३।४।१०७) से 'सुट्' आगम है। **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) से उभयत्र षत्व होता है। इस सूत्र से षकार के योग में तकार को टवर्ग टकार आदेश होता है। 'थास्' प्रत्यय में-**कृषीष्ठाः।***

*(५) **अग्निचिट्टीकते।** अग्निचित्+टीकते, इस स्थिति में इस सूत्र से टकार के योग में तकार को टवर्ग टकार आदेश होता है। **सोमसुत्+टीकते=सोमसुट्टीकते।***

*(६) **अग्निचिट्ठक्कुरः।** अग्निचित्+ठक्कुरः, इस स्थिति में इस सूत्र से ठकार के योग में तकार को टवर्ग ठकार आदेश होता है। **सोमसुत्+ठक्कुरः=सोमसुट्ठक्कुरः।***

*(७) **अग्निचिड्डयते।** अग्निचित्+डयते, इस स्थिति में प्रथम **'झलां जश् झशि'** (८।४।५३) से तकार को जश् दकार होकर इस सूत्र से दकार को टवर्ग डकार आदेश होता है। **सोमसुत्+डयते=सोमसुड्डयते। अग्निचित्+ढौकते=अग्निचिड्ढौकते। सोमसुत्+ढौकते=सोमसुड्ढौकते। अग्निचित्+णकार। अग्निचिद्+णकार=अग्निचिण्णकारः।** यहां प्रथम **'झलां जशोऽन्ते'** (८।२।३९) से तकार को जश् दकार होकर इस सूत्र से दकार को टवर्ग णकार आदेश होता है। **सोमसुत्+णकार। सोमसुद्+णकार=सोमसुण्णकारः।***

*(८) **अट्टते।** यहां अट्ट {अत्ट} **'अतिक्रमणहिंसनयोः'** (भ्वा०प०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। धातुपाठ में पठित 'अट्ट' धातु मूलतः 'अत्ट्' है। इस सूत्र से तकार को टवर्ग टकार आदेश होता है। ऐसे ही **'अड्ड (अत्ड) अभियोगे'** (भ्वा०प०) धातु से-**अड्डति।***

षकारटवर्गप्रतिषेधः—

(३) न पदान्ताट्टोरनाम्।४१।

प०वि०-न अव्ययपदम्, पदान्तात् ५।१ टोः ६।१ अनाम् १।१ (षष्ठ्यर्थे)।

स०-पदस्य अन्त इति पदान्तः, तस्मात्-पदान्तात् (षष्ठीतत्पुरुषः)। न नाम् इति अनाम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, स्तोः, ष्टुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पदान्ताट्टोरनाम् स्तोः ष्टुर्नः।

अर्थः-संहितायां विषये पदान्ताट्टवर्गात् परस्य, नाम्वर्जितस्य सकारस्य तवर्गस्य च स्थाने, षकारटवर्गावादेशौ न भवतः।

उदा०-श्वलिट् सरति। मधुलिट् तरति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदान्तात्) पद के अन्त में विद्यमान (टोः) टवर्ग से परवर्ती (अनाम्) नाम् से भिन्न (स्तोः) सकार और तवर्ग के स्थान में (ष्टुः) षकार और टवर्ग आदेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**श्वलिट् सरति।** कुत्ते चाटनेवाला (घोरी) पड़ा-पड़ा सरकता है। **मधुलिट् तरति।** मधु चाटनेवाला तैरता है।*

*सिद्धि-**श्वलिट् सरति।** श्वलिट् के पदान्त टकार से परवर्ती 'सरति' के सकार को इस सूत्र से षकार आदेश का प्रतिषेध होता है। ऐसे ही **मधुलिट् तरति** में तकार को टकार आदेश का प्रतिषेध है। 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४१) से षकार और टकार आदेश प्राप्त था। अतः यह प्रतिषेध किया गया है।*

*'नाम्' का निषेध इसलिये किया है कि यहां प्रतिषेध न हो-**षड्+नाम्=षण्णाम्।***

टवर्गप्रतिषेधः-

(४) तोः षि।४२।

प०वि०-तोः ६।१ षि ७।१।

अनु०-संहितायाम्, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां तोः षि न।

अर्थः-संहितायां विषये तवर्गस्य स्थाने, षकारे परतो यदुक्तं तन्न भवति। टवर्गादेशो न भवतीत्यर्थः।

उदा०-अग्निचित्षण्डः। भवान् षण्डः। महान् षण्डः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (तोः) तवर्ग के स्थान में (षि) षकार परे रहने पर (न) जो कहा है वह नहीं होता है, अर्थात् टवर्ग आदेश नहीं होता है।*

*उदा०–अग्निचित्षण्डः । अग्निचित् नपुंसक है। **भवान् षण्डः** । आप नपुंसक हैं। **महान् षण्डः** । बड़ा नपुंसक।*

*सिद्धि–अग्निचित्षण्डः । यहां अग्निचित् के तकार को षण्ड के षकार के योग में इस सूत्र से टवर्ग आदेश का प्रतिषेध होता है। 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४१) से टवर्ग आदेश प्राप्त था। अतः इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है। ऐसे ही–**भवान् षण्डः, महान् षण्डः** ।*

उक्तप्रतिषेधः–

(५) शात्।४३।

वि०–शात् ५।१।

अनु०–संहितायाम्, न, तोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां शात् तोर्न।

अर्थः–संहितायां विषये शकारात् परस्य तवर्गस्य स्थाने यदुक्तं तन्न भवति। **'स्तोः श्चुना श्चुः'** (८।४।३९) इति चवर्गादेशो न भवतीत्यर्थः।

उदा०–प्रश्नः । विश्नः ।

आर्यभाषाः *अर्थ–(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (शात्) शकार से परवर्ती (तोः) तवर्ग के स्थान में (न) जो कहा है, वह नहीं होता है, अर्थात् 'स्तोः श्चुना श्चुः' (८।४।३९) से प्राप्त चवर्ग आदेश नहीं होता है।*

*उदा०–**प्रश्नः** । पूछना। **विश्नः** । गति करना।*

*सिद्धि–**प्रश्नः** । यहां 'प्रछ ज्ञीप्सायाम्' (भ्वा०प०) धातु से **'यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्'** (३।३।९०) से 'नङ्' प्रत्यय है। **'छ्वोः शूडनुनासिके च'** (६।४।१९) से छकार को शकार आदेश है। प्रश्+न, इस स्थिति में इस सूत्र से शकार के योग में तवर्ग नकार को चवर्ग ञकार आदेश का प्रतिषेध होता है। **'विछ गतौ'** (तु०प०) धातु से–**विश्नः** ।*

अनुनासिकादेशविकल्पः–

(६) यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा।४४।

प०वि०–यरः ६।१ अनुनासिके ७।१ अनुनासिकः १।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०–संहितायाम् इत्यनुवर्तते। **'न पदान्ताट्टोरनाम्'** (८।४।४१) इत्यस्माच्च पदान्तादिति मण्डूकोत्प्लुत्याऽनुवर्तनीयम्।

अन्वयः-संहितायां पदान्तस्य यरोऽनुनासिके वाऽनुनासिकः।

अर्थः-संहितायां विषये पदान्तस्य यरः स्थानेऽनुनासिके परतो विकल्पेन अनुनासिकादेशो भवति।

उदा०-वाग्नयति, वाङ्नयति। श्वलिड् नयति, श्वलिण्नयति। अग्निचिद् नयति, अग्निचिन्नयति। त्रिष्टुब् नयति, त्रिष्टुम् नयति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदान्तस्य) पद के अन्त में विद्यमान (यरः) यर् वर्ण के स्थान में (अनुनासिके) अनुनासिक वर्ण परे होने पर (वा) विकल्प से (अनुनासिकः) अनुनासिक आदेश होता है।*

*उदा०-**वाग्नयति, वाङ्नयति।** वेदवाणी सन्मार्ग पर ले जाती है। **श्वलिड् नयति, श्वलिण् नयति।** कुत्ते चाटनेवाला ले जाता है। **अग्निचिद् नयति, अग्निचिन्नयति।** अग्निचित् ले जाता है। **त्रिष्टुब् नयति, त्रिष्टुम् नयति।** त्रिष्टुप् ले जाता है।*

*सिद्धि-**वाग्नयति।** यहां वाग्+नयति, इस स्थिति में इस सूत्र से यर् वर्ण (ग्) को अनुनासिक वर्ण (न) परे होने पर अनुनासिक आदेश नहीं है-**वाङ्नयति।** गकार को 'स्थानेऽन्तरतमः' (१।१।५०) से स्थानकृत आन्तर्य से ङकार अनुनासिक होता है। 'ङञणनमाः स्वस्थाननासिकास्थानाः' (पा०शि० १।२०)। ऐसे ही-**श्वलिड् नयति, श्वलिण्नयति** आदि।*

द्विर्वचनम्-

(७) अचो रहाभ्यां द्वे।४५।

प०वि०-अचः ५।१ रहाभ्याम् ५।२ द्वे १।२।

स०-रश्च हश्च तौ रहौ, ताभ्याम्-रहाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, यर इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् अचो रहाभ्यां यरो द्वे।

अर्थः-संहितायां विषयेऽचः पराभ्यां रेफहकाराभ्याम् उत्तरस्य यरो द्वे भवतः।

उदा०-अर्क्कः। मर्क्कः। आर्य्यः। ब्रह्म्मा। अपह्न्नुते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अचः) अच् वर्ण से परवर्ती (रहाभ्याम्) रेफ और हकार वर्ण से उत्तर जो (यरः) यर् वर्ण है उसे (द्वे) द्वित्व होता है।*

*उदा०-**अर्क्क:**। सूर्य/आक। **मर्क्क:**। बन्दर। **आर्य्य:**। ईश्वरपुत्र। **ब्रह्म्मा**। प्रजापति। **अपह्न्नुते**। वह हटाता है।*

***सिद्धि-अर्क्क:**। यहां अकार अच् वर्ण से परवर्ती रेफ से उत्तर जो यर् वर्ण (क्) है उसे इस सूत्र से द्विर्वचन होता है। ऐसे ही-**मर्क्क:** आदि।*

द्विर्वचनम्-

(८) अनचि च।४६।

प०वि०-अनचि ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-न अज् इति अनच्, तस्मिन्-अनचि (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, यरः, अचः, द्वे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् अचो यरोऽनचि च द्वे।

अर्थः-संहितायां विषयेऽचः परस्य यरोऽनचि परतश्च द्वे भवतः।

उदा०-दद्ध्यत्र। मद्ध्वत्र।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अचः) अच् वर्ण से परवर्ती (यरः) यर् वर्ण को (अनचि) अच् से भिन्न (हल्) वर्ण परे होने पर (च) भी (द्वि) द्वित्व होता है।*

*उदा०-**दद्ध्यत्र**। दही यहां है। **मद्ध्वत्र**। मधु यहां है।*

***सिद्धि-दद्ध्यत्र**। यहां अकार अच् वर्ण से परवर्ती धकार यर् वर्ण को अनच् (हल्) वर्ण (य्) परे होने पर द्वित्व होता है-**दध्ध् यत्र**। 'झलां जश् झशि' (८।४।५३) से पूर्ववर्ती धकार को धकार झश् वर्ण परे होने पर जश् दकार आदेश है-**दद्ध्यत्र**। ऐसे ही-**मधु+अत्र=मद्ध्वत्र**।*

द्विर्वचनप्रतिषेधः-

(९) नादिन्याक्रोशे पुत्रस्य।४७।

प०वि०-न अव्ययपदम्, आदिनी १।१ (सप्तम्यर्थे), आक्रोशे ७।१ पुत्रस्य ६।१।

अनु०-संहितायाम्, द्वे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां पुत्रस्याऽऽदिनी द्वे न, आक्रोशे।

अर्थः-संहितायां विषये पुत्रशब्दस्याऽऽदिनीशब्दे परतो द्वे न भवतः, आक्रोशे गम्यमाने।

उदा०–पुत्रादिनी त्वमसि पापे।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पुत्रस्य) पुत्र शब्द को (आदिनी) आदिनी शब्द परे रहने पर (द्वि) द्विर्वचन (न) नहीं होता है, (आक्रोशे) यदि वहां निन्दा अर्थ की अभिव्यक्ति हो।*

*उदा०-**पुत्रादिनी त्वमसि पापे।** हे पापिनी ! तू पुत्रों को खानेवाली (डाण) है।*

*सिद्धि-**पुत्रादिनी।** यहां 'पुत्र' शब्द में अच् वर्ण (उ) से परवर्ती यर् वर्ण (त्) को अनच् वर्ण (र्) परे रहते द्विर्वचन नहीं होता है। '**अनचि च**' (८।४।४६) से द्विर्वचन प्राप्त था। अतः इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है।*

*'**पुत्रादिनी**' शब्द में पुत्र-उपपद '**अद भक्षणे**' (अदा०प०) धातु से '**सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये**' (३।२।७८) से तच्छील अर्थ में 'णिनि' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में '**ऋन्नेभ्यो ङीप्**' (४।१।५) से 'ङीप्' प्रत्यय है।*

द्विर्वचनप्रतिषेधः–

(१०) शरोऽचि।४८।

प०वि०–शरः ६।१ अचि ७।१।

अनु०–संहितायाम्, द्वे, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां शरोऽचि द्वे न।

अर्थः–संहितायां विषये शरोऽचि परतो द्वे न भवतः।

उदा०–आदर्शः, अक्षदर्शः। कर्षति, वर्षति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (शरः) शर् वर्ण को (अचि) अच् वर्ण परे रहने पर (द्वि) द्विर्वचन (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**आदर्शः।** दर्पण (शीशा)। **अक्षदर्शः।** पासे को देखनेवाला। **कर्षति।** वह खैंचता है। **वर्षति।** वह बरसता है।*

*सिद्धि-**आदर्शः।** यहां इस सूत्र से अच् वर्ण (अ) परक शर् वर्ण (श्) को द्वित्व का प्रतिषेध होता है। '**अचो रहाभ्यां द्वे**' (८।४।४५) से द्विर्वचन प्राप्त था, अतः इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है। ऐसे ही-**अक्षदर्शः, कर्षति, वर्षति।***

द्विर्वचनप्रतिषेधः–

(११) त्रिप्रभृतिषु शाकटायनस्य।४९।

प०वि०–त्रिप्रभृतिषु ७।३ शाकटायनस्य ६।१।

स०–त्रयः प्रभृतिर्येषां ते त्रिप्रभृतयः, तेषु-त्रिप्रभृतिषु (बहुव्रीहिः)।

अनु०-संहितायाम्, द्वे, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां त्रिप्रभृतिषु शाकटायनस्य द्वे न।

अर्थः-संहितायां विषये त्रिप्रभृतिषु संयुक्तेषु वर्णेषु परतः, शाकटायनस्याचार्यस्य मतेन द्वे न भवतः।

उदा०-इन्द्रः, चन्द्रः, उष्ट्रः, राष्ट्रम्, भ्राष्ट्रम्।

***आर्यभाषाः* अर्थ**-*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (त्रिप्रभृतिषु) तीन-आदि संयुक्त वर्णों में (शाकटायनस्य) शाकटायन आचार्य के मत में (द्वे) द्विर्वचन (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**इन्द्रः**। राजा। **चन्द्रः**। चांद। **उष्ट्रः**। ऊंट। **राष्ट्रम्**। राज्य। **भ्राष्ट्रम्**। भाड़।*

सिद्धि-इन्द्रः। *यहां न् द् र् ये तीन संयुक्त वर्ण हैं। इस सूत्र से इन संयुक्त-वर्णों में द्वित्व का प्रतिषेध होता है। शाकटायन का ग्रहण पूजा के लिये किया गया है, अतः पाणिनि मुनि और शाकटायन आचार्य का इस विषय में समान मत है। ऐसे ही-**चन्द्रः** आदि।*

यहां 'अनचि च' (८।४।४६) से द्वित्व प्राप्त था, अतः इस सूत्र से प्रतिषेध किया गया है।

द्विर्वचनप्रतिषेधः-

(१२) सर्वत्र शाकल्यस्य।५०।

प०वि०-सर्वत्र अव्ययपदम्, शाकल्यस्य ६।१।

अनु०-संहितायाम्, द्वे, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां सर्वत्र शाकल्यस्य द्वे न।

अर्थः-संहितायां विषये सर्वत्र शाकल्यस्याचार्यस्य मतेन द्वे न भवतः।

उदा०-अर्कः, मर्कः, आर्यः, ब्रह्मा, अपह्नुते।

***आर्यभाषाः* अर्थ**-*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (सर्वत्र) सब स्थानों में (शाकल्यस्य) शाकल्य आचार्य के मत में (द्वे) द्विर्वचन (न) नहीं होता है।*

*उदा०-**अर्कः**। सूर्य। **मर्कः**। बन्दर। **आर्यः**। ईश्वरपुत्र। **ब्रह्मा**। प्रजापति। **अपह्नुते**। वह हटाता है।*

सिद्धि-अर्कः। *यहां अच् वर्ण से परवर्ती रेफ और उससे उत्तरवर्ती ककार को इस सूत्र से शाकल्य आचार्य के मत में द्वित्व नहीं होता है। **'अचो रहाभ्यां द्वे'** (८।४।४५) से द्विर्वचन प्राप्त था। अतः इस सूत्र से शाकल्य आचार्य के मत में प्रतिषेध किया गया है।*

द्विर्वचनप्रतिषेधः–

(१३) दीर्घादाचार्याणाम्।५१।

प०वि०–दीर्घात् ५।१ आचार्याणाम् ६।३।

अनु०–संहितायाम्, द्वे, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां दीर्घाद् आचार्याणां द्वे न।

अर्थः–संहितायां विषये दीर्घात् परस्य वर्णस्याचार्याणां मतेन द्वे न भवतः।

उदा०–दात्रम्, पात्रम्, सूत्रम्, मूत्रम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (दीर्घात्) दीर्घ से परवर्ती वर्ण को (आचार्याणाम्) पाणिनि मुनि के आचार्य (गुरुवरवर्ष) के मत में (द्वे) द्विर्वचन (न) नहीं होता है।*

*उदा०–**दात्रम्**। दाती। **पात्रम्**। बर्तन। **सूत्रम्**। सूत। **मूत्रम्**। पेशाब।*

*सिद्धि–**दात्रम्**। यहां दीर्घ आकार से परवर्ती यर् तकार को अनच् (हल्) रेफ वर्ण परे होने पर पाणिनि मुनि के आचार्यप्रवरवर्ष के मत में द्वित्व नहीं होता है। ऐसे ही-**पात्रम्**, आदि।*

विशेषः *पाणिनीय अष्टाध्यायी में '**आचार्याणाम्**' इस पद से पाणिनि मुनि के गुरुवर (वर्ष आचार्य) का ग्रहण किया जाता है। बहुवचन में निर्देश आदर का द्योतक है-**आदरार्थं बहुवचनम्**।*

जशादेशः–

(१४) झलां जश् झशि।५२।

प०वि०–झलाम् ६।३ जश् १।१ झशि ७।१।

अनु०–संहितायामित्यनुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां झलां झशि जश्।

अर्थः–संहितायां विषये झलां स्थाने झशि परतो जशादेशो भवति।

उदा०–लब्धा, लब्धुम्, लब्धव्यम्। दोग्धा, दोग्धुम्, दोग्धव्यम्। बोद्धा, बोद्धुम्, बोद्धव्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (झलाम्) झल् वर्णों के स्थान में (झशि) झश् वर्ण परे रहने पर (जश्) जश् आदेश होता है।*

*उदा०–**लब्धा**। प्राप्त करनेवाला। **लब्धुम्**। प्राप्त करने के लिये। **लब्धव्यम्**। प्राप्त करना चाहिये। **दोग्धा**। दुहनेवाला। **दोग्धुम्**। दुहने के लिये। **दोग्धव्यम्**। दुहना चाहिये। **बोद्धा**। जाननेवाला। **बोद्धुम्**। जानने के लिये। **बोद्धव्यम्**। जानना चाहिये।*

*__सिद्धि-(१)__ लब्धा। यहां '__डुलभष् प्राप्तौ__' (भ्वा०आ०) धातु से '__ण्वुल्तृचौ__' (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। '__झषस्तथोर्धोऽधः__' (८।२।४०) से 'तृच्' के तकार को धकार आदेश होकर इस सूत्र से 'लभ्' के झल् भकार को जश् बकार आदेश होता है। तुमुन् प्रत्यय में-**लब्धुम्**। तव्यत् प्रत्यय में–**लब्धव्यम्**।*

*(२) **दोग्धा**। यहां '__दुह प्रपूरणे__' (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। '__दादेर्धातोर्घः__' (८।२।३२) से 'दुह' धातु के हकार को घकार और पूर्ववत् तकार को धकार आदेश होकर इस सूत्र से झल् घकार को जश् गकार आदेश होता है। तुमुन् प्रत्यय में-**दोग्धुम्**। तव्यत् प्रत्यय में-**दोग्धव्यम्**।*

*(३) **बोद्धा**। यहां '__बुध अवगमने__' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। पूर्ववत् तकार को धकार आदेश होकर इस सूत्र से झल् धकार को जश् दकार आदेश होता है। तुमुन् प्रत्यय में–**बोद्धुम्** तव्यत् प्रत्यय में–**बोद्धव्यम्**।*

__विशेषः__ झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स, ह ये २४ वर्ण झल् हैं। इनके स्थान में झश् अर्थात् झ, भ, घ, द, ध वर्ण परे रहने पर जश् अर्थात् ज, ब, ग, ड, द वर्ण आदेश होते हैं। यहां झल् वर्णों के स्थान में उनके स्थानकृत आन्तर्य (सादृश्य) से जश् वर्ण आदेश किये जाते हैं। जैसे कि 'लब्धा' पद में भकार के स्थान में जश् बकार किया गया है। भकार और बकार दोनों का स्थान '__उपूपध्मानीया ओष्ठ्याः__' (पा०शि० १।१४) से ओष्ठ है। ऐसे ही सर्वत्र समझें।

चर्+जश्–

(१५) अभ्यासे चर्च।५३।

प०वि०–अभ्यासे ७।१ चर् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–संहितायाम्, झलाम्, जश् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् अभ्यासे झलां चर् जश् च।

अर्थः–संहितायां विषयेऽभ्यासे वर्तमानानां झलां स्थाने चर् जश् च आदेशो भवति।

उदा०–(चर्) स चिखनिषति। स चिच्छित्सति। स टिठक्कुरयिषति। स तिष्ठासति। स पिफलिषति। स बुभूषति। स जिघत्सति। स डुढौकिषते।

आर्यभाषाः अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अभ्यासे) अभ्यास में विद्यमान (झलाम्) झल् वर्णों के स्थान में (जश्) जश् (च) और (चर्) चर् आदेश होता है।

उदा०-(चर्) स **चिखनिषति।** वह खोदना चाहता है। स **चिच्छित्सति।** वह काटना चाहता है। स **टिठक्कुरयिषति।** वह देवता की प्रतिमा बनाना चाहता है। स **तिष्ठासति।** वह ठहरना चाहता है। स **पिफलिषति।** (जश्) स **बुभूषति।** वह सत्ता में रहना चाहता है। स **जिघत्सति।** वह हिंसा करना चाहता है। स **डुढौकिषते।** वह गति (ढुकाव) करना चाहता है।

सिद्धि-(१) **चिखनिषति।** यहां '**खनु अवदारणे**' (भ्वा०प०) धातु से '**धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा**' (३।१।७) से 'सन्' प्रत्यय है। '**सन्यङोः**' (६।१।९) से 'खन्' धातु को द्वित्व होता है। प्रथम '**कुहोश्चुः**' (७।४।६२) से कवर्ग खकार को चवर्ग छकार आदेश होकर इस सूत्र से 'खन्' धातु के अभ्यास छकार को चर् चकार आदेश होता है।

(२) **चिच्छित्सति।** यहां '**छिदिंर् द्वैधीकरणे**' (रुधा०प०) धातु से पूर्ववत् सन् प्रत्यय और 'छिद्' धातु को द्वित्व है। इस सूत्र से 'छिद्' धातु के अभ्यास छकार को चर् चकार आदेश होता है।

(३) **टिठक्कुरयिषति।** यहां प्रथम 'ठक्कुर' शब्द से **वा०- 'तत्करोति तदाचष्टे०'** (३।१।२६) से करोति-अर्थ में 'णिच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् णिजन्त 'ठक्कुरि' धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय और धातु को द्वित्व है। इस सूत्र से 'ठक्कुरि' धातु के अभ्यास ठकार को चर् टकार आदेश होता है।

(४) **तिष्ठासति।** यहां '**ष्ठा गतिनिवृत्तौ**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय और 'स्था' धातु को द्वित्व है। '**शर्पूर्वाः खयः**' (७।४।६१) से 'स्था' अभ्यास का खय् 'थ' शेष रहता है। इस सूत्र से अभ्यास थकार को चर् तकार आदेश होता है।

(५) **पिफलिषति।** यहां '**फल निष्पत्तौ**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय और फल धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से अभ्यास के फकार को चर् पकार आदेश होता है।

(६) **बुभूषति।** यहां '**भू सत्तायाम्**' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय और धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से अभ्यास के भकार को जश् बकार आदेश होता है।

(७) **जिघत्सति।** यहां '**हन हिंसागत्योः**' (अदा०प०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय और धातु को द्वित्व होता है। प्रथम '**कुहोश्चुः**' (७।४।६२) से 'हन्' धातु के अभ्यास हकार को चवर्ग झकार होकर इस सूत्र से झकार को जश् जकार आदेश होता है।

(८) **डुढौकिषते।** यहां '**ढौकृ गतौ**' (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् 'सन्' प्रत्यय और फल धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से धातु के अभ्यास ढकार को जश् डकार आदेश होता है।

विशेषः *(१) यहां विद्वानों का यह विवेचन है कि खय् वर्णों को चर् और झश् वर्णों को जश् आदेश होता है (खयां चरो झशां जशः)–*

	खय्	चर्	झश्	जश्
१.	ख	च	झ	ज
२.	फ	प	भ	ब
३.	छ	च	घ	ग
४.	ठ	ट	ढ	ड
५.	थ	त	ध	द
६.	च	च	ज	ज
७.	ट	ट	ब	ब
८.	त	त	ग	ज
९.	क	च	ड	ड
१०.	प	प	द	द

कवर्ग और हकार वर्ण को 'कुहोश्चुः' (७।४।६२) से प्रथम चवर्ग आदेश होकर इस सूत्र से यथाप्राप्त चर् अथवा जश् आदेश होता है।

*(२) यहां पर्जन्यवत् सूत्रप्रवृत्ति से-प्रकृति चर् को चर् ही आदेश होता है। जैसे-(च) **चिचीषति। (ट) टिटीकषते। (त) तितनिषति।** और प्रकृति जश् को जश् ही आदेश होता है। जैसे-(ज) **जिजनिषते। (ब) बुबुधे। (द) ददौ। (ड) डिड्ये।** 'डीङ् विहायसा गतौ' (भ्वा०आ०)।*

चरादेशः–

(१६) खरि च।५४।

प०वि०–खरि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–संहितायाम्, झलाम्, चर् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायाम् झलां खरि च चर्।

अर्थः–संहितायां विषये झलां स्थाने खरि परतश्च चरादेशो भवति।

उदा०–**(भिद्)** भेत्ता, भेत्तुम्, भेत्तव्यम्। **(युध्)** स युयुत्सते। **(रभ्)** स आरिप्सते। **(लभ्)** स आलिप्सते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (झलाम्) झल् वर्णों के स्थान में (खरि) खर् वर्ण परे होने पर (च) भी (चर्) चर् आदेश होता है।*

*उदा०-(भिद्) **भेत्ता।** फाड़नेवाला। **भेत्तुम्।** फाड़ने के लिये। **भेत्तव्यम्।** फाड़ना चाहिये। (युध्) **स युयुत्सते।** वह प्रहार करना चाहता है। (रभ्) **स आरिप्सते।** वह आरम्भ करना चाहता है। (लभ्) **स आलिप्सते।** वह प्राप्त करना चाहता है।*

*सिद्धि-(१) **भेत्ता।** यहां **'भिदिर् विदारणे'** (रुधा०प०) धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। **'पुगन्तलघूपधस्य च'** (७।३।८६) से 'भिद्' धातु को लघूपधलक्षण गुण होता है। इस सूत्र से झल् दकार को खर् तकार परे होने पर चर् तकार आदेश होता है। तुमुन् प्रत्यय में-**भेत्तुम्।** तव्यत् प्रत्यय में-**भेत्तव्यम्।***

*(२) **युयुत्सते।** यहां **'युध सम्प्रहारे'** (दि०आ०) धातु से **'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा'** (३।१।७) से सन्' प्रत्यय है। **'सन्यङोः'** (६।१।९) से धातु को द्वित्व होता है। इस सूत्र से झल् धकार को, खर् सकार परे होने पर, चर् तकार आदेश होता है।*

*(३) **आरिप्सते।** यहां आङ्-उपसर्गपूर्वक **'रभ राभस्ये'** (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत् सन्' प्रत्यय और धातु को द्विर्वचन है। **'अत्र लोपोऽभ्यासस्य'** (७।४।५८) से अभ्यास का लोप और **'सनि मीमाघु०'** (७।४।५४) से 'रभ्' के अच् (अ) के स्थान में 'इस्' आदेश है। **'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च'** (८।२।२९) से 'इस्' के सकार का लोप है। इस सूत्र से झल् भकार को, खर् सकार परे होने पर, चर् पकार आदेश होता है।*

*(४) **आलिप्सते।** आङ्-उपसर्गपूर्वक **'डुलभष् प्राप्तौ'** (भ्वा०आ०) धातु से पूर्ववत्।*

चरादेशविकल्पः--

(१७) वाऽवसाने।५५।

प०वि०-वा अव्ययपदम्, अवसाने ७।१।

अनु०-संहितायाम्, झलाम्, चर् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् अवसाने झलां वा चर्।

अर्थः-संहितायां विषयेऽवसाने वर्तमानां झलां स्थाने विकल्पेन चरादेशो भवति।

उदा०-**वाच्**-वाक्, वाग्। **त्वच्**-त्वक्, त्वग्। **श्वलिड्**-श्वलिट्, श्वलिड्। **त्रिष्टुभ्**-त्रिष्टुप्, त्रिष्टुब्।

***आर्यभाषाः अर्थ**-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अवसाने) विराम में विद्यमान (झलाम्) झल् वर्णों के स्थान में (वा) विकल्प से (चर्) चर् आदेश होता है।*

उदा०-वाच्-वाक्, वाग्। वाणी। त्वच्-त्वक्, त्वग्। त्वचा (खाल)। श्वलिड्-श्वलिट्, श्वलिड्। कुत्तों को चाटनेवाला (घोरी)। त्रिष्टुभ्-त्रिष्टुप्, त्रिष्टुब्। एक वैदिक छन्द का नाम है।

सिद्धि-वाक्। यहां 'वाच्' शब्द के चकार को 'चो: कु:' (८।२।३०) से कवर्ग ककार आदेश है। 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से ककार को जश् गकार आदेश होता है। इस सूत्र से गकार को चर् ककार आदेश होता है और विकल्प-पक्ष में पूर्वोक्त गकार आदेश भी बना रहता है-वाक्। ऐसे ही-त्वक्, त्वग् आदि। यहां 'विरामोऽवसानम्' (१।४।१०९) से अवसान-संज्ञा है।

चरादेशविकल्पः--

(१८) अणोऽप्रगृह्यस्यानुनासिकः।५६।

प०वि०-अण: ६।१ अप्रगृह्यस्य ६।१ अनुनासिक: १।१।

स०-न प्रगृह्यमिति अप्रगृह्यम्, तस्य-अप्रगृह्यस्य (नञ्तत्पुरुष:)।

अनु०-संहितायाम्, वा, अवसाने इति चानुवर्तते।

अन्वय:-संहितायाम् अवसानेऽप्रगृह्यस्याणो वाऽनुनासिक:।

अर्थ:-संहितायां विषयेऽवसाने वर्तमानस्य प्रगृह्यवर्जितस्याणो विकल्पेनानुनासिकादेशो भवति।

उदा०-दधि, दधिँ। मधु, मधुँ। कुमारी, कुमारीँ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अवसाने) विराम में विद्यमान (अप्रगृह्यस्य) प्रगृह्य संज्ञा से भिन्न (अण:) अण् वर्ण को (वा) विकल्प से (अनुनासिक:) अनुनासिक आदेश होता है।*

उदा०-दधि, दधिँ। दही। मधु, मधुँ। शहद। कुमारी, कुमारीँ। कन्या।

सिद्धि-दधि। यहां इस सूत्र से दधि के अण् (इ) वर्ण को अनुनासिक आदेश नहीं है। विकल्प-पक्ष में अनुनासिक आदेश है-दधिँ। ऐसे ही-मधु, मधुँ। यहां 'विरामोऽवसानम्' (१।४।१०९) से अवसान-संज्ञा है।

परसवर्णादेशः--

(१९) अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः।५७।

प०वि०-अनुस्वारस्य ६।१ ययि ७।१ परसवर्ण: १।१।

स०-परस्य सवर्ण इति परसवर्ण: (षष्ठीतत्पुरुष:)।

अनु०-संहितायामित्यनुवर्तते।

अन्वयः-संहितायामनुस्वारस्य ययि परसवर्णः।

अर्थः-संहितायां विषयेऽनुस्वारस्य स्थाने, ययि परतः परसवर्णादेशो भवति।

उदा०-शङ्किता, शङ्कितुम्, शङ्कितव्यम्। उञ्छिता, उञ्छितुम्, उञ्छितव्यम्। कुण्डिता, कुण्डितुम्, कुण्डितव्यम्। नन्दिता, नन्दितुम्, नन्दितव्यम्। कम्पिता, कम्पितुम्, कम्पितव्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अनुस्वारस्य) अनुस्वार वर्ण { ं } के स्थान में (ययि) यय् वर्ण परे रहने पर (परसवर्णः) परसवर्ण आदेश होता है।*

*उदा०-**शङ्किता**। शङ्का करनेवाला। **शङ्कितुम्**। शङ्का करने केलिये। **शङ्कितव्यम्**। शङ्का करनी चाहिये। **उञ्छिता**। थोड़ा-थोड़ा एकत्र करनेवाला। **उञ्छितुम्**। थोड़ा-थोड़ा एकत्र करने के लिये। **उञ्छितव्यम्**। थोड़ा-थोड़ा एकत्र करना चाहिये। **कुण्डिता**। कुण्ठित करनेवाला। **कुण्डितुम्**। कुण्ठित करने के लिये। **कुण्डितव्यम्**। कुण्ठित करना चाहिये। **नन्दिता**। समृद्ध होनेवाला। **नन्दितुम्**। समृद्ध होने केलिये। **नन्दितव्यम्**। समृद्ध होना चाहिये। **कम्पिता**। कांपनेवाला। **कम्पितुम्**। कांपने के लिये। **कम्पितव्यम्**। कांपना चाहिये।*

*सिद्धि-(१) **शङ्किता**। यहां '**शकि शङ्कायाम्**' (भ्वा०आ०) धातु से '**ण्वुल्तृचौ**' (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। 'शकि' धातु के इदित् होने से '**इदितो नुम् धातोः**' (७।१।५८) से 'नुम्' आगम और '**नश्चापदान्तस्य झलि**' (८।३।२४) से नुम्' के नकार को अनुस्वार आदेश होता है। इस सूत्र से इस अनुस्वार को यय् ककार परे रहने पर परसवर्ण ङकार आदेश होता है। '**वर्ग्यो वर्ग्येण सवर्णः**' (पा०शि० ६।१०) से अनुस्वार को कवर्गीय परसवर्ण ङकार होता है। तुमुन् प्रत्यय में-**शङ्कितुम्**। तव्यत् प्रत्यय में-**शङ्कितव्यम्**।*

*(२) **उञ्छिता**। '**उछि उञ्छे**' (भ्वा०प०) अनुस्वार को परसवर्ण ञकार आदेश है।*

*(३) **कुण्डिता**। '**कुडि वैकल्ये**' (भ्वा०प०) अनुस्वार को परसवर्ण णकार आदेश है।*

*(४) **नन्दिता**। '**टुनदि समृद्धौ**' (भ्वा०प०) अनुस्वार को परसवर्ण नकार आदेश है।*

*(५) **कम्पिता**। '**कपि चलने**' (भ्वा०प०) अनुस्वार को परसवर्ण मकार आदेश है।*

*'**अनुस्वारयमा नासिक्याः**' (पा०शि० १।१५) से अनुस्वार का स्थान नासिका है और '**ङञणनमाः स्वस्थाननासिकास्थानाः**' (पा०शि० १।२०) से ङ, ञ, ण, न, म वर्णों का अपने-अपने कण्ठादि स्थानों के सहित नासिका भी स्थान है। अतः अनुस्वार को इस स्थानकृत आन्तर्य (सादृश्य) से ङकार आदि परसवर्ण आदेश होते हैं।*

परसवर्णादेशविकल्पः–

(२०) वा पदान्तस्य।५८।

प०वि०–वा अव्ययपदम्, पदान्तस्य ६।१।

स०-पदस्य अन्त इति पदान्तः, तस्य-पदान्तस्य (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–संहितायाम्, अनुस्वारस्य, ययि, परसवर्ण इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां पदान्तस्यानुस्वारस्य ययि परसवर्णः।

अर्थः–संहितायां विषये पदान्ते वर्तमानस्याऽनुस्वारस्य स्थाने, ययि परतो विकल्पेन परसवर्णादेशो भवति।

उदा०–तं कथं चित्रपक्षं डयमानं नभस्थं पुरुषोऽवधीत्। तङ्कथञ्चित्रपक्षण्डयमानन्नभस्थम्पुरुषोऽवधीत्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (पदान्तस्य) पद के अन्त में विद्यमान (अनुस्वारस्य) अनुस्वार के स्थान में (ययि) यय् वर्ण परे रहने पर (वा) विकल्प से (परसवर्णः) परसवर्ण आदेश होता है।*

*उदा०-**तं कथं चित्रपक्षं डयमानं नभस्थं पुरुषोऽवधीत्।** उस विचित्र पंखोंवाले उड़ते हुये आकाशस्थ पक्षी का पुरुष ने कैसे वध किया। **तङ्कथञ्चित्रपक्षण्डयमानन्नभस्थम्पुरुषोऽवधीत्।** अर्थ पूर्ववत् है।*

*सिद्धि-**तं कथं चित्रपक्षं डयमानं नभस्थं पुरुषोऽवधीत्।** इस वाक्य में इस सूत्र से अनुस्वार को यय् वर्ण परे रहने पर परसवर्ण आदेश नहीं है। विकल्प-पक्ष में पूर्वोक्त नियम से अनुस्वार को परसवर्ण आदेश है-**तङ्कथञ्चित्रपक्षण्डयमानन्नभस्थम्पुरुषोऽवधीत्।***

परसवर्णादेशः–

(२१) तोर्लि।५६।

प०वि०–तोः ६।१ लि ७।१।

अनु०–संहितायाम्, परसवर्ण इति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां तोर्लि परसवर्णः।

अर्थः–संहितायां विषये तवर्गस्य स्थाने लकारे परतः परसवर्णादेशो भवति।

उदा०–अग्निचिल्लुनाति, सोमसुल्लुनाति। भवाँल्लुनाति, महाँल्लुनाति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (तोः) तवर्ग के स्थान में (लि) लकार परे होने पर (परसवर्णः) परसवर्ण आदेश होता है।*

*उदा०-**अग्निचिल्लुनाति**। अग्निचित् काटता है। **सोमसुल्लुनाति**। सोमसुत् काटता है। **भवाँल्लुनाति**। आप काटते हो। **महाँल्लुनाति**। महान् पुरुष काटता है।*

सिद्धि-(१) अग्निचिल्लुनाति। *यहां इस सूत्र से अग्निचित् के तवर्ग तकार को लुनाति का लकार वर्ण परे रहने पर परसवर्ण लकार आदेश होता है। ऐसे ही-**सोमसुत्+लुनाति=सोमसुल्लुनाति**।*

*(२) **भवाँल्लुनाति**। यहां इस सूत्र से भवान् के तवर्ग नकार को लुनाति का लकार वर्ण परे होने पर परसवर्ण अनुनासिक लकार आदेश होता है। **'अन्तस्था द्विप्रभेदाः सानुनासिका निरनुनाकिाश्च'** (पा०शि० ६।८) से अन्तस्थ (य व र ल) वर्ण सानुनासिक और निरनुनासिक भेद से दो प्रकार के हैं। अतः यहां सानुनासिक तवर्ग नकार को सानुनासिक परसवर्ण लकार (लँ) आदेश होता है। 'स्थानेऽन्तरतमः' (१।१।४९) से किसी के स्थान में विधीयमान आदेश अन्तरतम (सदृशतम) ही किया जाता है। ऐसे ही-**महान्+लुनाति=महाँल्लुनाति**।*

पूर्वसवर्णादेशः-

(२२) उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य।६०।

प०वि०-उदः ५।१ स्था-स्तम्भोः ६।२ पूर्वस्य ६।१।

स०-स्थाश्च स्तम्भ् च तौ स्थास्तम्भौ, तयोः-स्थास्तम्भोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संहितायाम्, सवर्ण इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य सवर्णः।

अर्थः-संहितायां विषये उदः परयोः स्थास्तम्भोर्धात्वोः पूर्वसवणदिशो भवति।

उदा०-(स्था) उत्थाता, उत्थितुम्, उत्थितव्यम्। **(स्तम्भ)** उत्तम्भिता, उत्तम्भितुम्, उत्तम्भितव्यम्।

आर्यभाषाः अर्थ- *(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उदः) उत्-उपसर्ग से परवर्ती (स्थास्तम्भोः) स्था और स्तम्भ धातुओं का (पूर्वस्य सवर्णः) पूर्व सवर्ण आदेश होता है।*

*उदा०-(स्था) **उत्थाता**। उठनेवाला। **उत्थितुम्**। उठने के लिये। **उत्थितव्यम्**। उठना चाहिये। **(स्तम्भ) उत्तम्भिता**। रोकनेवाला। **उत्तम्भितुम्**। रोकने के लिये। **उत्तम्भितव्यम्**। रोकना चाहिये।*

***सिद्धि-(१) उत्थाता**। उत्+स्थाता। उत्+थ् थाता। उत्+०थाता। उत्+थाता। उत्थाता।*

*यहां उत्-उपसर्गपूर्वक **'ष्ठा गतिनिवृत्तौ'** (भ्वा०प०) धातु से **'ण्वुल्तृचौ'** (३।१।१३३) से 'तृच्' प्रत्यय है। इस सूत्र से **'आदेः परस्य'** (१।१।५३) के नियम से उत्-उपसर्ग से परवर्ती 'स्थाता' के सकार को पूर्वसवर्ण आदेश होता है। अतः अघोष तथा महाप्राण प्रयत्न वाले सकार को उसका अन्तरतम (सदृशतम) अर्थात् उसी प्रयत्नवाला थकार पूर्वसवर्ण होता है। **'झरो झरि सवर्णे'** (८।४।६४) से पूर्ववर्ती थकार का विकल्प से लोप होता है। विकल्प-पक्ष में थकार का लोप नहीं होता है-**उत्थ्थाता**।*

कई आचार्य बाह्य प्रयत्न के सादृश्य को न मानकर सकार को पूर्वसवर्ण तकार आदेश करते हैं। उनके मत में उत्थाता अथवा उत्त्थाता प्रयोग बनता है।

*तुमुन् प्रत्यय में-**उत्थातुम्**। तव्यत् प्रत्यय में-**उत्थातव्यम्**।*

*(२) **उत्तम्भिता**। उत्-उपसर्ग **'स्तम्भु प्रतिबन्धे'** (प०सौत्रधातु) से पूर्ववत् 'तृच्' प्रत्यय है। सूत्र-कार्य पूर्ववत् है। तुमुन् प्रत्यय में-**उत्तम्भितुम्**। तव्यत् प्रत्यय में-**उत्तम्भितव्यम्**।*

पूर्वसवर्णादेशविकल्पः-

(२३) झयो होऽन्यतरस्याम्।६१।

प०वि०-झयः ५।१ हः ६।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-संहितायाम्, सवर्णः, पूर्वस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां झयो होऽन्यतरस्यां पूर्वस्य सवर्णः।

अर्थः-संहितायां विषये झयः परस्य हकारस्य स्थाने, विकल्पेन पूर्वसवणादिशो भवति।

उदा०-प्राग् हसति, प्राग्घसति। मधुलिड् हसति, मधुलिड्ढसति। अग्निचिद् हसति, अग्निचिद्धसति। त्रिष्टुब् हसति, त्रिष्टुब्भसति।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (झयः) झय् वर्ण से परवर्ती (हः) हकार के स्थान में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (पूर्वस्य सवर्णः) पूर्व सवर्ण **आदेश** होता है।*

*उदा०-**प्राग् हसति, प्राग्घसति।** वह पहले हंसता है। **मधुलिड् हसति, मधुलिड्ढसति।** मधुलिट् हंसता है। **अग्निचिद् हसति, अग्निचिद्धसति।** अग्निचित् हंसता है। **त्रिष्टुब् हसति, त्रिष्टुब्भसति।** त्रिष्टुप् हंसता है।*

*सिद्धि-**प्राग् हसति।** यहां 'प्राक्' शब्द के ककार को 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से जश् गकार आदेश है। यहां हकार को पूर्वसवर्ण आदेश नहीं है। विकल्प-पक्ष में पूर्वसवर्ण आदेश है-**प्राग्घसति।** 'स्थानेऽन्तरतमः' (८।२।३९) के नियम से गकार से परवर्ती महाप्राण हकार को उसका अन्तरतम महाप्राण घकार पूर्वसवर्ण होता है। '**हकारेण चतुर्थाः**' (पा०शि० ४।१०) से हकार के साथ वर्ग के चतुर्थ वर्ण (घ, झ, ढ, ध, भ) का आन्तर्य (सादृश्य) है। ऐसे ही-**मधुलिड्ढसति, अग्निचिद्धसति, त्रिष्टुब्भसति।** यहां हकार के स्थान में उसके अन्तरतम क्रमशः ढकार, धकार और भकार पूर्वसवर्ण हैं।*

छकारादेशविकल्पः-

(२४) शश्छोऽटि।६२।

प०वि०-शः ६।१ छः १।१ अटि ७।१।

अनु०-संहितायाम्, झयः, अन्यतरस्यामिति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां झयः शोऽटि अन्यतरस्यां छः।

अर्थः-संहितायां विषये झयः परस्य शकारस्य स्थानेऽटि परतो विकल्पेन छकारादेशो भवति।

उदा०-प्राक् शेते, प्राक्छेते। अग्निचित् शेते, अग्निचिच्छेते। मधुलिट् शेते। मधुलिट्छेते। त्रिष्टुप् शेते, त्रिष्टुप्छेते।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (झयः) झय् वर्ण से परवर्ती (शः) शकार के स्थान में (अटि) अट् वर्ण परे रहने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (छः) छकार आदेश होता है।*

*उदा०-**प्राक् शेते, प्राक्छेते।** वह पहले सोता है। **अग्निचित् शेते, अग्निचिच्छेते।** अग्निचित् सोता है। **मधुलिट् शेते। मधुलिट्छेते।** मधुलिट् सोता है। **त्रिष्टुप् शेते, त्रिष्टुप्छेते।** त्रिष्टुप् सोता है।*

*सिद्धि-**प्राक् शेते।** यहां इस सूत्र से झय् ककार वर्ण से परवर्ती शेते के शकार को अट् वर्ण (ए) परे होने पर छकार आदेश नहीं होता है। विकल्प-पक्ष में छकार आदेश है-**प्राक्छेते।** ऐसे ही-**अग्निचिच्छेते, मधुलिट्छेते, त्रिष्टुप्छेते।** छकार आदेश के पश्चात् '**स्तोः श्चुना श्चुः**' (८।४।४०) से तकार को चवर्ग चकार आदेश है।*

लोपादेशः–

(२५) हलो यमां यमि लोपः।६३।

प०वि०–हलः ५।१ यमाम् ६।३ यमि ७।१ लोपः।

अनु०–संहितायाम्, अन्यतरस्यामिति चानुवर्तते।

अन्वयः–संहितायां हलो यमां यमि अन्यतरस्यां लोपः।

अर्थः–संहितायां विषये हलः परेषां यमां यमि परतो विकल्पेन लोपो भवति।

उदा०–शय्या, शय्य्या। आदित्यः, आदित्य्यः। आदित्यः, आदित्य्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (हलः) हल् वर्ण से परवर्ती (यमाम्) यम् वर्णों का (यमि) यम् वर्ण परे रहने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-**शय्या, शय्य्या**। सेज। **आदित्यः, आदित्य्यः**। सूर्य। **आदित्यः, आदित्य्यः**। सूर्य।*

सिद्धि-(१) शय्या। *शीङ्+क्यप्। शी+य। श्अयङ्+य। शय्+य। शय्य+टाप्। शय्या।*

*यहां '**शीङ् स्वप्ने**' (अदा०प०) धातु से '**संज्ञायां समजनिषद०**' (३।३।९९) से 'क्यप्' प्रत्यय है। '**अयङ् यि क्ङिति**' (७।४।२२) से धातु को अयङ् आदेश होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में '**अजाद्यतष्टाप्**' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय है। '**अनचि च**' (८।४।४६) से यर् (य्) को द्वित्व होकर 'शय्य्या' प्रयोग बनता है। इस सूत्र से हल् यकार से परवर्ती यम् यकार का यम् यकार वर्ण परे होने पर लोप हो जाता है। विकल्प पक्ष में यकार का लोप नहीं है, यहां तीन यकार का श्रवण होता है-**शय्य्या**।*

(२) आदित्यः। *अदिति+ण्य। अदिति+य। आदित्+य। आदित्य+सु। आदित्यः।*

*यहां 'अदिति' शब्द से '**दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः**' (४।१।८५) से 'ण्य' प्रत्यय है। '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से इकार का लोप और '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।११७) से आदिवृद्धि होती है। **आदित्यः**, इस स्थिति में वा०-'**यणो मयो द्वे भवतः**' (८।४।४६) से मय् तकार से परवर्ती यण् यकार को द्वित्व होता है-**आदित्य्यः**। इस प्रकार यहां एक यकार अथवा दो यकारों का श्रवण होता है।*

(३) आदित्य्यः। *यहां पूर्वोक्त 'आदित्य' शब्द से '**साऽस्य देवता**' (४।१।८५) से देवता अर्थ में यथाविहित 'ण्य' प्रत्यय है-आदित्य+ण्य। आदित्य्+य। आदित्य्य+सु।*

*आदित्य्यः, इस स्थिति में वा०-**'यणो मयो द्वे भवतः'** (८।४।४६) से यकार को द्वित्व होकर-**आदित्य्य्यः**। जब विकल्प-पक्ष में यकार को द्विर्वचन नहीं होगा तब इस सूत्र से एक यकार का लोप होकर-**आदित्यः** रूप बनता है।*

लोपादेशविकल्पः-

(२६) झरो झरि सवर्णे।६४।

प०वि०-झरः ६।१ झरि ७।१ सवर्णे ७।१।

अनु०-संहितायाम्, अन्यतरस्याम्, हलः, लोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायां हलो झरः सवर्णे झरि अन्यतरस्यां लोपः।

अर्थः-संहितायां विषये हलः परस्य झरः, सवर्णे झरि परतो विकल्पेन लोपो भवति।

उदा०-प्रत्तम्, प्रत्त्तम्। अवत्तम्, अवत्त्तम्। मरुत्तम्, मरुत्त्तम्।

आर्यभाषाः अर्थ-*(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (हलः) हल् वर्ण से परवर्ती (झरः) झर् वर्ण का (सवर्णे) तुल्य प्रयत्नवाला (झरि) झर् वर्ण परे रहने पर (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (लोपः) लोप होता है।*

*उदा०-**प्रत्तम्, प्रत्त्तम्**। उसने प्रदान किया। **अवत्तम्, अवत्त्तम्**। उसने अवदान किया। **मरुत्तम्, मरुत्त्तम्**। मरुत् देवताओं के द्वारा दान किया हुआ।*

*सिद्धि-**प्रत्तम्**। यहां प्र-उपसर्गपूर्वक **'डुदाञ् दाने'** (जु०उ०) धातु से 'क्त' प्रत्यय है। **'अचः उपसर्गात्तः'** (७।४।४७) स अजन्त 'प्र' उपसर्ग से उत्तरवर्ती 'दा' धातु के आकार को तकार आदेश है। **'खरि च'** (८।४।५४) से दकार को चर् तकार आदेश होता है। इस सूत्र से हल् तकार से परवर्ती झर् तकार का सवर्ण झर् तकार परे होने पर लोप होता है। विकल्प-पक्ष में लोप नहीं है-**प्रत्त्तम्**। इस स्थिति में **'अनचि च'** (८।४।५८) से यर् तकार को द्विर्वचन करने पर-**प्रत्त्त्तम्**। इस सूत्र से एक तकार का लोप हो जाने पर-**प्रत्त्तम्**। पुनः इसी सूत्र से एक तकार का लोप हो जाने पर-**प्रत्तम्** रूप बनता है।*

*(२) **मरुत्तम्**। मरुत्+दा+क्त। मरुत्+द्त्+त। मरुत्+त्त्+त। मरुत्त्त्त+सु। मरुत्त्त्तम्।*

*यहां मरुत्-उपपद 'दा' धातु से पूर्ववत् 'क्त' प्रत्यय है। वा०-**'मरुच्छब्दस्य चोपसङ्ख्यानम्'** (१।४।५८) से 'मरुत्' शब्द की उपसर्ग संज्ञा की गई है, अतः उपसर्ग संज्ञा के विधान सामर्थ्य से **'अच उपसर्गात्तः'** (७।४।४७) से 'मरुत्' के अजन्त न होने*

*पर भी 'दा' धातु के आकार को तकार आदेश हो जाता है। **'अनचि च'** (८।४।५८) से यर् तकार को द्विर्वचन करने पर पांच तकार हो जाते हैं-**मरुत्त्त्त्तम्।** इस सूत्र से एक तकार का लोप हो जाने पर चार तकार, पुनः एक तकार का लोप हो जाने पर तीन तकार और पुनः एक तकार का लोप हो जाने पर दो तकार शेष रहते हैं-**मरुत्तम्।** हल् से उत्तर झर् तकार का सवर्ण झर् तकार की प्राप्ति रहने पर इस सूत्र की तीन बार प्रवृत्ति होती है।*

स्वरितादेशः–

(२७) उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः।६५।

प०वि०-उदात्तात् ५।१ अनुदात्तस्य ६।१ स्वरितः १।१।

अनु०-संहितायाम् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः।

अर्थः-संहितायां विषये उदात्तात् परस्यानुदात्तस्य स्थाने, स्वरितादेशो भवति।

उदा०-गार्ग्यः, वात्स्यः, पचति, पठति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उदात्तात्) उदात्त स्वर से उत्तरवर्ती (अनुदात्तस्य) अनुदात्त स्वर के स्थान में (स्वरितः) स्वरित आदेश होता है।*

*उदा०-**गार्ग्यः।** गर्ग का पौत्र। **वात्स्यः।** वत्स का पौत्र। **पचति।** वह पकाता है। **पठति।** वह पढ़ता है।*

सिद्धि-(१) गार्ग्यः। *यहां 'गर्ग' शब्द से **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) से गोत्रापत्य अर्थ में 'यञ्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अकार का लोप और **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से आदिवृद्धि है। 'यञ्' प्रत्यय के ञित् होने से **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९१) से आद्युदात्त है। **'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्'** (६।१।१५५) से यह अन्तानुदात्त होकर इस सूत्र से उदात्त से परवर्ती अनुदात्त स्वर को स्वरित आदेश होता है। ऐसे ही 'वत्स' शब्द से-**वात्स्यः।***

*(२) **पचति।** यहां **'डुपचष् पाके'** (भ्वा०उ०) धातु से 'लट्' प्रत्यय है। लकार के स्थान में 'तिप्' आदेश और **'कर्तरि शप्'** (३।१।६८) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय है। 'तिप्' और 'शप्' प्रत्ययों के पित् होने से ये **'अनुदात्तौ सुप्पितौ'** (३।१।४) से अनुदात्त हैं। 'पच्' धातु **'धातोः'** (६।१।१५९) से अन्तोदात्त है। अतः इस सूत्र से 'पच्' धातु के उदात्त स्वर से परवर्ती 'शप्' प्रत्यय के अनुदात्त अकार को स्वरित आदेश होता है।*

'स्वरितात् संहितायामनुदात्तानाम्' (१।२।३९) से स्वरित से परवर्ती 'तिप्' प्रत्यय के अनुदात्त को एकश्रुति स्वर होता है। ऐसे ही 'पठ व्यक्तायां वाचि' (भ्वा०प०) धातु से-पठति।

स्वरितादेशप्रतिषेधः-

(२८) नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम्।६६।

प०वि०-न अव्ययपदम्, उदात्तस्वरितोदयम् १।१ अगार्ग्यकाश्यप-गालवानाम् ६।३।

स०-उदात्तश्च स्वरितश्च तौ उदात्तस्वरितौ, तौ उदयौ यस्मात् तत्-उदात्तस्वरितोदयम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)। गार्ग्यश्च काश्यपश्च गालवश्च ते-गार्ग्यकाश्यपगालवाः, न गार्ग्यकाश्यपगालवा इति अगार्ग्यकाश्यपगालवाः, तेषाम्-अगार्ग्यकाश्यपगालवानाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्व-गर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-संहितायाम्, अनुदात्तस्य, स्वरित इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् उदात्तोदयस्य स्वरितोदयस्य चानुदात्तस्याऽगार्ग्य-काश्यपगालवानां स्वरितो न।

अर्थः-संहितायां विषये उदात्तपरस्य स्वरितपरस्य चानुदात्तस्य स्थाने गार्ग्यकाश्यपगालववर्जितानामाचार्याणां मतेन स्वरितादेशो न भवति।

उदा०-(उदात्तोदयः) गार्ग्यस्तत्र। वात्स्यस्तत्र। **(स्वरितोदयः)** गार्ग्यः क्व। वात्स्यः क्व।

"उदात्तस्वरितपरस्य इति वक्तव्य उदयग्रहणं मङ्गलार्थम्, अनेका-चार्यसङ्कीर्तनं पूजार्थम्" (काशिका)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (उदात्तस्वरितोदयस्य) उदात्तपरक और स्वरितपरक (अनुदात्तस्य) अनुदात्त स्वर के स्थान में (अगार्ग्यकाश्यप-गालवानाम्) गार्ग्य, काश्यप, गालव इन आचार्यों को छोड़कर शेष आचार्यों के मत में (स्वरितः) स्वरित आदेश (न) नहीं होता है।*

*उदा०-(उदात्तपरक) **गार्ग्यस्तत्र**। गार्ग्य वहां है। **वात्स्यस्तत्र**। वात्स्य वहां है। **(स्वरितपरक) गार्ग्यः क्व**। गार्ग्य कहां है? **वात्स्यः क्व**। वात्स्य कहां है?*

*सिद्धि-(१) **गार्ग्यस्तत्र।** यहां गार्ग्य शब्द **'गर्गादिभ्यो यञ्'** (४।१।१०५) से यञ्-प्रत्ययान्त **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९४) से आद्युदात्त और **'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्'** (६।१।१५५) से अनुदात्त होकर अन्तानुदात्त है। 'तत्र' शब्द में 'तत्' शब्द से **'सप्तम्यास्त्रल्'** (५।३।१०) से 'त्रल्' प्रत्यय है, अतः प्रत्यय के लित् होने से **'लिति'** (६।१।१९०) से आद्युदात्त है। इस सूत्र से 'तत्र' का उदात्त स्वर परे होने पर गार्ग्य के अनुदात्त स्वर को स्वरित आदेश का प्रतिषेध होता है। **'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः'** (८।४।६५) से स्वरित आदेश प्राप्त था। अतः उसका प्रतिषेध किया गया है। ऐसे ही-**वात्स्यस्तत्र।***

*(२) **गार्ग्यः क्व।** यहां 'क्व' में 'किम्' शब्द से **'किमोऽत्'** (५।३।१२) से 'अत्' प्रत्यय है। **'कुतिहोः'** (७।२।१०४) से 'किम्' को 'कु' आदेश है। 'अत्' प्रत्यय के तित् होने से यह **'तित् स्वरितम्'** (६।१।१८५) से स्वरित है। इस सूत्र से स्वरित 'क्व' शब्द के परे रहने पर गार्ग्य के अनुदात्त स्वर को स्वरित आदेश का प्रतिषेध होता है। ऐसे ही-**वात्स्यः क्व।***

***विशेषः** (१) महर्षि पतञ्जलि आदि आचार्यों का मत है कि पाणिनि मुनि ने अष्टाध्यायी के प्रारम्भ में 'वृद्धिरादैच्' (१।१।१) सूत्र में संज्ञी से पूर्व संज्ञावाची वृद्धि शब्द का प्रयोग पाठकों की मङ्गल कामना से किया है कि इस शास्त्र के अध्येता सदा बढ़ते रहें और इस सूत्र में भी परवाची 'उदय' शब्द का प्रयोग मङ्गल भावना से किया गया है कि इस शास्त्र के अध्यापक और अध्येता जनों का सदा उदय होता रहे, वे कभी समाप्त न हों।*

(२) गार्ग्य, काश्यप और गालव आचार्यों का नाम-कीर्तन उनके सम्मान के लिये किया गया है।

संवृतादेशः-

(२६) अ अ इति।६७।

प०वि०-अ अव्ययपदम् (षष्ठ्यर्थे), अ अव्ययपदम्, इति अव्ययपदम्।

अनु०-संहितायामित्यनुवर्तते।

अन्वयः-संहितायाम् अ अ इति।

अर्थः-संहितायां विषये विवृताकारस्य स्थाने संवृताकारादेशो भवति।

एकोऽत्र विवृतः, अपरश्च संवृतः। तत्र विवतस्य संवृतः क्रियते। विवृतोऽकारः संवृतो भवतीत्यर्थः।

उदा०-वृक्षः। प्लक्षः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संहितायाम्) सन्धि-विषय में (अ) विवृत अकार के स्थान में (अ) संवृत अकार आदेश होता है (इति) ऐसा जानें।*

उदा०-वृक्षः। पेड़। प्लक्षः। पिलखण।

सिद्धि-वृक्षः। *पाणिनीय शिक्षा में कहा गया है कि '**विवृतकरणाः स्वराः**' (पा०शि० ३।८) अर्थात् अकारादि स्वरों का विवृत प्रयत्न है किन्तु '**संवृतस्त्कारः**' (पा०शि० ३।९) से केवल अकार का संवृत प्रयत्न है। ह्रस्व अकार और दीर्घ तथा प्लुत अकार का उक्त प्रयत्नभेद होने से इनकी '**तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्**' (१।१।९) से सवर्ण संज्ञा सिद्ध नहीं होती है, अतः पाणिनि मुनि ने 'अइउण्' (प्रत्याहार १) में अकार को विवृत प्रतिज्ञात किया था कि इस व्याकरणशास्त्रविषयक सवर्ण आदि कार्यों में यह 'अकार' विवृत ही समझना।*

अब यह शब्द शास्त्र समाप्त होगया है। अतः पाणिनि मुनि ने उस विवृत प्रतिज्ञात अकार का संवृत आदेश प्रतिपादन किया है कि लोक में 'वृक्षः' आदि शब्दों में अकार का संवृत ही उच्चारण होता है, विवृत नहीं। ऐसे ही-प्लक्षः आदि।

(इति आदेशप्रकरणं संहिताप्रकरणं च समाप्तम्)

।। इति त्रिपादी समाप्ता।।

६ ५ ० २

ऋतुप्राणखनेत्राब्दे श्रावणे पुण्यपर्वणि।
पूर्णिमायां गुरौ वारे ग्रन्थः पूर्णतां गतः।।

अर्थः-*यह ग्रन्थ श्रावण पूर्णिमा (श्रावणी उपाकर्म) संवत् २०५६ वि० बृहस्पतिवार को पूर्ण हुआ (२६ अगस्त १९९९ ई०)।*

इति हरयाणाप्रान्तीयरोहितकमण्डलानन्तर्गतबालन्दग्रामनिवासिनः श्रीमन्महाशय-शिवदत्तार्यस्य प्रियपुत्रेण श्रीमतीरजकांदेवी सूनुना परिव्राजकाचार्याणां श्रीमद् ओमानन्दसरस्वतीस्वामिनां महाविदुषां पण्डितविश्वप्रियशास्त्रिणां च शिष्येण झज्जरगुरुकुलाधिगतविद्येन पण्डितसुदर्शनदेवाचार्येण विरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायी-प्रवचनेऽष्टमाध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः। सम्पूर्णश्चायं ग्रन्थः।।

।। इति षष्ठो भागः।।

पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

षष्ठभागस्य सूत्रवर्णानुक्रमणिका

॥ इति षष्ठभागस्य सूत्रवर्णानुक्रमणिका ॥

सम्मति

डा० सुदर्शनदेव आचार्य द्वारा लिखित **'पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचनम्'** नामक अष्टाध्यायी की व्याख्या देखने को मिली। संस्कृत भाषा अपने नाम के अनुरूप संस्कृत अर्थात् देवों की भाषा है। यह समस्त भारतीय भाषाओं की जननी है। इस भाषा का ज्ञान बिना व्याकरणशास्त्र के नहीं होता है। व्याकरणशास्त्र नव्य-विधाओं में विभक्त होकर भी पाणिनीय मूलक ही है अर्थात् महर्षि पाणिनि द्वारा निर्मित व्याकरणशास्त्र ही मुख्य है और सर्वोपरि है। उसके आद्योपान्त समझने के लिये अष्टाध्यायी का क्रमशः अध्ययन करना आवश्यक ही नहीं अपितु अपरिहार्य है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में व्याकरणशास्त्र को सरल तथा सूत्रशैली से समझाकर विद्वान् लेखक ने छात्रों का परमहित सम्पादन किया है जिसके विषय में यह कहा गया है कि **'कष्टं व्याकरणम्, कष्टतराणि च सामानि'** अर्थात् व्याकरणशास्त्र का पढ़ना अतीव कठिन है और साम का पढ़ना तो उससे भी अधिक कठिन है।

इस ग्रन्थ में सूत्र, पदच्छेद, विभक्ति, समास, अनुवृत्ति, अन्वय, अर्थ, उदाहरण, संस्कृतभाषा में लिखे गये हैं। आर्यभाषा नामक टीका में सूत्रों और उदाहरणों का अर्थ हिन्दी भाषा में दिया गया है। उदाहरणों की कच्ची सिद्धि देकर उन्हें समझाया गया है। इस शैली से सूत्रार्थ सरलतया हृदयंगम हो जाता है।

विद्वान् लेखक ने अपने विद्यार्थीकाल में जो प्रशस्य श्रम किया था, उस समय छात्रों के सामने जो कठिनाइयां आती रही हैं, उन सभी को सुसरल बना दिया है।

आशा है व्याकरणशास्त्र के छात्र तथा जिज्ञासु इससे अवश्य लाभान्वित होंगे और इससे अवश्य लाभ उठाकर लेखक का भी उत्साहवर्धन करेंगे।

—राजवीर शास्त्री
भूपेन्द्रपुरी, मोदीनगर,
गाजियाबाद (उ०प्र०)